प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

—: संस्करण :—
दिसम्बर १९३५ : २५००
अप्रैल १९३६ : २०००
नवम्बर १९३८ : ३०००
मूल्य
ढाई रुपये

मुद्रक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

समर्पण

सत्य और अहिंसा के चरणों में

जिनकी भावना ने कांग्रेस का भाग्य-सञ्चालन
किया है और जिनके लिए हिन्दुस्तान के
असंख्य पुत्र-पुत्रियों ने खुशी-खुशी
अपनी मातृभूमि की मुक्ति के
लिए महान् त्याग और
बलिदान किये हैं।

लेखक की ओर से

कोई उद्देश निश्चित करके इस पुस्तक की तैयारी का भार मैंने नहीं उठाया था। इस वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में बेकारी की घड़ियों में कलम-घिसाई करते-करते यह ग्रन्थ अपने-आप तैयार हो गया। बात यह हुई कि महासमिति के मंत्रीजी ने किसी दूसरे मामले में मुझसे योंही एक बात पूछी थी, उसी सिलसिले में मंत्रीजी के द्वारा राष्ट्रपति को इस छोटी-सी कृति की सूचना मिल गई। राष्ट्रपति ने यह मामला कार्य-समिति में पेश कर दिया, और कार्य-समिति ने कृपा-पूर्वक कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार उठा लिया। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रत्येक भाग के पहले जो सार-निदर्शक वाक्य दिये हुए हैं उनपर विहंगम-दृष्टि डालने से ही पुस्तक की योजना स्पष्ट हो जायगी। प्रथम तीस वर्षों के इतिहास में कोई खास कथानक वर्णन करने जैसा नहीं था। इसीलिए इस काल की घटनाओं का वर्णन विषय-वार और व्यक्ति-वार किया गया है। हां, पिछले बीस वर्षों का विवरण साल-ब-साल दिया गया है।

भिन्न-भिन्न अधिवेशनों के निश्चय क्रमशः उद्धृत नहीं किये गये हैं। क्योंकि ऐसा करते तो पुस्तक का आधा आकार तो योंही पूरा हो जाता। लेकिन इसके बिना भी पुस्तक आशातीत रूप में बड़ी हो गई है। पुस्तक में दोष भी बहुत रह गये हैं। मैं उनसे अनभिज्ञ नहीं हूँ। योजना और लेखन की ये त्रुटियां ऐसी हैं कि अधिक अवकाश मिलता और ज्यादा ध्यान दिया जा सकता तो इनमें कुछ कमी तो जरूर की जा सकती थीं। परन्तु काम बहुत ही थोड़े समय में करना पड़ा, और जल्दी में कोई काम अच्छा भी नहीं होता। फिर भी बहुत थोड़े समय में ही राष्ट्रपति इस पुस्तक को दो बार पढ़ गये हैं। इस प्रकार उन्हें पुनरावृत्ति और संशोधन के कार्य में जो परिश्रम करना पड़ा उसके लिए मेरे साथ ही जनता को भी उनका कृतज्ञ होना चाहिए। कांग्रेस के प्रधान-मंत्री आचार्य कृपलानी को भी इसपर कम परिश्रम नहीं करना पड़ा और मंत्री श्री कृष्णदास को छापने के लिए सारी सामग्री तैयार करने का कठिन कार्य करना पड़ा है। अतः वे भी देश के धन्यवाद के पात्र हैं।

मछलीपट्टम,
१२ दिसम्बर, १९३५

पट्टाभि सीतारामैया

सम्पादक की ओर से

हमारे माननीय राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने मुझे पत्र-द्वारा सूचित किया था कि डॉ० पट्टाभि सीतारामैया-लिखित कांग्रेस के इतिहास (History of the Congress) का हिन्दी-संस्करण सस्ता-साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित किया जाय; इधर भाई श्री देवदासजी गांधी ने प्रेम-पूर्वक आग्रह किया कि हिन्दी-संस्करण तैयार करने की जिम्मेवारी मैं खुद लूं। मेरा कांग्रेस-भक्त हृदय इस आग्रह को भला कैसे टाल सकता था? जिम्मेवारी ले तो ली; किन्तु जैसे-जैसे काम में प्रवेश करता गया तैसे-तैसे बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की कठिनाइयों से घिरता गया और यदि वे मित्र, जिनका नाम-निर्देश आगे किया जायगा, मेरी सहायता के लिए न दौड़ पड़ते, तो दो महीने के अन्दर इतनी बड़ी पुस्तक का अनुवाद और प्रकाशन असम्भव होता। ईश्वर को धन्यवाद है कि अनुवाद समय पर तैयार हो गया है।

अनुवाद को सरल, सुबोध और प्रामाणिक बनाने की भरसक चेष्टा की गई है। फिर भी मूल मूल और अनुवाद अनुवाद ही होता है। मैं नहीं समझता क यह अनुवाद इसमें अपवाद हो सकता है।

मूल अंग्रेजी प्रति थोड़ी-थोड़ी करके मिलती रही है—इसलिए सारी पुस्तक को अच्छी तरह पढ़ जाने पर अनुवाद करने में जो सुविधा मिल सकती थी वह नहीं मिली। यहां तक कि अनुवाद का कितना ही अंश छप चुकने पर महासमिति के दफ्तर से कुछ संशोधन मिले और अभीतक मिलते चले गये, जिनमें से कुछ को तो चिप्पियां लगा-लगाकर भी जोड़ना पड़ा है। समय कम मिलने के कारण मूल की यत्र-तत्र पुनरुक्ति से भी अनुवाद को न बचाया जा सका। मैं मानता हूँ कि यदि समय अधिक मिला होता तो मूल पुस्तक और अच्छी बन सकती थी और यह अनुवाद भी इससे बढ़कर हो सकता था। इन तमाम कठिनाइयों और असुविधाओं के रहते हुए भी, पुस्तक का अन्तरंग और बहिरंग सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है।

पुस्तक के गुण-दोषों के सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं। यह मेरा काम है भी नहीं। मेरे जिम्मे हिन्दी-संस्करण तैयार करने का काम था—वह यदि पाठकों के लिए सन्तोष-जनक निकला तो मैं अपनी जिम्मेवारी से

वरी हुआ। जल्दी के कारण इस संस्करण में जो त्रुटियां रह गई हैं उन्हें दूसरे संस्करण में दूर करने का यत्न किया जायगा।

मैं अपने सहायक मित्रों को धन्यवाद दिये विना इस वक्तव्य को समाप्त नहीं कर सकता। सबसे पहले मुझे भाई मुकुटविहारी वर्मा और प्रोफेसर गोकुल-लालजी असावा का नामोल्लेख करना चाहिए, जिनकी बहुमूल्य सहायता और जी-तोड़ परिश्रम के विना यह संस्करण किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकता था। इसी तरह भाई रामनारायणजी चौधरी (अध्यक्ष, राजस्थान-हरिजन-सेवक-संघ), श्री रुद्रनारायणजी अग्रवाल, भाई कृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार (सम्पादक साप्ताहिक 'अर्जुन') श्री हरिश्चन्द्रजी गोयल और भाई शिवचरणलालजी शर्मा से भी समय-समय पर बड़ी सहायता मिली, जिनका कृतज्ञता-पूर्वक उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' प्रेस के कर्मचारियों को भी प्रकाशक की ओर से धन्यवाद मिलना चाहिए, जिन्होंने दिन-रात परिश्रम करके इस पुस्तक को सुन्दरता के साथ थोड़े समय में छापने की सुविधा मण्डल को कर दी। वे सब सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अन्य प्रकार से हिन्दी-संस्करण को तैयार करने में सहायता पहुँचाई।

मुझे विश्वास है कि यह इतिहास, कांग्रेस का यह पुण्य-स्मरण, कांग्रेस-माता का यह दूध पाठकों के जीवन को पवित्र, तेजस्वी तथा वलिष्ठ वनायेगा और उन्हें स्वाधीनता की वलिवेदी पर अपने आपको चढ़ाने की स्फूर्ति देगा।

वन्दे-मातरम् !

गांधी-आश्रम
हण्डुडी (अजमेर),
१५ दिसम्बर १९३५

हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरे संस्करण का वक्तव्य

कांग्रेस के इतिहास का पहला संस्करण किस जल्दी और परिस्थिति में निकाला गया था, यह उसमें वताया जा चुका है। मित्रों की सहायता और ईश्वर की कृपा से हम उसे समय पर सर्व-साधारण के सामने रख सके, यह हमारे लिए वहुत वड़ी वात थी। लेकिन कांग्रेस तो इतनी वड़ी संस्था है कि हमने उसकी

जो ढाई हजार प्रतियां छपवाई थीं वे बहुत कम साबित हुईं, और छपते के साथ ही न केवल वे सबही समाप्त हो गईं बल्कि बहुत-सी मांग बनी ही रही। उत्सुक पाठकों के तकाजे और उलहने आते रहे, पर हम मजबूर थे। इधर जिन-जिनने पुस्तक देखी, छोटे से लेकर बड़ें-बड़ों तक ने, उसको सब तरह सराहा और हमें जल्दी दूसरा संस्करण प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया। फलतः, लखनऊ-कांग्रेस के इस शुभावसर पर, हम उसका दूसरा संस्करण उत्सुक पाठकों के सामने पेश करते हैं।

हमारी इच्छा थी कि दूसरे संस्करण के समय इसको बहुत बारीकी से संशोधित किया जाय, लेकिन काम इतना बड़ा था और समय इतना कम कि वह सम्भव नहीं हुआ। फिर भी श्री हरिभाऊजी ने एक बार सारी किताब को दोहरा लिया है और यथावसर कुछ संशोधन भी किये हैं। प्रूफ़ में तो पहले भी सावधानी रक्खी गई थी, इस बार और भी ज्यादा ध्यान दिया गया है। इस प्रकार पाठक इसे पहले संस्करण से कुछ अच्छा ही पायेंगे। हमें आशा है कि जैसे पहला संस्करण हाथों-हाथ बिका था वैसे ही यह भी जल्दी समाप्त होगा, और तब हम शीघ्र नये संस्करण को लेकर उपस्थित होंगे।

प्रकाशक





प्रस्तावना

हमारी राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) पचास वर्ष पूर्व, पहले-पहल, कुछ थोड़े-से प्रतिनिधियों की उपस्थिति में, वम्वई में हुई थी। जो लोग वहां उपस्थित थे वे निर्वाचित प्रतिनिधि तो शायद ही कहे जा सकें, परन्तु थे सच्चे जन-सेवक। वस, तभी से यह भारतीय जनता के लिए स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रही है। यह ठीक है कि प्रारम्भ में इसका लक्ष्य अनिश्चित था, लेकिन हमेशा इसने शासन के ऐसे प्रजातंत्री रूप पर जोर दिया है जो भारतीय जनता के प्रति जिम्मेवार हो और जिसमें इस विशाल देश में रहनेवाली सब जातियों एवं श्रेणियों का प्रतिनिधित्व हो। इसका आरम्भ इस आशा और विश्वास को लेकर हुआ था कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञता और ब्रिटिश-सरकार समयानुसार ऊँचे उठेंगे और ऐसी संस्थाओं की अस्थापना करेंगे जो सचमुच प्रातिनिधिक हों और जिनसे भारतीय जनता को भारत के हित की दृष्टि से भारत का शासन करने का अधिकार मिले। कांग्रेस का प्रारम्भिक इतिहास इस श्रद्धा-युक्त विश्वास के निदर्शक प्रस्तावों और भाषणों से ही भरा हुआ है। कांग्रेस की जो मांगें हैं वे भी ऐसे प्रस्तावों के ही रूप में हैं, जिनमें यह सुझाया गया है कि क्या तो सुधार होने चाहिएँ और कौनसी आपत्तिजनक कार्रवाइयां रद होनी चाहिएँ; और उन सब का आधार यह आशा ही रही है, कि यदि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट को भारत की इस स्थिति का तथा भारतीयों की इच्छा का भलीभांति पता लग जाय तो वे गलतियों को दुरुस्त करके अन्त में हिन्दुस्तान को स्वशासन की वेशकीमत वखशीश दे देंगे। लेकिन हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड में ब्रिटिश-सरकार ने जो कार्रवाइयां कीं उनसे यह आशा और विश्वास धीरे-धीरे पर सम्पूर्ण रूप में नष्ट हो चुके हैं। ज्यों-ज्यों हमारी राष्ट्रीय जागृति वढ़ती गई त्यों-त्यों ब्रिटिश-सरकार का रुख भी कठोर-से-कठोर होता गया। ब्रिटिश-शासन की सदिच्छाओं पर प्रारम्भ में हमारा जो विश्वास था उसमें लॉर्ड कर्जन के, जिन्होंने वंगाला को विभक्त कर दिया था, शासनकाल में धक्का लगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के विरुद्ध जो महान् आन्दोलन हुआ वह सर्व-साधारण में उठती हुई राष्ट्रीय-जागृति की लहर का ही द्योतक था, जोकि वीसवीं सदी के आरम्भ में रूस पर जापान की विजय जैसी विश्वव्यापी घटनाओं से कुछ कम

अपने अधिवेशन में, कांग्रेस ने अपना लक्ष्य बदलकर शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से पूर्ण स्वराज (पूर्ण स्वाधीनता) की प्राप्ति कर दिया और १९३० के आरम्भ में अनैतिक कानूनों की सविनय-अवज्ञा तथा कर-बन्दी का आन्दोलन संगठित किया। इंग्लैण्ड की सरकार ने एक ओर तो लन्दन में एक परिषद् का आयोजन किया, जिसमें भारत के लिए शासन-विधान बनाने के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए कुछ हिन्दुस्तानियों को नामजद किया गया, और दूसरी ओर भारत में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन को कुचलने के लिए अनेक अत्यन्त भीषण आर्डिनेन्सों-सहित दमनकारी उपाय अख्तियार किये गये। मार्च १९३१ में सरकार की ओर से वाइसराय लॉर्ड अर्विन और कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी के बीच एक समझौता हुआ, जिसके फल-स्वरूप सविनय-अवज्ञा स्थगित कर दी गई और १९३१ के आखिरी दिनों में महात्मा गांधी लन्दन में होनेवाली गोलमेज-परिषद् में शामिल हुए। लेकिन, जैसा कि खयाल था, इस परिषद् से कोई नतीजा हासिल न हुआ और १९३२ की शुरुआत में ही कांग्रेस को फिर से आन्दोलन शुरू कर देना पड़ा, जो १९३४ तक चलता रहा। १९३४ में वह फिर स्थगित कर दिया गया। १९३० और १९३२ इन दोनों बार के आन्दोलनों में हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे तक जेलों में गये, लाठी-प्रहार तथा अन्य प्रकार के कष्टों को उन्होंने सहा, और अपनी सम्पत्ति का नुकसान भी बर्दाश्त किया। बहुत-से, सरकारी सेना-द्वारा भीड़ पर चलाई गई गोलियों के कारण, मारे भी गये। सत्याग्रहियों ने इस अवसर पर अपने संगठन और कष्ट-सहन की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया और भारी-से-भारी उत्तेजनाओं के बीच भी, कुल मिलाकर, पूरी तरह अहिंसक ही रहे। कांग्रेस-संगठन ने सरकार के भारी आक्रमण के बावजूद कायम रहकर सिद्ध कर दिया कि वह निर्जीव नहीं है और अपने को समयानुकूल बनाने की उसमें पर्याप्त क्षमता है। यह ठीक है कि देश का जो लक्ष्य है वह पूर्ण स्वराज अभी हमें प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देश इस अग्नि-परीक्षा में प्रशंसनीय रूप से पार उतरा है।

करांची के अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सब भारतवासियों को उनके कुछ मौलिक अधिकारों का आश्वासन दिया है और देश के सामने एक आर्थिक एवं सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जन-साधारण के शोषण का अन्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राजनैतिक स्वतंत्रता में भूखों मरनेवाले करोड़ों लोगों की वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता का भी समावेश हो, और भाषण, सम्मिलन, जान-माल, धर्म तथा

अन्तरात्मा के आदेश आदि सम्बन्धी स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर दी गई है। यह भी निर्दिष्ट कर दिया गया है कि कल-कारखानों में काम करनेवालों के लिए काम की स्वास्थ्यप्रद परिस्थिति, काम के मर्यादित घण्टे, आपसी झगड़ों के फैसले के लिए उपयुक्त संगठन और बुढ़ापे, बीमारी व बेकारी के आर्थिक संकटों से संरक्षण तथा मजदूर-संघ बनाने के उनके अधिकार को कायम रखने के रूप में उनके हितों का खयाल रक्खा जायगा। किसानों को इसने आश्वासन दिया है कि यह लगान-मालगुजारी में उपयुक्त कमी कराकर और अनुत्पादक जमीनों की लगान-मालगुजारी माफ कराकर तथा छोटी-छोटी जमीनों के मालिकों को उस कमी के कारण जो नुकसान होगा उसके हिसाब से उचित और न्याय्य छूट की सहायता देकर यह उनके खेती-सम्बन्धी भार को हलका करेगी। खेती-बाड़ी से होनेवाली आमदनी पर, उसके एक उचित न्यूनतम परिमाण से ऊपर, इसने क्रमागत कर लगाने की भी व्यवस्था की है। साथ ही एक निश्चित रकम से अधिक आमदनी-वाली सम्पत्ति पर उत्तरोत्तर बढ़ता जानेवाला विरासत का कर लगाने, फौजी व मुल्की शासन के खर्चे में भारी कमी करने और सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह ५००) महीने से ज्यादा न रखने के लिए कहा है। इसके अलावा एक आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें विदेशी कपड़े का बहिष्कार, देशी उद्योग-धन्धों का संरक्षण, शराब तथा अन्य नशीली चीजों का निषेध, बड़े-बड़े उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण, काश्तकारों का कर्जदारी से उद्धार, मुद्रा और विनिमय की नीति का देश के हित की दृष्टि से संचालन और राष्ट्र-रक्षा के लिए नागरिकों को सैनिक शिक्षण देने का निर्देश है।

कांग्रेस के अन्तिम अधिवेशन में, जोकि अक्तूबर १९३४ में बम्बई में हुआ था, कौंसिल-प्रवेश की नीति को स्वीकार कर लिया गया है और देश के सामने रचनात्मक कार्यक्रम रक्खा गया है जिसमें हाथ की कताई-बुनाई को प्रोत्साहन एवं पुनर्जीवन देने, उपयोगी ग्रामीण तथा अन्य छोटी दस्तकारियों (गृह-उद्योगों) की उन्नति करने, आर्थिक, शिक्षणात्मक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से ग्रामीण-जीवन का पुनर्निर्माण करने, अस्पृश्यता का नाश करने, अन्तर्जातीय एकता की वृद्धि करने, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, राष्ट्रीय-शिक्षा, वयस्क स्त्री-पुरुषों में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करने, कल-कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों व खेती करनेवाले किसानों का संगठन करने और कांग्रेस-संगठन को मजबूत बनाने की बातें भी हैं। कांग्रेस-विधान का संशोधन करके, नये विधान में, प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर

कांग्रेस-रजिस्टर में दर्ज जितने सदस्य हों उनके अनुपातानुसार कर दी गई है; साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया है कि कांग्रेस-कमिटियों के सब निर्वाचित-सदस्य शारीरिक श्रम करने और आदतन खादी पहननेवाले हों।

इस प्रकार कांग्रेस कदम-ब-कदम आगे बढ़ती गई है और राष्ट्रीय हलचल के हरेक क्षेत्र में उसने अपना प्रवेश कर लिया है। इस समय वह रचनात्मक कार्य में लगी हुई है जिससे न केवल जन-साधारण की माली हालत ही ठीक होगी, बल्कि उसको पूरा करने से उनमें वह आत्म-विश्वास भी जागृत होगा जिससे वे पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। एक छोटी संस्था के रूप में आरम्भ होकर अब यह इतनी प्रशस्त हो गई है कि सारे देश में इसकी शाखायें हैं और देश के सर्व-साधारण का विश्वास इसको प्राप्त है। इसके आदेश पर देश के सब श्रेणियों के लोगों ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बहुत बड़े पैमाने पर बलिदान किया है; और इसके कार्यों व इसकी सफलताओं का राष्ट्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ऐसा संगठन है जो हमारे राष्ट्र की एक महान् थाती है, जिसकी रक्षा और वृद्धि करना हरेक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य होना चाहिए। स्वतंत्रता की उस लड़ाई में, जो अभी भी हमें लड़ना बाकी है, निश्चय ही यह अधिक-से-अधिक भाग लेती रहेगी। यह समय सुस्ताने या विश्राम करने का नहीं है। अभी तो बहुत-सा काम करने को बाकी पड़ा है, जिसके लिए बहुत सब्र के साथ तैयारी करने, लगातार बलिदान करने और अटूट दृढ़-निश्चय की आवश्यकता है। पूर्ण-स्वराज्य से कुछ कम पर हम हर्गिज सन्तोष न करेंगे। आइए, उन सब जाने-बेजाने स्त्री-पुरुष और बच्चों के आगे हम अपना सिर झुकायें, जिन्होंने इसके लिए अपनी जान तक कुरबान कर दी है, तरह-तरह के संकट और अत्याचार सहे हैं, और जो अपनी मातृभूमि से प्रेम करने के कारण अब भी कष्ट पा रहे हैं।

साथ ही, कृतज्ञता और सन्मान के साथ, हमें उन लोगों की सेवाओं का भी स्मरण करना चाहिए, जिन्होंने कि इस शक्तिशाली संस्था का बीजारोपण किया और अपने निस्स्वार्थ परिश्रम एवं अपनी कुरबानियों से इसका पोषण किया। पचास साल पहले जो छोटा-सा बीज बोया गया था वह अब बढ़कर एक मजबूत वटवृक्ष बन गया है, जिसकी शाखा-प्रशाखायें इस विशाल देश-भर में फैल गई हैं और अब अगणित नर-नारियों की कुरबानियों के रूप में उसमें कलियां फूटी हैं। अब जो लोग बाकी बचे हैं उनका फर्ज है कि वे अपनी सेवा और कुरबानियों से इसका पोषण करें, ताकि प्रकृति ने जिस उद्देश से इसको बनाया है वह पूर्ण हो, इसमें फल लगें और उनसे भारतवर्ष स्वतंत्र एवं समृद्ध देश बन जाय।

आगे के पृष्ठों में कांग्रेस की प्रगति का वर्णन मिलेगा। कांग्रेसी मामलों और व्यक्तियों के बारे में लेखक का ज्ञान और अनुभव बहुत विस्तृत है। स्वयं उन्होंने भी, उसकी प्रगति के पिछले हिस्से में, कुछ कम भाग नहीं लिया है। लेकिन वह एक दूर बैठे हुए इतिहासकार नहीं हैं, जो खाली घटनाओं का ज्यों-का-त्यों उल्लेख करके निर्जीव तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालते। उन्होंने तो यह अपनी आंखों देखा है और इसके लिए खुद काम भी किया है। खाली जानकारी से ही उन्होंने काम नहीं किया बल्कि अपनी श्रद्धा का भी उपयोग किया है। अतएव उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं और जो मत व्यक्त किये हैं, वे इनके अपने हैं; उन्हें हर बात में कांग्रेस की कार्य-समिति के, जो कि इस पुस्तक को प्रकाशित करके दुनिया के सामने पेश कर रही है, निष्कर्ष और मत न समझ लेना चाहिए। फिर भी, आशा है, इसमें घटनाओं और तथ्यों का विश्वसनीय उल्लेख है और वर्तमानकालीन इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी होगी।

—राजेन्द्र प्रसाद

१२ दिसम्बर, १९३५]

भाग ४

पूर्ण स्वाधीनता का युग—१९१९ से १९३५

भाग ५

युद्ध-काल

भाग ६

पुनस्संगठन-काल

परिशिष्ट

: १ :

कांग्रेस का जन्म

कांग्रेस का इतिहास सच पूछो तो उस लड़ाई का इतिहास है जो हिन्दुस्तान ने अपनी आजादी के लिए लड़ी है। कई सदियों से भारतीय राष्ट्र विदेशियों का गुलाम बना हुआ है। इस समय वह जिस गुलामी में फँसा हुआ है उसका आरम्भ भारतवर्ष में एक व्यापारी-कम्पनी के पदार्पण करने के साथ हुआ है; और उस गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए पिछले ५० सालों से कांग्रेस प्रयत्न करती चली आ रही है।

पूर्व परिस्थिति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनैतिक दौर-दौरा भारत में कोई सौ वर्षों तक रहा। इसी बीच उसने भारत में बड़े-बड़े हिस्सों पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह अब एक राजशक्ति बन गई। १७७२ के बाद ब्रिटिश-पार्लमेण्ट समय-समय पर उसके कामों की जांच-पड़ताल करने लगी और जब-जब उसको नया चार्टर (सनद) दिया जाता तब-तब पहले ब्रिटिश-सरकार की तरफ से उसके कामों की जांच कर ली जाती थी। चूंकि उसका व्यापारिक कार्य पीछे पड़ता जा रहा था, यह जांच-पड़ताल और भी बारीकी के साथ होने लगी। परन्तु इससे यह खयाल करना तो ठीक न होगा कि उसके काम पर कोई गहरी देख-रेख की जाती रही हो। हां, ऐसे ब्रिटिश लोग जरूर थे जो भारतीय प्रश्नों का गहराई के साथ अध्ययन करते थे। वे कम्पनी के कार्य और कार्यक्रम को गौर से और आंखें खोलकर देखा करते थे और उसे पार्लमेण्ट की निगाह से गुजारने में किसी तरह शिथिल नहीं रहते थे। १८ वीं सदी के चौथे चरण में एडमण्ड बर्क, शेरिडन और फॉक्स नामक सज्जनों ने इस विषय में बड़ी दिलचस्पी ली। उससे कम्पनी के एजेण्टों के कारनामों की ओर लोगों का ध्यान खिंच गया। हालां कि वारन् हेस्टिंग्स पर चलाये गये मुकदमे का

उद्देश पूरा न हुआ, फिर भी उसने कम्पनी के अन्याय-अत्याचार को लोगों की निगाह में ला दिया। नया चार्टर देने के पहले जव-जव जांच-पड़ताल की गई तव-तव उसके फल-स्वरूप दूरगामी परिणाम लानेवाले कुछ-न-कुछ सिद्धान्तों का निरूपण तो ज़रूर किया गया, परन्तु वे सिर्फ कागज में ही लिखे रह जाते थे। कई वार यह नीति निश्चित की गई कि कम्पनी के एजेण्ट अपने-अपने इलाकों की सीमा वढ़ाने की कोशिश न करें, परन्तु हरवार कोई-न-कोई ऐसा मौका आ जाता था या पैदा कर लिया जाता था कि जिससे इस आदेश का पालन न होता था और उनके इलाके की सीमा वढ़ती ही चली गई। यहां उस इतिहास में प्रवेश करने की जरूरत नहीं है, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से भारत को हथियाते समय की गई दगावाजियों और काली करतूतों से भरा हुआ है, जिसमें क्षुद्र और लोभी मानव प्रकृति ने अपना रंग खूव दिखाया है और जिसमें सन्धियां और शर्तनामे कदम-कदम पर तोड़े गये हैं; और न यहां इसी वात की जरूरत है कि हिन्दुस्तानियों ने जो आपस में दगावाजियां और नमकहरामियां की हैं उनका वर्णन किया जाय; न कम्पनी के एजेण्टों के द्वारा काम में लाये गये उन साधनों और तदवीरों पर विचार करने की जरूरत है, जिनके वल पर उन्होंने न सिर्फ़ कम्पनी और उसके डाइरेक्टरों को मालामाल कर दिया वल्कि खुद अपनी जेवें भी भर लीं। सिर्फ इतना ही कह देना काफी होगा कि उन्होंने अटूट धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक वड़ी पूंजी का काम दिया और जिसके वल पर इंग्लैंड, स्टीम एंजिन चलाने में तथा १६ वीं सदी में दुनिया में अपने औद्योगिक प्रभुत्व को स्थापित करने में सफल हो सका।

१७७४ में रेग्युलेटिंग एक्ट पास हुआ और कम्पनी के कोर्ट ऑफ् डाइरेक्टर्स (संचालक-सभा) के ऊपर वोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (नियामक मण्डल) और कौन्सिल-सहित एक गवर्नर-जनरल की नियुक्ति हुई। तव गोया ब्रिटिश-पार्लमेण्ट ने पहले-पहल हिन्दुस्तानी इलाकों के शासन की कुछ जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। धीरे-धीरे यह नियंत्रण वढ़ता गया और १७८५ में एक दूसरा कानून पास हुआ। १७६३, १८१३, १८३३ और १८५३ में तहकीकात करने के वाद नये चार्टर दिये गये। १८३३ में एक कानून वनाया गया कि "पूर्वोक्त प्रदेशों के कोई भी निवासी या वादशाह के कोई प्रजाजन, जो वहां रहते हों, महज अपने धर्म, जन्मस्थान, वंश या वर्ण के कारण कम्पनी में किसी स्थान, पद या नौकरी से वंचित न रक्खे जायँगे" और कोर्ट ऑफ् डाइरेक्टर्स ने इसके महत्त्व को इस प्रकार समझाया :—

"इस धारा का आशय कोर्ट यह मानती है कि ब्रिटिश भारत में कोई शासन

करनेवाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दूसरी कुछ भी कसौटियां रक्खी जायें, जाति या धर्म का कोई भेद-भाव नहीं रक्खा जायगा। बादशाह के प्रजाजन में से किसी को, फिर वे चाहे भारतीय, ब्रिटिश या मिश्र जाति के हों, बेसनदी नौकरियों से वंचित नहीं रक्खा जायगा और न वे सनदी नौकरियों से ही वंचित रक्खे जायेंगे, यदि दूसरी बातों में वे उनके योग्य हों।"

उसी कानून के द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापार करने का अधिकार उड़ा दिया गया और इसके बाद से वह एक पूरी शासक-सत्ता के रूप में सामने आ गई।

इसी समय भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश करने या न करने के विषय में एक चर्चा उठ खड़ी हुई। हिन्दुस्तानियों में राजा राममोहन राय और अंग्रेजों में मेकाले अंग्रेजी शिक्षा देने के जबरदस्त समर्थक थे। अन्त में भारतीय भाषाओं और साहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के पक्ष में निर्णय हुआ और उस शिक्षा-पद्धति की नींव पड़ी जो कि भारत में आजतक प्रचलित है।

उन दिनों अंग्रेजों के द्वारा चलाये अखबारों के सिवा कोई देशी अखबार न थे। इनमें भी बाज-बाज अखबारवालों को देश निकाला तक भुगतना पड़ा था। गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बेन्टिंक का शासन-काल पूर्वोक्त सुधारों के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। उनकी नीति अखबारों के लिए भी नरम थी। उनके उत्तराधिकारी सर चार्ल्स मेट्कॉफ ने अखबारों पर से पाबन्दियां उठा लीं। फिर, लॉर्ड लिटन के वाइसराय होने तक अखबार इसी आजादी में रहे—सिर्फ़ १८५७ के गदर के जमाने को छोड़कर।

लॉर्ड डलहौजी की नीति व गदर

१८३३ और ५३ के दर्म्यान पंजाब और सिंध जीत लिये गये और लॉर्ड डलहौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका बहुत बढ़ा दिया, जो कि ब्रिटिश सरकार के कब्जे में आजतक चला आ रहा है। लॉर्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओं की रियासतें जब्त कर लीं तथा अवध की रियासत भी शासन ठीक न होने का सबब बताकर ब्रिटिश भारत में मिला ली। इसके सिवा आर्थिक शोषण भी जारी था, जिससे लोग दिन-दिन कंगाल होते गये। इधर रियासतें छिन गईं और उनकी जगह विदेशी हुकूमत कायम हो गई। यह बात लोगों को चुभ रही थी और वे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि १८५७ में उन्होंने विदेशी हुकूमत के जुए को फेंक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। हां, इस बगावत में कुछ धार्मिक भाव भी जरूर था। परन्तु चूंकि एक ओर

दिल्ली के नामधारी सम्राट्, जो कि अकवर और औरंगजेब के वंशज थे, और दूसरी ओर पूना के पेशवाओं के वंशज, इन दोनों के झण्डे के नीचे जमा होकर लोग भारतीय राज्य स्थापित करना चाहते थे, इससे यह प्रतीत होता है कि यह गदर १७५७ के पलासी-युद्ध के वाद सौ वर्षों तक भारत में जो कुछ घटनाएँ घटती रहीं, उनके परिणाम का द्योतक था। यही नहीं वल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव-हृदय की इस प्राकृतिक अभिलाषा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगों के द्वारा शासित हों, दूसरों के द्वारा हर्गिज नहीं। हालांकि गदर वेकार गया, परन्तु उसके साथ ही ईस्ट इंडिया कम्पनी भी तिरोहित हो गई और भारत-सरकार का शासन-सूत्र सीधा व्रिटिश ताज अर्थात् व्रिटिश-पार्लमेण्ट के हाथों में आ गया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिससे शान्ति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ। जो कुछ अशान्ति वच रही, अव उसका कोई सहारा वाकी नहीं रह गया था। राजा और खास करके नवाव विलकुल तहस-नहस हो चुके थे। कोई नामधारी व्यक्ति भी ऐसा नहीं रह गया था कि जिसके आसपास लोग जमा हो जाते और आगे १८५७ की तरह कोई उत्पात खड़ा कर देते। अव लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने काम-काज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।

व्रिटिश-पार्लमेण्ट के हाथ में शासन-सूत्र चले जाने के वाद भी भारत-सरकार की गति-विधि पहले की ही तरह जारी रही; हां, एक वात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक विला खरखशा जारी रहा। इस वीच कोई युद्ध वगैरा नहीं हुआ।

परन्तु इसके यह मानी नहीं कि कोई रगड़ा-झगड़ा और कोई अशान्ति थी ही नहीं। व्रिटिश-शासन में वड़ी वड़ी खरावियां थीं जिन्हें कि मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अफ़सर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हों।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, १८३३ के कानून के अनुसार, भारतवासी उन तमाम जगहों पर लेने के काविल करार दिये गये, जिनके लिए वे मुस्तहक समझे जाते थे। १८५३ में, जवकि चार्टर विचाराधीन था, पार्लमेण्ट में यह वात खुले आम कही जाती थी कि १८३३ के कानून ने हालांकि भारतवासियों को नौकरियां देने का रास्ता खुला कर दिया है, फिर भी उनको अभी तक वे कोई जगह नहीं दी गई हैं जो कि इस कानून के पहले उन्हें नहीं दी जा सकती थीं। जवकि १८५३ में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें जारी की गईं तव इस वात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि इससे हिन्दुस्तानियों के रास्ते में वड़ी रुकावटें पेश आयेंगी; क्योंकि उनके लिये इंग्लैंड में

आकर अंग्रेज लड़कों के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में बाजी मार ले जाना असम्भव होगा। और यह भी उन नौकरियों के लिए जो आमतौर पर बहुत दुर्लभ थीं। परन्तु इस बाधा के रहते हुए भी आखिर कुछ हिन्दुस्तानी समुद्र-पार गये ही और उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। इतने में ही तकदीर से लॉर्ड सेल्सबरी ने परीक्षा में बैठने की उम्र कम कर दी! इससे हिन्दुस्तानियों को लेने के देने पड़ गये। क्योंकि उधर वे अंग्रेजों की सहायता से हिन्दुस्तान और इंग्लैंड में साथ-साथ परीक्षा ली जाने की पुकार मचा रहे थे, इधर लॉर्ड लिटन ने देशी-भाषा के अखबारों का मुंह बन्द कर दिया, जो कि मेटकॉफ के समय से लेकर अबतक अंग्रेजी अखबारों के साथ-साथ आजादी का सुख अनुभव कर रहे थे। उन्होंने एक शस्त्र-कानून भी पास किया, जिसके अनुसार न केवल भारतवासियों के हथियार रखने के अधिकार को छीन लिया बल्कि हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजों के बीच एक और जहरीला भेद-भाव पैदा कर दिया।

फिर अकालों का भी दौर-दौरा होता रहा। अनाज की कमी उतनी नहीं थी जितने कि उसे खरीदने के साधन कम थे। इन अकालों से देश में हजारों-लाखों आदमी काल के गाल हो गये। इसके अलावा अफगान-युद्ध हुआ, जिसमें बड़ा खर्च उठाना पड़ा। इधर तो एक ओर अकाल और मौत का दौर-दौरा हो रहा था, उधर दिल्ली में एक-दरबार करने की तजवीज मुनासिब समझी गई, जिसमें महारानी विक्टोरिया ने भारत-सम्राज्ञी की उपाधि धारण की।

ह्यूम साहब की दूर दृष्टि

किसान भी पीड़ित थे। उनके कुछ कष्टों का वर्णन मि० ह्यूम ने सर ऑकलैंड कोलविन को लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र में किया है। उनकी गहरी शिकायतें ये थीं—(अ) दीवानी अदालतें असुविधाजनक और खर्चीली हैं। (आ) पुलिस घूसखोर है और बड़ी ज्यादतियां करती है। (इ) तरीका लगान सख्त है। (ई) शस्त्र और जंगल कानून का अमल चुभनेवाला है। इसलिये लोगों ने प्रार्थनायें कीं कि (क) न्याय सस्ता, निश्चित और जल्दी मिला करे, (ख) पुलिस ऐसी हो कि जिसे वे अपना दोस्त और रक्षक समझ सकें, (ग) तरीका लगान ज़्यादा लचीला हो और किसानों के साथ सहानुभूति रखकर बनाया गया हो, (घ) शस्त्र और जंगल के कानूनों का अमल कम सख्ती से किया जाय। परन्तु ये मंजूर नहीं हुई। सन् १८८० की शुरुआत के लगभग दरअसल ऐसी हालत थी। यहां तक कि सर विलियम वेडरबर्न कहते हैं कि नौकरशाही ने न केवल नई सुविधाओं के रोकने में ही अपनी तरफ से कोर-कसर नहीं रक्खी,

वल्कि जव-जव मौका मिला पिछले विशेषाधिकार भी छीन लिये गये; जैसे कि प्रेस की स्वाधीनता, सभायें करने का अधिकार, म्युनिसिपल-स्वराज्य और विश्व-विद्यालयों की स्वतंत्रता। सर विलियम लिखते ह—"एक तो ये अशुभ और प्रतिगामी कानून, दूसरे रूस के जैसा पुलिस का दमन। इससे लॉर्ड लिटन के समय में भारत में कोई क्रान्तिकारी विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।" इतना ही नहीं, वल्कि राजनैतिक अशान्ति अन्दर-ही-अन्दर वढ़ रही है, इसका अकाट्य प्रमाण मि० ह्यूम के पास था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगीं, जिनमें भिन्न-भिन्न जिलों के अन्दर वगावत के भाव फैलने का वर्णन था। भिन्न-भिन्न गुरुओं के कुछ शिष्यों का धर्माचार्यों और महन्तों से जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसके आधार पर वे तैयार की गई थीं। यह हाल है लॉर्ड लिटन के शासन के अन्त समय का, अर्थात् पिछली सदी के ७० से लेकर ८० साल के वीच का। ये रिपोर्टें जिला, तहसील, सव-डिवीज़न के अनुसार तैयार की गई थीं और शहर, कस्वे और गांव भी उनमें शामिल थे। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई सुसंगठित विद्रोह जल्दी होनेवाला था, वल्कि यह कि लोगों में निराशा छाई हुई थी, वे कुछ-न-कुछ कर गुजरना चाहते थे, जिससे सिर्फ़ इतना ही अभिप्राय है कि संभव है "लोग जगह जगह हथियार लेकर टूट पड़ें और जिनसे वे नफरत करते थे उनकी खून-खरावी करने लगें, सेठ-साहूकारों के यहां चोरी और डाके डालने लगें और वाजारों में लूट मार करने लगें।" यों तो ये कार्य सिर्फ कानून की खिलाफवर्जी करनेवाले हैं। परन्तु यदि आवश्यक वल और संगठन का सहारा मिल जाय तो किसी भी दिन एक राष्ट्रीय वगावत के रूप में परिणत हो सकते हैं। वम्वई इलाके के दक्षिण प्रान्त में किसानों के ऐसे दंगे हो भी चुके थे। यह देखकर ह्यूम साहव ने इस अशान्ति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूंढ़ निकाला, जो कि हमारी यह वर्तमान कांग्रेस है। इसी समय उनके दिमाग़ में यह खयाल आया कि हिन्दुस्तानियों की एक राष्ट्रीय सभा कायम की जाय और उन्होंने १ मार्च १८८३ ईस्वी को कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक पत्र लिखा, जो कि दिल को हिला देनेवाला था। उसमें उन्होंने ५० ऐसे आदमियों की मांग की थी जो, भले, सच्चे, निःस्वार्थ, आत्म-संयमी, नैतिक साहस रखनेवाले और दूसरों का हित करने की तीव्र भावना रखनेवाले हों। "यदि सिर्फ़ ५० भले और सच्चे आदमी संस्थापक के रूप में मिल जायँ तो सभा स्थापित हो सकती है और आगे का काम आसान हो सकता है।" और इन लोगों के सामने आदर्श क्या पेश किया गया? यह कि—"सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा से परे हों, और उनका यह सिद्धान्त-वचन

हो, कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसीको तुम्हारा सेवक होने दो।" पत्र में उन्होंने गोल-मोल बातें नहीं कीं; बल्कि साफ़ शब्दों में कह दिया, कि "यदि आप अपना सुख चैन नहीं छोड़ सकते तो कम से कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है, और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच मौजूदा सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है।"

इस स्मरणीय पत्र का अंतिम भाग इस प्रकार है :—

"और यदि देश के विचारशील नेता भी या तो सब-के-सब ऐसे निर्बल जीव हैं, या अपनी स्वार्थ-साधना में ही इतने निमग्न हैं कि अपने देश के लिए कोई साहस-पूर्ण कार्य नहीं कर सकते, तब कहना होगा कि वे सही और वाजिब तौरपर ही दबाकर रक्खे और पद-दलित किये गये हैं; क्योंकि वे इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के योग्य ही नहीं थे। प्रत्येक राष्ट्र ठीक-ठीक वैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसके कि योग्य वह होता है। यदि आप, जो देश के चुनीदा लोग हैं, जो बहुत ही उच्च शिक्षा-प्राप्त हैं, अपने सुख-चैन और स्वार्थ-पूर्ण उद्देशों को नहीं छोड़ सकते और अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लड़ने का निश्चय नहीं कर सकते, जिससे कि आपके देशवासियों को अधिक निष्पक्ष शासन का लाभ हो, वे अपने घर का प्रबन्ध करने में अधिकाधिक हिस्सा लें, तब मानना होगा कि हम, जोकि आपके मित्र हैं, गलती पर हैं, और जो हमारे विरोधी हैं उनका कहना ही सही है; तब मानना होगा कि लॉर्ड रिपन की आपके हित के सम्बन्ध में जो उच्च आकांक्षायें हैं, वे निष्फल होंगी और वे हवाई ठहरेंगी; तब कहना होगा कि प्रगति की तमाम आशायें अब नष्ट समझनी चाहिए और हिन्दुस्तान सचमुच उसकी मौजूदा सरकार से बेहतर शासन प्राप्त करना न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है। और यदि यही बात सच है तो फिर न तो आपको इस बात पर मुंह ही बनाना चाहिए, न शिकायत ही करनी चाहिए, कि हम जंजीरों में जकड़ दिए गए हैं और हमारे साथ बच्चे-कासा व्यवहार किया जाता है; और न आपको इसके विरोध में कोई दल ही खड़ा करना चाहिए; क्योंकि आप अपनेको इसी लायक साबित करेंगे। जो मनुष्य होते हैं वे जानते हैं कि काम कैसे करना चाहिए, इसलिए अब से आप इस बात की शिकायत न कीजिएगा कि बड़े-बड़े ओहदों पर आपकी बनिस्बत अंग्रेजों को क्यों तरजीह दी जाती है; क्योंकि आपमें वह सार्वजनिक सेवा का भाव नहीं है, वह उच्च प्रकार की परोपकार-भावना नहीं है, जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशो-आराम को छोटा बना देती है; वह देशभक्ति का भाव नहीं है जिसने कि अंग्रेजों को वैसा बना दिया है जैसे कि वे आज हैं। और मैं कहूँगा कि वे ठीक ही आपकी जगह

तरजीह पाते हैं और उनका लाजिमी तौर पर आपका शासक वन जाना भी ठीक है; वल्कि वे आगे भी आपके अफसर वने रहेंगे, और आपके कन्धों पर रक्खा यह जुआ तवतक दुखदायी न होगा जवतक कि आप इस चिर-सत्य को अनुभव नहीं कर लेते और इसके अनुसार चलने की तैयारी नहीं कर लेते कि **आत्म-बलिदान और निःस्वार्थता ही सुख और स्वातंत्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक हैं।"**

पहले के महान् व्यक्ति और संस्थाएँ

कांग्रेस के जन्म से सम्वन्ध रखनेवाली तफ़सीली वातों का वयान करने के पहले, यदि हम कांग्रेस-काल के पहले के उन वड़े-वूढ़े लोगों का नाम-स्मरण कर लें तो अनुचित नहीं होगा, जिनके क्रिया-कलाप ने एक तरह से इस देश में सार्वजनिक जीवन की वुनियाद डाली है।

सवसे पहले वंगाल के व्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन का नाम आता है। १८५१ में उसकी स्थापना की गई थी और यह वह संस्था है जिसके नाम की छाया में डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोष जैसे व्यक्ति वीसों साल तक काम करते रहे। यह एसोसिएशन खुद भी कोई पचास साल तक देश में एक सजीव शक्ति वना रहा। वम्वई में सार्वजनिक कार्य की संस्था थी वाम्वे एसोसियेशन। वंगाल के एसोसिएशन के मुकावले में वह थोड़े समय रहा, परन्तु कार्य उसने भी उसी तरह जोर-शोर से किया। उसके नेता थे—सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फर्दूनजी। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी और जगन्नाथ शंकर सेठ ने उसकी स्थापना की थी; परन्तु वाद में पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण में ईस्ट-इण्डिया एसोसिएशन ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। मदरास में सार्वजनिक सेवा की वास्तविक शुरुआत 'हिन्दू' के द्वारा हुई, जिसके कि संस्थापकों में एम० वीर राघवाचार्य, माननीय रंगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और एन० सुव्वाराव पन्तुलु जैसे गण्य-मान्य पुरुष थे। महाराष्ट्र में पूना की सार्वजनिक सभा का जन्म प्रायः उसी समय हुआ जव कि 'हिन्दू' का हुआ था और उसके द्वारा राववहादुर नुलकर और श्री चिपलूणकर जैसे प्रसिद्ध पुरुष सार्वजनिक कार्य करते रहे।

वंगाल में, १८७६ में, इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना हुई, जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्रनाथ वनर्जी थे और जिसके पहले मंत्री थे आनन्दमोहन वसु। यह ध्यान में रखना होगा कि इस कांग्रेस-पूर्व-काल में भी यद्यपि सार्वजनिक जीवन सुसंगठित नहीं हो पाया था तथापि उसका असर अधिकारियों पर होने लगा था। हां, अखवार उस जीवन का एक जोरदार हिस्सा था। १८५७ में कोई ४७५ अखवार थे, जिनमें

से अधिकांश प्रान्तीय भाषाओं में निकलते थे। इन्हीं दिनों देश के सुदैव से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सिविल सर्विस से मुक्त हो चुके थे। उन्होंने उत्तरी भारत के पंजाब और युक्त-प्रान्त में राजनैतिक यात्रा की। वह १८७७ के प्रसिद्ध दिल्ली दरबार में भी सम्मिलित हुए थे और वहां देश के राजा-महाराजाओं और अग्रगण्य लोगों से मिले थे। यह माना जाता है कि उसी दरबार में देश के राजा-महाराजाओं और गण्य-मान्य लोगों को एक जगह एकत्र देखकर ही पहले-पहल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मन में यह प्रेरणा उठी कि एक देश-व्यापी राजनैतिक संगठन बनाया जाय। १८७८ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बम्बई और मदरास प्रान्त की यात्रा की, जिसका उद्देश यह था कि लॉर्ड सेल्सबरी ने सिविल सर्विस की परीक्षा की उम्र घटाकर जो १९ साल की कर दी थी उसके खिलाफ लोकमत जाग्रत किया जाय और इस विषय पर कामन-सभा में पेश करने के लिए सारे देश की तरफ से एक मेमोरियल तैयार किया जाय।

लॉर्ड रिपन की सहानुभूति

इसी समय लॉर्ड लिटन के प्रतिगामी शासन की शुरुआत होती है। उनके जमाने में (१८७८) वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बना, अफगान-युद्ध हुआ, बड़ा खर्चीला दरबार किया गया और १८७७ में ही कपास-आयात-कर उठा दिया गया। लॉर्ड लिटन के बाद लॉर्ड रिपन का दौर हुआ, जिन्होंने अफगानिस्तान के अमीर के साथ सुलह करके, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद करके, स्थानिक स्वराज्य का आरम्भ करके और इलबर्ट बिल को उपस्थित करके एक नये युग का श्रीगणेश किया। यह आखिरी बिल भारत-सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि० इलबर्ट ने १८८३ में उपस्थित किया था, जिसका उद्देश यह था कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटों पर से यह रुकावट उठा ली जाय जिसके द्वारा वे यूरोपियन और अमेरिकन अपराधियों के मुकदमे फ़ैसल नहीं कर सकते थे। इस पर गोरे लोग इतने बिगड़े कि कुछ लोगों ने तो गवर्नमेन्ट-हाउस के मन्त्रियों को मिलाकर वाइसराय को जहाज पर बिठाकर इंगलैंड भेजने की एक साजिश ही कर डाली। इस साजिश में कलकत्ते के कई लोगों का हाथ था, जिन्होंने यह संकल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढ़ाया तो वे इस साजिश को कामयाब बना कर छोड़ेंगे। नतीजा यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब हटा लिया गया और उसकी जगह यह सिद्धान्त-भर मान लिया गया कि सिर्फ़ जिला-मजिस्ट्रेट और दौरा-जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा। जब लॉर्ड रिपन भारत से बिदा हुए तो देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के लोगों ने उन्हें हार्दिक

विदाई दी। अंग्रेजों के लिए वह एक ईर्ष्या का विषय हो गई थी, किन्तु उससे वहुतेरे लोगों की आंखें भी खुल गई थीं।

राजनीतिक संस्थाएँ

इस विल के सम्बन्ध में गोरे लोगों को जो सफलता मिल गई, उससे हिन्दुस्तानी जाग उठे और उन्होंने वहुत जल्दी इस विल के विरोध का आन्तरिक हेतु पहचान लिया। गोरे यह मनवाना चाहते थे कि हिन्दुस्तान पर गोरी जातियों का प्रभुत्व है और वह सदा रहेगा। इसने भारत के तत्कालीन देश-सेवकों को संगठन के महत्त्व का पाठ पढ़ाया और उन्होंने तुरन्त ही १८८३ में कलकत्ता के अलवर्ट-हॉल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना की, जिसमें सुरेन्द्रनाथ वनर्जी और आनन्दमोहन वसु दोनों उपस्थित थे। इस सभा में सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने अपने आरम्भिक भाषण में खास तौरपर इस वात का जिक्र किया कि किस तरह दिल्ली दरवार ने उनके सामने एक राजनैतिक संस्था, जो कि भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, वनाने का नमूना पेश किया था। इस विषय में वावू अम्विकाचरण मुजुमदार ने अपनी 'दी इण्डियन नेशनल इवाल्युशन' नामक पुस्तक में इस तरह लिखा है—"परिषद् का दृश्य अद्वितीय था। मेरी आंखों के सामने उस समय के तीनों दिन के उत्साह और लगन का हूवहू चित्र आज भी खड़ा है। जव परिषद् खतम होने लगी तो मानों हरेक आदमी को, जो उसमें मौजूद था, एक नई रोशनी और एक अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हो रही थी।" इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई जिससे कि, पादरी जान मुर्डाॅक साहव का मत है, अखिल-भारतीय कांग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा मिली। १८८१ में मदरास-महाजन-सभा की स्थापना हुई और मदरास में प्रान्तीय परिषद् का अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारत में ३१ जनवरी १८८५ को महता, तैलंग और तैयवजी की मशहूर मंडली ने मिलकर वाम्वे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन कायम किया।

पूर्वोक्त वर्णन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि भारतवर्ष मन-ही-मन किसी अखिल-भारतीय संगठन की आवश्यकता का अनुभव करता था। यह तो अभी तक एक रहस्य ही है कि अखिल-भारतीय कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किसके मस्तिष्क से निकली। १८७७ के दरवार या कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अलावा थियोसोफिकल कन्वेन्शन का भी नाम इस विषय में लिया जाता है, जो कि दिसम्वर १८८४ में मदरास में हुआ था। वहां १७ आदमियों की एक खानगी सभा हुई, जिसमें यह कल्पना सोची गई। मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवसर प्राप्त

करन के बाद जो इण्डियन यूनियन कायम की थी वह भी कांग्रेस के जन्म का एक निमित्त बतलाई जाती है। खैर, कोई भी इस कल्पना का मूल उत्पादक हो और कहीं से यह पैदा हुई हो, हम इन नतीजों पर जरूर पहुँचते हैं कि यह कल्पना वातावरण में घूम अवश्य रही थी और ऐसे संगठन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। मि० ए० ओ० ह्यूम ने इसमें सबसे पहले कदम बढ़ाया और २३ मार्च १८८५ में इसके सम्बन्ध में पहला नोटिस जारी किया गया, जिसमें बताया गया था कि अगले दिसम्बर में, पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन का पहला अधिवेशन किया जायगा। इस तरह अबतक जो एक अस्पष्ट कल्पना वातावरण में पंख फटफटा रही थी और जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी जगह के विचारशील भारतवासियों के विचारों को गति दे रही थी उसने अब एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लिया और एक व्यावहारिक कार्यक्रम के रूप में देश के सामने आ गई।

राष्ट्रीय स्वरूप

कांग्रेस के जन्म का कारण केवल ये राजनैतिक शक्तियां और राजनैतिक गुलामी का भाव ही नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस का एक राजनैतिक उद्देश था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करनेवाली संस्था भी थी।

राजा राममोहन राय

कांग्रेस के जन्म से पहले, ५० या इससे भी ज्यादा वर्ष से, भारत में राष्ट्रीय नवयौवन का खमीर उठ रहा था। सच पूछिए तो राष्ट्रीय जीवन यों ठेठ राजा राममोहन राय के काल से लेकर विविध रूपों में परिपक्व हो रहा था। राजा राममोहन राय को हम एक तरह से भारत की राष्ट्रीयता के पैगम्बर और आधुनिक भारत के पिता कह सकते हैं। उनका दर्शन बड़ा विस्तृत और दृष्टि-बिन्दु व्यापक था। यह सच है कि उनके समय में भारत की जो सामाजिक और धार्मिक अवस्था थी, वही उनके सुधार-कार्यों का मुख्य विषय बनी हुई थी, परन्तु उनके देश-वासियों पर जो भारी राजनैतिक अन्याय हो रहे थे और जिनसे देश दुःखी हो रहा था, उनका भी उन्हें पूरा भान था और उन्होंने उनको शीघ्र मिटाने के लिए भगीरथ प्रयत्न भी किया था। राममोहन राय का जन्म १७७६ में हुआ और मृत्यु ब्रिस्टल में १८३३ में। भारत के दो बड़े सुधारों के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है—एक तो सती या सहगमन-प्रथा का मिटाया जाना,

और दूसरा भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचार। लॉर्ड विलियम वेन्टिंक ने, १८३५ में, पश्चिमी शिक्षा-प्रचार के पक्ष में जो निर्णय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की सिफारिश के खिलाफ दिया, उसका वहुत वड़ा कारण यह था कि राजा राममोहन राय खुद पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के अनुरागी और पक्षपाती थे एवं तत्कालीन लोकमत पर उनका वड़ा प्रभाव था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वह इंग्लैंड गये थे। उनमें स्वाधीनता-प्रेम इतना प्रवल था कि जव वह 'केप ऑफ गुडहोप' को पहुँचे तो उन्होंने फ्रांसीसी जहाज पर जाने का आग्रह किया जिसपर कि स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। वह चाहते थे कि उस झण्डे का अभिवादन करें और ज्यों ही उन्हें उस झण्डे के दर्शन हुए उनके मुंह से झण्डे की जय-ध्वनि निकल पड़ी। हालांकि वह इंग्लैंड में मुख्यतः मुगल-सम्राट् के राज-दूत वनकर लन्दन में उनका काम करने गये थे, तो भी उन्होंने कामन-सभा की कमिटी के सामने भारतवासियों के कुछ जरूरी कष्ट भी पेश किये। उन्होंने वहां तीन निवन्ध उपस्थित किये थे—पहला भारत की राजस्व-पद्धति पर, दूसरा न्याय-शासन पर, और तीसरा भारत की भौतिक अवस्था के सम्वन्ध में। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी उनको एक सार्वजनिक भोज देकर सम्मानित किया था। १८३२ में जव कि चार्टर एक्ट पार्लमेण्ट में पेश था, उन्होंने यह प्रण किया था कि यदि यह विल पास न हुआ तो मैं व्रिटिश प्रदेश में रहना छोड़ दूंगा और अमरीका जाकर वस जाऊँगा। अपने समय में ही उन्होंने अखवारों पर और छापेखानों पर हुआ वहुत वुरा दमन देख लिया था। "लॉर्ड हेस्टिंग्स ने भारतीय पत्र-व्यवसाय के लिए पिछले समय की कड़ी रुकावटों को कम करके जिन शुभ दिनों की शुरुआत की थी वे, १८२३ में सिविल सर्विस के एक सदस्य के थोड़े समय के लिए गवर्नर-जनरल हो जाने से, कुहिरे और वादलों से ढकने लगे थे।" फल यह हुआ कि मि० वकिंघम नामक कलकत्ते के एक अखवार के सम्पादक दो महीने की नोटिस देकर हिन्दुस्तान से निकाल दिये गये और उनका सहायक भी गिरफ्तार करके इंग्लैंड जाने वाले जहाज पर विठा दिया गया। यह सव सिर्फ़ इसलिए कि उन्होंने प्रचलित शासन की कुछ आलोचना कर दी थी। १४ मार्च १८२३ को एक प्रेस आर्डिनेंन्स पास किया गया, जिसके अनुसार हिन्दुस्तानी और गोरे दोनों अखवारों पर जवरदस्त सेंसर विठा दिया गया और पत्र के प्रकाशकों और मालिकों के लिए गवर्नर-जनरल से लाइसेन्स लेना लाजिमी कर दिया गया। आर्डिनेन्स, तत्कालीन कानून के अनुसार, विल के प्रकाशित होने के २० दिन वाद सुप्रीम कोर्ट में पास करा लिया गया था।

राजा राममोहन राय ने सुप्रीम कोर्ट में इसका घोर विरोध किया। उन्होंने

दो वकील अपनी तरफ़ से उसमें खड़े किये थे और जब वहाँ कामयाबी न हुई तो इंग्लैंड के बादशाह के नाम एक सार्वजनिक दरख्वास्त भेजी। परन्तु उससे भी कुछ मतलब न निकला। लेकिन इस समय जो बीज वह बो चुके थे उनका फल १८३५ में निकला, जब कि सर चार्ल्स मेटकॉफ ने फिर से हिन्दुस्तानी पत्रों को आजाद करा दिया। जिन दिनों वह इंग्लैंड थे उन्हीं दिनों सती-प्रथा के उठाये जाने के खिलाफ की गई अपील को और चार्टर एक्ट को पास होते हुए देखने का अवसर उन्हें मिल गया था।

अब गदर को लीजिए। यह लॉर्ड डलहौजी की नीति का परिणाम था। उन्होंने किसी राजा की विधवाओं को गोद लेने से मना कर दिया था और उनकी रियासत जब्त कर ली गई थी। यह तो सबको पता ही है कि गदर दबा दिया गया। उसके बाद १८५८ में, विश्व-विद्यालय कायम हुए और १८६१ से १८६३ तक हाईकोर्ट और कौंसिलें भारत में बनाई गईं। गदर के कुछ पहले ही विधवा-विवाह-कानून बना था, जो कि समाज-सुधार की दिशा में एक कदम था। उसके बाद १८६० से १८७० तक पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क बढ़ता गया। पश्चिमी कानून-संस्थायें और पार्लमेण्टरी तरीके दाखिल हुए, जिससे कानून और कौन्सिलों के क्षेत्र में एक नये युग का जन्म हुआ। इधर पश्चिमी सभ्यता का संसर्ग भारत के लोगों के विश्वासों और भावनाओं पर गहरा असर डाले बिना नहीं रह सकता था। राममोहन राय के जमाने में धार्मिक सुधार के जो बीज बोये गये थे वे थोड़े ही समय में अपनी शाखा-प्रशाखायें फैलाने लगे। राममोहन राय के बाद केशवचन्द्र सेन पर उनके काम की जिम्मेवारी आ पड़ी। उन्होंने दूर-दूर तक ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया और उसके मतों पर नवीन प्रकाश डाला। उन्होंने मद्यपान-निषेध के आन्दोलन को हाथ में लिया और इंग्लैंड के मद्यपान-निषेधकों के साथ मिलकर काम करने लगे। १८७२ के 'ब्रह्म मेरेज एक्ट—३' को पास कराने में उनका बहुत हाथ था, जिसके अनुसार उन लोगों को जो ईसाई नहीं थे अन्तर्जातीय विवाह करने की सुविधा हो जाती थी।

आर्य समाज व प्रार्थना समाज

बंगाल के ब्रह्मसमाज का प्रतिघात सारे भारत में हुआ। पूना में प्रार्थना-समाज के नाम से महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व में यह आन्दोलन शुरू हुआ। यही रानडे समाज-सुधार आन्दोलन के जनक थे, जो वर्षों तक कांग्रेस का एक आनुषंगिक अंग बनकर चलता रहा। इस सुधार-आन्दोलन में भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओं और विषयों के प्रति बगावत के भाव भरे हुए थे और इसका

कारण था पश्चिमी संस्थाओं का जादू एवं उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक प्रतिष्ठा। अब इसकी यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी थी—सुधार कार्य होना था, क्योंकि इन सुधार-आन्दोलनों के कारण देश में राष्ट्रीयता-विघातक भावनायें फैलने लगी थीं। उत्तर-पश्चिम में आर्यसमाज और मदरास में थियोसोफ़िकल आन्दोलनों ने इस आवश्यक सुधार का कार्य किया तथा अपने धर्म, आदर्श और संस्कृति से दूर ले जाने वाली स्पिरिट को, जो कि पश्चिमी शिक्षा के कारण पैदा हुई थी, दबा दिया। यों तो ये दोनों आन्दोलन उत्कट-रूप में राष्ट्रीय थे, फिर भी आर्यसमाज में देशभक्ति के भाव बहुत प्रबल थे। आर्यसमाज वेदों की अपौरुषेयता और वैदिक संस्कृति की श्रेष्ठता का जबरदस्त हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था। इस प्रकार राष्ट्र में एक तेजस्वी मनुष्यत्व का विकास हुआ, जो कि हमारी पूर्व-परम्परा और आधुनिक वातावरण दोनों के श्रेष्ठत्व का सामंजस्य था। जिस तरह कि ब्रह्म-समाज ने बहुदेव-वाद, मूर्ति-पूजा और बहुविवाह के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, उसी तरह आर्यसमाज ने भी हिन्दू-समाज की कुछ प्रचलित बुराइयों और हिन्दुओं के धार्मिक अन्ध-विश्वासों से लड़ाई ठानी। यहां भी, जैसा कि भय था, आर्यसमाज में दो दल खड़े हुए—एक गुरुकुल-पन्थी और दूसरा कालेज-पन्थी। गुरुकुल-पन्थी ब्रह्मचर्य और धार्मिक सेवा के वैदिक आदर्शों को मानते थे; और वे जो आधुनिक ढंग की शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा एक हद तक आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का संचार करके समाज में नवजीवन डालना चाहते थे, कालेज-पन्थी कहलाये। एक के प्रवर्तक थे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी, और दूसरे के थे देश-वीर लाला लाजपतराय। थियोसोफिकल आन्दोलन में यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी, तो भी पूर्वीय संस्कृति में जो कुछ महान् और गौरव-मय है उसके आविष्करण और पुनरुज्जीवन पर उसमें खास जोर दिया जाता था। इसी प्रबल भावना को लेकर श्रीमती बेसेण्ट ने भारत के पुण्य-धाम काशी में एक कालेज शुरू किया। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियों के द्वारा एक ओर जहां विश्व-बन्धुत्व की भावना बढ़ने लगी तहां दूसरी ओर पश्चिम के बुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौरदौरा कम हुआ और उसकी जगह संस्कृति का एक नया केंद्र स्थापित हुआ, जहां कि फिर से इस प्राचीन भूमि में पश्चिमी देशों के विद्वज्जन खिंच-खिंच कर आने लगे।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान का अन्तिम स्वरूप जो कि कांग्रेस की स्थापना के पहले भारतवर्ष में दिखाई दिया, वह है बंगाल के श्री रामकृष्ण परमहंस का युग। स्वामी विवेकानन्द इनके पट्ट-शिष्य थे, जिन्होंने इनके उपदेशों का प्रचार पूर्व और पश्चिम

दोनों जगह किया। रामकृष्ण-मिशन न तो कोरे योगसाधकों की और न केवल भौतिक-वादियों की संस्था है, बल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक आदर्श रखनेवाली संस्था है जो कि लोकसंग्रह या समाज-सेवा के महान् कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करती। उसने संसार के विभिन्न राष्ट्रों के सामने उपस्थित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए कुंजी का भी काम दिया है। ये तमाम हलचलें, सच पूछिए तो, भारत की राष्ट्रीयता के इस धागे में लगे भिन्न-भिन्न सूतों के समान हैं, और भारत का यह कर्तव्य था कि इनमें से एकसा सामंजस्य पैदा करे जिससे कि पूर्व-दूषित विचार और अन्ध-विश्वास दूर होकर प्राचीन वेदान्त-मत की संशुद्धि हो, वह नवीन तेज से लहलहा उठे और नवीन युग के राष्ट्रधर्म से उसका मेल बैठ सके। कांग्रेस का जन्म इसी महान् कार्य की पूर्ति के लिए हुआ था। अपने ५० वर्ष के पिछले जीवन में वह इसमें कहां तक सफल हुई है, इसका विचार हम आगे करेंगे।

पहला अधिवेशन

जिन स्थितियों में कांग्रेस की स्थापना हुई उनका वर्णन ऊपर हो चुका है। मि० ह्यूम का खयाल शुरू-शुरू में यह था कि कलकत्ते के इण्डियन एसोसिएशन, बम्बई के प्रेसिडेन्सी एसोसियेशन और मदरास के महाजन-सभा जैसी प्रान्तीय संस्थायें राजनैतिक प्रश्नों को हाथ में लें और आल इण्डिया नेशनल यूनियन बहुत-कुछ सामाजिक प्रश्नों में ही हाथ डाले। उन्होंने लॉर्ड डफरिन से इस विषय में सलाह ली, जो कि हाल ही में वाइसराय बन कर आये थे। उन्होंने जो सलाह दी वह उमेशचन्द्र बनर्जी के शब्दों में इस प्रकार है :—

"बहुतों को यह एक नई बात मालूम होगी कि कांग्रेस का जन्म जिस तरह हुआ और जिस तरह वह तब से अबतक चलाई जा रही है, वह वास्तव में लॉर्ड डफरिन का काम था, जब कि वह भारतवर्ष के वाइसराय होकर यहां आये थे। १८८४ में मि० ह्यूम के दिमाग में यह खयाल आया कि यदि भारत के प्रधान-प्रधान राजनीतिज्ञ पुरुष साल में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषयों पर चर्चा कर लिया करें और एक-दूसरे से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लें तो इससे बड़ा लाभ होगा। वह यह नहीं चाहते थे कि उनकी चर्चा का विषय राजनीति रहे, क्योंकि बम्बई, मदरास, कलकत्ता और अन्य भागों में राजनैतिक मण्डल थे ही; और उन्होंने यह सोचा कि यदि देश के भिन्न-भिन्न भागों के राजनीतिज्ञ जमा होकर राजनैतिक विषयों पर चर्चा करने लगेंगे तो इससे उन प्रान्तीय संस्थाओं का महत्त्व कम हो जायगा।

वह यह भी चाहते थे कि जिस प्रान्त में यह सभा हो वहां का गवर्नर उसका सभापति हो, जिससे कि सरकारी और गैरसरकारी राजनीतिज्ञों में अच्छे सम्वन्ध स्थापित हों। इन ख़यालों को लेकर वह १८८५ में लॉर्ड डफरिन से शिमला में मिले। लॉर्ड डफरिन ने उनकी वातों को ध्यान से और दिलचस्पी से सुना और कुछ समय के वाद मि० ह्यूम से कहा कि मेरी समझ में यह तजवीज, कि गवर्नर सभापति वने, उपयोगी न होगी: क्योंकि इस देश में ऐसा कोई सार्वजनिक मण्डल नहीं है जो इंग्लैण्ड की तरह यहां सरकार के विरोध का काम करे—हालांकि यहां अखवार हैं और वे लोकमत को प्रदर्शित भी करते हैं, फिर भी उनपर आधार नहीं रक्खा जा सकता; और अंग्रेज जो हैं, वे जानते ही नहीं कि लोग उनके और उनकी नीति के वारे में क्या खयाल करते हैं। इसलिए ऐसी दशा में यह अच्छा होगा और इसमें शासक और शासित दोनों का हित है, कि यहां के राजनीतिज्ञ प्रति वर्ष अपना सम्मेलन किया करें और सरकार को वताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटियां हैं और उसमें क्या-क्या सुधार किये जायँ। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे सम्मेलन का सभापति स्थानीय गवर्नर न होना चाहिए, क्योंकि उसके सामने सम्भव है, लोग अपने सही खयालात जाहिर न करें। मि० ह्यूम को लॉर्ड डफरिन की यह दलील जँची और जव उन्होंने कलकत्ता, वम्वई, मदरास और दूसरी जगहों के राजनीतिज्ञों के सामने उसे रक्खा तो उन्होंने भी लॉर्ड डफरिन की सलाह को एक स्वर से पसन्द कर लिया तथा उसके मुताविक कार्रवाई भी शुरू कर दी। लॉर्ड डफ़रिन ने मि० ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जवतक मैं इस देश में हूँ तवतक इस सलाह के वारे में मेरा नाम कहीं न लिया जाय। मि० ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया।"

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि वड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सव भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय। पूना इसके लिए सवसे उपयुक्त जगह समझी गई। इस वैठक के लिए एक गश्ती पत्र जारी किया गया, जिसका मुख्य अंश नीचे दिया जाता है :—

"२५ से ३१ दिसम्वर १८८५ तक पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन की एक परिषद् की जायगी। इसमें वंगाल, वम्वई और मदरास प्रदेशों के अंगरेजीदाँ प्रतिनिधि, अर्थात् राजनीतिज्ञ, सम्मिलित होंगे।

"इस परिषद् के प्रत्यक्ष उद्देश्य यह होंगे—(१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोगों का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष में कौन-कौन से राजनैतिक कार्य अंगीकार किये जायँ इसकी चर्चा करके निर्णय करना।

"अप्रत्यक्ष-रूप से यह परिषद् एक देशी पार्लमेंट का एक बीज-रूप बनेगी और यदि इसका कार्य सुचारु-रूप से चलता रहा तो थोड़े ही दिनों में इस आक्षेप का मुंहतोड़ जवाब होगी कि हिन्दुस्तान प्रातिनिधिक शासन-संस्थाओं के बिलकुल अयोग्य है। पहली परिषद् में यह तय होगा कि दूसरी परिषद् पूना में ही की जाय या ब्रिटिश-एसोसियेशन की तरह हर साल देश के प्रधान-प्रधान भागों में की जाय। यह अन्दाज़ है कि पूना के मित्रों के अलावा बम्बई, मदरास और बंगाल से कोई बीस-बीस प्रतिनिधि आयँगे और इनसे आधे युक्तप्रान्त और पंजाब से।"

इस तरह अपने को वाइसराय के आशीर्वाद से सुरक्षित करके ह्यूम साहब इंग्लैण्ड पहुँचे और वहाँ लॉर्ड रिपन, लॉर्ड डलहौजी, सर जेम्स केअर्ड, जॉन ब्राइट, मि० रीड, मि० स्लेग और दूसरे प्रसिद्ध पुरुषों से मशविरा किया। उनकी सलाह से उन्होंने वहाँ एक संगठन किया। जो आगे चलकर इंग्लैण्ड में इण्डियन पार्लमेंटरी कमिटी के रूप में परिणत हो गया और जिसका उद्देश था पार्लमेण्ट के उम्मीदवारों से यह प्रतिज्ञा करवाना कि वे हिन्दुस्तान के मामलों में दिलचस्पी लेंगे। उन्होंने वहां एक इण्डियन टेलीग्राफ़ यूनियन बनाई, जिसका उद्देश था इंग्लैण्ड के प्रधान-प्रधान प्रान्तीय पत्रों को महत्त्वपूर्ण विषयों पर तार भेजने के लिए धन संग्रह करना।

इस पहले अधिवेशन का बड़ा रोचक वर्णन अपनी 'हाऊ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम' नामक पुस्तक में श्रीमती बेसेण्ट ने किया है, जिससे नीचे लिखा अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"लेकिन पहला अधिवेशन पूना में नहीं हुआ; क्योंकि बड़े दिन के पहले ही वहां हैज़ा शुरू हो गया और यह ठीक समझा गया कि परिषद्, जिसे अब कांग्रेस कहते हैं, बम्बई में की जाय। गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज और छात्रालय के व्यवस्थापकों ने अपने विशाल भवन कांग्रेस के हवाले कर दिये और २७ दिसम्बर की सुबह तक भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियों के स्वागत करने की पूरी तैयारी हो गई। जो व्यक्ति उस समय वहां उपस्थित थे उनकी नामावली पर एक निगाह डालते हैं तो उनमें से कितने ही आगे चल कर भारत की स्वाधीनता का प्रयत्न करते हुए बहुत प्रसिद्ध हो गए थे। जो सज्जन प्रतिनिधि नहीं बन सकते थे उनमें थे सुधारक दीवान-बहादुर आर० रघुनाथराव, डिप्टी कलेक्टर, मदरास; माननीय महादेव गोविन्द रानडे, कौंसिल के सदस्य और जज स्माल कॉज कोर्ट पूना, जो आगे चल कर बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये और जो एक माननीय और विश्वसनीय नेता थे; लाला बैज-नाथ, आगरा, जो बाद को एक प्रख्यात विद्वान् और लेखक प्रसिद्ध हुए; और

२

अध्यापक के० सुन्दर,रमण और रामकृष्ण गोपाल भांडारकर। प्रतिनिधियों में नामी-नामी पत्रों के सम्पादक थे; जैसे—'ज्ञान-प्रकाश' जो कि पूना सार्वजनिक-सभा का त्रैमासिक पत्र था, 'मराठा-केसरी', 'नव-विभाकर', 'इण्डियन-मिरर', 'नसीम', 'हिन्दुस्तानी', 'ट्रिव्यून', 'इण्यिन-यूनियन', 'स्पेक्टेटर', 'इन्दु-प्रकाश', 'हिन्दू', 'त्रेसेंट'। इनके अलावा नीचे लिखे माननीय और परिचित सज्जनों के नाम भी चमक रहे थे—ह्यूम साहव, शिमला; उमेशचन्द्र वनर्जी और नरेन्द्रनाथ सेन, कलकत्ता; वामन सदाशिव आपटे और गोपाल गणेश आगरकर, पूना; गंगाप्रसाद वर्मा, लखनऊ; दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्वक तैलंग, फ़िरोजशाह मेहता, वम्वई कारपोरेशन के नेता, दीनशा एदलजी वाचा, वहराम जी मलावारी, नारायण गणेश चन्दावरकर, वम्वई; पी० रगैया नायडू, प्रेसिडेण्ट महाजन-सभा, एस० सुव्रह्मण्य ऐयर, पी० आनन्दा चार्लू, जी० सुव्रह्मण्य ऐयर, एम० वीर राघवाचार्य, मदरास; पी० केशव पिल्ले, अनन्तपुर। इनमें वे लोग भी थे जो भारत की आजादी के लिए खप चुके, और वे भी थे जो अव भी कायम हैं और उसके लिए यत्नशील हैं।

"२८ दिसम्वर १८८५ को दिन के १२ वजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। पहली आवाज सुनाई पड़ी ह्यूम साहव की, माननीय एस० सुव्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यंवक तैलंग की। ह्यूम साहव ने श्री उमेश वनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया था और शेष दोनों सज्जनों ने उनका समर्थन और अनुमोदन। वह एक वड़ा गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेकों व्यक्तियों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया।

"कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश इस तरह वतलाया :—

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्टता और मित्रता वढ़ाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्वन्धी तमाम पूर्वदूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओं का, जो लॉर्ड रिपन के चिर-स्मरणीय शासन-काल में उद्भूत हुईं, पोषण और परिवर्तन करना।

(ग) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित

लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य करें।"

इस प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव पास हुए; जिनके द्वारा भारत की मांगों के बनने की शुरुआत होती है। पहले प्रस्ताव के द्वारा भारत के शासन-कार्य की जांच के लिए एक रॉयल कमीशन बैठाने की मांग की गई। दूसरे के द्वारा इण्डिया कौंसिल को तोड़ देने की राय दी गई। तीसरे प्रस्ताव के द्वारा धारा-सभा की त्रुटियां दिखाई गईं, जिनमें अबतक नामजद सदस्य थे और उनके बजाय चुने हुए रखने की, प्रश्न पूछने का अधिकार देने की, युक्तप्रान्त और पंजाब में कौंसिल कायम की जाने की और कामन-सभा में स्थायी समिति कायम करने की मांग की गई—इस आशय से कि कौंसिलों में बहुमत से जो विरोध हो उनपर उसमें विचार किया जाय। चौथे के द्वारा यह प्रार्थना की गई कि आई० सी० एस० की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ हो और परीक्षार्थियों की उम्र बढ़ा दी जाय। पांचवां और छठा फ़ौजी खर्च से सम्बन्ध रखता था और सातवें में अपर बर्मा को मिला लेने तथा भारत में उसे सम्मिलित कर लने की तजवीज का विरोध किया गया था। आठवें के द्वारा यह आदेश किया गया कि ये प्रस्ताव राजनैतिक सभाओं को भेज दिये जायें। तदनुसार सारे देश में तमाम राजनैतिक मण्डलों और सार्वजनिक सभाओं द्वारा उनपर चर्चा की गई और कुछ मामूली संशोधनों के बाद वे बड़े उत्साह से पास किये गये। अन्तिम प्रस्ताव में अगले अधिवेशन का स्थान कलकत्ता और ता० २८ दिसम्बर नियत हुई।

कांग्रेस का दावा

जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे-से सोते में होता है उसी प्रकार महान् संस्थाओं का आरम्भ भी बहुत मामूली होता है। जीवन की शुरुआत में वे बड़ी तेजी के साथ दौड़ती हैं, परन्तु ज्यों ज्यों वे व्यापक होती जाती हैं त्यों-त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ती हैं त्यों-त्यों उनमें सहायक नदियां मिलती जाती हैं और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती हैं। यही उदाहरण हमारी कांग्रेस के विकास पर भी लागू होता है। उसे अपना रास्ता बड़ी-बड़ी बाधाओं में से तय करना था, इसलिए आरम्भ में उसने अपने सामने छोटे-छोटे आदर्श रक्खे; परन्तु ज्योंही उसे समस्त भारतवासियों के हार्दिक प्रेम का सहारा मिला, उसने

अपना मार्ग विस्तृत कर दिया और अपने उदर में देश की अनेक सामाजिक-नैतिक हलचलों का भी समावेश कर लिया। आरम्भिक अवस्थाओं में उसके कार्यों में एक किस्म की हिचकिचाहट और शंका-कुशंकायें दिखाई देती थीं; परन्तु जैसे-जैसे वह वालिग होती गई तैसे-तैसे उसे अपने वल और क्षमता का ज्ञान होता गया और उसकी दृष्टि व्यापक वनती गई। अनुनय-विनय की नीति को छोड़कर उसने आत्मतेज और आत्मावलम्वन की नीति ग्रहण की। इवर लोक-मत को शिक्षित करने के लिए जोर-शोर से प्रचार-कार्य होने लगे, जिससे देशव्यापी संगठन वन गया—यहां तक कि सीधे हमले तक का कार्य-क्रम वनाना पड़ा। शिकायतों और अपने दुःख-दर्दों को दूर कराने के उद्देश से शुरुआत करके कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप में परिणत हो गई जो वड़े स्वाभिमान के साय अपनी मांगें भी पेश करने लगी। हालांकि शुरुआत के दस-पांच वर्षों में शासन-सम्वन्वी मामलों में उसकी दृष्टि की एक सीमा वनी हुई थी, फिर भी शीघ्र ही वह भारतवासियों की तमाम राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं की एक जवरदस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक वन गई। उसका दरवाजा सव दर्जे और सव जातियों के लोगों के लिए खोल दिया गया। यद्यपि शुरुआत में वह उन प्रश्नों को हाथ में लेती हुई संकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, परन्तु उचित समय आते ही उसने इस वात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकड़ों में वंटा हुआ है। और इस प्राचीन परम्परागत विचार के आगे जाकर, जो जीवन के प्रश्नों को सामाजिक और राजनैतिक सीमाओं में वांध देता है, उसने एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें कि सारा जीवन, यहां से वहां तक, एक और अविभाज्य है। इस तरह कांग्रेस एक ऐसा राजनैतिक संगठन है, जहां न ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यों का भेद है, न एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त का। उसमें न उच्च वर्ग या जनता का भेद है, न शहर और गांव का; और न गरीव-अमीर का भेद है, न किसान-मजदूर का; जात-पांत और मजहवों का भेद-भाव भी उसमें नहीं है। गांधी जी ने दूसरी गोलमेज-परिषद् के समय फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी के सामने जो जवरदस्त वक्तृता दी थी और जिसमें उन्होंने कांग्रेस के वारे में ऐसा ही दावा किया था, उसके आवश्यक अंश नीचे दे देना उचित होगा :—

यदि मैं गलती नहीं करता हूं, तो कांग्रेस भारतवर्ष की सवसे वड़ी संस्था है। इसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह विना किसी रुकावट के वरावर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्व-भारतीय

हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज मस्तिष्क में हुई। एलेन ओक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान् पारसियों ने —फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने—जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। आरम्भ से ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, गोरे आदि शामिल थे; बल्कि मुझे यों कहना चाहिए कि इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने आपको कांग्रेस के साथ मिला दिया था। मुसलमान और पारसी भी कांग्रेस के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री उमेशचन्द्र बनर्जी का नाम भी ले सकता हूं। विशुद्ध भारतीय श्री कालीचरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अपने को कांग्रेस के साथ एक कर दिया था। मैं, और निस्सन्देह आप भी, अपने बीच श्री के० टी० पाल का अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं ठीक नहीं जानता, लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, वह अधिकारी-रूप से कभी कांग्रेस में शामिल नहीं हुए, फिर भी वह पूरे राष्ट्र-वादी थे।

"जैसा कि आप जानते हैं, स्वर्गीय मौ० मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहां अभाव है, कांग्रेस के सभापति थे, और इस समय कांग्रेस की कार्य-समिति के १५ सदस्यों में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रियां भी हमारी कांग्रेस की अध्यक्ष रह चुकी हैं—पहली श्रीमती एनी बेसेण्ट थीं और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू, जो कार्य-समिति की सदस्य भी हैं; और इस प्रकार जहां हमारे यहां जाति और मजहब का भेद-भाव नहीं है, वहां किसी प्रकार का लिंग-भेद भी नहीं है।

"कांग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अछूत कहलानेवालों के काम को अपने हाथ में ले रक्खा है। एक समय था जब कि कांग्रेस अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के समय अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी, जिसे स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कामों में एक काम बना लिया था और जिसे उन्होंने अपनी शक्तियां समर्पित की थीं। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व में सामाजिक परिषद् के कार्य-क्रम में अछूतों के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था। किन्तु सन् १९२० में कांग्रेस ने एक बड़ा कदम आगे उठाया और अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मंच का एक आधार-स्तम्भ बनाकर राजनैतिक कार्य-क्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना दिया। जिस प्रकार कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, और इस प्रकार सब जातियों के परस्पर ऐक्य, को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी उसी तरह

स्वराज-प्राप्ति के लिए छुआछूत के पाप को दूर करना भी अनिवार्य समझने लगी। सन् १९२० में कांग्रेस ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वह आज भी बनी हुई है; और इस प्रकार कांग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अपने को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि आरम्भ में ही कांग्रेस ने उनकी भी सेवा की है। मैं इस समिति को याद दिलाना चाहता हूँ कि वह व्यक्ति 'भारत का वृद्ध पितामह' ही था, जिसने काश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेकर सफलता को पहुँचाया था और मैं अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये दोनों बड़े घराने श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं हैं। अब-तक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करके कांग्रेस उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है। मैं आशा करता हूँ कि इस संक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो कांग्रेस के दावे में दिलचस्पी रखते हैं, वे यह जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप कांग्रेस का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक कांग्रेस मूलरूप में, अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, ७,००,००० गांवों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्ध-नग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी-राज्यों के।~इसलिए कांग्रेस के मत से प्रत्येक हित, जो रक्षा के योग्य है, इन लाखों मूक प्राणियों के हित का साधन होना चाहिए। हां, आप समय-समय पर इन विभिन्न हितों में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं। परन्तु यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो मैं कांग्रेस की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखों मूक प्राणियों के हित के लिए कांग्रेस प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी। इसलिए यह आवश्यकरूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय सदस्यों को भी, यह जानकर आश्चर्य होगा कि कांग्रेस ने आज 'अखिल भारतीय चर्खा संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा करीब दो हजार गांवों की लगभग ५० हजार स्त्रियों को (अब यह संख्या १,८०,००० है) रोजगार में लगा रक्खा है, और इनमें सम्भवतः ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रियां हैं। उसमें हजारों अछूत कहानेवाली जातियों की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवों में प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,०००

गांवों में, प्रत्येक गांव में, प्रवेश करने का यत्न किया जा रहा है। यह काम यद्यपि मनुष्य की शक्ति के वाहर का है; फिर भी यदि मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो आप कांग्रेस को इन सब गांवों में फैली हुई और उन्हें चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।"

कांग्रेस कैसी महान् राष्ट्रीय संस्था है, इसका बहुत अच्छा वर्णन संक्षेप में गांधी जी ने किया है। यदि कांग्रेस ने और कुछ नहीं किया तो कम-से-कम इतना जरूर किया है कि उसने अपना गन्तव्य स्थान खोज लिया है और राष्ट्र के विचारों और प्रवृत्तियों को एक ही विन्दु पर लाकर ठहरा दिया है। उसने भारत के करोड़ों निरीह और वेकस लोगों के दिलों में एक जागृति पैदा कर दी है; उनके अन्दर एकता, आशा और आत्म-विश्वास की संजीवनी डाल दी है। कांग्रेस ने भारतवासियों के विचारों और आकांक्षाओं को एक स्पष्ट राष्ट्रीय रूप दे दिया है, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य को, अपने सर्व-सामान्य धन्धों, कारीगरियों और कलाओं को, यहां तक कि अपनी सर्व-सामान्य आकांक्षाओं और आदर्शों तक को खोज निकाला है। परन्तु यहां कहना होगा कि उसके जीवन के ये पिछले ५० वर्ष अवाध और आसानी से नहीं वीते हैं। उसमें कई उतार-चढ़ाव आये हैं। उसमें लोगों की आशा-निराशायें, उनके आन्दोलनों और प्रयासों में मिली सफलता-असफलता, सव का इतिहास छिपा हुआ है। इन पन्नों में हम इस तेजस्विनी, वलवती और पुरुषार्थिनी संस्था के जीवन की अर्द्धशताब्दी की घटनाओं का इतिहास लिखेंगे, जिसमें उसके उद्गम की कथा सुनावेंगे; उसके जन्म-दाताओं और आरम्भ-काल के सरपरस्तों और पालकों की सेवाओं का स्मरण करेंगे; उसका जीवन-पिण्ड वनते समय जिन-जिन देश-भक्तों ने उसका लालन-पालन किया उनके कार्यों का दिग्दर्शन करावेंगे; अपनी किशोरावस्था में यह जिन उतार-चढ़ावों में से गुजरी है उनका चित्र खींचेंगे; जैसे-जैसे वह जवानी की ओर कदम वढ़ाती गई तैसे-तैसे उसे मिले यश की महत्ता और गौरव का एवं उसे जिन सन्ताप-परितापों और शर्मिन्दगियों का भी सामना करना पड़ा उसका परिचय करावेंगे; और उन सव अवस्थाओं का सिंहावलोकन करेंगे जिनमें से उसके सिद्धान्त और आदर्श, विश्वास एवं मान्यतायें गुजर चुकी हैं और अन्त में जाकर उसने (कांग्रेस ने) तमाम शान्तिमय और उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त कर लेने का भी प्रण कर लिया है।

: २ :

कांग्रेस के प्रस्ताव—एक सरसरी निगाह

[१८८५—१९१५]

हरेक साल के कांग्रेस-अधिवेशन पर अलग-अलग विचार करने का हमारा इरादा नहीं है। एक-के-बाद-एक होनेवाले अधिवेशनों में जिन महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार होकर प्रस्ताव पास हुए उन्हें लेकर एक नजर यह देखना ही काफी होगा कि लगभग १९१५ तक कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम का रुख क्या रहा। क्योंकि इसके बाद तो एकदम नई नीति और थोड़े-बहुत भिन्न उपाय काम में लाये जाने लगे हैं। इसके लिए प्रस्ताव और विचार के महत्त्वपूर्ण विषयों को भिन्न-भिन्न हिस्सों में बांटकर हमें क्रमशः विचार करना होगा।

इण्डिया कौंसिल

कांग्रेस ने अपने सबसे पहले अधिवेशन में ही इस बात पर ज़ोर दिया था कि भारत-मंत्री की कौंसिल (इण्डिया कौंसिल), जैसी कि वह उस समय थी, तोड़ दी जाय। बाद के दो अधिवेशनों में भी उस प्रस्ताव को दोहराया गया। दसवें अधिवेशन में उसकी जगह भारत-मंत्री को परामर्श देने के लिए कामन-सभा की स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव पास किया गया। और १९१३ में करांची-कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसमें तो उसने उन संशोधनों का भी उल्लेख कर दिया है जिन्हें वह चाहती थी। वह प्रस्ताव यह है :—

"इस कांग्रेस की राय है कि भारत-मंत्री की कौंसिल, इस समय जिस तरह संगठित है, तोड़ दी जाय, और निम्न प्रकार उसका पुनस्संगठन किया जाय—

(क) भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश कोष से दिया जाय।

(ख) कौंसिल की कार्यक्षमता और स्वतंत्रता पर ध्यान रखते हुए यह अच्छा हो कि उसके कुछ सदस्य नामजद हों और कुछ चुने हुए।

(ग) कौंसिल के सदस्यों की कुल संख्या ९ से कम न हो।

(घ) कौंसिल के निर्वाचित सदस्य कुल संख्या के कम-से-कम ½ हों, जो गैर-सरकारी भारतीय हों और बड़ी (इम्पीरियल) तथा प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने गये हों।

(ङ) कौंसिल के नामजद सदस्यों में कम-से-कम आधे ऐसे योग्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हों जिनका भारतीय शासन से कोई सम्बन्ध न हो, और शेष नामजद-सदस्य वे अफसर हों जिन्होंने कम-से-कम दस वर्ष तक भारतवर्ष में काम किया हो और जिन्हें भारतवर्ष छोड़े दो वर्ष से अधिक न हुए हों।

(च) कौंसिल सलाहकार हो, शासक नहीं।

(छ) प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल पांच वर्ष का हो।"

इसके बाद के कुछ अधिवेशनों में जो संशोधित प्रस्ताव पेश हुए उसका कारण यह नहीं है कि अब कौंसिल को तोड़ने की इच्छा उतनी प्रबल नहीं रही, बल्कि यह भावना है कि जब कि इसके जल्दी तोड़े जाने की कोई संभावना नहीं है तब इसका कुछ संशोधन ही भले हो जाय। यह कौंसिल निरुपयोगी है, यह विश्वास तो अब भी कायम था, जिसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि १९१७ में शासन-सुधारों की जो योजना बनाई गई उसमें इसे तोड़ने के लिए कहा गया है।

वैधानिक परिवर्त्तन

शुरू से लेकर बहुत समय तक कांग्रेस का रवैया ऐसा रहा है, कि उस पर शायद ही कोई 'गरम' या 'अविनयी' होने का आरोप लगा सके। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में जो कुछ मांगा गया वह यही कि "बड़ी और मौजूदा प्रान्तीय कौंसिलों का सुधार और उनके आकार में वृद्धि होनी चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या का अनुपात बढ़ा दिया जाय और संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब के लिये भी ऐसी कौंसिलों की स्थापना हो। बजट इन कौंसिलों में विचारार्थ पेश किये जाने चाहिएँ और इनके सदस्यों को सरकार से शासन के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए। सरकार को इन कौंसिलों के बहुमत को रद करके अपने इच्छानुसार कार्य करने का जो अधिकार रहेगा उसके अनुसार, यदि सरकार कभी इन कौंसिलों के बहुमत को रद करे तो, उनके (कौंसिलों के) द्वारा सरकार के इन कार्यों के बाजाब्ता विरोधों को सुनने और उनपर विचार करने के लिए कामन-सभा की एक स्थायी समिति नियत की जानी चाहिए।" इसका मतलब यह है कि—बाद में जैसे असेम्बली में बहुतायत से देखा गया है—सरकार बहुमत से स्वीकार की गई

गैरसरकारी मांगों को अपने 'विशेषाधिकारों' से अस्वीकृत और बहुमत से अस्वीकार की कई गई सरकारी मांगों को 'सर्टिफिकेट' द्वारा स्वीकृत करने लगती है। नौकर-शाही के ऐसे कृत्यों के खिलाफ़ १८८५ में कांग्रेस ने पार्लमेण्टरी संरक्षण चाहा था। दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने कौंसिलों के सुधार की एक व्यापक योजना पेश की। इसमें कौंसिलों के आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया, पर अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त मान लिया गया था। कहा गया कि प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों का चुनाव तो म्युनिसिपल और लोकल बोर्डों, व्यापार संघों तथा विश्व-विद्यालयों के द्वारा हो और बड़ी कौंसिल का चुनाव प्रान्तीय कौंसिलों के द्वारा हो। यही नहीं, बल्कि सरकार को कौंसिलों के निर्णय अस्वीकृत करने का अधिकार देने की बात भी इसमें मान ली गई, बशर्ते कि प्रान्तीय कौंसिलों की अपील भारत-सरकार से और बड़ी कौंसिल की अपील कामन-सभा की स्थायी समिति से करने का अधिकार रहे। अस्वीकृत करने के १ मास के अन्दर ही कार्य-कारिणी समितियों को अपनी कार्रवाई का जवाब अपील-संस्था को भेज देना चाहिए। १८८७, १८८८ और १८८९ में भी यही प्रस्ताव दोहराया गया। १८९० में कांग्रेस ने 'इण्डिया कौंसिल्स एक्ट' में संशोधन करने के श्री चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का सम-र्थन किया जो उन्होंने पार्लमेण्ट में पेश किया था और कांग्रेस की राय में जिससे काफी मात्रा में भारत के चाहे हुए सुधार मिलते थे। लेकिन यह बिल बाद में छोड़ दिया गया। १८९१ में कांग्रेस ने अपने इस निश्चय की फिर से ताईद की, कि "जबतक हमारे देश की कौंसिलों में हमारी जोरदार आवाज नहीं होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वा-चित न होंगे तबतक भारत का शासन सुचारु रूप से और न्यायपूर्वक कदापि नहीं चल सकता।" १८९२ में कौंसिलों के सुधार-सम्बन्धी लॉर्ड क्रॉस का 'इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' पास हो गया। तब और बातों को छोड़ कर भारत-सरकार के नियमों और प्रान्तीय सरकारों द्वारा अपनाई हुई, प्रथाओं पर, जिनमें बहुत सुधार की जरूरत थी, कांग्रेस ने अपना हमला शुरू किया।

यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि १८९२ के सुधारों में कौंसिलों के लिए प्रतिनिधि चुनने का कोई विधान नहीं था। म्युनिसिपल और लोकल बोर्ड आदि स्थानीय संस्थाओं और अन्य निर्वाचन-मण्डलों को कौंसिलों के लिए चुनाव का जो कहने भर को अधिकार प्राप्त था वह सिर्फ नामजद करने के ही रूप में था। यही नहीं, बल्कि ऐसे नामजद व्यक्तियों को भी स्वीकार करना न करना सरकार पर ही निर्भर था। परन्तु अमली तौर पर सरकार सदा उन्हें स्वीकार कर ही लिया करती थी।

वस्तुतः बात यह थी कि लॉर्ड लैंसडौन की सरकार ने अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त भी लागू न होने देने की कोशिश की। इस बड़ी कौंसिल के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी इसीके अनुसार की गई थी। उसमें सिर्फ चार जगह, उस समय की प्रान्तीय कौंसिलों (मदरास, बम्बई, कलकत्ता और युक्तप्रान्त) की सिफारिश से नामजद किये गये गैर-सरकारी सदस्यों के लिए रक्खी गई थीं।

१८९२ में कांग्रेस ने 'इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' को राजभक्ति के भाव से तो स्वीकार किया, परन्तु साथ ही इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि "स्वतः उस एक्ट के द्वारा लोगों को कौंसिलों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया है।" १८९३ में एक्ट को कार्य-रूप में परिणत करने की उदार भावना के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया, परन्तु साथ ही यह भी बतलाया गया कि यदि वास्तविक रूप में उस पर अमल करना हो तो उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन करने आवश्यक हैं। साथ ही पंजाब में कौंसिल स्थापित करने की मांग की भी ताईद की गई। १८९४ और १८९७ में भी इन प्रार्थनाओं को दोहराया गया। परन्तु १८९२ के संशोधन से १८९३ में कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया था, इसलिए १८९५ में कांग्रेस ने प्रश्न-कर्त्ताओं को प्रश्नों के आरम्भ में प्रश्न पूछने का कारण बताने का अधिकार भी देने के लिए कहा; लेकिन आजतक भी उन्हें वह प्राप्त नहीं हुआ है।

इसके बाद १९०४ तक कांग्रेस ने इस विषय में कुछ नहीं किया। १९०४ में प्रत्येक प्रान्त से दो सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा कामन-सभा में भेजने और भारत-वर्ष में कौंसिलों का और विस्तार करने एवं आर्थिक मामलों में उन्हें भिन्न मत देने का अधिकार देने की भी मांग की गई, हालांकि कौंसिल का निर्णय रद करने का अधिकार शासन के मुख्याधिकारी पर ही छोड़ा गया। साथ ही भारत-मंत्री की कौंसिल में और भारत के प्रान्तों की कार्यकारिणी सभा में भारतीयों की नियुक्ति पर भी जोर दिया गया। १९०५ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों पर पुनः जोर दिया और १९०६ में राय जाहिर की कि "ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी जारी की जाय और इसके लिए (क) जो परीक्षाएँ केवल इंग्लैंड में होती हैं वे भारतवर्ष में और इंग्लैंड में साथ-साथ हों, (ख) भारत-मंत्री की कौंसिल में तथा वाइसराय और मदरास तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणी सभाओं में भारतीयों का काफी प्रति-निधित्व हो, (ग) बड़ी और प्रान्तीय कौंसिलें इस प्रकार बढ़ाई जायँ कि उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहें और देश के आर्थिक तथा शासन-सम्बन्धी कार्यों में उनका आर्थिक नियंत्रण रहे, और (घ) स्थानीय तथा म्युनिसिपल बोर्डों

के अधिकार बढ़ाये जायँ।" १६०८ में समय से पहले ही कांग्रेस ने भविष्य में होनेवाले शासन-सुधारों पर प्रसन्न होना शुरू कर दिया। उसने प्रस्तावित सुधारों का हार्दिक और सम्पूर्ण स्वागत किया तथा आशा प्रदर्शित की कि उसकी तफसीली बातें तय करने में भी उसी उदार भाव से काम लिया जायगा जिसके साथ कि यह योजना बनी है। लेकिन देश के भाग्य में तो निराशा ही बदी थी। प्रतिनिधित्व की बात तो एक ओर, वस्तुस्थिति यह हुई कि १६०६ के शासन-कानून के अन्तर्गत जो नियम स्वीकृत हुए उनमें तो उतनी भी उदारता नहीं थी जितनी कि जॉन मार्ले ने इससे पहले अपने ख़रीते में प्रदर्शित की थी। इसपर से हमें इसके बाद की उन घटनाओं का स्मरण होता है जो अभी हाल में ही हुई हैं। १६३०–१६३३ की गोलमेज-परिषदों ने किस प्रकार लॉर्ड अर्विन की घोषणाओं का रूप बदल दिया, बाद में गोलमेज-परिषद् की योजना किस प्रकार श्वेत पत्र (व्हाइट पेपर) के रूप में कमजोर बना दी गई, जिसे ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट ने कुछ और नरम कर दिया, फिर शासन-सुधारों का बिल तो उससे भी कम कर दिया गया, और अन्त में जिस रूप में कानून बना वह तो उस बिल से भी बिलकुल गया-गुजरा निकला, यह हम सब जानते ही हैं।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि मार्ले-मिण्टो के नाम पर दस साल तक जिन शासन-सुधारों का दौर-दौरा रहा वे थे क्या? इन सुधारों के अनुसार बननेवाली बड़ी (सुप्रीम) कौंसिल में ६० अतिरिक्त सदस्य थे, जिनमें से केवल २७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे। शेष ३३ सदस्यों में से ज़्यादा से ज़्यादा २८ सरकारी अफ़सर थे, और बाकी ५ में से ३ गैर-सरकारी सदस्य विभिन्न उल्लिखित जातियों की ओर से गवर्नर-जनरल नामजद करता था और २ अन्य सदस्य भी उसीके द्वारा नामजद होते थे जो प्रदेश-विशेष के बजाय स्वार्थ-विशेष के ही प्रतिनिधि होते थे। निर्वाचित सदस्यों में भी बहुत कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से चुने जाते थे—जैसे सात प्रान्तों में जमींदार, पांच प्रान्तों में मुसलमान, एक प्रान्त में (पर सिर्फ बारी-बारी से) मुसलमान जमींदार और दो व्यापार-संघ के प्रतिनिधि, इनके बाद जो स्थान बचते उनका चुनाव नौ प्रान्तीय कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा होता था। और लॉर्ड मार्ले ने इस बात को बिलकुल छिपाया भी नहीं कि "गवर्नर जनरल की कौंसिल की रचना इसी तरह की रहनी चाहिए कि कानून बनाने और शासन-व्यवस्था में वह सदा और निर्बाध रूप से अपने उस कर्तव्य का पालन करने में समर्थ रहे, जो कि वैधानिक रूप में सम्राट् की सरकार एवं पार्लमेण्ट के प्रति उसका है तथा सदा बना रहना चाहिए।" स्वयं शासन-सुधारों के बारे में लॉर्ड मार्ले का कहना था—"यदि यह कहा जा सकता हो कि ये शासन-

सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दुस्तान को पार्लमेण्टरी (प्रातिनिधिक) शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं, तो कम-से-कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नहीं रक्खूंगा।" लेकिन लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड और मि० माण्टेगु का निर्णय तो, जो उनकी (माण्टफोर्ड) रिपोर्ट में दर्ज है, इससे भी अधिक असन्दिग्ध और अधिक अधिकारपूर्ण हैं—"इनसे (मार्ले-मिण्टो-सुधार से) भारतीय जनता का सन्तोष नहीं हो रहा है। इनको और जारी रक्खा गया तो सरकार और भारतीयों (कौंसिल के सदस्यों) के बीच खाई और बढ़ेगी और गैर-जिम्मेवाराना टीका-टिप्पणी में वृद्धि होगी।"

इसके पहले कि हम इस विषय के कांग्रेस-प्रस्तावों पर विचार करें, हमें इस समय की घटनाओं को पहले से अपनी निगाह में ले आना उचित होगा, जिससे कि चित्र अधूरा न रह जाय।

मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधारों से इस विषय का दूसरा दरवाजा खुल गया था। इसके अनुसार दो भारतवासी (अब बढ़ाकर तीन कर दिये गये हैं) १९०७ में इण्डिया-कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये; एक को १९०९ में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में स्थान मिला, और एक-एक भारतवासी १९१० में मदरास व बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणियों में नियुक्त किया गया। इसी साल बंगाल में भी कार्यकारिणी बनाई गई और एक हिन्दुस्तानी सदस्य उसमें भी रक्खा गया। बाद को जाकर वह प्रान्त प्रेसीडेन्सी (अहाते) के दर्जे पर चढ़ा दिया गया और स-कौंसिल गवर्नर के मातहत हो गया। बिहार-उड़ीसा को मिलाकर, १९१२ में स-कौंसिल लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर के मातहत एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और एक भारतवासी वहां की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया।

१९०९ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों के सम्बन्ध में चार प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव में मजहब के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन रखने पर नापसन्दगी जाहिर की गई और (क) एक विशेष मजहब के अनुयायियों को अनुचित रूप से बहुत अधिक प्रतिनिधित्व देने, (ख) निर्वाचकों और उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में मुसलमानों और गैर मुसलमानों के बीच अन्यायपूर्ण, ईर्षास्पद और अपमान-प्रद भेद-भाव रखने, (ग) कौंसिलों के लिए खड़े होनेवाले उम्मीदवारों के लिए विस्तृत, मनमानी और अनुचित अयोग्यतायें रखने, (घ) नियम-पत्रों (रेगुलेशन्स) के आम तौर पर शिक्षितों के प्रति अविश्वास के भावों से भरे होने, तथा (ङ) प्रान्तीय कौंसिलों में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या इस प्रकार असन्तोषजनक रखने पर, कि जिससे उनके बहुमत का कोई असर ही न हो और वे कोरी कागजी रह जायें, असन्तोष प्रकट

किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा संयुक्तप्रान्त, पंजाव, पूर्वी वंगाल, आसाम और ब्रह्म-देश में लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरों के सहायतार्थ कार्यकारिणियां वनाने की प्रार्थना की गई। तीसरे प्रस्ताव में पंजाव पर लागू किये जानेवाले शासन-सुधारों को असन्तोप-प्रद वताते हुए कहा गया कि (क) कौंसिल के सदस्यों की जो संख्या रक्खी गई है वह काफी नहीं है, (ख) निर्वाचित सदस्यों की संख्या वहुत कम और विलकुल नाकाफी है, (ग) अन्य प्रान्तों में मुसलमानों के लिए अल्पसंख्यकों की रक्षा का जो सिद्धान्त रक्खा गया है वह पंजाव के गैर-मुसलमान अल्पसंख्यकों के लिए लागू नहीं किया गया है, और (घ) नियम-पत्र जिस तरह वनाये गये हैं उनकी प्रवृत्ति यही है कि अमली तौर पर पंजाव के गैर-मुसलमान वड़ी कौंसिल में न पहुँच सकें, और चौथे प्रस्ताव में मध्यप्रान्त और वरार में कौंसिल स्थापित न करने तथा मध्यप्रान्त के जमींदारों और जिला व म्युनिसिपल वोर्डों की ओर से वड़ी कौंसिल के लिए चुने जानेवाले दो सदस्यों के निर्वाचन से वरार को महरूम रखने पर असन्तोप प्रकट किया गया।

१९१० और १९११ में अमली तौर पर कांग्रेस ने शासन-सुधारों-सम्वन्वी अपनी १९०९ की आपत्तियों एवं सूचनाओं की ही ताईद की और पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त को म्युनिसिपल व जिला-वोर्डों पर भी लागू कर देने का विरोध किया।

१९१२ में कांग्रेस ने अपने पिछले प्रस्तावों में उल्लिखित कमियां दूर न की जाने पर निराशा प्रकट की और अन्य सुधारों के साथ यह भी प्रार्थना की कि वड़ी तथा समस्त प्रान्तीय कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का वहुमत रहे, प्रतिनिधियों द्वारा मत लेने की प्रथा उठा दी जाय, उन अपराधों (राजनैतिक) के लिए सजा पानेवालों को जिनमें नैतिक दोष न हो, चुने जाने के अयोग्य ठहराने की वाधा हटा दी जाय, और अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार कौंसिलों के सभी सदस्यों को दे दिया जाय। पंजाव में कार्यकारिणी की स्थापना और स्थानीय संस्थाओं के लिए भी पृथक् निर्वाचन लागू कर देने के प्रस्तावों की ताईद की गई। आश्चर्य की वात है कि कांग्रेस के शासन-सुधार-सम्वन्धी प्रस्ताव में एक टुकड़ा यह भी है कि "जो व्यक्ति अंग्रेज़ी न जानता हो उसे सदस्यता के अयोग्य समझा जाय।"

सरकारी नौकरियां

सरकारी नौकरियों में, खासकर उन उच्च पदों पर, जो सनदी के नाम से मशहूर हैं, भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न को कांग्रेस ने हमेशा वहुत महत्त्व दिया है।

भारतवासियों ने हमेशा यह मतालवा किया है कि ये परीक्षाएं इंग्लैंड और

भारतवर्ष दोनों जगह साथ-साथ होनी चाहिएँ, जिससे भारतीयों की कुछ तो कठिनाई दूर हो जाय। अपने पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षा होने की आवाज उठाई थीं।

अब जरा विस्तार से हम इस विषय पर विचार करें। यहां यह बता देना ठीक होगा कि पहले-पहल १८८५ में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तभी से उसने प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें दोनों देशों में साथ-साथ होने की मांग रक्खी है, हालांकि यों यह आवाज तो अठारह वर्ष पहले से उठती रही है। यही नहीं, बल्कि १८६१ में इण्डिया-कौंसिल की एक कमिटी ने भी यही सिफारिश की थी कि यदि भारत के साथ न्याय करना हो और पार्लमेण्ट द्वारा किये गये वादों को पूरा करना हो तो ऐसा करना आवश्यक है।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से इस काम के लिए नियुक्त उप-समिति ने इस सम्बन्धी विस्तृत ब्यौरा तैयार किया और मतालबा किया कि प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें भारतवर्ष और इंग्लैंड में साथ-साथ हों और सम्राट् के सब प्रजाजन बिना किसी भेद-भाव के उसमें भाग ले सकें, योग्यता के अनुसार नियुक्तियों की क्रमागत सूची तैयार की जाय, प्रथम नियुक्तियों के लिए 'स्टेच्युटरी सिविल सर्विस' बन्द कर दी जाय, परन्तु बे-सनदी नौकरियों तथा उपयुक्त पात्रों के लिए वह खुली रहे, और इसके अतिरिक्त जितनी नियुक्तियां हों वे सब प्रान्तों में प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें लेकर की जायें। उस समय प्रचलित प्रथा यह थी, कि कुछ नवयुवकों को चुन कर बस सीधा डिप्टी-कलक्टर बना दिया जाता था। चौथे अधिवेशन तक जाकर कहीं इस सम्बन्धी आन्दोलन में थोड़ी सफलता मिली। सरकारी नौकरियों (पबलिक सर्विसेज) के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस सम्बन्धी जिन सुविधाओं की सिफारिश की उनकी कांग्रेस ने तारीफ की, परन्तु उन्हें अपर्याप्त बताया। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस के इच्छानुसार इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए वय-मर्यादा १९ से २३ कर दी गई, लेकिन दूसरी तरह से कमीशन की सिफारिशों पर जारी की गई सरकारी आज्ञा से स्थिति और भी खराब हो गई। क्योंकि उससे भारतीय उच्चाधिकारियों के लिए दो ही उपाय रह गये—या तो जिस स्थिति में स्टेच्युटरी सर्विस के मातहत वे उस समय थे उसी में बने रहें, या प्रान्तीय सर्विस में सम्मिलित हो जायें जिनके सदस्यों के लिए शासन के सब उच्च पदों पर ताला डाल दिया गया था। इस सम्बन्ध में श्री गोखले ने, कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में, बहुत बिगड़ कर एक भाषण दिया था। उन्होंने कहा—"१८३३ के कानून की भाषा और १८५८ की घोषणा इतनी स्पष्ट है कि जो लोग उस समय

दिये गये आश्वासनों के अनुसार सुविधायें नहीं देना चाहते उन्हें दो में से एक बात, और वह भी बड़े दुःख के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी, कि या तो वे मक्कार हैं या दगाबाज; उन्हें यह मानने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा कि इंग्लैण्ड ने जब वे आश्वासन दिये थे तब उसने ईमानदारी से काम नहीं लिया था, या यह कि अब वह हमारे साथ वचन-भंग करने पर आमादा हो गया है।" स्थिति उस समय यह थी कि प्रथम तो सर्व-भारतीय नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें होती थीं, दूसरे स्टेच्युटरी सनदी सर्विस भी जिनकी ⅙ नौकरियां १८६१ के कानून के अनुसार भारतीयों के लिए रक्षित थीं, तीसरे सनदी नौकरियां थीं जिनमें भारतीय ही भारतीय थे। १८९२ में कांग्रेस ने पबलिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर किये गये भारत-सरकार के प्रस्ताव पर असन्तोष प्रकट किया और उसके बारे में कामन-सभा को एक प्रार्थनापत्र भेजा। बात यह थी कि दूसरी श्रेणी की ९४१ नौकरियों में ⅙ पद १५८ भारतीयों के लिए रक्खे गये थे, परन्तु पबलिक-सर्विस-कमीशन ने कहा कि इनमें से १०८ पद उन्हें देने चाहिएँ और भारत-मंत्री ने उस 'चाहिएँ' शब्द को भी बदलकर 'दिये जा सकते हैं' कर दिया। और असलियत तो यह है कि १५८ में से, जो कि भारतीयों का पूर्णतः उचित दावा था, जो १०८ पद सरकार के हाथ में रहे उनमें से भी सिर्फ ९३ ही १८९२ में भारतीयों को दिये गये।

इसके बाद तो स्थिति और भी खराब हो गई। भारत-सरकार के इस सम्बन्धी प्रस्ताव की भारत-मंत्री ने अपने खरीते द्वारा पुष्टि कर दी। फलतः १८९४ में जाति-भेद के आधार पर भारतीयों के खिलाफ अयोग्यता की निश्चित मुहर लग गई; क्योंकि उस खरीते में यह स्पष्ट कर दिया गया कि सनदी नौकरियों (द्वितीय श्रेणी के उच्च पदों) में कम-से-कम इतने अंग्रेज़ अफसर तो रहने ही चाहिएँ। २ जून १८९३ को कामन-सभा ने जो प्रस्ताव पास किया था, कि भारतीय जनता के साथ न्याय करने के लिए दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षायें होने का क्रम शीघ्र अमल में ले आना चाहिए, उसका इससे खातमा हो गया। शिक्षा-विभाग की नौकरियों के लिये, जिसमें कि किसी भी ओहदे पर भारतवासी बिलकुल अंग्रेज़ों के समान वेतन के साथ काम कर सकते थे, सरकार ने यह प्रस्ताव प्रकाशित किया कि "भविष्य में वे सब भारतवासी, जो कि शिक्षा-विभाग में प्रवेश करना चाहेंगे, आमतौर पर भारतवर्ष में ही और प्रान्तीय सर्विस में नौकर रक्खे जायँगे।" इस प्रकार शिक्षा-विभाग के पुनस्संगठन की योजना में, शिक्षा-विभाग की नौकरियों के सिलसिले में, भारतवासियों के साथ एक और अन्याय किया गया। भारतवासियों को इस विभाग की ऊँची नौकरियों से महरूम कर दिया

गया। शिक्षा-विभाग की ऊँची नौकरियों को दो भागों में बांट दिया गया—बड़ी अर्थात् आई० ई० एस्० (सर्वभारतीय) और छोटी अर्थात् पी० ई० एस्० (प्रान्तीय)। बड़ी नौकरियों की नियुक्ति इंग्लैण्ड में और छोटी नौकरियों की नियुक्ति भारतवर्ष में होने का नियम रक्खा गया। १८८० से पहले ऐसा नहीं था। उस समय बंगाल में उच्चपदस्थ भारतीयों और अंग्रेजों को एक-समान वेतन मिलता था। दोनों का प्रारम्भिक वेतन ५००) रुपये होता था। पर १८८० में भारतवासियों का वेतन घटा कर ३३३) कर दिया गया और १८८९ में २५०) ही रह गया हालांकि भारतवासी थे इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों के ही ग्रेजुएट। भारतवासियों के लिए अधिक-से-अधिक वेतन १८९६ में ७००) था, चाहे कितने ही समय की उनकी नौकरी क्यों न हो जाय; परन्तु अंग्रेजों को अपनी नौकरी के दस वर्ष पूरे होते ही १,०००) मिलने लगते थे। नयी योजना ने भारतवासियों को ऐसे कुछ कॉलेजों के प्रिन्सिपल होने से भी महरूम कर दिया जो अंग्रेजों की पढ़ाई के लिए रक्षित थे। इस प्रकार जैसे-जैसे कांग्रेस का आन्दोलन अधिक ठोस और वास्तविक होता गया, उसी हिसाब से नौकरशाही का विरोध भी अधिकाधिक निर्लज्ज और नग्न होता गया है।

१८९६ और १८९७ में कांग्रेस ने बम्बई और मदरास की कार्यकारिणियों में भारतवासियों को भी स्थान देने की मांग की। सिविल मेडिकल सर्विस (डाक्टरी नौकरियों) पर भी इन तथा इनके बाद के वर्षों में ही कुछ ध्यान दिया जाने लगा। १९०० में कांग्रेस ने पी० डब्लू० डी०, रेलवे, अफयून, चुंगी (कस्टम) और तार-विभाग की ऊँची नौकरियों पर भारतवासियों के न रक्खे जाने तथा कूपर के इंजीनियरिंग (हिल) कॉलेज से पास-शुदा सिर्फ दो ही भारतवासियों को नौकरी के योग्य शुमार करने के प्रतिबन्ध की निन्दा की।

सैनिक समस्या

इस समय तक, इन तीस वर्षों में, कांग्रेस ने कोई दो सौ विषयों पर विचार किया। इन विषयों में एक ऐसा है जिसके प्रति लगातार इतनी दिलचस्पी ली जाती रही कि वर्षों तक वह सालाना विषय बना रहा, लेकिन कांग्रेस की ओर से लगातार विरोध और प्रार्थनायें होती रहने पर भी न तो तत्सम्बन्धी शिकायतें दूर हुई और न उसमें कोई कमी ही हुई। अपने पहले अधिवेशन में ही कांग्रेस ने सैनिक-खर्च की प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया और कहा, "यदि यह रहे ही तो इसकी पूर्ति पहले तो फिर से तट-कर लगाकर की जाय, दूसरे उन सरकारी और गैर-सरकारी लोगों पर

लाइसेन्स-टैक्स लगाया जाय जो इस समय इससे वरी हैं, किन्तु इस वात का ध्यान रक्खा जाय कि कर निर्धारित करने की निम्नतम सीमा काफी ऊँची हो।" अगले वर्ष इस विना पर भारतीयों को सैनिक-स्वयंसेवक वनाने की प्रथा जारी करने पर जोर दिया गया, कि यूरोप की इस समय जो अस्त-व्यस्त हालत है उसमें यदि कोई खतरनाक वक्त आ जाय तो वे (ब्रिटेन की) सरकार के लिए वड़े सहायक सिद्ध होंगे। तीसरे साल भारत की राजभक्ति और १८५८ की घोषणा में महाराणी विक्टोरिया द्वारा दिये गये वचन के आधार पर, सेना-विभाग की ऊँची नौकरियों का दरवाजा भारतीयों के लिए भी खोलने का मतालवा किया गया। इसके लिए कांग्रेस ने देश में सैनिक-कॉलेज की स्थापना करने के लिए कहा। चौथे और पांचवें अधिवेशनों में पहले के प्रस्तावों की पुष्टि की गई। छठे में कोई विचार नहीं हुआ, पर सातवें में इस पर चर्चा हुई और सरकार से यह आग्रह करते हुए कि वह 'भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारत-वासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य वनावे कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें' मतालवा किया गया कि वह शस्त्र-विधान के नियमों में ऐसा संशोधन करे कि वे वर्म, जाति या वर्ण के भेद-भाव वगैर सव पर एक-समान लागू हों, साम्राज्य के जिस-जिस भाग में अधिक सैनिक-प्रवृत्ति के लोग हों वहां-वहां अनिवार्य सैनिक-सेवा की पद्धति प्रचलित करके उनका संगठन किया जाय और भारत में सैनिक-विद्यालयों (कॉलेज) की स्थापना एवं सैनिक-स्वयंसेवकों की भर्ती की प्रथा प्रारम्भ की जाय। इन प्रार्थनाओं और विरोधों के होते हुए भी सैनिक-व्यय में उलटे असाधारण वृद्धि हुई; तव आठवें अधिवेशन में कांग्रेस को यह मांग पेश करनी पड़ी कि इस व्यय का एक हिस्सा इंग्लैण्ड को भी वरदाश्त करना चाहिए। नवें अधिवेशन ने इस विषय के सामाजिक पहलू अर्थात् भारत की फौजी छावनियों में होनेवाली वेश्यावृत्ति एवं छूत की वीमारियों पर विचार किया; और दसवें अधिवेशन ने उसी प्रस्ताव की फिर पुष्टि की। १८९४ में वेल्वीकमीशन नियुक्त हुआ, जो कि सैनिक-व्यय को इंग्लैण्ड और भारतवर्ष के वीच विभक्त करनेवाला था। ग्यारहवें और वारहवें अधिवेशनों में इस सम्बन्धी कोई विचार नहीं हुआ, परन्तु सीमाप्रान्त में सरकार ने जो नीति ग्रहण की उसके फलस्वरूप तेरहवें अधिवेशन में इसपर फिर विचार हुआ और सरकार से कहा गया कि इस व्यय में इंग्लैण्ड को भी हिस्सा वटाना चाहिए। चौदहवें अधिवेशन ने भी ऐसा ही निश्चय किया। परन्तु पन्द्रहवें अधिवेशन ने इसके एक नये पहलू को स्पर्श किया और कहा, "चूंकि सैनिकों की एक वड़ी संख्या भारतवर्ष के वाहर भेजी जाना उचित समझा जाता है, इसलिए इस काम के लिए रक्खे जानेवाले २०,००० ब्रिटिश-सैनिकों का

खर्च ब्रिटिश-सरकार को बर्दाश्त करना चाहिए।" सीमाप्रान्त की लड़ाई ख़तम हो जाने पर, सोलहवें अधिवेशन में, कांग्रेस फिर सैनिक-विद्यालय के प्रश्न पर ही जा पहुँची। १६०२ के सत्रहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने, अपने पन्द्रहवें अधिवेशन के ही आधार पर, सैनिक-व्यय को भारत और इंग्लैंड के बीच विभक्त करने की मांग रक्खी। आखिर १८६४ के वेल्बीकमीशन की रिपोर्ट के फलस्वरूप भारत को थोड़ी-बहुत छूट मिली। परन्तु ब्रिटिश-सैनिकों की तनख्वाहों में ७,८६,००० पौण्ड सालाना की बढ़ती करके उससे भी ज्यादा भारी नया बोझ भारत के सिर लाद दिया गया। अठारहवें अधिवेशन में इसका विरोध किया गया।

उन्नीसवें अधिवेशन में इस प्रश्न पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया और बताया गया कि १८५६ में सेना को मिला देने की योजना से भारत को कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। भारतीय सैनिक नीति की आलोचना करते हुए कहा गया कि "देशी दुश्मनों से रक्षा करने या सीमा पर के लड़ाकू लोगों के आक्रमण से रक्षा करने के लिए नहीं बल्कि पूर्व में ब्रिटिश-सत्ता को बनाये रखने के लिए वह बरती जा रही है और भारत की सेना में ⅓ संख्या ब्रिटिश सैनिकों की है, इसलिए इंग्लैण्ड को उसके खर्च में अवश्य हिस्सा बटाना चाहिए।" लॉर्ड कर्जन की तिब्बत पर चढ़ाई करने की उग्र नीति इस समय अमल में आ रही थी। हालांकि १८५८ के कानून में भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष की कानूनी सीमा के बाहर विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के सिवा दूसरे किसी काम में पार्लमेण्ट की स्वीकृति बगैर खर्च न करने' का नियम था, परन्तु लॉर्ड कर्जन ने तिब्बत की चढ़ाई को 'राजनैतिक कार्य' बताकर उसकी भी उपेक्षा कर दी। और अब, १६३५ में, हम देखते हैं कि भारतीय शासन-सुधारों के कानून ने बहुत साल से प्रचलित नियम के इस भंग को जायज करार दे दिया है। बीसवें अधिवेशन में कांग्रेस ने लॉर्ड कर्जन की इस करतूत का विरोध किया और बताया कि सेना का पुनस्संगठन करने की लॉर्ड किचनर की योजना के फलस्वरूप, जिसके लिए एक करोड़ पौण्ड का अतिरिक्त व्यय हो रहा है, भारत का सैनिक-व्यय बढ़ते-बढ़ते असहनीय होता जा रहा है। लॉर्ड कर्जन के कार्य-काल के बढ़ाये हुए समय के आखिरी दिनों में (१६०५) लॉर्ड किचनर और उनके बीच इस बात पर तीव्र मतभेद हो गया कि सेना पर गैर-फौजी अधिकारियों का नियंत्रण रहे या नहीं। लॉर्ड कर्जन चाहते थे कि नियंत्रण रहे और लॉर्ड किचनर इसके सख्त खिलाफ थे।

बनारस के अपने इक्कीसवें अधिवेशन में (१६०५) कांग्रेस ने इस बात का विरोध किया कि प्रचलित नीति में, जिसके कि द्वारा फौजी अधिकारियों पर गैर-फौजी

अर्थात् मुल्की अधिकारियों का नियंत्रण होता था, किसी प्रकार परिवर्त्तन किया जाय और एक बार फिर इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि यहां का सैनिक-व्यय पूर्व में ब्रिटिश-साम्राज्य की सत्ता बनाये रखने की ब्रिटिश-नीति को ध्यान में रखते हुए निश्चित किया जाता है। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया कि सेना पर मुल्की अधिकारियों का नियंत्रण तभी पूरी तरह हो सकता है जब कि कर-दाताओं को उस नियंत्रण पर असर डालने की स्थिति में रक्खा जाय। १९०६ के राष्ट्रीय नव-चैतन्य के समय भी साल-दर-साल सामने आनेवाले इस दुस्साध्य विषय को भुलाया नहीं गया। उसमें इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया गया कि पिछले बीस वर्षों में भारत का सैनिक-व्यय १७ करोड़ से बढ़कर ३२ करोड़ सालाना, अर्थात् करीब-करीब दुगुना हो गया है—और यह वह समय है कि जिसके अन्दर भारत में ऐसे सत्यानाशी दुर्भिक्ष पड़े कि जैसे पहले शायद ही कभी हुए हों और कम-से-कम २ करोड़ २२ लाख व्यक्ति भोजन के अभाव में काल के ग्रास हुए।

१९०८ में कांग्रेस ने जोरों के साथ ३,००,००० पौण्ड के उस नये भार का विरोध किया जो रोमर-कमिटी की सिफारिश पर ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने भारतीय कोष पर लाद दिया था, और ब्रिटिश-सरकार से प्रार्थना की कि "इतने दिनों के अनुभव की सहायता से १८५९ की सेना को मिलाने की नीति में परिवर्त्तन करने की आवश्यकता है और इस बात की आवश्यकता है कि इस सम्बन्ध में एक उचित और न्यायपूर्ण सिद्धान्त निर्धारित किया जाय, जिससे भारतीय कोष पर से इस तरह का अनुचित भार उठ जायं।" १९०९ और १९१० में साल-दर-साल बढ़ते जानेवाले सैनिक-व्यय की आलोचना की गई। १९१२ और १९१३ के अधिवेशनों में सेना-विभाग के उच्च पद भारतीयों को न देने के अन्याय की ओर पूर्ण ध्यान आकर्षित किया गया।

१९१४ में कांग्रेस ने अपनी इस मांग को फिर से दोहराया कि सेना-विभाग की ऊँची नौकरियां भारतवासियों को भी मिलनी चाहिएँ, सैनिक स्कूल-कॉलेज खोले जायँ और भारतीयों को सैनिक-स्वयंसेवक बनाया जाय। ड्यूक ऑफ कनाट ने इनमें पहली दो बातों का समर्थन किया। लॉर्ड किचनर कहते हैं, भारतीयों को मेजर तक के पद देने को तैयार थे, और यह भी व्यर्थ ही आशा की गई कि १९११ में सम्राट् इसकी घोषणा कर देंगे। वैसे सैनिक-स्वयंसेवक बनने की उन दिनों भारतवासियों के लिए कोई मुमानियत नहीं थी। कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में जब पहले-पहल यह प्रश्न उठा तो श्री एस० वी० शंकरम् ने बताया था कि वह सैनिक-स्वयंसेवक हैं। स्वयं श्री वी०

एन० शर्मा भी, जो १९२० में वाइसराय की कार्य-कारिणी के सदस्य बनाये गये, सैनिक-स्वयंसेवक थे। परन्तु १८९८ में भारतीय स्वयंसेवकों के नाम खारिज कर दिये गये और १९१४ में केवल ईसाइयों को ही स्वयंसेवक बनाने का नियम रह गया। इस तरह भारतवासियों के साथ बड़ा भारी अन्याय किया गया। लेकिन १९१७ में भारत-वासियों पर से सेना की 'कमीशन्ड' जगहें मिलने की बाधा हटा ली गई और नौ भारतवासियों को ऐसी जगहें दी भी गई, जिससे उस अन्याय की आंशिक पूर्ति हुई।

क़ानून और न्याय

कांग्रेस में शुरुआत से ही ऊँचे दर्जे के कानूनदाओं का प्राधान्य रहा है। इस-लिए सर्व-साधारण के कानूनी अधिकारों की ओर स्वभावतः उसका विशेष ध्यान रहा है। लेकिन न तो सार्वजनिक अनुभव और न नौकरशाही दमन, किसी ने भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाया है कि हमारे देश में जो कानून और अदालतें हैं, वे ऐसे हैं कि जैसे किसी देश की साधारण दशा में हुआ करते हैं और जिनका आदर स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता हो। जब लोगों में जागृति होकर उन्हें इनसे प्राप्त होनेवाले अधिकारों का भान होता है, अर्थात् जब देश या जाति की निद्रा समाप्त होकर उसमें राष्ट्रीय चैतन्य का प्रारम्भ होता है, तब उनके बाहरी रूपों और कार्य-विधियों का खोखलापन तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है। यही बात उस समय हुई, जब कि मुकदमे में जूरी-द्वारा विचार होने की प्रथा सम्पूर्ण रूप से प्रचलित करने के बाद १८७२ में सरकार ने उसमें यह बन्दिश लगा दी कि जूरी का मत अन्तिम निर्णय न समझा जायगा और दौरा जज तथा हाईकोर्ट उनके बरी करने के फैसलों को रद कर सकेंगे। दूसरी ही कांग्रेस में (कलकत्ता, १८८६) इस बन्दिश को हानिकारक बताकर तुरन्त उठा देने के लिए कहा गया। साथ ही न्याय-प्रथा में प्रस्तावित अन्य उन्नति-विरोधी फेरफारों का भी विरोध किया गया। इसके बाद समय-समय पर कांग्रेस अपनी इस प्रार्थना को दोहराती रही, लेकिन नतीजा आजतक भी कुछ नहीं निकला।

जूरी के अधिकारों का प्रश्न तो आवश्यक था ही, परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता शासन और न्याय-कार्यों के पृथक्करण की थी; क्योंकि एक ही व्यक्ति के हाथ में दोनों कार्य रहने से वही तो शासक होता है और वही निर्णायक—वही मुकदमा चलाता है और वही जूरी व जज का काम करता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति सर्वाधिकार-सम्पन्न बन जाता है।

ब्रिटिश-भारत में इस सुधार के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय के समय

शुरू हुआ, जिन्होंने अन्य विषयों के साथ इस विषय में भी एक आवेदनपत्र पार्लमेण्ट में पेश किया था और एक पार्लमेण्टरी कमिटी में गवाही देने के वाद अस्सी वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में ही जिनकी मृत्यु हुई। इस सम्वन्धी इतिहास से यह साफ जाहिर होता है कि मौजूदा परिस्थिति इतनी प्रतिकूल है कि ऐसे आवश्यक सुधार भी हम नहीं करा सकते। और तो और पर गवर्नर-जनरल लॉर्ड डफरिन, भारत-मंत्री, लॉर्ड क्रॉस तथा लॉर्ड किम्वरली, और भारत-सरकार के होम मेम्वर सर हार्वे एडम्सन ने भी मुख्तलिफ समयों में कांग्रेस के इस प्रस्ताव (अर्थात् न्याय और शासन-कार्यों को एक दूसरे से पृथक् करने) का औचित्य स्वीकार किया है; और सर हार्वे एडम्सन ने तो सरकार की ओर से १९०८ में यह वादा भी किया था कि परीक्षा के तौर पर यह आजमाया जायगा। लेकिन अवतक भी न्याय और शासन-कार्य सम्मिलित रूप से एक ही अफसर के सुपुर्द हैं। राजा राममोहन राय के वाद उत्साही कार्यकर्त्ताओं के एक दल ने, जिसमें श्री दादाभाई नौरोजी सवसे प्रमुख थे, इस प्रश्न को हाथ में लिया; और इसके लिए वंगाल, वम्वई व मदरास में संघ वनाये गये, जिनमें वंगीय राष्ट्र-संघ खास तौर पर उल्लेखनीय है। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ इस आन्दोलन का प्रसार और जोर-शोर वढ़ा; और १८८५ में कांग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी यह राय जाहिर की, कि शासन और न्याय-कार्यों का शीघ्र एक-दूसरे से पृथक् होना आवश्यक है। तीसरे अधिवेशन में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा कि ऐसा करने में खर्च वढ़ाना पड़ता हो तो भी इसमें देरी न की जाय। अगले साल यह विषय और जूरी-प्रथा का प्रश्न, दोनों एक-साथ कर दिये गये और प्रतीत होने लगा कि एक सर्वाशयी प्रस्ताव में ही अव उनका भी प्रवेश हो जायगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। साल-दर-साल कांग्रेस इस प्रस्ताव को दोहराती रही और १८९३ में तो यहां तक कह दिया कि न्याय और शासन-कार्यों का सम्मिश्रण "भारतवर्ष के ब्रिटिश-शासन के लिए एक वड़ा कलंक है, जिससे देश-भर के समस्त जाति और समाजवाले लोगों को वेहद तकलीफ उठानी पड़ती है।" यही नहीं, "किसी दूसरे जरिये की आशा न देखकर, नम्रतापूर्वक भारत-मंत्री से प्रार्थना की गई कि इस सम्वन्धी उपयुक्त योजना वनाने के लिए वह हरेक प्रान्त में एक-एक कमिटी नियुक्त करने का हुक्म निकाल दें।" भला कांग्रेस कितनी भोली-भाली थी, अथवा कहना चाहिए कि आपे से वाहर हो गई थी, कि जो सरकार सुधार करने को ही तैयार नहीं थी, उससे भी यह आशा की कि वह उस सुधार-सम्वन्धी विस्तृत योजना को तैयार करने के लिये कमिटी वनायेगी! इससे इस वात का पता लगता है कि कांग्रेसवाले कितनी

शून्यता अनुभव करने लग गये थे और उनकी आंखों के सामने कैसा अँधेरा छा गया था। १६०८ तक कोई अमली तरक्की नहीं दिखाई दी; क्योंकि उसी साल कांग्रेस ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि बंगाल प्रान्त के लिए सरकार ने कुछ निश्चित रूप में इस बात को स्वीकार कर लिया है—लेकिन, बारह महीने पूरे भी नहीं हो पाये थे कि कांग्रेस को अपनी निराशा का पता लग गया, 'क्योंकि अमली कार्रवाई इस दिशा में कुछ भी नहीं की गई।' इसके बाद लगातार दो अधिवेशनों में इसी निराशा का राग अलापा गया।

जरी के अधिकार कम करने और न्याय व शासन-कार्य सम्मिलित रखने के पुराने घाव अभी हरे ही थे और उनमें सुधार होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे, कि १८९७ में एक नया घाव और कर दिया गया। १८१८ का तीसरा रेग्युलेशन (बंगाल), १८१९ का दूसरा रेग्युलेशन (मदरास) और १८२७ का पच्चीसवां रेग्युलेशन (बम्बई) ये तीन पुराने कानून प्रकाश में आये, जिनके मातहत हर किसी को मुकदमा चलाये बगैर ही जलावतन किया जा सकता था। सरदार नातू-बन्धुओं पर इस शस्त्र का प्रयोग किया गया, जो १८९७ के कांग्रेस-अधिवेशन होने के वक्त ५ महीने से अधिक समय से जेल में थे। कांग्रेस यह देखकर दंग रह गई, क्योंकि गिरफ़्तारी से पहले उनको वैसा नोटिस भी नहीं दिया गया था जो कि इन रेग्युलेशनों के मातहत भी देना जरूरी था।

१८९७ का साल हर तरह प्रतिक्रिया का साल था। लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में ऐसे लेख प्रकाशित करने पर सजा दी गई जो खुद उनके लिखे हुए नहीं थे। पूना में ताजीरी पुलिस तैनात की गई और कानून की राजद्रोह (दफा १२४ ए) तथा खतरे की झूठी अफवाहें फैलाने-सम्बन्धी (दफा ५०५) धाराओं में ऐसा संशोधन किया गया जिससे वे और भी कठोर हो गईं। कांग्रेस ने सर्वसाधारण के अधिकारों पर किये जानेवाले इस आक्रमण का विधिवत् विरोध किया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी विशेष शैली से इसका जोरदार विरोध करते हुए कहा था :—

"अंग्रेजों ने अपने लिए मैग्नाचार्टा और हैबियस कार्पस प्राप्त किये हैं। इनके द्वारा उन्हें जो सुविधायें प्राप्त हैं वे सिद्धान्त-रूप से उनके गौरवपूर्ण विधान में सम्मिलित हैं। पर मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती कि, वह शासन-विधान हमारा भी पैदायशी हक है। हम ब्रिटिश-प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश-प्रजाजनों को जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके हम भी हकदार हैं। इन अधिकारों को हमसे कौन छीन सकता है? हमने निश्चय कर लिया है और कांग्रेस इस बात का प्रण करेगी, आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे। इस सभा-भवन से निकल

कर उसकी ध्वनि भारत-भर की जनता में फैलेगी कि हम इस वात के लिए तुल गये हैं, इस वात पर जोर देने में हम किसी भी वैध उपाय को वाकी नहीं छोड़ेंगे, कि ईश्वर की छत्र-छाया में ब्रिटिश-प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वही अधिकार हैं जो अन्य ब्रिटिश प्रजाजनों के हैं और उनमें भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार किसी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।"

दायमी वन्दोवस्त, आवियाना, गरीबी और अकाल

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि कांग्रेस ने सवसे पहले नहीं तो भी अपनी शुरुआत में ही थोड़े-थोड़े समय के लिए होनेवाले जमीन के वन्दोवस्त पर ध्यान दिया, जिसमें सदा लगान-वृद्धि होती रहने से रैयत को वड़ी कठिनाई होती है। इलाहावाद में (१८८८) होनेवाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन ने अपनी स्थायी (स्टैण्डिंग) समिति को यह काम सौंपा कि वह इस सम्वन्ध में विचार करके १८८९ के अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट पेश करें। १८८९ में वावू वैकुण्ठनाथ सेन ने इसका उल्लेख करते हुए वताया कि १८६० में दुर्भिक्ष के कारणों की जांच के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था, उसने दायमी वन्दोवस्त की सिफारिश की थी, जिसे भारत-मंत्री ने भी १८६२ के अपने खरीते में मंजूर कर लिया था। साथ ही उन्होंने यह भी वताया कि कभी-कभी तो लगान में वढ़ाई हुई रकम गांव में पैदा होनेवाली फसल से भी वढ़ जाती है जैसा कि मि० (वाद में सर) ऑकलैण्ड कॉल्विन के सामने आये एक मामले से मालूम पड़ता है। डॉ० वेसेण्ट ने अपनी पुस्तक में इस सम्वन्धी यह मनोरंजक उदाहरण दिया है :—

"वर्तन में पानी तो उतना ही है जितना पहले था; परन्तु अव उसमें पानी निकलने के एक की जगह छः छेद हो गये हैं।

"हमारे पास पशुओं की कमी नहीं है, चरागाहों की और उनकी तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक नमक की भी वहुतायत है; परन्तु अव जंगलात के महकमे ने सारी जमीन पर क़ब्जा कर लिया है, जिससे हमारे पास चरागाह नहीं रहे और यदि भूखों मरते पशु चारे की जगह अनाज के खेत में भटक कर चले जाते हैं तो उन्हें कांजीहाउस में वन्द करके हम पर जुर्माना किया जाता है।"

"अपने मकानों, हलों तथा हर तरह के खेती के सभी कामों के लिए हमारे पास लकड़ी की वहुतायत है; लेकिन अव उस सव पर जंगल-विभाग का ताला पड़ा हुआ है। जहां हमने उसे विला इजाजत छुआ नहीं कि हम सरकारी शिकंजे में आये

नहीं। अब तो हमें एक भी लकड़ी चाहिए तो उसके लिए हफ्ते-भर तक एक से दूसरे अफसर के पास भागना पड़ेगा और हर जगह खर्च-ही-खर्च करना होगा; तब कहीं जाकर वह मिलेगी।

"पहले हमारे पास हथियार थे, जिनसे खेती को नुकसान पहुँचानेवाले जंगली जानवरों को हम मार या भगा सकते थे; पर अब हमारे सामने ऐसा शस्त्र-विधान है, जो विदेशों से यहां आनेवाले एक हब्शी को तो हर तरह के हथियार रखने की इजाजत देता है, पर जिन गरीब किसानों को अपने गुजारे के एकमात्र सहारे खेती की जंगली जानवरों से रक्षा करने के लिए उनकी जरूरत है उन्हें कसम खाने को भी एक हथियार नहीं मिलता।"

१८९२ में कांग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिए कहा, "जिससे कि देश की कृषि को उन्नत करने के लिए पूंजीपति और मजदूर मिलकर काम कर सकें," और कृषि-सम्बन्धी बैंकों की स्थापना के लिए प्रार्थना की। अगले साल भारत-मंत्री द्वारा दिये गये उन वचनों की पूर्ति करने के लिए कहा गया, जो उन्होंने अपने १८६२ और १८६५ के खरीतों में दायमी बन्दोबस्त के लिए दिये थे। १८९६ में कांग्रेस ने अपने रुख को और भी नरम किया और प्रार्थना की कि एक के बाद दूसरा बन्दोबस्त करने में कम-से-कम ६० साल का फासला तो रक्खा ही जाय—अर्थात्, मियादी बन्दोबस्त ही हो तो वह भी कम-से-कम ६० साल के लिए तो हुआ ही करे। २२ दिसम्बर १९०० को भारत-सरकार ने, अपने रेवेन्यू और कृषि-विभाग के द्वारा, इस सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसके चौथे पैरेग्राफ पर प्रकट किये गये प्रान्तीय सरकारों के विचार प्रकाशित करने के लिए कांग्रेस ने कहा। १९०३ में कांग्रेस इससे भी आगे बढ़ी और लगान अधिक न लगाया जाय, इसके लिए कानूनी व अदालती रुकावटें लगाने के लिए कहा। १९०६ में कांग्रेस ने लॉर्ड कैनिंग और लॉर्ड रिपन की नीति से, जो उन्होंने क्रमशः १८६२ और १८८२ में लगान पर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध में प्रतिपादित की थी, १९०२ में एक प्रस्ताव-द्वारा घोषित लॉर्ड कर्जन की नीति की तुलना करके दोनों को परस्पर-विरोधी बताया और इस विचार का विरोध किया कि भारतवर्ष में जमीन का लगान 'कर' नहीं बल्कि 'किराया' है। १९०८ में भी इसी तरह का एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद निराश होकर अपने आप कांग्रेस ने इस विषय को छोड़ दिया।

१८९६ के दुर्भिक्ष की परिस्थिति के कारण कांग्रेस को सरकार की आर्थिक नीति का सिंहावलोकन करना पड़ा। उसने सरकार पर अन्धाधुन्ध सैनिक-व्यय करने

का दोप लगाया और दुर्भिक्षों को, उस खर्च की पूर्ति के लिए, लोगों पर लगाये जाने-वाले अत्यधिक कर और भारी लगान का वाइस वतलाया। दूसरा कारण सरकार की उपेक्षा से देशी और स्थानीय कला-कौशल एवं उद्योग-धंधों का प्रायः नष्ट हो जाना वतलाया गया। सरकार से कहा गया कि वह अकालरक्षक कोष वनाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करे। दायमी वन्दोवस्त और कृपि सम्वन्धी वैंकों तथा कला-कौशल-सम्वन्धी स्कूलों की स्थापना को गरीवी दूर करने का असली उपाय वतलाया गया। इसके वाद ही एक अकाल-कमीशन वैठाया गया। इसी वीच अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए व्रिटेन और अमरीका से आई हुई उदारतापूर्ण रकमों के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए कांग्रेस ने १,००० पौण्ड की रकम लन्दन के लॉर्ड मेयर के पास भेजने का निश्चय किया, ताकि लन्दन के किसी प्रमुख स्थान में वह प्राप्त-सहायता के लिए भारतीयों की कृतज्ञता का सूचक एक स्मारक वना दें। यह १८९८ की वात है। लेकिन ऐसा करते हुए, कांग्रेस ने उन असली उपायों की उपेक्षा नहीं की जिनका वह प्रतिपादन करती आ रही थी; और १८९९ में एक वार फिर उसने सरकार पर जोर डाला कि सरकारी खर्च में कमी की जाय, स्थानीय और देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति की जाय, और जमीन का लगान तथा दूसरे करों में कमी की जाय। अगले साल सारे प्रश्न पर और भी व्यापक रूप से विचार किया गया और इस वात की माँग पेश की गई कि भारत-वासियों की आर्थिक अवस्था की जांच कराई जाय। इसके वाद के अधिवेशनों में हम इस विपय पर और कुछ नहीं पाते हैं, जिसका कारण शायद यह है कि वाद के वर्षों में कांग्रेस का दृष्टिकोण पहले से काफी वदल गया था।

कानून जंगलात

जंगलात के कानूनों से हुए नुकसान को अभी हमने अच्छी तरह नहीं समझा है। उनका मुकावला तो लगान और नमक के कर से ही हो सकता है, जिन्होंने लोगों पर असह्य वोझ डाल दिया। जैसा कि १८९१ के नागपुर-अधिवेशन में मि० पाल पीटर पिल्ले ने वताया था, कलम की एक ही रगड़ में सरकार ने रैयत के स्थायी अधिकारों को नष्ट करके ग्रामीण समाज-व्यवस्था में उलट-पलट कर दी। जैसा कि डॉ० वेसेण्ट ने कहा, इस वात में सन्देह की वहुत कम गुंजाइश है कि देहातियों को व्रिटिश-शासन के वखिलाफ जितना इन कानूनों ने किया उतना और किसी चीज ने नहीं। एक उत्तरी आर्काट के ही जिले में, १८९१ में, नौ महीने के अन्दर ३,००,००० पशु मर गये। रैयत को प्रकृति के द्वारा मिलनेवाली सर्वोत्तम सौगातें इनके द्वारा

उनसे छिन गईं। "आपकी जमीन है तो पहाड़ी पर, पर आप वहां के झाड़-झड़ूकों जैसी जंगली चीजों का उपयोग नहीं कर सकते—यहां तक कि अपने पैदा किये हुए पेड़ों की पत्तियां तक आप की नहीं हैं।"

१८९२-९३ में बड़ी नम्रता के साथ भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जंगलात के कानूनों से जो कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं—खासकर दक्षिण-भारत और पंजाब के पहाड़ी इलाकों में 'उनकी जांच कराई जाय। पंजाब सरकार ने इस सम्बन्धी जो नियम बनाये वे इतने कठोर और अन्यायपूर्ण थे कि नवें अधिवेशन में पं० मेघनराम ने उन्हें 'अत्यन्त स्वेच्छाचारी और किसी भी सभ्य सरकार के लिए कलंक-रूप बतलाया। इनके अनुसार अगर कहीं आग लग जाती, फिर वह चाहे आकस्मिक हो या किसी दूसरे ने लगाई हो, तो उसके लिए वही व्यक्ति जिम्मेवार माना जाता जो उस जमीन का मालिक होता या उस समय उसपर काबिज होता; और उसके साथ उसी तरह का व्यवहार होता, मानों उसने जान-बूझकर कानून की परवाह न की हो। जिन पहाड़ी लोगों के लिए पहाड़ों पर पैदा होनेवाली घास और लकड़ी ही सब-कुछ थी, उसीपर उनकी और उनके पशुओं की जिन्दगी का दारोमदार था, उनके लिए उसे लेने की मनाही कर दी गई। यहां तक कि जंगल में तापने के लिए वे आग भी नहीं जला सकते थे। इसके विरुद्ध हुए आन्दोलन के फलस्वरूप २० अक्तूबर १८९४ को भारत-सरकार ने नं० २२ एफ का एक गश्ती प्रस्ताव प्रकाशित किया जिसमें जंगलों के प्रबंध में रैयतों की कृषि-सम्बन्धी आवश्यकता के सामने आर्थिक प्रश्नों को कम महत्त्व देने का सिद्धान्त स्वीकार किया था।

इसपर कांग्रेस ने, अपने दसवें अधिवेशन में, आग्रह किया कि "तीसरे और चौथे वर्ग के जंगलों में जलाने की लकड़ी, पशु चराने के अधिकार, पशुओं के खाने की चीजें, मकान और खेती के औजार बनाने के लिए सागौन और खाने की जंगली चीजें आदि—उचित प्रतिबन्धों के साथ—हर हालत में मुफ्त दी जायें; और जंगलों की सीमायें इस तरह निश्चित की जायें कि जिसमें किसानों को इस महकमे के कर्मचारियों से तंग हुए बिना अपने जातीय (सामूहिक) अधिकारों के उपभोग करने की छूट रहे।" ग्यारहवें और चौदहवें अधिवेशनों में इस बात पर जोर दिया गया कि जंगलात के कानूनों का उद्देश 'जंगलों की आमदनी का जरिया बनाना नहीं बल्कि किसानों और उनके पशुओं के लिए उन्हें रक्षित रखना है। लेकिन १८९९ के बाद के अधिवेशनों में, जंगल-सम्बन्धी कोई प्रस्ताव पास नहीं हुआ। सिर्फ एक बड़ा प्रस्ताव बनाया जाता था जिसके एक अंश के रूप में इसका उल्लेख रहता था।

बात असल में यह हुई कि पुरानी शिकायतों के तो लोग आदी ही हो चुके थे, उनके अलावा जो नई शिकायत उनके सामने आई उसने उनका ध्यान अपनी ओर खींच लिया; फिर बीसवीं सदी की शुरुआत के साथ जो समस्या सामने आई वह पहले से बिलकुल भिन्न प्रकार की थी। अलावा इसके, बोअर-युद्ध और रूस-जापान की लड़ाई ने भी अवश्य ही कांग्रेसवालों के दृष्टिकोण को बदला और जंगलात व आबियाने, नमक व आबकारी के छोटे प्रश्नों से हटाकर उनका ध्यान राष्ट्रीयता एवं स्व-शासन के बड़े प्रश्नों की ओर आकर्षित कर दिया।

व्यापार और उद्योग

ब्रिटिश-शासन में भारतवासियों की जो-जो समस्यायें हैं, उनके खास-खास मुद्दों को कांग्रेस के प्रारम्भिक राजनीतिज्ञों ने भली-भांति समझ तो लिया था; परन्तु वे समस्यायें ऐसी थीं कि उनको हल करने का रास्ता उन्हें हमेशा दिखाई न पड़ता था। यह बात वे जान गये थे कि लंकाशायर के मुकाबले में भारतीय हित छोटे और गौण समझे जाते थे; साथ ही यह बात भी उन्होंने बखूबी जान ली थी कि ग्रामीण दस्त-कारियों और कला-कौशल को चाहे निश्चित रूप से नष्ट न किया जाता हो मगर उनके प्रति लापरवाही जरूर की जाती है। श्री करन्दीकर ने, जो कि श्री केलकर और खापर्डे के साथ लोकमान्य तिलक के एक पक्के अनुयायी थे, बम्बई में हुए कांग्रेस के बीसवें अधिवेशन (१९०४) में इस विषय पर मि० आर्थर बालफोर के आयलैंड पर दिये एक भाषण का नीचे लिखा अंश उद्धृत किया था :—

"एक-के-बाद-एक उसके हरेक उद्योग का या तो शुरुआत में ही गला घोंट दिया गया, या उसे दूसरों (विदेशियों) के हाथ में सौंप दिया गया, अथवा इंग्लैण्डवालों के हित में उसे नियंत्रित कर दिया गया; और जबतक कि सम्पत्ति के तमाम स्रोतों को सीमेण्ट लगाकर बन्द नहीं कर दिया गया और सारा राष्ट्र खेती के काम करने के लिए मजबूर न हो गया, तबतक यही क्रम जारी रहा।"

इससे अधिक दिलचस्प और विचारपूर्ण वह जवाब है जो मुसलमानी-राज से ब्रिटिश-राज की तुलना करते हुए एक राजनीतिज्ञ ने दिया था—"रक्षा, शिक्षा और रेलों के लिहाज से तो अंग्रेजी राज्य अच्छा है; मगर हिन्दुस्तान की समृद्धि के लिहाज से मुसलमानी-राज्य उससे अच्छा था; क्योंकि मुसलमान हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तानी बन गये थे जिससे हिन्दुस्तान की दौलत हिन्दुस्तान में ही रही, लेकिन अंग्रेज लोग यहाँ का धन देश से बाहर ले जाते हैं।" यही बात कांग्रेस के नवें अधिवेशन में, राजा

रामपालसिंह ने अपने मजाकिया ढंग पर, इस प्रकार कही थी, कि "अंग्रेज सिविलियनों ने तो हिन्दुस्तान को मौज-मजा करने का अपना शिकारगाह वना रक्खा है।"

१८९४ में कांग्रेस ने ब्रिटिश-भारत में तैयार होनेवाले सूती माल पर कर लगाये जाने का विरोध किया और अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट किया कि "इस कर का निश्चय करते वक्त लंकाशायर के हितों के सामने भारतीय हितों का वलिदान किया गया है।" इसमें सन्देह नहीं कि अन्यायी कानून के आगे सिर झुकाकर उसकी सख्तियों को कम करने का प्रयत्न करने की मनोवृत्ति देश में सदा रही है। अतः इस विषय में भी कांग्रेस ने कहा :—

"यदि इस तरह कर लगाने की व्यवस्था करनेवाला विल कानून वन जाय तो, उस हालत में, कांग्रेस यह प्रार्थना करती है कि भारत-सरकार विना विलम्व के विल के अनुसार मिले हुए अपने उन अधिकारों से काम लेने की भारत-मंत्री से अनुमति ले जिसके द्वारा २० से २४ नं० तक का सूती माल इस कानून के क्षेत्र से वाहर हो जाता है।"

ग्यारहवें अधिवेशन में घोषणा की गई कि २० नं० से नीचे के भारतीय सूती माल को कर से मुक्त रखने पर लंकाशायरवालों ने जो आपत्ति की है वह वे-वुनियाद है। १९०६ में, दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में, कलकत्ता में कांग्रेस का जो प्रसिद्ध अधिवेशन हुआ उसमें पं० मदन मोहन मालवीय ने कहा, कि "हमारे देश का कच्चा माल देश से वाहर चला जाता है और विदेशों से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत में हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगों का संरक्षण करते, जिस प्रकार कि सव देश अपने उद्योगों की शैशवावस्था में करते हैं।"

लो० तिलक ने इस वात पर अफसोस जाहिर किया कि विदेशी माल की सवसे ज्यादा खपत मध्य-श्रेणीवालों में ही है। उन्होंने कहा, "हमारे अन्दर स्वावलम्वन, दृढ़-निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए।" स्वदेशी की भावना उत्पन्न होने पर, और १९०६ तथा उसके वाद के वर्षों में वहिष्कार-आन्दोलन से उसको प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप, भारतवर्ष का ध्यान भारतीय उद्योग-धन्धों के पुनर्जीवन की ओर खिंचा। १९१० में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने स्वदेशी का प्रस्ताव पेश करते हुए श्री रानडे का नीचे लिखा उद्धरण दिया :—

"भारतवर्ष इंग्लैण्ड का ऐसा वगीचा समझा जाने लगा है, जो कच्चा माल पैदा करके ब्रिटिश एजेण्टों की मार्फत ब्रिटिश जहाजों में इसलिए वाहर भेज दे कि ब्रिटिश मजदूरों और ब्रिटिश पूंजी से उसका पक्का माल तैयार हो और ब्रिटिश एजेण्टों द्वारा

भारत के ब्रिटिश-व्यापारियों के पास उसे भेज दिया जाय।"

गांव और उनके उद्योग-धंधों एवं खेती की बरबादी की ओर भी भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान गया। १८९८ में ही पं० मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रक्खा था, कि "सरकार को देशी उद्योग-धंधों एवं कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिए।" और यह बात तो इससे भी पहले (१८९१ में ही) स्वीकार कर ली गई थी कि जंगलात के कानूनों ने गांववालों को बड़ी कठिनाइयों में डाल दिया है। सारे ग्रामीण-समाज में उथल-पुथल होगई है, गांव की कारीगरी नष्ट हो गई है और पशु मर रहे हैं—३ लाख तो सितम्बर १८९१ में ही मर चुके थे। १८९१ की नागपुर-कांग्रेस में, उर्दू में भाषण करते हुए, ला० मुरलीधर ने इस सम्बन्ध में श्रोताओं से बड़ी जोरदार अपील की थी।

कांग्रेस के नवें अधिवेशन में (१८९३) पं० मदनमोहन मालवीय ने अपनी स्वाभाविक शैली में कहा था :—

"आपके जुलाहे कहां हैं? वे लोग कहां हैं जिनका निर्वाह भिन्न-भिन्न उद्योग-धंधों एवं कारीगरियों से होता था? और जो कारीगर साल-दर-साल बड़ी-बड़ी तादाद में इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय देशों को भेजे जाते थे, वे कहां चले गये? ये सब भूत-काल की बातें हो गईं। आज तो यहां बैठा हुआ लगभग प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटेन के बने कपड़ों से ढंका हुआ है और जहां कहीं भी आप जायें, सब जगह विलायती-ही-विलायती माल आपको दिखाई देगा। लोगों के पास सिवा इसके कोई चारा नहीं रहा है कि खेती-बाड़ी के द्वारा बरायनाम अपना गुजारा करें, या जो नाम-मात्र का व्यापार बाकी रहा है उससे टका-धेला पैदा कर लें। सरकारी नौकरियों और व्यापार में पचास साल पहले हमें जो कुछ मिलता था अब उसका सौवां हिस्सा भी हमारे देशवासियों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में भला देश कैसे सुखी हो सकता है?"

यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण रहा है, यह इस बात से स्पष्ट है कि सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हाईकोर्ट की जजी से अवकाश ग्रहण करने के बाद १९१४ में 'गांवों के पुनर्जीवन और कर्जा-संस्थाओं की आवश्यकता' पर बहुत जोर दिया था। १८९९ में ला० लाजपतराय की प्रेरणा पर कांग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एवं उद्योग-धंधों के विचार में लगाया और इसके लिए एक उप-समिति कायम की। इस सब कार्रवाई के फलस्वरूप औद्योगिक प्रदर्शनी की शुरूआत हुई, जो सबसे पहले कलकत्ता-कांग्रेस के साथ १९०१ में हुई। इसके बाद क्रमशः इसमें उन्नति होती गई और अब खद्दर एवं स्वदेशी-प्रदर्शनी के रूप में यह तब्दील हो गई है। इसमें सन्देह नहीं कि उद्योग-धंधों की ओर

कांग्रेस का ध्यान १८९४ में भारतीय सूती माल पर कर लगाये जाने के कारण ही आकर्षित हुआ, जिसका उसी समय उसने विरोध किया; लेकिन हम देखते हैं कि स्वयं गवर्नर-जनरल-द्वारा उसका विरोध किये जाने पर भी वह उठाया नहीं गया। उसे उठाना तो दूर, उलटे लॉर्ड सेल्सबरी ने यह निर्देश किया बताते हैं कि "भारतीय माल की प्रतिस्पर्द्धा से ब्रिटिश माल को बचाने के लिए उपाय किये जायें।" गांवों की गरीबी का जिक्र करते हुए बार-बार जो यह कहा जाता रहा है कि ४ करोड़ व्यक्तियों को रोज एक वक्त खाना नसीब होता है, यह सिर्फ खयाली बात नहीं है। श्री वाचा और मुधोलकर ने बड़ी चिन्ता के साथ गोरे शासकों के उद्धरणों से इस बात को सिद्ध कर दिया है। सर चार्ल्स ईलियट के कथनानुसार, "आधे किसानों को साल की शुरुआत से अन्त तक यह भी पता नहीं होता कि पेट भर कर खाना किसे कहते हैं।" लगान का यह हाल था कि एक छोटे-से जिले में १८९१ में ६६ फी सदी बढ़ा, दूसरे में ९९ फी सदी, और तीसरे में ११६ फी सदी हो गया; और कुछ गांवों में तो ३०० से १५०० फी सदी तक बढ़ा, जब कि इसके साथ-साथ फौजी खर्च भी बेशुमार बढ़ता रहा है।

जर्मनी में फी सैनिक १४५) सालाना खर्च पड़ता है, फ्रांस में १८५) और इंग्लैण्ड में २८५), परन्तु हिन्दुस्तान में प्रत्येक अंग्रेज सैनिक पर ७७५) सालाना खर्च किया जाता है; और यह उस हालत में जब कि फी आदमी की औसत-आमदनी इंग्लैण्ड में ४२ पौण्ड, फ्रांस में २३ पौण्ड और जर्मनी में १८ पौण्ड है और हिन्दुस्तान में सिर्फ १ ही पौण्ड है। ये अंक १८९१ के हैं।

अकालों के बारे में बार-बार प्रस्ताव पास हुए हैं और मजदूरी के सिलसिले में सजा देने के कानून को उठा देने के लिए १८८७ में ही प्रस्ताव किया जा चुका है।

स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य

१९०६ के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया था उसका मूल कारण बंग-भंग था, हालांकि लॉर्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन के कारण वह जागृति इस बंग-भंग की घटना के पहले से भी भीतर ही भीतर गर्भ में बढ़ रही थी। पुण्य-नगरी काशी में जब कांग्रेस का २१ वां अधिवेशन १९०५ ईसवी में हुआ तब उसमें बंग-भंग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया और कहा गया कि वह रद कर दिया जाय। कम-से-कम उसमें ऐसा संशोधन जरूर कर दिया जाय जिससे सारा बंगाली-समाज एक शासन में रह सके। परन्तु बंग-भंग आन्दोलन

को दवाने के लिए जो दमनकारी उपाय काम में लाये गये उनके विपय में इस कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास किया गया वह कुछ गोल-मोल था; क्योंकि एक ओर जहां, उसके द्वारा वंगाल में जारी किये गये दमनकारी उपायों का जोरदार और तत्परता-पूर्वक विरोध किया गया, तहां साथ ही उसमें एक टुकड़ा यह भी जोड़ दिया गया कि "जव वंगाल के लोगों को मजवूर होकर विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार करना पड़ा और वंगाल के लोगों की प्रार्थना और विरोध का खयाल न करके भारत-सरकार वंगाल का विच्छेद करने पर जिस तरह तुली थी, उसे, व्रिटिश-लोगों के ध्यान में लाने का, जव एकमात्र यही वैध उपाय रह गया था.........।" इससे यह साफ नहीं मालूम होता, और शायद यह साफ करने का इरादा भी न हो कि कांग्रेस विदेशी माल के वहिष्कार को पसन्द करती थी या नहीं। एक किस्म की राय भर दे दी गई, जिससे यह मानी निकलते थे कि लोगों के पास शायद दूसरा उचित उपाय वाकी नहीं रह गया था। यह तो जाहिर था कि राष्ट्रीय दल के लोगों को वड़ी आपत्ति होती, अगर कोई ऐसा प्रस्ताव पास किया जाता जो इससे भी कम स्पप्ट होता। परन्तु जैसा-कुछ प्रस्ताव हुआ, उसका समर्थन करते हुए लाला लाजपतराय ने एक वुलन्द आवाज उठाई, "हमने अव गिड़गिड़ाने की नीति छोड़ दी है। हम उस साम्राज्य की प्रजा हैं जहां लोग उस पद को प्राप्त करने के लिए, जो उनका हक है, लड़-झगड़ रहे हैं।" १९०५ में जिस साहस का अभाव था वह १९०६ में आ गया। वंग-भंग पर एक प्रस्ताव करने के वाद कांग्रेस ने वहिष्कार-आन्दोलन का भी समर्थन किया। "यह देखते हुए, कि देश के शासन में यहां के लोगों का कुछ भी हाथ नहीं है और वे सरकार से जो प्रार्थनाएँ करते हैं उनपर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इस कांग्रेस की राय है कि वंग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में जो वहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया वह न्याय-संगत था और है।" इसके वाद कांग्रेस ने कुछ नुकसान सहकर भी देशी उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया। वस, गाड़ी यहीं रुक गई। स्व-शासन की कल्पना कुछ शासन-सुधार-विपयक सूचनाओं से आगे नहीं वढ़ी; जैसे—परीक्षाओं का भारत और इंग्लैण्ड में साथ-साथ होना, कौंसिलों का विस्तार करना और उनमें लोक-प्रतिनिधियों की संख्या का वढ़ाया जाना, भारतमंत्री की तथा भारत की कार्यकारिणी कौंसिलों में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति की जाना। वस, १९०६ में भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं का खातमा इसी में हो जाता था। दूसरे साल सूरत में कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये और नरम-दल-वाली कांग्रेस ने तो आगे के सालों में वहिष्कार को कतई छोड़ दिया, सिर्फ स्वदेशी को कायम रक्खा; और स्व-शासन सम्वन्धी प्रस्ताव उतरते-उतरते सिर्फ मिण्टो-मॉर्ले सुधार-

योजना के परीक्षण तक मर्यादित रह गया। १६१० में नये वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग आये। उसी वर्ष कांग्रेस ने राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की अपील उनसे की। दूसरे साल फिर ऐसी अपील की गई। परन्तु १६१४ में जब मदरास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसने साहस करके सरकार से यह मतालबा किया, कि "तारीख २५ अगस्त सन् १६११ के खरीते में प्रान्तीय पूर्णाधिकार के सम्बन्ध में जो वचन दिया गया है उसे पूरा करे, और भारतवर्ष को संघ-साम्राज्य का एक अंग बनाने और उस हैसियत के सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए जो कार्य आवश्यक हों वे सब किये जायें।"

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

कोई यह खयाल करेंगे कि यह साम्प्रदायिक या जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न आजकल ही खड़ा हो गया है। नहीं, सर ऑकलैण्ड कॉल्विन (१८८८) जब संयुक्तप्रांत के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे तबसे इसकी बुनियाद पड़ चुकी है। उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान कांग्रेस के विरोधी हैं। यहां तक कि ह्यूम साहब ने भी इसे महत्त्वपूर्ण समझा और इसके विषय में एक लम्बा जवाब उन्होंने सर ऑकलैण्ड को भेजा। इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस के पहले दो-तीन अधिवेशनों की सफलता ने नौकरशाही के मन में हलचल मचा दी थी, जिसके कि मुख का काम लेफ्टिनेन्ट गवर्नर महोदय ने कर दिया। मुसलमानों पर भी इस विचार का असर तुरन्त ही हुए बिना न रहा। उन्हें सरकारी अधिकारियों का बुजुर्गाना रवैया जरूर अखरा होगा, जैसा कि एक घटना से जाहिर होता है। कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में यूरोपियन लोगों का विरोध होते हुए भी हुआ। उनमें शेख रजाहुसेन खां ने मि० यूल के सभापतित्व के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कांग्रेस के हक में एक फतवा पेश किया, जो कि लखनऊ के सुन्नियों के शम्सुल्उलमा से प्राप्त किया गया था। उन्होंने धड़ल्ले के साथ कहा, कि "मुसलमान नहीं बल्कि उनके मालिक—सरकारी हुक्काम—हैं जो कांग्रेस के मुखालिफ हैं।"

फिर भी वास्तव में लॉर्ड मिण्टो के जमाने में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के खयाल ने मूर्त-रूप धारण किया। हां, इससे पहले लॉर्ड कर्जन ने जरूर जान-बूझकर बंग-भंग के द्वारा और पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग प्रान्त बनाकर, जिसमें कि मुसलमानों का बहुमत हो, यह कलुषित जाति-गत भावना जाग्रत की। यद्यपि लॉर्ड मिण्टो उस घोड़े को आराम पहुँचाने के लिए भेजे गये थे जिसपर लॉर्ड कर्जन ७ साल तक सवारी कसकर उसका दम करीब-करीब निकाल चुके थे; फिर भी जाति-गत भेद

और अंडगांव की वह काठी, जिसपर कर्जन सवार रहते थे, घोड़े की पीठ पर ज्यों-की-त्यों कायम रही। मिण्टो की शासन-सुधार-योजना में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-संघ की तजवीज की गई थी, परन्तु साथ ही संयुक्त-निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यों-का-त्यों कायम रक्खा गया था। संकीर्ण बुद्धि के राजनीतिज्ञों ने उस समय यह बताया कि बंगाल, आसाम और पंजाब की छोटी हिन्दू जातियों को ऐसा विशेषाधिकार नहीं दिया गया। परन्तु यह तो असल में सही रास्ता छोड़कर भटक जाना था। जो बड़ी अजीब बात थी वह तो यह कि भिन्न-भिन्न जातियों के लिए भिन्न-भिन्न मताधिकार रक्खा गया था। एक मुसलमान तीन हजार रुपये साल की आमदनी वाला जहां मतदाता हो सकता था वहां एक गैर-मुस्लिम तीन लाख सालाना आमदनी वाला हो सकता था। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए यह काफी था कि उसे ग्रेजुएट हुए तीन साल हो जायें; परन्तु गैर-मुस्लिम के लिए तीस साल हो जाना जरूरी था। जरा गौर तो कीजिए, एक तरफ तीन हजार रुपये और दूसरी तरफ तीन लाख रुपये! एक तरफ तीन साल और दूसरी तरफ तीस साल। जबतक कोई सार्वजनिक बालिग मताधिकार नहीं मिल जाता है तबतक हम अक्सर ऐसे मतावलम्बों की प्रतिध्वनि सुना करते हैं। मुसलमान दोनों जातियों के लिए मताधिकार के भिन्न-भिन्न स्टैण्डर्ड चाहते हैं जिससे कि मतदाताओं में ठीक-ठीक अनुपात कायम रहे।

१९१० में हालत बहुत नाजुक हो गई। सर डबल्यू० एम० वेडरबर्न कांग्रेस के सभापति हुए थे। आपने यह चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानों की एक परिषद् की जाय, जिससे इस जातिगत प्रश्न पर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपैलिटियों और लोकल-बोर्डों में पृथक् निर्वाचन का तरीका जारी होने की बात चल रही थी। युक्तप्रांत में, जहां कि पृथक् निर्वाचन नहीं था, यह पाया गया कि संयुक्त निर्वाचन में मुसलमानों की संख्या कुल आबादी की $\frac{1}{6}$ होते हुए भी जिला-बोर्डों में मुसलमान १८९ और हिन्दू ४४५ चुने गये और म्युनिसिपैलिटियों में मुसलमान ३१० और हिन्दू ५६२। यहां तक कि सर जॉन ह्यूवेट जैसा प्रतिगामी संयुक्तप्रांत का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर भी उस प्रांत में दोनों जातियों के मेल-मिलाप में खलल डालने के हक में नहीं था। हां श्रीयुत जिन्ना ने जरूर स्थानिक संस्थाओं में पृथक् निर्वाचन प्रचलित करने की निन्दा की थी। एक 'वर्न' सरक्यूलर निकला था, जो कि स्थानिक संस्थाओं में जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्ष में था। उसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन के अलावा संयुक्त निर्वाचन में भी राय देने की सुविधा होनी चाहिए; क्योंकि इससे दोनों जातियों में अच्छे ताल्लुकात कायम रखने में मदद

मिलेगी। इसपर पं० विशननारायण दर ने, जो कि १९११ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति थे, कहा था कि "मैं इतना ही कहूँगा कि हमारी एकता बढ़ाने की यह उत्कण्ठा, हमारे भोलेपन से, बहुत भारी हुण्डी लिखवा लेना है।" उन्होंने यह भी बताया, कि "जब सर डब्ल्यू० एम० वेडरबर्न और सर आगाखां की सलाह के मुताबिक दोनों जातियों के प्रतिनिधि एक साल पहले इलाहाबाद में मिलनेवाले थे, इस उद्देश से कि आपस के मतभेद मिटा दिये जायँ, तब एक गोरे अखबार ने जो कि सिविल सर्विसवालों का पत्र समझा जाता है, लिखा था कि 'ये लोग क्यों इन दोनों जातियों को मिलाना चाहते हैं, सिवा इसके कि दोनों जातियों को मिलाकर सरकार की मुखाल्फित की जाय?' उसका यह वाक्य भारत की राजनैतिक स्थिति पर एक भयानक प्रकाश डालता है।"

१९१३ में नवाब सय्यद मुहम्मदबहादुर ने, जो करांची कांग्रेस (१९१३) के सभापति थे, "यूरोप में तुर्क-साम्राज्य की नींव उखाड़ने और ईरान के दम घोटने के प्रयत्नों" की ओर ध्यान दिलाया था। तुर्की साम्राज्य को लगे उस धक्के को *जिस दुःख के साथ मुसलमानों ने महसूस किया उसीको उन्होंने वहां प्रदर्शित किया।* अन्त में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को अपनी मातृभूमि के लिए कन्धे-से-कन्धा लड़ाकर काम करने पर बहुत जोर दिया। यह हमें १९२१ के खिलाफत-आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमान-सम्बन्धों पर हुए उसके असर की याद दिलाता है। यूरोप के रोगी (१९वीं सदी तक के तुर्किस्तान को यही कहा जाता था) ने अबतक हिन्दुस्तान की राजनीति की गति-विधि को बनाने में बड़ा भाग लिया है। ये स्थितियां थीं जिन में १९१३ की करांची-कांग्रेस में हिन्दू और मुसलमानों ने अपने भेदभाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियों को स्व-शासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू-मुसलमानों के बीच मेल एवं सहयोग का भाव बढ़ाने के मुस्लिम-लीग के कथन को पसन्द किया। कांग्रेस ने मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित इस आशा का भी स्वागत किया कि भिन्न-भिन्न जातियों के नेता राष्ट्रीय हित के तमाम मसलों पर मिलकर एक साथ काम करने का रास्ता निकालने की हर तरह कोशिश करें और सच्चे दिल से हर जाति व तबके के लोगों से प्रार्थना की कि वे इस उद्देश की पूर्ति में हर तरह से सहायता करें।

उस समय कांग्रेसवालों के मनोभाव कैसे ऊँचे उठ रहे थे, इसका पता उन वक्ताओं के भाषणों की बढ़ी-चढ़ी भाषा से लगता है जो करांची में (१९१३) इस विषय के प्रस्ताव पर बोले थे। स्वर्गीय भूपेन्द्रनाथ बसु के भाषण के कुछ अंश हम

यहां उद्धृत करते हैं—"हम हिन्दू-मुसलमान सबको अपना ध्यान एक ही ओर—संयुक्त आदर्श की ओर—लगाना चाहिए, क्योंकि आज का हिन्दुस्तान न तो हिन्दुओं का है, न मुसलमानों का, और न अधगोरों का। तब यूरोपियनों का तो और भी दूर। बल्कि यह वह हिन्दुस्तान है, जिसमें हम सब हिस्सा रखते हैं। अगर पिछले दिनों कोई गलतफहमियां हुई हों, तो हमें अब उन्हें भूल जाना चाहिए। भविष्य-काल का भारत अबसे ज्यादा बलवान्, ज्यादा शरीफ, ज्यादा महान्, ज्यादा ऊँचा, होगा; नहीं-नहीं, वह तो उस भारतवर्ष से भी कहीं उज्ज्वल होगा जिसे अशोक ने अपने राज्य के सम्पूर्ण गौरव में अनुभव किया था और अकबर ने अपने मनोराज्य में जैसा कुछ चित्र भारत का खींच रखा था उससे भी कहीं बेहतर वह भारत होगा।"

एक बार जहां घाव हुआ कि फिर उसमें से मवाद बहता ही रहा। अगर हिन्दुओं ने चुपचाप और राजी-रजामंदी से मुसलमानों को जो-कुछ चाहते थे वह दे दिया होता तो यह प्रश्न कभी का हल हो गया होता। हां, यह सच है कि जैसे-जैसे खाना खाते जायँगे वैसे-वैसे भूख बढ़ती जायगी; परन्तु उसके साथ यह भी सत्य है कि ज्यों-ज्यों ज्यादा खायँगे त्यों-त्यों भूख मरती जाती है। जातिगत प्रतिनिधित्व-संबन्धी मिण्टो-मॉर्ले-योजना हिन्दुस्तान के मत्थे जबरदस्ती मढ़ दी गई थी। लोगों से इसके बारे में कोई सलाह-मशविरा नहीं लिया गया। इसलिए १९१६ में, जब सुधारों के नये टुकड़े देने की तजवीज चल रही थी, देश ने सोचा कि हिन्दू-मुसलमानों का हृदय परस्पर मिल जाना चाहिए और इसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम-लीग दोनों के प्रतिनिधि (नवम्बर १९१६) कलकत्ते में इंडियन एसोसियेशन के स्थान पर मिले—इस उद्देश से कि १९१५ में कांग्रेस ने जो आदेश दिया था उसके अनुसार आपसी समझौते और रजामन्दी से प्रतिनिधित्व की योजना बनाई जाय। इसी समय मुस्लिम-लीग ने स्व-शासन को अपना उद्देश बना लिया था। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की भावनायें जगह-जगह फैल रही थीं। यूरोपीय युद्ध भी खुद छोटे और पिछड़े हुए राष्ट्रों पर इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए ही लड़ा जा रहा था। ऐसी दशा में कलकत्ते में जो बात हो रही थी उसके लिए वातावरण अनुकूल था। परन्तु कांग्रेस के हलके में जो बड़े-बूढ़े लोग थे वे अपनी तरफ से कुछ करने में आगा-पीछा करते थे। फलतः यह काम युवकों पर आ पड़ा। शायद उम्र में सबसे छोटे लोगों ने, जो उस समय मौजूद थे, आगे कदम बढ़ाया। सर सैयद अहमद ने कहा था—"हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तान की दो आंखें हैं। और दो में से एक भी न हो तो मां का चेहरा बदसूरत हो जायगा।" शीघ्र ही देन-लेन की भावना की विजय हुई। जिन

प्रान्तों की संख्या १५ फी सदी से कम हो उनमें कम-से-कम १५ फी सदी प्रतिनिधि कौंसिल में रखना तय हुआ। अब रह गये पंजाब और बंगाल। हमेशा की तरह इनका मामला है तो पेचीदा; परन्तु १९१६ में लखनऊ में सुलझाया गया।

प्रवासी भारतवासी

जहां भारत में भारतीयों की स्थिति काफी खराब थी, तहां दक्षिण-अफ्रीका-स्थित भारतीयों की हालत बद से बदतर हो रही थी। १८९६ ई० में यह कानून बना कि नेटाल, दक्षिण-अफ्रीका, के शर्तबन्द प्रवासी अपने इकरारनामे की अवधि के समाप्त होने पर या तो अपनी गुलामी को फिर नये सिरे से शुरू करावें—कुली बनने का इकरारनामा फिर से भरें, या अपनी वार्षिक आय के आधे भाग के बराबर मनुष्य-कर (पॉल टैक्स) दें। इस प्रसंग पर डॉ० मुंजे के शब्द दोहराना असंगत न होगा, जो उन्होंने लगभग १९०३ में बोअर-युद्ध के सिलसिले में एम्बुलेंस-कोर के साथ की गई अफ्रीका-यात्रा के बाद वहां से आकर कहे थे—"हमारे शासक हमें मनुष्य नहीं समझते।" इसी प्रसंग में श्री वी० एन० शर्मा ने इंग्लैण्ड को यह चेतावनी दी थी कि साम्राज्य में एक जाति की उन्नति या प्रभुता स्थायी नहीं रह सकती। उन्होंने काशी की २१ वीं कांग्रेस (१९०५) में कहा था—"यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बड़े बड़े दार्शनिकों, महान् राजनीतिज्ञों और वीरवर योद्धाओं को उत्पन्न करनेवाली जाति छोटी-छोटी बातों के लिए दूसरी जाति के पांव नहीं पड़ सकती।"

अखिल भारतीय कांग्रेस के सामने सबसे पहले श्री मदनजीत ने दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न उपस्थित किया था। इसमें सन्देह नहीं कि और भी अनेक ऐसे भारतीय मित्र थे, जो समय-समय पर अफ्रीका जाते थे और वहां के पूरे समाचार यहां की जनता तक पहुँचाते थे, लेकिन श्री मदनजीत प्रतिवर्ष इसी उद्देश से आते थे। अपने नारंगी कपड़ों, ठिगने कद तथा लम्बी लाठी के कारण वह कांग्रेस में कभी छिपे न रह सकते थे। हाल ही में बुढ़ापे में हुई उनकी मृत्यु ने राष्ट्रीय सभा से एक परिचित व्यक्ति को उठा दिया है। दक्षिण-अफ्रीका-सम्बन्धी अयोग्यताओं का वस्तुतः पहला विरोध १८९४ में हुआ, जब कि अध्यक्ष ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि औपनिवेशिक-सरकार का वह बिल रद कर दिया जाय, जिसमें भारतीयों को मताधिकार नहीं दिया गया था। इसके बाद हर कांग्रेस में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न अधिकाधिक महत्त्व ग्रहण करता गया और हर साल ही यह आवाज उठाई जाती कि "हमें किस तरह बिना पास के यात्रा करने की और ९ बजे रात के बाद घूमने तक की आजादी

नहीं है, किस तरह हमें ट्रांसवाल में उन वस्तियों में भेजा जाता है जहां कूड़ा-करकट जलाया जाता है, किस तरह हमें रेलों के पहले और दूसरे दर्जे के डिव्बों में वैठने की इजाजत नहीं है, ट्रामकारों से वाहर निकाल दिया जाता है, फुटपाथ से धक्के दे दिये जाते हैं, होटलों से वाहर रक्खा जाता है, सार्वजनिक वाग-वगीचों का लाभ हमें नहीं उठाने दिया जाता, और किस तरह हमपर थूका जाता है, हमें धिक्कारा जाता है, गालियां दी जाती हैं और उन अमानुप तरीकों से अपमानित किया जाता है जिन्हें कोई मनुष्य धीरता-पूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

१८९८ में भारतीयों के अयोग्यता-सम्वन्धी तीन और कानून पास किये जा चुके थे और उसी समय गांधीजी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन शुरू किया। इसमें भी सवसे अधिक अफसोस की वात यह थी कि तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड एल्गिन ने इस कानून के पास होने पर सहमति दी थी और उस समय के भारत-मंत्री लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन हमें 'जंगलियों की जाति' कहकर संतुष्ट हुए थे। १९०० में भूतपूर्व वोअर जनतंत्र व्रिटिश-उपनिवेश में मिला लिये गये थे। १६ वें अधिवेशन (१९००) में इसका निर्देश करते हुए कहा गया था कि स्वतंत्र वोअरों पर नियंत्रण करने में सरकार को जो कठिनाई होती थी वह दूर हो गई है और इसलिए अव नेटाल में प्रवेश-सम्वन्धी पावन्दियां और डीलर्स लाइसैन्स-कानून उठा देने चाहिएँ। १९०१ की १७ वीं कांग्रेस (कलकत्ता) में गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी लाखों भारतीयों की ओर से प्रार्थी के रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्वन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था १९०२ में भारत-मंत्री से इस प्रश्न पर एक शिष्ट-मंडल भी मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। कांग्रस ने १९०३ और १९०४ में अपने प्रस्तावों को दोहराया। व्रिटिश-सरकार के जिम्मेवार हलकों में वोअर-युद्ध के जितने कारण घोपित किये गये थे, उनमें से एक यह भी था कि "व्रिटिश सम्राट् की भारतीय प्रजा के साथ जनतंत्र में दुर्व्यवहार किया जाता है" और यह मांग की गई थी कि "भारतीय प्रवासियों के साथ भी न्याय और समान व्यवहार किया जाय।" कांग्रेस ने इस वक्तव्य की ओर भी सवका ध्यान खींचा। लेकिन १९०५ में हालत और भी खराव हो गई। वोअर-शासन में जिन कानूनों का सख्ती से पालन नहीं होता था, उनका पालन व्रिटिश-शासन में और भी सख्ती से होने लगा। कांग्रेस ने इसका भी तीव्र विरोध किया और शर्तवन्दी कुली-प्रथा तथा अन्य प्रतिवंधक कानूनों को हटाने की मांग की। सरकार ने ट्रान्सवाल में इस आर्डिनेंस को 'फिलहाल' चालू करने की आज्ञा नहीं दी। इससे भारतीयों को संतोप हुआ। लेकिन १९०६ में दक्षिण अफ्रीका के लिए जो शासन-

विधान स्वीकृत किया गया, उसमें एक प्रस्ताव के अनुसार इसके पुनर्जीवन की स्पष्ट संभावना थी। १६०८ में भी भारतीयों के कष्ट दूर नहीं हुए। इन दिनों दक्षिण-अफ्रीका के नये शासन-विधान की पूर्ति हो रही थी। कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि इसको बनाते हुए भारतीय हितों की भी पूरी रक्षा की जाय। १६०८ की २३वीं कांग्रेस (मदरास) में श्री मुशीरहुसेन किदवई ने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें उपनिवेशों में उच्चकुलीन और प्रतिष्ठित भारतीयों तक के साथ होनेवाले कठोर, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार पर रोष प्रकट किया गया था और यह चेतावनी भी दी गई थी कि इसके फल-स्वरूप ब्रिटिश-साम्राज्य के हितों को भारी हानि पहुँचेगी।

१६०६ में कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि उसके सारे अनुरोध, विनय आदि का कोई परिणाम नहीं निकला। इस वर्ष की कांग्रेस में श्री गोखले ने प्रस्ताव पेश करते हुए "अधिकारियों के विश्वास-घात और गांधीजी के नेतृत्व में भारतीयों के लम्बे और शान्त-संग्राम" का वर्णन किया। अब प्रभावकारी आन्दोलन का समय आ चुका था और निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का महान् संग्राम शुरू हुआ। उसी स्थान पर १८,०००) का चन्दा भी इकट्ठा हो गया। इसके अलावा सर जमशेदजी ताता के दूसरे पुत्र श्री रतन ताता ने प्रवासी भारतीयों के कष्ट-निवारण के लिए २५,०००) दिये। कांग्रेस ने २४ वें अधिवेशन (लाहौर १६०६) में इस उदारता के लिए श्री रतन जे० ताता को धन्यवाद दिया। कांग्रेस के आगामी अधिवेशन (इलाहाबाद १६१०) तक निष्क्रिय प्रतिरोध का संग्राम अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। कांग्रेस ने ट्रान्सवाल के उन सब भारतीयों के उत्कट देश-प्रेम, साहस और त्याग की प्रशंसा की, जो अपने देश के लिए वीरतापूर्वक कैद भोगते हुए, अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी, अपने प्रारंभिक नागरिक अधिकारों के लिए शान्तिपूर्ण और स्वार्थहीन लड़ाई लड़ रहे थे।

कांग्रेस का २७ वां अधिवेशन (१६११) अधिक आशामय वातावरण में सम्पन्न हुआ, क्योंकि इसमें रजिस्ट्रेशन और गिरमिट-सम्बन्धी एशिया-विरोधी कानूनों को रद कराने पर ट्रांसवाल के भारतीय समाज और गांधीजी को हार्दिक धन्यवाद दिया जा सका था। लेकिन कांग्रेस ने "हाल ही में हुए प्रान्तीय बस्तियों सम्बन्धी भावी कानून की संभावना में" यह प्रस्ताव पास किया था। अगले साल (१६१२) में भी गिरमिट-कानून की अनेक धाराओं का विरोध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन ने अपने वचनों को तोड़ दिया था। ब्रिटिश सम्राट् से कांग्रेस ने इस कानून को रद कर देने का अनुरोध भी किया। उन दिनों लॉर्ड हार्डिंग

वाइसराय थे। उन्होंने इस मामले में कड़ाई का रुख लिया और उन्हें और अधिक बलशाली बनाने के लिए करांची कांग्रेस ने १९१३ में शर्तबंदी कुली-प्रथा को नष्ट करने का अपना प्रस्ताव दोहराया। इसके बाद शीघ्र ही यह प्रथा तोड़ दी गई और कांग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका के आंशिक समझौते के लिए लॉर्ड हार्डिंग के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, यद्यपि १९१६ और १९१७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार करना पड़ा। करांची-अधिवेशन में गांधीजी तथा उनके अनुयायियों के वीरतापूर्ण प्रयत्नों और भारत के आत्मसम्मान की रक्षा और भारतीयों के कष्ट-निवारण की लड़ाई में किये गये अपूर्व आत्मत्याग की प्रशंसा में एक प्रस्ताव पास किया गया।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने 'लगातार यात्रा-धारा' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा देकर भी भारत के लिए एक मनोरंजक समस्या उत्पन्न कर दी थी। करांची-कांग्रेस ने १९१३ के २८ वें अधिवेशन में इस आधार पर इसका विरोध किया।

"कनाडा की प्रिवी कौंसिल के हुक्म (नं० ९२०) के अनुसार जो आमतौर पर 'लगातार यात्रा-धारा' कहलाता है, वहां जाने की जो मनाही है उसका यह कांग्रेस विरोध करती है; क्योंकि उससे प्रत्येक ऐसे भारतीय के कनाडा जाने की मनाही हो जाती है जो वहां रहने न लग गया हो। क्योंकि दोनों महाद्वीपों के बीच कोई सीधा जहाज नहीं आता-जाता और जहाजवाले सीधा टिकट देने से इनकार करते हैं, जिससे वहां रहनेवाले भारतीय अपने बाल-बच्चों को नहीं ला पाते हैं, इसलिए यह कांग्रेस साम्राज्य-सरकार से प्रार्थना करती है कि उपर्युक्त 'लगातार यात्रा-धारा' रद कर दी जाय।"

गत महासमर छिड़ने के बाद जल्दी ही भारत के इतिहास में एक मजेदार, नवीन और अद्‌भुत घटना हुई। आनेवाली संतति को इस कथा से अनजान न रहना चाहिए। कनाडा की इस धारा को तोड़ने के लिए बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक सिक्ख सज्जन ने 'कोमागाटामारू' जहाज किराये पर लिया और हांगकांग या टोकियो बिना ठहराये ही उस जहाज पर ६०० सिक्खों को कनाडा ले गये।

कोमागाटामारू जहाज के यात्रियों को कनाडा में उतरने नहीं दिया गया और जहाज को भारत में लौटना पड़ा। वापसी पर यात्रियों को बजबज से, जहां वे उतरे थे सीधा पंजाब जाने की आज्ञा दी गई और दूसरी किसी जगह जाने की मनाही कर दी गई। यात्रियों ने सीधे पंजाब जाना पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, पहले सरकार हमारी बात तो सुन ले; हमारे साथ इस हुक्म से अन्याय होता है और इसमें आर्थिक हानि भी बहुत होगी। सीधे पंजाब जाने के बजाय उन्होंने गिरफ्तार हो

जाना अधिक अच्छा समझा। कोमागाटामारू के आदमियों की, जिनमें सिन्ध के प्रो० मनसुखानी (अब स्वामी गोविन्दानन्द) भी थे, शेष कहानी—दंगा कैसे हुआ, कितने आदमी मारे गये या गिरफ्तार हुए, बाबा गुरुदत्तसिंह ७-८ साल तक कैसे गुम रहे और उड़ीसा, दक्षिण भारत, ग्वालियर, राजपूताना, काठियावाड़ और सिन्ध में किस तरह १९१८ तक घूमते रहे, उसके बाद कैसे बम्बई जाकर महाल बन्दर में बल्दराज के नाम से एक जहाजी-कम्पनी के मैनेजर हो गये, कैसे वह अपने निर्वासन-काल (नवम्बर १९२१) में गांधीजी से मिले जिन्होंने उन्हें गिरफ्तार हो जाने की सलाह दी, कैसे उन्होंने इस परामर्श को कार्यान्वित किया, २८ फरवरी १९२२ को वह लाहौर-जेल से उस आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर छोड़े गये जिसके अनुसार वह गिरफ्तार किये गये थे, आदि—इस पुस्तक के क्षेत्र के बाहर की चीज है।

नमक

१९३० के नमक-सत्याग्रह के कारण, नमक-कर का प्रश्न भारतीय राजनीति में खास तौर पर महत्त्वपूर्ण हो गया है। जो लोग नमक-कर की उत्पत्ति और १८३६ के नमक-कमीशन की सिफारिशें जानते हैं, उन्हें यह जान कर बहुत आश्चर्य होगा कि १८८८ में कांग्रेस ने इस कर का विरोध इस आधार पर नहीं किया कि यह कर अन्यायपूर्ण था और इसका उद्देश ब्रिटेन के जहाजी व्यवसाय और निर्यात-व्यापार को बढ़ाना था; बल्कि इस आधार पर किया, कि "नमक-कर में हाल ही में की गई वृद्धि से गरीब लोगों पर भार और भी बढ़ गया है; और इसके द्वारा सरकार ने शान्ति और सुख के समय में ही ऐसे कोष में से खर्च करना शुरू कर दिया है, जो खास मौकों के लिए साम्राज्य की एकमात्र निधि है।" १८९० में कांग्रेस ने नमक-कर में की गई वृद्धि को वापस लेने की—न कि नमक-कर को हटाने की—मांग की। आठ दूसरे मौकों पर कांग्रेस ने केवल इसी प्रार्थना को दोहराया और एक समय १८६८ के दर को और एक दफा १८८८ के दर को कायम रखने की मांग की। १९०२ में इस प्रश्न पर अन्तिम बार विचार करते हुए कांग्रेस ने यह भी कहा, कि "इस समय जो बहुत-सी बीमारियां फैल रही हैं उनका एक खास कारण (नमक-कर के कारण) नमक का कम इस्तेमाल किया जाना भी है।" इसके बाद 'नमक' कांग्रेस से उठकर कौंसिलों में पहुंच गया और वहां श्री गोखले खास तौर पर इसमें दिलचस्पी लेते रहे।

शराब और वेश्यावृत्ति

नैतिक पवित्रता इतनी आवश्यक वस्तु है कि कांग्रेस उसपर ध्यान दिये विना न रह सकी। शराव की वढ़ती हुई खपत को देखकर संयम और मद्य-निवारण की मांग की गई। मि० केन और स्मिथ ने कामन-सभा में इस प्रश्न को उपस्थित किया और १८८९ में इस सम्वन्ध में एक प्रस्ताव भी पास हुआ। कांग्रेस ने भी कामन-सभावाले प्रस्ताव को 'कार्य-रूप में परिणत करने' का अनुरोध किया। १८९० में कांग्रेस ने शराव पर आयात-कर की वृद्धि, हिन्दुस्तानी शराव पर कर लगाने, वंगाल-सरकार के ठेके पर शराव वनाने की पद्धति को दूर करने के निश्चय तथा मदरास-सरकार के (१८८९-९०)७,००० शराव की दूकानें वन्द करने पर हर्ष प्रकट किया; लेकिन इस वात पर खेद भी प्रकट किया, कि सव प्रान्तों ने भारत-सरकार के खरीते की इन हिदायतों पर अमल नहीं किया कि "स्थानीय जनता के भाव को जानने का प्रयत्न किया जाय और मालूम होने पर उचित रूप से उसका सम्मान किया जाय।" इसके वाद दस साल तक कांग्रेस ने इस प्रश्न पर कोई विचार नहीं किया। १९०० में जाकर कांग्रेस ने सस्ती विकने के परिणाम-स्वरूप शराव की वढ़ती हुई खपत को देखकर सरकार से प्रार्थना की, कि "वह अमरीका के 'मेन लिकर-लॉ के समान कोई कानून वनावे और सर विलफीड लॉसन के 'परमिसिव विल' या 'लोकल आप्शन एक्ट' के समान कोई विल पेश करे और दवा के सिवा दूसरे कामों के लिए आनेवाली नशीली वस्तुओं पर अधिक कर लगावे।" इस प्रसंग में यह याद करना रुचिकर होगा कि कुमार एन० एम० चौधरी ने कांग्रेस में श्री केशवचन्द्र सेन की इस शिकायत को भी उद्धृत किया था, कि ब्रिटिश-सरकार जहां हमारे लिए शैक्सपीयर और मिल्टन लाई है वहां शराव की वोतलें भी लाई है।

राज्य-नियंत्रित वेश्या-वृत्ति का लोप समाज-सुधार से सम्वद्ध एक विषय था। यह सव जानते हैं कि सरकार अपने सैनिकों के लिए छावनियों में या युद्ध-यात्राओं में स्त्रियों को एकत्र करती थी। जव ये चीजें पहले-पहल अमल में लाई गईं तो वहुत भीपण मालूम हुईं, लेकिन ज्यों-ज्यों उनका सहवास वढ़ने लगा त्यों-त्यों क्षोभ कम होता गया। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (१८८८) ने मि० यूल की अध्यक्षता में उन भारत-हितैषियों के साथ सहयोग की इच्छा प्रकट की, जो भारत में राज्य की ओर से वननेवाले कानूनों और नियमों को पूर्णतया रद कराने के लिए इंग्लैण्ड में कोशिश कर रहे थे। कैप्टन वैनन ने अपने एक ओजस्वी भाषण में कहा था कि २,००० से अधिक भारतीय स्त्रियों को सरकार ने वेश्यावृत्ति के कुत्सित उद्देश से

इकट्ठा किया था। इससे युवक सिपाही असंयत जीवन विताने को प्रोत्साहित हुए। इलाहाबाद में हुए आठवें अधिवेशन (१८९२) में कामन-सभा को "भारत-सरकार द्वारा बनाये गये पवित्रता-सम्बन्धी कानून के विषय में उसकी जागरूकता के लिए" धन्यवाद दिया गया और एक बार फिर भारत में सरकार द्वारा नियमित अनैतिक कार्यों का विरोध किया गया।

इससे अगले साल इण्डिया-आफिस-कमिटी के पार्लमेण्ट के सदस्यों ने छावनियों की वेश्यावृत्ति तथा छूत रोगों-सम्बन्धी नियमों, आज्ञाओं और प्रथाओं के विषय में एक रिपोर्ट तैयार की। कांग्रेस ने घोषणा की कि रिपोर्ट में वर्णित कारनामे और आज्ञायें कामन-सभा के ५ जून १८८८ के प्रस्ताव के अर्थ और उद्देश के विरुद्ध थीं और इन तरीकों और बुरी प्रथाओं को बन्द करने के एकमात्र उपाय, स्पष्ट कानून, बनाने की मांग की।

स्त्रियाँ और दलित जातियाँ

मि० माण्टेगु की भारत-यात्रा के साथ ही नागरिक-अधिकारों के सम्बन्ध में स्त्रियों का दावा भी देश के सामने पेश हुआ—और, वस्तुतः यह बहुत आश्चर्यजनक है कि भारत में कितनी जल्दी पुरुषों के समान स्त्रियों के अधिकार मान लिये गये। कलकत्ता-कांग्रेस ने १९१७ में यह सम्मति प्रकट की थी, कि "शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाचित-संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की, स्त्रियों के लिए भी, वही शर्तें रक्खी जायें जो पुरुषों के लिए हैं।" इससे मिलते-जुलते दलित-जातियों के प्रश्न पर भी, इसी कांग्रेस ने एक उदार प्रस्ताव स्वीकार किया :—

"यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह-पूर्वक कहती है कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रही हैं वे बहुत दुःख देनेवाली और क्षोभकारक हैं, जिससे दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों, सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है; इसलिए न्याय और भलमंसी का यह तकाजा है कि ये तमाम बन्दिशें उठा दी जायें।"

विविध

इस अवधि में कांग्रेस ने समय-समय पर और भी अनेक विषयों की ओर ध्यान दिया। शिक्षा के विविध पहलुओं—प्राथमिक, विद्यापीठी, पुरातत्व और कला-कौशल-

संवंधी शिक्षा में कांग्रेस ने वहुत दिलचस्पी ली। प्रान्तीय और केन्द्रीय राजस्व, चांदी-कर, आयकर और विनिमयदर के मुआवजे आदि आर्थिक विपयों पर भी कांग्रेस प्रायः ध्यान देती रही। स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं और विशेपतः मदरास और कलकत्ता के कारपोरेशनों के संवंध में प्रतिगामी कानूनों से कांग्रेसी वहुत रुष्ट हुए। स्वास्थ्य और विशेपतः प्लेग और क्वारण्टीन-संवंधी, वेगार वगैरा पर भी कभी-कभी विचार हो जाता था। राजभक्ति की शपथ भी कई वार ली गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० में सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पंचम के (१९०५ में युवराज और १९१० में सम्राट् की हैसियत से) स्वागत-संवंधी प्रस्ताव भी पास किये गये।

ब्रह्मदेश

आज हम देखते हैं कि वर्मा के पृथक्करण को लेकर एक वड़ा संघर्प-सा चल पड़ा है। एक क्षण के लिए हम फिर उस वर्प में चलें जव कि कांग्रेस का जन्म हुआ था। पहली कांग्रेस (१८८५) ने वर्मा के मिलाये जाने पर यह प्रस्ताव पेश किया था—"यह कांग्रेस उत्तरी वर्मा के व्रिटिशराज्य में मिलाये जाने का विरोध करती है और उसकी राय में —यदि सरकार दुर्भाग्यवश उसे मिलाने का ही निश्चय कर ले तो—पूरा व्रह्मदेश हिन्दुस्तानी वाइसराय के कार्य-क्षेत्र से अलग रक्खा जाय और एक शाही उपनिवेश वना दिया जाय तथा प्रत्येक कार्य में सीलोन के अनुसार वह इस देश के शासन से अलग रक्खा जाय।"

कांग्रेस का विधान

कांग्रेस के इन ५० सालों के जीवन में विधान-संवंधी इतने क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए हैं कि विधान का इतिहास भी वहुत रोचक हो गया है। यह सव जानते हैं कि कांग्रेस की स्थापना किसी ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी की तरह 'आर्टिकल्स' या 'मेमोरेण्डम आफ एसोसियेशन' वनाकर या १८६० के २१ वें कानून के अनुसार 'रजिस्टर्ड सोसाइटी' की तरह पहले से ही नियमादि वनाकर नहीं हुई है। इसकी शुरुआत तो कुछ प्रसिद्ध पुरुपों के सम्मेलनों से हुई। यह अपने ऊँचे उद्देश की प्राप्ति नैतिक वल से ही कर सकती थी। इसने धीरे-धीरे अपने नैतिक वल से अपने आकार-प्रकार और शक्ति में वृद्धि प्राप्ति की है। और इसी नैतिक वल पर इसने अपने महान् उद्देश की पूर्ति का

दारोमदार रक्खा है। शुरू में १८८६ में कांग्रेस के संचालन के लिए एक विधान तथा नियम बनाने पर गंभीरता से विचार हुआ। एक प्रस्ताव-द्वारा नियम बनाने के लिए कमिटी तो बना दी गई, लेकिन विधान बनाने का काम पीछे के लिए छोड़ दिया, जब तक कांग्रेस को कुछ अधिक अनुभव हो जाय तथा वह अन्य प्रान्तों में भी घूम आवे। १८८९ में कांग्रेस के प्रतिनिधि इतनी भारी संख्या में आये कि कांग्रेस को प्रति दस लाख जन-संख्या के पीछे पांच प्रतिनिधियों की संख्या सीमित कर देनी पड़ी। भारत में कांग्रेस का एक सहायक-मंत्री नियुक्त हुआ और इंग्लैण्ड की कमिटी को भी एक वैतनिक मंत्री दिया गया। इस पद पर पहले-पहल सुप्रसिद्ध मि० डब्ल्यू० डिग्बी, सी० आई० ई० नियुक्त हुए।

वह कांग्रेस का चौथा अधिवेशन (१८८८) था, जब यह निश्चित किया गया कि "जिस प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने में हिन्दू या मुसलमान अपने सम्प्रदाय के नाम पर सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करेंगे, वह विषय-समिति में विचार के लिए पेश नहीं किया जा सकेगा।" यह याद रखना चाहिए कि यही नियम उस विधान में भी स्वीकृत हुआ, जो सूरत के झगड़े के बाद १९०८ में बनाया गया था; फर्क सिर्फ अनुपात का रहा, जो अब सर्व सम्मति के बजाय ¾ कर दिया गया। प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर १००० कर देने का प्रस्ताव १८८९ में पास हुआ, लेकिन अमल में वह दूसरे वर्ष (१८९० में) ही लाया गया।

इंग्लैण्ड में किये जानेवाले काम को कितना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था, यह इसीसे मालूम होता है कि १८९२ में ६०,०००) की भारी रकम ब्रिटिश-कमिटी और कांग्रेस के पत्र 'इंडिया' के खर्च के लिए पास की गई। १२ वें अधिवेशन (१८९६) में भी इतनी ही रकम पास की गई थी। १८९८ में कांग्रेस के विधान को बनाने का नया प्रयत्न किया गया। वस्तुतः मदरास-कांग्रेस ने विधान का एक मसविदा जगह-जगह भेजा और उसपर विचार करने तथा अगले अधिवेशन तक उसकी एक निश्चित योजना बनाने के लिए एक कमिटी भी नियत की। दूसरे साल (१८९९) लखनऊ में एक संपूर्ण विधान स्वीकृत हुआ। उस समय तथा १९०८, १९२० और १९२९ के वर्षों में कांग्रेस ने अपने जो-जो ध्येय निश्चित किये, उनकी तुलना बड़ी मनोरंजक होगी। लखनऊ में कांग्रेस का ध्येय इस प्रकार निश्चित हुआ था :—

"वैध उपायों से भारतीय साम्राज्य के निवासियों के स्वार्थो और हित को बढ़ाना अखिल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्येय होगा।"

सारी वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकने के लिए पाठकों को १९०८

में स्वीकृत संस्थाओं जैसे स्व-शासन, १९२० में समर्थित शान्तिपूर्ण और उचित उपाय तथा लाहौर (१९२९) में स्वीकृत पूर्ण स्वराज्य के ध्येय की ओर ध्यान देना चाहिए। लखनऊ-विधान के अनुसार कार्य-संचालन के लिए कांग्रेस-द्वारा निश्चित ४५ सदस्यों की एक कमिटी बनाई गई। साल के खर्च के लिए ५०००) स्वीकृत किये गये। स्थायी कांग्रेस कमिटियों की स्थापना तथा प्रान्तीय सम्मेलनों के आयोजन द्वारा कांग्रेस का काम सारे साल-भर चालू रखने की व्यवस्था की गई। अध्यक्ष का चुनाव तथा प्रस्तावों के मसविदे बनाने का काम इंडियन कांग्रेस कमिटी करती थी। सात ट्रस्टियों के नाम पर कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष भी स्थापित किया गया। प्रत्येक प्रान्त से एक-एक ट्रस्टी कांग्रेस नियुक्त करती थी। १९०० में ४५ सदस्यों वाली इंडियन कांग्रेस कमिटी और बड़ी कर दी गई। पद की हैसियत से इतने व्यक्ति और सदस्य मान लिये गये—सभापति; मनोनीत सभापति, जिस दिन से नामजद किया जाय; पिछली कांग्रेसों के सभापति; कांग्रेस के मंत्री और सहायक मंत्री तथा स्वागत-समिति द्वारा मनोनीत उसके अध्यक्ष और मंत्री।

लन्दन में कार्य का संगठन १९०१ में शुरू किया गया। 'इंडिया' पत्र को और सुचारु रूप से चलाने के लिए उसकी ४००० कापियां बिकने का इस तरह प्रबन्ध किया कि प्रत्येक प्रान्त एक नियत संख्या में 'इंडिया' खरीदे। 'इंडिया' और ब्रिटिश-कमिटी का खर्च पूरा करने के लिए १९०२ से प्रत्येक प्रतिनिधि से फीस के अलावा १०) और लेने का भी निश्चय किया गया। यह स्पष्ट है कि उन दिनों कांग्रेस भारत और इंग्लैण्ड में अपने कार्य के लिए खर्च करने में कोताही न करती थी। बम्बई के २० वें अधिवेशन (१९०४) में यह निश्चय किया गया कि पार्लमेण्ट के चुनाव से पहले इंग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय और इस कार्य के लिए ३०,०००) इकट्ठे किये जायँ। काशी में (१९०५) कांग्रेस के उद्देशों को पूरा करने और उसके प्रस्तावों के अनुसार कार्य करने के लिए १५ सदस्यों की एक स्थायी कमिटी बनाई गई। १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस का उद्देश एक शब्द में रख दिया—"हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्व-शासन या स्वराज्य (जैसा इंग्लैण्ड या उपनिवेशों में है) में आ जाता है।" तथापि जब इसे प्रस्ताव के रूप में रखने का प्रश्न उठा, तो इसे नरम कर दिया गया। कांग्रेस का प्रस्ताव यह था—"स्वराज्य प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है, वही भारत में भी जारी की जाय" और इसके लिए अनेक सुधारों की भी मांग की गई।

कलकत्ता-कांग्रेस का वातावरण राष्ट्रीयता की भावना से लबालब था, इसमें

सन्देह नहीं; इसलिए राष्ट्र को संगठित करने की दिशा में एक और कदम बढ़ाया गया और निश्चय किया गया कि —"प्रत्येक प्रान्त अपनी राजधानी में उस तरह से प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी का संगठन करे, जिस तरह कि प्रान्तीय सम्मेलन में निश्चय किया जाय। कांग्रेस के तमाम विषयों में प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी प्रान्त की ओर से कार्य करेगी और उसे प्रान्त में कांग्रेस का काम बराबर चलाते रहने के लिए जिला-संस्थाएँ संगठित करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए।" कांग्रेस के सभापति की निर्वाचन-प्रणाली भी बदल दी गई। प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी द्वारा मनोनीत व्यक्तियों में से स्वागत-समिति अपनी तीन-चौथाई राय से किसीको सभापति चुना करे, किन्तु यदि किसी व्यक्ति के लिए इतना बहुमत न मिले तो केन्द्रीय स्थायी समिति (४६ सदस्यों की बनाई गई नई समिति) इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय करे।

विषय-निर्वाचन-समिति के निर्णय का भी नया तरीका जारी किया गया। कमिटी के ८५ सदस्य तो प्रतिनिधि ही रहेंगे और उस प्रान्त के १० और प्रतिनिधि लिये जायँगे जिसमें कांग्रेस हो। उस वर्ष के सभापति, स्वागत-समिति के अध्यक्ष, पिछले अधिवेशनों के सभापति और स्वागत-समिति के अध्यक्ष, कांग्रेस के प्रधान मंत्रीगण और कांग्रेस के उस वर्ष के स्थानीय मंत्री भी अपने पद के अधिकार से विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्य माने गये।

कांग्रेस-विधान में जो नया परिवर्तन हुआ वह वस्तुतः युग-प्रवर्त्तक था। सूरत के झगड़े के कारण जिन नेताओं ने इलाहाबाद में 'कन्वेन्शन' खड़ा किया उन्होंने बहुत ही सख्त विधान बनाया। सबसे पहले यह घोषणा की गई कि बाकायदा निर्वाचित सभापति बदला नहीं जा सकेगा, क्योंकि सूरत में डॉ० रासबिहारी घोष के चुनाव पर ही बड़ा झगड़ा हुआ था। इसके बाद लोगों के विचार का वास्तविक विषय था—कांग्रेस का क्रीड यानी ध्येय। सूरत-कांग्रेस के भंग के एक दिन बाद २८ दिसम्बर (१९०७) को वैसे ही विचार रखनेवाले लोगों ने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया—"कांग्रेस का उद्देश है ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य स्वशासित राष्ट्रों में प्रचलित शासन-प्रणाली भारत के लोगों के लिए भी प्राप्त करना और उन राष्ट्रों के साथ बराबरी के नाते साम्राज्य के अधिकारों और जिम्मेवारियों में सम्मिलित होना।"

१९०८ के विधान के अनुसार विभिन्न प्रान्तों से महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमिटी) के सदस्य इस तरह चुने जाते थे :—

(१) मदरास १५, (२) बम्बई १५, (३) संयुक्त बंगाल २०, (४) संयुक्त प्रान्त १५, (५) पंजाब या सीमाप्रान्त १३, (६) मध्यप्रान्त ७, (७) बिहार

उड़ीसा* १५, (८) वरार ५, (९)वर्मा २,

यह भी तय हुआ कि यथासंभव कुल संख्या का ५ वां हिस्सा मुसलमान सदस्य चुने जायँ।

इसके अलावा भारत में उपस्थित या भारत में रहनेवाले कांग्रेस के सभापति और प्रधान-मंत्री भी महा-समिति के सदस्य माने जायँ। कांग्रेस का प्रधान मंत्री इसका भी प्रधान मंत्री समझा जाय।

इसी तरह विषय-निर्वाचिनी समिति भी वहुत वढ़ गई। महा-समिति के सभी सदस्य और कुछ निर्वाचित व्यक्ति उसके सदस्य माने गये। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए प्रतिनिधि ही इनका चुनाव करते थे।†

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये उपाय सोचे गये—(१) वैध उपाय का अवलम्वन, (२) वर्तमान-शासन प्रवन्ध में क्रमशः स्थायी सुधार करना, (३) राष्ट्रीय एकता को वढ़ाना, (४) सार्वजनिक सेवा की भावना को उत्तेजना देना, और (५) राष्ट्र के वौद्धिक, नैतिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक साधनों का संगठन व विकास। १९०८ के विधान में पहली वार यह धारा भी रक्खी गई कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर विचार न हो, जिनके विरुद्ध तीन-चौथाई हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधि हों। पुराने कागजात देखने से हमें मालूम होता है कि किस विचित्र तरीके से इस धारा का पालन होता था। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ १८९९) में 'पंजाव लैण्ड एलीनेशन विल' की निन्दा का प्रस्ताव पास हुआ था। यह विल उन दिनों वड़ी कौंसिल के सामने पेश था और इसका आशय यह था कि किसानों के हाथ से ज़मीन न खरीदी जा सके, न वन्धक रक्खी जा सके। लेकिन आगामी १६वें अधिवेशन (लाहौर, १९००) में हिन्दू-मुसलमान प्रतिनिधियों के पारस्परिक मत-भेद के कारण विषय-समिति ने इस कानून

---

* इस विधान में विहार, जो अवतक पश्चिमी वंगाल का भाग माना जाता था, पहली वार एक पृथक् प्रान्त के रूप में माना गया। १९०८ में ही विहार की पहली प्रान्तीय परिषद् श्री० (पीछे सर) सैयद अलीइमाम की अध्यक्षता में हुई।

† महा-समिति की संख्या पीछे और भी वढ़ा दी गई। १९१७ तक इसके सदस्यों का चुनाव इस तरह होता था—१४ मदरास, ११ आंध्र, २० वम्वई, ५ सिंध, २५ वंगाल, २५ युक्तप्रांत, ५ दिल्ली, ३ अजमेर-मेरवाड़ा, २० पंजाव, १२ मध्य-प्रान्त, २० विहार व उड़ीसा, ७ वरार व ५ वर्मा। विषय-समिति में प्रत्येक प्रान्त की ओर से इतने ही सदस्य और प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते थे।

(बिल अब कानून बन चुका था) पर विचार करना स्थगित कर दिया, ताकि एक साल तक इस कानून का प्रयोग भी देख लिया जाय।

संयुक्त-बंगाल-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी ने कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन सुझाये, जो इलाहाबाद (१९१०) में एक उप-समिति को सौंपे गये। १९११ में कलकत्ता के अधिवेशन में इस समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं और आगे संशोधनों के लिए वह महासमिति के सुपुर्द किया गया। इसके बाद ५ सालों तक कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। १९१४ में जब यूरोप का महासमर छिड़ गया, तब श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपना महान् राजनैतिक आन्दोलन अ० भा० होमरूल-लीग की छत्रच्छाया में आरम्भ किया।

१९१८ तक सरकार द्वारा अस्वीकृत मांगें

भारत की राष्ट्रीय मांग केवल भावनात्मक नहीं है, उसके पक्ष में प्रबल और व्यावहारिक युक्तियां हैं; और वर्तमान अवस्थाओं में सुधारों की अधिक सम्भावना नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए यहां उन प्रस्तावों और विरोधों का उल्लेखमात्र कर देना काफी होगा, जो कांग्रेस ने बार-बार पेश किये मगर जिनपर ३२ साल से भारत-सरकार ने व प्रान्तीय सरकारों ने कोई ध्यान नहीं दिया और १९१८ तक भी वे हमारी मांगें बनी रहीं :—

(१) इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय (१८८५)

(२) सरकारी नौकरियों के लिए इंग्लैण्ड और भारत दोनों जगह परीक्षायें ली जायें (१८८५)

(३) भारत और इंग्लैण्ड में सेना-व्यय का अनुपात न्यायपूर्ण हो (१८८५)

(४) जूरी-द्वारा मुकदमों का सुनाई अधिकाधिक हो (१८८६)

(५) जूरी के फैसले अन्तिम समझे जायें (१८८६)

(६) वारण्टवाले मामलों में अभियुक्तों को यह अधिकार देना कि उनका मुकदमा मजिस्ट्रेट के सामने पेश न होकर दौरा-जज की अदालत में पेश हो (१८८६)

(७) न्याय और शासन-विभाग अलहदा किये जायें (१८८६)

(८) भारतीय सैनिक-स्वयंसेवकों में भर्ती किये जायें (१८८७)

(९) सैनिक-अफसरी-शिक्षा देने के लिए भारत में सैनिक कालेजों की स्थापना की जाय (१८८७)

(१०) शस्त्र-कानून व नियमों में संशोधन किया जाय (१८८७)

(११) औद्योगिक उन्नति और कला-कौशल की शिक्षा के सम्वन्ध में अमली नीति काम में लाई जाय (१८८८)

(१२) लगान-नीति में सुधार किया जाय (१८८६)

(१३) मुद्रा-नीति के सम्वन्ध में (१८९२)

(१४) स्वतंत्र सिविल-मेडिकल-सर्विस का निर्माण (१८९३)

(१५) विनिमय-दर मुआवजे का वन्द करना (१८९३)

(१६) वेगार और जवर्दस्ती रसद की प्रथा वन्द करना (१८९३)

(१७) 'होम-चार्जेज' में कमी करना।

(१८) सूती कपड़े पर से उत्पत्ति-कर हटा लिया जाय (१८९३)

(१९) वकीलों में से ऊँचे न्याय-विभाग के अफसर नियुक्त किये जायँ (१८९४)

(२०) उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति (१८९४)

(२१) देशी-राज्य-स्थित प्रेसों के सम्वन्व में भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित नोटिफिकेशन (१८९१) वापिस लिया जाय (१८९४)

(२२) किसानों की कर्जदारी दूर करने के उपाय किये जायँ (१८९५)

(२३) तीसरे दर्जे की रेल-यात्रा की स्थिति में सुधार किया जाय (१८९५)

(२४) प्रान्तों को आर्थिक स्वतंत्रता दी जाय (१८९६)

(२५) शिक्षा-विभाग की नौकरियों का इस तरह पुनः संगठन हो जिससे भारतीयों के साथ न्याय हो सके (१८९६)

(२६) १८१८, १८१९ और १८२७ के क्रमशः वंगाल, मदरास और वम्वई के रेग्युलेशन वापस लिये जायँ (१८९७)

(२७) १८९८ के राजद्रोह-सम्वन्धी कानून के विषय में (१८९७)

(२८) १८९८ के ताजिरात हिन्द व जाव्ता फौजदारी के विषय में (१८९७)

(२९) १८९९ के कलकत्ता म्यूनिसिपल एक्ट के विषय में (१८९८)

(३०) १९०० के 'पंजाव लैण्ड एलीनेशन एक्ट' को रद करना (१८९८)

(३१) भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति की जांच की जाय (१९००)

(३२) छोटी सरकारी नौकरियों में भारतीयों की अधिक भरती की जाय (१९००)

(३३) 'पव्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' में ऊँचे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति सम्वन्धी पावन्दियां उठा दी जायँ (१९००)

(३४) इंग्लैण्ड में होनेवाली पुलिस-प्रतिस्पर्द्धा-परीक्षाओं में भारतीयों को भी लिया जाय व पुलिस के ऊँचे ओहदों पर उनकी नियुक्ति की जाय (१९०१)

(३५) भारत-स्थित ब्रिटिश-सेना के कारण भारत पर, ७,८६,००० पौण्ड प्रतिवर्ष का जो खर्च लादा गया, उसके विषय में (१९०२)

(३६) इण्डियन यूनिवर्सिटी कमीशन की सिफारिशों के सम्बन्ध में (१९०२)

(३७) इण्डियन यूनिवर्सिटी एक्ट १९०४ के विषय में (१९०३)

(३८) आफीशियल सीक्रेट्स एक्ट १९०४ के बारे में (१९०३)

(३९) इण्डिया आफिस के खर्च तथा भारत-मंत्री के वेतन के विषय में (१९०४)

(४०) भारत के राजकाज की पार्लमेण्ट-द्वारा समय-समय पर जांच की जाय (१९०५)

(४१) स्थानीय स्वराज्य की प्रगति के सम्बन्ध में (१९०५)

(४२) १९०८ के क्रिमिनल लॉ अमेंडमेण्ट एक्ट के बारे में (१९०८)

(४३) १९०८ के अखबार-कानून के विषय में (१९०८)

(४४) मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जाय (१९०८)

(४५) लेजिस्लेटिव कौंसिल रेग्युलेशन में सुधार किया जाय (१९०९)

(४६) युक्त-प्रान्त के शासन-प्रबन्ध की जांच की जाय (१९०९)

(४७) लॉ-मेम्बर का पद एडवोकेटों, वकीलों और एटर्नियों के लिए खोल दिया जाय (१९१०)

(४८) राजद्रोही सभाबन्दी कानून के विषय में (१९१०)

(४९) इंडियन प्रेस-एक्ट के बारे में (१९१०)

(५०) बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय की जांच की जाय (१९१०)

(५१) राजनैतिक कैदियों की आम रिहाई की जाय (१९१०)

(५२) श्री गोखले के प्रारंभिक शिक्षा-बिल के विषय में (१९१०)

(५३) संयुक्त-प्रान्त के लिए सपरिषद् गवर्नर मिलने के विषय में (१९११)

(५४) पंजाब में कार्यकारिणी कौंसिल रखने के संबंध में (१९११)

(५५) इण्डिया कौंसिल में सुधार किया जाय (१९१३)

(५६) इंग्लैण्ड में रहनेवाले भारतीय विद्यार्थियों के विषय में (१९१५)

: ३ :

कांग्रेस के विकास की प्रारम्भिक भूमिका

पुराने कांग्रेसियों का दृष्टिकोण व नीति

कांग्रेस को स्थापित हुए अवतक ५० वर्ष हो गये। इस लम्वे अरसे में भारत के राष्ट्रीय विकास की कई भूमिकाओं से वह गुजर चुकी है। हां, आगे जाकर उसके अन्दर कुछ मतभेद जरूर पैदा हो गये थे। परन्तु पिछला जमाना तो १८८५ से १९१५ वल्कि १९२१ तक ऐसा रहा, जिसमें भिन्न-भिन्न रायों और विचारों के लोगों ने मिलकर अपने लिए प्रायः एक ही कार्यक्रम तजवीज किया था। इसका यह अर्थ नहीं कि उन दिनों भारतीय राजनीति में मत-भेद और विचार-भेद पैदा ही नहीं हुए थे, वल्कि यह कि वे गिनती में आने लायक न थे।

युद्ध का निर्णय करने में या लड़ाई की रचना में सवसे वड़ी कठिनाई है युद्ध-क्षेत्र का चुनाव और व्यूह-रचना। दोनों तरफ के लोग हमला करें या वचाव, प्रार्थना करें या विरोध, युद्ध रोककर शत्रु को सन्धि-चर्चा के लिए निमन्त्रण दें या एकदम छापा मारकर उसे घेर लें, इन्हींकी उधेड़-बुन में लगे रहते हैं। युद्ध-क्षेत्र में इन्हीं प्रश्नों पर सेनापतियों के दिमाग परेशान रहते हैं। इसी तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी ऐसे प्रश्न आते हैं, जहां नेताओं को यह तय करना पड़ता है कि आन्दोलन महज लफ्जी और कागजी हो या कुछ करके वताया जाय। यदि कुछ कर दिखाना हो तव उन्हें यह निश्चय करना पड़ता है कि लड़ाई प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यों तो ये प्रश्न वड़ी तेजी से हमारी आंखों के सामने दौड़ जाते हैं और उससे भी ज्यादा तेजी के साथ हमारे दिमाग में चक्कर काटते हैं, परन्तु राजनैतिक लड़ाइयों में वीसों वर्षों में जाकर कहीं एक के वाद दूसरी स्थिति का विकास होता है और जो काम पचास वर्षों की जवर्दस्त लड़ाई के वाद आज वड़ा आसान और मामूली दिखाई देता है वह हमारे पूर्वजों को, जिन्होंने कि कांग्रेस की शुरुआत की, अपनी कल्पना के वाहर मालूम हुआ होता। जरा खयाल कीजिए कि विदेशी माल के या कौंसिलों के, अदालतों या कालेजों के वहिष्कार या कुछ कानूनों के सविनय भंग का कोई प्रस्ताव उमेशचन्द्र वनर्जी या सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, सर फीरोज-

शाह मेहता या पं० अयोध्यानाथ, लालमोहन घोष या मनमोहन घोष, सुब्रह्मण्य ऐयर या आनन्दा चार्लू, ह्यूम साहब और वेडरबर्न साहब के सामने रक्खा गया है। अब यह सोचने में जरा भी देर नहीं लग सकती कि इन विचारों के कारण वे कितने भड़क उठे होते और न ऐसे उग्र कार्यक्रम, वंग-भंग के, कर्जन और मिण्टो की प्रतिगामी नीतियों के, या गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका सम्बन्धी अनुभवों के या जालियांवाला बाग के हत्या-काण्ड के पहले बन ही सकते थे। बात यह कि पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों के लड़ाई-झगड़ों में जो कांग्रेस-नेता रहे वे ज्यादातर वकील-बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एवं डॉक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिन्दुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजों और पार्लमेण्ट के सामने उसका पक्ष बहुत सुन्दर और नपी-तुली भाषा में रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हें एक राजनैतिक संगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दुःखों और उच्च आकांक्षाओं को प्रदर्शित करते रहे। जब इस बात की याद करते हैं कि किन-किन व्यक्तियों ने भारत की राजनीति को बनाया और उसे प्रभावित किया, इनके विश्वास क्या थे, तब वे सब भिन्न-भिन्न युग हमारे सामने आ जाते हैं जिनमें कि भारतीय राजनैतिक आन्दोलन इन पचास वर्षों में बँट गया है। वह जमाना और हालतें ही ऐसी थीं कि अपने दुःख-दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रिआयतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था। फिर यह मनोदशा आगे जाकर शीघ्र ही एक कला के रूप में परिणत हो गई। एक ओर कानून-प्रवीण बुद्धि और दूसरी ओर खूब कल्पनाशील और भावना-प्रधान वक्तृत्व-कला, दोनों ने उस काम को अपने ऊपर ले लिया जो भारतीय राजनीतिज्ञों के सामने था। कांग्रेस के प्रस्तावों के समर्थन में जो व्याख्यान होते थे और कांग्रेस के अध्यक्ष जो भाषण दिया करते थे उनमें दो बातें हुआ करती थीं—एक तो प्रभावकारी तथ्य और आंकड़े, दूसरे अकाट्य दलीलें। उनके उद्गारों में जिन बातों पर अक्सर जोर दिया जाता था वे ये हैं—अंग्रेज लोग बड़े न्यायी हैं और अगर उन्हें ठीक तौर पर वाकिफ रक्खा जाय तो वे सत्य और हक के पथ से जुदा न होंगे; हमारे सामने असली मसला अंग्रेजों का नहीं बल्कि अफसरों का है; बुराई पद्धति में है, न कि व्यक्ति में; कांग्रेस बड़ी राजभक्त है, ब्रिटिश-ताज से नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी नौकरशाही से उसका झगड़ा है; ब्रिटिश-विधान ऐसा है जो लोगों की स्वाधीनता का सब जगह रक्षण करता है और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट प्रजातन्त्र-पद्धति की माता है; ब्रिटिश-विधान संसार के सब विधानों से अच्छा है; कांग्रेस राजद्रोह करनेवाली

संस्था नहीं है; भारतीय राजनीतिज्ञ सरकार का भाव लोगों तक और लोगों का सरकार तक पहुँचाने के स्वाभाविक साधन हैं; हिन्दुस्तानियों को सरकारी नौकरियां अधिकाधिक दी जानी चाहिएँ, ऊँचे पदों के योग्य बनाने के लिए उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए; विश्व-विद्यालय, स्थानिक संस्थायें और सरकारी नौकरियां ये हिन्दुस्तान के लिए तालीम-गाह होनी चाहिएँ; धारा-सभाओं में चुने हुए प्रतिनिधि होने चाहिएँ और उन्हें प्रश्न पूछने तथा बजट पर चर्चा करने का अधिकार भी देना चाहिए; प्रेस और जंगल-कानून की कड़ाई कम होनी चाहिए; पुलिस लोगों की मित्र बनके रहे; कर कम होने चाहिएँ; फौजी खर्च घटाया जाय, कम-से-कम इंग्लैण्ड उसमें कुछ हिस्सा ले; न्याय और शासन-विभाग अलहदा-अलहदा हों; प्रान्त और केन्द्र की कार्य-कारिणियों और भारत-मंत्री की कौंसिल में हिन्दुस्तानियों को जगह दी जाय; भारतवर्ष को ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिले और प्रत्येक प्रान्त से दो प्रतिनिधि लिये जायँ; नॉन-रेग्युलेटेड प्रान्त रेग्युलेटेड प्रान्तों की पंक्ति में लाये जायँ; सिविल सर्विसवालों के बजाय इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन के नामी-नामी अंग्रेज गवर्नर बनाकर भेजे जायँ; नौकरियों के लिए भारत और इंग्लैण्ड में एक-साथ परीक्षायें ली जायँ; इंग्लैण्ड को प्रति वर्ष जो रुपया भारत से जाता है वह रोका जाय और देशी उद्योग-धंधों को तरक्की दी जाय; लगान कम किया जाय और बन्दोबस्त दायमी कर दिया जाय। कांग्रेस यहां तक आगे बढ़ी कि उसने नमक-कर को अन्याय-पूर्ण बतलाया, सूती माल पर लगे उत्पत्ति-कर को अनुचित बतलाया और सिविलियन लोगों को दिये जानेवाले विनिमय-दर-मुआवजे को गैर-कानूनी बतलाया तथा ठेठ १८९३ में मालवीयजी महाराज की दृष्टि यहां तक पहुँच गई थी कि उन्होंने ग्राम-उद्योगों के पुनरुद्धार के लिए भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया था।

भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान जिन-जिन विषयों की ओर गया था उनका एक-निगाह में सिंहावलोकन करने से यह आसानी से मालूम हो जाता है कि उनकी मनोरचना किस प्रकार हुई थी। उस समय जब कि भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में कोई पथ-दर्शक नहीं था, उन लोगों ने जो रुख अख्त्यार किया था उसके लिए हम उन्हें बुरा नहीं कह सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छः फीट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उनपर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकी है। पहले उपनिवेशों के ढंग का स्व-शासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक-के-बाद-एक बन सकी हैं। उन्हें अपनी स्पष्ट बात के

भी समर्थन में अंग्रेजों के प्रमाण देने पड़ते थे। अपनी समझ और अपनी क्षमता के अनुसार, उन्होंने बहुत परिश्रम और भारी कुर्बानियां की थीं। आज अगर हमारा रास्ता साफ है और हमारा लक्ष्य स्पष्ट है, तो यह सब हमारे उन्हीं पुरखाओं की बदौलत है कि जिन्होंने जंगल-झाड़ियों को साफ करने का कठिन काम किया है। अतएव इस अवसर पर हम उन तमाम महांपुरुषों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करें जिन्होंने कि हमारे सार्वजनिक जीवन की आरम्भिक मंजिलों में प्रगति की गाड़ी को आगे बढ़ाया था।

ब्रिटिश राज्य में युद्ध

कांग्रेसियों के दिलों में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोष के भाव आ गये हों, पर इसमें कोई शक नहीं कि ठेठ १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी वैध-आन्दोलन के प्रति उनका दृढ़ और अंग्रेजों की न्याय-प्रियता पर अटल विश्वास ही। इसी भाव को लेकर १८९३ में स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कांग्रेस के विषय में कहा था कि "भारत में ब्रिटिश-शासन की कीर्ति का यह कलश है।" आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा कि "हम उस विधान के मातहत सुख से रह रहे हैं जिसका विरुद है आजादी, और जिसका दावा है सहिष्णुता।" कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद, १८८८) के प्रतिनिधि ने लॉर्ड रिपन का यह विचार उद्धृत किया था—"महारानी का घोषणा-पत्र कोई सुलह-नामा नहीं है, न वह कोई राजनैतिक लेख ही है; बल्कि वह तो सरकार के सिद्धान्तों का घोषणा-पत्र है।" लॉर्ड सेल्सबरी के इस वचन पर कि "प्रतिनिधियों के द्वारा शासन की प्रथा पूर्वी लोगों की परम्परा के मुआफिक नहीं है", जोर के साथ नाराजगी प्रकट की गई थी और १८९० में सर फिरोजशाह मेहता ने तो यहां तक कह दिया था कि "मुझे इस बात का कोई अन्देशा नहीं है कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अंत में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" बारहवें अधिवेशन (१८९६) के अध्यक्ष पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने तो और भी असंदिग्धरूप में कहा कि "अंग्रेजों से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।" और जब कि उस कौम ने हिन्दुस्तानियों के अनुनय-विनय और विरोध का जवाब उलटा दमन से दिया, तब भी मदरास-कांग्रेस (१८९८) के अध्यक्ष आनंदमोहन बसु ने जोर देकर कहा था, कि "शिक्षित-वर्ग इंग्लैण्ड के दोस्त हैं, दुश्मन नहीं। इंग्लैण्ड के सामने जो महान् कार्य है उसमें वे उसके स्वाभाविक तथा आवश्यक मित्र और सहायक हैं।" हमारे इन पूर्व-पुरुषों ने अंग्रेजों और

इंग्लैण्ड के प्रति जो विश्वास रक्खा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओं को समझें। डॉ० सर रास-विहारी घोष के शब्दों में (२३ वीं कांग्रेस, मदरास, १९०८) "अपने कोमल विचार उन तक भेजें जिन्होंने अपने समय में अपने कर्तव्य का भरसक पालन किया है, फिर चाहे वह कितना ही अपूर्ण और त्रुटि-युक्त क्यों न हों, उनके वारे में अच्छी-वुरी रायें भी क्यों न हों। हो सकता है कि उनका उत्साह कुछ दवा हुआ हो, परन्तु मैं विना शेखी के कहूंगा कि वह उत्साह सच्चा और शुद्ध भाव से परिपूर्ण था। वह वैसा ही था जिसे देखकर नौजवानों के दिल हिल उठते हैं और अनुप्राणित होते रहते हैं।" कांग्रेस के इतिहास में जो पहला जवरदस्त आन्दोलन हुआ वह पांच वर्षों (१९०६ से १९११) तक रहा। उसे उस समय ऐसे दमनकारी उपायों का सामना करना पड़ा जो उस समय जंगली समझे गये। हालांकि उसमें इधर-उधर मार-काट भी हो गई, मगर अंत में उसमें पूरी सफलता मिली। आखिर १९११ में शाही घोषणा कर दी गई कि वंगभंग रद कर दिया गया। किन्तु यह व्रिटिश-सरकार की भारी प्रशंसा का विषय वन गया। इससे व्रिटिश-न्याय के प्रति लोगों के मन में नया विश्वास पैदा हो गया और धुंआधार वक्तृताओं द्वारा कृतज्ञता-प्रकाश होने लगा। श्री अम्विकाचरण मुजुमदार ने कहा —"व्रिटिश ताज के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भावों से भरा प्रत्येक हृदय आज एक तान से धड़क रहा है; वह व्रिटिश-राजनीतिज्ञता के प्रति कृतज्ञता और नवीन विश्वास से परिपूर्ण हो रहा है। हममें से कुछ लोगों ने तो कभी—अपनी मुसीवतों के अन्धकार-मय दिनों में भी—व्रिटिश न्याय के अन्तिम विजय की आशा नहीं छोड़ी थी, उसपर से अपना विश्वास नहीं उठने दिया था।"* परन्तु इसी के साथ कांग्रेसियों ने उन दुःखदायी

---

*पुराने जमाने में कांग्रेसी लोगों को अपनी राजभक्ति की परेड दिखाने का शौक था। १९१४ में जब लॉर्ड पेण्टलैंड (गवर्नर) मदरास में कांग्रेस के पण्डाल में आये तो सब लोग उठ खड़े हुए और तालियों-द्वारा उनका स्वागत किया। यहां तक कि श्री० ए० पी० पेट्रो, जो कि उस समय पर एक प्रस्ताव पर बोल रहे थे, एकाएक रोक दिये गये और उनकी जगह सुरेन्द्रनाथ वनर्जी को राजभक्ति का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिये कहा गया जिसे कि उन्होंने अपनी समृद्ध भाषा में पेश किया।

ऐसी ही घटना लखनऊ-कांग्रेस (१९१६) के समय भी हुई थी, जव कि सर जैम्स मेस्टन कांग्रेस में आये थे और उपस्थित लोगों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया था।

कानूनों की तरफ से भी अपना ध्यान नहीं हटाया था, जो कि १९११ और उससे भी आगे तक जारी ही थे। कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों ने, इसमें कोई सन्देह नहीं कि, अपनी सारी शक्ति शासन-विषयक सुधारों में और दमनकारी कानूनों को हटवाने में लगाई थी; परन्तु इससे यह अन्दाज करना गलत होगा कि वे सिर्फ भारतीय प्रश्न के अंशों का ही खयाल करते थे, पूरे प्रश्न का नहीं। १८८६ के कलकत्ता अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था—"स्व-शासन प्रकृति की व्यवस्था है, विधि का विधान है, प्रकृति ने अपनी पुस्तक में स्वयं अपने हाथों से यह सर्वोपरि व्यवस्था लिख रक्खी है—प्रत्येक राष्ट्र अपने भाग्य का आप ही निर्माता होना चाहिए।" २० वें अधिवेशन के सभापति-पद से सर हेनरी कॉटन ने 'भारत के संयुक्त-राज्य' अथवा 'भारत के स्वतंत्र और पृथक् राज्यों के संघ' की कल्पना की थी। दादाभाई ने यूनाइटेड किंगडम या उपनिवेशों के जैसे स्व-शासन या स्वराज्य का जिक्र किया था।

सरकार द्वारा कांग्रेसियों का सम्मान

कांग्रेस के पहले पच्चीस सालों में जिनके ऊपर कांग्रेस की राजनीति का दारोमदार रहा, वे सरकार के दुश्मन नहीं थे। यह बात न केवल उन घोषणाओं से ही सिद्ध होती है जो कि समय-समय पर उनके द्वारा की जाती रही हैं, बल्कि स्वयं सरकार भी उनके साथ रिआयतें करके और जब-जब हिन्दुस्तानियों को ऊँचे पद व स्थान देने का मौका आया तब-तब उन्हींको उसके लिए चुनकर यही सिद्ध करती रही है। ऐसे उच्च पदों के लिए न्याय-विभाग का क्षेत्र ही स्वभावतः सबसे उपयुक्त था। मदरास के सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर तो कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में सामने आये और श्री वी० कृष्णस्वामी ऐयर १९०८ में हुई मदरास की पहली कन्वेन्शन-कांग्रेस के एकमात्र कर्त्ता-धर्त्ता थे, जो बहुत कड़े विधान के मातहत हुई थी और जिसके लिए तत्कालीन मदरास गवर्नर ने अपना तम्बू देने की कृपा की थी। राष्ट्रवादियों और कांग्रेस का उल्लेख करते हुए यह कहनेवाले श्री कृष्णस्वामी ऐयर ही थे कि जो अंग सड़-गल कर बेकाम हो गये हैं उन्हें काट डालना चाहिए। सर शंकरन् नायर अमरावती में हुए अधिवेशन (१८९७) के सभापति हुए थे। और तो और पर श्री रंगैयन् (सर वेपा सिनो) १८९८ से कांग्रेसवादी ही थे, जिस साल कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की कठिनाइयों के सम्बन्ध में पेश किये गये प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। इसके बाद जिनका नम्बर आता है वे हैं (१) श्री टी० वी० शेषगिरि ऐयर, जो १९१० की कांग्रेस में सामने आये, और (२) श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐयर, जो १९०८

में श्री कृष्णस्वामी ऐयर के एक उत्साही सहकारी थे। ये छहों मदरास-हाईकोर्ट के जज वनाये गये और इनमें से दो कार्य-कारिणी कौंसिल के सदस्य भी हो गये—एक मदरास में और दूसरा दिल्ली में। इनमें से पहले (सर सुब्रह्मण्य) १८९६ में कांग्रेस के सभापति होनेवाले थे परन्तु हाईकोर्ट के जज वना दिये जाने के कारण रह गये थे। श्रीमती वेसेण्ट द्वारा चलाये गये होमरूल-आन्दोलन के समय, १९१४ में, यह फिर कांग्रेस के क्षेत्र में आ गये। यही नहीं, वल्कि अपनी नाइटहुड (सर की उपाधि) का भी परित्याग कर दिया, जिससे मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड दोनों ही इनपर नाराज हो गये। कहते हैं कि भूतपूर्व जज की हैसियत से जो पेन्शन इन्हें मिलती थी उसे वन्द कर देने की भी वात उस समय उठी थी, परन्तु वाद में कुछ सोचकर फिर ऐसा किया नहीं गया। और आगे चलें तो, सर पी० एस० शिवस्वामी ऐयर और सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी कांग्रेसी थे। इनमें से पहले तो १८९५ की कांग्रेस में सामने आये थे और दूसरे थे तो वाद के नये रंगरूट लेकिन रहे सदा पहलों से भी ज्यादा उत्साही, क्योंकि डा० वेसेण्ट और उनके साथियों की नजरवन्दी के समय उन्होंने तो सत्याग्रह (निष्क्रिय प्रतिरोध) के प्रतिज्ञापत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिये थे। सच तो यह है कि १९१७ और १९१९ के वीच कांग्रेसी क्षेत्र में सर सी० पी० रामस्वामी एक ऐसे चमकते हुए सितारे थे जिन्होंने अपने प्रकाश से भारत के राजनैतिक क्षितिज में चकाचौंध कर रक्खी थी। ये दोनों ही वाद में कार्य-कारिणी के सदस्य वना दिये गये। यही हाल सर मुहम्मद हवीवुल्ला का हुआ, जिन्होंने पहले-पहल १८९८ में कांग्रेस के मंच पर प्रकट होकर अपने वुद्धि-कौशल एवं वक्तृत्व-शक्ति का परिचय दिया था। यह पहले मदरास और फिर भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य वनाये गये। मदरास-सरकार के लॉ-मेम्वर होनेवाले सर एन० कृष्ण नैयर १९०४ की कांग्रेस में वोले थे, और उनके उत्तराधिकारी सर के० वी० रेड्डी तो १९१७ में जस्टिस-पार्टी का जन्म होने तक भी एक उत्साही एवं सुप्रसिद्ध कांग्रेसी थे। सर एम० रामचन्द्रराव वहुत समय तक कांग्रेस में रह चुके हैं। और असलियत यह है कि १९२१ में मदरास की कार्य-कारिणी में उनकी नियुक्ति भी हो चुकी थी, परन्तु फिर ऐन वक्त पर विचार वदल दिया गया। इस प्रकार ६ हाईकोर्ट के जज और ६ कार्यकारिणी के सदस्य तो अकेले मदरास के कांग्रेसमैन ही हो चुके थे। और हाल में टैरिफ-वोर्ड में श्री नटेसन की जो नियुक्ति हुई है उससे तो गैरमामूली क्षेत्रों में भी कांग्रेसियों के पसन्द किये जाने के उदाहरण की वृद्धि हुई है, यही नहीं वल्कि सर षण्मुखम् चेट्टी को भी न्याय या शासन के विभागों में ही कोई पद देने के वजाय कोचीन का दीवान वनाना भी इसी वात का

पोषक है। जो कांग्रेसमैन इस तरह पुरस्कृत हुए उनमें सबसे पहले सम्भवत: श्री सी० जम्बुलिंगम् मुदालियर थे जो मदरास-कौंसिल के एक चुने हुए सदस्य थे और १८९३ में वहां के सिटी सिविल कोर्ट के जज बनाये गये थे। बम्बई में श्री बदरुद्दीन तैयबजी और नारायण चन्द्रावरकर दोनों, जो क्रमश: १८८७ की मदरास-कांग्रेस और १९०० की लाहौर-कांग्रेस के सभापति हुए थे, तथा श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग बम्बई-हाईकोर्ट के जज बनाये गये। श्री समर्थ और भूपेन्द्रनाथ बसु भारत-मंत्री की (इंण्डिया) कौंसिल के सदस्य बनाये गये और सर चिमनलाल शीतलवाड़ को बाद में बम्बई की कार्यकारिणी कौंसिल का एक सदस्य बना दिया गया।

कलकत्ता में श्री ए० चौधरी, जिन्होंने बंग-भंग के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय वहां की हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। १९०८ में जब लॉर्ड मिण्टो ने भारत-सरकार की लॉ-मेम्बरी के लिए व्यक्तियों का चुनाव किया तो, लेडी मिण्टो ने अपने पति लॉर्ड मिण्टो का जो जीवन-चरित्र लिखा है उससे मालूम पड़ता है कि, दो नाम उनके सामने थे—एक तो श्री आशुतोष मुकर्जी का, "जो भारत के एक प्रमुख कानूनदां थे, पर थे सच्चे दिल से पुराणपन्थी, और सावधानी के साथ उनका पक्ष उपस्थित किया गया था," और दूसरा श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का, जिनके बारे में लॉर्ड मिण्टो ने कहा बताते हैं कि "उनके विचार तो सौम्य हैं परन्तु हैं वह कांग्रेसी।" सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह १८९६ की कलकत्ता-कांग्रेस में, देशी नरेश को बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर देने के प्रश्न पर बोले थे। और, यह हम सब जानते हैं कि, अन्त में (लॉ-मेम्बरी के लिए) तरजीह कांग्रसमैन को ही दी गई। इसी प्रकार १९२० में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में जब जगह हुई तब भी लॉर्ड चेम्सफोर्ड (१९२०) ने तो महाराजा बर्दवान को रखना चाहा पर मि० माण्टेगु ने बड़ी कौंसिल के किसी चुने हुए सदस्य को ही रखना ज्यादा पसन्द किया। मि० माण्टेगु ने श्री श्री-निवास शास्त्री का नाम इसके लिए सुझाया, लेकिन चूंकि ऐन मौके पर उन्होंने साथ नहीं दिया था इसलिए चेम्सफोर्ड ने उन्हें रखना पसन्द नहीं किया और श्री बी० एन० शर्मा को रक्खा—जो कि, जैसा हम आगे देखेंगे, अमृतसर-काण्ड के वक्त भी सरकार के पृष्ठ-पोषक बने रहे।

बंगाल में कांग्रस से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जिन व्यक्तियों को ऊंचे सरकारी ओहदे मिले उनमें श्री एस० के० दास और सर प्रभासचन्द्र मित्र मुख्य हैं। इनमें श्री दास, जो १९०५ की कांग्रेस में, कार्यकारिणी में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति के प्रश्न पर

वोले थे, वाद में भारत-सरकार के लॉ-मेम्वर हुए और मित्र महोदय वंगाल की कार्यकारिणी के सदस्य।

युक्तप्रान्त में सर तेजवहादुर सप्रू जैसे जवरदस्त व्यक्ति को भारत-सरकार का लॉ-मेम्वर वनाया गया। विहार के सय्यद हसनइमाम १९१२ की कांग्रेस को पटना में आमंत्रित करने के वाद हाईकोर्ट के जज वन गये और श्री सच्चिदानन्द सिंह को विहार की कार्यकारिणी का सदस्य वना दिया गया। यहां यह भी वतला देना चाहिए कि सरकारी पुरस्कार का रूप सदा वड़े सरकारी ओहदों का देना ही नहीं रहा है। फिरोजशाह मेहता को १९०५ में 'सर' की उपाधि दी गई—और वह भी लॉर्ड कर्जन के द्वारा, जो वड़े प्रतिगामी वाइसराय थे। गोपालकृष्ण गोखले ने तो 'सर' की उपाधि मंजूर नहीं की और न ही वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य वनते—यदि उनसे इसके लिए कहा भी जाता। उन्होंने तो खाली, सीधे-सादे, भारत-सेवक ही रहना पसन्द किया, जैसे कि सचमुच वह थे, और अगर सी० आई० ई० की उपाधि भी न दी गई होती तो वह ज्यादा खुश होते।

श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री को, यूरोपीय महायुद्ध के समय, लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने मदरास-कौंसिल का सदस्य नामजद किया था। माण्ट-फोर्ड शासन-सुधारों का अमल शुरू होने पर उन्हें असेम्वली में नामजद किया गया, १९२१ में महाराजा कच्छ के साथ उन्हें साम्राज्य-परिषद् के लिए 'भारत का प्रतिनिधि' नियुक्त किया गया और उनके वाद ही वह प्रिवी-कौंसिलर वना दिये गये। इसके वाद वह अमरीका में भारत और साम्राज्य के सम्वन्ध में व्याख्यान देने गये। साम्राज्यान्तर्गत सभी उपनिवेशों ने उन्हें व्याख्यानों के लिए आमन्त्रित किया, लेकिन दक्षिण अफ्रीका ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस यात्रा के लिए सरकार ने, ६०,०००) रु० का खर्च मंजूर किया था। १९२७ में शास्त्रीजी को ही दक्षिण अफ्रीका का सर्वप्रथम एजेण्ट-जनरल वनाकर सरकार ने मानों उस कमी की पूर्ति की, जो दक्षिण अफ्रीका में व्याख्यान के लिए न वुलाने से हुई थी। इस प्रकार जिस पत्थर को नापसन्द किया गया था वही आगे चलकर साम्राज्य का आधार-स्तम्भ वन गया।

यहां हमने कुछ ऐसे प्रमुख कांग्रेसियों का उल्लेख किया है जो सरकार-द्वारा पुरस्कृत हुए हैं। लेकिन इसपर से किसी को यह खयाल नहीं वना लेना चाहिए कि जो उच्चपद उन्हें दिये गये उनके लायक शिक्षा, संस्कृति और उच्च चारित्र्य का किसी भी प्रकार उनमें अभाव था। ये उदाहरण तो सिर्फ यह वतलाने की ही गरज से दिये

गये हैं कि सरकार को भी अगर योग्य हिन्दुस्तानियों की जरूरत हुई तो इसके लिए उसे भी कांग्रेसियों पर ही निगाह डालनी पड़ी है; और उनके राजनैतिक विचारों को उसने ऐसा नहीं समझा है जो वह उन्हें सरकारी विश्वास एवं बड़ी-से-बड़ी जिम्मेवारी के ओहदों के लिए नाकाबिल मान लेती ।

: ४ :

ब्रिटेन की दमननीति और देश में नई जागृति

भारत में ब्रिटिश-शासन का इतिहास दमन और सुधार की एक लम्बी कहानी है। जब-जब कुछ सुधार हुआ, उससे पहले दमन भी जरूर हुआ। जब-जब जनता में कोई आन्दोलन शुरू हुआ है, तब-तब जोरों का दमन किया गया और उसमें यह नीति रक्खी गई कि जबतक लोग आन्दोलन करते-करते बिलकुल थक न जायँ तबतक उनकी मांगों पर कोई ध्यान न दिया जाय। लॉर्ड लिटन का १८७० का प्रेस-एक्ट जो जल्दी ही वापस ले लिया गया, सरकार की इस नीति की पूर्व-सूचना थी। राष्ट्र के बढ़ते हुए आत्मचैतन्य का दूसरा जवाब शस्त्र-विधान के रूप में मिला, जिसने राष्ट्र के दुःख-रूपी फोड़े को और भी पका दिया। १८८६ में इन्कमटैक्स एक्ट बना। उसका भी तीव्र विरोध उसी समय किया गया। जैसे-जैसे कांग्रेस हर साल बढ़ती गई, सरकारी अधिकारी भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। जिन लॉर्ड डफरिन ने ह्यूम साहब को यह सलाह दी थी कि वह कांग्रेस का क्षेत्र केवल सामाजिक न रखकर राजनैतिक भी बनावें; किन्तु वही लॉर्ड डफरिन फिर कांग्रेस के खुले दुश्मन हो गये और उसे राजद्रोही कहने लगे। युक्तप्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर ऑकलैण्ड कॉल्विन के साथ इस विषय पर ह्यूम साहब की जो खतोकिताबत हुई थी, वह ध्यान देने लायक है।

यद्यपि ह्यूम साहब के लिए यह आनन्द की बात है कि १८८६ में वाइसराय लॉर्ड डफरिन ने कलकत्ता में और १८८७ में मदरास के गवर्नर ने कांग्रेस का स्वागत किया लेकिन बाद के सालों में युक्त-प्रान्त के सर ऑकलैण्ड जैसे प्रान्तीय शासक इसे शत्रु-भाव से देखने लग गये। इन महाशय ने कांग्रेस को समाज-सुधार तक ही मर्यादित रहने की सलाह दी। सर ऑकलैण्ड की सम्मति में यह आन्दोलन समय से पूर्व, और मदरास के अधिवेशन से उग्र-रूप धारण करने के कारण खतरनाक भी था। उन्होंने कहा कि कांग्रेस का सरकार की निन्दा करने का रवैया सर्व-साधारण में सरकार के प्रति घृणा पैदा करेगा और देश में राजभक्त और देशभक्त ऐसे दो भेद खड़े हो जायँगे। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस भारतीय जनता की प्रतिनिधि बनने का जो

दावा करती है वह ठीक नहीं है। ह्यूम साहब ने इसका मुंहतोड़ जवाब दिया।

इलाहाबाद के चौथे अधिवेशन में कांग्रेस को अकथनीय कठिनाइयां हुईं। उसे पण्डाल तक के लिए जमीन नहीं मिली। श्रीमती एनी वेसेण्ट ने अपनी कांग्रेस-सम्बन्धी पुस्तक में एक ऐसे सज्जन का उदाहरण दिया है, जो अपने जिला-अफसर की इच्छा के खिलाफ मदरास (१८८७) के अधिवेशन में शामिल हुआ था और उससे शान्ति-रक्षा के नाम पर २०,०००) की जमानत मांगी गई थी। हालत तेजी से खराब होती गई और १८९० में सरकार का विरोध बहुत बढ़ गया। बंगाल-सरकार ने सब मंत्रियों और सब विभागों के प्रमुख अफसरों के पास एक गश्ती-पत्र भेजा, जिसमें उन्हें यह हिदायत दी गई थी कि "भारत-सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी सभाओं में दर्शक-रूप में भी सरकारी अफसरों का जाना ठीक नहीं है और ऐसी सभाओं की कार्रवाई में भाग लेने की भी मनाही की जाती है।" कांग्रेस ने गवर्नर के प्राइवेट-सेक्रेटरी के पास सात 'पास' भेजे थे, वे भी लौटा दिये गये। २५ जून १८९१ को भारत-सरकार ने देशी रियासतों के प्रेसों पर अनेक पाबन्दियां लगाने के लिए एक गश्ती-पत्र जारी किया। कांग्रेस ने १८९१ में इसका विरोध किया था।

दमन नीति का प्रारम्भ

१८९३ में कौंसिलें और बड़ी कर दी गईं और जनता के थोड़े से प्रतिनिधि—७ मदरास में, ६ बम्बई में (सरदारों के दो प्रतिनिधि मिलाकर) और ७ बंगाल में—उनमें ले लिये गये। इस तरह लोक-प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ जाने पर सरकार ने यह जरूरी समझा कि भारतवासियों को सरकारी नौकरियों में जो-कुछ विशेषाधिकार मिले हैं वे कम कर दिये जायें। (विस्तार के लिए दूसरे अध्याय का सरकारी नौकरियों सम्बन्धी प्रस्तावों के सारांशवाला प्रकरण देखें।) होम-चार्जेज का प्रवाह भी ३० सालों में ७० लाख पौण्ड से बढ़कर १३० लाख पौण्ड हो गया। १८९७ में १२४ए और १५३ए धारायें बनाई गईं। इनसे सरकार के प्रति सचमुच असंतोष पैदा हो गया। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि १०८ और १४४ धाराओं का प्रयोग पहले-पहल राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं पर ही किया गया। १८९७ में पूना के प्लेग-सम्बन्धी दंगे के प्रसंग में नातू-बन्धु बिना मुकदमे के गिरफ्तार कर लिये गये थे, वे १८९९ में रिहा हो गये। फिर इसका आक्रमण बंगाल पर हुआ और उसके पर काट दिये गये। २० वीं सदी के पहले पांच साल लॉर्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी, सरकारी गुप्त समितियों का कानून, विश्व-विद्यालयों को सरकारी

नियन्त्रण में लाना जिससे शिक्षा महंगी हो गई, भारतीयों के चरित्र को 'असत्यमय' वताना, वारह सुधारों का वजट, तिव्वत आक्रमण (जिसे पीछे से तिव्वत-मिशन का नाम दिया गया) और अन्त में वंग-विच्छेद ये सव लॉर्ड कर्जन के ऐसे कार्य थे, जिनसे राजभक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश में एक नई स्पिरिट पैदा हो गई।

वंगभंग

वंग-भग ने वंगाली भाषाभाषी जनता को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध दो प्रान्तों में वांट दिया था। इसके परिणामस्वरूप जहां जनता में एक व्यापक और जवर्दस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ, वहां सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जुलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे—और उधर सरकार उन्हें रोक देती थी। हड़तालें होती थीं और विद्यार्थी तथा नागरिक एक-सी सजा पाते थे। शिक्षणालयों के नियम और भी सख्त कर दिये गये तथा विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी वंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर वैम्फील्ड फुलर ने वड़े-वड़े प्रतिष्ठित नागरिकों को वुला कर धमकी दी कि "सम्भव है खून-खरावी करनी पड़े।" इसके साथ ही पूर्वी वंगाल में गुरखा पलटन के आने की घोषणा भी की गई। यह सव तव हुआ, जव पण्डित मालवीयजी के कथनानुसार 'जनता में हिंसा की भावना का चिह्न तक नहीं पाया जाता था।' लेकिन जैसे गेंद को जितने जोर से जमीन पर फेंको वह उतनी ही जोर से ऊँची उठती है और ढोल को जितना ही पीटो उतना ही अधिक आवाज करता है, ठीक उसी तरह सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न रूप धारण करनेवाली दमन-नीति के कारण नवजाग्रत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती थी। सरकार का प्रत्येक दमन-कार्य देश में उलटा असर करता था। सम्पूर्ण भारत ने वंगाल के सवाल को अपना सवाल वना लिया। प्रत्येक प्रान्त ने वंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं को और जोड़कर आन्दोलन को ज्यादा गहरा रंग दे दिया। 'कैनल कालोनाइजेशन विल' ने पंजाव के सैनिक प्रदेश में जनता के अन्दर एक नया तूफान खड़ा कर दिया, जिसके सिलसिले में लाला लाजपतराय और सरदार अजितसिंह को देश-निकाले की सजा मिली। ऐसे समय कलकत्ता-कांग्रेस ने ठीक ही भारत के पितामह दादाभाई नौरोजी को अपना सभापति चुना। दादाभाई के 'स्वराज्य' शव्द के प्रयोग ने अधगोरों की रोष-ज्वाला को और भी प्रचण्ड कर दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा

राजनैतिक सभाओं व प्रदर्शनों में विद्यार्थियों को सम्मिलित होने से रोकने के फल-स्वरूप स्कूलों और कालेजों का वहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन शुरू हुआ। केवल पूर्वी-वंगाल में २४ राष्ट्रीय हाई-स्कूल खुल गये और भूतपूर्व जस्टिस सर गुरुदास वनर्जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए 'वंग-जातीय विद्या-परिषद्' की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्र पाल सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षा और नव-चैतन्य का जोर शोर से प्रचार करने लगे। १९०७ में आन्ध्र देश में उनका दौरा बहुत ही शानदार और सफल रहा। राजमहेन्द्री के निवासियों ने उनके आने पर एक राष्ट्रीय हाईस्कूल खोलने का निश्चय किया। ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियों ने उन्हें मान-पत्र दिया था, इस कारण कुछ विद्यार्थियों को सरकारी अधिकारियों ने कालेज से निकाल दिया था। वे विद्यार्थी राष्ट्रीय संग्राम के सिपाही हो गये। इस तरह सरकार की वेरोक दमन-नीति ने देशभक्तों और वीर सिपाहियों को पैदा किया।

स्वदेशी और वहिष्कार

१९०७ में राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर स्वदेशी, वहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के ठोस क्रियात्मक प्रस्तावों पर जोरों से अमल भी किया। जहां कि वंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, पंजाब व आन्ध्र में राष्ट्रीय स्कूलों और विश्वविद्यालयों का जन्म बड़े वेग से हो रहा था, तहां स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। हाथ के कपड़े का उद्योग एक वार फिर पुनर्जीवित हो गया। इस बार करघे में 'फटका शाल' भी इस्तेमाल किया गया। इस उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार का आन्दोलन भी किया गया था। सम्पूर्ण वातावरण में ही एक नवीन जीवन का संचार हो गया था। राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ सरकार का दमन भी बढ़ता गया। दमन-नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान उलटा बढ़ने लगा।

वंगाल के नेता

इस समय वंगाल से दो व्यक्तियों ने भारतीय इतिहास के रंगमंच पर आकर बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उनमें से एक विपिन बाबू के सम्बन्ध में हम कुछ ऊपर लिख चुके हैं। दूसरे अरविन्द बाबू भारत के राजनैतिक आकाश में बरसों तक उज्ज्वल

सितारे की तरह चमकते रहे। राष्ट्रीय-शिक्षा-आन्दोलन उनका शुरू में ही सहयोग मिल जाने के कारण बहुत चमक गया। वह इंग्लैण्ड में उत्पन्न हुए थे, अंग्रेजी वातावरण में ही पले और अंग्रेजी स्कूलों और विश्वविद्यालयों में ही उन्होंने तालीम पाई। घुड़सवारी की परीक्षा में असफल होने के कारण इण्डियन सिविल सर्विस में वह कोई जगह न पा सके थे। वह बड़ौदा के शिक्षा-विभाग में काम करने के लिए भारत में वैसे ही आये, जैसे यहां प्रायः युरोपियन आते हैं। उनकी प्रतिभा टूटते हुए तारे के समान चमक उठी और उनके प्रकाश की प्रभा एक बाढ़ की तरह हिमालय से कन्या कुमारी तक फैल गई।

वंगाल से नौ नेता निर्वासित किये गये—कृष्णकुमार मित्र, पुलिनविहारी दास, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, अश्विनीकुमार दत्त, मनोरंजन गुह, सुवोधचन्द्र मल्लिक, शचीन्द्रप्रसाद वसु, सतीशचन्द्र चटर्जी और भूपेशचन्द्र नाग। ये नेता वंगाल को और विशेपकर युवक वंगाल को संगठित कर रहे थे। पराक्रम और शौर्य उस समय के आदर्श थे। दूसरी तरफ सर वैम्फील्ड फुलर का आदर्श 'गुरखा सेना' व 'यदि आवश्यक हो तो खून-खरावी' थे। १६०८ में स्थिति चरम सीमा को पहुँच गई थी। अखवारों पर मुकदमे चलाना एक आम वात हो गई। 'युगान्तर', 'संध्या' 'वन्देमातरम्' नई जागृति के प्रचारक पत्र थे, वे सव वन्द कर दिये गये। 'संध्या' के सम्पादक देशभक्त ब्रह्मवांधव उपाध्याय अस्पताल में मर गये। अनेक कठिनाइयों और तीन मुकदमों से गुजरने के वाद श्री अरविन्द ब्रिटिश-भारत ही छोड़कर पांडिचरी चले गये और वहां आश्रम स्थापित करके रहने लगे।

पहला वम

३० अप्रैल १६०८ को मुजफ्फरपुर में दो स्त्रियों—श्रीमती और कुमारी कैनेडी—पर दो वम गिरे। ये वम स्थानीय जिला जज किंग्सफोर्ड को मारने के लिये वनाये गये थे। इस अपराध के लिए १८ वर्षीय युवक श्री खुदीराम वसु को फांसी की सजा मिली। उसकी तसवीरें सारे देश में घर-घर फैल गईं। स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलनेवाले 'युगांतर' के कालमों में हिंसावाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार किया जाने लगा। जब उस युवक को लम्बी सजा मिली, तो उसकी बूढ़ी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और 'वंगाल' की ५०० स्त्रियाँ उसे वधाई देने उसके घर पर गईं। उस युवक ने भी अदालत में यह घोषणा की कि मेरे पीछे अखवार का काम सम्हालने के लिए ३० करोड़ आदमी मौजूद हैं। इसी विश्वास के कारण यह आन्दोलन इतना फूला-फला। राज-द्रोह

या दण्ड का भय जनता के दिल से उठ गया। लोग राजद्रोह का यथाशक्ति प्रचार करते और मुकदमा चलने पर तमाम कानूनी साधन अपनी वरीयत या छुटकारे के लिए इस्तेमाल में लाते। 'वन्देमातरम्' में राजविद्रोहात्मक लेखों के लिए श्री अरविन्द पर जो मुकदमा चलाया गया, वह भी इस संग्राम में अपवाद न था। महाराष्ट्र में १३ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये और उसी दिन आन्ध्र में भी हरि सर्वोत्तमराव तथा दो अन्य सज्जन पकड़े गये। पांच दिनों की सुनवाई के बाद लोकमान्य तिलक को छः साल देश-निकाले की सजा मिली। १८९७ में छूटी हुई छः मास की कैद भी इसके साथ जोड़ दी गई। आन्ध्र के श्री हरि सर्वोत्तमराव को नौ महीने की सजा मिली थी। सरकार ने इतनी थोड़ी सजा के खिलाफ अपील की और हाईकोर्ट ने उनकी सजा बढ़ाकर तीन साल कर दी। राजद्रोह के लिए पांच साल सजा देना तो उन दिनों मामूली बात थी। इसके बाद जल्दी ही राजद्रोह देश से गायब हो गया। वास्तव में यह अन्दर-ही-अन्दर अपना काम करने लगा और उसकी जगह बम व पिस्तौल ने ले ली। १९०८ में राजद्रोही सभाबन्दी-कानून व 'प्रेस-एक्ट' नाम के दो कानून जनता के पूर्ण विरोध करने पर भी सरकार ने पास कर दिये और दो साल बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट भी बन गया। सभाबन्दी बिल पर बहस करते हुए श्री गोखले ने सरकार को चेतावनी दी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे हैं और यदि हम उन्हें वश में न रख सकें, तो हमें दोष मत देना।"

कभी-कभी इक्के-दुक्के राजनैतिक खून भी होने लगे जिनमें सबसे साहसपूर्ण खून १९०७ में लन्दन की एक सभा में सर कर्जन वाइली का हुआ था। यह खून मदनलाल धिंगड़ा ने किया था, जिसे बाद में फांसी दी गई। अभियुक्त को बचाने की कोशिश करनेवाले डॉ० लालकाका नामक एक पारसी सज्जन को भी फांसी की सजा दी गई। लाहौर (१९०९) में होनेवाले कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन के सभापति पं० मदनमोहन मालवीय ने इन घटनाओं तथा नासिक के कलक्टर मि० जक्सन की हत्या पर दुःख प्रकट किया। लन्दन में रहनेवाले कुछ विद्यार्थी भी इसके समर्थक थे। मिण्टो-मॉर्ले सुधारों, या भारत-सरकार और मदरास व बम्बई की सरकारों की कौंसिलों में भारतीयों के लेने से भी यह बढ़ा-चढ़ा वैमनस्य शान्त न हुआ।

वंगभंग रद

जबतक बंग-विच्छेद उठा न लिया जाय, तबतक शान्ति की कोई सम्भावना न थी। लेकिन ऐसा करने से नौकरशाही का रोब जाता था। यदि वह आन्दोलन के

आगे एकवार भी झुक जाय, तो उसकी शान किरकिरी होती थी। उसे डर था कि यदि एकवार हमारी शान गई, तो फिर हम हकूमत भी न कर सकेंगे। तव वंग-भंग के कारण जो सांप-छछूंदर की सी हालत होगई थी उसमें से छूटने के लिए एक रास्ता ढूंढा गया। जव लॉर्ड मिण्टो ने अपनी जगह लॉर्ड हार्डिंग को दी और लॉर्ड मिडलटन की जगह लॉर्ड क्रू भारत-मंत्री वने, भारत में ब्रिटिश-नरेश जार्ज पंचम के राज्याभिषेक-महोत्सव का लाभ उठाकर वंग-भंग रद्द कर दिया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से उठा-कर दिल्ली ले आये।

जव यह कहा जाता है कि वंग-भंग रद कर दिया गया, तो यह नहीं समझना चाहिए कि स्थिति यथापूर्व कर दी गई। पहले पश्चिमी वंगाल और आसाम-सहित पूर्वी वंगाल के रूप में वंग-भंग किया गया था। अव उसका रूप वदल दिया गया। पहले विहार को पश्चिमी वंगाल में मिला लिया था, लेकिन अव उसे छोटा नागपुर और उड़ीसा के साथ मिलाकर एक प्रान्त वना दिया; अर्थात् आसाम के साथ पूर्वी और पश्चिमी वंगाल के दो प्रान्तों के वजाय अव तीन प्रान्त हो गये—वंगाल एक प्रान्त, विहार छोटा नागपुर और उड़ीसा, दूसरा प्रान्त और आसाम तीसरा प्रान्त। राज्या-भिषेक के उत्सव में जिस एक अन्याय को दूर नहीं किया गया था, वह अव उड़ीसा को पृथक् प्रान्त स्वीकार करके दूर किया गया है। कहते हैं कि लॉर्ड हार्डिंग ने दक्षिण अफ्रीका में शर्तवन्दी कुली-प्रथा को नष्ट कर तथा वंग-भंग को रद करके अपना शासन-काल स्मरणीय वना दिया, लेकिन वस्तुतः जिस घटना ने उनका शासन चिरस्मरणीय वनाया वह २५ अगस्त १९११ का खरीता था। यह खरीता ही भावी सुधारों का आधार रहा है। इसमें उन्होंने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को विना किसी ननुनच के स्वीकार कर लिया था।

इन सव सफलताओं के वाद, जिनका श्रेय कांग्रेस को था, यह स्वाभाविक था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (कलकत्ता, १९११) वहुत खुशी के साथ मनाया जाता। श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने, वंगाल को जो सारे हिन्दुस्तान ने मदद दी थी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, यह उच्च आशा प्रकट की थी कि "भारत भी स्वशासन-प्राप्त राष्ट्रों के स्वतंत्र संघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अंग वनेगा।" लेकिन इन सव आशाओं और खुशियों में भी लोग राजद्रोही सभावंदी कानून १९०८, प्रेस-एक्ट १९०८ और क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट (१९१०) को भूले नहीं थे। इन्हींके द्वारा तो जनता की आजादी की जड़ पर कुल्हाड़ा चल गया था। इन सवसे वढ़कर १८१८ का रेग्युलेशन ३ तथा अन्य प्रान्तों के रेग्यलेशन अवतक मौजूद थे, जिनकी रू से १९०६–८

के देश-निकाले जगह-जगह दिये गये थे। भारत में बननेवाले कपड़े पर 'उत्पत्तिकर' भी अबतक मौजूद था। इनकी बदौलत जान-माल की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय उद्योग-धंधों के हित खतरे में थे। इन सबसे भी बढ़कर अबतक राजनैतिक कैदी जेलों में बन्द थे। लोकमान्य तिलक मधुमेह रोग में ग्रस्त होकर अकेले और बिना किसी मित्र के लेकिन दृढ़ता और धैर्य के साथ मंडाले के किले में कैद थे। इस समय श्री गोखले के प्राथमिक शिक्षा-बिल की बहुत चर्चा थी, जिसके पास होने की उम्मीद बहुत कम थी। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की बुरी हालत थी जिसके लिए देशव्यापी आन्दोलन की जरूरत थी।

१९११ में यह हालत थी। १९१२ में राजनैतिक खिंचाव कुछ-कुछ कम हो गया था। लेकिन इसी वर्ष में एक भारी दुर्घटना हो गई। लॉर्ड हार्डिंग जब जुलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे, किसीने उनपर बम फेंका, और वह मरते मरते बचे। इसपर बांकीपुर में कांग्रेस ने, सभापति के भाषण के बाद, बरखास्त होने के रिवाज को तोड़कर, इस घटना पर दुःख तथा आक्रमण पर रोष-प्रकाश का तार लॉर्ड हार्डिंग के पास भेजने का प्रस्ताव पास किया। इस घटना के बाद प्रेस का और कठोरता से नियंत्रण होने लगा, जिससे प्रेस-एक्ट को रद करने की लगातार आवाज ने भी १९१३ में जोर पकड़ लिया। कांग्रेस कई सालों तक इसका विरोध करती रही। १९०८ का प्रेस-एक्ट सबसे अधिक खराब था, जिसे १९१० में स्थायी कानून बना दिया गया। इस समय श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर थे।

माण्टफोर्ड-सुधारों के बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को छोड़कर बाकी सब दमनकारी कानून रद कर दिये गये। बंग-भंग के रद किये जाने और हिंसावाद के शान्त हो जाने के बाद भी प्रेस-एक्ट से लोगों को सख्त तकलीफें झेलनी पड़ती थीं। इधर राजनैतिक वातावरण में जो एक स्तब्धता और शान्ति आ गई थी, उसकी जगह १९१४–१८ के महासमर की हलचल ने ले ली और इस भीषण विश्व-क्रान्ति के प्रारम्भ में ही एक सन्तोषजनक घटना हो गई। बंग-भंग के दिनों से ही मुसल्मान राष्ट्रीय आदर्शों से अलग रहे थे और नौकरशाही पर अपना विश्वास जमा रक्खा था। १९१३ में उन्होंने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने अपने गत अधिवेशन में बड़े जोर के साथ यह विश्वास भी प्रकट कर दिया कि "देश का राजनैतिक भविष्य दो महान् जातियों (हिन्दू और मुसलमानों) के मेल, सहयोग और सहकार्य पर निर्भर है।" कांग्रेस ने १९१३ में मुस्लिम-लीग के इस प्रस्ताव की बहुत तारीफ की।

यूरोप में महासमर प्रारम्भ

जुलाई १९१४ में महासमर छिड़ गया और नवम्बर में जब जर्मनी फ्रांस का दरवाजा खटखटा रहा था, लॉर्ड हार्डिंग ने बड़े साहस का काम किया कि भारतवर्ष से फौज बाहर भेज दी। इंग्लैण्ड बड़ी आफत में था। हिन्दुस्तान में फौज इसलिए रक्खी गई थी कि वह इंग्लैण्ड के लिए हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सके, लेकिन यदि इंग्लैण्ड खुद खतरे में हो, तब भारत में ठहरी हुई सेना से लाभ ही क्या? लॉर्ड हार्डिंग ने भारतीय सेना को यूरोप भेज दिया। मार्सेल्स में एक दिन भी आराम किये बगैर हिन्दुस्तानी फौज फ्लांडर्स-रणक्षेत्र में, जहां अग्नि-वर्षा हो रही थी, भेज दी गई। उस फौज ने मित्र-राष्ट्रों को उस भारी विपत्ति से बचा दिया, जो उसके न पहुँचने पर १९१५ के फरवरी-मार्च में उनपर आ जाती। १९१४ की कांग्रेस में स्व-शासन की मांग फिर की गई। कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया—"वर्तमान आपत्ति के वक्त हिन्दुस्तान के लोगों ने जिस उत्कृष्ट राजभक्ति का परिचय दिया है उसे देखते हुए यह कांग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राजभक्ति को और भी गहरी व स्थिर बनावे और उसे साम्राज्य की एक कीमती सम्पत्ति बना ले। ऐसा करने के लिए यहां और बाहर सम्राट् की भारतीय और अन्य प्रजा के बीच जो द्वेषजनक भेदभाव है उसे दूर करदे, २५ अगस्त १९११ के खरीते में प्रान्तीय स्वतंत्रता के बारे में जो वादे किये हैं उन्हें पूरा करे, और भारत को संघ-साम्राज्य का एक अंश बनाने और उस हैसियत के पूरे अधिकार देने के लिए जो काम जरूरी हो वह सब करे।" हमने यह लम्बा प्रस्ताव इसलिए उद्धृत किया है कि जिससे यह मालूम हो सके कि उस समय हमारी राजनैतिक आकांक्षाओं की कक्षा कितनी ऊँची थी।

: ५ :

हमारे अंग्रेज हितैषी

भारत के राजनैतिक विकास में ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के कुछ सदस्यों और बड़े-बड़े अंग्रेजों ने भी अच्छा भाग लिया है। ह्यूम साहब ने कांग्रेस का संगठन तो बहुत बाद में किया था। इससे पहले ही पार्लमेण्ट के कई सदस्य भारतीय प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लग गये थे। भारत के विषय में पार्लमेण्ट में जो चर्चा होती थी उसमें इन लोगों की भावना निःस्वार्थ भी रहती थी। पिछली शताब्दी के पचास से सत्तर वर्ष के बीच जॉन ब्राइट साहब ने भारत का खूब पक्ष-समर्थन किया। उन्होंने १८४७ में पार्लमेण्ट में प्रवेश किया। उस समय से १८८० तक इस देश के भाग में बहुत उतार-चढ़ाव आये, पर ब्राइट साहब का भारत-प्रेम बराबर बना रहा। इनके बाद फॉसेट साहब की बारी आई। यह १८६५ में पार्लमेण्ट के सदस्य हुए और १८६८ में ही इन्होंने प्रस्ताव किया कि भारत की बड़ी-बड़ी नौकरियों की परीक्षायें केवल विलायत में न होकर भारत और इंग्लैण्ड दोनों में साथ-साथ हों। १८७५ में इंग्लैण्ड में भारतवर्ष के खर्च से तुर्की के सुलतान के लिए लॉर्ड सेल्सबरी ने जो नाच करवाया था इसकी फॉसेट साहब ने निन्दा की। उस समय से अपने सारे कार्य-काल में यह हृदय से भारत के हितैषी बने रहे। इन्हींके विरोध से अबीसीनिया की लड़ाई का सारा खर्च भारत के मत्थे न मढ़ा जाकर आधा इंग्लैण्ड पर पड़ा। ड्यूक ऑफ एडिनबर्ग ने भारतीय नरेशों को जो उपहार दिये उनका मूल्य भारतीय कोष से दिये जाने का भी इन्होंने विरोध किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश युवराज की भारत-यात्रा के खर्च के ४,५०,०००) के भार से भी इन्होंने हमारे देश को बचाया। लॉर्ड लिटन ने कपड़े का आयात-कर बन्द कर दिया, दिल्ली में दरबार किया और अफगान-युद्ध मोल ले लिया था। इन करतूतों का फॉसेट साहब ने विरोध किया। कृतज्ञ भारत ने भी इन उपकारों का बदला तुरन्त दिया। १८७२ में कलकत्ते की जनता ने इन्हें मान-पत्र दिया और जब १८७४ में फॉसेट साहब पार्लमेण्ट के चुनाव में हार गये तो आगामी चुनाव के लिए सहायतार्थ उन्हें १०,००० रु० से अधिक की थैली भेंट की गई।

ए० ओ० ह्यूम

ह्यूम साहब ने पार्लमेण्ट की भारत-समिति और कांग्रेस के संगठन में जो भाग लिया उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु इस स्कॉचमैन ने साठ वर्ष से भी अधिक सरकारी और गैरसरकारी हैसियत से भारत की भलाई के लिए जो परिश्रम किया उसका हाल जरा विस्तार से जानना हमारा कर्तव्य है। वह भारत की सिविल सर्विस में अनेक पदों पर रहे। जब वह जिला-मजिस्ट्रेट रहे, इन्होंने साधारण जनता में शिक्षा-प्रसार, पुलिस-सुधार, मदिरा-निषेध, देशी-भाषाओं के समाचार-पत्रों की उन्नति, बाल-अपराधियों के सुधार एवं अन्य घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिश्रम किया। इन्हें किसी बात में रस था तो गांव और खेती में। इन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो जनता की। इन्होंने घोषित किया था कि "सरकार तलवार के जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किन्तु स्वतंत्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसीमें है कि प्रजा के ज्ञान की वृद्धि की जाय और उसमें सरकार की अच्छाइयों की कदर करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय।" ह्यूम साहब के इस रुख का उत्तर सरकार ने २८ जनवरी सन् १८५९ के अपने एक गश्ती-पत्र में दिया। इस पत्र में कहा गया था कि शिक्षा-प्रचार के लिए भारतीयों से काम न लिया जाय और कलक्टर साहब लोगों को पाठशालाओं में अपने बालकों को भेजने की या पाठशालाओं की सहायतया करने की प्रेरणा न करें। ह्यूम साहब ने इसका जिस प्रकार विरोध किया वह भी मार्के की चीज है। ह्यूम साहब का दूसरा प्रिय विषय था पुलिस का सुधार। उनकी योजना यह थी कि पुलिस और न्याय-विभाग को बिलकुल अलग-अलग कर दिया जाय। आबकारी के बारे में वह लिखते हैं:—
"जहां एक ओर हम अपनी प्रजा का आचरण भ्रष्ट करते हैं, तहां दूसरी ओर हमें उसकी बरबादी से कोई आर्थिक लाभ भी नहीं होता। यह सारी आय पाप की कमाई है और इस पुरानी कहावत को सिद्ध करती है कि पाप की कमाई यों ही जाती है। आबकारी से हमें एक रुपया मिलता है तो उसके बदले में एक रुपया प्रजा का अपराधों के रूप में खर्च हो जाता है और एक सरकार को इन अपराधों के दमन में लगा देना पड़ता है। अभी तो मुझे इस दिशा में सुधार की कोई आशा नहीं दीखती, किन्तु मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि मैं कुछ वर्ष और जीता रहा तो इन आंखों से हमारे भारतीय शासन के इस बड़े भारी कलंक को सच्चे ईसाई तरीके पर धुला हुआ देख सकूंगा।"

१८५९ के अन्त में ह्यूम साहब की सहायता से 'पीपुल्स-फ्रेण्ड' (लोक-मित्र)

नामक हिन्दुस्तानी पत्र निकाला गया। इसकी छः सौ प्रतियां संयुक्त प्रान्त की सरकार खरीदती थी। वाइसराय ने भी इस पत्र को पसन्द किया और इसका अनुवाद होकर भारतमंत्री के मार्फत महारानी विक्टोरिया के पास भेजा जाता था। १८६३ में ही ह्यूम साहब ने जोर दिया कि बाल-अपराधियों के सुधार-गृह बनाये जायें। चुंगी की अफसरी में उन्होंने मुख्य कार्य यह किया कि चुंगी की लम्बी-चौड़ी रुकावटों को धीरे-धीरे दूर करवा दिया।

१८७६ ई० में ह्यूम साहब ने कृषि-सुधार की एक योजना तैयार की। लॉर्ड मेयो की उसके साथ सहानुभूति भी थी। परन्तु वह योजना यों ही गई। मुकदमेबाजी के बारे में उनकी राय यह थी कि देहाती इलाकों में किसानों को महाजनों की गुलामी में जकड़ने की सीधी जिम्मेवारी दीवानी अदालतों पर है। उन्होंने सिफारिश की कि ग्रामवासियों के कर्ज के मुकदमे जल्दी-से-जल्दी और जहां-के-तहां निपटाने चाहिएँ, उनका अन्तिम निर्णय चुने हुए ईमानदार और समझदार भारतीयों द्वारा होना चाहिए, उन्हें न्यायाधीश बनाकर गांव-गांव भेजना चाहिए और वे लोग सब प्रकार के लेनदेन के मुकदमे गांव के बड़े-बूढ़ों की सहायता से तय कर दिया करें। इन न्याया-धीशों पर कोई जाब्ते या कानून-कायदे की पाबन्दी नहीं होनी चाहिए।

१८७० ई० से १८७९ तक ह्यूम साहब भारत-सरकार के मन्त्री रहे; परन्तु उन्हें वहां से इसी अपराध पर निकाल दिया गया कि वह बहुत ज्यादा ईमानदार और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इसकी भारतीय समाचार-पत्रों ने एक-स्वर से निन्दा की, परन्तु कुछ सुनाई नहीं हुई। लॉर्ड लिटन ने ह्यूम साहब को लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया। ह्यूम साहब को यह स्वीकार न हुआ। वह यह समझते थे कि इसमें खान-पान और राग-रंग की जितनी झंझट है वह उनके बूते का काम नहीं था। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उन्हें होम-मेम्बर (गृह-सचिव) बना दिया जाय। यह बात इंग्लैण्ड के प्रधान-मन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को पसन्द नहीं आई, क्योंकि ह्यूम साहब वाइसराय नॉर्थब्रुक को इस बात के लिए पक्का कर रहे थे कि कपड़े पर से आयात-कर न उठाया जाय। ह्यूम साहब ने १८८२ ई० में नौकरी से अवसर प्राप्त किया। उन्होंने लग-भग तीन लाख रुपया पक्षियों के अजायबघर पर और लगभग साठ हजार रुपया 'भारत के शिकारी पक्षी' नामक ग्रंथ की तैयारी में खर्च किया था।

सर विलियम वेडरबर्न

सर विलियम वेडरबर्न की सेवायें तो इतनी प्रख्यात हैं कि उनका वर्णन करने

की भी जरूरत नहीं है। ब्रिटिश कांग्रेस कमिटी को चलाने में वर्षों तक उन्हीं का मुख्य-हाथ रहा। कांग्रेस इसके लिए दस हजार से पचास हजार तक वार्षिक खर्च करती थी। वेडरवर्न साहब वम्वई में १८७६ ई० में, और इलाहावाद में १६१० ई० में, इस प्रकार राष्ट्रीय महासभा के दो अधिवेशनों के सभापति हुए। जार्ज यूल साहव इलाहावाद के १८८८ वाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के सभापति हुए। इसके वाद तो हर साल पार्लमेण्ट के सदस्य भारत-यात्रा करने और कांग्रेस के अधिवेशनों पर उपस्थित रहने लगे। इन प्रसिद्ध लोगों में से नशा-निषेध के महान् प्रचारक, डव्ल्यू० एस० केइन साहव, जिसका कोई हिमायती न हो उसके हिमायती चार्ल्स ब्रैडला साहव, सेम्युअल स्मिथ साहव और डाक्टर रुदरफोर्ड और क्लार्क साहव के नाम उल्लेखनीय हैं।

रैमजे मैक्डॉनल्ड साहव तो १६११ में कांग्रेस-अधिवेशन का सभापति-पद भी सुशोभित करते, परन्तु उनकी पत्नी का देहान्त हो जाने से उन्हें वापस लौट जाना पड़ा। केअरहार्डी, होलफोर्ज, नाइट, मैक्स्टन, कर्नल वैजवुड, वेनस्पूर, चार्ल्स रॉवर्टसन और पैथिक लॉरेन्स आदि कामन-सभा के कुछ अन्य सदस्य भी भारतवर्ष में आकर और कांग्रेस-अधिवेशनों में उपस्थित रहकर भारत की समस्याओं का अध्ययन कर गये। परन्तु १८८६ ई० में चार्ल्स ब्रैडला साहव का जो स्वागत किया गया वह शान-शौकत में तो राजाओं से कम नहीं था। उत्तर में उन्होंने ने राजभक्ति की जो व्याख्या की वह वड़ी मार्के की थी। उन्होंने कहा, "जहां आंख मूंदकर आज्ञा-पालन करने की वृत्ति होती है वहां सच्ची राजभक्ति का अर्थ तो यह है कि शासित शासकों की इतनी सहायता करें कि सरकार के लिए कुछ करने को वाकी न रहे।" परन्तु नौकरशाही की व्याख्या राजभक्ति की दूसरी ही है। उसके ख्याल से प्रजा को खुद कुछ न करना चाहिए, जो कुछ हो सरकार को ही करने देना चाहिए।

ब्रैडला साहव ने १८८६ में कौंसिलों के सुधार के लिए एक कानून का मसविदा (विल) वनाया और उसे लोक-मत-संग्रह के लिए प्रचारित किया। इस मसविदे में कांग्रेस के तत्कालीन विचारों का समावेश था और कांग्रेस ने भी ब्रैडला साहव के इच्छानुसार कुछ सूचनायें पेश कीं जिनमें भारतीय जनता का गम्भीर मत प्रदर्शित होता था। आगे चल कर यह मसविदा वापस ले लिया गया। परन्तु पार्लमेण्ट में ब्रैडला साहव की स्थिति इतनी मजवूत थी कि लॉर्ड क्रॉस का पहला मसविदा भी ब्रैडला साहव के विरोध के कारण वापस लेना पड़ा। उनका दूसरा मसविदा भी तव मंजूर हुआ जव उसमें प्रस्तावित सुधारों की पहली किस्त के साथ में, अप्रत्यक्ष ही सही, कौंसिलों में निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन

विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन का नाम भी कम प्रेम के साथ नहीं लिया जा सकता। भारत में ग्लैडस्टन साहब बड़े लोकप्रिय हो गये थे। इसका असली कारण था उनकी कांग्रेस आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सहमति। उन्होंने १८८८ में कहा था, "इस महान् राष्ट्र की उठती हुई आकांक्षाओं के प्रति तिरस्कार या उपेक्षा का भी व्यवहार करने से हमारा काम नहीं चलेगा।" लगातार कई वर्ष तक ग्लैडस्टन साहब की वर्षगांठ पर कांग्रेस की ओर से बधाई के प्रस्ताव होते रहे। उनकी ८२ वीं जयंती २९-१२-१८९१ के दिन थी और कांग्रेस ने उसे विधिपूर्वक मनाया। इतने दूर देश के राजनीतिज्ञ के प्रति इतनी असाधारण श्रद्धा का कारण यही था कि उन्होंने आयर्लैंड की भांति भारत के अधिकारों का भी पक्ष-समर्थन किया था। ग्लैडस्टन साहब भारत के एक हितैषी समझे जाते थे और अर्डले नॉर्टन साहब ने १८९४ की दसवीं कांग्रेस के अवसर पर उनके इस मन्तव्य को दोहराया भी था—"मेरा विश्वास है कि पार्लमेण्ट की अनजान में, देश को बताये बिना ही कौंसिल के एकान्त कमरों में, अकस्मात् एक ऐसा कानून पास कर दिया गया है जिसके कारण देशी समाचारपत्रों की स्वतंत्रता सर्वथा नष्ट हो गई है। मैं समझता हूँ कि ऐसा कानून ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए कलंक है।" जब १८९८ में ग्लैडस्टन साहब का देहान्त हुआ तो कांग्रेस ने सच्चे दिल से शोक मनाया।

लॉर्ड नॉर्थब्रुक के प्रति भी कांग्रेस ने १८९३ के अपने नवें अधिवेशन में कृतज्ञता प्रकट की। इन्होंने पार्लमेण्ट में इस बात पर जोर दिया था कि भारत के खजाने से 'होम-चार्जेज' के नाम पर जो विशाल धन-राशि खिंची जाती है उसकी मात्रा कम की जाय। यह धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते समय स्वर्गीय गोखले ने कांग्रेस के सम्मुख ड्यूक ऑफ आर्जाइल के ये वाक्य उद्धृत किये थे कि "भारत में आम लोगों को यह मालूम होने से कि उन्हें कोई कष्ट है, पहले ही वह कष्ट दूर कर दिया जाना चाहिए।" सार्वजनिक प्रश्न पर ड्यूक साहब बड़े प्रमाण-स्वरूप समझे जाते थे। वाचा महोदय ने कांग्रेस के १७ वें अधिवेशन में उनके इस कथन को दोहराया था कि "ग्रामीण भारत की विशाल जन-संख्या में जितना चिर-दारिद्र्य फैला हुआ है और उनके जीवन-साधनों का माप जितना नीचा और स्थायी रूप से गिर गया है उसका उदाहरण पाश्चात्य जगत् में कहीं नहीं मिलता।" इन्हीं ड्यूक महोदय ने १८८८ में कहा था कि "अंग्रेजों ने अपने दिये हुए वचनों और किये हुए करारनामों का पालन नहीं किया।"

इन हितैषियों में एक थे एल्डले के लॉर्ड स्टैनले। उन्होंने अपने जीवन का उत्तम

भाग भारत में ही व्यतीत किया और भारत के अभ्युत्थान के लिए परिश्रम किया। १८९४ में उन्होंने भारत-मंत्री की कौंसिल के उठा दिये जाने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा, "यदि भारत-मंत्री पर कौंसिल का नियंत्रण रहे तो भारत-मंत्री का पद उठा दो। यदि कौंसिल पर भारत-मंत्री का नियंत्रण रहे तो कौंसिल को मिटा दो। यह द्विविध-शासन व्यर्थ है, भयावह है, अपव्यय है और वाधक है।" उन्होंने भारत-मंत्री और उसकी कौंसिल की व्यापारिक अयोग्यता के प्रमाण भी दिये।

सर हेनरी काटन

इस संक्षिप्त विवरण में सर हेनरी कॉटन और उनकी अमर सेवाओं का उल्लेख किये विना भी नहीं रहा जा सकता। कॉटन-परिवार का भारतवर्ष से पुराना सम्वन्ध रहा था। ज्योंही आसाम के इन चीफ कमिश्नर साहव ने पेंशन ली त्योंही कांग्रेस ने अपने १९०४ वाले वम्वई के अधिवेशन का सभापति-पद ग्रहण करने को इन्हें आमंत्रित किया। इन्हींने पहले-पहल भारत के संयुक्त राज्य की कल्पना की थी।

: ६ :

हमारे हिन्दुस्तानी बुजुर्ग

कांग्रेस की नीति और उसके कार्य-क्रम की आगे की प्रगति पर विचार करने से पहले हमें उन महानुभावों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करनी चाहिएं, जिन्होंने राष्ट्रोद्धार के इस आन्दोलन की शुरुआत की और कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों में उसके लिए जमीन को जोत-बोकर तैयार किया। आज हमें कांग्रेस का जैसा विस्तृत संगठन और महान् राष्ट्रीय कार्यक्रम दिखलाई पड़ता है, हम शायद यह समझें कि यह सब हमारे ही वक्त में और हमारे ही प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ है। कांग्रेस के पूर्ववर्ती नेताओं का जो कार्यक्रम और दृष्टिकोण था वह आज के कांग्रेसियों को शायद पसन्द भी न हो; इसी तरह यह भी सम्भव है कि पुराने नेताओं को शायद आज का कार्यक्रम और दृष्टिकोण पसन्द न हुआ होता। लेकिन हमें यह हर्गिज न भूलना चाहिए कि आज हम जो कुछ भी कर सके हैं और करने की आकांक्षा रखते हैं, वह सब प्रारम्भ में उनके द्वारा किये गये प्रयत्नों और महान् बलिदानों के फलस्वरूप ही। इसलिए उन बुजुर्गों में से जो लोग स्वर्गवासी हो गये हैं और जो ईश्वर-कृपा से आज भी हमारे बीच मौजूद हैं उनकी महान् सेवाओं और कुरबानियों का यहां उल्लेख किये बिना हम आगे नहीं चल सकते।

दादाभाई नौरोजी

कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों की सूची में सबसे पहला नाम दादाभाई नौरोजी का आता है, जो कांग्रेस की शुरुआत से लेकर अपने जीवन-पर्यन्त कांग्रेस की सेवा करते रहे और कांग्रस को सर्वसाधारण की शासन-सम्बन्धी शिकायतें दूर कराने का प्रयत्न करनेवाली जन-सभा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य-प्राप्ति (कलकत्ता १९०६) के निश्चित उद्देश से काम करनेवाली राष्ट्र-परिषद् पर पहुँचा दिया। १८८६, १८९३ और १९०६ में—तीन बार वह कांग्रेस के सभापति हुए; और बराबर कांग्रेस के साथ रहते हुए इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों जगह उन्होंने कांग्रेस के झण्डे को ऊंचा रक्खा। दूसरी बार उन्हें जो कांग्रेस का सभापति चुना गया, वह सेण्ट्रल फिन्सबरी से उनके

कामन-सभा का सदस्य चुने जाने की खुशी में था; क्योंकि उस समय इस बात पर गम्भीरता के साथ विचार हो रहा था, कि भारत के दुःख दर्द दूर कराने के लिए लन्दन में आन्दोलन जारी किया जाय। १८६१ में तो यह प्रस्ताव भी जोर के साथ पेश हुआ, कि जबतक लन्दन में अधिवेशन न हो ले तबतक कांग्रेस को स्थगित रक्खा जाय; लेकिन वह अस्वीकृत होगया। ठीक इसी समय ह्यूम साहब इंग्लैण्ड जानेवाले थे, और इसी समय के लगभग कामन-सभा में भारत से चुनकर प्रतिनिधि भेजेजाने की मांग भी की गई थी। ऐसी परिस्थितियों में दादाभाई नौरोजी दूसरी बार कांग्रेस के सभापति चुने गये, जिन्होंने इस अवसर से लाभ उठाकर ब्रिटेनवालों को इस बात की प्रेरणा की, कि वे "इस शक्ति (शिक्षित भारतीयों) को अपनी ओर खींचने के बजाय अपने से दूर न फेंकें—अपना विरोधी न बनावें।" ब्रिटिश-राज्य की न्यायपरायणता में दादाभाई का बहुत विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा। १९०६ में दादाभाई कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति हुए। उस समय हिन्दुस्तान मानों एक खौलते हुए कढ़ाव में था; १६ अक्तूबर १९०५ को जो बंग-भंग किया गया था, उससे देश-भर में एक नई लहर पैदा हो गई थी। पूर्वी बंगाल असन्तोष से उबल रहा था। हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के खिलाफ़ उभाड़ा जा रहा था। विशेष कानूनों (आर्डिनेन्सों) का शासन जारी किया गया। कानून और व्यवस्था के लिए फौज और ताजीरी पुलिस की तैनाती का नया क्रम चला। दादाभाई ने बताया कि १८९३-९४ के बाद जन-संख्या तो १४ प्रतिशत ही बढ़ी है पर सरकार का शासन-सम्बन्धी खर्च १६ प्रतिशत बढ़ गया है; और १८८४-८५ से लें तब तो जहां जन-संख्या १६ प्रतिशत बढ़ी है वहां यह खर्च ७० प्रतिशत बढ़ा है। १७ से बढ़कर ३२ करोड़ तो अकेला सैनिक व्यय ही बढ़ गया, जिसमें का ७ करोड़ खर्च इंग्लैण्ड में किया जाता था। इस अस्सी बरस के बूढ़े ने ६,००० मील दूर (इंग्लैण्ड) से यहां आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के साथ स्वराज्य की एक नई पुकार और पैदा कर दी, यह देखकर 'इंग्लिशमैन' इनपर उबल पड़ा था। लेकिन भारतीय मांगों के लिए रास्ता इस तरह अपने-आप साफ हो रहा था। १९०५ में गोखले ने स्व-शासन की ओर प्रगति करने के लिए चार उपाय बताये थे, जो १९०६ के मुख्य प्रस्ताव में शामिल कर लिये गये।

जिस व्यक्ति ने भारत की सेवामें अपनी सारी जिन्दगी लगा दी, भारत की मुक्ति के लिए अविश्रान्त परिश्रम किया, अपनी कलम को कभी छुट्टी नहीं दी, और जिसे विधाता ने ८५ वर्ष से अधिक समय तक हमारे बीच बनाये रक्खा, उसकी सेवाओं का उल्लेख कुछ पृष्ठों के थोड़े-से स्थान में नहीं किया जा सकता। दादाभाई तो

हमारे ऐसे बुजुर्ग हैं जिन्होंने अपनी जिन्दगी में तो काम किया ही, पर अपने पीछे भी न केवल अपने आत्मबलिदान-पूर्ण जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण बल्कि अपनी पोतियों के रूप में उसका सजीव रूप वह हमारे सामने छोड़ गये हैं—क्योंकि, उनकी पोतियां उनके द्वारा चलाई गई श्रेष्ठ परम्परा को आज भी भलीभांति कायम रक्खे हुए हैं।

आनन्द चार्लू

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में, जो १८८५ में बम्बई में हुआ था, सम्पादक जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और श्री आनन्द चार्लू, काशीनाथ तैलंग और दादाभाई नौरोजी नरेन्द्रनाथ सेन और उमेशचन्द्र बनर्जी, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर और रंगैया नायडू, फिरोजशाह मेहता और डी० एस० व्हाइट—इन सब प्रमुख व्यक्तियों ने, जोकि कांग्रेस के जनक और बड़े-बूढ़े थे, अपने भाषणों में उन शक्तियों का परिचय दे दिया जो कि भारतीय राजनीति में जोर पकड़ रही थी। कालान्तर में, इन्हींसे भारत का नरम-दल बना। आनन्द चार्लू ने जो बाद में १८९१ की नागपुर-कांग्रेस के सभापति हुए थे, अपनी विशेष वक्तृत्व-शक्ति के साथ कांग्रेस में प्रवेश किया। नागपुर में हुए ७ वें अधिवेशन (१८९१) का इन्होंने सभापतित्व किया, जिसमें सभापति-पद से बड़ा जोरदार भाषण किया।

दक्षिण भारत के राजनैतिक गगन में लगभग बीस वर्ष तक यह एक चमकती हुई ज्योति रहे। हालांकि न तो इनके अनुयायियों का कोई दल था और न यह किसी राजनैतिक मत के प्रवर्त्तक थे, फिर भी अपनी विशिष्ट तीखी वक्तृत्वशक्ति के साथ इनका एक विशेष व्यक्तित्व रहा है।

दीनशा एदलजी वाचा

हमारे इन आदरणीय बुजुर्ग का खास विषय कौनसा था, जिसपर इन्हें विशेष प्रेम और अधिकार था, यह कहना कठिन है; क्योंकि प्रायः सभी विषयों में इनका एक समान अबाध प्रवेश था। इनके उज्ज्वल गुण तो पहले ही अधिवेशन में झलकने लगे थे, जबकि इन्होंने अपने महान् भाषणों में का पहला भाषण करते हुए सैनिक परिस्थिति का योग्यतापूर्ण विस्तृत सिंहावलोकन किया। दूसरे अधिवेशन में इन्होंने भारतवासियों की गरीबी को लिया, और हिन्दुस्तान से हर साल ब्रिटेन को जानेवाले उस खराज की ओर सर्वसाधारण का ध्यान खींचा जिससे ब्रिटेन तो समृद्ध हो रहा था पर हिन्दुस्तान कंगाल बनता चला जा रहा था।

"भारत की विशाल जन-संख्या में लगातार वढ़ती जानेवाली गरीवी" का उल्लेख करके, इन्होंने वताया कि "१८४८ से वरावर इसी प्रकार रैयत की हालत विगड़ती गई है—यहां तक कि ४ करोड़ लोगों को दिन में सिर्फ एक ही वार भोजन नसीव होता है, और वह भी हमेशा नहीं।" इसका मुख्य कारण, इन्होंने वताया था देश की सम्पत्ति का अनेक मार्गों से विदेशों में चला जाना।

वाचा इतने चतुर थे कि अवसे वहुत पहले १८८५ में ही, इन्होंने लंकाशायर का प्रश्न उठा लिया था। इन्होंने कहा था कि "अगर सैनिक-व्यय कम न किया जाय तो इसके लिए वाहर से आनेवाले माल पर फिर से तट-कर लगा देना चाहिए, जिसको उठाकर मानों दरिद्रता-ग्रस्त भारत लुटा जा रहा है। और वह भी इसलिए कि मालदार लंकाशायर और समृद्ध वनाया जाय।"

१८९४ में फिर वाचा ने "लंकाशायर के लिए भारतीय हितों का वलिदान करने के अभिप्राय से, भारत के शुरू होते हुए मिल-उद्योग को कुचलने के लिए भारतीय मिलों के (सूती) माल पर उत्पत्ति-कर लगाने के अन्याय" पर नजर डाली। उत्पत्ति-कर के (एक्साइज) विल का विरोध करने के लिए इन्होंने भारत-सरकार की प्रशंसा की और भारत-मंत्री को इस अन्याय-पूर्ण कार्य के लिए दोषी ठहराया। सैनिक-व्यय की जांच के लिए नियुक्त शाही कमीशन के सामने, जो कि आमतौर पर वेल्वी-कमीशन के नाम से मशहूर है, दी गई अपनी योग्यता-पूर्ण गवाही से इनकी प्रसिद्धि वढ़ी जिसके लिए कांग्रेस और गोखले जैसे विद्वानों ने भी इनकी तारीफ की। १८९७ में वाचा ने, उसी वर्ष अमरावती में होनेवाले अधिवेशन में सरकार की सरहदी नीति का विरोध किया। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ १८९९) में भी इन्होंने मुद्रा-नीति पर अपना हमला जारी रक्खा और भारत में सुवर्ण-मान जारी करने की निन्दा की। "हिन्दुस्तान की गरीवी का मूल-कारण तो," इन्होंने कहा, "यहां के धन का हर साल यहां से वाहर चला जाना है। फायदेमन्द तो सिर्फ यहां की देसी दौलत ही है। रुपये में चांदी का अनुपात तो कम कर दिया गया है, लेकिन उसका मूल्य वही रहने दिया गया है। जहां पहले १) तोला चांदी विकती थी वहां अव सिर्फ ॥=) या ॥≡) तोला विकने लगी है।" १९०१ में हुए अधिवेशन (कलकत्ता) में राष्ट्र ने वाचा को कांग्रेस का सभापति वनने के लिए आमंत्रित किया।

१८९६ से लेकर १९१३ तक वाचा कांग्रेस के संयुक्त प्रधान-मंत्री रहे हैं। इसके वाद उसके काम-काज में गौणरूप से योग देते रहे। १९१५ की वम्वई कांग्रेस के वाद तो, जिसके कि यह स्वागताध्यक्ष थे, वस्तुतः यह फिर उसमें दिखाई भी न दिये

मगर चौथाई सदी से ज्यादा समय तक यह कांग्रेस के एक प्रमुख नेता रहे हैं। सर्वतोमुखी प्रतिभा, घटनाओं का जबरदस्त ज्ञान, और सैनिक समस्या जैसे दुरूह विषयों एवं सर्व-साधारण की गरीबी जैसी अस्पष्ट और विस्तृत समस्याओं की भली-भांति जानकारी में इनसे बढ़कर तो कोई था ही नहीं, इनके जोड़ के भी थोड़े ही आदमी थे।

गोपाल कृष्ण गोखले

गोखले पहले-पहल १८८९ में कांग्रेस में तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए उन्होंने बहुतेरे तथ्य और आंकड़े पेश किये थे। उन्होंने बताया कि कैसे एक पैसे की नमक की टोकरी की कीमत पांच आने हो जाती है। फिर भी उनमें कड़ी-से-कड़ी बात को बहुत ही मधुर भाषा में कहने का बड़ा गुण था। अपनी आलोचना में गोखले यद्यपि मधुर और मंजुल होते थे तथापि वह कहते थे बात खरी; गोलमोल बातें करना उन्हें पसन्द न था। "नंगे, भूखे, झुर्रियों पड़े हुए, ठिठुरते और सिकुड़ते हुए, सुबह से शाम तक दो रोटियों के लिए खेत में कड़ी मेहनत करनेवाले, चुपचाप धीरज के साथ न जाने कितना सहनेवाले, अपने शासकों के पास जिनकी आवाज जरा भी नहीं पहुँचती और ईश्वर तथा मनुष्य के द्वारा जो-कुछ भी बोझ उनकी पीठ पर लाद दिया जाता है उसे बिना चीं-चपड़ किये सहने के लिए सदा तैयार किसानों के लिए" गोखले के हृदय में प्रेम का स्थान था और इन्हीं के हित में वह हमेशा कर और खर्च के सवालों को उठाया करते थे। लेकिन ऐसे भी मौके आ जाते थे जब गोखले की संयत और लोक-प्रचलित विनम्रता भी उनका साथ छोड़ देती थी और लॉर्ड कर्जन की प्रतिगामी नीति के कारण जो जोर पड़ा था वह दरअसल बहुत भारी था। बंग-भंग , कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी करना, विश्वविद्यालय-सुधार जिसके द्वारा कार्य की सुचारुता के नाम पर सरकारी अफसरों का नियंत्रण कर देना और शिक्षा को खर्चीली और महँगी बना देना, आफिशियल सिक्रेट्स एक्ट —इन सब ने मिल कर लॉर्ड कर्जन के सत्कार्यों को भी, जैसे उनकी अकाल-सम्बन्धी नीति, शिकार के लिए सिपाहियों को पास देने-सम्बन्धी नियम, प्राचीन स्मृति-रक्षा कानून, रंगून और ओगारा प्रकरण में सजायें देना, धर दबाया। गोखले को बहुत बिगड़कर कहना पड़ा था, "तो अब मैं इतना ही कह सकता हूँ कि लोक-हित के लिए नौकरशाही से किसी तरह के सहयोग की तमाम आशाओं को नमस्कार!" १९०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से गोखले ने राजनैतिक मसल के सब

में वहिष्कार का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जव कोई चारा न रह गया हो और जवकि प्रवल लोक-भावनायें इसके अनुकूल हों। गोखले सामनेवाले के साथ वड़ी शिष्टता दिखाया करते थे, परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नहीं हो जाता था।

१६०५ और १६०६ दो साल तक गोखले भारत के प्रतिनिधि वनाकर इंग्लैण्ड भेजे गये थे। हां, १८६७ में भी वह इंग्लैण्ड जा चुके थे। जनता और सरकार दोनों के वीच गोखले की स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को वुरा वताती थी। इसका मुख्य कारण यहँ था कि वह दोनों में मध्यस्थ वन कर रहते थे। गोखले जनता की आकांक्षायें वाइसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइयां कांग्रेस तक।

पर यह भी मानना पड़ेगा कि ज्यों-ज्यों गोखले की उम्र वढ़ती गई त्यों-त्यों वह शिकायत करने लगे कि 'नौकरशाही स्पष्टतः स्वार्थसाधु और खुल्लमखुल्ला राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है। पहले उसका रवैया ऐसा नहीं था।' उन्हें पश्चिम का पूंजीवाद उतना नहीं अखरता था जितना जातिगत प्रभुत्व, चरित्रनाश, द्रव्य-शोषण और भारत की वढ़ती हुई मृत्यु-संख्या।

गोखले का वहुत वड़ा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्य-कर्त्ताओं की एक संस्था है, जिन्होंने कि नाममात्र के वेतन पर मातृ-भूमि की सेवा करने का प्रण लिया है।

सूरत के झगड़े के वाद गोखले ने कांग्रेस के कार्य में प्रमुख भाग लिया। वह दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहां गांधीजी के सत्याग्रह-संग्राम में अपूर्व सहायता की। १६०६ की कांग्रेस में तो उन्होंने सत्याग्रह-धर्म की वड़ी प्रशंसा की थी और उसके तत्व को वड़ी खूवी के साथ समझाया था। उसके वाद उनकी प्रवृत्तियां मुख्यतः वड़ी कौंसिलों के अखाड़े में ही होती रही हैं। १६१४ में जव कांग्रेस के दोनों दलों को मिलाने की कोशिश की गई तव पहले तो उन्होंने उसे पसंद किया था, परन्तु वाद को अपना विचार वदल दिया था। इस तरह उत्कट देशभक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थत्याग और देश-सेवामय जीवन को व्यतीत करते हुए गोखले ने १६ फरवरी १६१५ को इस लोक से प्रयाण कर दिया।

जी० सुब्रह्मण्य ऐयर

कांग्रेस के सर्वप्रथम अधिवेशन में सवसे पहला प्रस्ताव किसने पेश किया, यह

जिज्ञासा किसी को भी हो सकती है। 'हिन्दू' के सम्पादक मदरास के श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, जो सर्वसाधारण में सम्पादक सुब्रह्मण्य ऐयर के नाम से मशहूर थे, वह व्यक्ति थे जिन्होंने पहला प्रस्ताव पेश किया; और प्रस्ताव यह था, कि भारतीय शासन की प्रस्तावित जांच एक ऐसे शाही-कमीशन द्वारा होनी चाहिए जिसमें हिन्दुस्तानियों का भी काफी प्रतिनिधित्व रहे। पश्चात् मदरास में होनेवाली १० वीं कांग्रेस (१८९४) तक हम सुब्रह्मण्य ऐयर के बारे में कुछ नहीं सुनते। पर मदरास-कांग्रेस में भारतीय राजस्व के प्रश्न पर यह बोले और इस सम्बन्धी जांच करने की आवश्यकता बतलाई। इस अधिवेशन में दिलचस्पी का दूसरा विषय था देशी-राज्यों में अखबारों की स्वतंत्रता का अपहरण, जिसका श्री सुब्रह्मण्य ने कसकर विरोध किया। १२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १८९६) में इन्होंने प्रतिस्पर्द्धी-परीक्षायें इंग्लैण्ड व हिन्दुस्तान में एक-साथ ली जाने की आवाज उठाई, और साथ ही लगान के मियादी बन्दोबस्त का प्रश्न भी हाथ में लिया। अगले साल, अमरावती-कांग्रेस में, सरकार की सरहदी-नीति का विरोध किया। १८९८ में जब तीसरी बार मदरास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो श्री सुब्रह्मण्य ऐयर ने सरहदी-नीति का प्रश्न फिर से उठाया और उसकी निन्दा की और युद्ध-नीति का भी घोर विरोध किया था। परन्तु श्री सुब्रह्मण्य का प्रिय विषय तो था भारत की आर्थिक स्थिति। लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में इन्होंने बार-बार पड़नेवाले अकालों को रोकने के उपाय मालूम करके उनपर अमल करने के अभिप्राय से भारतीयों की आर्थिक अवस्था की पूरी और स्वतंत्र जांच कराने के लिए कहा। साथ ही सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर भी विचार किया, जिसमें हिन्दुस्तानियों को उनसे महरूम रखने की शिकायत की। १७ वें अधिवेशन में (कलकत्ता, १९०१) रैयत की दुर्दशा और गरीबी पर ध्यान दिया। इन्होंने कहा—"क्या हिन्दुस्तानी रैयत की जिन्दगी जानवरों की तरह जिन्दा रहने और मर जाने के लिए है? और मनुष्यों की तरह क्या उनमें बुद्धि, भावना और छिपी हुई शक्तियां नहीं हैं? लगभग २० करोड़ व्यक्ति आज लगातार भुखमरी और घोर अज्ञान का दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न तो वे कुछ बोल सकते हैं न उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह है; न उन्हें किसी तरह की सुविधा है न मनोरंजन; न उनकी कोई आशा है न महत्त्वाकांक्षा; वे तो दुनियां में पैदा हो गये इसीलिए किसी तरह जी रहे हैं, और जब मरते हैं तो इसलिए कि उनका शरीर और अधिक देर तक उनके प्राणों को धारण नहीं कर सकता।" अकालों के प्रश्न पर भी इस कांग्रेस में इन्होंने ध्यान दिया और औद्योगिक स्वावलम्बन पर जोर दिया। इसके लिए कला-कौशल की संस्थायें कायम करने, छात्र-वृत्तियां देकर भारतीयों को

इस सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेजने और देशी उद्योग-धंधों की भली-भांति जांच करने के व्यावहारिक उपाय इन्होंने सुझाये।

सुब्रह्मण्य ऐयर का ज्ञान जितना गम्भीर था उतना ही विशाल उनका दृष्टिकोण था। अपने लेखों की बदौलत इन्हें जेलखाने की हवा खानी पड़ी थी, जहां से बीमार हो जाने पर ही इन्हें रिहाई मिली। इसमें सन्देह नहीं कि अपने समय के राजनीतिज्ञों में यह अत्यन्त निर्भीक और दूरन्देश थे, जिसके लिए भावी सन्तति सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी।

बदरुद्दीन तैयबजी

बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के कांग्रेसी थे, जो बढ़ते-बढ़ते कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन (मदरास, १८८७) के सभापति हुए थे। सभापति-पद से दिये हुए अपने भाषण में इन्होंने कांग्रेस के प्रातिनिधिक रूप पर जोर दिया। इन्हींके कहने पर इस काम के लिए एक समिति बनाई गई थी कि वह कांग्रेस में वाद-विवाद के लिए जो बहुत से प्रस्ताव आवें उनपर विचार करके कांग्रेस का कार्यक्रम निश्चित करे। इस समिति को वस्तुतः बाद को बननेवाली विषय-समिति का पूर्व-रूप कहना चाहिए। बाद में यह बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये थे। १९०४ में सरकारी नौकरियों में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में इन्होंने भाग लिया। १९०६ के प्रारम्भ में इनका स्वर्गवास हो गया। कांग्रेस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व एक हिन्दू (उमेशचन्द्र बनर्जी) ने किया था, दूसरे के सभापति पारसी दादाभाई नौरोजी हुए थे। इसके बाद तीसरे अधिवेशन के सभापति तैयब जी को बनाना खास तौर पर उचित था, क्योंकि यह मुसलमान थे।

काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग

जस्टिस काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग कांग्रेस के अत्यन्त कर्त्तव्यशील संस्थापकों में से थे और उसके "बम्बई में, सबसे पहले डटकर काम करनेवाले मंत्री" रहे हैं। कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में इन्होंने बड़ी (सुप्रीम) और प्रान्तीय कौंसिलों-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और सदस्यों के लिए निर्वाचक-मण्डलों की एक योजना पेश की। चौथे अधिवेशन में इन्होंने कहा था कि सरकार को अपने विभिन्न कामों के लिए तो हमेशा रुपया मिल जाता है, लेकिन शिक्षा पर वह अपनी आमदनी का सिर्फ १ प्रतिशत ही खर्च करती है। १८९३ में असमय ही इनकी मृत्यु हो गई।

उमेशचन्द्र वनर्जी

यदि प्रामाणिक रूप से यह जानना हो कि कांग्रेस का आरंभिक उद्देश क्या था, तो उसके प्रथम अधिवेशन के सभापति उमेशचन्द्र वनर्जी के भापण की ही ओर निगाह दौड़ानी पड़ेगी। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप में उसका वर्णन किया है। इलाहावाद (१८९२) के आठवें अधिवेशन में वह दुवारा कांग्रेस के सभापति हुए थे। यह याद रहे कि १८९१ में सहवास-विल के सम्वन्व में वहुत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था और लोकमान्य तिलक ने उसका विरोव किया था। उमेशचन्द्र वनर्जी ने इलाहावाद में अपने भापण में वे कारण वताये थे जिनसे कांग्रेस ने अपने को सामाजिक प्रश्नों से अलहदा रक्खा था।

अपने देश की वहुत प्रशंसनीय सेवा करने के वाद १९०६ में इनका स्वर्गवास हुआ।

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक महाराष्ट्र के विना ताज के वादशाह थे और वाद में, होम-रूल के दिनों में, भारत के भी हो गये थे। अपनी सेवाओं और तपश्चर्या के द्वारा ही वह इस दर्जे को पहुँचे थे।

शिवाजी महाराज की स्मृति को फिर से ताजा करने का श्रेय लोकमान्य तिलक को ही है। सारे महाराष्ट्र में शिवा-जयन्तियां मनाई जाने लगीं, जिनमें उत्सव के साथ सभायें भी होती थीं। पहली ही सभा में दक्षिण के वड़े-वड़े मराठा राजा और मुख्य-मुख्य जागीरदार और इनामदार आये थे। इस सिलसिले में १४ सितम्वर १८९७ को कुछ पद्य तथा अपना भापण छापने के अपराव में उन्हें १८ महीनों की कड़ी कैद की सजा दी गई थी। पर वह ६ सितम्वर १८९८ को छोड़ दिये गये। अध्यापक मैक्स-मूलर, सर विलियम हण्टर, सर रिचार्ड गार्थ, मि० विलियम केन और दादाभाई नौरोजी ने एक दरख्वास्त दी थी, जिसके फल-स्वरूप उनकी रिहाई हुई थी। उनके जेल में रहते हुए ताजिरात हिन्द में १२४ ए और १५३ ए दफायें नई जोड़ी गई, जिससे कि वह कानून के शिकंजे में फँसाये जा सकें।

अमरावती-कांग्रेस (१८९७) में तिलक की रिहाई के वारे में एक विशेप प्रस्ताव पास करने की कोशिश की गई थी, किन्तु वह सफल न हुई। परन्तु कांग्रेस में प्रस्ताव-द्वारा जो वात न हो सकी वह सभापति सर शंकरन् नायर और सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के भापणों से पूरी हो गई। दोनों ने उस महान् और विद्वान् पुरुप की वहुत

प्रशंसा की, जो कि उस समय जेल में सड़ रहा था। इससे तिलक की कीर्ति शिखर पर पहुँच गई थी।

१८९६ से ही तिलक कांग्रेस को प्रेरित कर रहे थे कि वह कुछ ज्यादा मजबूती दिखलाये। १८९९ में जब वह लॉर्ड सेण्ढर्स्ट की निन्दा का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे तो एक विरोध का तूफान खड़ा हो गया था। उन्होंने दर्शकों को यह साबित करने के लिए चुनौती दी कि लॉर्ड सेण्ढर्स्ट का शासन प्रजा के लिए सत्यानाशी नहीं था। उन्होंने नौकरशाही की करतूतें साफ-साफ सामने रक्खीं और पूछा कि बताओ, इनमें कहां अत्युक्ति है? परन्तु रमेशचन्द्र दत्त जो कि सभापति थे और कई दूसरे प्रतिनिधि भी, कहते हैं, तिलक के इस प्रस्ताव के घोर विरोधी थे और जब तिलक ने कहा कि वह इस बिना पर नहीं रोके जा सकते कि कांग्रेस में प्रान्तिक प्रश्न नहीं लिये जा सकते, और वह अपने पक्ष में अध्याय और धाराओं के उदाहरण देने लगे, तो सभापति ने यहां तक कह दिया कि यदि तिलक इसपर अड़े ही रहेंगे तो मुझे इस्तीफा दे देना होगा।

सूरत (१९०७) में कांग्रेस के दो टुकड़ों का हो जाना उस समय बड़ी चर्चा का विषय हो गया था। लोकमान्य तिलक उसमें सबसे बड़े अपराधी गिने जाते थे और कहा जाता था कि इन्होंने २५ वर्ष की जमी-जमाई कांग्रेस को मिट्टी में मिला दिया। दोनों तरफ के लोग अपने-अपने पक्ष की बातें कहते थे। इसमें तो कोई शक नहीं कि खुद कलकत्ते में ही नरम और गरम दल के नेताओं का मतभेद प्रकट होने लगा था, लेकिन दादाभाई नौरोजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण किसी तरह वह हट-सा गया था। वही १९०७ में जाकर प्रबल हो गया। कांग्रेस को नागपुर से सूरत ले जाने का कारण यही मतभेद था और राष्ट्रीय तथा गरम दल के लोग खुल्लमखुल्ला कहते थे कि नरम दलवालों ने जान-बूझकर सूरत को पसंद किया है, ताकि वे स्थानिक लोगों की सहायता से अपना चाहा कर सकें। गरम दल के लोग चाहते थे कि लोकमान्य तिलक सभापति हों; परन्तु नरम दल के लोग इसके विरोधी थे और उन्होंने अपने विधान के अनुसार डॉ० रासबिहारी घोष को चुन लिया। इसपर गरम दलवालों ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया। उन्होंने सोचा था कि लालाजी हाल ही देश-निकाले से लौटकर आये हैं, जिससे उनका नाम और भी बढ़ गया है और वह बिना विरोध के चुन लिये जायँगे; परन्तु लाला लाजपतराय ने उस समय बड़े आत्म-त्याग का परिचय देते हुए उस सम्मान से इन्कार कर दिया। जब प्रतिनिधि सूरत पहुँच गये तब लोकमान्य ने अपने विचार के प्रतिनिधियों को अलहदा कैम्प में जमा किया। मतभेदों को दूर करने की कोशिश की जा रही थी; मगर गलतफहमियां बढ़ती ही चली गईं। गरम-

दल के लोग इस बात पर जोर दे रहे थे कि स्व-शासन, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्तावों की सीमा यदि बढ़ाई न जा सके तो कम-से-कम वे दोहराये तो जायँ; परन्तु वे इसी खयाल में रहे कि नरम दल के नेता उन्हें उड़ा देना चाहते हैं अथवा कम-से-कम नरम कर देना चाहते हैं। लेकिन दुर्भाग्य-वश स्वागत-समिति ने प्रस्तावों के जो मसविदे बना रक्खे थे, वे अधिवेशन की कार्रवाई शुरू होने तक प्राप्त नहीं हो सके थे और जब यह कहा गया कि चारों प्रस्ताव मसविदे के रूप में हैं तो इसपर विश्वास नहीं किया गया। लोकमान्य तिलक ने कुछ लोगों को बीच में डालकर समझौता कराने की कोशिश की, पर वह बेकार हुई और स्वागताध्यक्ष श्री त्रिभुवनदास मालवी से मिलने की उनकी कोशिश भी व्यर्थ हुई। कांग्रेस २७ दिसम्बर को २॥ बजे से शुरू हुई। १६०० से ऊपर प्रतिनिधि मौजूद थे। जब स्वागताध्यक्ष अपना काम खतम कर चुके तब स्वागत-समिति के नियमानुसार मनोनीत सभापति डॉ० रासबिहारी घोष का नाम उपस्थित किया गया। इसपर गुल-गपाड़ा मचा और जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इसका समर्थन कर रहे थे तब शोरगुल और उपद्रव इतना बढ़ा कि कार्रवाई दूसरे दिन के लिए मुल्तवी करनी पड़ी। ऐसा मालूम होता है कि नये सिरे से फिर निपटारे की कोशिश की गई; मगर कोई फल नहीं निकला। २८ को फिर कांग्रेस शुरू हुई। जब सभापति का जुलूस निकल रहा था, लोकमान्य तिलक ने एक चिट श्री मालवी को भेजी, जिसमें लिखा था, "जब सभापति के चुनाव के प्रस्तावों का समर्थन हो चुके तब मैं प्रतिनिधियों से कुछ कहना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि बैठक को स्थगित करने का प्रस्ताव पेश करूँ और इसके साथ ही एक अच्छा उपाय भी सुझाना चाहता हूँ। कृपया मेरे नाम की सूचना दे दीजिए।" कल जहां कार्रवाई अधूरी छोड़ दी गई थी वहीं से आगे शुरू हुई और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपना भाषण खतम किया। लेकिन लोकमान्य की चिट पर, याददिहानी के बाद भी, ध्यान नहीं दिया गया। तब लोकमान्य तिलक बोलने के अपने अधिकार का पालन करने के लिए मंच की ओर बढ़े। स्वागताध्यक्ष और डॉ० घोष दोनों ने समझा कि डॉ० घोष का चुनाव विधिपूर्वक हो गया है और उन्होंने तिलक को बोलने की इजाजत नहीं दी। बस क्या था, गुल-गपाड़ा और गोल-माल शुरू हुआ। इतने ही में प्रतिनिधियों में से किसीने एक जूता उठाकर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को छूता हुआ सर फिरोजशाह मेहता को लगा। तब मानों एक लड़ाई ही शुरू हो गई—कुर्सियां फेंकी गई और डण्डे चलने लगे, जिससे कांग्रेस उस दिन के लिए खतम हो गई। अब नरम दल के नेता जमा हुए और उन्होंने 'कन्वेन्शन' बनाया और ऐसा विधान तैयार किया कि जिससे गरम दल के लोग आही न सकें। अब उस घटना को इतना अरसा

गुजर चुका है कि दोनों दलों की बातों पर कोई राय बनाई जा सकती है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि दोनों का दृष्टि-विन्दु जुदा-जुदा था और हर दल उत्सुक था कि कांग्रेस उसके दृष्टि-विन्दु को मान ले। परन्तु जिस बात पर लोकमान्य तिलक मंच पर खड़े हुए वह मामूली थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कलकत्ते में स्वीकृत विधान के अनुसार स्वागत-समिति सभापति को सिर्फ नामजद करती है और अन्त में उसे चुनते तो हैं कांग्रेस में जमा हुए प्रतिनिधि, इसलिए मुझे अधिकार है कि मैं उस अवस्था में कोई संशोधन या सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव पेश करूँ। परन्तु उन्हें ऐसा नहीं करने दिया गया। तब उन्होंने इस अन्याय पर बोलने के अपने अधिकार का उपयोग करना चाहा। हम यह नहीं कह सकते कि विधान के अनुसार उनका कहना गलत था। साथ ही यह कहना पड़ेगा कि महज गलतफहमी के कारण लोगों के मनोभाव बहुत बिगड़ चुके थे; क्योंकि यह संदेह पैदा हो गया था कि कलकत्तेवाले प्रस्ताव मसविदे में शामिल नहीं किये गये थे। पर अगर वे नहीं भी थे तो विषय-समिति में वे शामिल किये जा सकते थे, या यदि वे उस रूप में नहीं थे जिससे गरम दलवालों को संतोष होता तो विषय-समिति में, यदि उनका बहुमत होता, उनमें फेर-फार कराया जा सकता था। महज उनका रह जाना कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी कि जिससे इतना भारी काण्ड होने दिया जाय। यदि दोनों दल के नेता आपस में खुलकर बातचीत कर लेते तो वह दोनों की स्थिति साफ करने के लिए काफी हो जाता और तब उचित फैसला कर लिया जाता; परन्तु कुछ नरम नेताओं की तंगदिली ने शायद ऐसा नहीं करने दिया। हां, घटनायें घटजाने पर तो अकल आसानी से आ जाती है, किन्तु जब मनोभावों पर चोट पहुँची हुई होती है तब बड़े-बड़े लोग भी अपनी समता खो देते हैं। अब यदि हम लोकमान्य तिलक और गोखले जैसों के बारे में यह कहें कि इसमें किसका कितना दोष था तो हमारे हक में वह विवेक-हीनता ही होगी। और इसलिए, हम अब इस 'अव्यापारेषु व्यापार' में न पड़कर, दोनों नेताओं के प्रति अपने आदर को किसी प्रकार कम न होने देते हुए, उस दुर्घटना को छोड़कर आगे चलते हैं।

लोकमान्य तिलक जबरदस्त राष्ट्र-धर्म के उपासक थे। परन्तु अपने समय की मर्यादाओं को वह जानते थे। १९१८ में सर वेलेण्टाइन शिरोल पर मुकदमा चलाने के लिए वह इंग्लैण्ड गये। सर वेलेण्टाइन ने उन्हें राजद्रोही बताया था और लोकमान्य ने उनपर मानहानि का दावा किया था। इंग्लैण्ड में उन्होंने मजदूर-दल पर इतना भरोसा रक्खा कि उन्होंने ३ हजार पौण्ड भेंट किया। उन्होंने मान लिया था कि मजदूर-दल का इतना बल है कि उसके द्वारा भारत का उद्धार हो जायगा। इससे पहले के

राजनीतिज्ञ अनुदारदलवालों की बनिस्बत उदारदलवालों पर बहुत भरोसा रखते थे; परन्तु उसके बाद के राष्ट्रीय दल के लोग उदार और अनुदार दोनों को एक-सा समझकर मजदूर-दल को मानते थे। उस पुराने युग में एक लोकमान्य तिलक ही थे जिन्हें लगातार जेलों में तथा अन्यत्र कष्ट-ही-कष्ट भोगना पड़ा। यहां तक कि जब १९०८ में जज ने उनको सजा दी और उनके बारे में खरी-खोटी बातें कह कर पूछा कि आपको कुछ कहना है, तब उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह सदा याद रखने और प्रत्येक घर में स्वर्णाक्षरों में लिखकर रखने योग्य है :—"जूरी के इस फैसले के बावजूद मैं कहता हूँ कि मैं निरपराध हूँ। संसार में ऐसी बड़ी शक्तियां भी हैं जो सारे जगत् का व्यवहार चलाती हैं और संभव है ईश्वरीय इच्छा यही हो कि जो कार्य मुझे प्रिय है वह मेरे आजाद रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन से अधिक फूले-फले।"* ऐसी ही तेजस्विता उन्होंने १८९७ में दिखलाई थी जब कि उनपर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था और उनसे सिर्फ यह कहा गया कि वह अदालत में यह सच बात कह दें कि ये लेख मेरे लिखे नहीं हैं। (१९०८ में जिन लेखों के विषय में लोकमान्य पर मुकदमा चलाया गया था वे भी उनके लिखे नहीं थे।) उन्होंने कतई इनकार कर दिया और कहा—"हमारे जीवन में ऐसी भी एक अवस्था आती है जबकि हम अकेले अपने मालिक नहीं हुआ करते; बल्कि हमें अपने साथियों के प्रतिनिधि के रूप में काम करना पड़ता है।" "उन्होंने बड़ी शान्ति और अनासक्ति के साथ इन सजाओं को भुगता और जेल में बैठे-बैठे बड़े भव्य ग्रंथों की रचना की। यदि उन्हें जेल न मिली होती तो 'आरक्टिक होम ऑफ दी वेदाज' और 'गीता रहस्य' वह संभवतः राष्ट्र के लिए अपनी परम्परा नहीं छोड़ जाते। लोकमान्य जुलाई १९१८ में बम्बई की युद्ध-सभा में बुलाये गये थे और वह वहां गये भी थे। वह कोई दो ही मिनट बोलने पाये थे कि रोक दिये गये! बात यह थी कि वह लॉर्ड विलिंगडन की उन बातों का जवाब देने लगे थे जो कि उन्होंने होमरूलवालों के खिलाफ कही थीं।

जब १८९६ में गांधीजी पूना गये और दक्षिण-अफ्रीका-वासी भारतीयों के

---

* उन्हीं दिनों किसीने इस भाव को इन कड़ियों में व्यक्त किया था:—

"इस जूरी ने यद्यपि मुझको अपराधी ठहराया है,
तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
ईश्वर का संकेत मनोगत दिखलाई यह मुझे पड़े,
मेरे संकट सहने से ही इस हलचल का तेज बढ़े।"

सम्वन्ध में एक सभा करना चाहते थे, वह लोकमान्य से मिले और उनकी सलाह के मुताविक गोखले से भी। गांधीजी पर दोनों की जैसी छाप पड़ी वह याद रखने लायक है। तिलक उन्हें हिमालय की तरह महान्, उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पड़े; लेकिन गंगा की पवित्र धारा की तरह, जिसमें वह आसानी से गोता लगा सकते थे। तिलक और गोखले दोनों महाराष्ट्रीय थे, दोनों ब्राह्मण थे, दोनों चितपावन थे, दोनों प्रथम श्रेणी के देश-भक्त थे, दोनों ने अपने जीवन में भारी त्याग किया था; परन्तु दोनों की प्रकृति एक-दूसरे से जुदा थी। यदि हम स्थूल भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गरम'। गोखले चाहते थे कि मौजूदा विधान में सुधार कर दिया जाय, परन्तु तिलक उसे फिर से वनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पड़ता था, तो तिलक की नौकरशाही से भिड़न्त रहती थी। गोखले कहते थे—जहां संभव हो सहयोग करो; जहां आवश्यक हो विरोध करो। तिलक का झुकाव अड़ंगा-नीति की तरफ था। गोखले शासन और उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तहां तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सबसे मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तहां तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियों को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उनको हटाना चाहते थे। गोखले दूसरे की सहायता पर आधार रखते थे, तिलक स्वावलम्बन पर। गोखले उच्चवर्ग और वृद्धि-वादियों की तरफ देखते थे, और तिलक सर्वसाधारण और करोड़ों की ओर। गोखले का अखाड़ा था कौंसिलभवन, तो तिलक की अदालत थी गांव की चौपाल। गोखले अंग्रेजी में लिखते थे, परन्तु तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था स्व-शासन, जिसके योग्य लोग अपने को अंग्रेजों की कसौटियों पर कसकर बनावें; किन्तु तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य', जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म-सिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियों की सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे।

पं० अयोध्या नाथ

शुरुआत के कांग्रेस-नेताओं में पं० अयोध्यानाथ का स्थान बहुत ऊँचा था। १८८८ में हुई इलाहाबाद-कांग्रेस के, जो मि० जार्ज यूल के सभापतित्व में हुई थी, वह स्वागताध्यक्ष थे; तभी से कांग्रेस के साथ उनका सम्पर्क शुरू होता है। लेकिन इसी शहर में जब फिर से कांग्रेस का अधिवेशन हुआ (१८९२) तो कांग्रेस को बड़े दुःख के साथ इन दोनों की ही मृत्यु पर शोक मनाना पड़ा। पं० अयोध्यानाथ का

स्मारक उनके पुत्र पं० हृदयनाथ कुंजरू हैं, जिन्हें बतौर विरासत वह राष्ट्र की भेंट कर गये हैं।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

भारत के स्वर्गीय राजनीतिज्ञों के दरबार में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मा का एक प्रमुख स्थान है। ४० साल से ज्यादा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का सम्बन्ध कांग्रेस से रहा। भारत में कांग्रेस के मंच से उठी उनकी बुलन्द आवाज सभ्य संसार के दूर-दूर के कोने तक पहुँचती थी। भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च भावुकता, वीरोचित हुंकार, इन गुणों में उनकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन है—आज भी कोई उनकी समता तो अलग, उनके निकट भी नहीं पहुँच सकता। उनके भाषणों का मसाला होता था अपनी राजभक्ति की दुहाई। उन्होंने इसे एक कला की हद तक पहुँचा दिया था। उन्होंने दो बार कांग्रेस के सभापति-पद को सुशोभित किया था—पहली बार १८९५ में पूना में और दूसरी बार १९०२ में अहमदाबाद में। कांग्रेस में प्रतिवर्ष जो भिन्न-भिन्न विषयों पर विविध प्रस्ताव लाये जाते थे उनमें शायद ही कोई उनकी पहुँच के बाहर रहता हो। फौजी विषयों में रूस १९ वीं सदी के अन्त में बरसों तक हौवा बना रहा है। परन्तु सुरेन्द्रनाथ ने इसका जो जवाब दिया वह याद रखने योग्य है—"रूस की चढ़ाई का सच्चा और वैज्ञानिक उपाय तो कोई लम्बा-चौड़ा और अगम्य पर्वत नहीं, जो बीच में बनाकर खड़ा कर देना है, बल्कि वह तो सब तरह सन्तुष्ट और राज-भक्त लोगों का दिल है।" सुरेन्द्रनाथ ने तो यहां तक सुझाया था कि हिन्दुस्तान के राजनैतिक प्रश्नों को ब्रिटिश पार्लमेण्ट के किसी दल को अपना विषय बना लेना चाहिए। यह एक ऐसी तजवीज थी कि जो आज भी व्यावहारिक क्षेत्र की सीमा के बाहर समझी जाती है। उन्होंने कहा—"राजनैतिक कर्त्तव्यों के उच्च क्षेत्र में इंग्लैण्ड हमारा राजनैतिक पथ-दर्शक और नैतिक गुरु है।" उनका आदर्श था ब्रिटिश सम्बन्ध के प्रति अटल श्रद्धा रखकर काम करना। उनके इन तमाम विश्वासों, मान्यताओं के रहते हुए भी लॉर्ड मिण्टो के वाइसराय-काल में बरीसाल में उनपर लाठी चलाई गई थी, किन्तु उन्हें आगे चलकर बंगाल का मंत्री बनना था, इसलिए बच गए।

पण्डित मदनमोहन मालवीय

पं० मदनमोहन मालवीय का कांग्रेस-मंच पर सबसे पहली बार सन् १८८६ में, कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में, व्याख्यान हुआ था, तभी से लेकर आप बराबर

आजतक अथक उत्साह और लगन के साथ इस राष्ट्रीय संस्था की सेवा करते चले आ रहे हैं। कभी तो एक विनम्र सेवक के रूप में पीछे रहकर और कभी नेता के रूप में आगे आकर, कभी पूरे कर्त्ता-धर्त्ता बनकर और कभी कुछ थोड़ा-सा विरोध प्रदर्शित करनेवाले के रूप में प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन के विरोधी होकर और कभी सत्याग्रही बनने के कारण सरकारी जेलों में जाकर, आपने कांग्रेस की विविध रूप में सेवा की है।

सन् १९१८ के अप्रैल मास में २७, २८ और २९ तारीख को वाइसराय ने गत महायुद्ध के लिए जन, धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करने के लिए भारतीय नेताओं की एक सभा बुलाई थी। उसमें गवर्नर, लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर, चीफ-कमिश्नर, कार्यकारिणी के सदस्य, बड़ी कौंसिल के भारतीय तथा यूरोपियन सदस्य, विभिन्न प्रान्तीय कौन्सिलों के सदस्य, देशी-नरेश तथा अनेक सरकारी एवं गैरसरकारी प्रतिष्ठित यूरोपियन और हिन्दुस्तानी नागरिक सम्मिलित हुए थे। इस सभा में शास्त्रीजी, राजा महमूदाबाद, सैयद हसनइमाम, सरदारबहादुर सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया और गांधीजी के भाषण 'सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति' वाले प्रस्ताव के समर्थन में हुए थे, जिसे महाराजा गायकवाड़ ने पेश किया था।

इसके बाद पं० मदनमोहन मालवीय ने वाइसराय को सम्बोधन करके कहा, कि "भारत के आधुनिक इतिहास से एक शिक्षा लीजिए। औरंगजेब के जमाने में सिक्ख गुरुओं ने उसकी सत्ता और प्रभुत्व का मुकाबला किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने छोटे-से-छोटे लोगों को, जो आगे बढ़े, अपनाया और गुरु और शिष्य के बीच में जो अन्तर है उसे एकदम मिटाकर उन्हें दीक्षित किया। इस तरह गुरु गोविन्दसिंह ने उन लोगों के हृदय पर अधिकार जमा लिया था। अब भी मैं यही चाहता हूँ कि आप अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके भारतीय सिपाहियों के लिए ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि जिससे युद्ध-स्थल में अन्य देशों के जो सैनिक उनके कंधे-से-कंधा भिड़ाकर युद्ध करते हैं उनके बराबर वे अपने को समझ सकें। मैं चाहता हूँ कि इस अवसर पर गुरु गोविन्दसिंह के उत्साह एवं साहस से काम लिया जाय।"

देश में जब असहयोग-आन्दोलन चला तब मालवीयजी उससे तो दूर रहे, परन्तु कांग्रेस से नहीं। नरम दलवालों ने अपने जमाने में कांग्रेस को हर प्रकार चलाया, लेकिन जब उनका प्रभाव कम हुआ तो वे उससे अलग हो गये। श्रीमती बेसेण्ट ने कांग्रेस पर एकबार अधिकार प्राप्त कर लिया था। पर बाद में उन्होंने भी, अपने से प्रबल दलवालों के हाथों में उसे सौंप दिया। लेकिन मालवीयजी तमाम उतार-

चढ़ावों में, प्रशंसा और वदनामी, किसी की भी परवा न करते हुए, सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे हैं। मालवीय जी ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें इतना साहस है कि जिस वात को वह ठीक समझते हैं उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे पर वह अकेले ही मैदान में खम ठोंककर डँटे रहते हैं। एक वार वह अपनी लोकप्रियता की चरम-सीमा पर थे। दूसरी वार अवस्था यह हुई कि कांग्रेस-मंच पर उनके भाषण को लोग उतने ध्यान से नहीं सुनते थे। १९३० में जव सारे कांग्रेसी सदस्यों ने असेम्वली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था उस समय मालवीयजी वहीं डटे रहे। उन्हें ऐसा करने का अधिकार भी था। क्योंकि वह कांग्रेस के टिकट पर असेम्वली में नहीं गये थे। लेकिन इसके चार मास वाद ही दूसरा समय आया। मालवीयजी ने उस समय की आवश्यकता को देखकर असेम्वली की मेम्वरी से इस्तीफा दे दिया। सन् १९२१ में उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था। लेकिन १९३० में हमें वह पूरे सत्याग्रही मिलते हैं। सव मिलाकर उनका स्थान अनुपम और अद्वितीय है। हिन्दू की हैसियत से वह उन्नत विचारवाले हैं और गाड़ी को आगे खींचते हैं। कांग्रेसी की हैसियत से वह स्थिति-पालक हैं, इसीलिए प्रायः वह पिछड़े हुए विचारवालों का नेतृत्व किया करते हैं। फिर भी कांग्रेस इस वात में अपना गौरव समझती है कि वह सरकारी कौंसिल और देश की कौंसिल दोनों में उन्हें निर्विरोध जाने दे। किसी समय में जो वात गांधीजी के लिए कही जा सकती थी, वही इनके लिए भी कही जा सकती है, कि एक समय था जव वह ब्रिटिश-साम्राज्य के मित्र थे। लेकिन अपने सार्वजनिक जीवन के पिछले दिनों में उन्होंने अपने को, सरकारी निरंकुशता का अपने सारे उत्साह और सारी शक्ति के साथ विरोध करने के लिए विवश पाया। वनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय उनकी विशेष कृति है। लेकिन वह स्वयं भी एक संस्था हैं। पहले-पहल सन् १९०९ में वह लाहौर-कांग्रेस के सभापति हुए थे। कांग्रेस के इस २४ वें अधिवेशन के सभापति चुने तो सर फिरोजशाह मेहता गये थे, परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से उन्होंने अधिवेशन से केवल ६ दिन पूर्व इस मान को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। अतः उनके स्थान की पूर्ति मालवीयजी ने ही की थी। १० वर्ष वाद सन् १९१८ में कांग्रेस के दिल्लीवाले ३३ वें अधिवेशन के सभापतित्व के लिए राष्ट्र ने आपको फिर मनोनीत किया था।

लाला लाजपतराय

कांग्रेस के पुराने पूज्य-पुरुषों में लाला लाजपतराय का सार्वजनिक व्यक्तित्व

भी महान् था। वह जितने बड़े कांग्रेस-भक्त थे उतने ही बड़े परोपकारी और समाज-सुधारक भी थे। सन् १८८८ में इलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन हुआ था। उसमें वह सबसे पहली बार सम्मिलित हुए थे। कौंसिलों के बढ़ाये जाने के प्रस्ताव का उन्होंने समर्थन किया था। राजनैतिक क्षेत्र में लालाजी की लगातार दिलचस्पी और समाज-सेवा ने पंजाब में ही नहीं, सारे देश में उनका सबसे ऊँचा स्थान बना दिया था। बनारस-कांग्रेस ने उन्हें एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्रवादी के रूप में याद किया। सन् १९०७ में उन्हें सरदार अजीतसिंह के साथ देश-निकाला दे दिया गया था। इस साल की घटनाओं के प्रधान स्तम्भ लाला लाजपतराय ही थे, जिनके चारों ओर सारा घटना-चक्र घूमा था। सन् १९०७ की कांग्रेस के सभापति-पद के लिए राष्ट्रीय विचार के लोगों ने लालाजी का नाम पेश किया। यह कांग्रेस पहले तो नागपुर में होनेवाली थी, परन्तु बाद को स्थान बदलकर सूरत में करने का निश्चय हुआ था। गोखले इस प्रस्ताव के विरोध में थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "अगर तुम सरकार की परवा न करोगे तो वह तुम्हारा गला घोंट देगी।" लालाजी ने कभी मान-प्रतिष्ठा की परवा नहीं की। यदि किसी पद के लिए उनका नाम लिया जाता तो वह उसे स्वीकार करने से उदारता-पूर्वक इनकार कर देते थे। सूरत में समझौते की बातचीत के समय, लोकमान्य तिलक चाहते थे कि कांग्रेस के सभापति-पद के लिए लालाजी का नाम पेश करते हुए उनके सम्बन्ध में आदरपूर्वक कुछ कहें; लेकिन बाद में इस दिशा में कुछ हुआ-हवाया नहीं।

सन् १९०६ में गोखले के साथ लालाजी भी शिष्ट-मण्डल में इंग्लैण्ड भेजे गये थे। बाद में खुफिया-पुलिस ने उन्हें इतना तंग किया कि उन्होंने विदेशों में ही ठहरना ठीक समझा। गत महायुद्ध के दिनों में तो वह अमरीका ही में रहे। लोग समझते हैं कि वह विवश होकर ही वहां रहे थे। कांग्रेस के सभापति बनने का लालाजी का नम्बर जरा देर से आया। सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ऐसी थी जैसे जल से बाहर मछली की होती है। असहयोग-आन्दोलन के जन्मदाता और समर्थकों से उनके विचार कभी नहीं मिले। इतना ही नहीं, अपने अन्तिम भाषण में तो उन्होंने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि यह आन्दोलन चल नहीं सकेगा। वह वीर और युद्ध-प्रिय थे, मगर सत्याग्रही नहीं। उनके लिए सत्याग्रह या सविनय-भंग का अर्थ कानून-भंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनका समय बड़ी कठिनाइयों और संघर्षों में बीता। उनके अपने प्रान्त में नौजवानों का एक दल ऐसा था, जो उनके खिलाफ था। कौंसिल में जाने पर उनका

जौहर फिर से खिल उठा। लेकिन अफसोस कि पुलिस-अफसर की लाठी के कायरता-पूर्ण वार ने अन्त में उनकी जीवन-यात्रा को घटा दिया और वह हमारे बीच से असमय में ही चले गये ! सन् १८८८ की कांग्रेस में वह उर्दू में ही बोले थे और प्रस्ताव किया था कि आधा दिन शिक्षा तथा उद्योग-धन्धे सम्बन्धी विषयों पर विचार करने के लिए दिया जाय। यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया था और उसी समय से जो औद्योगिक प्रदर्शनियां की जा रही हैं वह उसी कमिटी का प्रत्यक्ष फल हैं जिसे कि उस समय कांग्रेस ने नियुक्त किया था।

फिरोजशाह मेहता

सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियों में से हैं जिनका सम्पर्क कांग्रेस के साथ उसके प्रारम्भ से ही रहा है। कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में इनका बहुत प्रमुख भाग रहा है।.कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८९०) के यह सभापति हुए थे, जिसमें सभापति-पद से दिये गये अपने भाषण में इन्होंने लॉर्ड सेल्सबरी के इस विचार का खण्डन किया कि "प्रतिनिधि-शासन पूर्वी परम्पराओं अथवा पूरब-निवासियों की मन:स्थिति के अनुकूल नहीं है" और अपनी बात की पुष्टि में मि० चिसहाम एन्स्टे का यह उद्धरण पेश किया कि "स्थानिक-स्वराज्य का जनक तो पूर्व ही है; क्योंकि स्व-शासन का अधिक-से-अधिक विस्तृत जो अर्थ हो सकता है, उस रूप में वह प्रारम्भ से ही वहां मौजूद रहा है।" फिरोजशाह ने कहा, "निस्सन्देह कांग्रेस जन-साधारण की संस्था नहीं है, लेकिन जन-साधारण के शिक्षित-वर्ग का यह फर्ज है कि वह जनसाधारण की तकलीफों को सामने लाये और उन्हें दूर कराने के उपाय सुझावे।"

"अंग्रेजों के जीवन और समाज की सारी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनैतिक बड़ी-बड़ी शक्तियों का प्रभाव, धीरे-धीरे किन्तु अदम्य रूप से दृढ़ता के साथ, हमारे ऊपर पड़ रहा है, जिससे आगे चलकर भारत और इंग्लैण्ड का सम्बन्ध इन दिनों के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए, और वह भी अगणित पीढ़ियों के लिए, एक आशीर्वाद सिद्ध होगा। मैं सारी अंग्रेजजाति से अपील करता हूं—खरे मित्रों तथा उदार शत्रुओं, दोनों से—कि इस प्रार्थना को व्यर्थ और निष्फल न जाने दीजिए।"

कई वर्ष तक फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के पीछे एक वास्तविक शक्ति के रूप में थे। आपने जो कुछ भी कार्य किया वह अधिकतर उन कमिटियों, शिष्ट-मण्डलों

और प्रतिनिधि-मण्डलों के द्वारा ही किया जिनके कि यह सदस्य चुने गये थे। १६०७ में आपने नरम दल की ओर से सूरत कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस-कार्य में कुछ क्रियात्मक भाग लिया था। उसके वाद आप दृष्टि से विलकुल ही ओझल हो गये। जव आप कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन के, जो कि १६०६ में लाहौर में हुआ था, सभापति चुने गये तो यकायक आपने, कांग्रेस से सभापति का आसन ग्रहण करने से, ६ दिन पहले इस्तीफा दे दिया। आपके स्थान पर पं० मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के सभापति चुने गये थे।

आनन्दमोहन वसु

यह हम पहले देख ही चुके हैं कि किस प्रकार आनन्दमोहन वसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे, जिनका ब्रह्म-समाज की प्रगति में वहुत स्थान रहा, और किस प्रकार उन्होंने ब्रह्म-समाज के सुधारक-दल का नेतृत्व किया था। १८७६ में स्थापित कलकत्ता के इण्डियन-एसोसियेशन के यह सर्वप्रथम मंत्री हुए और सुरेन्द्रनाथ वनर्जी के उत्साही सहकारी रहे। कांग्रेस आन्दोलन के साथ १८६६ से पहले तक इनका कोई घनिष्ठ सम्वन्ध रहा या नहीं, यह तो हमें नहीं मालूम; पर १८६६ के १२ वें अधिवेशन में इन्होंने शिक्षा-विभाग की नौकरियों के पुनस्संगठन की योजना होनेवाले नये अन्याय का विरोध किया और कहा कि यह योजना तो हिन्दुस्तानियों शिक्षा-विभाग के ऊँचे पदों से अलग रखने के लिए ही वनाई गई है। इसके वा शीघ्र ही, १८६८ के मदरास-अधिवेशन में, आनन्दमोहन वसु कांग्रेस के सभापति हु सभापति-पद से दिया हुआ इनका भाषण अकाट्य युक्तियों से, और अन्त में इन्हं कांग्रेस को जो सन्देश दिया वह प्रेम एवं राष्ट्र-सेवा के उपदेश से, परिपूर्ण है। इन्हं पार्लमेण्ट में हिन्दुस्तान के चुने हुए प्रतिनिधि रक्खे जाने की वात सुझाई थी। यह दे का दुर्भाग्य है कि जव उसे इनकी सेवाओं की सवसे ज्यादा जरूरत थी तभी, १६० में ईश्वर ने इनको हमसे छीन लिया !

मनमोहन घोष

मनमोहन घोष का नाम हम सवसे पहले १८८८ में हुए चौथे अधिवे (इलाहावाद) के सिलसिले में सुनते हैं, जव कि इन्होंने सरकारी नौकरियों-सम्वन् प्रस्ताव पेश किया था। पश्चात् कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८६०) में स्वागताध्यक्ष हुए। कांग्रेस पर होनेवाले विभिन्न आक्षेपों का अपने जोरदार भाष

में इन्होंने जवाब दिया और कांग्रेस की वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। न्याय बनाम शासन कार्यों के विषय का इन्होंने खास तौर पर अध्ययन किया था। पूना में हुए ११ वें अधिवेशन (१८९५) में इन्होंने तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और मि० जैम्स नामक एक कमिश्नर के वक्तव्य को उद्धृत करके बताया कि, इन दोनों (न्याय व शासन-कार्य) का सम्मिश्रण ही "भारत में ब्रिटिश-सत्ता का मुख्य आधार है।" इसके बाद इनका स्वर्गवास हो गया, जिसपर १२ वीं कांग्रेस (कलकत्ता, १८९६) में शोक मनाया गया।

लालमोहन घोष

लालमोहन घोष १८९० में छठे अधिवेशन में (कलकत्ता) पहले-पहल कांग्रेस मंच पर आये और उन्होंने ब्रैडला साहब के भारत-सरकार-संबंधी बिल पर प्रस्ताव उपस्थित किया था। मदरास (१९०३) में हुए १९ वें कांग्रेस अधिवेशन के वह सभापति बनाये गये थे। कांग्रेस-मंच से अबतक जितने योग्यतम भाषण हुए हैं उनमें उनके भाषण की गिनती होती है। उनके भाषण से कुछ अंश यहां दिये जाते हैं:—

"हालांकि इसमें ऐसा कोई भी शख्स न होगा जो ब्रिटिश-सरकार के प्रति सच्चे दिल से वफादार न होगा, तो भी वह यह दावा जरूर करेगा कि सरकार के कामों की आलोचना करने का हक हमें है, जैसा कि प्रत्येक ब्रिटिश प्रजाजन को है। ऐसी दशा में क्या हम अदब के साथ अपने शासकों से यह नहीं पूछें—और इस विषय में मैं भिन्न-भिन्न ब्रिटिश राजनैतिक दलों में कोई भेद नहीं करना चाहता—कि आपकी जिस नीति ने बरसों पहले हमारे देशी उद्योग-धंधे नष्ट कर दिये हैं, जिसने हाल ही में उस दिन उदार शासन के नाम पर बेगैरत होकर हमारे सूती कपड़े पर उत्पत्ति-कर लगा दिया, जो करीब दो करोड़ स्टर्लिंग तक हर साल हमारी राष्ट्रीय धन-सामग्री विलायत को दृढ़ता के साथ बहा ले जा रही है, और जो किसानों पर भारी बोझ लाद-कर बार-बार जोर के अकाल देश में लाती है—अकाल भी ऐसे कि पहले कभी देखे न सुने—क्या उस नीति पर हमें विश्वास करना होगा? क्या हमें यह मानना होगा कि जिन विविध शासन-कार्यों की बदौलत ये सब परिणाम निकले हैं वे सब उस मंगल-मय परमात्मा की सीधी प्रेरणा से हुए हैं?

"हमारा राष्ट्र स्व-शासित नहीं है। हम, अंग्रेजों की तरह, अपनी रायों के बल पर अपना शासन नहीं बदल सकते। हमें पूर्णतः ब्रिटिश पार्लमेण्ट के निर्णय पर अपना

आधार रखना पड़ता है। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल सही है कि हमारी भारतीय नौकरशाही लोगों के विचारों और भावों के अनुकूल होने की अपेक्षा दिन-दिन अधिक रूखी बनती जा रही है। क्या आप खयाल करते हैं कि इंग्लैण्ड, फ्रान्स, या संयुक्तराज्य (अमरीका) उस हालत में ऐसे खोखले तमाशे पर इतना खर्च करने का साहस करते, जबकि देश में अकाल और महामारी का साम्राज्य छाया हुआ था और इस धृष्टतापूर्ण आनन्द-मंगल के दूसरी ही ओर यमराज लोगों को समेटने के लिए अपने हाथ पसारे हुए थे?

"महानुभावो! जनता और उसके प्रतिनिधियों का लगभग सर्व-सम्मत विरोध होते हुए भी, जिसकी आवाज अखबारों और सभाओं में—दोनों ही तरह—उठाई गई थी, दिल्ली में जो बड़ा भारी राजनैतिक आडम्बर (दिल्ली-दरबार) किया गया था, उसे एक साल हो गया। और उसका विरोध किया किस लिए गया था? इसलिए नहीं कि विरोध करनेवाले लोग सम्राट् की, जिनकी कि तख्तनशीनी का समारोह होनेवाला था, राजभक्ति में किसीसे कम थे; बल्कि इसलिए कि उनका विश्वास था, अगर सम्राट् के मंत्रीगण अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हुए सम्राट् के सामने उनके अकाल-पीड़ित भारतीय प्रजाजन की कष्ट-कथा का हूबहू वर्णन करते तो दीन-दु:खी लोगों के प्रति सम्राट् की जो गहरी सहानुभूति है उसके कारण स्वयं वही सबसे पहले भारत-स्थित अपने प्रतिनिधियों को भूखों-मरते लोगों के सामने ऐसा आडम्बर-पूर्ण प्रदर्शन करने की मनाही कर देते। लेकिन ऐसा नहीं किया गया और (शाही दरबार का) बड़ा भारी तमाशा कर ही डाला गया, जिसमें इतनी अन्धाधुन्धी से फजूलखर्ची की गई कि कुछ न पूछिए। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली-दरबार के करने में जो भारी रकम लगाई गई उसकी आधी भी अगर अकाल-पीड़ितों की सहायता में लगाई जाती तो भूखों मरनेवाले लाखों स्त्री, पुरुष, बच्चे मौत के मुंह से निकल आते।"

चक्रवर्त्ती विजयराघवाचार्य

सेलम के श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य सबसे पुराने कांग्रेसियों में से हैं, यहां तक कि १८८७ के ३रे अधिवेशन (मदरास) में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें भी इनका नाम मिलता है। इसके बाद लखनऊ में होनेवाले १५ वें अधिवेशन (१८९९) में और उससे अगले साल लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में यह इण्डियन कांग्रेस कमिटी के सदस्य बनाये गये।

२२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १९०६) में इन्होंने दायमी बन्दोबस्त का प्रस्ताव पेश किया और इस विचार को गलत बताया कि भूमि कर (लगान) बतौर किराया है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए, इन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान में जमीन पर राजा का अधिकार कभी भी नहीं रहा। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दुनिया उन्हींकी है जो उसमें पैदा हुए हैं; जमीन को जो जोतता-बोता है उसीकी वह सम्पत्ति होती है—राजा, जो कि उसकी रक्षा के लिए है, अपनी सेवाओं के बदले में किसानों से पैदावार का एक हिस्सा लेता है। यह विचार कि जमीन राजा की है, भारतीय नहीं बल्कि पश्चिमी है।

सूरत-काण्ड के बाद से, वस्तुतः यह कांग्रेस से अलग ही रहने लगे। नरम दल की कांग्रेस से इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। लेकिन जब १९१६ में लखनऊ में किये गये संशोधन से गरम दलवालों के लिए कांग्रेस का दरवाजा खुल गया, तो यह फिर उसमें आगये और १९१८ में हुए विशेषाधिवेशन (बम्बई) तथा १९१९ में हुए अमृतसर-अधिवेशन में इन्होंने क्रियात्मक-रूप से भाग लिया। अमृतसर-अधिवेशन में इन्होंने जन-साधारण के मौलिक अधिकारों पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद ही इन्हें नागपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया, जहां बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ इन्होंने कार्य सम्पादित किया।

राजा रामपालसिंह

अन्य प्रमुख कांग्रेसियों में राजा रामपालसिंह का नाम बहुत दिनों तक कांग्रेसी क्षेत्र में बड़ा प्रमुख रहा है। यह जानने लायक बात है कि दूसरी कांग्रेस में सैनिक-स्वयं-सेवकोंवाला प्रस्ताव राजा रामपालसिंह ने ही पेश किया था, जिसके साथ उन्होंने एक गम्भीर चेतावनी भी दी थी। उन्होंने कहा था, कि "ब्रिटिश-शान्ति (पैक्ट्स ब्रिटेनिका) कितनी ही मशहूर क्यों न हो, ग्रेट ब्रिटेन की आकांक्षायें कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हों, और उसने हमारी भलाई के लिए चाहे जो किया या करने का प्रयत्न किया हो, कुल मिलाकर तो निर्णय उसके विरुद्ध ही होगा; और बजाय प्रसन्न होंने के भारत को इस बात पर दुःख ही होगा कि इंग्लैण्ड के साथ उसका कुछ सम्बन्ध रहा। यह बात कहने में कठोर अवश्य है, पर सचाई यही है। क्योंकि एक बार किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय भावना को कुचलकर, और उसको आत्म-रक्षा एवं अपने देश की रक्षा के अयोग्य बना-कर, फिर किसी तरह उसकी क्षति-पूर्ति नहीं की जा सकती। दुनिया में किसी भी ओर आप नजर डालिए, चारों ओर आपको बड़ी-बड़ी फौजें और लड़ाई के भयंकर शस्त्रास्त्र

दृष्टि-गोचर होंगे। सारे सभ्य संसार पर कोई आफत आना निश्चितप्राय है। अभी या कुछ ठहरकर भयंकर फौजी हलचल शुरू होगी, जिसमें ब्रिटेन भी निश्चित रूप से शरीक होगा। लेकिन ब्रिटेन अत्यधिक समृद्ध होते हुए भी, अपनी सारी दौलत के जोर पर भी, रण-क्षेत्र में फी हजार व्यक्तियों के पीछे अपने सौ आदमी नहीं रख सकता—जैसा कि यूरोप के अन्य कई देश कर सकते हैं। अत: जब ऐसा मौका आ जायगा तब इंग्लैण्ड को इस बात के लिए पछताना पड़ेगा कि आक्रमणकारियों से लोहा लेने के लिए लाखों भारतीयों को दक्ष बनाने के बजाय उसने उनके मुकाबले के लिए अपनी ही थोड़ी सेना यहां रख रक्खी है।" अपने पोते कालाकांकर के तरुण राजा के रूप में, जिनका हाल ही में असामयिक स्वर्गवास हो गया है, राजा रामपालसिंह ने मानों सच्चे देशभक्त और कांग्रेस के—जिसके मन्दिर को अपने जीवन-काल में उन्होंने स्वयं ही आलोकित किया था—पुजारी बनकर फिर से जन्म लिया था।

कालीचरण बनर्जी

कांग्रेसी हलचल के पहले पच्चीस वर्षों में आमतौर पर यह प्रथा रही है कि जो आवश्यक प्रस्ताव एक साल से पुराने हो जाते वे सब एक बड़े प्रस्ताव में इकट्ठे कर दिये जाते थे। और साल दर-साल ऐसे व्यक्तियों को उसे पेश करने के लिए चुना जाता था जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी होती—अर्थात् जो उस संयुक्त या व्यापक प्रस्ताव के विभिन्न विषयों का भलीभांति स्पष्टीकरण कर सकते थे। १८८६ में ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए कालीचरण बनर्जी चुने गये थे, जो एक भारतीय ईसाई थे। कई वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस के काम-काज में बड़ी दिलचस्पी ली थी और १८९० में ब्रिटिश-जनता के सामने कांग्रेस के विचार रखने के लिए जो शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया उसके वह भी एक सदस्य बनाये गये थे। ९ वीं कांग्रेस (लाहौर, १८९३) में उन्होंने न्याय और शासन-कार्य को एक-दूसरे से पृथक् करने का प्रस्ताव पेश किया।

१९०१ में, कलकत्ता की कांग्रेस में, यह प्रस्ताव रक्खा कि हिन्दुस्तानी मामलों की सुनवाई (अपील) के लिए प्रिवी कौंसिल की जो जुडीशियल कमिटी बनती है उसमें हिन्दुस्तानी वकील भी रक्खे जाने चाहिएँ। बाबू कालीचरण बनर्जी यदि अधिक समय तक जिन्दा रहे होते तो जरूर कांग्रेस के सभापति बनते।

नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर

कांग्रेस के मंत्रियों में हिन्दू के साथ एक मुसलमान को भी रखने की प्रथा

१९१४ की मदरास-कांग्रेस से शुरू हुई, जिसमें नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर और श्री एन० सुब्बाराव मंत्री चुने गये थे। लेकिन नवाब साहब तो इससे पहले, १९१३ की करांची-कांग्रेस में, सभापति-पद को भी सुशोभित कर चुके थे। वह पहले कांग्रेसी थे, इसके बाद मुसलमान। १९०३ में हुई मदरास-कांग्रेस (१९ वां अधिवेशन) के वह स्वागताध्यक्ष थे और १९०४ की कांग्रेस (२० वां अधिवेशन, बम्बई) में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनी उसमें उन्हें भी रक्खा गया था। वह ऐसे देशभक्त थे जिनमें मजहबी संकीर्णता बिलकुल नहीं थी। करांची-कांग्रेस के सभापति-पद से उन्होंने राष्ट्रीयता की बुलन्द आवाज उठाई और इस बात पर जोर दिया कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियों को अलग-अलग टुकड़ों में बंटने के बजाय संयुक्त रूप से आगे बढ़ना चाहिए। इस दिशा में हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा किये गये प्रयत्न का, जो कि मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित की गई इस आशा से प्रकट होता था कि 'सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर मिल-जुलकर काम करने के उपाय सोचने के लिए' दोनों जातियों के नेताओं को समय-समय पर आपस में मिलते रहना चाहिए, उन्होंने स्वागत किया। यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि करांची में नवाब साहब ने ऊँची देशभक्ति और शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जो बीज बोया था वही फलकर आगे हिन्दू-मुस्लिम-एकता और लखनऊ की कांग्रेस-लीग-योजना के रूप में सामने आया।

दाजी आबाजी खरे

कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में दायमी बन्दोबस्त और जमीन के पट्टे की मियाद स्थिर कर देने का विषय कांग्रेस में जोरों के साथ उठता रहा है। लाहौर में हुए ९ वें अधिवेशन (१८९३) में श्री दाजी आबाजी खरे ने इस सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। कांग्रेस का जो विधान उनके प्रस्ताव पर १९०६ में स्वीकृत हुआ था और जिसका बहुत कुछ भाग १९०८ में बननेवाले विधान में भी मिला लिया गया था, उसके निर्माण में इन्होंने बहुत भाग लिया था। १९०९ से १९१३ तक, श्री दीनशा वाचा के साथ, यह कांग्रेस के मंत्री रहे हैं और १९११ में इन्होंने भारतीय सूती माल पर लगाया गया वह उत्पत्ति-कर उठा लेने का प्रस्ताव पेश किया जिससे भारत के सूती वस्त्र-व्यवसाय के प्रसार में रुकावट पड़ती थी। १९१३ में जब मुस्लिम लीग ने भारत के लिए स्व-शासन के आदर्श को स्वीकार कर लिया तो श्री खरे ने उसके स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा, स्व-शासन हिन्दू-मुसलमानों के भाई-चारे से ही प्राप्त होगा।

मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा

कांग्रेस के प्रथमाधिवेशन में शुरुआत के जो देशभक्त उपस्थित हुए थे उनमें लखनऊ के मुंशी गंगा प्रसाद वर्मा भी थे। दूसरे अधिवेशन में सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर विचार करके कांग्रेस को तत्सम्बन्धी सिफारिशें करने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें यह भी चुने गये थे। बाद में यह कांग्रेस-समितियों के विभिन्न पद ग्रहण करते रहे और १९०६ में जाकर कांग्रेस की स्थायी-समिति के सदस्य भी बन गये थे।

रघुनाथ नृसिंह मुधोळकर

शुरुआत के कठोर परिश्रम करनेवाले कांग्रेसियों में श्री रघुनाथ नृसिंह मुधोळकर का स्थान किसीसे कम नहीं है। वह पहली बार इलाहाबाद में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन (१८८८) में शामिल हुए थे। पुलिस-सम्बन्धी प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उन्होंने कहा था—"पुलिस के सिपाही का तो फर्ज है कि वह प्रजा का प्रेम जीते, लेकिन अब वह कैसे घृणा का पात्र बन गया है!" २४ साल बाद राष्ट्र ने उन्हें १९१२ की कांग्रेस (बांकीपुर) का सभापति चुना। श्री सी० वाई० चिन्तामणि उनके सहायक के रूप में राजनीति का आवश्यक और प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करते रहे और बाद में अपनी प्रचण्ड बुद्धि शक्ति के बल पर भारतीय राजनीति में चमकने लगे।

सी० शंकरन् नायर

सर सी० शंकरन् नायर अपने वक्त में एक समर्थ पुरुष थे। कांग्रेस की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप कांग्रेस ने उन्हें बहुत जल्दी, १८९७ में, अमरावती-अधिवेशन का सभापति चुना। बम्बई के चन्दावरकर और तैयबजी की तरह शंकरन् नायर को भी पीछे मदरास के हाईकोर्ट-बेंच का सदस्य बना लिया गया और वहां से १९१५ में वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी में ले लिये गये। १९१९ में मार्शल-लॉ लागू करने के प्रश्न पर इस्तीफा देने के कारण वह बहुत लोकप्रिय हो गये। लेकिन 'गांधी एण्ड अनार्की' नामक पुस्तक में गांधीजी पर उन्होंने निराधार आक्षेप किया। इसी पुस्तक के कारण पंजाब के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर माइकेल ओड्वायर ने उनपर मुकदमा चलाया और सर शंकरन् को मानहानि व खर्चे के लिए तीन लाख रुपये देने पड़े थे।

पी० केशव पिल्ले

दीवानबहादुर पी० केशव पिल्ले कांग्रेस में बहुत पहले ही से भाग लेने लगे थे। १९१७ में उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस से अपने सम्बन्ध के आखिरी सालों में वह कांग्रेस के मंत्री और श्रीमती एनी बेसेण्ट के प्रमुख सहायक थे।

विपिनचन्द्र पाल

विपिन बाबू का कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत पहले शुरू हुआ। वह मशहूर वक्ता थे। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश में अपनी वक्तृत्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। उन्होंने १९०७ में मदरास में जो भाषण दिये थे, एडवोकेट-जनरल (सर) वी० भाष्यम आयंगर ने उन्हें भड़कानेवाले—राजद्रोहपूर्ण नहीं—समझा था और वह मदरास अहाते से निकाल दिये गये। लार्ड मिण्टो के समय उन्हें एक बार देश-निकाला भी मिला था। एक दूसरे वक्त जब 'वन्देमातरम्' के संपादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द बाबू के बहुत खिलाफ पड़ेगी। इस कारण ६ मास की सख्त कैद की सजा उन्होंने बड़ी खुशी से भुगत ली। उन्होंने इंग्लैण्ड में 'हिन्दू रिव्यू' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें बम के कारणों पर विचार किया था। भारत लौटने के बाद उनपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन उन्होंने माफी मांग ली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति में उनके उत्साह की निरंतर घटती का इतिहास था। यह हमें स्वीकार करना होगा कि वह उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्होंने अपने भाषणों और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखों-द्वारा उस समय के युवकों पर बहुत जादू कर दिया था।

अम्बिकाचरण मुजुमदार

बाबू अम्बिकाचरण मुजुमदार एक वकील थे और १९१६ में कांग्रेस के सभापति बनने तक निरन्तर कार्य करते रहे। उनकी वक्तृता की उड़ान बहुत कम वक्ताओं में मिलती है। उन्होंने 'इंण्डियन नेशनल इवाल्युशन' नामक एक प्रसिद्ध और सुन्दर किताब भी लिखी है।

भूपेन्द्रनाथ वसु

भूपेन्द्रनाथ वसु कलकत्ते के एक सफल सालिसिटर थे। उनकी प्रैक्टिस खूब

चलती थी। यह बड़ी खुशी से राजनैतिक कार्यों में समय दिया करते थे। यह एक बड़े अच्छे वक्ता थे। इनकी वक्तृत्व कला बहुत ऊँची कोटि की थी। भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करने में यह बड़े कुशल थे और अपना काम बड़ी योग्यता से संपादन करते थे। १९१४ में मदरास-कांग्रेस का सभापति-पद उन्हें दिया गया था। भारत की स्व-शासन की मांग के प्रसंग में उन्होंने कहा था—"मौज उड़ानेवालों के दिन गये। संसार समय के साथ-साथ बड़े जोर से आगे बढ़ रहा है। यूरोप के देशों में युद्ध जोरों से चल रहा है। यह युद्ध एक के बहुतों पर, या एक जाति के दूसरी जाति पर के मध्यकालीन शासन के अंतिम अवशेषों को भी ठोकर मार देगा। पश्चिम के द्वार से पूर्व के शान्त समुद्रों में विशाल जीवन की जो लहर एक बड़े भारी प्रवाह की तरह बह रही है, उसे अब वापस ले जाना गैरमुमकिन है। यदि भारत में अंग्रेजी शासन का अर्थ नौकरशाही का गोला-बारूद ही है, यदि इसका अर्थ पराधीनता और हमेशा का संरक्षण है, भारत की आत्मा पर बढ़ता हुआ भारी भार ही है, तो यह सभ्यता का शाप और मनुष्यता पर कलंक ही है।"

मौ० मज़हरुलहक़

मौ० मज़हरुलहक़ कांग्रेस के, शारीरिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से, एक महारथी थे। वह पक्के राष्ट्रवादी थे और बिहार में कांग्रेस के बड़े भारी समर्थक थे। साम्प्रदायिकता से उन्हें चिढ़ थी। कांग्रेस के २५ वें अधिवेशन में (१९१०) जो इलाहाबाद में हुआ था, श्री जिन्नाह ने साम्प्रदायिक-निर्वाचन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया, उसका आपने समर्थन किया था। इस अवसर पर आपने एक योग्यता-पूर्ण भाषण दिया, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में मिल जाने की प्रेरणा की। यह याद रखने की बात है कि मिण्टो-मॉर्ले-शासन-सुधार उस समय अमल में आये ही थे, जिनमें पहले-पहल कौंसिलों के लिए साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व की योजना का समावेश किया गया था। मुसलमानों से, जो कि अपनी कामयाबी और सफलता के लिए फूलकर कुप्पा हो रहे थे, यह कहना, जैसा कि मौ० मजहरुल हक ने कहा, बहुत ऊँचे दर्जे की ईमानदारी और साहस का ही काम था, कि उन्हें जो कामयाबी मिली दरअसल वह दोनों महान् जातियों की सम्मिलित भलाई के लिए बड़ी घातक है; देश को जरूरत इस बात की है कि दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग बन्द दायरों में न रहकर एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करें।

१९१४ में जब कांग्रेस का शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया तो मौ० मजहरुलहक भी

उसके सदस्य बनाये गये। इसके बाद आपने कांग्रेसी मामलों में कोई क्रियात्मक रस नहीं लिया, लेकिन रहे अन्त समय तक पक्के राष्ट्रवादी। जीवन के आखिरी दिनों में आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हुआ; और शुद्ध राष्ट्रीयता में साधुता ने मिलकर सोने में सुगन्ध कर दी। वस्तुतः आपका आखिरी जीवन एक फकीर का जीवन था।

महादेव गोविन्द रानडे

महादेव गोविंद रानडे, जो आमतौर पर जस्टिस रानडे के नाम से मशहूर हैं, कांग्रेस में एक उच्च शिखर के समान थे। बहुत बारीकी में उतरें तब तो उन्हें कांग्रेसी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह बम्बई-सरकार के न्याय-विभाग के एक उच्चाधिकारी थे, लेकिन बरसों तक वह पीछे से कांग्रेस का सूत्र-संचालन करनेवाली शक्ति बने रहे थे।

कांग्रेस-आन्दोलन को उन्होंने स्फूर्ति प्रदान की। उनका ऊँचा कद, चेहरे का मूर्तिवत् बनाव और उनका अपना रंग-ढंग भिन्न-भिन्न अधिवेशनों में उन्हें स्पष्ट रूप से पहचानने में सहायक होते रहे हैं। अर्थशास्त्री और इतिहासज्ञ के रूप में वह स्मरणीय हो गये हैं और 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' एवं 'भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध' के रूप में वह राष्ट्र को अपने पाण्डित्य एवं विद्वत्ता की विरासत छोड़ गये हैं। समाज-सुधार में उनकी खास तौर पर गति थी और बरसों तक समाज-सुधार-सम्मेलन, जो कांग्रेस की एक सहायक-संस्था के रूप में बना था, उनके पोष्य-पुत्र के समान रहा है। १८९५ में, पूना-अधिवेशन के समय, जब इस बात पर मतभेद पैदा हुआ कि कांग्रेस समाज-सुधार के मामलों और समाज-सुधार-सम्मेलन से सम्बन्ध रख सकती है या नहीं, तो, जैसा कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया है, जस्टिस रानडे ने सहिष्णुता और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से मामला सुलझा लिया। प्लेग की महामारी के समय जस्टिस रानडे ने राष्ट्र की जो सेवा की उसका अनुमान नहीं किया जा सकता; और न उस सबके वर्णन का अभी समय ही आया है। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक अथक रूप से समाज-सुधार और कांग्रेस का काम करते हुए, १९०१ में, अपनी ऐसी स्मृतियां छोड़कर रानडे हमसे विदा हो गये जो सदैव हमारी सहायता करती रहती हैं और जिनके कारण उनके प्रति सदा हमारी श्रद्धा बनी रहेगी।

पं० बिशननारायण दर

पं० बिशननारायण दर भी उन प्राचीन समय के राजनीतिज्ञों में से हैं,

जिन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी निष्ठा से कांग्रेस के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

१९११ में उन्हें कलकत्ता-कांग्रेस का सभापति बनाया गया। इस कांग्रेस के सभापति मि० रैम्जे मैकडानल्ड होनेवाले थे, लेकिन पत्नी के देहान्त के कारण उन्हें भारत से जाना पड़ गया और श्री विशननारायण दर अकस्मात् ही सभापति बना दिये गये। वह ऐसे समय कांग्रेस के सभापति बने थे, जब बंग-भंग के रद कर दिये जाने से नौकरशाही को बहुत बड़ी चोट पहुँची थी।

विशननारायण दर ने नौकरशाही का जो वर्णन किया है वह जहां सुन्दर चित्र है, वहां उतना ही तीक्ष्ण भी है :—

"हमारे सब दुःखों का मूल कारण यह है कि हमारी नई महत्त्वाकांक्षाओं और आशाओं के प्रति सरकार की सहानुभति-शून्य और अनुदार भावना बढ़ती जा रही है। यदि इसमें सुधार न किया गया, तो भविष्य में भयंकर आपत्तियां आये बिना न रहेंगी। जब नवीन भारत धीरे-धीरे उन्नति कर रहा है, तब सरकार का रुख भी मन्दा होता जा रहा है और एक नाजुक हालत पैदा हो गई है। एक तरफ पढ़े लिखे लोग नये राजनैतिक अधिकारों का नया ज्ञान और नई चेतना प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन एक ऐसे शासन-पद्धति की बेड़ियों और हथकड़ियों से जकड़े जा रहे हैं जो पहले के लिए कभी अच्छी होगी, अब तो वह अप्रचलित है, और दूसरी तरफ सरकार उसी रफ्तार पर जा रही है। वह न अपने स्वार्थों को छोड़ती है, न अपनी कठोर शासन की आदतों को, और न पुराने तथा निरंकुश अधिकार की पुरानी प्रथाओं को। शिक्षा और ज्ञान को वह संदेह की दृष्टि से देखती है, और किसी भी नये परिवर्तन के वह विरुद्ध है। जातीय पृथकता के कारण रिआयत से वह दूर भागती है। वह उसी-शासन विधान से चिपटे हुए हैं, जिसके मातहत उसने अबतक अधिकार व धन का मजा लिया है, लेकिन जो आज के नैतिक उदार आदर्शों के कतई खिलाफ है।"

रमेशचन्द्र दत्त

गत शताब्दी के अन्त की कांग्रेस-राजनीति में श्री रमेशचन्द्र दत्त एक और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। अपने जीवन-क्रम में कमिश्नर के ऊँचे पद तक चढ़ चुके थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया था। आई० सी० एस० के अफसर रहते हुए लम्बे अरसे तक उन्होंने सार्वजनिक प्रश्नों पर जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, उसका लाभ कांग्रेस को पहुँचाया। उनका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी

और ब्रिटिश कारखानों की खुली प्रतिस्पर्द्धा के कारण ग्रामीण धंधों का विनाश ही दुर्भिक्ष के कारण हैं। उन्होंने बहुत खेद प्रकट करते हुए कहा कि जिस देश ने ३,००० साल पहले ग्राम-शासन (पंचायतों) का संगठन किया था आज उसीपर पुलिस, जिला, अफसरों तथा जनता के बीच की घृणित शृंखला-द्वारा शासन हो रहा है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नों पर वह एक प्रमाण समझे जाते थे। १८९० में लखनऊ-कांग्रेस के अधिवेशन के वह सभापति बने थे। "अखबारों और सभाओं में स्वतन्त्र विचार के दमन की अपेक्षा राजद्रोह को उत्तेजन देने का और कोई अच्छा उपाय नहीं है" अपने इस वक्तव्य के कारण वह स्मरणीय हो गये।

एन० सुब्बाराव पन्तुलु

श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलु भी कांग्रेस के इन पूज्य बुजुर्गों में से एक हैं। वह आज ८० साल की उमर में भी सार्वजनिक कार्यों में उत्साह दिखाते हैं। उनका कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत शुरू में, उसके जन्म के साथ ही, हो गया था। वह कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद, १८८८) में सम्मिलित हुए थे और बोले भी थे। तब से वह कांग्रेस-मंच पर नमक-कर, न्याय और शासन-कार्य, भारतीयों का कार्य-कारिणी में लिया जाना, जूरी से मुकदमों का फसला और वकीलों की स्थिति आदि विभिन्न प्रस्तावों को पेश करते, अनुमोदन और समर्थन करते हुए मशहूर हो गये थे। जब कि उनके समकालीन कांग्रेसियों को सरकारी खिताब या पद मिल रहे थे, उन्होंने उसे लेने की कभी परवा नहीं की। दूसरी ओर उनके प्रान्त ने १८९८ में उन्हें कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष चुना और १९१४, १५, १६ व १७ में कांग्रेस उन्हें प्रधानमन्त्री चुनती रही। उन्होंने अपने कार्य-काल में अपने खर्च पर हिन्दुस्तान का दौरा करने और कांग्रेसी मामलों में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने का एक आदर्श रक्खा।

लाला मुरलीधर

हम पंजाब के लाला मुरलीधर का उल्लेख करना नहीं भूल सकते, जो जमानत पर रिहा होकर जेल से सीधे कलकत्ते के दूसरे अधिवेशन (१८८६) में शरीक हुए थे। उन्हें बिना गवाही के सजा दे दी गई थी, क्योंकि उन्हींके शब्दों में, "मुझे राजनैतिक आन्दोलनकारी खयाल किया जाता है, क्योंकि मैं अपनी राय रखता हूँ, और जो सोचता हूँ, बेधड़क कह देता हूँ।" इसी अधिवेशन में डेराइस्माइलखां के लाला मलिक भगवानदास ने पहले-पहल उर्दू में भाषण दिया था।

सच्चिदानन्द सिंह

श्री सच्चिदानंद सिंह को सबसे पहले १८९९ की लखनऊ-कांग्रेस (१५ वें अधिवेशन) में लोगों ने देखा। उसीमें उन्होंने न्याय और शासन-विभाग के पृथक्करण के प्रस्ताव पर भाषण भी दिया। लाहौर के अधिवेशन में इस प्रश्न पर बोलते हुए उन्होंने कहा—"सरकार को जनता के प्रेम पर निर्भर रहना चाहिए और वह प्रेम केवल एक बात से मिल सकता है, कि न्याय का वरदान जनता को दिया जाय। हम आज का न्याय—आधा दूध और आधा पानी—अशुद्ध न्याय नहीं चाहते। हम तो सच्चा और ठीक ब्रिटिश-न्याय चाहते हैं।" १७ वें अधिवेशन में 'पुलिस-सुधार' पर वह बोले। २० वें अधिवेशन में उन्होंने इस बात का समर्थन किया था कि १९०५ में आम चुनाव होने से पहले इंग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। उसी अधिवेशन में उन्होंने दादाभाई नौरोजी, सर हेनरी कॉटन और मि० जोन जार्डिन को पार्लमेण्ट का सदस्य चुनने के अनुरोध का प्रस्ताव पेश किया था। १९०८ की पहली 'नरम' कांग्रेस में श्री सिंह क्रियाशील सदस्य के रूप में उपस्थित थे। कलकत्ता-कांग्रेस में श्री सिंह ने युक्तप्रान्त के लिए एक गवर्नर और कार्यकारिणी की मांग पेश की। वह फिर मदरास में १९१४ में शामिल हुए। इस कांग्रेस में उन्हें लन्दन में गये हुए कमीशन के सदस्य के नाते अच्छा काम करने पर धन्यवाद दिया गया था। इस शिष्ट-मण्डल में उनके अतिरिक्त सर्वश्री भूपेन्द्रनाथ वसु, जिन्नाह, समर्थ, मजहरुल हक, माननीय शर्मा और लाला लाजपतराय थे।

कांग्रेस में बोलनेवाली पहिली महिला श्रीमती कादम्बिनी गांगुली थीं। उन्होंने १९०० के १६ वें अधिवेशन में सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश किया था।

इनके अलावा और भी बीसियों अच्छे देश-सेवक हैं—जिनमें बहुत से स्वर्गवासी हो चुके हैं और कुछ हमारे बीच मौजूद हैं—जिन्होंने अपनी तीव्र लगन, सेवा और त्याग के द्वारा राष्ट्रीयकार्य में सहायता पहुँचाई है। आगे आनेवाली पीढ़ी उनकी सदा ऋणी रहेगी।

: १ :

फिर मेल की ओर—१९१५

श्रीमती बेसेण्ट रंगमंच पर

भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में १९१५ का वर्ष एक नये युग का श्रीगणेश करता है। यहां यह बात अवश्य ही स्मरण रखनी चाहिये कि जापान ने रूस पर जो विजय प्राप्त की थी उससे, इस शताब्दी के प्रारम्भ में, एशिया की जातियों में अपनी वीरता और क्षमता के सम्बन्ध में आत्मविश्वास की एक नवीन भावना जाग्रत हो गई थी। इसी प्रकार गत महायुद्ध के जमाने में, १९१४ की कड़ाके की सर्दी में, फ्लैण्डर्स और फ्रान्स के मैदानों में, जर्मन-सेनाओं के आक्रमणों का भारतीय फौजों ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकाबला किया उससे एशिया और यूरोपीय देशों में भारतवासियों की खासी धाक बैठ गई थी। पश्चिमी देशों की दृष्टि में तो वे इतने ऊँचे उठ गये थे जितने अभी तक कभी नहीं थे। भारतीय फौजों द्वारा युद्ध में की गई सेवाओं की इस सराहना का भारतवासियों के मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक असर पड़ा वह यह था कि कुछ भारतवासियों के हृदय में तो पुरस्कार की और कुछ के हृदय में अपने अधिकारों की भावना जाग्रत हो गई थी। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पहले दल के लोगों में थे और श्रीमती बेसेण्ट दूसरे दल के लोगों में। क्योंकि भारतीय फौजों को विदेशों के मैदान में इसी आश्वासन पर लेजाया गया था कि पार्लमेण्ट भारत के लिए उचित पुरस्कार स्वीकृत कर देगी। वैसे तो मि० ब्रैडला के समय से ही श्रीमती बेसेण्ट का सारा जीवन गरीबों और भारतवासियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ, लेकिन कांग्रेस में वह १९१४ में ही सम्मिलित हुईं। उन्होंने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधन, नया दृष्टिकोण और संगठन का एक बिलकुल ही नूतन ढंग लेकर कांग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका व्यक्तित्व तो पहले से ही सारे जगत् में महान् था। पूर्व और पश्चिम के देशों में, नये और पुराने गोलार्द्ध में, लाखों की संख्या में उनके भक्त एवं अनुयायी

थे। इसलिए यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल भक्तों और अनुयायियों और अथक कार्य-शक्ति के होते हुए उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान किया।

१९१५ की स्थिति

१९१५ में देश की वास्तविक अवस्था क्या थी? १९ फरवरी १९१५ को गोखले का स्वर्गवास हो चुका था। सर फिरोजशाह मेहता भी हमारी दृष्टि से ओझल हो चुके थे। दीनशा वाचा पर वृद्धावस्था-जन्य निर्बलतायें अपना अधिकार जमाती चली जा रही थीं, जैसा कि उन्होंने १९१५ की बम्बई की कांग्रेस में कहा था। अलावा इसके वह एक बहुत बड़े विद्वान् थे, और मंत्रीपद के लिए ही बहुत उपयुक्त थे, परन्तु ऐसे सेनानायक नहीं थे जो अपनी फौज को एक विजय के बाद दूसरी विजय के लिए प्रोत्साहित एवं संचालित करता है। सर नारायण चन्दावरकर जजी से फारिग हो चुके थे। राजनैतिक क्षेत्र में वह एक समाप्त हो चुकी हुई शक्ति के समान थे। हेरम्बचन्द्र मैत्र, मुधोलकर तथा सुब्बाराव पन्तुलु कांग्रेस की सेना में एक अच्छे लेफ्टिनेण्ट, कैप्टन तथा कर्नल थे; इससे अधिक कुछ नहीं। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी भी अनुकूल न थे।

इस प्रकार कांग्रेस का इस समय कोई सेनापति न था। लोकमान्य तिलक जून १९१४ को मण्डाले से लगभग अपनी पूरी सजा काट लेने के बाद रिहा हुए थे। श्रीनिवास शास्त्री ने, 'भारत-सेवक-समिति' के प्रथम सदस्य होने के कारण, गोखले का स्थान तो अवश्य लिया था; लेकिन वह सदैव रहे फिसड्डी ही। क्योंकि एक तो उनका अपना आन्तरिक स्वभाव, दूसरे उनकी उग्र प्रवृत्तियां और नरम विश्वास, तीसरे 'सिद्धान्त' और 'उपयोगिता', 'अन्तिम' और 'तात्कालिक' का उनके हृदय में सदैव संघर्ष होता रहता है। इसलिए, यद्यपि वह भिड़ बैठने की मनोवृत्ति की प्रशंसा करते हैं फिर भी खुद सदैव पीछे रहना पसन्द करते हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय की एसी स्थिति नहीं थी कि वह नरम मार्ग पर कांग्रेस का नेतृत्व करते। न उनमें वह शक्ति एवं मानसिक दृढ़ता ही थी जिससे कि वह अपने मार्ग पर अग्रसर होते। गांधीजी तो उस समय देश में आये ही थे। हम यदि ऐसा कहें तो अनुचित न होगा कि उन्होंने इस समय तक देश में सार्वजनिक जीवन का निश्चित ढंग पर श्रीगणेश भी नहीं किया था। वह अपने राजनैतिक गुरु गोखले की नसीहत के अनुसार चल रहे थे। वह इस समय चुपचाप देश की अवस्था का अध्ययन कर रहे थे। लाला

लाजपतराय इस समय की देश की और विशेषकर अपने प्रांत की अवस्था से बड़े खिन्न हो चुके थे और अमरीका में देश-निकाले का जीवन व्यतीत कर रहे थे। (सत्येन्द्र-प्रसन्न सिंह (बाद में लार्ड) जिन्होंने १९१५ की बम्बई की कांग्रेस का सभापतित्व किया था, इस समय नई धारा के साथ बिलकुल मेल नहीं खा रहे थे। इसीलिए बम्बई-कांग्रेस के बाद उन्होंने देश की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं ली। इस प्रकार देश का नेतृत्व प्राय: राष्ट्र के हाथ से निकलकर नौकरशाही के हाथों में जा रहा था। नरम दलवालों के हाथ से शक्ति निकल चुकी थी। राष्ट्रीयदल अभीतक अपनेको सम्हाल न पाया था। श्रीमती बेसेण्ट का १९१४ व १५ का दोनों दलों को एक करने का उद्योग असफल हो चुका था।

१९१५ की बम्बई कांग्रेस

१९१५ की कांग्रेस केवल नरमदलवालों की ही थी। कांग्रेस के ऐन मौके पर, अर्थात् नवम्बर मास में सर फिरोजशाह मेहता का स्वर्गवास हो गया। सर सत्येन्द्र-प्रसन्न सिंह, जिनकी योग्यता और रुतबे की सर्वत्र धाक थी, इस कांग्रेस के सभापति चुने गये थे। वैसे कांग्रेस के साथ उनका सम्पर्क तो बहुत ही थोड़ा रहा था, लेकिन उनके सभापतित्व से बम्बई कांग्रेस को वह सारी प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त हुई जोकि सरकार के भूतपूर्व लॉ-मेम्बर के नाम के साथ जुड़ी रहती है।

लेकिन बम्बई की सन् १९१५ वाली कांग्रेस के प्रति जनता के उस अनुराग के चिन्ह फिर से दिखाई पड़ने लगे जो सूरत-काण्ड के बाद विलीन हो गया था। लखनऊ-कांग्रेस और उसके बाद तो जनता की दिलचस्पी इतनी बढ़ गई कि उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। बम्बई की कांग्रेस में २२५९ प्रतिनिधि आये थे, और विभिन्न विषयों पर अनेक प्रस्ताव पास हुए थे। पहले चार प्रस्ताव तो शोक-प्रकाश के थे, जिनमें तीन प्रस्ताव तो कांग्रेस के तीन भूतपूर्व राष्ट्रपतियों के सम्बन्ध में थे—अर्थात् गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता और सर हेनरी कॉटन। चौथा शोक-प्रस्ताव मि० केअरहार्डी की मृत्यु के सम्बन्ध में था। यह महानुभाव भारत के बड़े मित्र थे। पांचवें प्रस्ताव-द्वारा जनता की राजभक्ति प्रकट की गई थी। छठे प्रस्ताव-द्वारा कांग्रेस की ओर से उस उदार हेतु में दृढ़ विश्वास प्रकट किया गया था जिसे ग्रेट-ब्रिटेन तथा उसके मित्र-राष्ट्र महायुद्ध करके सिद्ध करने जा रहे थे। साथ ही ब्रिटिश जल-सेना ने जो विशेष सफलता प्राप्त की थी उसपर संतोष प्रकट किया गया था। सातवें प्रस्ताव-द्वारा लॉर्ड हार्डिंग का, जो कि उस समय वाइसराय

थे, शासन-काल वढ़ा देने के लिए प्रार्थना की गई थी। आठवें प्रस्ताव में कांग्रेस-द्वारा पहले पास किये गये तमाम प्रस्तावों की पुष्टि की गई थी, जिनमें भारतीयों को सेना में कमीशन देने के औचित्य और न्याय का, भारतीय सैनिकों को तत्कालीन सैनिक स्कूल तथा कालेजों में शिक्षा देने की व्यवस्था का तथा भारत में नये स्कूल-कालेज खोलने का जिक्र किया गया था। इस प्रस्ताव में इस वात की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया था कि भारतीयों को सेना में, भारतीय जनता के अधिकारों के प्रति उचित सम्मान रखते हुए, जात-पांत के विना किसी भेद-भाव के, भर्त्ती किया जाय तथा स्वयंसेवक वनाया जाय। नवें प्रस्ताव द्वारा १८७८ के आर्म्सएक्ट के प्रति, जिसके कारण भारतीय जनता पर अनुचित लाञ्छन लगता था, नाराजगी जाहिर की गई। दसवें में दक्षिण अफ्रीका और कनाडा में प्रचलित उन कानूनों के लिए, जो भारत-वासियों से सम्वन्ध रखते थे, दुःख प्रकट किया गया। ग्यारहवें प्रस्ताव द्वारा वाइसराय को उनकी उस दूरदर्शितायुक्त सहायता के लिए धन्यवाद दिया गया, जो कि उन्होंने वड़ी कौंसिल के उस प्रस्ताव के समर्थन में दी थी, जिसमें कि शाही परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियों-द्वारा भारत के प्रतिनिधित्व की मांग की गई थी। इसी प्रस्ताव में सरकार से प्रार्थना भी की गई थी की वड़ी कौंसिल को कम-से-कम दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार अवश्य दिया जाय। वारहवें प्रस्ताव में युक्तप्रांत में कार्यकारिणी वनाने की मांग को दोहराया गया था। तेरहवें में कुली-प्रथा को नष्ट करने और चौदहवें में न्याय-विभाग और शासन-विभाग को पृथक् कर देनेवाली पुरानी मांग को दोहराया गया था। १५वें में पंजाव, वर्मा तथा मध्यप्रान्त में ऊँचे दर्जे की हाईकोर्ट स्थापित करने की मांग की गई थी। १६ वें और १७ वें में स्वदेशी-आन्दोलन का समर्थन तथा प्रेस-एक्ट जारी रखने का विरोध किया गया था। १८ वें प्रस्ताव में इस वात पर जोर दिया गया था कि भारतीयों के हित में यह वात जरूरी है कि पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता और विशेष कर आयात-निर्यात तथा उत्पत्ति-कर-सम्वन्धी पूर्ण अधिकार भारत-सरकार को सौंप दिये जायँ। १९ वां प्रस्ताव वहुत ही महत्त्वपूर्ण था। उसमें भारत को ऐसे ठोस सुधारों को देने की मांग की गई थी, जिनमें जनता को शासन पर वास्तविक नियंत्रण मिले और वह इस रूप में कि प्रान्तीय स्वाधीनता दी जाय, जिन प्रान्तों में कौंसिलें हैं उन्हें सुधारा और वढ़ाया जाय, उन प्रान्तों में उनकी स्थापना की जाय जहां वे नहीं हैं, जिन प्रान्तों में कार्यकारिणी हों वहां उनकी पुनर्रचना की जाय, उन प्रान्तों में उनकी स्थापना की जाय जहां वे नहीं हैं, इण्डिया-कौंसिल या तो तोड़ दी जाय और या उसमें सुधार कर दिया जाय और

एक उदार ढंग का स्थानिक-स्वराज्य दिया जाय। इसी प्रस्ताव में महासमिति को आदेश दिया गया था कि वह सुधारों की एक योजना तैयार करे और एक ऐसा कार्यक्रम बनावे जिसमें शिक्षा देने और प्रचार करने का कार्य लगातार होता रहे। इसी प्रस्ताव में महासमिति को यह अधिकार भी दिया गया था कि इस विषय में मुस्लिम-लीग की कमिटी से भी परामर्श करे और इस विषय में अन्य सारी आवश्यक कार्रवाई करे। बीसवें प्रस्ताव में यह कहा गया था कि राज्य को भूमिकर कितना लेना चाहिए इसके लिए एक उचित और निश्चित सीमा नियत कर देनी चाहिए, और स्थायी बन्दोबस्त करके किसानों को भूमि पर सर्वत्र स्थायी अधिकार दे देना चाहिए, चाहे कहीं रैयतवारी प्रथा हो या जमींदारी। यदि स्थायी बन्दोबस्त न हो तो कम-से-कम ६० साला बन्दोबस्त कर ही देना चाहिए। २१ वें प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि देश के उद्योग-धन्धों की तरक्की के लिए कार्रवाई की जाय, औद्योगिक तथा दस्तकारी की शिक्षा देने की व्यवस्था हो, आयात-निर्यात-सम्बन्धी कर लगाने की भारत को आर्थिक स्वतंत्रता दी जाय, उन सारी अनुचित और आवश्यक रुकावटों को दूर कर दिया जाय जो सूती माल के ऊपर उत्पत्ति-कर के रूप में यहां लगी हुई हैं, और रेल के उन भेदभावपूर्ण दरों को हटा दिया जाय जिनसे विदेशी माल को भारत भेजने में प्रोत्साहन मिलता है, जिसके फलस्वरूप देशी-व्यापार और उद्योग-धन्धों का गला घुट रहा है। २२ वें प्रस्ताव में इंग्लैण्ड के इण्डियन स्टूडेंट्स डिपार्टमेंट से नापसन्दगी जाहिर की गई और इस बात पर असन्तोष प्रकट किया गया कि ग्रेट-ब्रिटेन के संयुक्त-राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय विद्यार्थियों को कम संख्या में दाखिल करने की प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ रही है और भर्ती कर लेने के बाद उनके साथ भेद-भाव का और अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९१५ की कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास हुए वे उन प्रस्तावों का सार या खुलासा-मात्र है जो कांग्रेस के जन्म से ले कर समय-समय पर कांग्रेस में पास होते रहे थे।

स्वशासन के प्रश्न के सम्बन्ध में जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, १९१५ की कांग्रेस ने अपने १९ वें प्रस्ताव-द्वारा यह आदेश दिया कि महासमिति मुस्लिम-लीग की कार्य-कारिणी से परामर्श करे और स्वशासन की एक योजना तैयार करे।

१९१५ की एक बड़ी दिलचस्प घटना यह है कि गांधीजी विषय-समिति के सदस्य नहीं चुने जा सके। इसलिए सभापति ने उनको अपने अधिकार से इस समिति में नामजद किया था।

बम्बई-कांग्रेस की एक सफलता यह भी थी कि उसने कांग्रेस के विधान में ऐसा महत्त्वपूर्ण संशोधन कर दिया था, जिसके द्वारा राष्ट्रीय दल के लोग भी कांग्रेस के प्रतिनिधि चुने जा सकते थे। क्योंकि यह तय हो गया था कि "उन संस्थाओं द्वारा बुलाई गई सार्वजनिक सभायें कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुन सकेंगी जिनकी स्थापना १६१५ से दो वर्ष पूर्व हो चुकी हो और जिनका उद्देश वैध उपायों से ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना हो।" लोकमान्य तिलक ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने तुरन्त ही इस बात की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वह और उनका दल इस आंशिक रूप में खुले द्वार से कांग्रेस में प्रवेश करने को सहर्ष तैयार है।

: २ :

संयुक्त कांग्रेस–१९१६

लो० तिलक की होमरूल लीग

नये वर्ष का श्रीगणेश, पिछले वर्ष की अपेक्षा, कांग्रेस-कार्य के लिए और भी शुभ समय, परिस्थिति और वातावरण में हुआ। इधर देश बड़े-बड़े धक्कों के कारण और भी असहाय हो गया था। क्योंकि १९१५ में ही गोखले और मेहता जैसे महारथी स्वर्गारोहण कर चुके थे। लोकमान्य के लिए तो अभी तक कोई स्थान ही नहीं था। क्योंकि बम्बई में जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उन्हें पूरे साल-भर तक इन्तजार करना था। इसीके बाद वह कांग्रेस में आ सकते थे और उसे प्रभावित कर अपने ढंग से चला सकते थे। अतः उन्होंने अपने होमरूल-लीग के विचार को कार्य-रूप देने का निश्चय किया। इस नाजुक समय में वह अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता, सेवाओं और त्याग के कारण नेतृत्व करने के लिए पूर्णतः योग्य थे। उन्होंने कांग्रेस को एक शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड भेजने के लिए राजी करने की काफी कोशिश की, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। तब उन्होंने २३ अप्रैल १९१६ को अपनी होमरूल-लीग की स्थापना की। इसके ६ मास बाद श्रीमती बेसेण्ट ने भी अपनी होमरूल-लीग खड़ी की।

लेकिन नौकरशाही तो उनकी कट्टर शत्रु थी। जब लोकमान्य विद्यार्थियों को डिफेन्स फोर्स (रक्षक-सेना) में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे उस समय पंजाब-सरकार की ओर से उनके लिए यह हुक्म निकला कि वह देहली और पंजाब के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते।

उन्होंने अपनी होमरूल-लीग के लिए कांग्रेस के क्रीड को स्वीकार कर लिया। जान पड़ता है, इससे श्री शास्त्री को बहुत प्रसन्नता हुई। १९१६ में उनकी अवस्था ६० वर्ष की हो गई थी। इस षष्ठि-पूर्त्ति के अवसर पर उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की गई। इसे लोकमान्य ने राष्ट्र-कार्य के लिए अर्पण कर दिया। सरकार ने जितना ही उन्हें दबाया उतने ही वह ऊपर उठे और अन्त में "उन्हें जेल भेजने की

अपेक्षा खामोश करना ही उचित समझ कर" उनसे नेकचलनी की २० हजार रुपये की जमानत मांगी गई। लेकिन ९ नवम्बर १९१६ को हाईकोर्ट ने मजिस्ट्रेट का फैसला रद कर दिया। इससे लोकमान्य की लोक-प्रियता और भी वढ़ी। उनका आदर हुआ, मान मिला, स्वागत हुआ और जहां कहीं वह गये थैलियां भेंट हुईं। लेकिन उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। इसका फल यह हुआ कि वह भारत में विस्तृत प्रचार-कार्य नहीं कर सकते थे, जिसके लिए वड़ी भारी शक्ति की आवश्यकता थी। उन्होंने लोगों की भावनाओं को जाग्रत करने और उनके अन्दर एक प्रकार की विजली-सी भर देने के महत्त्वपूर्ण कार्य को एक दूसरे व्यक्ति के लिए छोड़ दिया, जो उम्र में उनसे वड़ी थीं, जिनमें एक विद्युत-शक्ति थी और जो काम करते-करते कभी थकना नहीं जानती थीं।

यह थी दशा १९१६ में भारतवर्ष की जिसकी पुकार पर कोई ध्यान नहीं देता था और जिसे अपने लिए एक नेता ढूंढ़ निकालने की आवश्यकता थी। ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती वेसेण्ट ने रणांगण में पदार्पण किया। धार्मिक क्षेत्र से एक दम राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़ीं। थियोसोफी को छोड़ उन्होंने होमरूल को अपनाया। "न्यू इण्डिया" नामक एक दैनिक और इसके वाद "कामन-विल" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को लोक-प्रिय वनाने में उनका नम्वर प्रथम है। इसके लिए एक छोर से दूसरे छोर तक एक तूफान मचा दिया। वैसे १९१५ में ही "होमरूल फॉर इण्डिया लीग" की स्थापना पर विचार-विनिमय हो चुका था। लेकिन उसी समय इसकी स्थापना नहीं की गई थी। क्योंकि सोचा यह गया था कि अगर स्वराज्य के कार्य को स्पष्ट-रूप से उस वर्ष की कांग्रेस ही अपने हाथ में ले ले तो ठीक होगा।

हिन्दू मुस्लिम एकता

वम्वई-कांग्रेस ने कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन करने का जो आदेश दिया था वह यथा-विधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्ष की दो महान् जातियों में पूर्ण एकमत हो जाना। एक सम्मिलित कमिटी भी वनाई गई, जिसके सुपुर्द यह कार्य किया गया कि वह एक योजना तैयार करे और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पाने के उद्देश को शीघ्र ही फलीभूत करने के लिए अन्य सारे आवश्यक प्रवन्ध करे। यह तय हुआ था कि इस सम्मिलित कमिटी-द्वारा तैयार किया गया स्वराज्य का मसविदा लखनऊ में (१९१६) कांग्रेस और मुस्लिम-

लीग दोनों मिल कर पास करें। इसी सम्वन्व में २२,२३ और २४ अप्रैल १९१६ को इलाहावाद में पं० मोतीलाल नेहरू के निवास-स्थान पर, महा-समिति की वैठक में खूब वाद-विवाद हुआ था। महासमिति की इस वैठक में जो प्रस्ताव कच्चे तौर पर पास हुए थे उनपर मुस्लिम-लीग की कौंसिल और महासमिति की सम्मिलित वैठक में जो अक्तूवर १९१६ को कलकत्ते में हुई थी, विचार किया गया और हिन्दू-मुस्लिम-एकता-सम्वन्धी समझौता तय हो गया। केवल वंगाल और पंजाव के प्रतिनिधियों की संख्या की समस्या हल नहीं हुई थी। इसका अन्तिम-निर्णय लखनऊ अधिवेशन पर छोड़ दिया गया। सम्मिलित कमिटी ने कलकत्ते में जो प्रस्ताव पास किये थे, उन्हें लखनऊ-कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। राजनीतिज्ञों के आन्तरिक क्षेत्र को कांग्रेस का अधिवेशन होने तक उस वात का पता चल गया था जो वाद को "नाइण्टीन मेमोरेण्डम" (१९ का आवेदनपत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ (परिशिष्ट १) और जो असेम्वली के १९ सदस्यों के हस्ताक्षर से वाइसराय के पास भेजा गया था (नवम्वर १९१६)। आवेदन-पत्र में जो योजना थी उसमें भारत के लिए स्व-शासन-प्रणाली के मूल सिद्धान्त समाविष्ट थे। यह विश्वास किया जाता है कि यह आवेदन-पत्र इसलिए भेजा गया था, क्योंकि इसपर हस्ताक्षर करनेवाले सदस्यों को यह सुराग लगा था कि भारत-सरकार ने कुछ ऐसे प्रस्तावों का एक खरीता विलायत भेजा है जो वस्तुतः प्रतिगामी थे।

जाहिर है कि श्रीमती वेसेण्ट, कांग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था उससे सन्तुष्ट नहीं थीं। कांग्रेस की व्रिटिश-कमिटी निस्सन्देह इंलैण्ड में अपना काम कर रही थी। लेकिन वह वस्तुतः एक प्रकार से, उसीके शव्दों में कहें तो, सिर्फ निगरानी रखती थी। श्रीमती वेसेण्ट एक तेजतर्रार और जीती-जागती संस्था चाहती थीं। इसीलिए उन्होंने १९१४ की मदरास-कांग्रेस के स्व-शासन-सम्वन्धी प्रस्ताव के अनुसार १२ जून १९१६ को लन्दन में एक सहायक-होमरूल-लीग की स्थापना की। भारतवर्ष में तो निश्चित रूप से पहली सितम्वर १९१६ ई० को, मदरास के गोखले-हाल में उनकी होमरूल-लीग की स्थापना हुई थी। इस संस्था ने १९१७ भर धड़ाके से श्रीमती वेसेण्ट-द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह इस संस्था की तीन वर्ष के लिए अध्यक्ष चुनी गई थीं। लेकिन सवसे पहले होमरूल-लीग की स्थापना तो, जैसा कि पहले हम वता चुके हैं, २३ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक की थी, जिसका प्रधान कार्यालय पूना में था। दोनों के नाम में गड़वड़ न हो

इसलिए श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी होमरूल-लीग का नाम १९१७ में 'ऑल इंडिया होमरूल-लीग' रख दिया था।

लखनऊ कांग्रेस में लो० तिलक

लोकमान्य तिलक अपनी जनवरी की घोषणा के अनुसार १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उन्हें बम्बई प्रान्त से राष्ट्रीय विचार के लोगों की एक अच्छी खासी संख्या को लखनऊ के अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि बनाने में पूर्ण सफलता मिली। कांग्रेस के तत्कालीन विधान के अनुसार ऐसा था कि विषय-समिति में प्रत्येक प्रान्त के महासमिति के सदस्यों के अलावा उन्हीं की संख्या के बराबर सदस्य प्रत्येक प्रान्त से, अधिवेशन में सम्मिलित हुए प्रतिनिधियों द्वारा, चुने जायँ। लोकमान्य ने नरम-दलवालों के सामने विषय-समिति के चुने जानेवाले सदस्यों के नामों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रक्खा था वह उन लोगों ने जब स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने बम्बई के प्रतिनिधियों से जो सारे-के-सारे राष्ट्रीय विचार के थे, केवल अपने दल के लोगों को ही चुनवाने का निश्चय किया। अधिवेशन में विषय-समिति के सदस्यों के लिए दो-दो नाम एकसाथ पेश किये गये। अर्थात् एक नरम-दलवाले का तो दूसरा राष्ट्रीय दलवाले का। परन्तु हर बार राष्ट्रीय-दल का ही आदमी चुना गया। जब गांधीजी के नाम के मुकाबले में एक राष्ट्रीय-दल के आदमी का नाम रख दिया गया तो गांधीजी भी नहीं चुने जा सके। लेकिन लोकमान्य ने घोषणा कर दी कि गांधीजी चुन लिये गये।

लखनऊ की इस कांग्रेस के सभापति श्री अम्बिकाचरण मुजुमदार चुने गये थे। राष्ट्र के वह एक परखे हुए सेवक थे। राष्ट्रीय कार्यों के लिए उनका जो त्याग था उसके लिए लखनऊ की कांग्रेस का सभापति बनाकर उनका मान करना उसका उचित पुरस्कार ही था। उनका सभापति के पद से दिया गया भाषण वक्तृत्व-कला के लिहाज से वैसा ही था जैसा कि कांग्रेस में होने का उस समय तक रिवाज था। लखनऊ-कांग्रेस की सबसे बड़ी जो सफलता थी वह थी शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस-लीग-योजना की पूर्त्ति और हिन्दू-मुसलमानों में पूर्णतः समझौता और मेल हो जाना। (परिशिष्ट २)

कांग्रेस लीग योजना

कांग्रेस-लीग-योजना में मुख्य बात यह थी कि कार्यकारिणी कौंसिल के अधीन

रहे। लेकिन यहां यह बात भूल न जानी चाहिए कि स्वयं कौंसिल में $\frac{1}{5}$ भाग नामजद सदस्यों का रक्खा गया था। भारत-मंत्री की कौंसिल को तोड़ देने की बात थी। संक्षेप में उस समय के बाद की कांग्रेस की तेज रफ्तार की दृष्टि से यदि देखा जाय, तो उस योजना में विशेष सार नहीं था। फिर भी सरकार की हिम्मत उसे स्वीकार करने की नहीं थी। उसने इसके मुकाबले में स्वयं अपनी एक योजना तैयार की, जैसा कि हमें १९१७ के बाद की घटनाओं से मालूम होगा।

लखनऊ की कांग्रेस अपने ढंग की अद्वितीय थी। एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना तैयार हुई और कांग्रेस के दोनों दलों में जो कि १९०७ से पृथक्-पृथक् थे, एका हो गया। वास्तव में वह दृश्य देखते ही बनता था—लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासविहारी घोष और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एक ही साथ एक ही स्थान पर बराबर बैठे थे। श्रीमती बेसेण्ट भी अपने दो सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहब के साथ, जिनके हाथों में होमरूल के झण्डे थे, वहीं बैठी थीं। मुसलमानों में से राजा महमूदाबाद, मजहरुल हक और जिन्नाह साहब भी उपस्थित थे। गांधीजी और मि० पोलक भी वहीं विराजमान थे। कांग्रेस-लीग-योजना पर, जिसे कांग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम-लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी।

स्वीकृत प्रस्ताव

बम्बई-कांग्रेस की भांति लखनऊ-कांग्रेस में भी उपस्थिति अच्छी थी। अतिरिक्त दर्शकों की एक अच्छी खासी भीड़ थी, जिनके मारे सारा पण्डाल खचाखच भर गया था। इसमें प्रायः वे सब प्रस्ताव पास हुए जिन्हें कांग्रेस अबतक हर साल पास करती चली आ रही थी। कांग्रेस ने दो प्रस्ताव और पास किये थे। एक तो उत्तरी बिहार के गोरे जमींदारों और वहां की रैयत के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में था, जिसमें इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया गया था कि सरकार शीघ्र ही सरकारी तथा गैर-सरकारी कुछ सदस्यों की एक ऐसी सम्मिलित कमिटी नियुक्त करे जो बिहार के इन किसानों के कष्टों का पता लगावे। दूसरा विश्वविद्यालय-सम्बन्धी बिल था जो कि बड़ी कौंसिल में पेश किया जा चुका था।

उत्तरी बिहार के गोरे जमींदार और वहां की रैयत के सम्बन्ध का प्रस्ताव बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि इसके बाद ही गांधीजी किसानों के असन्तोप के कारणों का पता लगाने बिहार गये थे, जिसपर आगे के अध्यायों में प्रकाश डाला जायगा।

भारत के स्व-शासनवाले प्रस्ताव में यह घोपित किया गया था कि (अ) भारत की प्राचीन सभ्यता और शिक्षा में जो उन्नति हुई, और सार्वजनिक कामों में जो रुचि प्रकट की गई है उनको मद्देनजर रखते हुए सम्राट् की सरकार को चाहिए कि वह कृपापूर्वक इस आशय की एक घोपणा कर दे कि ब्रिटिश-नीति का यह लक्ष्य है कि भारत में शीघ्र ही स्व-शासन-प्रणाली को जारी करे, (व) इस दिशा में एक सीधा कदम इस प्रकार वढ़ाया जा सकता है कि कांग्रेस-लीग-योजना को सरकार स्वीकार कर ले और (स) साम्राज्य के पुर्नानिर्माण में भारतवर्प को अवीन-देशों की स्थिति से निकालकर साम्राज्य के वरावर के साझीदारों में, औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों की भांति, रक्खा जाय।

यहां यह वात भी गौर से देखने योग्य है कि लखनऊ-कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा-डिफेन्स आफ इंडिया एक्ट और १८१८ के ३रे रेग्युलेशन (बंगाल) के इतने विस्तृत रूप में प्रयोग को वहुत ही चिन्ताजनक दृष्टि से देखा था। इसी प्रस्ताव में इस वात पर जोर दिया गया था कि इंडिया डिफेन्स एक्ट के प्रयोग में, जो विशेप परिस्थितियों के लिए है, वही सिद्धान्त प्रयुक्त होना चाहिए जो संयुक्त-राज्य के देश-रक्षा कानून (डिफेन्स ऑफ रेल्म एक्ट) के अनुकूल हो।

कांग्रेस और लीग दोनों के एक समय में एक ही स्थान पर अधिवेशन करने की प्रथा का जो श्रीगणेश वम्वई में हुआ था वही लखनऊ में भी जारी रक्खा गया। लखनऊ के अधिवेशन में स्व-शासन-प्रणाली के लिए जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके वाद एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि सारे देश की कांग्रेस-कमिटियां तथा अन्य संगठित संस्थायें और कमिटियां शीघ्र ही एक देशव्यापी प्रचार का कार्य शुरू कर दें। इस आदेश का देश ने आश्चर्यजनक उत्तर दिया। एक प्रान्त ने दूसरे प्रान्त से इस प्रचार-कार्य करने में प्रतिस्पर्द्धा की। और मदरास ने तो श्रीमती वेसेण्ट के नेतृत्व में इस कार्य में सवसे अधिक वाजी मारी। कांग्रेस का लखनऊ-अधिवेशन कोई सुगमता से समाप्त नहीं हो गया। १८९९ में जव कांग्रेस का इसी स्थान पर १५ वां अधिवेशन होने जा रहा था उस समय अकथनीय कठिनाइयों का सामना-करना पड़ा था। लेकिन उस समय तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट-गर्वनर सर एन्योनी मैकडोनल्ड ने उन सव का अन्त कर दिया था। इसी तरह की एक घटना १९१६ में भी हुई थी। युक्तप्रान्तीय सरकार के मंत्रि-मण्डल ने कांग्रेस की स्वागत-समिति को एक चेतावनी भेजी थी कि भापणों में किसी प्रकार के भी राजद्रोहात्मक भावों को न आने दिया जाय। कांग्रेस के मनोनीत सभापति के पास भी वंगाल-सरकार-द्वारा

उसी की एक नकल भेज दी गई थी। स्वागत-समिति ने इस अकारण तौहीन का मुंह-तोड़ जवाव दे दिया था और सभापति ने उस पत्र की कोई वकत नहीं की थी। श्रीमती वेसेण्ट तो ठीक इन्हीं दिनों वरार और वम्बई की सरकारों से देश-निकाले की आज्ञा पा ही चुकी थीं। इसलिए स्वभावतः लखनऊ में भी कुछ ऐसी ही आशंकायें थीं। लेकिन सर जैम्स मेस्टन की वुद्धिमानी से इस तरह की कोई घटना नहीं घटी और इसीलिए कोई पेचीदगी पैदा नहीं हुई। इतना ही नहीं, अधिकारीवर्ग-सहित सर जैम्स मेस्टन और उनकी धर्मपत्नी कांग्रेस में पधारे थे। सभापति महोदय ने इनका जो स्वागत किया था उसका सर जैम्स ने उपयुक्त उत्तर भी दिया था।

: ३ :

उत्तरदायी शासन की ओर—१९१७

भारतीय राजनीति के विकास में यहां का साम्प्रदायिक मतभेद सदैव एक बड़ा भारी रोड़ा रहा है। इसका जन्म तो वैसे वस्तुतः लॉर्ड मिन्टो के जमाने में हुआ था। पर १९१७ में जब स्व-शासन की एक योजना तैयार की जाने को थी, उस समय सौभाग्य से भारतवर्ष की दो महान् जातियों में, किसी ऊपरी शक्ति के दवाव से नहीं वल्कि आपसी तौर पर, एक समझौता हो गया था। यह आगे आनेवाले राजनैतिक संघर्ष के लिए शुभ चिन्ह था। १९१७ में जो राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया था उसकी कल्पना स्पष्ट और भावना शुद्ध थी। १९१७ में सारे देश में बड़ी तेजी के साथ एक राष्ट्रीय-जागृति पैदा हो गई थी। होमरूल के लिए जो विराट् आन्दोलन इस वर्ष हुआ वह भी वहुत ही लोकप्रिय था। इस आन्दोलन के पीछे-पीछे जो चीज सदैव से अधिक तेजी के साथ चली वह था पुलिस का दमन।

होमरूल आन्दोलन और दमन

होमरूल की आवाज देश के सुदूर कानों तक फैल गई और सर्वत्र होमरूल-लीगों की स्थापना हो गई थी। श्रीमती वेसेण्ट के हाथों में प्रेस की शक्ति खूब ही वढ़ी, यद्यपि प्रेस-एक्ट के अनुसार दमन-चक्र भी खूब ही चला। और लॉर्ड पेण्टलैण्ड की सरकार ने तो सरकारी आज्ञा-पत्र नं० ५५९ के अनुसार विद्यार्थियों को भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने से रोक दिया था। उन्होंने 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर को भी वुला भेजा था, जिन्होंने अपनी आव घंटे की मुलाकात में गवर्नर से साफ-साफ वातें करके देश की स्थिति को जैसा वह समझते थे वता दिया था। लेकिन श्रीमती वेसेण्ट से, जिनका 'न्यू इंडिया' नामक दैनिक और 'कामन-विल' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता था, प्रेस और पत्र के लिए २०,०००) की जमानत मांगी, गई, और वह जप्त भी कर ली गई।

एक ओर यह हो रहा था तो दूसरी ओर होमरूल का खयाल दावानल की तरह सर्वत्र फैल रहा था। "होमरूल-आन्दोलन की शक्ति", श्रीमती वेसेण्ट के

१९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण के अनुसार, "स्त्रियों के उसमें एक बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण दसगुनी अधिक बढ़ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रंगरूट और सबसे अच्छे रंगरूट बनानेवाली स्त्रियां ही थीं। मदरास की स्त्रियों का दावा है कि जब आदमियों को जुलूस निकालने से रोक दिया गया तब उनके जुलूस निकले और मंदिरों में की गई उनकी प्रार्थना ने नजरबन्दों को मुक्त कर दिया।" इस आन्दोलन की सफलता का एक बड़ा कारण यह भी था कि प्रारम्भ से ही भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने के सिद्धान्तों को मान लिया गया था और उसीके अनुसार देश का प्रान्तीय-संगठन किया गया था। इस प्रकार से इस रूप में वह कांग्रेस से भी आगे निकल गया और सच पूछिए तो कांग्रेस के लिए उसने पूर्व-सूचक का काम किया था।

१५ जून १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया साहब को नजरबन्दी का हुक्म मिला। उनको ६ स्थान बताये गये थे जिनमें से एक को उन्हें अपने रहने के लिए पसन्द कर लेना था। कोयम्बटूर और उटकमण्ड को इन लोगों ने पसन्द किया। अपने तीन नेताओं की नजरबन्दी के कारण होमरूल-लीग और भी लोक-प्रिय हो गई और श्री जिन्नाह भी बाद में फौरन उसमें सम्मिलित हो गये। यह तो एक प्रकट-रहस्य है कि सरकारी हुक्म और खुफिया पुलिस की निगरानी होने पर भी श्रीमती बेसेण्ट स्वतंत्रता-पूर्वक बराबर अपने पत्र 'न्यू-इंडिया' के लिए लेख लिखती रहीं। 'कामन-विल' नामक एक नया साप्ताहिक पत्र भी आपने निकाला। श्री पंढरीनाथ काशीनाथ तैलंग 'न्यू इंडिया' के सम्पादक बनकर मदरास पहुँच गये। जितने दिन तक ये लोग नजरबन्द रहे उतने दिन तक होमरूल-आन्दोलन विद्युत गति से दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ा। देश में स्थिति बड़ी विकट हो गई थी। लेकिन इंग्लैण्ड में अधिकारी-वर्ग जरा भी झुकने को तैयार न था। मि० माण्टेगु ने अपनी डायरी में एक कहानी लिखी और उससे एक सबक निकाला : "शिव ने अपनी पत्नी के ५२ टुकड़े कर दिये थे परन्तु अन्त में उन्हें पता चला कि उनके एक नहीं ५२ पार्वतियां मौजूद हैं। वास्तव में यही बात भारत-सरकार पर घटी जब कि उसने श्रीमती बेसेण्ट को नजरबन्द किया।"

भारतवर्ष में जब कि यह राजनैतिक तूफान उमड़ रहा था, लण्डन में एक शाही युद्ध-परिषद् हो रही थी, जिसमें सारे उपनिवेशों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराजा बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसन्न

सिंह इंग्लैण्ड में भेजे गये थे। इन लोगों ने अपनी शान-बान और रंग-ढंग तथा शुद्ध उच्चारण से ऐसा रोब वहां जमाया कि इनका वहां खूब ही स्वागत हुआ, मान हुआ और अखबारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसका असर यहां तक हुआ कि ब्रिटिश-कमिटी ने, जिसने कि यह राय दी थी कि भारत से शासन-सुधारों-सम्बन्धी प्रश्न को हल करने के लिए एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड बुलाया जाय, अपनी राय बदल दी और उसी समय इंग्लैण्ड में एक आन्दोलनकारी कार्यक्रम बनाने की सलाह दी। वास्तव में ७ अप्रैल १९१७ को महासमिति की बैठक बुलाई गई थी, इसलिए कि वह इंग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजने का और विलायत में ही कांग्रेस का अधिवेशन करने का आयोजन करे। इन महानुभावों को शिष्ट-मण्डल का सदस्य बनने के लिए कहा गया था—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासबिहारी घोष, भूपेन्द्रनाथ वसु, मदनमोहन मालवीय, सर कृष्णचन्द्र गुप्त, राजा महमूदाबाद, तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री और सी० पी० रामस्वामी ऐयर। ब्रिटिश-कमिटी ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि भारत-मंत्री मि० आस्टिन चैम्बरलेन भारत-विषयक सरकारी नीति की घोषणा कर दें और सेना में भारतीयों को कमीशन देना स्वीकार कर लें, लेकिन वह दोनों में से एक भी करने को तैयार न थे। ८ मई १९१७ को इंग्लैण्ड में एक छोटी-सी परिषद् हुई। उस समय सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भी वहां थे। इसी परिषद् का वह निश्चय था, जिसके अनुसार भारत से शिष्ट-मण्डल भेजने की सलाह वापस ले ली गई थी।

भारतवर्ष इस समय होमरूल के सम्बन्ध में नजरबन्द हुए लोगों को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह करने की योजना तैयार कर रहा था। जुलाई १९१७ में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक बुलाई गई, जिसमें सबसे पहला जो प्रस्ताव पास हुआ वह था भारत के वृद्ध पितामह की मृत्यु पर दुःख मनाने का। सर विलियम वेडरबर्न की सलाह के अनुसार एक छोटा-सा शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय हुआ। उसके सदस्य थे—श्री जिन्नाह, शास्त्री, (यदि वह न जायें तो सी० पी० रामस्वामी ऐयर), सप्रू और वजीरहसन। सत्याग्रह करने के प्रश्न पर यह तय हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों और मुस्लिम-लीग की कौंसिल से प्रार्थना की जाय कि वे सत्याग्रह पर सिद्धान्ततः और राजनैतिक कार्य करने की दृष्टि से विचार करें, कि आया उनकी राय में सत्याग्रह करना उचित और उपयुक्त है या नहीं ? इस विषय में उनकी जो राय हो उसे ६ सप्ताह के अन्दर कांग्रेस के प्रधानमंत्री के पास भेज देने की बात भी प्रस्ताव में थी। इस सम्मिलित बैठक ने बंगाल-सरकार की उस धांधलेबाजी के प्रति तीव्र विरोध का भी एक प्रस्ताव पास किया जो कि उसने

श्रीमती बेसेण्ट और मि० अरण्डेल व वाडिया के नजरबन्द होने के विरोध में डॉ० रासबिहारी घोष के सभापतित्व में होनेवाली एक सार्वजनिक सभा रोककर की थी। प्रस्ताव में यह आशा प्रकट की गई थी कि "बंगाल के निवासी प्रत्येक कानूनी उपाय से अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे।" एक बहुत ही युक्तिपूर्ण वक्तव्य तत्कालीन स्थिति के सम्बन्ध में इस कमिटी ने तैयार किया था। इसमें यह बताया गया था कि यहां भारतवर्ष में किस प्रकार लॉर्ड चैम्सफोर्ड ने, उन्नीस आदमियों-द्वारा भेजे गये उस आवेदन-पत्र को बुरा-भला कहते हुए उसे "महान् आपत्ति ढा देनेवाला परिवर्तन" कहा था, और किस प्रकार इंग्लैण्ड में लॉर्ड सिडेनहम ने "भारत के खतरे" का भय दिखाकर और इस आवेदन-पत्र को "क्रान्तिकारी प्रस्ताव" कहकर इसकी निन्दा की थी एवं दमन करने की सलाह यह कहकर दी थी कि इसके पीछे 'जर्मनी की साजिश' है। इसके बाद ही सरकार ने स्वराज्य के लिए किये गये लोक-आन्दोलन के सम्बन्ध में सरकार की नीति का निर्देश करते हुए एक गश्ती-पत्र भेजा था, और वही फोनोग्राफ की तरह शीघ्र ही पंजाब में सर माइकल ओडायर और मदरास में लॉर्ड पेण्टलैण्ड के मुंह से घोषणाओं के रूप में सुनाई देने लगा। इन्होंने लोगों को व्यर्थ की आशायें न रखने की चेतावनी देते हुए दमन करने की धमकी दी। सर माइकल ओडायर ने तो यहां तक कह डाला था कि सुधार मांगनेवाले दल ने जो शासन में परिवर्तन चाहे हैं वे क्रान्तिकारी और कानून और व्यवस्था उलट देनेवाले हैं। सरकार को जिस बात की सबसे अधिक चिढ़ थी वह यह कि एक ओर तो शिमला और दिल्ली से जो गुप्त खरीते शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जा रहे थे उनसे पहले कांग्रेस तथा लीग और कुछ कौंसिल के सदस्यों की योजना और आवेदन-पत्र विलायत कैसे पहुँच गये? प्रान्तीय सरकारों के गवर्नरों ने इस अदूरदर्शिता को नहीं देखा कि जनता से खुल्लम-खुल्ला यह कहने का क्या फल निकलेगा कि शासन-सुधार बहुत ही साधारण से दिये जायँगे। लेकिन यदि वे अदूरदर्शी थे तो कम-से-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि वे ईमानदार थे। हां तो उस वक्तव्य में नजरबन्दी का विरोध किया गया था और स्थिति को सुधारने की दृष्टि से यह सलाह दी थी कि (१) साम्राज्य-सरकार इस बात की घोषणा करे कि वह भारत में शीघ्र ही ब्रिटिश-साम्राज्य की स्व-शासन-प्रणाली स्थापित कर देगी, (२) शासन-सुधारों की जो योजना सम्मिलित रूप से तैयार की गई है उसे वह मंजूर करने के लिए फौरन ही आगे कदम बढ़ायगी, (३) अधिकारी-वर्ग ने जो प्रस्ताव किये हैं उनको शीघ्र ही प्रकाशित करेगी, और (४) दमन-नीति का परित्याग करेगी।

सत्याग्रह के प्रस्ताव पर प्रान्तों के मत

३० जुलाई को भारत-मंत्री, प्रधान मंत्री तथा सर विलियम वेडरवर्न को इस वक्तव्य का मुख्य भाग तार-द्वारा विलायत भेज दिया गया। इस बीच सत्याग्रह करने के प्रस्ताव पर विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों ने गम्भीरतापूर्वक अगस्त और सितम्बर के महीनों में विचार किया। बरार की राय में तो सत्याग्रह करना उचित था। पर बम्बई, बर्मा और पंजाब का कहना था कि अभी सत्याग्रह स्थगित रक्खा जाय, क्योंकि मि० माण्टेगु के भारत आने की सम्भावना है। युक्त-प्रान्त ने "वर्तमान अवस्था में" सत्याग्रह करना अनुपयुक्त बताया। बिहार की सम्मति में "होमरूल के नजरबन्दों—मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों को छोड़ने के लिए एक तारीख नियत कर देना चाहिए।" इस दी गई मियाद के बीच में बिहार स्वयं स्थान-स्थान पर सभायें करके इस मांग का बल बढ़ाने को तैयार था। यदि सरकार इसपर ध्यान न दे तो, बिहार के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता स्वयं सत्याग्रह का प्रचार करने के लिए तैयार हो जायँगे और उसके लिए हर प्रकार के बलिदान करेंगे और मुसीबतें सहेंगे। मदरास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने १४ अगस्त १९१७ को सत्याग्रह करने का समर्थन करते हुए प्रस्ताव पास किया।

मदरास-नगर में तो एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। इसपर सबसे पहले हस्ताक्षर करनेवाला जो व्यक्ति था वह थे सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, जोकि मदरास हाईकोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज, पुराने कांग्रेसी तथा आल इंडिया होमरूल-लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि को श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगियों के नजरबन्द किये जाने के विरोध में त्याग दिया था। आपने राष्ट्रपति विल्सन को भी एक पत्र अमरीका श्रीमती और श्रीयुत होचनर के हाथ भेजा था। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले दूसरे व्यक्ति 'हिन्दू' के सम्पादक और निरभिमान देश-सेवक श्रीकस्तूरी रंगा आयंगर थे।

माण्टेगु की घोषणा

जिस समय भारतवर्ष में आन्दोलन इस प्रगति से बढ़ रहा था उसी समय मि० माण्टेगु की घोषणा प्रकाशित हुई, जिससे स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया। इसपर मदरास-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने यह प्रस्ताव पास किया—"राजनैतिक परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ है उसे मद्देनजर रखते हुए सत्याग्रह के प्रश्न पर विचार करना आगे के लिए स्थगित किया जाय। इस बात की इत्तला महासमिति को दे दी जाय।"

वह बदली हुई परिस्थिति कौन-सी थी, गत महायुद्ध के जमाने में मेसोपोटामिया में युद्ध का प्रवन्ध अच्छा नहीं रहा। इसी सम्बन्ध में कामन-सभा में एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद हुआ, जिसमें मि० माण्टेगु ने मि० आस्टिन चैम्बरलेन को, जो कि भारत-मंत्री थे, बुरी तरह आड़े हाथों इसलिए लिया कि मेसोपोटामिया में भारत से प्रचुर-मात्रा में सामग्री तथा सिपाही न पहुँचने के कारण ही गड़बड़ हुई थी। इसीके परिणाम-स्वरूप मि० चैम्बरलेन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर मि० माण्टेगु भारत-मंत्री नियत हुए। उस समय माण्टेगु साहब बिलकुल नौजवान थे। उनकी अवस्था उस समय ३६ वर्ष से अधिक न थी। लेकिन फिर भी वह इससे पहले ४ वर्ष तक बराबर उपभारत-मंत्री रह चुके थे और १९१२ में भारतवर्ष का पूरा दौरा भी कर चुके थे। मि० बोनर ला का एक कड़ा भाषण हुआ था, जिसमें उन्होंने बताया था कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली हटाने और बंग-भंग के निर्णय को रद कर देने में खर्च भी अधिक हुआ है और सरकार की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुँचा है। इसके उत्तर में मि० माण्टेगु ने भारत के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया था। मि० माण्टेगु का भारत-मंत्री बना दिया जाना, भारतवर्ष ने अपनी एक बहुत बड़ी विजय समझी। लोगों की आशा के मुताबिक, मंत्री-पद का कार्य सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त को मंत्रि-मण्डल की ओर से, मि० माण्टेगु ने निम्नलिखित घोषणा की, जिसमें ब्रिटिश-नीति का अन्तिम ध्येय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली देना बताया गया था :—

"सम्राट्-सरकार की यह नीति है, और उससे भारत-सरकार पूर्णतः सहमत है, कि भारतीय-शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासनप्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व-शासन-प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश-साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। उन्होंने यह तय कर लिया है कि इस दिशा में, जितना शीघ्र हो, ठोस रूप से कुछ कदम आगे बढ़ाया जाय।"

"मैं इतना और कहूँगा", मि० माण्टेगु ने कहा, "इस नीति में प्रगति क्रमशः ही अर्थात् सीढ़ी-दर-सीढ़ी होगी। ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार ही, जिनके ऊपर कि भारतीयों के हित और उन्नति का भार है, कब और कितना कदम आगे बढ़ाना चाहिए, इस बात के निर्णायक होंगे। वे एक तो उन लोगों के सहयोग को देखकर ही आगे बढ़ाने का निश्चय करेंगे जिन्हें कि इस तरह सेवा का नया अवसर मिलेगा, और दूसरे यह देखा जायगा कि किस हद तक उन्होंने अपनी जिम्मेदारी को

ठीक-ठीक अदा किया है और इसलिए कितना विश्वास उनपर किया जा सकता है। पार्लमेण्ट के सम्मुख जो प्रस्ताव पेश होंगे उनपर सार्वजनिक रूप में वादविवाद करने के लिए पर्याप्त समय दिया जायगा।"

लोगों के प्रति अपने विश्वास-भाव को प्रकट करने के लिए उन्होंने उस जातिगत प्रतिवन्ध को भारतीयों पर से हटा दिया जिसके कारण वे सेना में उच्च पद नहीं पा सकते थे। आगे चलकर उन्होंने यह भी घोषित किया कि वह भारत आवेंगे और वाइसराय से परामर्श करेंगे, एवं भारत के स्वराज्य की ओर वढ़ने में जो समुदाय दिलचस्पी रखते होंगे उन सवसे भी वातें करेंगे। २० अगस्त की घोषणा हो चुकी थी और नई नीति के अनुसार श्रीमती वेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्वर को मुक्त कर दिये गये थे।

कांग्रेस का आवेदन-पत्र

६ अक्तूवर को इलाहावाद में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित वैठक फिर हुई। इसपर कसरत राय यह ठहरी कि सत्याग्रह न किया जाय। श्रीमती वेसेण्ट स्वयं सत्याग्रह करने के विरुद्ध थीं। इससे एक प्रभावकारी कार्यक्रम एकदम रुक गया, जिससे नवयुकों में वड़ी निराशा फैली। सम्मिलित वैठक ने सत्याग्रह करने की वात तय करने के स्थान पर वाइसराय तथा भारत-मंत्री के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने की वात तय की। इसके अतिरिक्त, इस शिष्ट-मण्डल के हाथ कांग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में एक युक्ति-संगत आवेदन-पत्र भी भेजने की वात तय हुई। इस कार्य के लिए १२ व्यक्तियों की एक कमिटी नियुक्त की गई। श्री० सी० वाई० चिन्तामणि उसके मंत्री थे। इसका काम था एक आवेदन-पत्र और एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करना। शिष्ट-मण्डल आवेदन-पत्र के साथ लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु से नवम्वर १९१७ में मिला। उस आवेदन-पत्र का मुख्य अंश निम्नलिखित है :—

"हर समय और हर परिस्थिति में केवल अधीन-देश की अवस्था वहां के लोगों के स्वाभिमान को ठेस पहुँचानेवाली होती है। खासकर उन लोगों को, जो कांग्रेस के शब्दों में एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं और जिन्होंने शासन तथा व्यवस्था करने की अच्छी योग्यता का काफी परिचय दिया है। जवकि एक ओर अवस्था यह है तो दूसरी ओर गत दो वर्षों से एक ऐसी जरूरी आवश्यकता पैदा हो गई है जिसके कारण यहां के निवासी इस वात पर वल-पूर्वक जोर दे रहे हैं कि उनके देश

को साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों की श्रेणी में रख दिया जाय। यह तो अब स्पष्ट हो गया है कि अन्य उपनिवेशों की भविष्य में साम्राज्य-सम्बन्धी मामलों में एक जोरदार आवाज होगी। अब वे बाल्यावस्था में नहीं हैं; बल्कि उन्हें ब्रिटेन के साथ बराबरी का समझा जाता है। अब पांच स्वतंत्र राष्ट्र ब्रिटेन के साथ मिलकर एक समूह बन गये हैं। अगर, जैसा कि कुछ लेखकों की राय है, एक पार्लमेण्ट और (या) साम्राज्य की एक कौंसिल बनाई जाय और उसमें संयुक्त-राज्य तथा उपनिवेशों के प्रतिनिधि हों और अगर सारे साम्राज्य के मामलों को येही या यह कौंसिल तय किया करें, और मौजूदा कामन-सभा और लॉर्ड-सभा केवल ब्रिटेन के मामलों को ही तय किया करें, तो यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष पर ब्रिटेन के साथ-साथ उपनिवेशों का भी शासन हो जायगा। अगर साम्राज्य की नीति में कोई ऐसा परिवर्तन होने जा रहा हो तो भारतवासी उसका बड़ी दृढ़ता से विरोध करेंगे। और अगर उपनिवेशों का रुख भारत और भारतीयों की ओर ऐसा हो जिसमें अपवाद की कोई गुंजाइश ही न हो, तो भी भारतवासी अपनी दासता की हद को बढ़ाने के लिए कभी तैयार न होंगे। भारतवासियों के दृष्टि-कोण से अनिवार्य शर्त केवल यही हो सकती है कि यदि साम्राज्य का नये सिरे से संगठन हो तो उसमें भारत का भी शाही-कौंसिल और (या) पार्लमेण्ट में प्रतिनिधित्व अवश्य हो। चुने हुए सदस्यों की वही कसौटी रक्खी जाय जो उपनिवेशों पर लागू हो।

कांग्रेसी हलचलें

इस बीच में कांग्रेसवाले खामोश नहीं बैठे थे। वे कांग्रेस-लीग-योजना के लिए लोगों के हस्ताक्षर करा रहे थे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अपनी नजरबन्दी से छुटकारा पाने के बाद श्रीमती बेसेण्ट ने वाइसराय से कितनी ही बार मिलने के लिए समय मांगा, लेकिन उन्हें नहीं दिया गया। लॉर्ड चेम्सफोर्ड श्रीमती बेसेण्ट को दूर ही रखना चाहते थे। मि० माण्टेगु ने भी उनके नेतृत्व के लिए कोई आदर-भाव प्रदर्शित नहीं किया। अपने छुटकारे के बाद ही उन्होंने सत्याग्रह से अपनी अलहदगी दिखलाई। इसका कारण आजतक अगम्य ही रहा है।

१९१७ के अन्त के महीनों में भारत के राजनैतिक वातावरण में माण्ट-फोर्ड ही माण्ट-फोर्ड हो रहे थे। मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का सर्वत्र दौरा हो रहा था। इनसे विभिन्न स्थानों पर शिष्ट-मण्डल मिलते थे और ये लोगों से हर जगह मिलते थे। श्रीमती बेसेण्ट ने १९१७ के अन्त में, मि० माण्टेगु से भेंट कर लेने के

पश्चात्, अपने कुछ मित्रों से कहा था, "हमें मि० माण्टेगु का साथ देना चाहिए।" नरम-दल वालों ने श्रीमती वेसेण्ट के इन शब्दों की दुहाई प्रत्येक स्थान पर दी। जाहिर है कि मि० माण्टेगु का उद्देश यह था कि वह भारत के परस्पर-विरोधी हित रखनेवाले दलों से परामर्श करें और पार्लमेण्ट में पेश करने के लिए एक मसविदा तैयार करें। इनमें से पहला काम तो लखनऊ में १९१६ में हिन्दू-मुस्लिम समझौते ने पहले ही कर दिया था और उसे मि० माण्टेगु ने ज्यों-का-त्यों मान भी लिया था। लेकिन दूसरी वात के सम्वन्ध में जो असलियत है वह तो वहुत से लोगों के लिए एक विलकुल ही नवीन वात होगी। वह यह कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड की यह सारी योजना विस्तृत-रूप से मार्च १९१६ में ही तैयार हो गई थी। वात यह थी कि लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वाइसराय नियुक्त करने का जव हुक्म पहुँचा उस समय वह भारत की टेरीटोरियल फौज में मेजर थे। मार्च १९१६ में जव वह इंग्लैण्ड पहुँचे तो उन्हें तैयार की हुई यह सारी योजना दिखाई गई, जिसके साथ ही उनका नाम जोड़ा जानेवाला था। इसका पता हमें १९३४ में जाकर लगा। इसमें सन्देह नहीं कि मि० माण्टेगु श्रीमती वेसेण्ट, लोकमान्य तिलक और गांधीजी जैसे व्यक्तियों से भी मिले और उनकी वातें सुनीं। लेकिन असलियत में मि० माण्टेगु ने अपनी भारत-यात्रा में जो कुछ किया वह तो यह छांट लेना था कि भावी शासन में मंत्री, कार्यकारिणी के सदस्य और एडवोकेट-जनरल कौन-कौन वनाने लायक हैं। वह उन आदमियों के सम्वन्ध में निश्चित होना चाहते थे जो उनकी योजना को कार्य-रूप में परिणत करते। इसकी प्रतिध्वनि उस सामूहिक ध्वनि के पीछे सुनाई पड़ती थी जिसे हम सुनते थे। वह यह कि "हमें मि० माण्टेगु का साथ देना चाहिए।"

१९१७ के इस काल में जव श्रीमती वेसेण्ट का होमरूल-आन्दोलन उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था, गांधीजी अपने कुछ चुने हुए सहयोगियों के साथ— जैसे राजेन्द्र वावू, वृजकिशोर वावू, गोरख वावू, अनुग्रह वावू (विहार) से और अध्यापक कृपलानी तथा भारत-सेवक-समिति के डॉ० देव को लेकर—विहार में निलहे गोरों के प्रति वहां के किसानों की जो शिकायतें थीं, उनकी जांच कर रहे थे। पूरे ६ मास तक वह स्वयं आन्दोलन से कतई अलग रहे और अपने सव साथियों को भी अलग रक्खा।

गांधीजी ने, जो अपनी जादू-भरी शक्ति का परिचय चम्पारन में दे चुके थे, एक वहुत ही सादा किन्तु कारगर प्रस्ताव रक्खा कि कांग्रेस-लीग-योजना देश की भाषाओं में अनुवादित करा दी जाय, लोगों को उसे समझाया जाय और उसमें

शासन-सुधारों की जो योजना है उसके पक्ष में लोगों के हस्ताक्षर कराये जायँ। इस प्रस्ताव को ज्यों ही कार्य-रूप में लाया गया त्योंही देश ने कांग्रेस की शासन-सुधार-योजना का स्वागत किया। यहां तक कि १९१७ के अंत तक दस लाख से ऊपर लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। यह देश-व्यापी संगठन, कांग्रेस की ओर से सम्भवतः पहला ही प्रयत्न था। लेकिन स्व-शासन के सम्बन्ध में देश को संगठित करने का इससे पहले भी एक प्रयत्न किया गया था। और उसके लिए देश तथा इंग्लैण्ड में धन भी एकत्र किया गया था। १९१५ की बम्बई कांग्रेस के अधिवेशन में, जिसके सभापति सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह थे, महासमिति ने यह तय किया था कि कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष एकत्र किया जाय। इस कार्य के लिए एक कमिटी भी बनाई गई थी। परन्तु इस दिशा में कोई सक्रिय कार्रवाई नहीं हुई। १८८९ में इस दिशा में एक बार कोशिश और हुई थी। ५० हजार रुपया इसलिए मंजूर किया गया था कि इतनी रकम एकत्र करके कांग्रेस के स्थायी कोष का कार्य प्रारम्भ किया जाय। इस रकम में से केवल ५ हजार रुपया एकत्र हुआ और वह ओरियण्टल बैंक में जमा कर दिया गया था। १८९० वाली बम्बई की उथल-पुथल में इस बैंक का दिवाला निकल गया और यह छोटी-सी रकम भी डूब गई।

१९१७ की कांग्रेस

श्रीमती बेसेण्ट का कांग्रेस के सभानेत्री-पद से दिया गया भाषण, भारत के स्व-शासन पर, परिश्रम-पूर्वक लिखा गया एक सुन्दर निबन्ध है। सेना और भारत की व्यापारिक समस्या पर विस्तार के साथ उसमें पूर्णतः प्रकाश डाला गया है। उसमें जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए बहुत-सी सामग्री है। उन्होंने वस्तुतः १९१८ में पेश करने के लिए एक ऐसे बिल की मांग पेश की थी जिसके अनुसार "भारत को ब्रिटिश उपनिवेशों के समान स्वराज्य दे दिया जाय। वह भी १९२३ तक, या अधिक-से-अधिक १९२८ तक। बीच के पांच या दस वर्ष अंग्रेजों के हाथों से सरकार के भारतीय हाथों में आने में लगे। और अंग्रेजों से भारत का वही सम्बन्ध बना रहे जो अन्य उपनिवेशों के साथ है।" श्रीमती बेसेण्ट के सभानेतृत्व में कांग्रेस तीन दिन का कोई मेला हो कर नहीं रह गया था। उसमें रोजमर्रा जिम्मेदारी के साथ काम करने की बात थी। इस दृष्टि से, उस समय तक, श्रीमती बेसेण्ट ही कांग्रेस की सर्वप्रथम सभानेत्री कही जा सकती हैं जिन्होंने साल-भर तक अपने पद की जिम्मेदारी निबाहने का दावा किया था। यह दावा कोई नया नहीं था, परन्तु कांग्रेस

के अवतक के इतिहास में किसी सभापति ने उसपर अमल किया नहीं था। कलकत्ते के अधिवेशन में, ४,६६७ प्रतिनिधि और ५,००० दर्शक उपस्थित हुए थे।

१९१७ की कांग्रेस के इस कलकत्तेवाले अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए वे भी कुछ को छोड़कर पहले-के-से सांचे में ढले हुए ही थे। वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी और कलकत्ते के ए० रसूल की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव और सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति के प्रस्ताव पास होने के बाद मि० माण्टेगु के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली के, जो कि अक्तूबर १९१४ से नजरवन्द थे, रिहा कर देने का भी प्रस्ताव पास हुआ। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा, भारतीयों को उचित सैनिक-शिक्षा देने की आवश्यकता पर सदा की भांति जोर देते हुए इस विषय में उनके साथ न्याय किये जाने की मांग की और जाति-गत भेद-भाव मिटाकर भारतीयों को सेना में कमीशन देने की जो सुविधा सरकार से मिल गई थी उसपर सन्तोष प्रकट करते हुए ९ भारतीयों को सेना में कमीशन देने पर प्रसन्नता प्रकट की और इस बात की आशा प्रकट की कि अधिक संख्या में भारतीयों को कमीशन देने की शीघ्र ही व्यवस्था की जायगी। इस बात पर जोर दिया गया कि उनकी तनख्वाह आदि में वृद्धि की जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा (१) १९१० के प्रेस-एक्ट-द्वारा शासकों को बहुत विस्तृत और निरंकुश सत्ता दिये जाने, (२) आर्म्स-एक्ट, (३) उपनिवेशों में भारतीयों के साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार और उनकी असुविधाओं के प्रति अपने विरोध को दोहराया। कांग्रेस ने कुली-प्रथा को पूर्णरूप से उठा देने के लिए मांग पेश की। एक पार्लमेण्टरी कमीशन की नियुक्ति पर जोर दिया गया जो कि लिखने, व्याख्यान देने, सभा करने आदि की स्वतंत्रता के दमन के लिए विशेष प्रकार के कानूनों तथा इसी प्रकार के कार्यों के दमन के लिए भारत-रक्षा-कानून के प्रयोग के सम्बन्ध में जांच करे। १० दिसम्बर को सरकार ने रौलट-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की थी। कांग्रेस ने इसकी एक प्रस्ताव-द्वारा इसलिए निन्दा की कि इस कमीशन का उद्देश दमन के लिए नये कानूनों की व्यवस्था करना था, लोगों के कष्ट दूर करना नहीं। कांग्रेस की राय में इससे अधिकारियों को बंगाल के क्रान्तिकारी कहे जानेवालों के दमन के लिए और भी अधिक शक्ति मिल जाती थी। इसी प्रस्ताव में कांग्रेस ने १८१८ के रेग्युलेशन ३ और भारत-रक्षा-कानून के विस्तृत तौर पर किये गये प्रयोग पर चिन्ता और भय प्रकट किया और इन कानूनों के आंख मींचकर विस्तृत प्रयोग किये जाने के कारण जो असन्तोष फैला हुआ था उसको मद्देनजर रखते हुए सारे राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर देने की प्रार्थना की।

एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने, अर्जुनलालजी सेठी के प्राण बचाने के लिए, जो कि धार्मिक कारणों से वेलूर-जेल में आमरण अनशन कर रहे थे, सरकार से बीच में पड़कर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, प्रत्येक प्रान्त में भारतीयों के प्रवन्ध में, भारतीय-बालचर-मण्डल स्थापित करने की सिफारिश की। मुख्य प्रस्ताव स्वराज्य के सम्बन्ध में था, जो इस प्रकार है:—

"सम्राट् के भारत-मंत्री ने साम्राज्य-सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इसपर यह कांग्रेस कृतज्ञता-पूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह कांग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष में स्व-शासन की स्थापना का विधान करनेवाला एक पार्लमेण्टरी कानून बने और उसमें बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस कांग्रेस की यह दृढ़ राय है कि शासन-सुधार की कांग्रेस-लीग-योजना कानून के द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप में प्रारम्भ की जानी चाहिए।"

एक नया प्रस्ताव जो कलकत्ता-कांग्रेस में पास हुआ वह था आन्ध्र-प्रान्त को एक पृथक् कांग्रेस प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में। इस विषय में इतना बता देना जरूरी है कि १९१३ से लेकर १९१५ की कांग्रेस तक आन्ध्र में इस सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय या यों कहें कि उप-राष्ट्रीय आन्दोलन बराबर चलता रहा था। आन्दोलन की बुनियाद यह थी कि आन्ध्रवाले कहते थे कि भाषा के लिहाज से प्रान्तों का पुनःनिर्माण किया जाय। वास्तव में इसका बीज तो तबसे बोया गया जब से कि १८९४ में श्री महेशनारायण ने बंगाल से बिहार को पृथक् कराने का प्रयत्न किया था। १९०८ में कांग्रेस ने बिहार को एक पृथक् प्रान्त बना दिया। २५ अगस्त १९११ को प्रान्तीय स्वाधीनता की योजना के सम्बन्ध में भारत-सरकार का जो खरीता बिलायत गया था, उसमें भी यह सिद्धान्त मान्य किया गया था और उसी का यह फल था कि बिहार बंगाल से अलग कर दिया गया। इस सम्बन्ध में सब लोगों का दृढ़ विश्वास था कि प्रान्तीय स्वराज्य को सफल बनाने के लिए, शासन और शिक्षा दोनों का माध्यम उस प्रान्त की भाषा हो। यह निश्चितरूप से माना जाता था कि स्थानीय-शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन को जो असफलता मिली है, उसका कारण यह है कि ब्रिटिश भारत में प्रान्तों का विभाजन न तो बुद्धिपूर्वक किया गया है, न जातियों के निवास को ध्यान में रख कर किया गया है, बल्कि जैसे-जैसे इलाका हाथ आता गया वैसे-वैसे प्रान्त बनाते चले गये। १९१५ में कांग्रेस इस प्रश्न पर विचार करने के लिए

तैयार न थी। लेकिन १९१६ की आन्ध्र-प्रान्तीय परिषद् ने इस प्रश्न पर बहुत जोर दिया, और ८ अप्रैल १९१७ को महासमिति ने जिसके पास निर्णय के लिए १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने इस विषय को भेज दिया था, मदरास तथा बम्बई की प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों से पूर्ण परामर्श करके, इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि "मदरास प्रान्त के तेलगू भाषा बोलनेवाले जिलों का एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय।" इसके बाद सिन्ध और उसके बाद करनाटक का भी नम्बर आया। इस विषय पर १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस की विषय-समिति में बड़ी गरमा-गरम बहस हुई। गांधीजी की भी यह राय थी कि शासन-सुधार चालू हो जाने तक इस मामले में ठहरे रहें। लेकिन लोकमान्य तिलक ने इस बात को अनुभव किया कि वास्तविक प्रान्तीय स्वाधीनता के लिए भाषा के अनुसार प्रान्तों का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक है। कलकत्ता-कांग्रेस की सभानेत्री श्रीमती बेसेण्ट ने भी इसका खूब विरोध किया और दक्षिण के तामिल-भाषा-भाषी मित्रों ने भी बहुत जोर से मुखालिफत की। इस विषय पर बहस करते-करते दो घण्टे बीत गये। अन्त में रात के १०$\frac{1}{4}$ बजे आन्ध्र का पृथक् प्रान्त बनाना तय हो गया। ६ अक्तूबर १९१७ को महासमिति ने सिन्ध को भी पृथक् प्रान्त मान लिया। उस समय जो सिद्धान्त स्वीकार किया गया था, नागपुर-कांग्रेस के बाद, प्रान्तों के पुनर्निर्माण में, उसीके अनुसार काम किया गया। इसके फल-स्वरूप हमारे पास अब २१ प्रान्त हैं जब कि ब्रिटिश-सरकार के केवल ९ प्रान्त ही हैं।

राष्ट्रीय झण्डा

कलकत्ते में श्रीमती बेसेण्ट श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर को सेक्रेटरी बनाने की बड़ी इच्छुक थीं। इसलिए कांग्रेस-विधान में संशोधन करके वह तीन मंत्रियों की नियुक्ति पर जोर देती थीं। यह बात स्वीकार कर ली गई और श्री सुब्बराव पन्तुलु ने, जो कि मंत्री चुने जा चुके थे, तुरन्त ही अपना त्यागपत्र दे दिया। श्रीमती बेसेण्ट के सभापतित्व में, कलकत्ता-कांग्रेस में, होमरूल-लीग और कांग्रेस एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गई। कलकत्ता की कांग्रेस इसलिए स्मरणीय है कि उसमें पहली बार राष्ट्रीय झण्डे का सवाल बाजाब्ता उठाया गया था। वास्तव में होमरूल-लीग तो पहले ही तिरंगे झण्डे को अपनाकर उसे लोकप्रिय बना चुकी थी। इस कार्य के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डे का नमूना निश्चित करे। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर भी उस कमिटी में थे। लेकिन इस कमिटी की बैठक कभी

नहीं हुई। अन्त में होमरूल का झण्डा ही कांग्रेस का झण्डा बन गया। बाद में उसमें चरखा और जोड़ दिया गया था। वह १९३१ तक रहा, फिर झण्डा-कमिटी ने उसमें लाल रंग की जगह केसरिया रंग कर दिया।

: ४ :

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना—१९१८

महासमिति की वैठकें

१९१७ की कांग्रेस के अधिवेशन के वाद तुरन्त ही ३० दिसम्वर की महासमिति की पहली वैठक में, कांग्रेस के लिए स्थाई कोष जमा करने के प्रश्न पर विचार किया गया, और प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों से अनुरोध किया गया कि वे भारत और इंग्लैण्ड में शिक्षा और प्रचार-कार्य आरम्भ करने के लिए एक कार्य-समिति वना दें। इसके वाद के महीने अनवरत रूप से कार्य करने में ही व्यतीत हुए। विशेषकर मदरास में तो लाखों नोटिस छपवाकर वितरण कराये गये, जिनमें कांग्रेस-लीग-योजना पर प्रकाश डाला गया था। और जिस समय मि० माण्टेगु मदरास पहुँचे उस समय उन्हें इस योजना के समर्थन में, केवल उसी प्रान्त से, ९ लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराके दिये गये।

महासमिति की दूसरी वैठक दिल्ली में २३ फरवरी १९१८ में हुई। उसमें सर विलियम वेडरवर्न की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव पास करने के पश्चात् वाइसराय के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रस्ताव पास हुआ, जो उनसे जाकर यह प्रार्थना करे कि लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली और पंजाव में प्रवेश करने पर जो प्रतिवन्ध लगा दिया है उसे मंसूख कर दें। शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला, लेकिन निरर्थक। लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु शासन-सुधारों-सम्वन्धी अपनी रिपोर्ट निकालने ही वाले थे। इसलिए महासमिति ने यह निश्चय किया था कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लखनऊ या इलाहावाद में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन वुलाया जाय। उसने इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मण्डल भेजना भी तय किया था।

३ मई १९१८ को महासमिति की तीसरी वैठक हुई। उसमें सीलोन (लंका) और जिव्राल्टर से दोनों होमरूल-लीग के शिष्ट-मण्डलों को, जो इंग्लैण्ड को जा रहे थे, वापस लौटा देने पर सरकार का खूव विरोध किया गया। कमिटी ने इस वात पर जोर दिया कि यह अधिकारपूर्ण घोषणा कर दी जाय कि लड़ाई खतम होने पर भारत

को उत्तरदायी शासन दिया जायगा। इससे कम के लिए हिन्दुस्तानी नौजवान कभी युद्ध की सफलता के लिए काफी तादाद में आगे नहीं बढ़ेंगे।

१९१८ के प्रथम पांच मास में श्रीमती बेसेण्ट ने अथक परिश्रम किया। श्रीमती मारगरेट कजिन्स और श्रीमती डोरोथी जिनराजदास ने श्रीमती बेसेण्ट को पत्र लिखकर, कांग्रेस-लीग-योजना में, स्त्रियों को मताधिकार देने के लिए अनुरोध किया था इंग्लैण्ड से मि० जोन स्कर ने उन्हें लिखा था कि कांग्रेस, जून १९१८ में होनेवाली मजदूर-परिषद् को निमंत्रण दे कि वह अपने भाईचारे के नाते १९१८ की कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे। महासमिति ने ऐसा ही किया था। यह विचार लोगों को तथा संस्थाओं को पसन्द आया और फैलने लगा। और यह प्रजासत्तात्मक संस्थाओं के लिए उपयुक्त भी था। "दोनों होमरूल-लीगों ने, दूसरे मास में ही, मि० बैपटिस्टा को, भाईचारे के नाते, अपना प्रतिनिधि बनाकर मजदूर-परिषद् में भेजा" श्रीमती बेसेण्ट ने अपने सभानेत्री-पद से दिये गये भाषण में कहा, "और मेजर ग्राहम पोल उनकी तरफ से हमारे यहां आ रहे हैं।" वह ब्रिटेन और भारत में सम्बन्ध बनाये रखने की दृढ़ पक्षपाती थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी कल्पना उन दिनों में होमरूल से, जैसा कि उसका अर्थ उन दिनों लिया जाता था, आगे नहीं बढ़ सकी, यद्यपि १९२६ के उपनिवेशों के दरजे से उस समय के उपनिवेशों का दरजा कम था और निश्चित-रूप से उसकी तुलना आज के उपनिवेशों से तो कदापि नहीं की जा सकती। कुछ भी हो, श्रीमती बेसेण्ट शीघ्र ही इस बात को महसस करने लगीं कि उनकी विचार-धारा का मेल न तो सरकार के साथ ही खाता है और न जनता के साथ ही। सरकार उनकी उग्रता को पसन्द नहीं करती थी और जनता उनके पिछड़ेपन को। बम्बई की विशेष कांग्रेस के समय (सितम्बर १९१८) उनके बहुतेरे अनुयायी थे और उनका बहुत बड़ा प्रभाव था, लेकिन दिल्ली-कांग्रेस में (दिसम्बर १९१८) वह बहुत पिछड़ गई थीं।

दिल्ली में युद्धपरिषद्

भारत-रक्षा-कानून का दौर देश में सर्वत्र बड़े जोर के साथ चल रहा था। १९१७ में ही लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के खिलाफ दिल्ली और पंजाब से देश-निकाले की आज्ञा निकल चुकी थी। लेकिन वह लोकप्रिय आन्दोलन दमन के इन चक्रों से भी नहीं दबाया जा सका। जब बम्बई के गवर्नर ने महायुद्ध के सम्बन्ध में नेताओं की एक सभा की तो लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य के प्रश्न को छेड़ा; लेकिन उन्हें दो मिनट से अधिक नहीं बोलने दिया गया। जब वाइसराय ने दिल्ली में एक सभा

की तो गांधीजी उसमें उपस्थित थे, यद्यपि पहले उन्होंने उसमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था—क्योंकि एक तो लोकमान्य और श्रीमती वेसेण्ट को उसमें आमंत्रित नहीं किया गया था, और दूसरे ब्रिटेन गुप्त संधि करके कुस्तुन्तुनियां रूस को देने जा रहा था। वह इस विषय में लॉर्ड चेम्सफोर्ड से मिले भी थे। उन्होंने गांधीजी को विश्वास दिलाया कि यह समाचार स्वार्थी लोगों का (रूस का) फैलाया हुआ है। गांधीजी से उन्होंने कहा कि फिर ऐसे समय में जबकि युद्ध चल रहा हो, ऐसा प्रश्न न तो उठ ही सकता है और न उसपर विचार ही किया जा सकता है। इस बातचीत का फल यह हुआ कि गांधीजी युद्ध-सभा में सम्मिलित होने के लिए राजी हो गए। उन्होंने लोकमान्य को दिल्ली आने के लिए तार दिया, यद्यपि उनके लिए कोई निमंत्रण नहीं था। लेकिन दिल्ली तो वह स्थान था जहां से लोकमान्य के लिए देश-निकाले की आज्ञा हो चुकी थी। उन्होंने कहा कि जबतक यह आज्ञा मंसूख न हो जाय तबतक मैं दिल्ली नहीं आ सकता। लेकिन ऐसा करने से तो सरकार की शान जो बिगड़ जाती।

अगस्त १९१८ में लोकमान्य को मजिस्ट्रेट की पहले से आज्ञा प्राप्त किये बिना व्याख्यान देने की मनाही का नोटिस मिला। एक सप्ताह पूर्व लोकमान्य युद्ध के लिए रंगरूट भर्ती करने में लगे हुए थे और अपनी सदिच्छा के प्रमाण स्वरूप उन्होंने ५० हजार का एक चेक गांधीजी के पास भेजकर आश्वासन दिया था कि यदि गांधीजी सरकार से ऐसा वादा करालें कि भारतीयों को सेना में कमीशन मिलने लगेगा तो वह महाराष्ट्र से ५ हजार सिपाही देंगे। गांधीजी का मत यह था कि सहायता सौदे के रूप में नहीं दी जानी चाहिए। अतः उन्होंने लोकमान्य का चेक लौटा दिया था। १९१७–१८ में कांग्रेस लोकमान्य तिलक से सशंक रहती थी। नौकरशाही तो निश्चित-रूप से उनके पीछे पड़ी ही हुई थी। अकेली श्रीमती वेसेण्ट ही उनका साथ दे रही थीं।

माण्टेगु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट

जून १९१८ में माण्टेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। साहित्यिक दृष्टि से वह ऊँचे दरजे की चीज थी। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखों के समान, भारत को स्व-शासन देने के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष बयान था। उसमें सुधारों के मार्ग की रुकावटों का बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलने चाहिएँ। रिपोर्ट के पक्ष में एक और बात भी थी। देश की दो महान् संस्थाओं ने मिलकर जिस योजना को तैयार किया

था उसमें अपरिवर्तनीय कार्यकारिणी की तजवीज थी। परन्तु इसमें उत्तरदायी शासन की एक बड़ी ही आकर्षक-योजना थी, जिसमें मंत्रि-मंडल बदला जा सकता था। मंत्रि-मंडल की जिम्मेदारी सामूहिक थी, और वह कौंसिल के मतों पर निर्भर करती थी। यह ठीक ब्रिटिश नमूने के स्वराज्य से मिलती हुई थी। भारतवर्ष के लोगों को और चाहिए ही क्या था? इसके अनुसार, हिन्दुस्तानियों की राय में, कौंसिलें भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए तालीमगाह न रहकर सार्वजनिक न्यायालय हो जाती थीं, जहां कि मंत्रीगण को मतदाताओं के सामने अपनी स्थिति साफ करनी पड़ती और अपने साथी-सदस्यों की राय पर उनका भाग्य अवलम्बित रहता। इसलिए कितने ही भारतीय इसके भुलावे में आ गये और इसकी तारीफों के पुल बांधने लगे। पलड़ा कांग्रेस-योजना की ओर से माण्ट-फोर्ड-योजना की ओर झुक गया था। मि० माण्टेगु की डायरी में हमें यह लिखा हुआ मिलता है कि श्रीमती बेसेण्ट ने इस बात का वादा किया था कि सर शंकरन् नायर जो कुछ स्वीकार कर लेंगे वह उन्हें भी मान्य होगा। और सर शंकरन् नायर ने इसे स्वीकार कर लिया था। श्री० सी० पी० रामस्वामी ऐयर के सम्बन्ध में मि० माण्टेगु कहते हैं—"मैंने स्पष्ट-रूप से उनसे पूछा कि वह क्या चाहते हैं? वह शास्त्रीजी की चार कसौटियां मानते हैं। मुझे भय है कि वह कभी समय-समय पर होनेवाली जांच-पड़ताल को पसन्द न करेंगे। जो कुछ वह चाहते हैं वह है एक मीयाद का मुकर्रर हो जाना। लेकिन इस मीयाद के मानी उससे कहीं अधिक हैं जो समझे जाते हैं।" इसके बाद श्री एस० श्रीनिवास आयंगर का जिक्र है, "उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वास्तव में लोग पूरी कांग्रेस-लीग-योजना की स्वीकृति की आशा नहीं रखते हैं। फिर भी यदि लोगों को यह विश्वास हो जाय कि इसमें और विकास की गुंजायश है तो वे विशेष परवा न करेंगे।" उनका कहना है कि करटिस की योजना सबसे अच्छी है। श्रीनिवास आयंगर के साथ न्याय करने के लिए हमें यहां यह बता देना जरूरी है कि उस समय वह कांग्रेसी नहीं थे। इन बयानों के बाद हमें मि० माण्टेगु-द्वारा यह जानने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है कि सीतलवाड, चन्दावरकर और रहीमतुल्ला ने 'संरक्षणों की योजना' का समर्थन किया था।

एक ओर यह था तो दूसरी ओर राष्ट्रीय विचार के लोगों ने मि० माण्टेगु के दिमाग में अपनी मांग के विषय में किसी भी संदेह की गुंजाइश नहीं रहने दी। "मोतीलाल नेहरू सन्तुष्ट हो जायँगे यदि उन्हें बीस वर्ष में उत्तरदायी शासन-प्रणाली दे दी जाय।" (पृष्ठ ६२) "चितरंजन दास को पहले ही से निश्चय था कि द्वैध शासन-प्रणाली अवश्य विफल हो जायगी। वह ५ वर्ष के भीतर वास्तविक उत्तरदायी

शासन चाहते थे और उसका वादा उसी समय चाहते थे।" (पृष्ठ ६१) मि० माण्टेगु ने सुरेन्द्रनाथ वनर्जी को पटा लिया था।

रिपोर्ट के सम्वन्व में लोगों का यह आमतौर पर विश्वास था कि उसका अधिकांश मजमून सर (वाद को लॉर्ड) जैम्स मेस्टन और मि० (वाद को सर) मैरिस ने तैयार किया था और लायनल करटिस ने इस कार्य में उनकी मदद की थी। मि० करटिस राउन्ड टेवलवालों में से थे, जिनकी कि प्रवृत्ति अध्ययन की ओर विशेष थी। वह "साम्राज्य की सेवा के लिए" अनेक देशों का भ्रमण करते रहते थे। भारतीय शासन-सुवारों के सम्वन्व में इन्होंने एक पत्र लिखा था। वह गलती से कहीं-का-कहीं जा पहुँचा और हिन्दुस्तानी पत्रकारों के हाथ में पड़ गया। वह 'वॉम्वे क्रानिकल' तथा 'लीडर' में छपा भी था। पत्रकारों के इस साहसिक कार्य ने नौकरशाही की चालवाजियों का भण्डाफोड़ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि सारा अधिकारी जगत् राष्ट्रीय विचारवालों के विरुद्ध क्रोध से उवल पड़ा।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन

माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही, इस वात पर भिन्न-भिन्न नेताओं में तेजी से चर्चा होने लगी कि इसके विपय में हमें क्या करना चाहिए। ऐसी दशा में यह तो जाहिर ही है कि महासमिति ने कांग्रेस के विशेप अधिवेशन को वुलाने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार उसका वुलाया जाना लाजिमी थी। लेकिन यह वात अनुभव की जाने लगी कि लखनऊ और इलाहावाद इसके लिए उपयुक्त स्थान न रहेंगे। अतः वम्वई में कांग्रेस का विशेप अधिवेशन करना तय हुआ और थोड़े ही समय में सारी तैयारी की गई। कांग्रेसवालों में वड़ा तीव्र मतभेद हो गया था। वैसे कोई भी दल योजना से सन्तुष्ट नहीं था। लेकिन हां, उनके आलोचना करने के ढंग में अन्तर जरूर था। ऐसा जान पड़ता था कि एक दल तो, जो कि उग्र था, उसे विलकुल ही अस्वीकार कर देने पर जोर देगा और दूसरा उसमें सुधार चाहेगा। कांग्रेस का अधिवेशन २९ अगस्त १९१८ को हुआ। श्री हसन इमाम सभापति थे। कांग्रेस में उपस्थिति खूव थी। ३,८४५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। श्री विट्ठलभाई पटेल स्वागत-समिति के सभापति थे। दीनशा वाचा, सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु और अम्विकाचरण मुजुमदार जैसे कांग्रेस के पुराने महारथी आये ही नहीं थे। चार दिन के वाद-विवाद के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी पुरानी योजना के आवारभूत सिद्धान्तों का ही समर्थन किया और इस वात की घोपणा कर दी कि भारतीय आकांक्षा साम्राज्य के अन्तर्गत

स्व-शासन से कम में सन्तुष्ट नहीं हो सकती। माण्टेगु-योजना की उसने विस्तारपूर्वक आलोचना की। उसने यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है। माण्टेगु-रिपोर्ट में इसके खिलाफ जो बात कही गई थी उसका प्रतिवाद किया। कांग्रेस ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनों शासनों में एक-साथ ही सुधार जारी करने पर जोर दिया और इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रान्त ही वह स्थान है जहां उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास के लिए पहले कार्य-प्रारम्भ होना चाहिए—और जबतक इस बात का अनुभव न हो जाय कि इन प्रान्तों की शासन-प्रणाली में जो परिवर्तन करने का विचार है उनका क्या असर होता है तबतक आवश्यक बातों में भारत-सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रहे। साथ ही कांग्रेस ने यह माना कि जिन बातों से शान्ति और देश-रक्षा का प्रत्यक्ष-रूप से संबंध होगा उनमें भारत-सरकार को इन अपवादों के साथ पूरा अधिकार होगा (क) न्यायालय के निर्णय और खुले तौर पर कानूनन मुकदमा चलाये बिना (सम्राट् की) किसी भी भारतीय प्रजा की स्वतंत्रता, जान या सम्पत्ति नहीं ली जायगी और न उसकी लिखने या बोलने या सभाओं में सम्मिलित होने की स्वतंत्रता छीनी जायगी; (ख) ग्रेट-ब्रिटेन के समान लाइसेन्स खरीदकर हथियार रखने का अधिकार प्रत्येक भारतीय प्रजा को होगा; (ग) छापेखाने स्वतंत्र रहेंगे और किसी छापेखाने या समाचार-पत्र की रजिस्ट्री होते समय कोई लाइसेन्स या जमानत नहीं मांगी जायगी; (घ) समस्त भारतीय कानून के सामने बराबर होंगे। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा इस बात पर दृढ़ मत प्रकट किया कि बड़ी कौंसिल को आर्थिक मामलों में उसी हद तक की स्वतंत्रता रहे जिस हद तक की स्वतंत्र साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त प्रान्तों को है। उस प्रस्ताव में, जिसमें कि सुधार-योजना पर सीधे तौर से मत प्रकट किया गया था, भारत-मंत्री और वाइसराय के प्रयत्नों की, जोकि उन्होंने भारत में उत्तरदायी शासन-प्रणाली प्रारम्भ करने के लिए किये, सराहना की। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि यद्यपि उसमें कुछ प्रस्ताव ऐसे हैं जिनके द्वारा वर्तमान अवस्था की अपेक्षा कुछ दिशाओं में उन्नति होती है, किन्तु आमतौर पर ये प्रस्ताव निराशा और असंतोष-जनक हैं। आगे चलकर प्रस्ताव में वे बातें भी सुझाई गईं जिनका होना उत्तरदायी शासन की ओर बढ़ने के लिए पूर्णतया आवश्यक था। जैसे भारत-सरकार से सम्बन्धित बातों के लिए कांग्रेस ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रान्तों के लिए जिस जिस तरह स्वरक्षित और हस्तान्तरित विषय रक्खे जायँ उसी तरह केन्द्रीय सरकार के लिए भी रक्खे जायँ। रक्षित विषय ये होंगे—वैदेशिक कार्य (उपनिवेशों का सम्बन्ध छोड़ कर), सेना, जल-सेना, भारतीय राजाओं के साथ सम्बन्ध; और शेष सब

विषय हस्तान्तरिक रहेंगे। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों का उत्तरदायित्व निर्वाचकों के प्रति वढ़ाया जाय और पार्लमेण्ट और भारत-मंत्री के अधिकार कम किये जायँ। इंडिया-कौंसिल तोड़ दी जाय। भारत-मंत्री को सहायता देने के लिए दो स्थायी सहायक-मंत्री रहें, जिनमें से एक भारतीय हो। जातिगत प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कांग्रेस ने निश्चय किया कि छोटी और वड़ी कौंसिलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व वही रहना चाहिए जो कांग्रेस-लीग-योजना में रक्खा गया है। स्त्रियां मताधिकार के अयोग्य न ठहराई जायँ। आर्थिक मामलों में भारत-सरकार को पूरी स्वतंत्रता रहनी चाहिए। सेना में भारतीयों को कमीशन दिये जाने के सम्बन्ध में जो मांग पेश की गई थी उसे सरकार ने विलकुल अपूर्ण-रूप से स्वीकार किया था। इसपर कांग्रेस ने गहरी निराशा प्रकट की और यह राय दी कि भारतीयों को सेना में कम-से-कम २५ प्रतिशत कमीशण्ड जगह देने की कारंवाई होनी चाहिए और यह औसत धीरे-धीरे वढ़कर १५ साल में ५० फी सदी तक हो जाय। कांग्रेस ने इंग्लैण्ड में शिष्ट-मण्डल भेजना तय किया और सदस्यों के चुनाव के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी।

इस तरह यह दीख पड़ेगा कि जिस विशेष अधिवेशन के लिए यह भय हो रहा था कि इसमें सुधार के विषय में फूट पड़ जायगी, वह सफलतापूर्वक समाप्त हो गया और गौर के साथ चर्चा होने के वाद ऐसे निर्णयों पर पहुँचा जिससे विभिन्न मतों में मेल हो गया और सारे देश के अधिकांश कांग्रेसियों ने पूर्ण-रूप से उनका समर्थन किया। उन्हीं दिनों मुस्लिम-लीग की भी वैठक की गई थी, जिसके सभापति थे महमूदावाद के राजा साहव। उसमें भी कांग्रेस से मिलता-जुलता ही प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन भारत के दुःखों का अन्त नहीं हुआ। भारत-रक्षा-कानून, जो देश के किसी भी व्यक्ति को कुछ भी करने से रोक सकता था, या कुछ भी करने की आज्ञा दे सकता था, जोरों के साथ अपना काम कर रहा था। मौलाना अवुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों की नजरवन्दी का तो हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं। अमृतसर-कांग्रेस के पहले अली-वन्धु कांग्रेसी नहीं थे। १९१९ में रिहा होते ही वह अमृतसर-कांग्रेस में पहुँचे थे। मुहम्मद अली "कामरेड" नाम के तेज और चरपरे साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनके वड़े भाई शौकतअली "हमदर्द" के सम्पादक थे। यह उर्दू का दैनिक पत्र था। महायुद्ध के छिड़ते ही ब्रिटिश-सरकार की तरफ से लोगों को दिखाने के लिए वड़ी शान से एक घोषणा की गई, जिसमें यह कहा गया था कि युद्ध निर्वल राष्ट्रों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। मौलाना मुहम्मदअली ने अपने पत्र में एक जोरदार लेख लिखा था, जिसका नाम था "मिश्र को खाली कर दो"। मौलाना और अली-वन्धु उसी समय,

नजरबन्द कर दिये गये थे। वे इसी अवस्था में २५ दिसम्बर १६१६ तक रहे थे, जब कि शाही घोषणा के अनुसार, जिसमें कि राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये थे, वे भी मुक्त कर दिये गये।

महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने और सिपाही भर्ती करने का तरीका निहायत एतराज के काबिल था। इन तरीकों की बदौलत, जिन्हें लॉर्ड विलिंगडन की सरकार ने "दबाव और समझाने के तरीके" कहा था परन्तु जो दरअसल ज्यादतियां थीं, पंजाब और अन्य जगह आगे चलकर भयंकर स्थितियां पैदा हो गईं। देहात में तो "इंडेण्ट" की प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्थानीय अधिकारियों को यह बताना आवश्यक था कि उनके हलके से युद्ध के लिए कितना धन मिल सकता था और फिर उसीके अनुसार मातहत अधिकारी, अपनी बात को कायम रखने के लिये, "दबाव तथा समझाने" की नीति को काम में लाकर युद्ध के लिए जितना हो सकता था रुपया वसूल करते थे। इन उपायों से अन्त में ऐसी स्थिति पैदा हुई कि एक बार लोगों ने क्रोध में आकर एक तहसीलदार का बंगला घेर लिया और उसके बाल-बच्चों को छोड़कर उसे मय बंगले के जलाकर भस्म कर दिया।

रौलट कमिटी की रिपोर्ट

यहां यह बात स्मरण रखना चाहिए कि इससे पहले वर्ष सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की थी। सर सिडने रौलट उसके सभापति थे और कुमारस्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र सदस्य थे। इसका काम इस बात की जांच करके रिपोर्ट करना था कि भारत में किस प्रकार और किस हद तक क्रान्तिकारी-आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले षड्यन्त्र फैले हुए हैं। और उनका मुकाबला करने में जो दिक्कतें पेश आती हैं उनकी भी छान-बीन करके, यदि उसके लिए किसी कानून को बनाने की जरूरत हो तो उसके लिए भी, वह सरकार को उचित सलाह दे। कमिटी ने जांच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी। रिपोर्ट में जिस कानून की सलाह दी गई थी, वह बड़ी कौंसिल में पेश भी कर दिया गया। इससे सारे देश में एक तहलका मच गया। सब जगह विरोध-प्रदर्शन किया गया। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय तक केवल रिपोर्ट ही प्रकाशित हो पाई थी। कांग्रेस ने रौलट-कमिटी की सिफारिशों की निन्दा की और कहा कि यदि उसे कार्य-रूप में लाया गया तो भारतीयों के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप होगा और वह उचित लोकमत के बनने में बाधक बनेगा।

दिल्ली-कांग्रेस

कांग्रेस का साधारण वार्षिक अधिवेशन (आगामी दिसम्बर मास में) दिल्ली में होनेवाला था। दिल्ली अधिवेशन का सभापति प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों और स्वागत-समिति ने लोकमान्य तिलक को चुना था। लेकिन उन्हें वेलेन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मुकदमे के सम्वन्ध में इंग्लैण्ड जाना था। अतः सभापति वनने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर पं० मदनमोहन मालवीय को सभापति वनाया गया। हकीम अजमलखां स्वागताध्यक्ष थे। ११ नवम्वर १९१८ की अस्थायीसन्धि के वाद महायुद्ध का अन्त हो गया था। मित्र-राष्ट्रों को पूर्ण सफलता मिली थी और राष्ट्रपति विल्सन, लायड जार्ज तथा मित्र-राष्ट्रों के अन्य राजनीतिज्ञों ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्तों की घोपणा कर दी थी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन घोपणाओं को तथा आलोचनाओं को, जो माण्ट-फोर्ड-रिपोर्ट पर विशेप अधिवेशन के वाद हुई थीं, सामने रखकर कांग्रेस-शासन-सुधार-योजना पर पुनः विचार करे। दिल्ली-कांग्रेस में भी उपस्थिति वहुत थी। ४,८६५ प्रतिनिधि आये थे।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सम्राट् के प्रति राजभक्ति प्रकट की और युद्ध के, जो कि संसार के सव लोगों की स्वाधीनता के लिए लड़ा गया था, सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर वधाइयां दीं। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा कांग्रेस ने स्वतन्त्रता, न्याय और आत्म-निर्णय के लिए मित्र-राष्ट्रों के सैनिकों की वीरता और खासकर भारतीय सेना की सफलताओं की प्रशंसा की। तीसरे प्रस्ताव द्वारा इस वात की प्रार्थना की गई कि शान्ति-सम्मेलन और व्रिटिश-पार्लमेण्ट भारत को उन उन्नतिशील देशों में समझें जिनपर स्व-शासन का सिद्धान्त लागू होगा। इसके लिए जो तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए वह यह वताई गई कि उन सारे कानूनों, आर्डिनेंसों और रेग्युलेशनों को, जिनके कारण स्वतंत्रतापूर्वक राजनतिक समस्याओं पर खुलकर वादविवाद नहीं किया जा सकता, और जिनके द्वारा अधिकारियों को गिरफ्तार करने, नजरवन्द करने, रोकने, देश-निकाला देने, सजा करने का, सावारण अदालतों में विना मुकदमा चलाये ही अधिकार दे दिया है, तुरन्त ही उठा लिया जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी मांग पेश की थी कि साम्राज्य-नीति के पुनः निर्माण में पार्लमेण्ट शीघ्र ही भारत को ऐसे पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का एक कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशों में है। कांग्रेस ने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति-सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व भी चुने हुए व्यक्तियों-द्वारा हो। इसके लिए लोकमान्य तिलक, गांधीजी और श्री हसन इमाम को प्रतिनिधि भी चुना गया।

शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस ने उसी विशेष अधिवेशनवाले कांग्रेस-लीग-योजना के प्रस्ताव को ही दोहराया। साथ ही यह बात भी दोहराई गई कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य है और शान्ति एवं देशरक्षा-सम्बन्धी सब अधिकार, कुछ अपवादों को छोड़कर, भारत-सरकार को है। एक दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, इनके अलावा जो मुद्दे रह गये थे उन्हें भी दोहराया गया—सिर्फ कुछ अपवादों को छोड़कर, जो कि ये हैं—(१) प्रान्तों में तुरन्त ही पूर्ण उत्तरदायी शासन जारी कर देना चाहिए और (२) प्रस्तावित वैध सुधारों के लाभों से किसी भी भाग को वंचित न रखना चाहिए। रौलट-कमिटी की रिपोर्ट पर भी विचार हुआ। इसके सम्बन्ध में भी बम्बई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह बात कही गई कि इससे शासन-सुधारों को सफलतापूर्वक व्यावहारिक-रूप देने में बाधा पड़ेगी। कांग्रेस ने इस बात पर भी जोर दिया कि तुरन्त ही भारत-रक्षा-कानून, प्रेस-एक्ट, राजद्रोह सभाबन्दी-कानून, क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट एक्ट, रेग्युलेशन्स तथा इसी प्रकार के अन्य दमनकारी कानूनों को उठा लिया जाय और सारे नजरबन्दों तथा राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर दिया जाय।

औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर भी, जिसके पं० मदनमोहन मालवीय भी एक सदस्य थे, विचार हुआ। उसकी सिफारिशों का और इस नीति का स्वागत करते हुए कि भविष्य में सरकार को इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक काम करना चाहिए, कांग्रेस ने आशा की कि इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने में यह उद्देश सामने रक्खा जायगा कि भारतीय पूंजी और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशों की लूट से भारत को बचाया जाय। कांग्रेस ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि टैरिफ के प्रश्न की जांच को कमीशन की सीमा से बाहर कर दिया गया है। कांग्रेस ने कमीशन की इस सिफारिश का समर्थन किया कि भारत-सरकार की कार्य-कारिणी में उद्योग-धन्धे का पृथक् प्रतिनिधित्व रक्खा जाय और उद्योग-धन्धों के प्रान्तीय विभाग भी हों। कांग्रेस ने प्रान्तीय तथा भारतीय ऐसे सलाहकार-मण्डल बनाये जाने की आवश्यकता बताई जिनमें भारतीय औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं और व्यापारी-मण्डलों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि हों। उसकी राय में, जिन इम्पीरियल इंडस्ट्रीयल और केमिकल नौकरियों का प्रस्ताव किया जा रहा था उनका संगठन निश्चित वेतन पर किया जाय और विश्वविद्यालय व्यापारिक कालेजों की स्थापना करें और सरकार उनको मदद दे। रिपोर्ट की सिफारिशों में उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता पहुँचाने-वाली संस्थाओं का संगठन करने की सिफारिश नहीं की गई थी; इसपर कांग्रेस ने खेद प्रकट किया और औद्योगिक बैंक जारी करने पर जोर दिया। एक और प्रस्ताव-

द्वारा कांग्रेस ने सरकार से अली-बन्धुओं को मुक्त कर देने की प्रार्थना की। युद्ध के बन्द हो जाने और अभूतपूर्व आर्थिक संकट के कारण कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि युद्ध के कार्यों के लिए ४ करोड़ ५ लाख रुपया देने के भार से भारत को मुक्त कर दिया जाय। आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों के सम्बन्ध में भी एक बड़ा ही मनोरंजक प्रस्ताव कांग्रेस ने पास किया। उसमें सरकार से सिफारिश की गई कि विदेशी चिकित्सा प्रणाली के लिए जो सुविधाएँ प्राप्त हैं उन्हीं की व्यवस्था आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों के लिए भी कर दी जाय।

इस वर्णन से यह मालूम हो जायगा कि एक ओर जहां इस कांग्रेस ने बम्बई-कांग्रेस के प्रस्तावों को प्रायः दोहराया, वहां कुछ आगे भी कदम बढ़ाया। लेकिन यहाँ की कांग्रेस में वह मेल-मिलाप नहीं रहा जो बम्बई में (सितम्बर १९१८) दिखाई दिया। मदरास प्रान्त और अन्य नरम-दलवाले तो बम्बई प्रस्ताव के पक्ष में थे, लेकिन बहुमत बम्बई-प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने के अनुकूल था। और जब इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो यह निश्चय हुआ कि शिष्ट-मण्डल के सदस्य दिल्ली की मांग के लिए ही उद्योग करें। इससे वे लोग शिष्ट-मण्डल में से स्वतः ही निकल गये जो बम्बई-प्रस्ताव के पक्ष में थे। शास्त्रीजी ने "निराशा-जनक और असन्तोषजनक" शब्दों को निकाल देने का संशोधन उपस्थित किया और कहा कि १५ वर्ष की मीयाद को प्रस्ताव में से निकाल दिया जाय। लेकिन बहुमत से मूल प्रस्ताव ही पास हुआ। अन्त में युवराज का स्वागत-संबंधी प्रस्ताव जहां का तहां रह गया।

: ५ :

अहिंसा मूर्त्त-रूप में—१९१९

दिल्ली-कांग्रेस से देश में कोई शान्ति स्थापित नहीं हुई। १९१९ के फरवरी में रौलट-बिल ने देश को अपना दर्शन दिया। वे दो बिल थे। एक तो अस्थायी था। उसका उद्देश था भारत-रक्षा-कानून के समाप्त हो जाने से जो स्थिति पैदा होती उसका मुकाबला करना। वह भी युद्ध के बाद शान्ति स्थापित होने के ६ मास बाद। उसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजों की अदालत में पेश हों और वे शीघ्र उनका फैसला कर दें एवं जिन स्थानों में क्रान्तिकारी अपराध बहुत हों वहां अपील भी न हो सके। इस कानून-द्वारा यह अधिकार भी दे दिया गया था कि राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर संदेह हो उससे जमानत ले ली जाया करे, उसे किसी स्थान-विशेष में रहने और किसी खास काम को करने से रोका जा सके। किसी व्यक्ति को ऐसा हुक्म देने से पहले उसके विरुद्ध जो आरोप होंगे उनकी जांच एक जज और एक गैर-सरकारी आदमी किया करेगा। तीसरे प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिसपर उचित-रूप में यह संदेह हो कि वह कुछ ऐसे अपराध करने जा रहा है जिससे सार्वजनिक शान्ति-भंग होने की आशंका हो, तो वह उन्हें गिरफ्तार करके उल्लिखित स्थानों में बन्द कर दें और यह बता दें कि इन अवस्थाओं या स्थिति में रहना पड़ेगा। और वे ख़तरनाक आदमी, जो कि पहले से ही जेलों में हैं, उन्हें इस बिल के अनुसार लगातार जेल में रोक रक्खा जा सकता था। दूसरा बिल साधारण फौजदारी-कानून में एक स्थायी परिवर्त्तन चाहता था। किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश से पास रखना, ऐसा अपराध करार दे दिया जाता जिसमें जेल की सजा हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति सरकारी गवाह बनने को राजी हो तो उसकी रक्षा का भार अधिकारियों पर रक्खा गया था। उन अपराधों के लिए, जिनके लिए सरकार की आज्ञा पहले से प्राप्त किये बिना मुकदमा नहीं चल सकता, जिला-मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दिया गया था कि वे पुलिस-द्वारा उस मामले की प्रारम्भिक जांच करवा लें। किसी भी ऐसे आदमी से, जिसे राज्य के विरुद्ध कोई अपराध करने में सजा

मिल चुकी हो, उसकी सजा के वाद दो वर्ष तक की नेकचलनी की जमानत ली जा सकती थी।

रौलट-विल का गांधीजी द्वारा विरोध

रौलट-रिपोर्ट के वाद, ६ फरवरी १९१९ को, विलियम विन्सेण्ट ने वड़ी कौंसिल में, रौलट-विलों को पेश किया। पहला विल मार्च के तीसरे सप्ताह में पास हो गया था और दूसरा वापस ले लिया गया। गांधीजी ने यह घोपणा की कि यदि रौलट-कमीशन की सिफारिशों को विल का रूप दिया गया तो वह सत्याग्रह-युद्ध छेड़ देंगे। इसके लिए गांधीजी ने देश में सर्वत्र दौरा किया। उनका सव जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गांधीजी तो देश के लिए, अन्य नेताओं की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति के समान ही थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यों किया? सरकार इसका उत्तर अपनी १९१९ की रिपोर्ट में इस प्रकार देती है :—

"मि० गांधी अपनी निःस्वार्थता और ऊँचे आदर्शों के कारण आमतौर पर टॉल्स्टाय के अनुयायी समझे जाते हैं। भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो लड़ाई लड़ी उसके कारण उन्हें वह सव मान-गौरव प्राप्त है जोकि पूर्वी देशों में एक तपस्वी और त्यागी नेता को प्राप्त होता है। जवसे वह अहमदावाद में रहने लगे हैं, वरावर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं। दलितों और पीड़ितों की सेवा के लिए तैयार रहने के कारण, वह अपने देशवासियों को और भी प्रिय हो गये हैं। वम्वई अहाते भर में तो, क्या देहात और क्या नगर, अधिकांश जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनकी सवपर धाक है। उन्हें लोग जिस आदर-भाव से देखते हैं उसके लिए 'पूजा' शव्द का प्रयोग करना अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता। भौतिक वल से उनका विश्वास आत्मवल में अधिक है। इसीलिए गांधीजी का यह विश्वास हो गया है कि उन्हें इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में रौलट-एक्ट के खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में सफलता-पूर्वक आजमाया था।" २४ फरवरी को उन्होंने इसकी घोपणा कर दी कि यदि विल पास किये गये तो वह सत्याग्रह प्रारम्भ कर देंगे। सरकार तथा वहुत-से भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस घोपणा को वहुत चिन्ता की दृष्टि से देखा। वड़ी कौंसिल के कुछ नरम-दलवाले सदस्यों ने तो सार्वजनिक-रूप से ऐसे कार्य के अनिष्ट परिणामों को वतलाया था। श्रीमती वेसेण्ट ने तो, जिन्हें भारतीय मनोवृत्ति का अच्छा ज्ञान था, गांधीजी को अत्यन्त गंभीरता-पूर्वक चेतावनी दी कि यदि उन्होंने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तियां उभड़ उठेंगी जिनसे

न जाने क्या-क्या भयंकर बुराइयां हो सकती हैं। यहां यह बात स्पष्ट-रूप से बता देना चाहिए कि गांधीजी के रुख या घोषणा में कोई भी ऐसी बात नहीं थी जिससे कि उनके आन्दोलन का श्रीगणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नहीं रक्षात्मक पद्धति है। गांधीजी तो शुरू ही से पशु-बल की निन्दा करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि वह सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देंगे कि वह रौलट-एक्ट का परित्याग कर दे। १८ मार्च को उन्होंने रौलट-बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, जो इस प्रकार है :—

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इंडियन क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल इमरजेन्सी पावर बिल नं० २ अन्यायपूर्ण हैं और न्याय और स्वाधीनता के सिद्धान्तों के घातक हैं। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का हनन होता है जिनपर कि भारत की और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को कानून का रूप दिया गया, तो जबतक इन्हें वापस न ले लिया जाय तबतक हम इन तथा अन्य कानूनों को भी, जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जानेवाली कमिटी उचित समझेगी, मानने से नम्रतापूर्वक इनकार कर देंगे। हम इस बात की भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेंगे और किसीके जान-माल को किसी तरह नुकसान न पहुँचावेंगे।"

देश ने चारों तरफ से आन्दोलन में खूब साथ दिया। हां, प्रारम्भ में बंगाल अलबत्ते खामोश रहा था। दक्षिण ने भी उसमें आशातीत साथ दिया। गांधीजी ने उपवास के साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हड़ताल के लिए नियत किया गया था। इस दिन लोगों को उपवास रखने, ईश्वर-प्रार्थना करने, प्रायश्चित करने तथा देशभर में सार्वजनिक सभायें करने के लिये कहा गया था। बाद को यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल नियत की गई। परन्तु इस परिवर्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नहीं पहुँची। इसलिए वहां ३० मार्च को ही जुलूस निकला और हड़ताल हुई। गोली भी चली। इस दिन के जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी। इसपर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' बस, गोरों की धमकी हवा में उड़ गई। लेकिन दिल्ली के रेलवे-स्टेशन पर कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें गोली चली और ५ मरे तथा अनेक घायल हुए। "६ अप्रैल को देशव्यापी प्रदर्शन हुआ।" सरकार की १९१९ की रिपोर्ट में कहा गया है—"सब लोग बड़े ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के

की दिखाई पड़ती थी। और वह था हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृ-भाव। अब दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुए थे। हर सभा से यही आवाज निकलती थी। इस जोशो-खरोश के जमाने में छोटी जातियों ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृ-भाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते-देते-थे। जुलूसों के झण्डों और नारों दोनों से, हिन्दू-मुसलमानों का मेल ही प्रकट होता था। एक जगह तो एक मसजिद के इमाम पर खड़े होकर हिन्दू-नेताओं को बोलने भी दिया गया था।" इस प्रकार के मेल का एक तात्कालिक कारण था। युद्ध के पश्चात् टर्की की अस्तव्यस्त अवस्था हो गई थी। इसपर मुसलमान स्वभावतः बहुत खिन्न थे। साथ ही खिलाफत के लिए जो खतरा था उससे तो उनमें और भी उत्तेजना फैली हुई थी। हिन्दुओं ने मुसलमानों की इन भावनाओं के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट की।

देश ने इस नई विचार-धारा को तुरन्त ही हृदय से अपनाया। कांग्रेस तथा देश दोनों के लिए गांधीजी बहुत मान्य हो गये थे। १९१८ की दिल्ली-कांग्रेस में शान्ति-सम्मेलन में प्रतिनिधि भेजने के सम्बन्ध में श्री चित्तरंजन दास का एक प्रस्ताव था। उसमें गांधीजी का नाम भूल से छूट गया था। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती ने ज्योंही इस ओर प्रस्तावक का ध्यान खींचा, उन्होंने क्षमा-याचना करते हुए प्रतिनिधियों की सूची में गांधीजी का नाम जोड़ दिया। इंग्लण्ड के लिए जानेवाले शिष्ट-मण्डल के सदस्यों में भी उनका नाम था। १९१९ के अप्रैल मास से भारतीय इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ होता है।

पंजाब की दुर्घटनायें

भारतवर्ष के कष्ट-सहन और संघर्ष का दृश्य अब पंजाब में दिखाई देने लगा जो कि विदेशी उद्योग-धन्धे और व्यापारिक आक्रमण के लिए भारत का द्वार बना हुआ है। पंजाब सिक्खों तथा भारत की अन्य सैनिक जातियों का निवास-स्थान है। क्या पंजाब को, पढ़े-लिखे और कांग्रेसी लोगों को अपने स्वराज्य-आन्दोलन के लिए इस्तेमाल करने को खाली छोड़ दिया जाय? इसलिए पंजाब का निरंकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस बात पर तुला हुआ था कि वह अपने प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन की छूत की बीमारी को न फैलने दे। और वास्तव में कांग्रेस और उसमें इस बात पर रस्सा-कशी थी कि आया १९१९ में अमृतसर में होनेवाली कांग्रेस पंजाब में हो या न हो। १० अप्रैल १९१९ के दिन प्रातःकाल ही अमृतसर के जिला-मजिस्ट्रेट ने डाक्टर

किचलू और डाक्टर सत्यपाल को, जो कि कांग्रेस का संगठन कर रहे थे, अपने बंगले पर बुला भेजा और वहां से चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस घटना से एक सनसनी फैल गई। खबर फौरन ही दूर-दूर तक पहुँच गई। और लोगों का एक झुण्ड जिला-मजिस्ट्रेट के यहां उनका पता पूछने के लिये जानेवाला था, परन्तु उस चौराहे पर, जो शहर से सिविल-लाइन की ओर जाते हुए सिविल-लाइन और शहर के बीच में है, फौजी सिपाहियों ने भीड़ को रोक लिया। और अब वह ईंटों के फेंकने की कहानी आती है जो सरकार की मदद के लिए हर वक्त तैयार रहती है। भीड़ पर गोली चलाई गई, जिसके फल-स्वरूप एक या दो की मृत्यु के साथ-साथ अनेक लोग घायल हुए। लोगों की भीड़ अब शहर को वापस लौटी और मरे हुए और घायलों का शहर में होकर जुलूस निकाला। रास्ते में नैशनल-बैंक की इमारत में आग लगा दी और उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला। इस प्रकार लोगों की उत्तेजित भीड़ ने ५ अंग्रेज़ों को मारा और बैंक, रेलवे का गोदाम तथा और सार्वजनिक इमारतों को जला कर खाक कर दिया। स्वभावतः अधिकारी इन घटनाओं से आग-बबूला हो गये। स्थानीय अधिकारियों ने अपने ही आप १० अप्रैल को शहर फौज के अधिकार में दे दिया, इस आशा में कि ऊपर के अधिकारी इसकी स्वीकृति दे देंगे।

गुजरानवाला और कसूर में बहुत अधिक खून-खराबी हुई। कसूर में तो १२ अप्रैल को भीड़ ने रेलवे-स्टेशन को बहुत नुकसान पहुँचाया। तेल के एक छोटे गोदाम को जला दिया। तार और सिगनल तोड़-फोड़ डाले। एक ट्रेन पर आक्रमण किया, जिसमें कुछ यूरोपियन थे। दो सिपाहियों को इतना पीटा कि उनके प्राण निकल गये। एक ब्रान्च-पोस्ट आफिस को लूट लिया। मुख्य पोस्ट आफिस को जला डाला। मुन्सिफी कचहरी में आग लगा दी, और भी बहुत-सी इमारतों को नुकसान पहुँचाया। यह सरकारी बयान का सारांश है। परन्तु लोगों का यह कहना है कि पहले भीड़ को उत्तेजना दिलाई गई थी।

गुजरानवाले में १४ अप्रैल को भीड़ ने एक ट्रेन को घेर लिया, और उसपर पत्थर बरसाये। एक छोटे-से रेलवे-पुल को जला दिया और एक दूसरे रेलवे-पुल को भी जलाया, जहां कि गाय का एक मरा बच्चा लटका हुआ था। लोगों का कहना है कि उसे पुलिस ने मार डाला और हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए उसे पुल पर टांग दिया था। इसके साथ-ही-साथ तार-घर, डाक-खाना और रेलवे-स्टेशन में भी आग लगा दी थी। डाक-बंगला, कलक्टरी कचहरी, एक गिरजा, एक स्कूल और एक रेलवे का गोदाम भी जला दिया था।

ये तो हुईं खास-खास घटनायें। अन्य छोटे-छोटे स्थानों में कुछ गड़बड़ हुई। जैसे रेल-गाड़ियों पर पत्थरों का फेंका जाना तारों का काटा जाना और रेलवे-स्टेशनों में आग का लगाया जाना।

इन्हीं दिनों में देश के विभिन्न भागों में इक्के-दुक्के हिंसा-काण्ड हुए। लाहौर में भी लूट-मार हुई और गोली चली। कलकत्ते जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पंजाब की दुर्घटनाओं की बात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डॉ० सत्यपाल के बुलाने पर गांधीजी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए चल पड़े। रास्ते में ही उन्हें हुक्म मिला कि पंजाब और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करो। उन्होंने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इसपर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में उन्हें बिठाकर १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया गया।

गांधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से अहमदाबाद में कई उपद्रव हो गये, जिनमें कुछ अंग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रैल को वीरमगांव और नड़ियाद में भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते में भी उपद्रव हुआ था—वहां गोली चली थी, जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये थे और १२ बुरी तरह घायल हुए थे। बम्बई पहुँच कर गांधीजी ने स्थिति को शान्त करने में मदद की और फिर वहां से अहमदाबाद को चल पड़े। उनकी उपस्थिति ने शान्ति स्थापित करने में बहुत काम किया। इन उपद्रवों के कारण उन्होंने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके सम्बन्ध में एक वक्तव्य निकाला।

एक ओर यह स्थिति थी तो दूसरी ओर अमृतसर में दुर्घटनायें विकट रूप धारण करती जा रही थीं। यहां स्मरण रखना चाहिए कि १३ अप्रैल तक फौजी-कानून जारी करने की कोई घोषणा नहीं की गई थी। वैसे सरकार यह बात स्वीकार करती है कि १० अप्रैल से ही व्यावहारिक-रूप में फौजी-कानून जारी था। सच पूछिए तो लाहौर और अमृतसर में तो १५ अप्रैल को ही फौजी-कानून जारी करने की घोषणा की गई थी। उसके बाद ही पंजाब के दो-तीन जिलों में वह और जारी कर दिया गया था। १३ अप्रैल (वर्ष-प्रतिपदा) को, जो कि हिन्दुओं के संवत्सर का दिन था, अमृतसर में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और जालियांवाला-बाग में एक बड़ी भारी सभा हुई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य में है। शहर के मकान ही इसकी चहार-दीवारी बनाये हुए हैं। इसका दरवाजा बहुत ही संकड़ा है, इतना कि एक गाड़ी उसमें होकर नहीं निकल सकती। बाग में जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, जिनमें,

पुरुष, स्त्रियां और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नाम का एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। जैसे कि हन्टर कमीशन के सामने अपनी गवाही में उसने कहा था कि उसने लोगों को तितर-वितर होने की आज्ञा दी और फिर बस गोली चलाने का हुक्म दे दिया। लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि तितर-वितर हो जाने के हुक्म देने के तीन मिनट बाद ही उसने गोली चलवा दी थी। यह बात तो स्पष्ट ही है कि बीस हजार आदमी दो-तीन मिनट में तितर-वितर नहीं हो सकते थे। और वह भी विशेष कर एक बहुत-ही तंग दरवाजे में होकर। गोली तबतक चलती रही जबतक कि सारे कारतूस खतम नहीं होगये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वयं अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलों की संख्या एक और दो हजार के बीच में थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजों से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बाग में एक ऊंचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुःखद बात वास्तव में यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और वे लोग जो सख्त घायल हो गये थे, उन्हें सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहां उन्हें रात-भर न तो पानी ही पीने को मिला और न डॉक्टरी या कोई अन्य सहायता ही। डायर का कहना था, जैसा कि बाद को उसने प्रकट किया, "चूंकि शहर फौज के कब्जे में दे दिया गया था और इस बात की डोंडी पिटवा दी गई थी कि कोई भी सभा करने की इजाजत नहीं दी जायगी, तो भी लोगों ने उसकी अवहेलना की, इसलिए मैंने उन्हें एक सबक बता देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें।" आगे चल कर उसने कहा कि "मैंने और भी गोली चलाई होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। मैंने सोलह सौ बार ही गोली चलाई, क्योंकि मेरे पास कारतूस खतम हो गये थे।" उसने और कहा—"मैं तो एक फौजी गाड़ी (आरमर्ड कार) ले गया था, लेकिन वहां जाकर देखा कि वह बाग के भीतर घुस ही नहीं सकती थी। इसलिए उसे वहीं बाहर छोड़ दिया था।"

जनरल डायर के राज्य में कुछ ऐसी सजायें भी देखने को मिलीं जिनका सपने में भी खयाल नहीं हो सकता था। उदाहरण के लिए अमृतसर में नलों में पानी बन्द कर दिया गया था, और बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेंत लगाना आमतौर पर चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेंगने के हुक्म' ने इन सबको मात कर दिया था। मिस शेरवुड नाम की एक पादरी लेडी-डॉक्टर पर उन

समय कुछ लोगों ने अक्रमण किया था जब कि वह एक गली में साइकिल पर होकर जा रही थी। इसलिए उस गली में निकलनेवाले हरेक आदमी को पेट के बल रेंगकर जाने की आज्ञा थी। उस गली में जितने आदमी रहते थे सभी को पेट के बल रेंगकर जाना और आना पड़ता था, हालांकि उस गली में रहनेवाले भले आदमियों ने ही मिस शेरवुड की रक्षा की थी। तारीफ तो यह है कि बड़ी कौंसिल में क्वार्टर-मास्टर-जनरल हट्सन के लिए यह घटना एक हँसी का विषय बन गई थी।

रेलवे-स्टेशनों पर तीसरे दर्जे का टिकट बेचने की मनाही कर दी गई थी। इससे लोगों का सफर करना आमतौर पर बन्द हो गया था। दो आदमियों से अधिक एक-साथ पटरियों पर नहीं चल सकते थे। साइकिलें सब-की-सब फौज ने अपने कब्जे में ले ली थी। केवल यूरोपियन लोगों की साइकिलें उनके पास रहने दी गई थीं। जिन लोगों ने अपनी दूकानें बन्द कर दी थीं उन्हें खोलने के लिए बाध्य किया गया। न खोलनेवाले के लिए कठोर दण्ड की आज्ञा थी। चीजों की कीमत फौजी अफसरों ने नियत कर दी थी। बैलगाड़ियां उन्होंने अपने कब्जे में कर ली थीं। किले के नीचे नंगा करके सब के सामने बेंत लगवाने के लिए एक चबूतरा बनवाया गया था और शहर के अनेक भागों में बेंत लगवाने के लिए टिकटिकियां लगवा दी गई थीं।

अमृतसर में खास अदालत द्वारा जिन मुकदमों का फसला किया गया था, उनके कुछ आंकड़े यहां देते हैं। संगीन जुर्मों के अभियोग में २९८ आदमियों पर मार्शल-लॉ-कमीशन के सामने मुकदमे चले। मुकदमा चलाने में कानून, सफाई तथा जाब्ते के साधारण नियमों के पालन करने का भी, जिनके अनुसार आमतौर पर हर जगह मुकदमे चलाये जाते हैं, कोई ध्यान नहीं रक्खा गया था। इनमें से २१८ आदमियों को सजायें दी गईं। ५१ को फांसी की सजा, ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०–१० बरस की सजा, ७९ को ७–७ बरस की सजा, १० को ५–५ की, १३ को ३–३ की और ११ को बहुत थोड़ी-थोड़ी मियाद की सजायें दी गईं। इसमें वे मुकदमे शामिल नहीं हैं जिनका फैसला सरसरी में फौजी अफसरों ने किया था। इनकी संख्या ६० थी, जिनमें से ५० को सजा हुई थी, और १०५ आदमियों को मार्शल-लॉ के अनुसार मुल्की-मजिस्ट्रेटों ने सजा दी थी।

हन्टर-कमिटी के सदस्य जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में जनरल डायर ने जो उत्तर दिया था उसे भी हम यहां देते हैं :—

जस्टिस रैंकिन—जनरल, मुझे इस प्रकार प्रश्न करने के लिए जरा क्षमा कीजिए, कि आपने जो-कुछ किया वह क्या एक प्रकार का भय-प्रदर्शन नहीं था?

जनरल डायर—नहीं, वह भय-प्रदर्शन नहीं था। वह एक भयानक कर्त्तव्य था, जिसका मुझे पालन करना पड़ा। मेरा खयाल है, वह एक दयापूर्ण कार्य था। मैंने सोचा कि मैं खूब अच्छी तरह गोली चलाऊँ और इतने जोर के साथ चलाऊँ कि मुझे या अन्य किसी को फिर कभी गोली न चलानी पड़े। मेरा ख्याल है कि यह सम्भव है कि बिना गोली चलाये हुए भी मैं भीड़ को तितर-बितर कर देता। लेकिन वे फिर वापस आ जाते और मेरी हँसी उड़ाते और मैं बेवकूफ बना होता।

जनरल डायर के कार्य को सर माइकेल ओडायर ने, जो पंजाब के गवर्नर थे, उचित ठहराया था। आपकी ओर से जनरल डायर को एक तार दिया गया था, जिसमें लिखा था—"आपका कार्य ठीक था। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सराहना करते हैं।"

उपर्युक्त बातें जो लिखी गई हैं वे तो वे हैं जिन्हें हन्टर-कमीशन के सामने १६२० के आरम्भ में जनरल डायर ने स्वयं स्वीकार किया था। अमृतसर की दुर्घटना के बाद, पंजाब से आने और जानेवाले लोगों पर इतनी कड़ी निगरानी थी कि दुर्घटना का विस्तारपूर्वक समाचार कांग्रेस-कमिटी को भी जुलाई १६१६ से पहले नहीं ज्ञात हो सका। और मालूम भी हुआ तो खुल्लम-खुल्ला नहीं। कलकत्ते के लॉ-एसोसिएशन के भवन में जब कांग्रेस-कमिटी की बैठक हो रही थी, यह समाचार कानों-कान डरते-डरते कहा गया—फिर भी यह सावधानी रक्खी गई कि यह समाचार औरों से न कहा जाय। पंजाब की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही बल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानों को भी अत्याचार और बर्बरतापूर्ण अमानुष कृत्यों का शिकार होना पड़ा था, जिनकी कथा सुनकर खून खौलने लगता है।

फौजी कानून

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानों की अपेक्षा लाहौर में फौजी कानून का बहुत जोर था। करफ्यू-आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के ८ बजे के बाद बाहर निलकता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था, बेंत लगाये जा सकते थे, जुर्माना हो सकता था, कैद हो सकती थी, या और कोई दण्ड दिया जा सकता था। जिनकी दूकानें बन्द थीं उन्हें खोलने की आज्ञा दे दी गई थी। न खोले उसे या तो गोली से उड़ाया जा सकता और या उसकी दूकान खोलकर सारा सामान लोगों में मुफ्त बांट दिया जा सकता था।

वकील तथा दलालों को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे शहर से बाहर कहीं न जावें। जिनके मकानों की दीवारों पर फौजी कानून के नोटिस चिपकाये गये थे

उन्हें यह हुक्म दे दिया गया था कि वे उनकी हिफाजत करें और यदि किसी ने उन्हें विगाड़ दिया या फाड़ दिया तो वे सजा के मुस्तहक होंगे, हालांकि रात्रि के समय उन्हें वाहर रहने की इजाजत नहीं थी। एक-साथ वरावर दो आदमियों से अधिक के चलने की मनाही थी। कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए यह आज्ञा थी कि वे दिन में चार वार, फौजी अफसरों के सामने, विभिन्न स्थानों पर हाजिरी दिया करें। लंगर या अन्न-क्षेत्र वन्द कर देने का हुक्म दे दिया गया था। हिन्दुस्तानियों की मोटर-साइकिलों तथा मोटरों को फौज में जमा कर देने का हुक्म जारी कर दिया था। इतना ही नहीं, अधिकारियों को वे इस्तेमाल के लिए भी दे दी गई थीं। हिन्दुस्तानियों के पास अपने जो विजली के पंखे थे उन्हें तथा विजली के अन्य सव सामान को घरों से निकलवाकर गोरे सिपाहियों के इस्तेमाल के लिए जमा करा लिया गया था। किराये पर चलनेवाली सवारियों को शहर से वहुत दूर एक स्थान पर जाकर हाजिरी लिखानी पड़ती थी। एक दिन एक वूढ़ा आदमी, शाम के आठ वजे के वाद, अपनी दूकान के द्वारके वाहर गली में अपनी गाय की देख-भाल करते पाया गया। वह तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया गया और करफ्यू-आर्डर तोड़ने के इलजाम में उसके वेंत उड़वा दिये। तांगेवालों ने भी हड़ताल में भाग लिया था। इन लोगों को सवक सिखाने के लिए ३०० तांगे जमा कर लिये गये थे, और यह हुक्म दे दिया गया था कि वे नगर की घनी आवादी से वाहर, कुछ खास मुकर्रर वक्त और जगहों पर, अपनी हाजिरी दिया करें। इसमें तुर्रा यह था कि फौजी अफसर, चाहे जिस तांगे को, चाहे जव, अपनी इच्छा पर ही रोक लेता था और इसमें उसकी दिन-भर की कमाई पर पानी फिर जाता था। कर्नल जॉनसन ने इस वात को स्वीकार किया था कि उसकी वहुत-सी आज्ञायें पढ़े-लिखे तथा पेशेवर आदमियों के लिए ही थीं, जैसे वकील आदि। उसका खयाल था कि यही वे लोग हैं जिनमें से राजनैतिक आन्दोलन करनेवाले पैदा होते हैं। व्यापारी लोग तथा अन्य निवासियों को, जिनकी इमारतों पर फौजी कानून के आर्डर चिपके हुए थे, उन नोटिसों की रक्षा के लिए चौकी-पहरा विठाना पड़ा था ताकि उन्हें कोई विगाड़ या फाड़ न जाय। मुमकिन था कि पुलिस का गुर्गा ही उन्हें फाड़-फूड़ जाय। एक आदमी ऐसा पकड़ा भी गया था जव लोगों ने चौकीदारों के लिए पासों की दरख्वास्त दी ताकि वे लोग रात के ८ वजे के वाद वाहर रहकर उन नोटिसों की रखवाली कर सकें, तो उत्तर मिला था कि उन्हें अपने लिए पास मिल सकते हैं, नौकरों के लिए नहीं। १६ से २० वर्ष की उम्र के लड़कों तथा विद्यार्थियों पर विशेष-रूप से कड़ी नजर थी। लाहौर जैसे शहर में, जहां कई कॉलेज हैं, विद्यार्थियों को दिन

में चार बार हाजिरी देने का हुक्म था। जहां हाजिरी ली जाती थी उनमें एक हाजिरी का स्थान कॉलेज से ४ मील की दूरी पर था। अप्रैल मास की कड़ाके की धूप में, जोकि पंजाब में वर्ष का सबसे अधिक गर्म महीना होता है और जबकि गरमी १०८ डिग्री से ऊपर होती है, इन नौजवानों को रोजाना १६ मील पैदल चलना पड़ता था। इनमें से कुछ तो रास्ते में बेहोश हो कर गिर भी जाते थे। कर्नल जॉनसन का खयाल था कि इससे उनको लाभ होता है और वे शरारत करने से बाज रहते हैं। एक कॉलेज की दीवार से फौजी कानून का एक नोटिस फाड़ डाला गया था। इस अपराध में कॉलेज के वेतनभोगी सारे कर्मचारी, जिनमें कॉलेज के प्रिन्सिपल भी शामिल थे, गिरफ्तार कर लिये गये थे और फौजी पहरे में उन्हें किले तक कवायद करते हुए ले जाया गया था, जहां कि वह फौजी पहरे में तीन दिन तक कैद रक्खे गये थे। किले के एक कोने में उन्हें रहने को स्थान दिया गया था।

इतना होने पर भी कर्नल जॉनसन, इन दिनों में जो कुछ भी उन्होंने किया उससे, बहुत ही प्रसन्न थे। और लाहौर के यूरोपियनों ने तो उन्हें विदाई देते समय एक दावत दी थी और "गरीबों का रक्षक" की उपाधि से अलंकृत करके उनकी भूरिभूरि प्रशंसा की थी। गुजरानवाला में कर्नल ओब्रायन ने, कसूर में कैप्टन डोवटन ने और शेखूपुरा में मिस्टर बॉसवर्थ स्मिथ ने खास तौर पर अत्याचार करने में खूब ही नाम कमाया था।

अमानुपिक क्रूरताएँ

कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने अपनी गवाही में कहा था कि भीड़ जहां कहीं पाई गई वहीं उसपर गोली चला दी गई। यह बात उन्होंने हवाई जहाजों के सम्बन्ध में कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेण्ट डॉड्किन्स के चार्ज में था, एक खेत में २० किसानों को एकत्र देखा। उन्होंने उनपर मशीनगन से तबतक गोली चलाई जबतक कि वे भाग नहीं गये। उन्होंने एक मकान के सामने आदमियों के एक झुण्ड को देखा। वहां एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहां उन्होंने उनपर एक बम गिरा दिया। क्योंकि उनके दिल में इस तरह का कोई शक नहीं था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिए एकत्र नहीं हुए थे। मेजर कार्वी वह सज्जन हैं जिन्होंने लोगों के एक दल पर इसलिए बम बरसाये कि उन्होंने सोचा कि ये लोग बलवाई हैं, जो शहर से आ-जा रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिए :—

"लोगों की भीड़ दौड़ी जा रही थी और मैंने उनको तितर-बितर करने के

लिए गोली चला दी। ज्योंही भीड़ तितर-वितर हो गई, मैंने गांव पर भी मशीनगन लगा दी। मेरा खयाल है कि कुछ मकानों में गोलियां लगी थीं। मैं निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नहीं कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊँचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। मेरे उद्देश की पूर्ति केवल वम वरसाने से ही नहीं हुई। गोली केवल नुकसान पहुँचाने के लिए ही नहीं चलाई गई थी, वह स्वयं गांववालों के हित के लिए चलाई गई थी। कुछ को मार कर, मैं समझता था, मैं गांववालों को फिर एकत्र होने से रोक दूँगा। मेरे इस कार्य का असर भी पड़ा था। इसके बाद शहर की तरफ मुड़ा। वहां वम वरसाये और उन लोगों पर गोलियां चलाईं जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

गुजरानवाला, कसूर और शेखूपुरा में भी अमृतसर और लाहौर के समान ही करफ्यू-आर्डर जारी कर दिया गया था, हिन्दुस्तानियों की आमदरफ्त रोक दी गई थी, एकान्त में और सवके सामने वेंत लगवाये जाते थे, झुण्ड-के-झुण्ड एक-साथ गिरफ्तार कर लिए जाते थे और सरकारी तथा खास अदालतों से सजायें दिला दी जाती थीं।

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जव कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज अफसर को मिले तो वह उसको सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हुये हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिए अच्छा था कि लोगों को यह मालूम हो जाय कि उनके नये मालिक आये हैं। लोगों के कोड़े लगवाये गये, जुर्माना किया गया और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने पर अन्य अनेक प्रकार की सजायें दी गईं। उन्होंने वहुत-से आदमियों को गिरफ्तार कराया था, जिनको विना मुकदमा चलाये ही ६ हफ्ते तक जेल में रक्खा। एकवार उन्होंने शहर के वहुत-से प्रमुख नागरिकों को यकायक पकड़कर मालगाड़ी के एक डव्वे में भर दिया। उस डव्वे में उन लोगों को एक-के-ऊपर-एक करके लाद दिया। सो भी तव जव कि वे कड़ाके की धूप में कई मील पैदल चलाकर लाये गये थे। कुछ लोगों के वदन पर तो पूरे कपड़े भी नहीं थे। मालगाड़ी के डव्वे में भरकर उन्हें लाहौर भेज दिया था। उन्हें पाखाना-पेशाव तक करने की आज्ञा नहीं दी गई थी। इसी अवस्था में वे माल-गाड़ी के डव्वे में ४४ घंटे तक रक्खे गये। उनकी जो भयानक दयनीय दशा हो गई थी, उसका वर्णन करके वताने की विशेष आवश्यकता नहीं। वे जिस समय गलियों में होकर ले जाये जा रहे थे उस समय उनके साथ-साथ रास्ते-चलते और लोग भी योंही

पकड़ लिये जाते थे और इसलिए उनकी संख्या सदैव बढ़ती रहती थी। उन्हें हाथों में हथकड़ियां डालकर और जंजीरों से बांधकर निकाला गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जंजीरों में बांध कर ले जाये गये थे। लोग समझते थे कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का यह मजाक उड़ाया जा रहा है। कर्नल ओब्रायन का कहना था कि यह इत्तफाक से हुआ था। यह सारी कार्रवाई किस स्पिरिट में की जा रही थी, इसे देखने के लिए इतना बता देना काफी होगा कि नगर के एक वयोवृद्ध महानुभाव भी इस घटना के शिकार हुए थे। वह शहर के एक बड़े ही उपकारक सज्जन थे, जिन्होंने एक लाख रुपया सम्राट् की भारत-यात्रा के उपलक्ष्य में किंग जार्ज स्कूल को दान दिया था। बाद में रिलीफ-फण्ड और वार-लोन में भी उन्होंने बहुत कुछ रुपया दिया था।

दूसरी मिसाल, कर्नल ओब्रायन के कारनामों की, यह है कि उन्होंने एक बुड्ढे किसान को गिरफ्तार किया था। वह इसलिए कि वह बेचारा अपने दो लड़कों को पेश नहीं करा सका। इतना ही नहीं, आपने उसकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी, और लोगों को यह चेतावनी दे दी थी कि अगर किसी ने भी उसको अपनी फसल से मदद की तो उसे गोली से उड़ा दिया जायगा। उन्होंने कमिटी के सामने यह स्वीकार किया था कि बुड्ढे ने स्वयं—कोई अपराध नहीं किया था, "लेकिन उसने यह नहीं बताया कि उसके बेटे कहां हैं।"

कर्नल ओब्रायन के बड़े-बड़े कारनामों के इतिहास में से ये कुछ नमूने यहां दिये गये हैं। दो सौ आदमियों को सरसरी अदालतों से सजायें मिलीं। बेंत की सजा या एक महीने से लेकर दो वर्ष तक की सजा का दण्ड दिया गया। कमीशन ने १४९ आदमियों को सजा दी, जिनमें से २२ को फांसी, १०८ को आजन्म काला-पानी तथा शेष को दस साल और उससे कम की सजा का दण्ड दिया गया था। कर्नल ओब्रायन का अन्तिम कार्य यह था कि उन्हें जब यह मालूम हुआ कि कल फौजी कानून समाप्त होनेवाला है तो उन्होंने बहुत-से लोगों के मुकदमों को २४ घंटे के भीतर ही खतम कर देने की व्यवस्था की। ओब्रायन महाशय इतने आतुर थे कि जिन मुकदमों की तारीख कई दिन पहले की डाली गई थी उनको अदालत-द्वारा तत्काल ही फैसल करा दिया कि कहीं ऐसा न हो कि फौजी कानून खतम हो जाय और लोग उनके न्याय से वञ्चित रह जायें।

कैप्टन डोवटन कसूर के इलाके में एक प्रकार से सर्वे-सर्वा ही थे। इस स्थान पर लोगों को खुलेआम फांसी देने के लिए एक फांसी-घर बनाया गया। यह स्थान, वहां के निवासियों के लिए, एक आतंक-गृह हो गया था। रेल्वे-स्टेशन के पास एक

वड़ा पिंजड़ा वनवाया गया था, जिसमें १५० आदमी रक्खे जा सकते थे। जिन लोगों के ऊपर संदेह होता था उन्हें इसमें वन्द कर दिया जाता था, ताकि आम जनता उन्हें देख सके। नगर के सारे पुरुष-निवासियों की परेड शनाख्त करने के लिए कराई जाती थी।

लोगों को खुलेआम वेंत लगवाये गये। लोगों को सिर से पैर तक नंगा करके तार के खम्भे या टिकटिकियों से वांधा जाता था। यह सार्वजनिक प्रदर्शन सोच-समझ के निश्चित किया हुआ था। एकवार नंगा करके पिटता हुआ देखने के लिए, शहर की वेश्यायों को लाया गया था। इस घटना के लिए कैप्टन साहव को हण्टर-कमीशन के सामने गवाही देते हुए जव अधिक दवाया गया तो कुछ 'शर्म' मालूम हुई थी—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कर्नल जॉनसन को एक वरात को वेंत लगवाने के मामले में कमिटी के सामने 'दुःख हुआ था।' कैप्टन साहव का कहना था कि उन्होंने पुलिस सवइन्सपेक्टर को हुक्म दिया था कि वदमाशों को वेंत लगना देखने के लिए वुला लाओ। लेकिन जव वहां मैंने स्त्रियों को देखा तो मैं दंग रह गया। परन्तु कैप्टन साहव उन वेश्याओं को वापस इसलिए नहीं भेज सके कि उनके पास उस समय उन्हें पहुँचाने के लिए सिपाही न थे। सो वे वेंतों की मार देखने के लिए वहां-की-वहीं वनी रहीं।

कैप्टन डोवटन छोटी-मोटी सजाओं का आविष्कार करने में वड़े दक्ष थे। इनके आविष्कार करने में उनका एक-मात्र उद्देश यह था, उनको "इतना आसान और नरम वनाना" जितना कि उस परिस्थिति में सम्भव था। फौजी-कानून के अपराधियों से रेलवे-स्टेशनों के माल-गोदामों पर मालगाड़ियों में माल लादने और उतारने का काम लिया जाता था। उन्होंने एक ऐसा नियम चलाया कि जिसके अनुसार लोगों को नाक रगड़नी पड़ती थी।

मि० वॉसवर्थ स्मिथ एक सिविलियन अफसर थे जिन्होंने शेखूपुरा में फौजी-कानून का दौर-दौरा किया था। उन्होंने अपने वयान में इस वात को स्वीकार किया था कि फौजी-कानून 'आवश्यक तो न था, परन्तु मेरी राय में वह 'वाञ्छनीय' अवश्य था। उन्होंने अपने हलके के सारे मुकदमों का फैसला किया था और जैसा कि अन्य स्थानों में हुआ था, उनके यहां से भी वेंत की सजायें दी जाती थीं। और, अदालत उठते ही अपराधियों के वेंत लगवा दिये जाते थे। ६ मई से लेकर २० मई तक उन्होंने ४७७ आदमियों के मुकदमे किये थे।

फौजी अधिकारियों ने एक हुक्म जारी किया था, जिसके अनुसार स्कूल के

लड़के बाध्य थे कि वे दिन में तीन बार परेड करें और झण्डे को सलामी दें। यह हुक्म स्कूल की छोटी जमातों के बच्चों के लिए भी लागू था, जिनमें ५ और ६ बरस तक के बच्चे भी शामिल थे। कितने ही बच्चे लू लग कर मर गये थे। कुछ मौकों पर लड़कों से यह कहलाया जाता था, "मैंने कोई अपराध नहीं किया है, मैं कोई अपराध नहीं करूँगा, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है!"

मेजर स्मिथ से, जो कि गुजरानवाला, गुजरात और लायलपुर में फौजी-कानून के अधिष्ठाता थे, जब सर चिमनलाल सीतलवाड ने पूछा कि "आया यह हुक्म उनके सारे इलाके-भर में लागू कर दिया गया था और आया यह सब क्लासों पर लागू और छोटे बच्चों की क्लास भी उसमें शामिल थी?" मेजर ने जवाब दिया कि उनके इलाके में जहां-जहां फौजें थीं वहां-वहां सब जगह हुक्म किया गया था। यहां तक कि पांच और छः बरस तक के बच्चों से भी परेड कराई जाती थी। लेकिन छोटे बच्चों को शाम की परेड में शामिल होने से बरी कर दिया गया था।"

कर्नल ओब्रायन ने अपनी गवाही में कहा था, कि मैं एक दिन वजीराबाद में था। मैंने देखा कि एक लड़का झण्डे की ओर मार्च करने में बेहोश हो कर गिर गया। मैंने फौज के अधिकारियों को इसके सम्बन्ध में लिखा। दूसरे दिन दो की जगह तीन बार परेड कराई गई थी। इस प्रश्न के उत्तर में, कि यदि ऐसा किया था तो क्या यह बच्चों के साथ सख्ती नहीं हुई? कर्लन ओब्रायन ने उत्तर दिया, 'नहीं'।

कुछ भी हो, मि० बॉसवर्थ के दिमाग में लोगों से अफसोस जाहिर कराने की भावना अवश्य प्रबल रही थी। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि उनका विचार एक "प्रायश्चित्त-गृह" बनाने का था। लेकिन उन्होंने इस बात से इन्कार किया कि इस इमारत में दस हजार रुपये लगे थे। इन घटनाओं के विस्तृत वर्णन पढ़ने के इच्छुकों को तो कांग्रेस-कमिटी के सामने दी गई गवाहियां और कांग्रेस की रिपोर्ट ही पढ़नी चाहिए।

दुर्घटनाओं के बाद

गांधीजी के हृदय को, घटनाओं के ऐसा अकल्पित रूप धारण कर लेने से बहुत बड़ा धक्का लगा। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि मैंने हिमालय के समान महान् भूल की है। अतः उन्होंने एक ओर तो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और दूसरी ओर यह घोषणा की, कि मैं शान्ति स्थापित करने में हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हूँ। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १४ अप्रैल १९१९ को एक हुक्म निकाला,

जिसमें स्पष्ट शब्दों में सरकार की यह इच्छा घोषित की गई थी कि वह उत्पातों का शीघ्र ही अन्त कर देने के लिए जितनी शक्ति उसके पास है उस सब को लगा देगी। इसी बीच तीसरे-अफगान-युद्ध ने पंजाब की स्थिति को और भी पेचीदा बना दिया। ४ मई को सारी फौज युद्ध के लिए तैयार कर ली गई थी। इधर फौजी कानून अपने खूनी कारनामों को ११ जून तक बराबर चलाता रहा और रेलवे के अहातों में तो यह बहुत दिनों तक इसके बाद भी जारी रहा था। फौजी कानून को अनावश्यक-रूप से एक मुद्दत तक जारी रखने के विरोध में सर शंकरन् नायर ने १९ जुलाई को वाइसराय की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। इस सारे समय में पंजाब पर एक कठोर सेंसर बिठा दिया गया था। एण्डरूज साहब को पंजाब की भूमि में कदम रखने की मनाही कर दी गई थी। बाद में उन्हें गिरफ्तार करके अमृतसर भेज दिया। यह मई मास के प्रारम्भ की बात है। मिस्टर ई० नार्टन बैरिस्टर को, जो कि पंजाब इसलिए जाना चाहते थे कि वहां कैदियों की पैरवी करें, पंजाब में घुसने की मनाही कर दी गई थी। चारों ओर से पंजाब में हुए अत्याचारों की जांच के लिए एक कमीशन बैठाने की पुकार मच रही थी। खास फौजी अदालतों-द्वारा जो लोगों को घातकी और जंगली सजायें दी गई थीं उन्हें भी कम करने के लिए एक देश-व्यापी मांग थी। लाला हरकिशनलाल को, जो कि एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी और बहुत बड़े धनिक व्यक्ति थे, आजन्म काले-पानी की सजा दी गई थी। ४० लाख रुपये के लगभग उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त करने का हुक्म दिया गया था।

सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने हन्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पंजाब के उपद्रवों की जांच करेगा। परन्तु इसके साथ ही, १८ सितम्बर को, इनडेम्निटी-बिल आया, जो कि आमतौर पर फौजी कानून के साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे मुल्तवी कराने के लिए बहुतेरा जोर लगाया, वह साढ़े चार घंटे तक बराबर बोले, लेकिन जवाब यह दिया गया कि बिल की मंशा केवल कानूनी सजा से रहित रखने की ही है—उन अधिकारियों को जिन्होंने 'शान्ति और व्यवस्था के कायम रखने की इच्छा से प्रेरित होकर ही' सब कुछ किया था। फिर भी उनके साथ महकमे की कार्रवाई तो की ही जा सकती है।

सर दीनशा वाचा ने यह घोषित किया कि इनडेम्निटी-बिल के सम्बन्ध में सरकार का जो रुख है वह ठीक है। श्रीमती बेसेण्ट, जो अबतक बराबर गांधीजी से लड़ती रही थीं, बोलीं कि रौलट-बिल में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसपर कि किसी ईमानदार नागरिक को एतराज हो सके। "जब लोगों की भीड़ सिपाहियों

पर रोड़े बरसावे तब सिपाहियों को गोली के कुछ फैर करने की आज्ञा दे देना अधिक दयापूर्ण है।" इस लेख के बाद ही श्रीमती बेसेण्ट के नाम के साथ यह वाक्य—"ईंट के रोड़ों के बदले में बन्दूक की गोलियां"—सदा के लिए जुड़ गया था। इस समय श्रीमती बेसेण्ट की लोकप्रियता रसातल को पहुँच गई थी।

२० और २१ अप्रैल को महासमिति की बैठक हुई, उसमें सरकार ने गांधीजी को दिल्ली और पंजाब से देश-निकाले का जो हुक्म दिया था उसका विरोध किया गया और पंजाब में किये गये अत्याचारों की जांच करने पर जोर दिया गया। देश में जो गम्भीर राजनैतिक परिस्थिति पैदा हो गई थी उसको मद्देनजर रखते हुए श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर का एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने का भी निश्चय हुआ। ये लोग २९ अप्रैल १९१९ को इंग्लैण्ड के लिए रवाना भी हो गये थे। ८ जून को महासमिति की दूसरी बैठक इलाहाबाद में हुई। इधर गवर्नर-जनरल ने २१ अप्रैल को ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया था, जिसमें पंजाब की सरकार को यह अधिकार दे दिया था कि ३० मार्च तक जितने जुर्म हुए हों उनका मुकदमा वह खास फौजी अदालत द्वारा करा सके। गिरफ्तारशुदा लोगों को अपने इच्छानुसार वकील चुनने की इजाजत नहीं थी। देश के सारे प्रमुख पत्रों के सम्पादकों ने, श्रीमती बेसेण्ट ने और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी, एण्डरूज साहब से अनुरोध किया था कि वह पंजाब जाकर दुर्घटना और उपद्रव के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से जांच करें। पर वह वहां गिरफ्तार कर लिये गये। ८ जून की बैठक में इस और अन्य दूसरे मामलों पर विचार हुआ था। उसमें यह बात भी सुझाई गई कि तहकीकात के लिए जो कमिटी नियत हो वह पंजाब जाकर इस बात की भी जांच करे कि सर माइकेल ओडायर के शासन में फौज के लिए रंगरूट भर्ती करने में किन हथकण्डों और ढंगों को काम में लाया गया था, किस प्रकार 'लेबर कोर' में आदमियों को भर्ती किया गया था, किस प्रकार लड़ाई के लिए कर्ज लिया गया, और फौजी कानून के दिनों में किस प्रकार शासन किया गया था। मि० हार्निमैन को इसलिए देश-निकाला कर दिया गया था, कि उन्होंने 'बाम्बे क्रानिकल' में सरकार की पंजाब-सम्बन्धी नीति की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। महासमिति ने इस सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया कि सरकार हार्निमैन साहब को दिये गये देश-निकाले के हुक्म को मंसूख कर दे।

यंग इण्डिया

यहां पर प्रसंगवश यह बात भी बता देना अनुचित न होगा कि हार्निमैन

साहव के चले जाने के कारण लोगों को एक राष्ट्रीय पत्र की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जिसकी 'यंग इण्डिया' द्वारा पूर्ति करने का यत्न किया गया। प्रारम्भ में 'यंग इण्डिया' को श्री जमनादास द्वारकादास ने होमरूल के दिनों में निकाला था। वाद में वह एक संस्था के हाथों में आ गया। श्री शंकरलाल वैंकर इस संस्था के एक सदस्य थे। जब मि० हार्निमैन को देश-निकाला दे दिया गया, और 'वाम्वे क्रानिकल' के ऊपर कड़ा सेंसर विठा दिया गया था, तव गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' को अपने हाथों में ले लिया।

पंजावकाण्ड की जांच

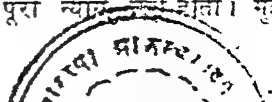
हां, तो फिर महासमिति ने एक कमिटी इसलिए नियुक्त की कि वह पंजाव की दुर्घटनाओं की जांच करे, इस सम्वन्ध में इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों स्थानों में आवश्यक कानूनी कार्रवाई करे और इस कार्य के लिए धन एकत्र करे। इस कमिटी में वाद को यानी १६ अक्तूवर को, गांधीजी, एण्डरूज, स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य लोगों को भी शामिल कर लिया गया था। नवम्वर के प्रारम्भ में मि० एण्डरूज को तो यकायक ऐन मौके पर दक्षिण-अफ्रीका चला जाना पड़ा था। उन्होंने गवाहियों के रूप में जितनी सामग्री एकत्र की थी वह सव कांग्रेस-कमिटी को देते गये थे। यह भी निश्चय हुआ था कि लन्दन और वम्वई के श्री नेविली और कैप्टिन को, जो कि क्रमशः दोनों स्थानों में सालिसिटर थे, इस कमिटी में सहायता के लिए रख लिया जाय। महासमिति की तरफ से एक तार पण्डित मदनमोहन मालवीय ने प्रधानमंत्री को, एक भारत-मंत्री को, और एक लॉर्ड सिंह को दिया था, जिनमें इन लोगों से अनुरोध किया गया था कि जवतक कांग्रेस की जांच पूरी न हो जाय तवतक फौजी कानून के अनुसार दी गई तमाम सजायें मुल्तवी रक्खी जायें। इस समय तक सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह प्रिवी-कौंसिल के मेम्बर हो गये थे, नाइट हो गये थे, और लॉर्ड हो गये थे। तभी से वह रायपुर के लॉर्ड सिंह कहलाये जाने लगे। वह उपभारत-मंत्री नियुक्त किये गये, और वाद में उन्होंने ही लॉर्ड सभा में गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया विल पेश किया था। १६ और २० जुलाई को कलकत्ते में महासमिति की वैठक फिर हुई, जिसमें विचारणीय मुख्य वात यह थी कि कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कहां किया जाय और उसे अमृतसर में ही करने का निश्चय हुआ। एक प्रस्ताव-द्वारा उस मांग को फिर दोहराया गया था जिसमें सम्राट् की सरकार-द्वारा जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी। यहां यह वात स्मरण रखने योग्य है कि १६

जुलाई को ही सर शंकरन् नायर ने वाइसराय की कार्यकारिणी में फौजी-कानून जारी रखने के विरोध में इस्तीफा दे दिया था। महासमिति ने उनके इस्तीफे की बड़ी कृतज्ञता-पूर्वक सराहना की, और उनसे प्रार्थना की कि वह तुरन्त ही इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो जायँ और वहां जाकर भली प्रकार से पंजाब के मामले को रक्खें और उन लोगों के सारे दुःखों को दूर करावें। १० हजार रुपये की एक रकम पंजाब-कमिटी के लिए जमा की गई।

सत्याग्रह स्थगित

२१ जुलाई को गांधीजी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें सत्याग्रह को कुछ समय के लिए स्थगित करने का जिक्र था। वह इस प्रकार है :—

"बम्बई के गवर्नर के द्वारा भारत-सरकार ने मुझे एक बहुत ही गंभीर चेतावनी दी है, कि सत्याग्रह के फिर से आरम्भ करने से जनता के लिए बहुत ही बुरा परिणाम निकल सकता है। बम्बई के गवर्नर ने मुझे मिलने के लिए बुलाया था, उस समय यह चेतावनी और भी जोर के साथ दोहराई थी। इन चेतावनियों को और दीवानबहादुर एल० ए० गोविन्द राघव ऐयर, सर नारायण चंदावरकर तथा अन्य कई सम्पादकों ने जो खुले-रूप से इच्छा प्रकट की उन सबको ध्यान में रखकर, मैंने बहुत सोच-विचार करने के बाद यह निश्चय किया है कि फिलहाल सत्याग्रह आरम्भ न करूँ। मैं यहां पर इतना और बता देना चाहता हूँ कि उन कुछ मित्रों ने भी, जो गरम-दल के माने जाते हैं, मुझे यही सलाह दी है, उनका कहना सिर्फ इतना ही था कि इससे सम्भव है वे लोग, जिन्होंने सत्याग्रह के सिद्धान्त को भले प्रकार नहीं समझा है, फिर मार-काट कर बैठें। जब दूसरे सत्याग्रहियों के साथ मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अब समय आ गया है कि सविनय भंग के रूप में सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, तब मैंने वाइसराय को एक पत्र भेज कर उनपर अपना यह इरादा प्रकट कर दिया और उनसे यह अनुरोध किया था कि वह रॉलट-बिल को वापस ले लें, एक जोरदार और निष्पक्ष कमिटी शीघ्र नियुक्त करने की घोषणा करें, जिसे यह भी अधिकार रहे कि पंजाब की दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में दी गई सजाओं की फिर से निगरानी कर सके और बा० कालीनाथ राय (सम्पादक 'ट्रिब्यून') को, जिनके मुकदमे के कागजात देखकर सिद्ध होता है कि उन्हें अन्याय-पूर्वक दण्ड दिया गया है, छोड़ दें। भारत-सरकार ने श्री राय के मामले में जो निर्णय किया उसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है, यद्यपि इससे उनके साथ पूरा न्याय नहीं होता। मुझे उन



बात का विश्वास दिलाया गया है कि जिस जांच-कमिटी की नियुक्ति के लिए मैंने जोर दिया था वह नियुक्त की जा रही है। सद्भावना के इन प्रमाणों के मिलते हुए मेरी ओर से यह बड़ी ही नासमझी होगी, यदि मैं सरकार की चेतावनी पर ध्यान न दूं। वास्तव में मेरा सरकार की सलाह मान लेना लोगों को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाना है। एक सत्याग्रही कभी सरकार को विषम स्थिति में डालना नहीं चाहता। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं देश की, सरकार की और उन पंजाबी नेताओं की, जिन्हें कि मेरी राय में अन्यायपूर्वक सजा दी गई है, और वह भी बड़ी ही निर्दयतापूर्वक, और भी अधिक सेवा करूंगा, यदि मैं इस समय सत्याग्रह को स्थगित कर दूं। मेरे ऊपर यह इलजाम लगाया गया है कि आग तो मैंने ही लगाई थी। अगर मेरा कभी-कभी सत्याग्रह करना आग लगाना है, तो रौलट-कानून और उसे कानून की किताब में ज्यों-का-त्यों बनाये रखने का हठ देश में हजार स्थानों में आग लगाना है। सत्याग्रह फिर से न होने देने का एक-मात्र उपाय यही है कि उस कानून को वापस ले लिया जाय। भारत-सरकार ने उस बिल के समर्थन में जो कुछ भी प्रमाण दिये हैं उनसे भारतीय-जनता के दिल पर कोई ऐसा असर नहीं हुआ है जिससे उसके विरोधी रुख में कोई परिवर्तन हो जाय।" अन्त में गांधीजी ने अपने साथी सत्याग्रहियों को सलाह दी कि वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को बढ़ावें और स्वदेशी के प्रचार में सबका सहयोग प्राप्त करें।

इस समय इंग्लैण्ड में लॉर्ड सेलबार्न की अध्यक्षता में संयुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हो रही थी। अब हम यहां भारत से इंग्लैण्ड को गये हुए शिष्ट-मण्डलों की कार्रवाई को देखें, यद्यपि हमारा मुख्य सम्बन्ध कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल से ही है, जिसमें श्री विट्ठलभाई पटेल और वी० पी० माधवराव ने बड़ी योग्यता से भारतवर्ष का पक्ष उपस्थित किया था। इनके साथ लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्रपाल गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे डाक्टर प्राणजीवन मेहता, ए० रंगास्वामी आयंगर, नृसिंह चिन्तामणि केलकर, सय्यद हसनइमाम डॉ० साठये, मि० हार्निमैन आदि भी थे। इस शिष्ट-मण्डल का काम था कि वह ब्रिटिश जनता के सामने भारतवर्ष के दावे को रक्खे। श्री वी० पी० माधवराव मैसूर-राज्य के भूतपूर्व दीवान थे। उनकी शिष्टता और सौजन्य तथा स्पष्टवादिता और स्वतंत्रता-प्रिय स्वभाव ने कांग्रेस को इंग्लैण्ड की जनता की नजरों में बहुत ही ऊँचा उठा दिया था और मि० बेन स्पूर (एम० पी०) जैसों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

भारतीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति का लाभ उठाकर, इंग्लैण्ड के विभिन्न

भागों में प्रचारार्थ सभाओं का आयोजन किया गया। मजदूर-दल ने कामन-सभा के भवन में उन्हें विदाई की दावत दी और भारतीय राष्ट्र-महासभा को सहानुभूति का सन्देश भेजा। स्वतंत्र-मजदूर-दल ने ग्लासगो में हुए अपने सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें आयर्लण्ड और मिस्र के साथ-साथ भारत को भी आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिए कहा गया। इसी प्रकार 'नेशनल पीस कौंसिल' ने भी अपने वार्षिकोत्सव में प्रस्ताव पास किया; और मजदूर-दल ने स्कारबरो में होनेवाले अपने वार्षिकोत्सव में मांग की कि "अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त संरक्षण रखते हुए, आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार, भारतीय सरकार का पुनस्संगठन किया जाय।" पंजाब के जोरो-जुल्म का तो सभी संस्थाओं ने समान-रूप से प्रबल विरोध किया।

महासमिति के प्रस्तावानुसार, जून के अन्तिम सप्ताह में स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और मदनमोहन मालवीय पंजाब में हुई दुर्घटनाओं की जांच के लिए पंजाब गये। कुछ ही समय बाद दीनबन्धु एण्डरूज भी वहां पहुँच गये। इसके बाद पं० मोतीलाल और मालवीयजी लौट आये, लेकिन मोतीलालजी दुबारा फिर वहां गये। पं० जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तमदास टण्डन एण्डरूज साहब के साथ हुए। गांधीजी भी, जैसे ही उनपर से प्रवेश-निषेध का हुक्म उठाया गया, १७ अक्तूबर को सबके साथ जा मिले। पंजाब के लोग भयभीत हो रहे थे, लेकिन ज्यों ही गांधीजी उनके पास पहुँचे त्योंही उनमें फिर से आत्म-विश्वास आ गया। लाहौर और अमृतसर में, दोनों जगह, उनके आगमन को विजय से कम नहीं समझा गया। इसी बीच सरकारी जांच की घोषणा हुई। जिन बातों की जांच सरकारी जांच-कमिटी करनेवाली थी उनकी मर्यादा कांग्रेस की जांच से बहुत कम थी। फिर भी सरकारी कमिटी से सहयोग करना ठीक समझा गया। चित्तरंजन दास तुरन्त कलकत्ता से पंजाब आये और कांग्रेस की ओर से हण्टर-कमीशन के सामने हाजिर हुए। लेकिन कांग्रेस-उप-समिति को ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनकी पहले कल्पना भी न थी, इसलिए दुर्घटनाओं की जांच करनेवाली कमिटी (हण्टर-कमीशन) से उसको अपना सहयोग हटा लेना पड़ा। इस समय की परिस्थिति का इतिहास एक आवेदन-पत्र में अंकित है। कांग्रेस-उप-समिति चाहती थी कि मार्शल-लॉ के कुछ कैदियों को पहरे के अन्दर जांच के समय हाजिर रहने व जांच में मदद करने के लिए बुलाया जाय, लेकिन इस बात की इजाजत नहीं दी गई। उप-समिति ने इसपर पंजाब-सरकार के खिलाफ भारत-सरकार और भारत-मंत्री से अपील की, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करने से इन्कार किया। ऐसी हालत में उन लोगों ने भी, जो कि फौजी कानून के मातहत जेलों में थे, सहयोग न करने के

निश्चय की ही ताईद की—और, बाद के अनुभव ने भी इस निश्चय को उचित ही सिद्ध किया। और तो और, पर उसकी जांच की परिधि इतनी सीमित थी कि वे घटनायें भी उसके कार्य-क्षेत्र में समाविष्ट नहीं थीं, जो न्यायतः अप्रैल १९१९ की घटनाओं में ही सम्मिलित होती हैं पर अनुचित रूप से उन्हें उससे अलग रक्खा गया अतएव कांग्रेस ने एक कमिटी के द्वारा अपनी जांच अलग शुरू की। गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, फजलुल हक और अब्बास तैयबजी इस कमिटी के सदस्य थे और के० सन्तानम् मंत्री। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही पं० मोतीलाल नेहरू अमृतसर-कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, इसलिए उन्होंने पद-त्याग किया और श्री मुकुन्दराव जयकर उनकी जगह सदस्य बनाये गये। लन्दन के सालिसिटर मि० नेविली भी, जिनके सुपुर्द प्रिवी-कौंसिल में की जानेवाली अपीलों का काम था, कमिटी के साथ थे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जालियांवाला-बाग को प्राप्त करके वहां शहीदों का एक स्मारक बनाया जाय, और उसके लिए मालवीयजी की अध्यक्षता में एक कमिटी बना दी गई। प्रसंगवश यह भी बता देना चाहिए कि अब यह बाग ले लिया गया है और राष्ट्र की ही सम्पत्ति है।

परन्तु गैर-सरकारी रिपोर्ट अमृतसर-कांग्रेस तक तैयार न हो सकी। तब सोचा तो यहां तक गया कि सुविधापूर्वक विस्तृत-रूप से जब वह तैयार हो जाय तब उसपर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय। लेकिन इतना तो कमिटी ने कही दिया था, कि "हण्टर-कमीशन के सामने जनरल डायर ने जो कुछ कहा है उससे यह बात बिलकुल निस्संदिग्ध हो गई है कि उसका १३ अप्रैल का कार्य निर्दोष, निरीह, निःशस्त्र मर्दों और बच्चों के जान-बूझ कर किये हुए नृशंस हत्या-काण्ड के सिवा और कुछ नहीं है। यह ऐसी हृदय-हीन और बुजदिल पशुता है जिसकी आधुनिक काल में और कोई मिसाल नहीं मिलती।" जो हो; कुल मिलाकर १९१९ के साल की परिस्थिति न केवल निराशाजनक बल्कि बड़ी भयावह भी थी।

तिलक का प्रतिसहयोग

महायुद्ध में जो शक्तियां लगी हुई थीं उन्हें पार्लमेण्ट की तरफ से धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए मि० लायड जार्ज ने कहा था—"हिन्दुस्तान के विषय में कहूँ तो, उसने हमारी इस विजय में, और खास कर पूर्व में, जो प्रशंसनीय सहायता दी है उसके कारण उसे यह नया अधिकार मिल गया है कि जिससे हम उसकी मांगों पर ज्यादा ध्यान दें। उसका यह दावा इतना जोरदार है कि हमें अपने तमाम पूर्व-विश्वासों

और (हमारी) आशंकाओं को, जो कि उसकी प्रगति के रास्ते में रुकावट डाल सकते हैं, दूर कर डालना चाहिए।" जहांतक इस 'नये दावे' से सम्बन्ध है, अस्थायी संधि के बाद भारत-सरकार ने भारत की इन गौरवपूर्ण सेवाओं का बदला धारा सभाओं और अधिकारियों-द्वारा दमन के रूप में चुकाया है। माण्ट-फोर्ड बिल ने लोगों के दिलों को और भी आघात पहुँचाया। द्विविध प्रणाली, कौंसिल में नामजद-सदस्यों का रहना, राज्य-परिषद्, 'सर्टिफिकेशन' और 'विटो' के अधिकार, ऑर्डिनेन्स बनाने की सत्ता और ऐसी तमाम पीछे हटानेवाली बातें उस बिल में थीं। अब १९३५ के कानून म ये और भी बढ़ा-चढ़ा कर दाखिल कर दी गई हैं! यही वे भयानक राक्षस थे, जिनका मुकाबला करने के लिए अमृतसर-कांग्रेस बुलाई गई थी। यह बताने की जरूरत नहीं है कि इस बीच आपस में फूट फैलाने और तोड़-फोड़ करनेवाली शक्तियां अवश्य जोर-शोर के साथ हिन्दुस्तान में काम कर रही होंगी। क्योंकि भारतीय राजनीति में ये हमेशा काम करती रही हैं और विदेशी-शासन में तो ये अपना जोर जताती ही हैं। खुद होमरूल-लीग में भी उनके दर्शन हुए थे। अमृतसर में वे अपने पूरे दल-बल के साथ प्रकट हुईं। लोकमान्य तिलक उस समय तक इंग्लैण्ड से लौट आये थे। सर वेलण्टाइन चिरोल पर चलाये गये मान-हानि के मुकदमे में उनकी हार हो चुकी थी। उन्होंने यह सुनते ही कि पार्लमेण्ट में बिल पास हो गया है, सम्राट् को भारतीय राष्ट्र की तरफ से बधाई का तार भेजा। उस समय वह अमृतसर जा रहे थे। उन्होंने सुधारों को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में 'प्रतियोगी-सहयोग' करने का आश्वासन दिया था। यह शब्द गढ़ा हुआ तो था मि० बैपटिस्टा का, और तार का मजमून बनाया था केल्कर साहब ने। कांग्रेसी हलके में इसकी कल्पना भी नहीं की जाती थी और, इसलिए, अमृतसर-कांग्रेस भिन्न-भिन्न विचारवालों के संघर्ष का एक अखाड़ा ही बन गई।

अमृतसर-कांग्रेस

अमृतसर-कांग्रेस में श्री चित्तरंजन दास प्रमुखता से सामने आये। उस अधिवेशन में उपस्थित करने के लिए प्रस्ताव का मसविदा दास बाबू बनाकर लाये थे और संशोधन के बाद विषय-समिति ने उसे मंजूर किया था। वह इस प्रकार है:—

"(क) यह कांग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि भारतवर्ष पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के योग्य है और इसके खिलाफ जो बातें समझी या कही जाती हैं उनको यह कांग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) वैध सुधारों के सम्बन्ध में दिल्ली की कांग्रेस-द्वारा पास किये गये

प्रस्तावों पर ही कांग्रेस दृढ़ है और इसकी राय है कि सुधार-कानून अपूर्ण, असंतोषजनक और निराशापूर्ण है।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतवर्ष में पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लमेण्ट को शीघ्र कार्रवाई करनी चाहिए।"

गांधीजी ने 'निराशापूर्ण' शब्द को हटा देने और उसमें चौथा पैरा और जोड़ने का संशोधन पेश किया जो इस प्रकार है:—

"(घ) जबतक ऐसा न हो, यह कांग्रेस शाही घोषणा में प्रदर्शित मनोभावों का अर्थात् यह कि 'यह नया युग मेरी प्रजा और अधिकारी दोनों के इस निश्चय के साथ आरम्भ हो कि वे सबके एक ध्येय के लिए मिलकर काम करेंगे', राजभक्तिपूर्वक उत्तर देती है और विश्वास रखती है कि अधिकारी और प्रजा दोनों मिलकर शासन-सुधारों को कार्यान्वित करने में इस तरह सहयोग करेंगे कि जिससे पूर्ण उत्तरदायी शासन शीघ्र स्थापित हो। और यह कांग्रेस माननीय माण्टेगु को इस सिलसिले में किये उनके परिश्रम के लिए हार्दिक धन्यवाद देती है।"

कांग्रेस ने दास बाबू के असली प्रस्ताव और गांधीजी के पूर्वोक्त टुकड़े की जगह यह टुकड़ा जोड़कर मंजूर किया—"यह कांग्रेस विश्वास करती है कि जबतक इस प्रकार की कार्रवाई नहीं की जाती तबतक, जहांतक संभव हो, लोग सुधारों को इस प्रकार काम में लावेंगे जिससे भारतवर्ष में शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो सके। सुधारों के सम्बन्ध में माननीय माण्टेगु साहब ने जो मिहनत की है उसके लिए यह कांग्रेस उन्हें धन्यवाद देती है।" श्रीमती बेसेण्ट ने इसकी जगह जो प्रस्ताव रक्खा था वह गिर गया।

फिर भी यह समझौता असंदिग्ध नहीं था—हालांकि देशबन्धु ने अपने भाषण में यह साफ कर दिया था कि जहां कहीं सम्भव होगा वहां सहयोग और जहां आवश्यक होगा वहां अड़ंगा-नीति काम में लाने का राष्ट्र का अधिकार सुरक्षित है। परन्तु इसमें विधि की गति तो देखिए—दास बाबू या तो अड़ंगा-नीति चाहते थे या सुधारों को अस्वीकृत कर देना—क्या इसे हम असहयोग न कहें? और गांधीजी वहां सहयोग के पुरस्कर्ता बने हुए थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह सारी कांग्रेस गांधीजी की ही एक विजय थी। उनके व्यक्तित्व, दृष्टि-बिन्दु, सिद्धान्त और आदर्श, नीति-नियम एवं उनके सत्य और अहिंसाधर्म का प्रभाव पहले ही कांग्रेस पर पड़ चुका था। अमृतसर-कांग्रेस में ५० प्रस्ताव पास हुए, जिनमें ठेठ लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने से लेकर कानून मालगुजारी,

मजदूरों की दुरवस्था और तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के दुःखों की जांच की मांग तक के प्रस्ताव थे। खुद कांग्रेस में ३६ हजार लोग आये थे, जिनमें ६ हजार मामूली प्रतिनिधि थे और कोई १२०० किसान-प्रतिनिधि भी थे। कांग्रेस के सारे वातावरण में मानो विजली फैली हुई थी। पंजाव और उसपर हुए अत्याचारों पर स्वभावतः ही सबसे अधिक ध्यान दिया गया था। गांधीजी उत्सुक थे कि पंजाव और गुजरात में जो मार-काट लोगों की तरफ से हो गई थी उसकी निन्दा की जाय। लेकिन विषय-समिति में उनका प्रस्ताव गिर गया। गांधीजी को इससे निराशा हुई। रात वहुत हो चुकी थी। उन्होंने यदि कांग्रेस उनके दृष्टि-विन्दु को न अपना सके तो दृढ़ता परन्तु साथ ही शिष्टता और अदव के साथ कांग्रेस में रहने की अपनी असमर्थता प्रकट की। दूसरे ही दिन सुवह प्रस्ताव नं० ५ मंजूर हुआ, जो इस प्रकार है—"यह कांग्रेस इस वात को स्वीकार करती है कि वहुत अधिक उत्तेजित किये जाने पर (ही) जन-समूह के लोग क्रोध से वावले हुए थे, तो भी पिछले अप्रैल के महीने में पंजाव और गुजरात के कुछ हिस्सों में जो ज्यादतियां हुईं और उनके कारण जान-माल का जो नुकसान हुआ उसपर यह कांग्रेस दुःख प्रकट करती है और उन कृत्यों की निन्दा करती है।" इस विषय पर गांधीजी ने जो व्याख्यान दिया वह तो वड़ी उच्चकोटि का और प्रभावशाली था। उन्होंने वहुत संक्षेप में अपने संग्राम की योजना और भावी नीति का दिग्दर्शन कराया था। "इससे वढ़कर कोई प्रस्ताव कांग्रेस के सामने नहीं है। हमारी भावी सफलता की सारी कुंजी इसी वात में है कि हम इसके मूलभूत सत्य को समझ लें, हृदय से स्वीकार कर लें और उसके अनुसार आचरण भी रक्खें। जिस अंश तक हम उसके मूल शाश्वत सत्य को मानने में असमर्थ होंगे उसी हद तक हमारी असफलता भी निश्चित है। मैं कहता हूँ कि यदि हम लोगों ने मार-काट न की होती—जिसके कि हमारे पास वहुत प्रमाण हैं और उन्हें मैं आपके सामने पेश कर सकता हूँ, वीरमगाम, अहमदावाद और वम्वई-काण्ड के उदाहरण दे-देकर कि वहां हमने जान-वूझकर हिंसाकाण्ड किया है—हां, मैं मानता हूँ कि डॉ, किचलू, डॉ० सत्यपाल और मुझे पकड़कर—मैं तो डॉ० सत्यपाल और स्वामीजी का निमंत्रण पाकर शान्ति-स्थापना के लिए कमर कसकर जा रहा था, सरकार ने लोगों को भड़कने और गरम हो जाने का जवर्दस्त कारण दिया था—तो यह वखेड़ा न खड़ा होता; लेकिन उस समय सरकार भी पागल हो गई थी और हम भी पागल हो गये थे। मैं कहता हूँ, पागलपन का जवाव पागलपन से मत दो, वल्कि पागलपन के मुकावले में समझदारी से काम लो और देखो कि सारी वाजी आपके हाथ में है।" कैसे आत्मा को जगानेवाले शब्द हैं

ये, जो अबतक कानों में गूंजते हैं ! परन्तु सवाल यह है कि क्या लोगों ने उस समय उनके पूरे रहस्य को समझा होगा ? सच पूछिए तो फिर कांग्रेस में सारी बातें इसी प्रस्ताव के सुर में हुई थीं। उस समय तक गांधीजी सरकार से सहयोग तोड़ने के लिए न तो राजी थे और न तैयार ही थे। इसीलिए युवराज के स्वागत करने का प्रस्ताव यहां पास किया गया—गोया दिल्ली में जो बात छूट गई थी उसकी पूर्ति यहां की गई। यही कारण है कि अमृतसर में सहयोग के आश्वासनवाले प्रस्ताव में जोड़ा गया टुकड़ा पास हो गया, हालांकि समझौते के कारण वह बहुत-कुछ कमजोर हो गया था। सत्य और अहिंसा को माननेवाले इस प्रस्ताव से मिलते-जुलते प्रस्ताव थे (१) स्वदेशी-सम्बन्धी—हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के पुराने धंधों को फिर से जीवित करने की सिफारिश करना, (२) दुधार गाय और सांडों का निर्यात बन्द करने सम्बन्धी, (३) प्रान्तों में आबकारी-नीति-सम्बन्धी और (४) तीसरे तथा मंझले-दर्जे के मुसाफिरों के दुःख दूर करने के विषय में। इस श्रेणी के प्रस्तावों के ही ढंग के प्रस्ताव थे—बकरीद पर गोकुशी बन्द कर देने की मुसलमानों-द्वारा की गई सिफारिश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और तुर्की एवं खिलाफत के मसले पर ब्रिटिश-सचिवों के विरोधी रुख का विरोध करना। वर्षों के बाद इस अमृतसर-कांग्रेस ने किसानों की ओर ध्यान दिया। मजदूरों की तरफ भी उसने उतनी ही तवज्जह दी। यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की ओर सरकार का ध्यान दिलाया। ब्रिटिश-कमिटी को उसकी सेवाओं के बदले धन्यवाद दिया गया। उसी तरह इंग्लैण्ड के मजदूर-दल को, और खासकर बेन स्पूर को भी। लाला लाजपतराय को भी, उनकी अमरीका में की गई भारत के प्रति सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया गया। इसी तरह कांग्रेस के शिष्ट-मण्डल को भी उन सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया जो उसने इंग्लैण्ड में की थीं। भला 'प्रवासी भारतवासी' भी कैसे छूट सकते थे ? ट्रांसवाल-निवासियों से अबतक भी जमीन-जायदाद और व्यापार करने के अधिकार छीने जा रहे थे। पूर्व अफ्रीका में भारतीयों का आन्दोलन अलग अपना सिर उठा रहा था। प्रवासी भारतीयों के लिए की गई एण्डरूज साहब की सेवायें पंजाब में की गई उनकी सेवाओं से कम देश के धन्यवाद की पात्र नहीं थीं। कांग्रेस ने खुले-आम इस बात को स्पष्ट किया कि क्यों उसे हण्टर-कमीशन का बहिष्कार करना पड़ा ? लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर ने "पंजाब के जो नेता कैद हैं उनमें से कुछ को भी, कैदी की तरह हिरासत में भी, कमिटी-रूप में बैठकर अपने वकील को सहायता और सलाह देने की आज्ञा नहीं दी" इसलिए कांग्रेस ने उसके बहिष्कार को योग्य और शानदार कार्य माना और उप-समिति को अपनी स्वतंत्र रिपोर्ट का आदेश

दिया। कांग्रेस ने सर शंकरन् नायर को इस्तीफा दे देने पर वधाई दी और लॉर्ड चेम्स-फोर्ड को वापस बुलाने, जनरल डायर को अपने पद से हटा देने और सर माइकेल ओडायर को फौजी कमिटी की सदस्यता से हटा देने की मांग की।

पंजाव में किये गये अत्याचारों के प्रश्न पर विचार करते हुए कांग्रेस ने उस हर्जाना लेने की व्यवस्था को, जो कुछ लोगों पर कहीं-कहीं लागू की गई थी, तथा फौजी कानून के मातहत स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों को जो सजायें दी गईं उन्हें रद करने की प्रार्थना की। मौलिक अधिकारों सम्बन्धी भी एक प्रस्ताव पास हुआ, जिससे शासन-सुधार-सम्वन्धी प्रस्ताव का वल और वढ़ गया। इस प्रस्ताव को पास कराने के लिए रात के दस वजे तक मदरास के पितामह विजयराघवाचार्य जोर देते रहे। इसके वाद कांग्रेस ने प्रेस-एक्ट और रौलट-एक्ट को उठा देने और सम्राट् की ओर से मुक्ति की घोषणा होने पर भी जो कैदी तवतक जेल में पड़े हुए थे उनकी रिहाई के लिए जोर दिया।

मि० हार्निमैन का देश-निकाला भी कांग्रेस के विरोध का एक विषय था और उसे रद करने पर वड़ा जोर दिया गया। यह भी आग्रह किया गया कि ब्रह्मदेश को भी सुधार दिये जावें और दिल्ली तथा अजमेर-मेरवाड़ा को पूरे प्रान्त के हक दे दिये जायँ। दो और प्रस्तावों में आडिट तथा लोगों से रुपया वसूल करने की कार्रवाई की गई और अधिवेशन खतम हुआ। इस अधिवेशन में इतना अधिक काम करना पड़ा कि सभापति पण्डित मोतीलाल नेहरू वहुत थक गये, उनकी आवाज वैठ गई। विषय-समिति की वैठकें रोज रात-रात भर चलतीं। पंजाव में सर्दी भी वड़े जोरों की पड़ती थी।

उस समय की दो घटनायें मनोरंजक हैं और उनका वर्णन यहां कर देना ठीक होगा। राजनैतिक कैदियों को छोड़ देने की शाही घोषणा हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के एक दिन पहले वह अमृतसर पहुँची और उसके साथ ही आये अली-भाई! वस, लोगों के उत्साह और खुशी की सीमा न रही। एक वड़ा जुलूस निकला और मौ० मुहम्मदअली ने कहा कि मैं छिन्दवाड़ा-जेल से 'रिटर्न-टिकट लेकर' आ रहा हूँ। तवसे उनके ये शब्द वहुत प्रचलित हो गये हैं। दूसरी घटना लन्दन के एक सालिसिटर मि० रेजिनल्ड नेविली से सम्वन्ध रखती है, जो कुछ दिनों से भारतवर्ष में थे और कांग्रेस-सप्ताह में अमृतसर ही थे। २५ दिसम्वर १९१९ को जालन्धर के तोपखाने के कोई २० गोरे सिपाही रात को (होटल में) उनके कमरे में घुस गये, उनका अपमान किया और पूछा कि एक यूरोपियन होकर तुमने डायर के खिलाफ काम कैसे किया? उनमें

से एक ने कहा—"हमने सारे समूह को गोली से भून दिया। वह एक खौलता हुआ जन-समूह था। वे रजील हिन्दुस्तानी थे।" उसने यह भी वताया कि जनरल डायर के उन सिपाहियों में से वह भी एक था। वाद में मालूम हुआ कि उन सिपाहियों को मि० नेविली से माफी मांगनी पड़ी थी।

: १ :

असहयोग का जन्म—१९२०

खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय

१९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में दलवन्दियों से हुआ। उदार अर्थात् नरम-दलवाले कांग्रेस से अलग हो गये थे और १९१९ के दिसम्बर में कलकत्ते में एकत्र हुए थे। कांग्रेस में भी ताजा होनेवाली घटनाओं के कारण वाकी वचे कांग्रेसियों में फूट के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। अमृतसर में मुख्य प्रश्न था असहयोग या अड़ंगा। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने वाद अमृतसर में वने दलों की स्थिति उलट गई। गांधीजी ने असहयोग का बीड़ा उठा लिया था और जो लोग अमृतसर में उनके सहयोग के विरुद्ध थे वे अव एकवार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये थे। यह आकस्मिक परिवर्तन किस कारण हुआ? असली वात यह थी कि पंजाव के अत्याचार और खिलाफत के सवाल पर जनता में खलवली वढ़ रही थी।

१९२० की घटनायें खिलाफत के महान् आन्दोलन को लेकर हुई थीं। यहां खिलाफत के प्रश्न की उत्पत्ति का परिचय कराना आवश्यक है। महायुद्ध के समय प्रधान-मंत्री मि० लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानों को कुछ वचन दिये थे, जिनके कारण भारतीय मुसलमान देश से वाहर गये और अपने तुर्की सहधर्मियों से लड़े। जव युद्ध समाप्त हो गया तो दिये गये वचनों का वुरी तरह भंग किया गया। ब्रिटिश-प्रधान-मंत्री के विश्वासघात से भारत के मुसलमानों में क्रोध की लहर फैल गई। लायड जार्ज ने स्पष्ट शव्दों में वचन दिया था, कि "हम टर्की को उसके एशिया-माइनर और थ्रेस के प्रसिद्ध और समृद्ध द्वीपों से वंचित करने के लिए, जिनकी आवादी मुख्यतः तुर्क है, लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं।" मुसलमानों का कहना था कि जजीरतुलअरव, जिसमें मेसोपोटामिया, अरविस्तान, सीरिया, फिलस्तीन और उनके सारे धार्मिक स्थान शामिल हैं, हमेशा खलीफा के सीधे अधिकार में रहना चाहिए। परन्तु अस्थायी सन्धि

की शर्तों के फल-स्वरूप तुर्की को अपने प्रदेशों से वंचित होना पड़ा। थ्रेस यूनान की नजर कर दिया गया और तुर्की-साम्राज्य के एशियाई प्रदेशों को ब्रिटेन और फ्रान्स ने लीग के आज्ञा-पत्रों के वहाने आपस में वांट लिया। मित्र-राष्ट्रों-द्वारा एक हाई-कमीशन नियुक्त किया गया जो हर लिहाज से तुर्की का असली शासक वना दिया गया था और सुलतान एक कैदी-मात्र रह गया था। भारत के मुसलमान ही नहीं, वल्कि अन्य जातियां भी ब्रिटिश-प्रधान-मंत्री के इस विश्वासघात से क्रुद्ध हो गई थीं। अमृत-सर में प्रमुख कांग्रेसी और खिलाफत नेता एकत्र हुए और उन्होंने लायड जार्ज की करतूत से उत्पन्न हुई देश की स्थिति के सम्वन्ध में चर्चा की और अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन करने का निश्चय किया गया।

१६ जनवरी १९२० को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला और उन्हें वताया कि तुर्की-साम्राज्य को और सुलतान को खलीफा वनाये रखना कितना आवश्यक है। वाइसराय का उत्तर वहुत कुछ निराशाजनक था। इसपर मुसलमान नेताओं ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने यह दृढ़ संकल्प किया कि यदि संधि की शर्तें मुसलमानों के धर्म और भावों के खिलाफ गई तो इससे मुसलमानों की वफादारी को धक्का लगेगा।

फरवरी और मार्च के महीनों में खिलाफत का प्रश्न भारत के राजनैतिक क्षेत्र में वरावर प्रमुख स्थान प्राप्त किये रहा। १९२० के मार्च में एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल मौलाना मुहम्मदअली के नेतृत्व में इंग्लैण्ड गया। इस शिष्ट-मण्डल से भारत-सचिव की ओर से मि० फिशर मिले। शिष्ट-मण्डल प्रधान-मंत्री से भी मिला। उसने अपने विचार शान्ति-परिषद् की वड़ी कौंसिल के आगे रखने की अनुमति चाही, पर वह न मिली।

१७ मार्च को लायड जार्ज ने मुस्लिम शिष्ट-मण्डल को उत्तर दिया, जिसके दौरान में उन्होंने इस वात पर जोर दिया कि ईसाई राष्ट्रों के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जा रहा है, तुर्की के साथ उससे भिन्न नीति का व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु साथ ही इस वात पर जोर दिया कि वैसे तुर्की तुर्की-भूमि पर अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्की नहीं है उनपर कोई अधिकार न रख सकेगा। वस, इसने तो भारत के खिलाफत-सम्वन्धी सारे प्रश्न की ही जड़ काट डाली। इसलिए १६ मार्च राष्ट्रीय शोक-दिवस नियत हुआ जिस दिन उपवास, प्रार्थनायें और हड़तालें की गई। गांधीजी फिर मैदान में आये; उन्होंने फिर घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ संधि की शर्तें भारत के मुसलमानों के भावों के अनुकूल न हों तो मैं असहयोग-आन्दोलन

शुरू करूँगा। गांधीजी ने अपने विचार अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र में प्रकट कर दिये थे, जिसमें उन्होंने अपनी असहयोग-सम्बन्धी तजवीज पहली वार प्रकट की थी। वह इस प्रकार है :—

"यदि हमारी मांगें स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए, क्योंकि यह अव्यवहार्य है। यदि मैं सवको समझा सकूं कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सव उद्देश बहुत जल्दी सिद्ध हो जायें। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग-द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है उसका मुकावला कोई नहीं कर सकता। परन्तु आज जो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूँ सो इस कारण कि परिस्थिति ऐसी ही है, और ऐसी अवस्था में हिंसा विलकुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औपधि है। यदि यह सव तरह की हिंसा से मुक्त रक्खी जाय तो यही सवसे अच्छी और रामवाण औपधि है। यदि सहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजोनाश होता हो और हमारे धार्मिक भावों को आघात पहुँचता हो, तो असहयोग हमारे लिये कर्त्तव्य हो जाता है। इंग्लैण्ड हमसे यह आशा नहीं रख सकता कि हम उन अधिकारों का हनन चुपचाप सह लेंगे जो मुसलमानों के जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। इसलिए हमें जड़ और चोटी दोनों ओर से काम आरम्भ करना चाहिए। जिन लोगों को सरकारी उपाधियां और सम्मान प्राप्त हैं उन्हें वे त्याग देनी चाहिएँ। जो नीचे दर्जे की सरकारी नौकरियों पर हैं उन्हें भी नौकरियां छोड़ देनी चाहिएँ। असहयोग का खानगी नौकरियों से कोई वास्ता नहीं है। पर मैं उन लोगों के, जो असहयोग की औपधि को नहीं अपनाते, सामाजिक वहिष्कार की धमकी देने की वात को पसन्द नहीं कर सकता। आप होकर नौकरी छोड़ देना ही जनता के भावों और असंतोप की कसौटी है। सैनिकों से सेना में काम करने से इन्कार करने को कहने का समय अभी नहीं आया है। यह उपाय अन्तिम है, पहला नहीं है। जव वाइसराय, भारत-मंत्री और प्रधान मंत्री हमें दाद ही न दें तभी हमें इस उपाय का अवलम्वन करना चाहिए। इसके अलावा सहयोग तोड़ने में एक-एक कदम बहुत समझ-बूझकर रखना होगा। हमें धीरे-धीरे वढ़ना होगा, जिससे वड़े-से-वड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम वनाये रख सकें।"

असहयोग का प्रारम्भ

अशान्ति के इस वातावरण में २५ मार्च १९२० को पंजाव के अत्याचारों पर

गैरसरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसने सर माइकेल ओडायर को ही अपने कटाक्षों का लक्ष्य बनाया। उसने शिक्षित-समुदाय की जिस प्रकार जान-बूझकर अवहेलना की थी, उसने जिस ज्यादती के साथ रंगरूटों की भर्ती और चंदा-संग्रह किया था और लोकमत को दबा रक्खा था, उससे वह स्वभावतः ही जनता के अभियोग का पात्र बन गया था। १९१९ की घटनायें ६ अप्रैल से आरम्भ हुईं और उनका अन्त १३ तारीख को जालियांवाला-बाग-हत्या-काण्ड के रूप में हुआ। अतः वह सप्ताह १९२० में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया और तबसे अबतक मनाया जाता है। १४ मई १९२० को तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तें प्रकाशित हुईं, जिससे खिलाफत-आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा। इसके बाद ही गांधीजी ने इस संकल्प की घोषणा की कि मैं शर्तों में संशोधन कराने के लिए असहयोग-आन्दोलन आरम्भ करूँगा। लोकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन का समर्थन हृदय से नहीं किया, पर साथ ही विरोध भी नहीं किया।

इन दोनों महान् नेताओं ने अप्रैल के तीसरे हफ्ते में महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराये। इसी अवसर पर गांधीजी ने होमरूल-लीग का सभापतित्व ग्रहण किया, और निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—

"मेरी राय में स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का साधन स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा मानना, और प्रान्तों का भाषाओं के अनुसार नये सिरे से निर्माण करना है। इसलिए मैं लीग को इन कामों में लगाना चाहता हूँ।

"मैं इस बात को खुले तौर से कहता हूँ कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की किसी भी योजना में सुधारों का स्थान गौण है। क्योंकि मैं समझता हूँ कि मैंने जिन कामों का जिक्र किया है यदि राष्ट्रीय शक्ति उनमें लग जाय तो हममें से घोर अतिवादी (extremist) भी जो सुधार चाहेगा वे स्वतः ही प्राप्त हो जायंगे; और चूंकि इन कार्यों में लगने से पूर्ण स्व-शासन जल्दी-से-जल्दी प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैंने इन्हें राष्ट्रीय कार्य-क्रम में सबसे आगे रक्खा है। मैं अखिल-भारतीय होमरूल-लीग को किसी भी रूप में किसी खास दल की संस्था समझने को तैयार नहीं हूँ। मैं किसी दल से संबंध नहीं रखता और न रक्खूंगा। मैं जानता हूँ कि लीग के नियमों के अनुसार कांग्रेस की सहायता करना आवश्यक है। पर कांग्रेस किसी दल-विशेष की संस्था नहीं है। ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में सभी दल रहते हैं। समय-समय पर एक-न-एक दल का उसपर अधिकार रहता है, पर वह किसी दल-विशेष की संस्था नहीं है। मुझे आशा है कि सारे दल कांग्रेस को एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहेंगे जिसके द्वारा वे कांग्रेस की नीति निर्धारित करने के लिए राष्ट्र से अपील कर सकें। मैं लीग की नीति को

ऐसा बनाना चाहता हूँ जिससे कांग्रेस दलबन्दियों से ऊपर रहकर अपना राष्ट्रीय पद कायम रख सके।

"अब मेरे साधन की बारी आई है। मेरा विश्वास है कि देश के राजनैतिक जीवन में कठोर सत्य और ईमानदारी का वातावरण उत्पन्न करना सम्भव है। मैं लीग से यह आशा नहीं रखता कि वह सत्याग्रह के मामले में मेरा साथ देगी, पर मैं शक्ति-भर चेष्टा करूंगा कि हमारे सारे राष्ट्रीय कामों में सत्य और अहिंसा से काम लिया जाय। तब हम सरकार और उसके उपायों से न भयभीत होंगे न उनके प्रति अविश्वास रक्खेंगे। मैं इस प्रसंग पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मैं यह समय पर ही छोड़ता हूँ कि मैंने जो यह साहसपूर्ण वक्तव्य दिया है उससे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रश्नों का वह किस ढंग से निपटारा करता है। फिलहाल मेरा उद्देश अपने काम के औचित्य या उसमें समाविष्ट नीति की सत्यता का प्रदर्शन करना नहीं है, बल्कि लीग के सदस्यों पर विश्वास करके अपने कार्यक्रम पर उनकी आलोचना-सूचनाओं को आमंत्रित करना है।"

लोकमान्य तिलक ने अपने वक्तव्य में नये सुधारों के प्रति अपनी नीति प्रकट की :—

"जैसा कि नाम से प्रकट है, कांग्रेस-प्रजातंत्र दल में कांग्रेस के प्रति अगाध भक्ति और प्रजातंत्र के प्रति आस्था काम कर रही है। इस दल का विश्वास है कि भारत की समस्याओं को सुलझाने में प्रजातंत्र के सिद्धान्त अचूक हैं। यह दल शिक्षा के प्रसार और राजनैतिक मताधिकार को अपने दो सबसे बढ़िया हथियार समझता है। यह दल चाहता है कि जाति या रिवाज के कारण जो नागरिक, राजनैतिक या सामाजिक बंधन लगा दिये गये हैं उन्हें उठा दिया जाय। इस दल का धार्मिक सहिष्णुता और अपने लिए अपने धर्म की पवित्रता में विश्वास है और उस पवित्रता की खतरे से रक्षा करना सरकार का अधिकार और कर्त्तव्य है। यह दल मुसलमानों के उस दावे का समर्थन करता है जो खिलाफत-सम्बन्धी प्रश्नों का हल इस्लाम-धर्म के सिद्धान्तों और धारणाओं और कुरान के आदेशों के अनुसार चाहता है।

"यह दल मानवता के मंगल और मानव-समाज के भ्रातृत्व की वृद्धि के लिए ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के रूप में भारत की स्थिति में विश्वास करता है, पर भारत के लिए स्वतंत्र शासन का अधिकार चाहता है, और यह चाहता है कि उसे ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के अन्य हिस्सेदारों के साथ, जिनमें स्वयं ब्रिटेन भी शामिल है, बराबरी और भाई-चारे का अधिकार मिले। यह दल राष्ट्र-समूह के भीतर भारतीयों के लिए

बराबरी के नागरिक-अधिकारों पर जोर देता है और चाहता है कि जहां यह अधिकार न मिले उस उपनिवेश के प्रति बदले का व्यवहार किया जाय। यह दल राष्ट्र-संघ का, संसार की शान्ति बनाये रखने, देशों का स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखने, राष्ट्रों और जातियों की स्वतंत्रता और सम्मान की रक्षा करने, और एक देश के द्वारा दूसरे देश का रक्तशोषण बन्द करनेवाली संस्था के रूप में स्वागत करता है।

"यह दल जोर के साथ प्रतिपादन करता है कि भारत प्रातिनिधिक और उत्तरदायी शासन के सर्वथा योग्य है, और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर भारत की जनता के लिए अपनी सरकार का ढांचा स्वयं तैयार करने का और यह निर्णय करने का कि कौन-सी शासन-प्रणाली भारत के लिए सबसे अच्छी रहेगी, पूर्ण अधिकार चाहता है। यह दल माण्टेगु-सुधार विधान को अपर्याप्त, असन्तोषपूर्ण और निराशाजनक समझता है और इस दोष को दूर करने की चेष्टा करने के निमित्त मजदूरदल के सदस्यों और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के अन्य भारत-हितैषियों की सहायता से शीघ्र-से-शीघ्र एक नवीन सुधार-बिल पास करायेगा जिसका उद्देश भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना हो और जो सेना पर पूरा अधिकार और अर्थ-सम्बन्धी नीति में पूरी स्वतंत्रता प्रदान करे और वैधानिक-गारण्टियों-सहित अधिकारों की विस्तृत घोषणा करे। इस उद्देश की सिद्धि के लिए यह दल विचार रखता है और सिफारिश करता है कि भारत में और उन देशों में जो राष्ट्र-संघ के सदस्य हैं खूब जोर का प्रचार किया जाय। इस मामले में इस दल का गुरुमंत्र होगा—'प्रचार, आन्दोलन और संगठन'।

"यह दल माण्टेगु-सुधारों को, जैसे कुछ भी वे हैं, सफल बनाने का विचार रखता है, जिससे देश में जल्दी ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम हो जाय; और इसलिए यह दल, बिना किसी संकोच के, लोकमत को कार्य-रूप देने के लिए जब जैसी जरूरत पड़े सहयोग प्रदान करेगा या वैध-रूप से विरोध करेगा।"

इसके बाद केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार-सम्बन्धी उन विषयों की एक सूची दी गई थी जिनके लिए उनका दल आन्दोलन करना चाहता था। उनमें दमनकारी कानूनों, राजद्रोह के अभियोगों का जूरी-द्वारा निर्णय, जेल-व्यवस्था में इंग्लैण्ड के जैसा सुधार, मजदूरों का संगठन और सुधार, जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों के निकास पर नियंत्रण, स्वदेशी का प्रचार, रेलवे को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाना, सैनिक-खर्च में कमी, कर-व्यवस्था, सैनिक शिक्षा, नौकरियां, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय एकता, कर-पद्धति प्रान्तिक स्वराज्य, ग्रामवासियों को जंगलों के उपयोग करने की छूट, अनिवार्य शिक्षा, ग्राम-पंचायत की स्थापना, नशा-निषेध सहयोग-समितियां, आयुर्वेद-पद्धति को

प्रोत्साहन, और औद्योगिक तथा इंजीनियरी शिक्षा आदि विषयों का समावेश किया गया था।

अभी मुसलमानों का शिष्ट-मण्डल यूरोप में ही था कि तुर्किस्तान के साथ संधि की प्रस्तावित शर्तें प्रकाशित हो गईं और भारत में उनके साथ-ही-साथ वाइसराय का संदेशा भी प्रकाशित हुआ, जिसमें भारतीय मुसलमानों को वे शर्तें समझाई गई थीं। संदेश में यह बात स्वीकार की गई थी कि संधि की शर्तों से भारत के मुसलमानों के दिलों को अवश्य ठेस पहुँची होगी, पर साथ ही उनसे कहा गया कि वे अपने तुर्की सहधर्मियों के इस दुर्भाग्य को सन्तोष और धैर्य के साथ सहन करें। किन्तु इन शर्तों के प्रकाशन से मुसलमानों के क्रोध का ठिकाना न रहा। हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट भी उसी समय प्रकाशित हुई थी। बस, सारे देश में आग लग गई। खिलाफत-कमिटी की बैठक बम्बई में हुई जिसमें गांधीजी के असहयोग-कार्यक्रम पर विचार किया गया और १९२० की २८ मई को असहयोग भारतीय मुसलमानों का एकमात्र शस्त्र समझ कर अपना लिया गया। ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट और तुर्किस्तान के साथ सन्धि की शर्तों पर विचार किया गया। लम्बे-चौड़े वाद-विवाद के बाद असहयोग पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया।

गांधीजी ने 'तिलक-सम्बन्धी स्मृतियां' नामक पुस्तक में बताया है कि असहयोग के प्रति लोकमान्य तिलक का क्या रुख था। "असहयोग के सम्बन्ध में उन्होंने मार्मिक ढंग से उसी बात को फिर दुहराया जिसे वह पहले भी मुझसे कह चुके थे, 'असहयोग का कार्यक्रम मुझे पसन्द है। पर इसमें जिस आत्म-त्याग की जरूरत है, उसके लिए देश हमारे साथ होगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। मैं आपकी सफलता चाहता हूँ। यदि आप जनता का ध्यान अपनी ओर खींच सकें तो मुझे आप अपना कट्टर समर्थक पायेंगे।"

गाँधी जी द्वारा विभिन्न सत्याग्रह

इस समय गांधीजी चम्पारन, खेड़ा और अहमदाबाद में सत्याग्रह करके या करने की धमकी देकर देश को स्थायी लाभ पहुँचाने का श्रेय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने चम्पारन में सत्याग्रह किया। खेड़ा जिले में वर्षा अधिक होने के कारण फसल मारी गई थी। वहां गांधीजी ने लगान न देने के सम्बन्ध में सत्याग्रह किया। और अन्त में अहमदाबाद में मिल-हड़ताल का अन्त कराया। १९१८ में गांधीजी ने खेड़ा जिले के

किसानों के कष्ट दूर करने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने किसानों को सलाह दी कि जवतक समझौता न हो जाय, तवतक लगान अदा न किया जाय। गुजरात-सभा ने शिष्ट-मण्डल वनाया, जो अधिकारियों के पास पहुँचा। परन्तु उस ताल्लुके का कमिश्नर विगड़ गया और शिष्ट-मण्डल से वड़ी अभद्रता के साथ पेश आया। इसपर गुजरात-सभा ने किसानों के नाम नोटिस जारी करके उन्हें लगान न देने की सलाह दी। इस कार्रवाई की जिम्मेदारी गांधीजी ने अपने ऊपर ली। सत्याग्रह अनिवार्य हो गया। खेड़ा के मामले में भी मोहनलाल पण्ड्या पहले सत्याग्रही थे जो गिरफ्तार किये गये (शोक है कि १८ मई १९३५ को उनका देहान्त हो गया)। अन्त में खेड़ा के किसानों को आंशिक छूट मिल गई। तीसरी घटना अहमदावाद मिल-हड़ताल थी, जो १९१८ के मार्च में आरम्भ हुई। अन्त में मजदूरों और मालिकों के वीच में एक समझौता ठहराया गया, पर इसी वीच में कुछ मजदूरों ने दुर्वलता और विह्वलता का परिचय दिया और मजदूरों का संगठन टूटता-सा दिखाई देने लगा। इस नाजुक अवसर पर गांधीजी ने उपवास करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा करने का गांधीजी का यह पहला अवसर था। पर इसके सिवा और कोई चारा न था। उन्होंने कहा—"आनेवाली पीढ़ी कहे कि दस हजार आदमियों ने उस प्रतिज्ञा को अचानक तोड़ दिया जो उन्होंने वीस दिन तक लगातार ईश्वर के नाम पर दोहराई थी, इससे तो यही अच्छा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के द्वारा मिल-मालिकों की स्थिति और स्वतंत्रता को अनुचित-रूप से कठिनाई में डालनेवाला कहलाऊँ।" (इसके विस्तृत विवरण के लिए इसी अध्याय के अन्त में दिये परिशिष्ट को देखिए)

कुली-प्रथा का अन्त

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में १९२० की घटनाओं का जिक्र करने से पहले हमें १९२० की १ जनवरी के उत्सव की चर्चा करनी है। इस दिन उपनिवेशों में शर्तवन्दी कुली-प्रथा का अन्त हुआ। यह प्रथा एक शताव्दी से जारी थी। जव भारत-सरकार ने और अधिक मजदूर भर्ती करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया तो नेटाल में इस प्रथा का अन्त हो गया। मारिशस में कुली-प्रथा का अन्त स्वतः हीं हो गया, क्योंकि वहां मजदूरों की और अधिक जरूरत न रही। परन्तु पृथिवी के अन्य भागों के उपनिवेशों में शर्तवन्दी कुली-प्रथा उसी प्रकार जारी थी। जव १९१४-१५ में भारत-सरकार ने उन प्रान्तों की सरकारों से पूछ-तांछ की तो उसे पता चला कि गांव-वाले इस प्रथा के घोर विरुद्ध हैं। १९१५ में दीनवन्धु एण्डरूज और मि० पियरसन फिजी

गये और वहां से बड़े ही बुरे समाचार लेकर आये, जिसे रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट का इतना प्रभाव पड़ा कि जब पण्डित मदनमोहन मालवीय ने बड़ी कौंसिल में कुली-प्रथा उठाने का प्रस्ताव पेश किया तो लॉर्ड हार्डिंग ने उसे मंजूर कर लिया। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि सब कुछ ठीक-ठाक करते-कराते कुछ समय लग ही जायगा। बाद को पता चला कि वह औपनिवेशिक विभाग से इस बात पर राजी हो गये हैं कि भारत में अभी पांच साल तक भर्ती होती रहे। एण्डरूज साहब ने भारत-सरकार को चुनौती दी कि इस प्रकार का गुप्त राजीनामा हुआ है या नहीं? और जब यह बात प्रकट की गई कि इस प्रकार के राजीनामे पर व्हाइट-हाल के दोनों—औपनिवेशिक और भारतीय—विभागों ने दस्तखत किये हैं तो सारे देश में क्रोध की लहर फैल गई। गांधीजी ने उत्तर और पश्चिम भारत में कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। श्रीमती बेसेण्ट ने मदरास में श्रीगणेश किया। १९१७ के मार्च-अप्रैल में आन्दोलन पूरे जोर पर था। भारत-सरकार ने १५ जून को जिन कारणों से श्रीमती एनी बेसेण्ट को नजरबन्द किया उनमें से एक यह भी रहा होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने गांधीजी को बुलाया और तब उनकी समझ में स्थिति की गंभीरता आई। हरेक प्रान्त की भारतीय महिलाओं का एक शिष्ट-मण्डल लॉर्ड चेम्सफोर्ड से अपनी मजूर बहनों की ओर से मिला। गांधीजी ने ३१ मई १९१७ का दिन नियत कर दिया कि उस दिन तक यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिए, नहीं तो भर्ती रोकने के लिए सत्याग्रह आरम्भ होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १२ अप्रैल १९१७ को घोषणा की कि भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत युद्ध-कालीन कार्रवाई के रूप में मजदूरों की भर्ती बन्द की जाती है। पर यह स्पष्ट था कि युद्ध समाप्त होते ही वे सारे उपनिवेश इस प्रश्न को फिर उठायेंगे जिनका उसमें बहुत बड़ा आर्थिक-हित था। इसलिए एण्डरूज साहब गांधीजी की सलाह और श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त करके ताजा मसाला इकट्ठा करने के लिए एकबार फिर फिजी गये, जिससे युद्ध के बाद प्रश्न उठने पर उसका उपयोग किया जा सके। वह कोई एक साल तक फिजी में रहे और पहली बार से भी अधिक भयंकर हकीकतें इकट्ठा कर लाये। उन्होंने इस प्रश्न के नैतिक पहलू पर आस्ट्रेलियन महिलाओं का ध्यान भी काफी आकर्षित कर लिया और उन्हें कुली-प्रथा को उठाने के पक्ष में प्रबल समर्थन प्राप्त हो गया। १९१८ के मार्च में उन्होंने मि० माण्टेगु से दिल्ली में भेंट की और उनके सामने सारा मामला पेश करके साबित कर दिया कि शर्तबन्दी कुली-प्रथा घोर अनैतिक है। १९१९ में सरकार ने यह घोषणा की कि अब गिरमिट के लिए अनुमति न मिलेगी और जिन मजदूरों की पांच साल की मियाद

पूरी नहीं हुई है उन्हें वन्धन-मुक्त किया जायगा। फलतः पहली जनवरी १९२० को फिजी, ब्रिटिश-गाइना, ट्रिनिडाड, सुरीनाम और जमेका के प्रवासी भारतीयों में हर्प का वारापार न रहा; क्योंकि वहां अभीतक यह प्रथा जारी थी। उस वन्धन-मुक्ति के दिन जो भारतीय गिरमिट के अनुसार यहां पहुँचे थे वे भी आजाद कर दिये गये। यह प्रथा १८३५ में आरम्भ की गई थी, जिससे उपनिवेशों में शकर की खेती के लिए मजदूर मिल सकें। इसके पहले अफ्रीका के ईसाई गुलाम काम करते थे, पर १८३३ में गुलामी का अन्त कर दिया गया था। इस प्रकार शकर की खेती जारी रखने के लिए जो तरकीव सोची गई थी वह गुलामी से कुछ विशेष भिन्न न थी। इतिहासकार सर डब्ल्यू० विलसन हन्टर ने इस प्रथा को अर्द्ध-गुलामी मजदूरी कहा था, और यह वर्णन ठीक भी है।

हण्टर-रिपोर्ट

१९२० की २८ मई को हन्टर-रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिससे देश में निराशा और क्षोभ की वाढ़ आ गई। रिपोर्ट में सव सदस्य सहमत न थे। हिन्दुस्तानी सदस्यों का अंग्रेज सदस्यों से मतभेद था। मतभेद इस विपय पर था कि पंजाव का उपद्रव आकस्मिक था या पहले से निश्चित किया हुआ था? अंग्रेज सदस्यों की राय थी कि वह पहले से निश्चित किया हुआ था, और हिन्दुस्तानी सदस्यों की राय इसके विपरीत थी, इसलिए उनकी सम्मति थी कि फौजी-कानून की कोई आवश्यकता न थी तथा इस उपद्रव का दोप चन्दा इकट्ठा करने और रंगरूट भर्ती करने में पंजाव के गवर्नर ओडायर के जुल्म को दिया। उन्होंने सरकार को ऐसी खवरें दवाने का दोपी ठहराया, जिनसे भ्रान्त धारणा फैली। सरकार ने यह वात स्वीकार की कि "फौजी-कानून का शासन-शक्ति के दुरुपयोग, अव्यवस्था, अन्याय और उत्तदायित्व-हीन कार्यों के द्वारा दूपित कर दिया गया था। जनरल डायर ने जो किया वह अनावश्यक था, दूसरा कोई समझदार आदमी ऐसा न करता। और उस स्थिति में जिस मानवी भाव से काम लेना चाहिए था, उसने उससे काम न लिया।" सम्राट् की सरकार ने उन कई निर्दयतापूर्ण और अनुचित सजाओं को विलकुल नापसन्द किया और भारत-सरकार को ताकीद कर दी कि इस प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार अफसरों को धिक्कार-द्वारा तथा दूसरे उपायों से इस नापसन्दगी का खुले तौर से परिचय करा दिया जाय। परन्तु मि० माण्टेगु ने कहा कि 'जनरल डायर ने जैसा उचित समझा उसके अनुसार विलकुल नेकनीयती के साथ काम किया, अलवत्ता उससे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती

हो गई।" भारत को इस बात से कोई सान्त्वना न मिली कि भविष्य के लिए फौजी-कानून की नियमावली तैयार करने के लिए भारत-सरकार को हिदायत कर दी गई है। न पंजाब या भारत को इस बात से ही कोई तसल्ली हुई कि जो अधिकारी फौजी-कानून की करतूतों के लिए जिम्मेदार थे उनके सम्बन्ध में बड़े ध्यान के साथ जांच-पड़ताल की गई है, क्योंकि जिन अधिकारियों के आचरण को धिक्कारा गया था उनमें से बहुत से चले गये थे या भारत-सरकार की नौकरी छोड़ चुके थे।

हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद ही ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें इन सारे प्रश्नों पर भारत की ओर से क्रोध प्रकट किया गया और मामले पर विचार करने के लिए विशेष कांग्रेस करने का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक उस अवसर पर बनारस से होकर गुजरे, पर उन्होंने महासमिति में भाग न लिया क्योंकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हें कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होंने देशभक्ति और सौजन्य का परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया कि वह महासमिति के आदेश का पालन करेंगे। इसी अवसर पर गांधीजी ने असहयोग-आन्दोलन को, नेताओं का एक सम्मेलन बुलाकर उसके सामने रखने का निश्चय किया। अबतक असहयोग-आन्दोलन खिलाफत के प्रश्न से ही सम्बन्ध रखता था। सारे दलों के नेता २ जून १९२० को इलाहाबाद में इकट्ठे हुए। इस सम्मेलन में असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया गया और कार्यक्रम तैयार करने के लिए गांधीजी और कुछ मुसलमान नेताओं की एक कमिटी बनाई गई। इस कमिटी ने रिपोर्ट प्रकाशित करके स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार की सिफारिश की। वास्तव में नवम्बर १९१९ में दिल्ली में अ० भा० खिलाफत-परिषद् ने गांधीजी की सलाह के मुआफिक सरकार से असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय की पुष्टि कलकत्ता और अन्य स्थानों के मुसलमानों ने, और १७ अप्रैल १९२० को मदरास की खिलाफत-परिषद् ने, कर दी थी। मदरास की खिलाफत-परिषद् ने असहयोग की योजना की जो परिभाषा की थी उसके अनुसार उपाधियों और सरकारी नौकरियों का परित्याग, ऑनरेरी पदों और कौंसिलों की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज की नौकरी का त्याग और कर अदा करने से इन्कार करना भी आवश्यक था। खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों और अपर्याप्त सुधारों की फल्गु ने उबलती हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया। इस त्रिधारा ने राष्ट्रीय असन्तोष के प्रवाह को और भी प्रबल कर दिया। असहयोग के लिए वातावरण तैयार था। लोकमान्य तिलक तक ने महासमिति के निश्चय को मानने का वचन दे दिया था। पर शोक, ३१ जुलाई की आधीरात को

वह परलोक सिधार गये और इस प्रकार गांधीजी एक महान् शक्ति की सहायता से वंचित रह गये !

इधर मुसलमानों ने अफगानिस्तान को हिजरत करने का निश्चय किया, क्योंकि अब तुर्किस्तान के साथ ब्रिटेन की संधि के बाद भारत में अंग्रेजों के शासन में रहना उन्होंने ठीक नहीं समझा। यह आन्दोलन सिन्ध में आरम्भ हुआ और सीमान्तप्रदेश में जा फैला। कचगढ़ी में मुहाजिरीन और सैनिकों में जोर की मुठभेड़ हो गई, जिससे जनता में और भी आग लग गई और अगस्त के भीतर-भीतर अनुमानतः १८,००० आदमी अफगानिस्तान के लिए चल पड़े। पर अफगान-सरकार ने शीघ्र ही इन मुहाजिरीन का दाखिला बन्द कर दिया और अनेक कष्ट झेलने और मरने-खपने के बाद इन मुसलमानों के विचारों में परिवर्त्तन हुआ।

जब अगस्त में बड़ी कौंसिल की बैठक हुई तो असहयोग जारी था। कई सदस्यों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया था। वाइसराय ने घोषणा की कि असहयोग की नीति से अव्यवस्था उत्पन्न होगी और पूछा कि क्या कोई इससे भी अधिक अविवेक-पूर्ण कार्य हो सकता है ? उन्होंने आन्दोलन को "सारी मूर्खता-पूर्ण योजनाओं में सबसे अधिक मूर्खता-पूर्ण योजना" बताया, परन्तु नई कौंसिल खोलने के लिए युवराज को भारत बुलाने का विचार, जिसका विरोध बम्बई लिबरल परिषद् में श्री शास्त्री तक ने किया था, अन्त में छोड़ दिया गया। अगस्त में ही डॉ० सप्रू को वाइसराय की कार्य-कारिणी का सदस्य नियुक्त किया गया।

असहयोग का प्रस्ताव

असहयोग की योजना का बाकायदा आरम्भ १ अगस्त को हुआ। गांधीजी और अली-भाइयों ने देश का दौरा किया। गांधीजी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाया और उसके उछलते हुए उत्साह को संयम में रक्खा। जैसा हमेशा से होता आया है, गांधीजी ने जब-जब अपने अनुयायियों को लताड़ बताई तो सरकार ने उसका उद्धरण भीड़ की निरंकुशता सिद्ध करने में किया। कांग्रेस को अपने पुराने वैध रास्ते को छोड़कर नया रास्ता अपनाने को कहा गया था। यह असाधारण बात थी, जिसके लिए कांग्रेस के विशेष-अधिवेशन की आवश्यकता थी। इस अधिवेशन का निश्चय मई में ही हो चुका था। यह १९२० के ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते में हुआ।

यह अधिवेशन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। बंगाल गांधीजी से पूरी तरह सहमत न

था और देशबन्धु दास तो गांधीजी के असहयोग-कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे। उनके या अधिकांश प्रतिनिधियों के हृदयों में कौंसिलों और अदालतों के बहिष्कार की योजना के प्रति बिलकुल सहानुभति न थी। पर तो भी ७ मत के संकीर्ण पर निश्चयात्मक बहुमत से कार्य-समिति ने गांधीजी का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमें उन्होंने शनैः शनैः बहिष्कार करने की सलाह दी थी। उस समय वातावरण ही ऐसा था कि असहयोग अवश्यम्भावी था। भारत-सरकार ने हण्टर-रिपोर्ट के बहुसंख्यक-पक्ष की बात ग्रहण कर ली थी और वह अधिकारियों की काली करतूतों पर अंधकार का पर्दा डालना चाहती थी। बहुसंख्यक-पक्ष की राय में डायर का आचरण केवल "समझ की बड़ी भूल" था, "जिसके कारण वह आवश्यकता की परिधि से बाहर चला गया।" उसकी राय में डायर ने जो किया वह कर्त्तव्य को नेकनीयती के साथ, पर गलत ढंग से अपना कर्त्तव्य समझने के कारण, किया। मि० मॉण्टेगु ने भी इन सिफारिशों को बिना चूं तक किये स्वीकार कर लिया और पंजाब के अधिकारियों की करतूतों की ओर से एक प्रकार आंखें बन्द कर लीं। उन्होंने कहा कि "डायर ने कठोर कर्त्तव्य और नेकनीयती से काम लिया था।" कामन-सभा में डायर के प्रति किये गये अत्याचार और उसे दिये गये अन्यायपूर्ण दण्ड के सम्बन्ध में वाद-विवाद हुआ। लार्ड सभा में लॉर्ड फिनले का प्रस्ताव स्वीकार किया गया जो गलत, एक पक्षीय, और शब्द तथा भाव दोनों प्रकार से झूठी बातों से भरा हुआ था। इस वाद-विवाद के द्वारा भारतीय जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता के साथ विश्वास-घात किया गया। इस वाद-विवाद और खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय को लेकर कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में कड़े प्रस्ताव पास किये गये।

कांग्रेस का यह विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बड़े जोशोखरोश के बीच हुआ। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती स्वागत-समिति के प्रधान थे और लाला लाजपतराय, जो हाल ही अमरीका से लौटे थे, सभापति थे। पहले प्रस्ताव में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु पर कांग्रेस के गहरे दुःख को प्रकट करते हुए कहा गया कि उनका निर्मल एवं विशुद्ध जीवन, देश के लिए किया गया उनका त्याग और सेवायें, जनता के हित के लिये उनकी तीव्र लगन और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के युद्ध में किये गये उनके भगीरथ प्रयत्नों के कारण उनकी स्मृति हमारे देशवासियों के हृदय-पटल पर सदा आदर-सहित अंकित रहेगी और अनगिनत पीढ़ियों तक हमारे देशवासियों को बल व स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। डॉ० महेन्द्रनाथ ओहदेदार की मृत्यु से देश को जो क्षति पहुँची थी, उसपर भी कांग्रेस ने अपने दुःख को प्रकट किया।

दूसरा प्रस्ताव सर आशुतोष चौधरी ने, जो कलकत्ता-हाईकोर्ट की जजी से फारिग हुए ही थे, पेश किया। उसमें पंजाब-जांच-कमिटी के निर्णय स्वीकार किये गये; हन्टर-कमिटी के बहुमत की पक्षपात तथा वर्ण-द्वेष-पूर्ण नीति की निन्दा की गई; और यह कहा गया कि उसके द्वारा ब्रिटिश-न्याय की निष्पक्षता से लोगों का विश्वास उठ गया है।

तीसरा प्रस्ताव भी पंजाब के बारे में था। पंजाब में किये गये अत्याचारों के विरुद्ध ब्रिटिश-सरकार-द्वारा पर्याप्त कार्रवाई न किये जाने पर, ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत-सरकार की सिफारिशों को ज्यों-का-त्यों मान लिये जाने पर, और उसके द्वारा पंजाब के अधिकारियों के काले कारनामों को असलियत में दर-गुजर कर देने पर घोर निराशा प्रकट की गई।

लेकिन अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव असहयोग से सम्बन्ध रखनेवाला था, जिसे गांधीजी ने पेश किया और जो ८८४ प्रतिनिधियों के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों की रायों से पास हुआ। यह प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"चूंकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत व ब्रिटेन दोनों देशों की सरकारें भारत के मुसलमानों के प्रति अपना फर्ज अदा करने में खास तौर से असफल रही हैं और ब्रिटिश-प्रधान-मंत्री ने जान-बूझ कर उन्हें दिये हुए वादे को तोड़ा है और चूंकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीय का यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक विपत्ति को दूर करने में प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करे;

"और चूंकि अप्रैल १९१९ की घटनाओं के मामलें में उक्त दोनों सरकारों ने पंजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने में और उन अफसरों को सजा देने में जो पंजाब की जनता के प्रति असभ्य व सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरे हैं, घोर लापरवाही की है और चूंकि उक्त दोनों सरकारों में सर माइकेल ओडायर को जो अफसरों द्वारा किये गये बहुत-से अपराधों के लिए स्वयं प्रत्यक्ष-रूप से उत्तरदायी था और जिसने जनता के दुःखों व कष्टों की सरासर अवहेलना की, बरी कर दिया; और चूंकि इंग्लैण्ड की लॉर्ड-सभा में हुए वाद-विवाद से भारतीय जनता के प्रति सहानुभूति का दुःखपूर्ण अभाव स्पष्टतः प्रकट हो गया है और पंजाब में सुसंगठित-रूप से आतंक और त्रास फैलाया गया है; और चूंकि वाइसराय की सबसे ताजी घोषणा इस बात का प्रमाण है कि खिलाफत व पंजाब के मामलों पर तनिक भी पछतावे का भाव नहीं है; अतः इस कांग्रेस की राय है कि भारत में तबतक शान्ति नहीं हो सकती जबतक कि उक्त दोनों भूलों का सुधार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय सम्मान की मर्यादा को कायम

रखने के लिए और भविष्य में इस प्रकार की भूलों को दोहराने से बचाने के लिए उपयुक्त मार्ग केवल स्वराज्य की स्थापना ही है। इस कांग्रेस की यह राय है कि जबतक उक्त भूलों का सुधार न हो जाय और स्वाराज्य की स्थापना न हो जाय, भारतवासियों के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि वे गांधीजी-द्वारा संचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग नीति को स्वीकार करें और अपनावें।

"और चूंकि इसकी शुरुआत उन लोगों को ही करनी चाहिए जिन्होंने अब तक लोकमत को बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है, और चूंकि सरकार अपनी शक्ति का संगठन लोगों को दी गई उपाधियों व सम्मान से, अपने द्वारा नियन्त्रित स्कूलों से, व अपनी अदालतों व कौंसिलों से ही करती है, और चूंकि आन्दोलन को चलाने में यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश की सिद्धि के लिए आवश्यक कम-से-कम त्याग का आवाहन किया जाय, यह कांग्रेस सरगर्मी के साथ सलाह देती है कि—

(अ) सरकारी उपाधियों व अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और जिला और म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य संस्थाओं में जो लोग नामजद हुए हों वे इस्तीफा दे दें;

(ब) सरकारी दरबारों, स्वागत-समारोहों तथा सरकारी अफसरों-द्वारा किये गये या उनके सम्मान में किये जानेवाले अन्य सरकारी व अर्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाय;

(स) सरकार के, सरकार से सहायता प्राप्त करनेवाले व सरकार-द्वारा नियन्त्रित स्कूल व कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय; उनके स्थान में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूल व कालेजों की स्थापना की जाय;

(द) वकीलों व मुवक्किलों-द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मदद से खानगी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हो;

(य) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करनेवाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भर्ती होने से इनकार करें;

(फ) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के बावजूद कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए खड़ा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इनकार करें;

(ज) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।

"और चूंकि असहयोग को अनुशासन व आत्म-त्याग के एक साधन के रूप में पेश किया गया है जिसके विना कोई भी राष्ट्र सच्ची उन्नति नहीं कर सकता और चूंकि असहयोग के सबसे पहले युग में ही हर स्त्री-पुरुष व वालक को इस प्रकार के अनुशासन व आत्म-त्याग का अवसर मिलना चाहिए, यह कांग्रेस सलाह देती है कि एक वड़े पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रों को अपनाया जाय; और चूंकि भारतीय श्रम व प्रबंध से चलनेवाली भारत की वर्तमान मिलें देश की जरूरियात के लिए पर्याप्त सूत व कपड़ा तैयार नहीं कर सकतीं और न ही इस वात की कोई सम्भावना है कि एक लम्बे अर्से तक वे ऐसा करने में समर्थ हो सकें, यह कांग्रेस सलाह देती है कि हरेक घर में हाथ की कताई को फिर से और देश के इन असंख्य जुलाहों द्वारा, जिन्होंने अपने पुराने व सम्मानित पेशे को उत्साह न मिलने के कारण छोड़ दिया था, हाथ की बुनाई को पुनरुज्जीवित करके बड़े पैमाने पर वस्त्रों की उत्पत्ति तुरन्त ही बढ़ाई जाय।"

इस प्रस्ताव पर गरमागरम बहस हुई। बाबू विपिनचन्द्र पाल ने एक संशोधन पेश किया, जिसका देशबन्धु चित्तरंजनदास ने समर्थन किया। इस संशोधन के अनुसार ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री को भारत के एक शिष्ट-मण्डल से मिलने के लिए कहा गया।

बहुत देर के विवाद के बाद अन्त में गांधीजी का प्रस्ताव पास हो गया।

यहां प्रसंगवश यह भी कह दिया जाय कि गांधीजी ने पहले जिला व म्यूनिसिपल बोर्ड आदि स्थानिक संस्थाओं के वहिष्कार को भी अपने कार्यक्रम में शामिल कर लिया था, लेकिन फिर मित्रों की मर्जी के खातिर उसे निकाल दिया। राष्ट्रीय दल भी कार्यक्रम से कुछ मतभेद रखता था, लेकिन तिसपर भी वह कांग्रेस के प्रति वफादार रहा। अमृतसर-कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार जो राष्ट्रीय पक्ष के उम्मीदवार नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए थे और जिन्होंने चुनाव-आन्दोलन में काफी समय, परिश्रम व धन व्यय किया था, वे लगभग सब एकदम चुनाव से हट गये। मत-दाताओं तक ने, लगभग ८० प्रतिशत ने, कांग्रेस के निर्णय को माना और वोट देने से इनकार किया। कई जगहों से तो वोट की पर्चियां डालने के वक्स रीते-के-रीते लौट गये। स्वयं सरकार ने इस वात को स्वीकार किया कि "गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन में नई कौंसिलों का वहिष्कार अवश्य ही अगले कुछ वर्षों के इतिहास पर जबरदस्त प्रभाव डालकर रहेगा। इस वहिष्कार के

कारण नई कौंसिलों में कई लोक-प्रतिष्ठित व उग्र-विचारवादी न आ सके और नरम-दलियों का रास्ता साफ हो गया।"

नवम्बर के शुरू होते ही सरकार ने इस आन्दोलन के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट करना आवश्यक समझा। सरकार ने कहा, "उसने प्रान्तीय सरकारों को आदेश किया है कि वह केवल उन्हीं लोगों के विरुद्ध कार्रवाई करें जो आन्दोलन को चलाते-चलाते-उस हद से भी वाहर निकल जायं जो उसके संचालकों ने नियत कर रक्खी है और जिन्होंने लेखों व भाषणों से जनता को खुले-आम हिंसा के लिए भड़काया है, या जिन्होंने पलटन व पुलिस की वफादारी को विगाड़ने का प्रयत्न किया है।" सरकार ने अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि "उच्च-वर्ग के व्यक्ति व सर्व-साधारण दोनों ही असहयोग-आन्दोलन को एक शेखचिल्ली की योजना समझकर रद कर देंगे। क्योंकि यदि यह योजना सफल हो जाय तो उससे चारों ओर अशान्ति व राजनैतिक गोलमाल फैले विना नहीं रह सकता और जिन लोगों के देश में कुछ भी स्वार्थ-संबंध हैं उनका सर्वनाश हुए विना नहीं रह सकता। असहयोग-आन्दोलन अज्ञान और पूर्व-विश्वासों के सहारे ही टिक सकता है; और उसके उद्देश में रचनात्मक तत्त्वों के तो कीटाणु भी नहीं हैं।"

२ अक्तूबर १६२० को महासमिति ने अपनी वैठक में अखिल-भारत तिलक-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष नाम के दो कोष इकट्ठे करने का निश्चय किया, लेकिन उसका यह प्रस्ताव दिसम्बर १६२० तक रद्दी की टोकरी में ही पड़ा रहा। असहयोग-आन्दोलन सम्बन्धी नये प्रस्तावों का भी बंगाल और महाराष्ट्र में कुछ अच्छा स्वागत न हुआ। लोकमान्य तिलक के एक साथी गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित करके तुलनात्मक-रूप से वताया कि किस प्रकार कलकत्ता-कांग्रेस के प्रस्ताव कांग्रेस की शक्तियों को आत्मवल व नैतिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की दिशा में तो ले जाते हैं, लेकिन प्रश्न के राजनैतिक पहलू को बिलकुल भुला देते हैं। "देश की वास्तविक सरकार से हमारा सब सम्पर्क हटाकर यह आन्दोलन हमें राजनैतिक रंग में रंगे जाने से और एक इस प्रकार का राजनैतिक स्वभाव वनाने से रोकता है जो एक करारी लड़ाई को शान्ति से किन्तु सुव्यवस्थित-रूप से और जम कर चलाने के लिए आवश्यक है। असहयोग का आन्दोलन सहनशक्ति को वढ़ाने में सहायक हो सके, यह सम्भव है; लेकिन वह हमारे अन्दर वह कार्य-शक्ति, साधनशीलता व व्यावहारिक चातुर्य्य पैदा करने में असमर्थ है जो एक राजनैतिक आन्दोलन के लिए आवश्यक है। कांग्रेस ने जिन तीन बहिष्कारों

की सिफारिश की है वे बेकार हैं और उनमें सुदूर राजनैतिक दृष्टि का बिलकुल अभाव है। आल-इण्डिया-होमरूल-लीग (जो अब स्वराज-सभा के नाम से जानी जाती है) के ध्येय को बदलते समय जो विवाद व कार्रवाई हुई उसे देखने से प्रतीत होता है कि अब सारा झुकाव फिर एकतन्त्र व व्यक्तिगत सत्ता की ओर है। चाहे यह सत्ता एक बहुत ही बढ़े-चढ़े व नीतिवान् व्यक्ति को क्यों न दी जाय, है आपत्तिजनक और समय की स्पिरिट के विरुद्ध।"

इसमें होमरूल-लीग के ध्येय-परिवर्त्तन और गांधीजी द्वारा स्वराज-सभा बनाने की ओर ध्यान दिलाया गया। कलकत्ते में जब असहयोग का भाग्य तराजू के पलड़ों पर लटका हुआ था, गांधीजी ने पुराने होमरूल-वादियों को, जिनसे श्रीमती बेसेण्ट अलग-सी हो गई थीं, एक झण्डे के नीचे इकट्ठा किया और लीग का ध्येय बदल डाला। इस ध्येय को नागपुर में फिर कांग्रेस ने भी अपना लिया। गांधीजी ने लीग का नाम भी बदल कर स्वराज-सभा रक्खा। लेकिन इस सभा को चलने का मौका नहीं मिला, क्योंकि कलकत्ता में तो कांग्रेस ने असहयोग के मार्ग को ग्रहण कर लिया था और नागपुर में उसपर फिर दोहरी छाप लगा दी। यह विधि के विधान में और राजनीति में कैसी घटना है कि असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव लगातार दो बार ऐसे प्रान्तों की राजधानियों में पास हुए जहाँ कि असहयोग-आन्दोलन का प्रबल-से-प्रबल विरोध किया गया था।

नागपुर-कांग्रेस

नागपुर-कांग्रेस में असहयोग के कार्यक्रम पर अन्तिम-रूप से विचार होकर निश्चय होना था। कांग्रेस में आये हुए प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक थी। नागपुर के पहले या बाद की कोई भी कांग्रेस इस बात का दावा नहीं कर सकती कि उसके अधिवेशनों में प्रतिनिधियों की संख्या नागपुर के बराबर थी। नागपुर में प्रतिनिधियों की संख्या १४,५८२ थी, जिसमें १०५० मुसलमान थे और १६९ स्त्रियां। कांग्रेस के सभापति दक्षिण के पुराने व अनुभवी नेता चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य थे। कर्नल वेजवुड, मि० हालफोर्ड नाइट व मि० बेन्न स्पूर ने कांग्रेस में इंग्लैण्ड के मजदूर-दल के मित्र-प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया और मजदूर-दल की सहानुभूति को प्रदर्शित किया।

श्री चित्तरंजनदास पूर्वी बंगाल व आसाम से लगभग २५० प्रतिनिधियों का एक दल लाये थे, उनका दोनों ओर का खर्चा भरा और अपनी जेब से लगभग

३६,०००) इसलिए खर्च किया कि कलकत्ते के निर्णय पर पानी फेरा जा सके। श्री दास के आदमियों में और उनके विरोधी श्री जितेन्द्रलाल बनर्जी के आदमियों में एक मामूली-सी तकरार भी हो गई। महाराष्ट्र का विरोध भी कुछ कम तगड़ा या कुछ कम संगठित न था। कर्नल वेजवुड ने और मि० बेन स्पूर व मि० हालफोर्ड नाइट ने विषय-समिति की बैठक में भी भाग लिया था। कर्नल वेजवुड ने असहयोग के विरोध में दलीलें पेश करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी परन्तु नतीजा कुछ भी न हुआ। खादी-सम्बन्धी धारा और भी कड़ी कर दी गई। असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया और कांग्रेस का ध्येय "इस तर्ज से बदल डाला गया कि उसमें ब्रिटिश-सम्बन्ध व वैध-आन्दोलन का जिनमें कांग्रेस अभीतक विश्वास करती थी, कोई उल्लेख ही न रहा।" ये सरकार के शब्द हैं। अधिवेशन में गांधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई।

अब हम नागपुर-कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं पर और उसने कांग्रेस के ध्येय व विधान तथा आदर्शों व दृष्टिकोण में क्या-क्या आमूल परिवर्तन किये, इसपर भी दृष्टिपात करें। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव का स्वीकार हो जाना स्वयं एक बड़ी भारी बात थी, लेकिन उसके बारे में सबसे बड़ी बात यह थी कि उसे श्री चित्तरंजनदास ने पेश किया और उसका लाला लाजपतराय ने समर्थन किया। नागपुर में गांधीजी को निस्सन्देह कलकत्ते से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। कलकत्ते में केवल एक ही परले सिरे के राजनीतिज्ञ पं० मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी का साथ दिया था, और सो भी अधिवेशन की समाप्ति के करीब जबकि गांधीजी ने नेहरूजी का यह संशोधन स्वीकार कर लिया कि अदालतों व कालेजों का बहिष्कार धीरे-धीरे हो।

नागपुर के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव ने करीब-करीब कलकत्तावाले प्रस्ताव को ही दोहराया। एक ओर पदवियां छोड़ देने की बात तो दूसरी ओर करों के न देने तक की बात उसमें शामिल कर ली गई। व्यापारियों से अनुरोध किया गया कि वे धीरे-धीरे विदेशी व्यापारिक-सम्बन्धों को छोड़ें और हाथ की कताई-बुनाई को प्रोत्साहन दें। देश से अनुरोध किया गया कि वह राष्ट्रीय-आन्दोलन में अधिक-से-अधिक त्याग करे। राष्ट्रीय सेवक-दल (इण्डियन नेशनल सर्विस) को संगठित करने और अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष* को बढ़ाने के लिए कांग्रेस पर

---

*कोष एकत्र करने का निश्चय तो अक्तूबर में ही हो गया था, लेकिन बाद में अखिल-भारत-लोकमान्य-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष को मिलाकर एक कर दिया गया।

जोर दिया गया। कौंसिलों के लिए चुने गये सदस्यों से इस्तीफा देने की और मत-दाताओं से उन सदस्यों से किसी भी प्रकार की राजनैतिक सेवा न लेने की प्रार्थना की गई। पुलिस व पलटन और जनता में मित्रता के जो भाव बढ़ रहे थे उनको स्वीकार किया गया। सरकारी कर्मचारियों से अपील की गई कि वे जनता से बर्ताव करते समय अधिक नरमी व ईमानदारी का परिचय देकर राष्ट्र-कार्य में सहायता करें और सब सार्वजनिक सभाओं में बिना डर के खुले तौर पर भाग लें। इस बात पर भी जोर दिया गया कि अहिंसा असहयोग-आन्दोलन का अविच्छिन्न अंग है। वचन और कर्म दोनों में अहिंसा का होना आवश्यक माना गया और उसपर जोर दिया गया, क्योंकि हिंसा-भाव लोकशासन की स्पिरिट के विरुद्ध ही नहीं बल्कि असहयोग की आगे की सीढ़ियों तक पहुँचने के मार्ग में भी बाधक है। प्रस्ताव के अन्त में इस बात पर जोर दिया गया कि सब सार्वजनिक संस्थायें सरकार से अहिंसात्मक असहयोग करने में अपना सारा ध्यान लगा दें और जनता में परस्पर पूर्ण सहयोग स्थापित करें। इस प्रकार के परिवर्तित वातावरण में इंग्लैण्ड के साप्ताहिक 'इण्डिया' को बन्द करना निश्चित हुआ, यद्यपि इस बात को महसूस किया गया कि भारत और विदेशियों में भारत के बारे में सच्ची बातों के फैलाने की आवश्यकता है। आयर्लैण्ड के वीर योद्धा स्वर्गीय मैक्स्विनी ने जो आयर्लैण्ड के उत्थान के लिए लड़ते-लड़ते ६५ दिन की भूख-हड़ताल के पश्चात् अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दिया था इसके लिए उन्हें श्रद्धाञ्जलि दी गई।

विनिमय की दर में वृद्धि होने और उसके फल-स्वरूप "रिवर्स कौंसिलों" द्वारा स्वर्ण-विनिमय-मान-कोष (Gold Exchange Standard Reserve) कागजी-मुद्रा कोष (Paper Currency Reserve) में "लूट" मचने के कारण नागपुर में जोरों से इस बात की मांग पेश की गई कि ब्रिटिश-सरकार इस घाटे को पूरा करे। पांचवें प्रस्ताव में तो यह भी कहा गया कि "ब्रिटिश माल की तिजारत करनेवाले व्यापारी विनिमय की वर्तमान दरों पर अपना वादा पूरा करने से इन्कार करने के हकदार हैं।" ड्यूक ऑफ कनाट के सम्मान में किसी उत्सव व समारोह में भाग न लेने के लिए देश से अनुरोध किया गया। मजदूरों को प्रोत्साहित किया गया और ट्रेड-यूनियनों के जरिये जारी किये गये उनके संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। खाद्य-पदार्थों के निर्यात की नीति की निन्दा की गई। मुकदमा चलाकर या बिना मुकदमा चलाये जिन राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करके सजा दी गई उनके प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। पंजाब,

दिल्ली व अन्य स्थानों में पुनः प्रारम्भ हुए दमन को ध्यान में रक्खा गया और जनता से कहा गया कि वह सब कुछ धैर्य से सहे। कांग्रेस ने सब देशी-नरेशों से भी प्रार्थना की कि वे अपनी-अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न करें। हार्निमैन साहब को भारतीयों से अलग रखने की सरकारी नीति की निन्दा की गई और मि० हार्निमैन के प्रति भारत की कृतज्ञता प्रकाशित की गई। ईशर-कमिटी व उसकी सिफारिशों को भारत की पराधीनता व असहायता को बढ़ाने में सहायक मान कर उनकी निन्दा की गई और उन सिफारिशों को भी असहयोग-आन्दोलन का एक और कारण माना गया। मुसलमानों को गो-वध के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने पर धन्यवाद दिया गया और जनता से आग्रह किया गया कि वह जानवर और चमड़े की निर्यात को निरुत्साहित करे। निःशुल्क शिक्षा व देशी-चिकित्सा-पद्धति के बारे में भी प्रस्ताव पास हुए।

अन्त में हम कांग्रेस के विधान पर आते हैं। कांग्रेस का ध्येय बदल दिया गया। कांग्रेस का ध्येय "शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना" घोषित किया गया। कांग्रेस का प्रान्तीय संगठन प्रान्तों की भाषा के अनुसार किया गया। विषय-समिति की बैठकों का कांग्रेस के खुले अधिवेशन से दो-तीन दिन पहले करना व उसकी सदस्यता केवल महासमिति के सदस्यों तक सीमित रखना—ये मार्के के परिवर्तन थे; लेकिन विषय-समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ३५० तक कर दी गई। सभापति, मंत्री व कोषाध्यक्ष समेत १५ सदस्यों की एक कार्य-समिति का नियुक्त होना नये विधान का एक ऐसा अंग था जिसने कांग्रेस के रोजमर्रा के कार्य में एक क्रान्ति ही कर दी है।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम यह बता दें कि कांग्रेस ने पूर्वी व दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को उनके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध उच्चता और वीरतापूर्ण संग्राम छेड़ने पर सहायता देने का भी प्रस्ताव पास किया और पूर्वी अफ्रीका में भारतीयों-द्वारा प्रारम्भ की गई शान्तिमय असहयोग की नीति को पसन्द किया। फिजी के भारतीयों की, जिन्हें भारत लौटने के लिए बाधित किया गया था, भारत-द्वारा कोई सहायता न हो सकने पर दुःख प्रकट किया। सबसे अन्त में प्रवासी भारतीयों की सेवा करने के उपलक्ष्य में कांग्रेस ने दीनबन्धु एण्ड्रूज को धन्यवाद दिया।

अध्याय १ का परिशिष्ट

१—चम्पारन-सत्याग्रह

विहार के उत्तर-पश्चिमी कोने में चम्पारन एक जिला है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरे खेतिहरों ने इस जिले में नील की खेती करना प्रारम्भ किया। आगे चलकर इन लोगों ने वहां के जमीदारों से, अस्थायी और स्थायी जैसे भी सौदा बना, भूमि के बड़े-बड़े भाग अपने हाथ कर लिये। विशेषकर महाराज बेतिया की जमीन ली, क्योंकि उनके सिर कर्ज का बहुत बड़ा बोझा लदा हुआ था। इन गोरे खेतिहरों ने अपने प्रभाव और रुतबे से, जो कि उन्होंने जमीन प्राप्त करके यहां पैदा कर लिया था, और कुछ उस प्रभाव के कारण भी जोकि उन्हें हुकूमत करनेवाली जाति का होने के नाते प्राप्त था, शीघ्र ही वहां के गांवों के किसानों से अपने लिए नील की खेती कराना प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर यह अनिवार्य हो गया कि किसान अपनी ३/२० या ५/२० भूमि पर नील अवश्य बोयें। कुछ ही दिनों में इन लोगों ने बंगाल-टेनेन्सी एक्ट में इस बात को कानून का रूप दिलवा दिया। नील पैदा करने की यह प्रथा आगे चलकर तीनकठिया के नाम से मशहूर हुई, जिसके मानी थे एक बीघे का ३/२० भाग। किसानों की यह शिकायत थी कि नील की खेती से उन्हें कोई फायदा नहीं है। लेकिन फिर भी उसे करने के लिए उन्हें मजबूर किया जाता था। इससे उनकी अन्य खेती को नुकसान पहुँचता था और इसके लिए उन्हें जो मजदूरी मिलती थी वह नाममात्र की थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अन्य अनेक चीजों के मेल से रंग तैयार होने लगे। इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि पूर्वोक्त अवस्था में नील पैदा कराने पर भी नील का व्यवसाय लाभ-प्रद नहीं रहा। फलतः उनके नील के कारखाने बन्द होने लगे। लेकिन इस नुकसान को अपने कंधे पर लेने के बजाय उन्होंने उसे गरीब किसानों के सिर मढ़ देने के उपाय सोचे। इसके लिए उन्होंने दो उपायों से काम किया। उन गांवों में, जिनकी जमीन के लिए उनके पास स्थायी पट्टा था, उन्होंने किसानों से लगान में बढोतरी कराने के इकरारनामे लिखा लिये और बदले में उन्हें नील पैदा करने के बन्धन से मुक्त कर दिया। इस प्रकार के हजारों ही शर्तनामे लिखाये गये। इन शर्तनामों की रजिस्ट्री कराने के लिए सरकार ने खास रजिस्ट्रार नियुक्त किये थे। लेकिन जहां उनके स्थायी पट्टे नहीं थे, वहां किसानों से उन्होंने जैसा कि किसानों का आरोप था, नील पैदा करने से मुक्त करने के लिए जबरदस्ती नकद रुपया वसूल किया, या रुपये के मूल्य की कोई और चीज ले

ली। गरीब किसानों से कोई १२ लाख रुपया वसूल किया। क्योंकि सारा चम्पारन जिला इन्हीं गोरों के हाथों में आ गया था, इसलिए उन्होंने उसके मुख्तलिफ टुकड़े कर लिये थे। गोरों के प्रत्येक संघ के पास चम्पारन जिले का कोई-न-कोई भाग था जिसमें उनकी हुकूमत थी। इनका प्रभाव सरकारी हलकों में इतना था कि वेचारे गरीव किसान इस वात का साहस, जिस्मानी और माली जोखिम उठाने के लिए तैयार हुए विना, कर ही नहीं सकते थे कि इन गोरों के विरुद्ध दीवानी या फौजदारी किसी भी प्रकार का मामला चलावें या किसी भी हाकिम से शिकायत कर सकें। उच्च जाति के हिन्दुओं तक को पिटवाना, कांजीहाउसों में उन्हें वन्द करा देना तथा हजार ढंग से उन्हें तंग करना और उनपर अत्याचार करना, जिनमें मकानों की लूट, नाई, धोवी, चमार वन्द करा देना, उनके मकानों से उन्हें वाहर निकाल देना, उन्हींके मकानों के भीतर उन्हें वन्द कर देना, अछूतों को उनके दरवाजों पर विठा देना आदि वातें भी शामिल थीं, जो आये दिन वरावर उनपर वीतती रहती थी। ये लोग किसानों से जवरदस्ती अनुचित-रूप से भांति-भांति के नजराने भी लिया करते थे। जांच करने पर यह ज्ञात हुआ था कि ५० प्रकार के नजराने वसूल किये जाते थे। उनमें से कुछ के नाम यहां देना अनुचित न होगा। विवाह पर, चूल्हे पर, कोल्हू पर लाग लगी हुई थीं। यदि साहव वीमार हैं और पहाड़ पर जाने की आवश्यकता है, तो वहां के किसानों को इसके लिए "पहाड़ही' नामक लाग देनी पड़ती थी। यदि साहव को सवारी के लिए घोड़ा, हाथी या मोटर की जरूरत होती तो किसानों को उसके मूल्य के लिए "घोड़ाही" "हाथियाही" या "हवाई" नामक विशेष लाग देनी पड़ती थी। इन लागों के अतिरिक्त किसानों से भारी-भारी जुर्माने भी वसूल किये जाते थे। यदि किसी किसान से कोई ऐसा कार्य वन पड़ा जिससे साहव को या किसी दूसरे को वुरा लगा, तो उसपर जुर्माना कर दिया जाता था। इस प्रकार से यह लोग एक तरह से उस जिले की अदालत और हाकिम ही वन बैठे थे।

यह अवस्था थी जवकि कुछ इन किसानों के और कुछ विहार के प्रतिनिधि गांधीजी के पास लखनऊ-कांग्रेस के अवसर पर पहुंचे। उन्होंने उन्हें चम्पारन आकर स्थिति का अध्ययन करने का वचन दे दिया।

१९१७ में गांधीजी मोतीहारी पहुंचे। यह जिले का मुख्य स्थान था। गांवों को देखने के लिए वह रवाना होने ही वाले थे कि दफा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से वाहर चले जाओ। गांधीजी भला इस हुक्म को कव माननेवाले

थे! उन्होंने अपना 'कैसरेहिन्द' का स्वर्ण-पदक, जो कि सरकार ने उन्हें उनके लोकोपयोगी कार्यों के पुरस्कार में दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत में उनपर दफा १४४ भंग करने का मुकदमा चला। उन्होंने अपनेको अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण वयान अदालत के सम्मुख दिया, जो उस समय एक अपरिचित और नई स्फुरणा को लिये हुए था, हालांकि आज हम उससे भली-भांति परिचित हो चुके हैं। सरकार ने अन्त में मुकदमा वापस ले लिया और उन्हें अपनी जांच करने दी। इस जांच में उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से कोई २० हजार किसानों के वयान कलमवन्द किये। इन्हीं वयानों के आधार पर गांधीजी ने किसानों की मांगें पेश कीं। आखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसमें जमीदार, सरकार और निलहे गोरों के प्रतिनिधि थे। गांधीजी को किसानों की ओर से प्रतिनिधि रक्खा गया था। इस कमीशन ने जांच के वाद एक मत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमें किसानों की लगभग सभी शिकायतों को जायज माना गया। उस रिपोर्ट में एक समझौता भी लिखा गया था जिसमें किसानों पर वढ़ाये गये लगान को कम कर दिया गया था और जो रुपया गोरों ने नकद वसूल किया था उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ था। इनकी सिफारिश को वाद में कानून का रूप दे दिया गया था, जिसके अनुसार नील को पैदा करना या 'तीनकठिया' लेना मना कर दिया गया। इसके कुछ वर्ष वाद ही अधिकांश निलहे गोरों ने अपने कारखाने वेंच दिये, जमीन वेच दी और जिला छोड़कर चले गये। आज उन स्थानों के, जो कभी निलहे गोरों के महल थे, खण्डहर ही शेप हैं। वे लोग, जो अभीतक वहां मौजूद हैं, नील का काम कतई नहीं कर रहे हैं; वल्कि दूसरे किसानों की तरह खेती-वाड़ी करके वसर करते हैं। अव न तो उनकी वह गैर-कानूनी आमदनी ही रह गई है और न वह प्रतिष्ठा ही, जो उनकी आमदनी का एक कारण थी। जिन अत्याचारों और मुसीवतों को देश के अनेक नेता और सरकार दोनों पिछले सौ वर्षों से दूर न कर सके वे इस प्रकार कुछ ही महीनों में मिट गये।

२—खेड़ा-सत्याग्रह

सफलता की दृष्टि से चाहे नहीं, वल्कि सत्याग्रह के सिद्धान्त का जहांतक प्रश्न है, चम्पारन-सत्याग्रह के समान ही महत्त्वपूर्ण खेड़ा का (१९१८) भी सत्याग्रह है। गांधीजी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नहीं जानते थे कि घोर-से-घोर अकाल के दिनों में भी वे सरकार के

लगान लेने के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ ऐतराज कर सकते हैं। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एवं प्रार्थनापत्र भेजते थे, स्थानीय कौंसिलों में प्रस्ताव करते थे। बस यहांपर उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १९१८ में गांधीजी ने एक नये युग का श्रीगणेश किया। गुजरात के खेड़ा जिले में इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि जिले भर की सारी फसल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान हो गई थी। किसान लोग यह महसूस करने लगे थे कि अवस्था को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे मौकों पर जो उपाय काम में लाये जाते थे, उन सबको आजमाया जा चुका था। सारे उपाय बेकार हो चुके थे। अतः गांधीजी के पास किसानों को सत्याग्रह की सलाह देने के अलावा कोई चारा ही नहीं था। उन्होंने लोगों से स्वयं-सेवक और कार्यकर्त्ता बनने की भी अपील की और कहा कि वे किसानों में जाकर उन्हें अपने अधिकारों आदि का ज्ञान करावें। गांधीजी की अपील का असर तुरन्त ही हुआ। सबसे पहले स्वयं-सेवक बनने को आगे बढ़नेवाले सरदार वल्लभभाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढ़ती हुई वकालत पर लात मार दी, और सब कुछ छोड़कर गांधीजी के साथ फकीरी ले ली। खेड़ा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषों को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था। उन्होंने अन्तिम निश्चय करके अपने-आपको गांधीजी के अर्पण कर दिया। किसानों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वे अपने को झूठा कहलाने की अपेक्षा और अपने स्वाभिमान को नष्ट करके जबरदस्ती बढ़ाया हुआ कर देने की अपेक्षा अपनी जमीनों को जब्त कराने के लिए तैयार हैं।

अब किसानों को एक नये ढंग से शिक्षित किया जाने लगा। उन सिद्धान्तों की शिक्षा उन्हें दी गई जो उन्होंने पहले कभी सुने तक न थे। उन्हें यह बताया जाता है कि आपका यह हक है कि आप सरकार के लगान लगाने के अधिकार पर ऐतराज करें। यह भी कि सरकारी अफसर आपके मालिक नहीं, नौकर हैं, इसलिए आपको अफसरों का सारा भय अपने दिल से निकालकर डराये-धमकाये जाने की, दमन और दबाव की और उससे भी बदतर जो आ पड़े उन सबकी परवा न करते हुए अपने हकों पर डटे रहना चाहिए; उन्हें नागरिकता के प्रारम्भिक नियमों को भी सीखना था, जिनके जाने बिना बड़े-से-बड़ा साहस-कार्य भी आगे चलकर दूषित और भ्रष्ट हो सकता है। गांधीजी, सरदार पटेल तथा उनके अन्य साथियों का रोज यही काम था कि वे नित्य-प्रति एक गांव से दूसरे और वहां से तीसरे में जाकर

किसानों को यही उपदेश और शिक्षा देते थे और कहते थे कि मवेशियों तथा अन्य वस्तुओं के कुर्क किये जाने, जुर्माना और जमीन जब्त होने की धमकी के मुकावले में भी दृढ़तापूर्वक डटे रहो। इस युद्ध के लिए धन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, फिर भी वम्बई के व्यापारियों ने चन्दा करके आवश्यकता से अधिक धन भेज दिया। इस सत्याग्रह से गुजरात को सविनय-भंग का पहला सवक सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। किसानों के हृदय को मजवूत वनाने के खयाल से गांधीजी ने लोगों को सलाह दी कि जो खेत वेजा कुर्क कर लिया गया है उसकी फ़सल काटकर ले आवें और (स्वर्गीय) श्री मोहनलाल पण्ड्या इस कार्य में किसानों के अगुआ वने। लोगों को अपने ऊपर जुर्माने कराने और जेल की सजा को आमंत्रित करने की शिक्षा ग्रहण करने का यह अच्छा अवसर था, जोकि सत्याग्रह का आवश्यक परिणाम हो सकता है। मोहनलाल पण्ड्या एक खेत की प्याज की फसल काटकर ले आये। उन्हें इस कार्य में कुछ किसानों ने भी मदद दी। उन सव लोगों की गिरफ्तारियां हुईं, मुकदमे चले और थोड़े-थोड़े दिन की सजायें हुईं। लोगों के लिए यह एक अद्भुत प्रयोग था। इन सव वातों को वे आनन्द के साथ करते थे। वे अपने नेताओं की जय-जयकार करते थे और जेल से छूटने पर उनके जुलूस निकालते थे।

इस झगड़े का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियों ने गरीव किसानों के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होंने यह कार्य किया विना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुए। उन्होंने किसानों को यह भी न अनुभव होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है। चूंकि यह रियायत एक तो देर से दी गई, दूसरे यह जाहिर नहीं होने दिया कि यह लोगों के आन्दोलन के फलस्वरूप है, तीसरे दी भी विना मन के; इसलिए इससे वहुत कम किसानों को लाभ पहुँचा। यद्यपि सिद्धान्ततः सत्याग्रह की विजय हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण विजय थी। लेकिन उसके अप्रत्यक्ष फल वहुत वड़े निकले। उस लड़ाई से गुजरात के किसानों में एक महान् जागृति की नींव पड़ी और वास्तविक राजनैतिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। गांधीजी अपनी 'आत्म-कथा' में लिखते हैं:—

"गुजरात के प्रजा-जीवन में नया तेज आया, नया उत्साह भर गया। सवने समझा कि प्रजा की मुक्ति का आधार खुद अपने ही ऊपर है, त्याग-शक्ति पर है। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में जड़ जमाई।"

३—अहमदाबाद-सत्याग्रह

गांधीजी-द्वारा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के संगठन की कहानी उपन्यास की भांति ऐसी रोमांचकारी है कि उससे किसी भी जाति के स्वतंत्रता के इतिहास की शोभा बढ़ सकती है। उस समय महात्माजी ने कांग्रेस का नेतृत्व ग्रहण नहीं किया था। औद्योगिक झगड़ों को सुलझाने के लिए इतिहास में सबसे पहली बार अहमदाबाद में ही उन उपायों को काम में लाया गया जिनका आधार सत्य और अहिंसा था। उसके ऐसे मजबूत और दूरगामी परिणाम निकले हैं, जिनके कारण अहमदाबाद का मजदूर-संघ कितने ही औद्योगिक तूफानों का सामना कर चुका है और जिसे देख-देखकर पश्चिमी यात्री दंग रह जाते हैं और बहुत प्रशंसा करते हैं। उस कहानी का यदि संक्षिप्त वर्णन भी इस इतिहास में किया जाय तो अनेक पृष्ठ रंगे जा सकते हैं—परन्तु मैं यहां केवल इतनी ही बात लिखकर संतोष करूँगा कि गांधीजी ने इसमें कितना कार्य किया है और इस संगठन की मुख्य रूप-रेखा क्या है जिससे यह मालूम हो जाय कि इसमें तथा भारत के और संसार के ऐसे ही दूसरे मजदूर-संगठनों में कितना अन्तर है।

१९१६ से श्रीमती अनुसूया बेन साराभाई मजदूरों में शिक्षा-संबन्धी कार्य कर रही थीं। १९१८ में बुनकरों और मिल-मालिकों में जो झगड़ा उठ खड़ा हुआ था उसके सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिए उन्हें गांधीजी के पास जाना पड़ा। उन्होंने ने मिल-मालिकों को जबरदस्ती मनवाने की कोशिश करने की अपेक्षा उनसे पंचायत के सिद्धान्त को स्वीकार करा लिया। यह मजदूर-आन्दोलन के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात थी। गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल ने मजदूरों की ओर से पंच होना स्वीकार कर लिया। लेकिन पंच-फैसले की बात बीच में ही टूट गई, क्योंकि थोड़ी मिलों के कुछ मजदूरों ने बीच ही में हड़ताल कर दी। गांधीजी ने स्वयं इसके लिए खेद प्रकाशित करके मजदूरों को वापस काम पर भेज दिया। यद्यपि समझौता-भंग दोनों ओर से हुआ था, तो भी मिल-मालिक कुछ सुनते ही न थे। गांधीजी ने मजदूरों को कुछ निश्चित कार्य करने की सलाह देने से पहले खुद इस समस्या का गहराई के साथ अध्ययन किया। व्यापारिक अवस्था, उससे मिलों को होनेवाले लाभ, जीवन की आवश्यक वस्तुओं की महंगाई और दूसरी ओर मिलों में उत्पत्ति-खर्च की वृद्धि—ये उनकी जांच के मुख्य विषय थे। इस जांच के पश्चात् जिस परिणाम पर गांधीजी पहुँचे वह यह था कि मजदूरों की मजदूरी में कम-से-कम ३५ फी सदी की वृद्धि की जाय। मजदूरों की मांग यद्यपि इससे बहुत अधिक थी, तो भी वे उसे स्वीकार कर लेने पर राजी कर लिये गये।

मिल-मालिकों ने २० फी सदी से अधिक देने से कतई इन्कार कर दिया और कह दिया कि २२ फरवरी १९१८ से मिलों में ताले डाल दिये जायँगे। इसपर गांधीजी ने सारे मजदूरों की एक सभा बुलाई और एक पेड़ के नीचे, जो अभीतक पवित्र समझा जाता है, उनसे प्रतिज्ञा कराई, कि वे तबतक काम पर नहीं लौटेंगे जबतक कि उनकी पूरी मांग स्वीकार नहीं हो जाती। प्रतिज्ञा में यह बात भी थी कि वे लोग जबतक मिलों में ताले पड़े रहेंगे तबतक किसी हालत में शान्ति-भंग न करेंगे। यह प्रतिज्ञा कराने के बाद मजदूरों में शिक्षा देने का कार्य बड़े जोर-शोर के साथ प्रारम्भ किया गया। श्रीमती अनसूया बेन दरवाजे-दरवाजे जाती थीं। श्री शंकरलाल बैंकर तथा छगनलाल गांधी भी इसी कार्य में जुट पड़े थे। नोटिस बांटे जाते थे, रोज स्थान-स्थान पर विराट् सार्वजनिक सभायें की जाती थीं। इन नोटिसों को गांधीजी स्वयं लिखते थे। उनमें वह मजदूरों को बड़ी आसान भाषा में यह समझाते थे कि जिस संघर्ष में वे लोग जुटे हुए हैं वह केवल औद्योगिक ही नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक और नैतिक संघर्ष भी है जिसमें उनका प्रत्येक दृष्टि से उत्थान होगा और साथ-ही-साथ मजदूरी में भी वृद्धि हो जायगी। यह संघर्ष एक पखवाड़े तक बराबर चलता रहा। लेकिन मजदूर लोग इस बात के आदी नहीं थे कि वे अधिक समय तक अपनी मजदूरी का घाटा सह सकें, इसलिए उनमें कमजोरी के लक्षण प्रतीत होने लगे। उन लोगों में जो नासमझ थे वे तो यहां तक बड़बड़ाने लगे कि गांधीजी के लिए यह बात ठीक हो सकती है कि वह हमें इस बात का उपदेश दें कि हम लोग अपनी प्रतिज्ञाओं पर डटे रहें, लेकिन हम लोगों के लिए, जिनके बाल-बच्चों के भूखों मरने की नौबत आ गई है, यह इतना आसान नहीं है। यह गांधीजी के लिए एक ईश्वरीय चेतावनी सिद्ध हुई। उन्होंने शाम की सभा में यह घोषित कर दिया कि जबतक मजदूर लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहने की शक्ति नहीं पा जाते तबतक न तो वह किसी सवारी में ही चलेंगे और न भोजन ही करेंगे। यह समाचार विद्युत् गति से सारे भारतवर्ष में फैल गया। यह आमरण अनशन था। मजदूरों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, पर उनका निर्णय अटल था। इसपर गांधीजी ने उनसे अपील की कि वे अपना समय व्यर्थ ही नष्ट न करें, और उन्हें जो कोई भी काम मिल जाय उसपर ईमानदारी के साथ अपनी रोटी पैदा करें। गांधीजी के लिए यह बहुत आसान था कि वह इन मजदूरों की आर्थिक सहायता के लिए धन की अपील करते, जिससे काफी धन अवश्य आ जाता, लेकिन इस तरह भिक्षान्न देना उन्हें पसन्द न था। उनका कहना था कि मजदूरों की सारी तपस्या निष्फल हो जायगी और उसका सारा मूल्य चला जायगा, यदि उन्हें इस प्रकार भिक्षा-द्वारा सहायता दी जाय। सत्याग्रहा-

श्रम साबरमती की भूमि पर सैकड़ों मजदूरों को काम मिल भी गया, जहां कि इमारतें बन रही थीं। वे आश्रम के सदस्यों के साथ बड़े आनन्द से काम करने लगे। इनमें सबसे आगे श्रीमती अनसूया बेन थीं, जो मिट्टी, ईंट और चूना ढो रही थीं। इसका बड़ा ही नैतिक प्रभाव पड़ा। इससे मजदूर अपनी प्रतिज्ञा पर और भी दृढ़ हो गये, और मिल-मालिकों के भी दिल दहल गये। देश के विभिन्न भागों से नेताओं ने उनसे अपीलें कीं। अपील करनेवाले नेताओं में डॉ० बेसेण्ट का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने मिल-मालिकों को यह तार भेजा था—"भारत के नाम पर मान जाओ और गांधीजी के प्राण बचाओ।" उपवास के चौथे दिन एक ऐसा रास्ता हाथ आया जिससे मजदूरों की भी प्रतिज्ञा भंग नहीं होती थी और इधर मिल-मालिक भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए उनके साथ न्याय कर सकते थे। दोनों ने पंच-फैसला मानना स्वीकार कर लिया। पंचों ने मजदूरों की मांग के अनुसार ही ३५ फी सदी बढ़ोतरी कर देने का निर्णय किया।

मजदूरों की समस्या के शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझ जाने के कारण कांग्रेसी नेताओं और मजदूरों में एक सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसीके फलस्वरूप मजदूरों का 'मजूर-महाजन' नामक एक ऐसा स्थायी संगठन हो गया जो आज १५ वर्ष से श्रीमती अनसूया बेन और श्री शंकरलाल बैंकर की देख-रेख में प्रगति के साथ काम करता हुआ चला आ रहा है। ये दोनों कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति हैं। इस संस्था की बदौलत मजदूर अबतक कितने ही कठिन तूफानों को पार कर गये हैं और अहमदाबाद नगर को बड़े-बड़े औद्योगिक संकटों से बचाया है।

: २ :

असहयोग पूरे जोर में–१९२१

पंजाब-काण्ड पर सरकार का दुख-प्रकाश

नागपुर-कांग्रेस के प्रस्ताव में भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है। निर्बल क्रोध और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेवारी का एक नया भाव और स्वावलम्बन की स्पिरिट ले रहे थे। अब १९२० के आखीर और १९२१ की शुरुआत में भारत में जो कुछ घटनायें हुईं उनपर हम जरा देर के लिए गौर करें। १९२० के अन्त तक नरम-दलवालों ने सदा के लिए कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। लिबरल-फेडरेशन के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने उत्तम भाषण दिया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 'सर' हो गये थे। लॉर्ड सिंह बिहार और उड़ीसा के पहले गवर्नर बन चुके थे। १९२१ के आरम्भ में ही नये मंत्रियों में लाला हरकिशन-लाल (पंजाब) जैसों का भी नाम आया, जो कुछ ही महीने पहले बुरे बताये जाते थे, जिन्हें आजन्म देश-निकाले की सजा दी गई थी और जिनकी सारी जायदाद जब्त कर ली गई थी। ड्यूक ऑफ कनाट, सम्राट् पंचम जॉर्ज के चाचा, भारतवासियों के मनो-भावों को शान्त करने और भारत में नया युग जारी करने के लिए यहां भेजे गये। उन्होंने एक बढ़िया वक्तृता दी:—

"मैं अपने जीवन के उस काल में पहुँच गया हूँ जबकि मेरी यही इच्छा हो सकती है कि पुराने जख्मों को भरूँ और जो अलग हो गये हैं उन्हें फिर से मिलाऊँ। मैं भारत का एक पुराना मित्र हूँ और उसी नाते आप सबसे अपील करता हूँ कि मृत भूत-काल के साथ पिछली गलतियों को भी कब्र में गाड़ दीजिए; जहां माफ ही करना है माफ कर दीजिए और कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर एकसाथ काम कीजिए, जिससे उन सब आशाओं की पूर्ति हो जो आज के दिन पैदा हो रही हैं।"

इसके बाद, जब बड़ी कौंसिल में पंजाब-हत्या-काण्ड पर प्रस्ताव लाया गया उस समय सरकार की तरफ से बहस का नेतृत्व सर विलियम विंसेण्ट कर रहे थे। "उन्होंने उन अनुचित कार्यों के किये जाने पर शासकों की ओर से दिली अफसोस जाहिर करते हुए अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट किया था कि जहांतक मनुष्य की दृष्टि जाती

है अब फिर से ऐसी घटनाओं का होना असम्भव हो जायगा।" इतना कह चुकने के बाद सरकार ने चतुराई खेलकर प्रस्ताव का तीसरा टुकड़ा, जिसमें कि "सबक देने लायक सजा देने" की तजवीज थी, प्रस्तावक से वापस करा लिया। परन्तु बात दर-असल यह थी कि जनरल डायर जो अपने पद से हटा दिया गया था, और इसलिए जो सम्भवतः पेंशन के हक से भी हाथ धो बैठा था, उसे अर्पण करने के लिए अंग्रेज महिलाओं ने भारत में २०,००० पौंड एकत्र किये; क्योंकि वे उसे "अपना त्राता" समझती थीं। इतना ही नहीं, बल्कि उसे एक तलवार भेंट करके इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में उसका खुले-आम बड़ा आदर किया गया। उसे जो कुछ हानि उठानी पड़ी हो उसकी जरूरत से ज्यादा पूर्ति इस तरह हो गई थी। कर्नल जॉन्सन जो दूसरा प्रमुख अपराधी था, उसे भारत में एक व्यापारिक जगह मिल गई और अपने 'नुकसान' का कसकर बदला मिल गया। न तो ड्यूक साहब की अपील से और न होममेम्बर सर विलियम विंसेण्ट के 'शासकों की तरफ से खेद-प्रकाशन' से भारतवासियों के मनोभावों को शान्ति मिली। असहयोग की जड़ जम चुकी थी। परन्तु एक बात ठीक हो रही थी और वह यह कि बड़ी कौंसिल ने १९२१ की शुरुआत में एक कमिटी बैठाई थी कि वह दमनकारी कानूनों की जांच करे। और अन्त को वे सब कानून, क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट को छोड़ कर, १९२२ की शुरुआत में ही सचमुच रद कर दिये गये थे। परन्तु इस सारी मरहम-पट्टी के होते हुए भी भारत का जख्म तो ताजा ही बना रहा, उसमें से बराबर मवाद बहता रहा और कांग्रेस को 'शाही-घोषणा-पत्रों' और 'कौंसिलों-द्वारा कानूनों को रद कराने' की पुरानी दवाओं का अवलम्बन छोड़कर खुद उसका इलाज अपने हाथों में लेना पड़ा।

असहयोग प्रारंभ

नागपुर-कांग्रेस के आदेश का उत्तर लोगों ने काफी दिया। कौंसिलों के बहिष्कार में सराहनीय सफलता मिली। हां, अदालतों और कॉलेजों के बहिष्कार में उससे कम सफलता मिली, फिर भी उनकी शान और रोब को तो गहरा धक्का पहुंचा। देशभर में कितने ही वकीलों ने वकालत छोड़ दी और दिलो-जान से अपनेको आन्दोलन में झोंक दिया। हां, राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र में अलबत्ता आशातीत सफलता दिखाई पड़ी। गांधीजी ने देश के नौजवानों से अपील की थी और उसका जवाब उनकी ओर से बड़े उत्साह के साथ मिला। यह काम महज बहिष्कार तक ही सीमित न था। राष्ट्रीय विद्यापीठ, राष्ट्रीय कॉलेज और राष्ट्रीय स्कूल जगह-जगह खोले गये। युक्त-प्रान्त,

पंजाब और वम्बई-अहाते में यह युवक-आन्दोलन जोरों से चला। वंगाल भी पीछे नहीं रहा। लगभग जनवरी के मध्य में देशवन्धु दास की अपील पर हजारों विद्यार्थियों ने अपने कॉलेजों और परीक्षाओं को ठोकर मार दी। गांधीजी कलकत्ता गये और उन्होंने ४ फरवरी को वहां एक राष्ट्री कॉलेज का उद्घाटन किया। इसी तरह वह पटना भी (दोवारा) गये और वहां राष्ट्रीय-कॉलेज को खोलकर विहार-विद्यापीठ का मुहूर्त्त किया। इस तरह चार महीने के भीतर-ही-भीतर राष्ट्रीय-मुस्लिम विद्यापीठ, अलीगढ़, गुजरात-विद्यापीठ, विहार-विद्यापीठ, वंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ और एक वड़ी तादाद में राष्ट्रीय स्कूल देश में चारों ओर खुल गये। हजारों विद्यार्थी उनमें आये। राष्ट्रीय शिक्षा को देश में जो प्रोत्साहन मिल रहा था उसका यह फल था। आन्ध्र-देश में १६०७ में राष्ट्रीय-शिक्षा की ज्योति प्रज्वलित हुई थी। वह कभी टिमटिमाती और कभी तेजी से जलने लगती थी। वह अव फिर से तेजी और स्पष्टता के साथ जलने लगी। रेग्युलेशन-संस्थाओं से असहयोग करनेवालों की संख्या वहुत थी और आज के वहुतेरे प्रान्तीय और जिला-नेता उन्हीं लोगों में से हैं, जिन्होंने १६२०–२१ में वकालत और विद्यालय छोड़े थे।

नागपुर के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए कार्य-समिति की वैठक १६२१ में अक्सर हर महीने मुख्तलिफ जगहों में हुई। महासमिति की पहली वैठक जो नागपुर में हुई उसने कार्य-समिति का चुनाव किया और २१ प्रान्तों में महासमिति के सदस्यों की संख्या का वटवारा किया। जनवरी १६२१ में नागपुर-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ जमनालाल वजाज ने अपनी रायवहादुरी की पदवी छोड़ दी और असहयोगी वकीलों की सहायता के लिए तिलक-स्वराज्य-कोप में एक लाख रुपया दिया। ३१ जनवरी १६२१ को कलकत्ते में कार्य-समिति ने तिलक-स्वराज्य-कोप के उपयोग के नियम वनाये। इस कोप का २५ फी सदी भिन्न भिन्न प्रान्तों की रकम से कार्य-समिति को देना तय हुआ था। किसी वकील को १००) महीने से ज्यादा सहायता नहीं मिल सकती थी और किसी राष्ट्र-सेवक को ५०) मासिक से अधिक नहीं। कर्ज का होना इस सेवा के लिए एक अपात्रता मानी गई। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए सविस्तर पाठचक्रम अभी नहीं वन सका था। परन्तु हिन्दुस्तानी भापा और चर्खा कातना सिखाना तय हुआ और ग्राम-कार्यकर्त्ता के लिए एक तालीम का क्रम निश्चित हुआ। देशवन्धु दास के जिम्मे हुआ मजदूर-संगठन पर देख-रेख और श्री तेरसी आर्थिक वहिष्कार कमिटी के संयोजक वनाये गये। वेजवाड़ा में ३१ मार्च और १ अप्रैल को कार्य-समिति की भी वैठक हुई। कार्य-समिति में सवका यही मत था कि लगानवन्दी का समय अभी नहीं

आया है। बेजवाड़ा में ही महासमिति ने यह तय किया कि स्वराज्य-कोष के लिए एक करोड़ रुपया जमा किया जाय, एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर बनाये जायँ और बीस लाख चर्खे चलवाये जायँ। प्रान्त की आबादी के अनुपात से इनकी पूर्ति करनी थी। पंचायत का संगठन और शराब छुड़वाने पर ज्यादा जोर दिया गया था। हालांकि लोग ऐसे सुधार और संगठन के निर्दोष कार्यों का प्रचार करते थे, तो भी सरकार ने पहले ही से दफा १४४ और १०८ का दौर शुरू कर दिया था। उस समय महासमिति ने यह ठहराया कि देश में अभी इतना नियम-पालन का गुण और संगठन-बल नहीं आ गया है कि जिससे तुरन्त ही सविनय भंग जारी किया जा सके और जिन-जिनके नाम पूर्वोक्त दफाओं के अनुसार आज्ञायें जारी हुई थीं उन्हें उनको मान लेने के लिए कहा गया। सच तो यह है कि देश में मार्च के दूसरे सप्ताह से ही जोश उमड़ रहा था। देशबन्धु दास मैमनसिंह जाने से रोक दिये गये। बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मौ० मजहरुल हक को आरा जाने की मनाही कर दी गई। श्री याकूब हुसेन कलकत्ता जाने से और लाला लाजपतराय पेशावर जाने से रोके गये। कुछ और लोगों के नाम भी हुक्म निकले थे। लाहौर में सभाबन्दी-कानून जारी कर दिया गया था। परन्तु ननकाना-काण्ड के मुकाबले में ये कुछ भी नहीं थे। मार्च के पहले हफ्ते में गुरुद्वारा में कुछ सिक्ख इकट्ठे हुए। वह शान्तिमय समुदाय था। एकाएक उनपर धावा बोला गया और गोलियां चलाई गईं, जिसमें लोगों के कथनानुसार १९५ और सरकार के अनुसार ७० मौतें हुई थीं। वहां के महन्त ने, जोकि राजभक्त था, ४००० कारतूस और ६५ पिस्तौल जमा कर रक्खे थे। एक गड्ढा खोद कर रक्खा गया था और बड़ी-सी आग जलाई जा रही थी। ५ मार्च को किसी सार्वजनिक विषय पर परामर्श करने के लिए लोग इकट्ठे होनेवाले थे। कई बदमाशों ने मिलकर यह करतूत की थी। सरकार की ओर से कहा गया था कि यह तो सिक्खों के दो फिरकों की लड़ाई थी। ननकाना जैसा भीषण-काण्ड, जहां कि यात्री इस तरह मार डाले गये हों और जिनमें अभी कुछ जान बाकी थी वह भी उस जलते हुए गड्ढे में डाल दिये गये हों, पहले कहीं नहीं हुआ था।

कांग्रेस की शुरुआत के सालों में, हमने देखा ही है कि, सारे कार्य का केन्द्र ब्रिटिश कमिटी बन रही थी और उसका खर्च-बर्च और जरूरतें बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। कई साल तक लगभग ६०,०००) साल उसके खर्च के लिए मंजूर किये जाते रहे। परन्तु अब उसकी जगह भारतवर्ष आन्दोलन-केन्द्र बन गया था। इसलिए बेजवाड़ा में यह निश्चय हुआ कि इस वर्ष के शेष दिनों के लिए १७,०००) मंजूर किया जाय, जोकि अध्यक्ष, मंत्री और खजांची के दफ्तर-खर्च में काम आवे। लालाजी और

केलकर साहब की सलाह से अमरीका की होमरूल-लीग वाले श्रीयुत राय को तार-द्वारा एक हजार डालर भेजे गये। ६ और १३ अप्रैल के दिन उपवास और प्रार्थना के रूप में मनाये जाने तय हुए। महासमिति में कांग्रेस-प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या का वटवारा इस तरह किया गया कि जिससे भूतपूर्व सभापतियों को छोड़कर ३५० की संख्या में गड़बड़ न हो। १० मई को जब इलाहाबाद में कार्य-समिति बैठी तो अगली बैठक के लिए तंजौर और शोलापुर से उसे निमंत्रण मिले थे; परन्तु इस बैठक में कोई महत्त्व-पूर्ण बात नहीं हुई। १५ जून को बम्बई में फिर उसकी बैठक हुई, जिसमें गांधीजी ने वाइसराय के साथ हुई अपनी मुलाकात के सम्बन्ध में वक्तव्य पेश किया।

गाँधी रीडिंग मुलाकात

यह मुलाकात मालवीयजीने करवाई थी। उस समय लॉर्ड रीडिंग वाइसराय हुए थे। यह अप्रैल १९२१ की बात है। इस मुलाकात में उन्हें गांधीजी की सच्चाई और शुद्धभाव को देखने का अवसर मिला। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि खुद असहयोग-आन्दोलन के खिलाफ कोई कार्रवाई करना मुनासिब न होगा। प्रसंगवश उन्होंने अली-भाइयों के कुछ व्याख्यानों की ओर गांधीजी का ध्यान दिलाया, जिनसे गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन-सम्बन्धी विचारों का खंडन होता था। गांधीजी को बताया गया कि इन व्याख्यानों का तात्पर्य हिंसा को सूक्ष्म-रूप से उत्तेजना देने के पक्ष में लगाया जा सकता है। गांधीजी तो ठहरे बड़े ही मुंसिफ-मिजाज। उन्हें भी जँचा कि हां इन भाषणों का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है; इसलिए उन्होंने अली-भाइयों को लिखा और उनसे इस आशय का वक्तव्य निकलवाया कि उनका आशय ऐसा नहीं था।

यह 'माफी-प्रकरण' इस आन्दोलन के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। गोरे लोग सरकार की इस विजय पर बड़े खुश थे। माफी से लॉर्ड रीडिंग को तसल्ली हो गई और उन्होंने अली-भाइयों पर मुकदमा चलाने का इरादा छोड़ दिया।

असहयोग और दमन

बम्बईवाली कार्य-समिति की बैठक में राजनैतिक मुकदमों की सफाई देने के सम्बन्ध में स्थिति साफ की गई। कार्य-समिति ने यह तय किया कि किसी असहयोगी पर यदि दीवानी और फौजदारी मुकदमा चलाया जाय तो उसे उसकी सुनवाई में कोई हिस्सा न लेना चाहिए। सिर्फ अदालत में अपना एक वक्तव्य दे देना चाहिए। जिससे लोगों के सामने उसकी निर्दोषता सिद्ध हो जाय। यदि जाब्ता फौजदारी की

रू से कोई जमानत तलब की जाय तो वह उसे देने से इन्कार कर दे और उसकी एवज में जेल भुगत ले। आगे चलकर यह भी नियम बनाया कि असहयोगी वकीलों को फीस लेकर या बिना फीस के किसी अदालत में पैरवी न करना चाहिए। उस समय यह अन्देशा था कि कहीं अंगोरा में तुर्किस्तान की सरकार के साथ भिड़न्त न हो जाय। इसपर कार्य-समिति की यह राय थी कि मुसलमानों की राय की परवा न करते हुए यदि लड़ाई छिड़ जाय तो प्रत्येक भारतवासी का यह कर्तव्य होगा कि इस कार्य में वह ब्रिटिश-सरकार की मदद न करे और हिन्दुस्तानी सिपाहियों का यह कर्तव्य है कि वे इस सिलसिले में ब्रिटिश-सरकार की कोई सेवा या कार्य न करें।

२८, २९ और ३० जुलाई १९२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। बेजवाड़ा-कार्यक्रम को देश में जो सफलता मिली थी उससे चारों ओर खुशियां छाई हुई थीं। तिलक-स्वराज्य-कोष में निश्चित से १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। कांग्रेस सदस्यों की संख्या आधे के ऊपर पहुँच कर रह गई; मगर चर्खे करीब-करीब बीस लाख चलने लगे थे। इसके बाद अब बुनने तथा खादी-सम्बन्धी विविध क्रियाओं की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश की सिद्धि के लिए विदेशी कपड़े के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति में सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महासमिति ने यह भी सलाह दी कि "तमाम कांग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपड़ों का उपयोग छोड़ दें।" बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिकों से अनुरोध किया गया कि "वे अपने कपड़ों की कीमत मजदूरों की मजदूरी के अनुपात से रक्खें और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपड़े को खरीद सकें और मौजूदा दरों से तो दाम हर्गिज न बढ़ाये जायँ।" विदेशी कपड़े मंगानेवालों से कहा गया कि वे विदेशी कपड़ों के आर्डर न भेजें और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करें।

महासमिति ने यह राय जाहिर की कि किसी भी नागरिक का यह कुदरती हक है कि वह सरकारी नौकरों पर सरकार की मुल्की या फौजी नौकरी छोड़ने-सम्बन्धी अपनी राय जाहिर करे और साथ ही यह भी हरेक नागरिक का कुदरती हक है कि हरेक फौजी या मुल्की कर्मचारी से खुले तौर पर इस बात की अपील करे कि उस सरकार से वे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें जिसने भारतीय जनता के विशाल बहुमत का विश्वास एवं समर्थन गँवा दिया है। मद्य-निषेध-आन्दोलन के सम्बन्ध में, शराबियों को शराब की दूकानों पर न जाने के लिए समझाने में सरकारी कर्मचारियों-द्वारा किये अनुचित और अकारण हस्तक्षेप की बदौलत, धारवाड़, मतियां तथा अन्य

स्थानों में कुछ कठिनाइयां खड़ी हो गई थीं। इसपर महासमिति ने चेतावनी दी कि अगर ऐसा ही होता रहा तो उसे ऐसे हस्तक्षेपों की अवहेलना करके पिकेटिंग जारी रखने का आदेश देना पड़ेगा। थाना के जिलावोर्ड ने पिकेटिंग के सिलसिले में पास किये अपने प्रस्ताव में पिकेटिंग जारी रखने का निश्चय किया था, उसके लिए उसे धन्यवाद देते हुए महासमिति ने भारत के अन्य जिला व म्युनिसिपल वोर्डों से थाना-वोर्ड-द्वारा वताये गये रास्ते का तुरन्त अनुसरण करने के लिये कहा। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय तक कांग्रेस में पिकेटिंग के वारे में कोई प्रस्ताव पेश नहीं हुआ था, और इस समय भी उसे सार्वजनिक-संस्थाओं तक ही महदूद रक्खा था। व्यापारियों से प्रार्थना की गई थी कि वे नशीली चीजों का व्यापार वन्द कर दें। पूर्ण अहिंसा वनाये रखने के राष्ट्र के कर्त्तव्य के प्रति कांग्रेस सतर्क थी।

दमन-चक्र वड़ भयावह और विस्तृत-रूप में जारी था। खासकर युक्तप्रान्त में उसका वहुत जोरोशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए थे। वहुत से लोग, विना मुकदमा लड़े, जेलों में पड़े हुए थे। उन सवको वधाई देते हुए महासमिति ने घोपणा की, कि स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये वगैर जेल जाने से ही हम स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होंगे। परिस्थिति यह थी कि देश के विभिन्न भागों ने प्रान्तीय सरकारों द्वारा किये गये दमन के जवाव में सविनय अवज्ञा शुरू करने की मांग की थी। सीमाप्रान्त की सरकार ने तो उस कमिटी के सदस्यों के प्रान्त में प्रवेश करने की भी मनाही कर दी थी, जो अधिकारियों-द्वारा वन्नू में किये गये कथित अत्याचारों की जांच के लिए कांग्रेस की ओर से नियुक्त की गई थी। इतने पर भी, यह प्रस्ताव पास किया गया कि "हिन्दुस्तान-भर में अहिंसात्मक वातावरण को और भी अधिक सुदृढ़ करने, इस वात की परीक्षा करने के लिए कि सर्व-साधारण के ऊपर कांग्रेस का प्रभाव किस हद तक कायम हुआ है, और देश में ऐसा वातावरण पैदा करने के लिए कि जिससे स्वदेशी का काम क्षणिक जोश की वात न रह कर नियमित रूप से और सुगमता-पूर्वक चलने लगे, महासमिति की राय है कि सविनय अवज्ञा को उस वक्त तक स्थगित कर देना चाहिए जवतक कि स्वदेशी-सम्वन्धी प्रस्ताव में उल्लिखित कार्यक्रम पूरा न हो जाय।" युवराज के आगमन के सिलसिले में महासमिति ने निश्चय किया, कि "(उनके) आगमन के सिलसिले में सरकारी तौर पर या अन्य किसी प्रकार के जो भी समारोह हों, हरेक का यह कर्त्तव्य है कि न तो उनमें शरीक हों और न किसी प्रकार की कोई सहायता ही उनके आयोजन में करें।"

धारवाड़ में १ जुलाई १९२१ को अधिकारियों ने भीड़ पर जो गोली-वार किया

था उसकी जांच करके विस्तृत रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने नागपुर के असहयोगी वकील श्री भवानीशंकर नियोगी (जो अब मध्य-प्रान्तीय हाइकोर्ट के एक जज हैं), बड़ौदा के अवकाश-प्राप्त जज अब्बास तय्यबजी तथा मैसूर में कुछ समय तक जज रहनेवाले श्री सेटलूर की एक समिति नियुक्त की। ३० सितम्बर से पहले-पहले विदेशी कपड़े का भली-भांति बहिष्कार हो जाय; इसके लिए कार्य-समिति ने, घर-घर जाकर विदेशी कपड़े जमा करने की आवश्यकता पर जोर दिया और इस काम के लिए उपयुक्त नियंत्रण में अलग स्वयं-सेवकों को रखने के लिए कहा। अखिल-भारत तिलक-स्वराज्य-फंड में जमा होनेवाली प्रान्त की कुल रकम का कम-से-कम एक-चौथाई विस्तृत-रूप से हाथ-कताई का संगठन करने, हाथ-कते सूत व हाथ-बुने कपड़े का संग्रह करने और खद्दर का विभाजन करने के लिए अलग रखने को कहा गया। चूंकि कुछ प्रान्तों ने यह २५ फी सदी रकम कार्य-समिति को नहीं भेजी थी, कार्य-समिति ने उन प्रान्तों को मदद देना बन्द कर दिया। कार्य-समिति की अगली बैठक भी जल्दी ही—६, ७, ८, ९ सितम्बर को कलकत्ता में हुई। यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। धारवाड़-गोलीकाण्ड और मोपला-उत्पात की जांच की रिपोर्ट उसमें पेश हुई। इनमें से मोपला-उत्पात पर कार्य-समिति ने जो प्रस्ताव पास किया, उसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं—

"मोपलों-द्वारा किये गये हिंसात्मक कृत्यों की तो कार्य-समिति निन्दा करती ही है, लेकिन इसके साथ ही यह भी जाहिर कर देना चाहती है कि इस सम्बन्धी जो सामग्री उसके पास है उससे मालूम पड़ता है कि मोपलों को असहनीय-रूप से उत्तेजित किया गया था, सरकारी तौर पर या सरकार के द्वारा इस सम्बन्ध में जो खबरें प्रकाशित हुई हैं उनमें मोपलों-द्वारा किये गये अत्याचारों का इकतरफा और बहुत अतिरंजित वर्णन किया गया है तथा शान्ति और व्यवस्था के नाम पर सरकार ने जो अनावश्यक जन-संहार किया उसको उससे बहुत कम बताया गया है जितना कि वस्तुतः वह हुआ है।

"कार्य-समिति को यद्यपि इस बात का दुःख है कि कुछ धर्मोन्मत्त मोपलों-द्वारा जबरदस्ती धर्म-परिवर्त्तन कराने के उदाहरण पाये गये हैं, तथापि सर्व-साधारण को वह इस बात से आगाह करती है कि सरकारी या जानबूझकर गढ़ी गई बातों पर वे एकाएक विश्वास न करें। समिति को प्राप्त खबरों से मालूम पड़ता है कि जिन परिवारों के जबरदस्ती मुसलमान बनाये जाने की खबर है वे मंजेरी के आस-पास रहते थे। यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान उसी धर्मोन्मत्त-दल ने बनाया जो हमेशा खिलाफत व असहयोग-आन्दोलन का विरोधी रहा है; और जहांतक हमें मालूम हुआ है, अभी तक तीन ही ऐसे मामले हुए हैं।"

अली-भाइयों की गिरफ्तारी

घटनायें एक के बाद एक तेजी से घट रही थीं। १९२१ की अखिल भारतीय खिलाफत-परिषद् ८ जुलाई को करांची में हुई जिसको लेकर अलीबन्धु, डॉ॰ किचलू, शारदा पीठ के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, मौलाना निसारअहमद, पीर गुलाममुजदीद और मौलवी हुसेनअहमद पर मुकदमा चला। मुस्लिम मांगों की ताईद करते हुए, उस परिषद् ने एक प्रस्ताव-द्वारा घोषणा की थी कि "आज से किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में नौकर रहना, या उसकी भर्ती में नाम लिखाना, या उसमें मदद करना हराम है।" साथ ही यह भी ऐलान किया गया कि अगर ब्रिटिश-सरकार अंगोरा-सरकार से लड़ाई करेगी तो हिन्दुस्तान के मुसलमान सिविल नाफरमानी (सविनय-अवज्ञा) शुरू कर देंगे और अपनी कामिल आजादी कायम करके कांग्रेस के अहमदाबादवाले जलसे में भारतीय प्रजातंत्र का झण्डा लहरा देंगे।

इस प्रस्ताव का मूल कारण कार्य-समिति का एक प्रस्ताव था जिसके द्वारा सरकारी फौज को नौकरी छोड़ने के लिए कहा गया था। इस प्रस्ताव में "कलकत्ता और नागपुर की कांग्रेसों में निश्चित किये गये सिद्धान्त की पुष्टि-मात्र की गई थी।" ५ अक्तूबर को कार्य-समिति की बैठक बम्बई में हुई, जिसमें एक वक्तव्य के दौरान में कहा गया—"किसी भी भारतीय का किसी भी हैसियत में ऐसी सरकार की नौकरी करना, जिसने जनता की न्यायपूर्ण अभिलाषाओं को कुचलने के लिए फौज और पुलिस से काम लिया (जैसे रौलट-एक्ट के आन्दोलन के अवसर पर किया गया), जिसने फौज का उपयोग मिस्र-वासियों, तुर्कों, अरबों और अन्य राष्ट्रवालों की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए किया, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय हित के विरुद्ध है।" अली-भाइयों और उनके सहयोगियों पर मुकदमा चलाने की आज्ञा दी गई थी। कार्य-समिति ने अली-भाइयों और उनके सहयोगियों को उसपर बधाई दी और घोषणा की कि मुकदमा चलाने का जो कारण बताया गया है वह धार्मिक स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाला है। उसने यह भी कहा—"कार्य-समिति ने अबतक फौजी सिपाहियों और सिविलियनों को कांग्रेस के नाम पर नौकरी छोड़ने को इसलिए नहीं कहा कि जो सरकारी नौकरी छोड़ सकते हैं पर अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं उनके निर्वाह का प्रबन्ध करने में कांग्रेस अभी समर्थ नहीं है। परन्तु साथ ही कार्य-समिति की यह राय है कि कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार हरेक सरकारी नौकर का, चाहे वह फौजी नौकरी में हो चाहे मुल्की में, यह कर्त्तव्य है कि वह यदि कांग्रेस की सहायता के बिना निर्वाह कर सकता हो तो वह नौकरी छोड़ दे।" उन्हें बताया गया कि कातना, बुनना

आदि स्वतंत्र निर्वाह करने के सम्मानपूर्ण साधन हैं। देश-भर की कांग्रेस कमिटियों से कहा गया कि वे इस प्रस्ताव को अपनावें और १६ अक्तूबर को इस आज्ञा का पालन किया गया। विदेशी कपड़े का बहिष्कार अभी अधूरा पड़ा था। कार्य-समिति ने कहा कि जबतक यह पूरा न होगा किसी भी जिले या प्रान्त में सामूहिक-सत्याग्रह आरम्भ करना असम्भव है; और जबतक हाथ से कातने और बुनने का काम उतना न बढ़ जायगा कि उससे उस जिले या प्रान्त की आवश्यकतायें पूरी हो सकें, तबतक सत्याग्रह की इजाजत भी न दी जायगी। हां, व्यक्तिगत सत्याग्रह उन लोगों के द्वारा किया जा सकता है जिनके स्वदेशी का प्रचार करने के काम में रुकावट डाली जाय। पर इसकी अनुमति प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी से लेना जरूरी है और प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी को इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि अहिंसात्मक वातावरण बना रक्खा जायगा। युवराज के स्वागत के बहिष्कार के सम्बन्ध में विस्तृत योजना बनाई गई। तय हुआ कि उनके भारत में पैर रखने के दिन देश-भर में स्वेच्छा-पूर्वक पूर्ण हड़ताल मनाई जाय और वह भारत के नगरों में जहां-जहां जायें, हड़तालें की जायें। इसके प्रबन्ध का कार्य कार्य-समिति ने भिन्न-भिन्न प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों को सौंप दिया। साथ ही विदेशी राष्ट्रों के प्रति यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत-सरकार भारतीय लोक-मत व्यक्त नहीं करती और स्वराज्य-प्राप्त भारत को अपने पड़ोसियों से डरने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि भारतवासियों का उनके प्रति किसी प्रकार का बुरा भाव नहीं है, इसलिए उनका इरादा ऐसे व्यापारिक-सम्बन्ध जोड़ने का नहीं है जो अन्य राष्ट्रों के हितों के विरुद्ध हों या जिन्हें वे न चाहते हों। उन पड़ोसी राज्यों को जो भारत के प्रति शत्रुता का भाव न रखते हों, यह चेतावनी भी दी गई कि वे ब्रिटिश-सरकार के साथ किसी प्रकार का समझौता न करें।

इस अवसर पर अली-भाइयों को गिरफ्तार किया गया। जब यह पता चला कि करांची के भाषण को लेकर मामला चलाया जायगा तो गांधीजी ने, जो इस अवसर पर त्रिचनापल्ली में थे, भाषण को स्वयं दोहराया। उन्होंने इस गिरफ्तारी को इतना महसूस किया कि सारे राष्ट्र को कार्य-समिति के इस विषय पर पास किये गये प्रस्ताव को दोहराने की आज्ञा दी। समय तेजी के साथ बीतता चला जा रहा था और स्वराज्य की अवधि में केवल एक महीना रह गया था। देश ने अली-भाइयों की और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी पर जिस संयम का परिचय दिया उससे प्रभावित होकर दिल्ली की ५ नवम्बर १९२१ की महासमिति की बैठक ने प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अपनी जिम्मे-दारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में करबन्दी

भी शामिल थी। सत्याग्रह किस प्रकार आरम्भ किया जाय, इसके निर्णय का भार प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों पर छोड़ दिया गया। हां, इन शर्तों का पूरा होना जरूरी समझा गया—हरेक सत्याग्रही ने असहयोग के कार्यक्रम के उस अंश की जो उसपर लागू होता हो, पूर्ति कर ली हो, वह चर्खा चलाना जानता हो, विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो, खद्दर पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखता हो, खिलाफत और पंजाब के अन्यायों को दूर करने और स्वराज्य-प्राप्त करने के लिए अहिंसा में विश्वास रखता हो, और यदि हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिए कलंक समझता हो। सामूहिक सत्याग्रह के लिए एक जिले या तहसील को एक इकाई समझा जाय जहां के अधिकांश लोग स्वदेशी का पालन करते हों और वहीं पर हाथ से तैयार हुई खादी पहनते हों, और असहयोग के अन्य सारे अंगों में विश्वास रखते और उनका पालन करते हों। कोई सार्वजनिक चन्दे से किसी प्रकार की सहायता की आशा न करे। कार्य-समिति यदि चाहे तो प्रान्तीय कमिटी के अनुरोध पर किसी खास शर्त को कमिटियों पर लागू न करे।

मलाबार की अवस्था पर भी प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें हिन्दुओं के जबर्दस्ती मुसलमान बनाये जाने और हिंदू-मंदिरों के अपवित्र किये जाने का भी जिक्र किया गया।

चिराला की हिजरत

यहां अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन में दो महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। १९२१ में सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन में मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपने आसपास की स्थिति को देखकर तथा वहां की स्थानिक नागरिक समस्याओं के अनुसार दे रही थी। महासमिति की बैठक ३१ मार्च को आंध्र-प्रान्त के बेजवाड़ा नगर में हुई, जिससे जनता में उत्साह की लहर आ गई। कुछ ही दिनों बाद चिराला के लोगों को अपने गांव के म्युनिसिपैलिटी के रूप में बदले जाने की समस्या का सामना करना पड़ा। स्थानिक स्वराज्य के मंत्री पनगल के राजा थे, जो कांग्रेस-दल के घोर विरोधी थे। अब कांग्रेस-दल भी इसकी कसर निकालने के लिए आतुर था। चिराला की जनता म्युनिसिपैलिटी नहीं चाहती थी। जब गांधीजी की सलाह ली गई तो उन्होंने कहा कि यदि जनता म्युनिसिपैलिटी की परवा नहीं करती तो वह उसकी सीमा छोड़कर बाहर जा बसे। गांधीजी ने यह भी चेतावनी दे दी कि

यह सब कांग्रेस के नाम पर न किया जाय। विचार बड़ा आकर्षक था और उस महान् कार्य का बीड़ा उठाने के लिए नेता भी योग्य ही मिला। आन्ध्ररत्न डी० गोपाल-कृष्णय्या ने इस विचार की पूर्ति करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी और हिजरत का नेतृत्व किया। यह हिजरत हमें सिंध के मुसलमानों की अफगानिस्तान-यात्रा की याद दिलाती है। चिराला के लोगों को बहुत दिनों तक अनेक कष्ट उठाने पड़े। वे म्युनिसिपैलिटी की सीमा के बाहर १० महीनों तक झोपड़ों में पड़े रहे। इधर अनेक नेताओं की गिरफ्तारी एक-एक करके जारी रही। जिन्होंने असहयोग नहीं किया था वे बहलाने-फुसलाने से राजी हो गये और एक साल तक घर-बार छोड़े रहने के बाद लोगों ने म्युनिसिपैलिटी को मान लिया।

मोपला-उत्पात

यहां उन परिस्थितियों का जिक्र करना भी आवश्यक है जिससे मलाबार में मोपला-उत्पात उत्पन्न हुआ। मोपले वे मुसलमान हैं जिनके पूर्वज अरब थे, मलाबार के सुन्दर स्थान पर आ बसे थे और वहीं शादी-ब्याह करके रहने लगे थे। साधारणतया वे छोटा-मोटा व्यापार या खेती-बाड़ी करते हैं। पर धार्मिक उन्माद की धुन में वे इतने असहिष्णु हो जाते हैं कि प्राणों की या शारीरिक सुख तक की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। मोपलों के आये दिन के दंगों ने "मोपला दंगा-विधान" नामक एक विशेष कानून को जन्म दिया। सरकार आरम्भ से इस बात के लिए चिन्तित थी कि "भड़क जाने-वाले" मोपलों में असहयोग की चिनगारी न लगने पावे। पर आन्दोलन और सब जगहों की भांति केरल में भी पहुँचा। फरवरी में चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य और मौ० याकूब-हसन जैसे प्रमुख नेता अहिंसा का प्रचार करने के लिए उस प्रान्त में गये। याकूब-हसन ने खासतौर से कह दिया था कि असहयोग पर व्याख्यान न दूंगा, परन्तु इतने पर भी उनके खिलाफ निषेधात्मक आज्ञा जारी की गई और १६ फरवरी १९२१ को याकूब-हसन, माधव नैयर, गोपाल मेनन और मुईउद्दीन कोया नामक चार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मोपले मुख्यतः वाल्वनद और ऐरण्ड ताल्लुकों में रहते हैं। सरकार ने इन ताल्लुकों में दफा १४४ लगा दी। अगस्त आते-आते रंग-ढंग ही बदल गया और मोपलों ने, जो अपने ढंगलों या मुल्लाओं के मस्जिदों में किये गये अपमान से क्षुब्ध हो रहे थे, मारकाट आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उनकी हिंसा ने सैनिक-रूप धारण कर लिया। मोपलों ने बन्दूकों और तलवारों से लुक-छिपकर छापे मारने आरंभ कर दिये। अक्तूबर के मध्य में पहले की अपेक्षा अधिक कठोर फौजी-कानून जारी किया गया।

मोपले सरकारी अफसरों को लूटने और वरवाद करने के अलावा हिन्दुओं को वलपूर्वक मुसलमान वनाने, लूटने, आग लगाने और हत्यायें करने के भागी वने। अंग्रेजों के प्राण संकट में थे। श्री एम० पी० नारायण मेनन नामक एक कांग्रेसी सज्जन ने, जिन्होंने सारे मलावार में कांग्रेस का संगठन करने के काम में वहुत-कुछ भाग लिया था, मोपलों को समझा-वुझाकर अंग्रेजों के प्राण वचाये। पर इसी कार्यकर्त्ता को नवम्वर में पकड़ कर पहले शाही कैदी के रूप में रक्खा और फिर सरकार के खिलाफ दंगा करने के अभियोग में आजीवन निर्वासित कर दिया गया। यह १९३४ में पूरी सजा काटने के वाद छूटे। इन्हें पहले भी छोड़ा जा सकता था, पर इनसे यह शर्त जवानी मानने को कहा गया कि छूटने पर तीन वर्ष तक वाल्वनद ताल्लुके में न घुसेंगे। इन्होंने यह शर्त मंजूर न की, और जान-वूझकर वीरतापूर्वक जेल में रहे। मोपला-विद्रोह ने आगे क्या-क्या रूप धारण किये, या अगस्त के वाद उसमें जो मारकाट चलने लगी, उनसे हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि महासमिति ने अपनी नवम्वर की वैठक में उनके अत्याचारों का विरोध किया।

युवराज का सफल वहिष्कार

१७ नवम्वर को युवराज भारत में आये। नई वड़ी कौंसिल को वही खोलनेवाले थे, पर १९२० के अगस्त के वातावरण को देखकर भारत-सरकार ने ड्यूक ऑफ कनाट को वुलाया। १९२१ के नवम्वर में युवराज को व्रिटिश-सरकार की आन वनाये रखने के लिए भेजा गया। कांग्रेस ने पहले से ही निश्चय कर लिया था कि युवराज की अगवानी से सम्वन्ध रखनेवाले सारे उत्सवों का वहिष्कार किया जाय। यही किया गया और जगह-जगह विदेशी कपड़ों की होली भी जलाई गई। युवराज के वम्वई-पदार्पण के दिन ही शहर में केवल मुठभेड़ ही नहीं हुई वल्कि चार दिनों तक दंगे और खून-खच्चर होते रहे, जिनके फल-स्वरूप ५३ आदमी मरे और लगभग ४०० आदमी घायल हुए। ये दंगे सरोजिनी देवी और गांधीजी के रोके भी न रुके, यद्यपि उन्होंने घमासान लड़ाइयों में घुस-घुस कर लोगों को तितर-वितर होने को कहा। इन दंगों में असंख्य आदमी घायल हुए। गांधीजी ने जवतक शान्ति स्थापित न हो जाय, जनता की ज्यादतियों का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ५ दिन का व्रत किया। इन्हीं दृश्यों को देखकर गांधीजी ने कहा था कि मुझे स्वराज्य की सड़ांद आ रही है। युवराज के आगमन के फल-स्वरूप देशभर के स्वयंसेवकों के दल संगठित हुए। अवतक कांग्रेस के स्वयंसेवक ऐसे सामाजिक कार्यकर्त्ता मात्र थे जो मेलों और उत्सवों के अवसर पर यात्रियों की

सहायता करते, संक्रामक रोगों के फैलने पर रोगियों की और कोई स्थानिक विपत्ति होने पर पीड़ितों की सहायता करते और परिषदों और अन्य राष्ट्रीय अवसरों पर काम में आते। पर खिलाफत के स्वयंसेवक "सैनिक" ढंग के थे, जो कि सरकार के कथनानुसार "कवायद करते और बाकायदा दल बनाकर मार्च करते और वर्दियां पहनते थे।" इन दोनों संस्थाओं के स्वयंसेवकों ने हड़तालों का और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का संगठन किया। ये दोनों दल मिल गये और महा-समिति की शर्तों का पालन करने की शर्त के साथ सत्याग्रही बन गये। हजारों की संख्या में गिरफ्तारियां हुईं। युवराज २५ दिसम्बर को कलकत्ता जानेवाले थे। बंगाल-सरकार ने बम्बई-सरकार की तरह नहीं किया और पहले से ही क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अनुसार स्वयंसेवक भर्ती करना गैर-कानूनी करार दे दिया। बहुत से आदमी गिरफ्तार हुए जिनमें देशबन्धु दास, उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी थे। इसके बाद ही युक्त-प्रान्त और पंजाब की बारी आई। अहमदाबाद-कांग्रेस होते-होते लालाजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशबन्धु दास क्रिमिनल-लॉ-अमेण्ड-मेण्ट-एक्ट के अंतर्गत या ताजिरात-हिन्द की १४४ धारा या १०८ धारा के अनुसार जेल में थे। १९२० के अगस्त में सर तेजबहादुर सप्रू वाइसराय की कार्य-कारिणी के कानून-सदस्य (लॉ-मेम्बर) हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि इन धाराओं को इन्होंने खोज निकाला था और राजनैतिक लोगों पर लागू करने की सलाह दी थी। बम्बई ने साधारण कानून का उपयोग किया, पर बंगाल, युक्तप्रान्त और पंजाब ने दमनकारी कानूनों की शरण ली।

इसी अवसर पर कांग्रेस और सरकार में समझौते की बातचीत चल पड़ी। भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली ले जाते समय यह प्रबन्ध किया गया था कि वाइसराय हर साल बड़े दिनों में तीन-चार सप्ताह कलकत्ते में व्यतीत करेंगे। युवराज के बड़े दिन भी कलकत्ते ही बिताने का निश्चय किया गया। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे मध्यस्थ सज्जनों ने कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग की परिस्थिति का उपयोग करके सरकार और जनता में समझौता कराने की चेष्टा की। लॉर्ड रीडिंग भी राजी हो गये, चाहे २५ दिसम्बर के उत्सव का बहिष्कार टालने के लिए ही सही। २१ दिसम्बर को पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। देशबन्धु दास कलकत्ते के अलीपुर-जेल में थे। उनसे मध्यस्थों की टेलीफोन-द्वारा बात हुई। शीघ्र ही गांधीजी से बात-चीत करना आवश्यक समझा गया। वह अहमदाबाद में थे। तार-द्वारा सरकार इस बात पर राजी हो गई कि सत्याग्रह

के कैदियों को छोड़ दिया जाय और मार्च में गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय, जिसमें कांग्रेस की ओर से २२ प्रतिनिधि हों। इस परिषद् में सुधार-योजना पर विचार किया जाय। देशवन्धु दास की मांग यह थी कि नये कानून (क्रि० लॉ० अ० एक्ट) के अनुसार सजा पाये हुए सारे कैदियों को छोड़ दिया जाय। समझौते के निश्चय का फल यह होता कि लालाजी जैसे कैदी और फतवे के कैदी, जिनमें मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, डॉ० किचलू और अन्य नेता शामिल थे, जेल में ही रह जाते। करांची के कैदी वे थे जिन्हें १ नवम्वर १९२१ को अखिल-भारतीय खिलाफत-परिषद् में, जिसमें फौजी नौकरियां छोड़ने के सम्वन्ध में प्रस्ताव पास हुआ था, भाग लेने के अपराध में दण्ड दिया गया था। कुछ उलेमा ने इस प्रस्ताव का समर्थन फतवे में किया था। फतवा मुसलमानों के मौलवियों द्वारा जारी किया धार्मिक आदेश होता है जिनमें खास परिस्थितियों में आचरण करने के सम्वन्ध में निर्देश होता है।

परन्तु गांधीजी करांची के कैदियों का छुटकारा चाहते थे। सरकार ने आंशिक-रूप में इसे भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने मांग पेश की कि फतवे के कैदियों को भी छोड़ा जाय और पिकेटिंग जारी रखने का अधिकार माना जाय। ये मांगें नामंजूर करदी गईं। इस स्थिति के सम्वन्ध में लॉर्ड रीडिंग के नाम गांधीजी का तार-द्वारा उत्तर कलकत्ता समय पर न पहुँच सका—अभाग्यवश तार को रास्ते में देर लग गई और लॉर्ड रीडिंग के सहयोगी कलकत्ते से रवाना हो गये। (२३ दिसम्वर)। फलतः समझौते की वात असफल रही। श्री० जिन्ना और पण्डित मदनमोहन मालवीय मध्यस्थ थे। (१९२१ के दिसम्वर की सन्धि-चर्चा का पूरा हाल जानना हो तो पाठकों को श्री कृष्णदास की अंग्रेज़ी पुस्तक "गांधीजी के साथ सात महीने" पढ़नी चाहिए। पुस्तक पढ़ने योग्य है।) समझौते की वात असफल होने पर युवराज के आगमन के सम्वन्ध में वहिष्कार के कार्यक्रम का पालन अवशिष्ट भारत ने भी उसी प्रकार किया। कलकत्ते में पूर्ण हड़ताल हुई। कसाइयों तक की दूकानें वन्द थीं। इससे यूरोपियनों को वड़ा क्रोध आया। १९२१ के दिसम्वर के अन्तिम सप्ताह में अहमदावाद-कांग्रेस हुई, जिसमें असहयोग का कार्य-क्रम अपनी चरम-सीमा पर जा पहुँचा था। नागपुर के अधिवेशन के वाद से राजनैतिक अवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ था।

सत्याग्रह की तैयारी और अहमदावाद-कांग्रेस

वातावरण में सनसनी थी। हर एक के दिल में यही आशायें उमड़ रही थीं—एक साल में स्वराज्य! गांधीजी ने यह वादा किया था कि यदि मेरे कार्यक्रम को पूरा

कर दोगे तो स्वराज्य एक साल में मिल जायगा। साल खतम होने को था, और हर शख्स राजनैतिक आकाश की ओर ध्यान लगाये हुए था कि कोई चमत्कार हो जाय और स्वराज्य उसके चरणों में आकर खड़ा हो जाय। परन्तु हां, हर शख्स अपनी तरफ से शक्ति-भर कुछ करने और जो-कुछ भी भुगतना पड़े उसे भुगतने के लिए तैयार था—इसलिए कि वह दैवी-घटना जल्दी-से-जल्दी हो जाय, वह सुदिन जल्दी-से-जल्दी आ जावे। कोई २० हजार के ऊपर व्यक्तिगत सत्याग्रही पहले ही जेल जा चुके थे। उनकी संख्या शीघ्र ही ३० हजार तक हो जानेवाली थी, लेकिन सामूहिक सत्याग्रह लोगों को बहुत लुभा रहा था। और वह क्या था? उसका क्या रूप होगा? गांधीजी ने इसका खुद कोई लक्षण नहीं बताया, कभी उसे विस्तार से नहीं समझाया; न खुद उनके दिमाग में ही इसकी स्पष्ट कल्पना रही होगी। वह तो एक शोधक, एक शुद्ध हृदय के सामने उसी तरह अपने-आप खुल जाता है, उसके एक-एक कदम दिखाई पड़ते हैं, जिस तरह एक बयाबान जंगल में एक आदमी चलता है और उस थके-मांदे निराश मुसाफिर को घूमने-घामते अपने-आप रास्ता मिल जाता है। सामूहिक सत्याग्रह तो सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा किसी अनुकूल क्षेत्र में नियत शर्तों के पालन होने के बाद ही शुरू करना था। न तो उसमें जल्दी की गुंजाइश थी न थकावट की। इसके अनुसार गांधीजी गुजरात में लगानबन्दी-आन्दोलन करना चाहते थे।

अब लोग भय छोड़ चुके थे। एक तरह का आत्मसम्मान का भाव राष्ट्र में पैदा हो चुका था। कांग्रेसियों ने समझ लिया कि सेवा-भाव और त्याग के ही बल पर लोगों का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। सरकार की प्रतिष्ठा और रोब की भी जड़ बहुत-कुछ हिल गई थी और स्वराज्य की कल्पना के सम्बन्ध में लोगों का काफी ज्ञान बढ़ गया था।

अहमदाबाद का अधिवेशन कई सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। प्रतिनिधियों के बैठने के लिए कुर्सियां और बेंच तो हटा ही दिये गये थे, जिनके लिए नागपुर-अधिवेशन में कोई ७० हजार रुपया खर्च हुआ था। स्वागताध्यक्ष वल्लभभाई पटेल का भाषण छोटे-से-छोटा था। कम-से-कम प्रस्ताव—कुल ९ उस अधिवेशन में पास हुए। हिन्दी कांग्रेस की मुख्य भाषा रही। और कांग्रेस-कार्य के लिए जो तम्बू और डेरे लगे थे, उनके लिए २ लाख से ऊपर की खादी मोल ली गई थी।

यहां हम संक्षेप में उन सब घटनाओं को एक निगाह से देख लें जिनकी तरफ कांग्रेस का ध्यान था। देशबन्धु की जगह हकीम साहब इसलिए सभापति चुने गये कि वह हिन्दू-मुस्लिम-एकता की प्रति-मूर्ति थे। यहां तक कि दिल्ली में हिन्दू-महासभा

के एक परिषद् में वह उसके सभापति चुने गये थे। देशबन्धु के प्रतिनिधि के योग्य ही उनका भाषण था। देशबन्धु का भाषण उनकी भाषा और भाव के अनुरूप योग्यता से ही सरोजिनी देवी ने पढ़ा। देशबन्धु ने भारतीय राष्ट्र-धर्म का ठीक और व्यापक-रूप से सिंहावलोकन किया। संस्कृति में ही उसकी जड़ है इसलिए उन्होंने कहा, "पेश्तर इसके कि हमारी संस्कृति पश्चिमी सभ्यता को आत्म-सात करने के लिए तैयार हो, उसे पहले अपने-आपको पहचान लेना होगा।" इसके बाद उन्होंने भारत-सरकार-कानून (गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट) पर विचार किया और कहा, "इस कानून को सरकार के साथ सहयोग करने की बुनियाद पर स्वीकार करने की सिफारिश मैं आप से नहीं कर सकता। मैं इज्जत को खोकर शान्ति खरीदना नहीं चाहता। जबतक इस कानून का वह प्राक्कथन कायम है, और जबतक अपने घर का इन्तजाम हम आप करें, अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास करें और अपने भाग्य का निर्माण आप करें, हमारे इस अधिकार को तसलीम नहीं कर लिया जाता, मैं सुलह की किसी शर्त पर विचार करने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

देशबन्धु के उस शानदार भाषण से अहमदाबाद के भव्य प्रस्तावों को देखने की सही दृष्टि मिल जाती है। मुख्य प्रस्ताव तो सचमुच असहयोग, उसके सिद्धान्त और कार्य-क्रम पर एक खासा निबन्ध ही है। यहांतक कि खुद गांधीजी ने उसे पेश करते समय कहा था कि इस प्रस्ताव को अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी में मुझे बारीकी से पढ़ने में ३५ मिनट लगे हैं। उन्होंने कहा कि पिछले १५ महीनों में देश में जो कुछ राष्ट्रीय कार्य हुए हैं उनका वह बिलकुल स्वाभाविक परिणाम है। इस प्रस्ताव के द्वारा सुलह का रास्ता बन्द नहीं कर दिया था, बल्कि वाइसराय यदि सद्भाव रखते हों तो दर्वाजा उनके लिए खुला रक्खा गया था। "परन्तु यदि उनके भाव ठीक न हों तो दर्वाजा उनके लिए बन्द है। परवा नहीं कितने ही लोगों को तबाह हो जाना पड़े, परवा नहीं यह दमन कितना ही उग्ररूप धारण करले। हां, उनके लिए गोलमेज-परिषद् का पूरा अवसर है, परन्तु वह वास्तविक परिषद् होनी चाहिए। यदि वह ऐसी परिषद् चाहते हैं कि जिसमें बराबरी के लोग बैठे हों और उनमें एक भी भिखारी न हो, तो दर्वाजा खुला है और खुला रहेगा। इस प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिससे विनय और विवेक रखनेवाले को शर्मिन्दा होना पड़े।" उन्होंने फिर कहा कि "यह प्रस्ताव किसी व्यक्ति के लिए कोई उद्धत चुनौती नहीं है, बल्कि यह तो उस हुकूमत को चुनौती है, जो उद्धतता के सिंहासन पर विराजमान है। यह एक नम्र परन्तु दृढ़ चुनौती है, उस हुकूमत को जो अपने को बचाने की गरज से राय देने और मिलने-जुलने

की आजादी को कुचल देना चाहती है; और यह दो तरह की आजादी तो मानों स्वाधीनता की शुद्ध वायु की सांस लेने के लिए दो फेफड़ों के समान है।" असहयोग और उसके प्रति देश के कर्तव्य के सम्वन्ध में जो मुख्य प्रस्ताव वहां पास हुआ वह इस प्रकार है :—

(१) "चूंकि कांग्रेस के पिछले अधिवेशन के समय से भारतीय जनता को अपने अनुभव से मालूम हुआ है कि अहिंसात्मक असहयोग के करने से देश ने निर्भयता, आत्म-वलिदान और आत्मसम्मान के मार्ग पर वहुत उन्नति की है और चूंकि इस आन्दोलन ने सरकार के सम्मान को वहुत वड़ा धक्का पहुँचाया है और चूंकि देश की प्रगति स्वराज्य की ओर तीव्र गति से हो रही है; इसलिए यह कांग्रेस कलकत्ता के विशेष अधिवेशन-द्वारा स्वीकृत और नागपुर में दोहराये गये प्रस्ताव को स्वीकार करती है और दृढ़ निश्चय प्रकट करती है कि जवतक पंजाव और खिलाफत के अत्याचारों का निवारण नहीं हो जायगा, स्वराज्य की स्थापना नहीं हो जायगी और भारतवर्ष का शासन-सूत्र एक उत्तरदायित्व-हीन संस्था के हाथ से निकलकर लोगों के हाथ में नहीं आ जायगा तवतक अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम इस समय की अपेक्षा अधिक उत्साह से उस प्रकार चलता रहेगा जिस प्रकार प्रत्येक प्रान्त निश्चय करेगा।

और चूंकि वाइसराय ने पहले हाल के भाषण में धमकी दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारत-सरकार ने अनेक प्रान्तों में गैर-कानूनी और उच्छृंखल-रूप से स्वयंसेवक-संस्थाओं को विच्छिन्न करके, और सार्वजनिक सभाओं और कमिटी की वैठकों की भी मनाही करके और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अनेक कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करके दमन प्रारम्भ किया है, और चूंकि यह स्पष्ट है कि यह दमन कांग्रेस और खिलाफत के कामों को विच्छिन्न करने और जनता को उनकी सहायता से वंचित करने की गरज से चलाया गया है; इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि जहां तक आवश्यकता हो कांग्रेस के सव कार्य स्थगित रक्खे जायें। और सव लोगों से प्रार्थना करती है कि वे शान्ति के साथ विना किसी धूम-धाम के स्वयंसेवक-संस्थाओं के सदस्य होकर गिरफ्तार होवें। ये स्वयंसेवक-संस्थायें देशभर में कार्य-समिति के वम्वई के गत २३ नवम्वर के निश्चयानुसार संगठित की जावें। किन्तु जो व्यक्ति नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा वह स्वयंसेवक नहीं वनाया जायगा—

'ईश्वर को साक्षी करके मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ का सदस्य होना चाहता हूँ।

(२) जबतक मैं संघ का सदस्य रहूँगा तबतक वचन और कर्म में अहिंसात्मक रहूँगा और इस बात का अत्यन्त अधिक प्रयत्न करूँगा कि मन से भी अहिंसात्मक रहूँ। क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में अहिंसा से ही खिलाफत और पंजाब की रक्षा हो सकती है और उसीसे स्वराज्य स्थापित हो सकता है और भारतवर्ष की समस्त जातियों में—चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी हों—एकता स्थापित हो सकती है।

(३) मुझे ऐसी एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए सदैव प्रयत्न करता रहूँगा।

(४) मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उद्धार के लिए स्वदेशी (का प्रयोग) आवश्यक है और मैं दूसरी तरह के सब कपड़ों को छोड़कर केवल हाथ के कते और बुने खद्दर का ही इस्तेमाल करूँगा।

(५) हिन्दू होने की हैसियत से मैं अस्पृश्यता को दूर करने की न्यायपरता और आवश्यकता पर विश्वास करता हूँ और प्रत्येक सम्भव अवसर पर दलित लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क रक्खूंगा और उनकी सेवा करूँगा।

(६) मैं अपने बड़े अफ़सरों की आज्ञाओं और स्वयंसेवक-संघ, कार्य-समिति या कांग्रेस-द्वारा स्थापित दूसरी संस्थाओं के उन सब नियमों का पालन करूँगा जो इस प्रतिज्ञा-पत्र के प्रतिकूल न होंगे।

(७) मैं अपने धर्म और अपने देश के लिए बिना विरोध किये जेल जाने, आघात सहने और मरने तक के लिए तैयार हूँ।

(८) अगर मैं जेल जाऊँ तो अपने कुटम्बियों या जो लोग मुझपर निर्भर हैं उनकी सहायता के लिए कांग्रेस से कुछ नहीं मांगूँगा।'

"इस कांग्रेस को विश्वास है कि १९ वर्ष और उससे अधिक उम्र का प्रत्येक व्यक्ति स्वयंसेवक-संघ में शामिल हो जायगा।

"सार्वजनिक सभाओं के किये जाने की जो मनाही की गई है उसकी परवा न करते हुए और यह देखते हुए कि कमिटी की बैठकों को भी सार्वजनिक सभा कह देने का प्रयत्न किया गया है, यह कांग्रेस सलाह देती है कि कमिटी की बैठकें और सार्व-जनिक सभायें हुआ करें। सार्वजनिक सभायें घिरी हुई जगहों में टिकट के द्वारा और पहले से सूचना देकर की जावें, जिनमें संभवतः वही वक्ता अपना लिखा हुआ भाषण पढ़े जिनकी सूचना पहले से ही दी जा चुकी हो। हर हालत में इस बात का खयाल

रक्खा जाय कि लोग उत्तेजित न हो जावें और उसके फल-स्वरूप जनता के द्वारा हिंसक कार्य न हो जायँ।

"आगे इस कांग्रेस की राय है कि जब किसी व्यक्ति या संस्था के अधिकारों का निरंकुश, अत्याचारी और अपमानप्रद प्रयोग रोकने के लिए और सब प्रयोग किये जा चुके हों तो सशस्त्र क्रांति के स्थान पर सत्याग्रह ही एक-मात्र सभ्य और प्रभावप्रद उपाय रह जाता है। इसलिए यह कांग्रेस समस्त कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं और उन दूसरे लोगों को, जिन्हें शान्तिपूर्ण उपायों पर विश्वास हो और जिनका यह निश्चय हो गया हो कि वर्तमान सरकार को भारतीयों के प्रति पूर्णतया अनुत्तरदायी-पद से उतारने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के त्याग के सिवाय अब दूसरा उपाय नहीं रह गया है, यह सलाह देती है कि लोगों को अहिंसा के नियमों की पूर्ण शिक्षा मिल चुकने पर या महासमिति की दिल्लीवाली पिछली बैठक के उस विषय के प्रस्तावानुसार देशभर में व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह का संगठन करें।

"इस कांग्रेस की राय है कि सामूहिक या व्यक्तिगत आक्रमणात्मक या रक्षात्मक सत्याग्रह पर पूरा ध्यान रखने के लिए उचित प्रतिबन्धों और समय-समय पर कार्य-समिति या उस प्रान्त की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की सूचनाओं के अनुसार जब, जहां और जितने स्थान पर आवश्यक समझा जाय तब, वहां और उतने स्थान पर कांग्रेस के लिए और सब कार्य स्थगित कर दिये जायँ।

"यह कांग्रेस १८ वर्ष और उससे अधिक उम्र के विद्यार्थियों से और विशेषकर राष्ट्रीय विद्यालयों के विद्यार्थियों और अध्यापकों से कहती है कि वे तुरन्त उपर्युक्त प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ के सदस्य हो जायँ।

"यह देखते हुए कि थोड़े समय में बहुत-से कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के गिरफ्तार होने का भय है और चूंकि यह कांग्रेस चाहती है कि कांग्रेस का प्रबन्ध उसी तरह चलता रहे और वह जहां शक्ति में हो वहां साधारण तौर से काम करती रहे, इसलिए जब तक आगे कोई सूचना न दी जाय तबतक यह कांग्रेस महात्मा गांधी को अपना सर्वाधिकारी नियत करती है और उन्हें महा-समिति के समस्त अधिकार देती है। इसमें कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने और महासमिति और कार्य-समिति की बैठक कराने के अधिकार भी शामिल हैं। इन अधिकारों का प्रयोग महा-समिति की किन्हीं दो बैठकों के बीच किया जायगा और उन्हें (महात्मा गांधी को) मौका आ जाने पर अपना उत्तराधिकारी नियत करने का भी अधिकार रहेगा।

"यह कांग्रेस उपर्युक्त उत्तराधिकारी और उनके वाद नियत किये जानेवाले अन्य उत्तराधिकारियों को ऊपर के सव अधिकार देती है।

"किन्तु इस प्रस्ताव के किसी अंश का यह अर्थ नहीं है कि महात्मा गांधी या उनके उपर्युक्त उत्तराधिकारियों को महासमिति की स्वीकृति और उसपर इसी कार्य के लिए किये गये कांग्रेस के विशेप अधिवेशन की मंजूरी के विना भारत-सरकार या ब्रिटिश-सरकार से संधि करने का अधिकार है; और कांग्रेस के संगठन की पहली धारा भी कांग्रेस की पूर्व-स्वीकृति के विना महात्मा गांधी या उनके उत्तराधिकारियों-द्वारा नहीं वदली जायगी।

"यह कांग्रेस उन सव देश-भक्तों को वधाई देती है जो अपने अन्तःकरण के विश्वास या देश के लिए जेल की यातना भोग रहे हैं और यह समझती है कि उनके वलिदान से स्वराज्य वहुत निकट आ गया है।"

(२) "जो लोग पूर्ण असहयोग या असहयोग के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते किन्तु जो राष्ट्रीय सम्मान के लिए खिलाफत और पंजाव के अत्याचारों का प्रतिकार होना आवश्यक समझते हैं और उसपर जोर देते हैं और राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए तुरन्त स्वराज्य स्थापित कराने पर जोर देते हैं, उन सवसे कांग्रेस यह प्रार्थना करती है कि वे भिन्न-भिन्न धार्मिक समाजों में एकता कराने में पूरी सहायता दें, जो लाखों कृपक भूखों मरने की अवस्था पर पहुँचे हुए हैं, उनकी आमदनी वढ़ाने के लिए आर्थिक दृष्टि से वुनने, हाथ से कातने और वुनने का प्रचार करें और इसके लिए हाथ से कते और वुने कपड़ों को पहनने की शिक्षा दें और पहनें, नशीली वस्तुओं का प्रयोग पूर्णतया वन्द करने में सहायता दें और यदि वे हिन्दू हों तो अस्पृश्यता दूर करने और दलित जाति के लोगों की अवस्था सुधारने में मदद दें।"

हम उस वहस की ओर भी मुखातिव हों जिसे मौलाना हसरत मोहानी ने शुरू किया था। उनकी तजवीज थी कि कांग्रेस के ध्येय में स्वराज्य की व्याख्या इस तरह की जाय—"पूर्ण स्वतंत्रता, विदेशियों के नियंत्रण से विलकुल आजादी।" इस घटना को अव इतना अरसा गुजर चुका है कि अव तो यह भी ताज्जुव हो सकता है कि कांग्रेस और गांधीजी ने इसका विरोध क्यों किया ?

गांधीजी ने उस समय कड़ी भापा का प्रयोग किया था; किन्तु सवाल यह है कि क्या वह वहुत कड़ी थी ? गांधीजी ने एक नया आन्दोलन चलाया, नया ध्येय तजवीज किया और नये ढंग से हमला करने की मोर्चावन्दी की थी। यह एक ऐसा संग्राम था कि जिसमें उद्देश और उसे पाने के लिए की गई व्यूह-रचना स्पष्ट-रूप से

निश्चित थी। दोनों तरफ के सैनिकों में छोटी-बड़ी मुठभेड़ हो जाया करती थी। एक कड़ी लड़ाई की तैयारी हो रही थी। ठीक ऐसे मौके पर यदि कोई सिपाही आकर जनरल और सेना से कहे कि हमारे उद्देश का निर्णय फिर से होना चाहिए, तो लड़ाई की सारी रचना न बिगड़ जायगी ? लेकिन उनकी जिस दलील ने असर किया वह तो थी—"सबसे पहले तो हम शक्ति-संग्रह करें—सबसे पहले हम यह देख लें कि हम कितने गहरे पानी में हैं। हमें ऐसे समुद्र में न कूद पड़ना चाहिए जिसकी गहराई का पता हमें न हो। और हसरत मोहानी साहब का यह प्रस्ताव हमको अथाह समुद्र में ले जा रहा है।"

दूसरे प्रस्तावों में एक तो विधान-सम्बन्धी था और दूसरे के द्वारा पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। एक मोपला-उत्पात के विषय में था, जिसमें कहा गया था कि असहयोग या खिलाफत-आन्दोलन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस उत्पात के छः महीने पहले ही से अहिंसा के सन्देश के प्रचारकों का जाना ही वहां रोक दिया गया था; और यह हलचल इतने दिनों तक न रही होती, यदि याकूब हसन जैसे या खुद महात्मा गांधी जैसे प्रमुख असहयोगियों को वहां जाने दिया गया होता। जब मोपला कैदी बेलारी भेजे गये तब कोई १०० मोपलाओं को एक मालगाड़ी के डब्बे में भर दिया गया, जिससे १६ नवम्बर १६२१ की रात को दम घुटकर ७० कैदी मर गये थे। इस अमानुष व्यवहार पर रोष और सन्ताप प्रकट किया गया। १७ नवम्बर को बम्बई में जो दुर्घटनायें हुईं, कांग्रेस ने उनकी निन्दा की और सब दलों तथा सब जातियों को आश्वासन दिया कि कांग्रेस की यही इच्छा और यह दृढ़ निश्चय है कि उनके अधिकारों की पूरी-पूरी रक्षा करे। इसके बाद मुस्तफा कमालपाशा को यूनानियों पर मिली फतह के लिए जिससे सेवर की सन्धि में परिवर्तन किया गया, कोमागाटामारू वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को जो ७ वर्ष तक अज्ञातवास में रहकर अपने-आप पुलिस के सुपुर्द हो गये थे, और उन सिक्खों को धन्यवाद दिया गया जो इस तथा अन्य अवसरों पर पुलिस और फौजी सिपाहियों द्वारा बहुत जोश दिलाये जाने पर भी शान्त और अहिंसात्मक बने रहे।

अहमदाबाद-कांग्रेस में एक खास बात हुई मुसलमान उलेमा का राजनैतिक मामलों में कांग्रेस को सलाह देना। व्यक्तिगत तथा सामूहिक सत्याग्रह की शर्तों के विषय में अहिंसा पर बहुत बहस-मुबाहसा हुआ था—यह कि आया, मन, वचन और कर्म से उसपर अमल किया जाय ? यहां यह याद रहे कि कलकत्तावाले प्रस्ताव में सिर्फ 'वचन और कर्म' का ही उल्लेख था। स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा में 'मन' शब्द के

जोड़ने पर मुसलमानों को ऐतराज था। उनका कहना था कि यह 'शरीयत' के खिलाफ जाता है। इसलिए 'मन' की जगह 'इरादा' शब्द रख दिया गया। इन सब मामलों में अलकुरान, 'शरीयत और हदीस' के मुताबिक राजनैतिक विचारों और भावों का अर्थ और निर्णय करने में उलेमा ने बहुत बड़ा काम किया। आगे चलकर हम देखेंगे कि कौंसिल-प्रवेश और उसके बाद की कार्रवाइयों के बारे में भी उनकी राय और फतवे लिये जाते थे।

मुलशीपेठा सत्याग्रह

१९२१ का विवरण समाप्त करने से पूर्व मुलशीपेठा सत्याग्रह का परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा। मुलशीपेठा पूना से ३० मील दूर है। ताता कम्पनी ने यहां बिजली पैदा करने के लिए इस इलाके के जलप्रपातों को बांधने के उद्देश्य से मजदूर भेजे। मुलशीपेठा के निवासियों ने अपने बाप-दादा की जमीन छोड़ने से इन्कार किया और श्री केलकर आदि की सलाह से सत्याग्रह का निश्चय किया। इस बिजली-योजना से ५१ गांव और ११,००० स्त्री-पुरुष बच्चे जमीन-जायदाद और घरबार से हाथ धोनेवाले थे। रामनवमी (अप्रैल १९२१) के दिन १२०० मावले बन्द पर जाकर बैठ गये। मजदूरों ने काम तुरत बन्द कर दिया। एक महीने तक यह सत्याग्रह चलता रहा। दिसम्बर में फिर आन्दोलन चला लेकिन बहुत समय तक चल न सका। मावले स्वयं कर्ज के बोझ से दबे हुए थे। साहूकार उन्हें और दबाने लगे। यद्यपि इसमें सफलता नहीं हुई, लेकिन इसका एक यह परिणाम तो जरूर हुआ कि उन्हें जमीनों के दाम अच्छे मिल गये। इस सत्याग्रह में १२५ मावलों, ५०० स्वयं-सेवकों और नेताओं ने जिनमें स्त्रियां और बच्चे भी थे, सजा पाई। इस आन्दोलन को चलानेवाली कांग्रेस तो न थी, लेकिन कांग्रेसी नेता अवश्य थे।

: ३ :

गांधीजी जेल में—१९२२

सर्व-दल-सम्मेलन

अभी १९२१ अच्छी तरह खतम भी न हुआ था कि कांग्रेस के हितैषी मित्रों ने, जो उसका नया कार्यक्रम स्वीकार नहीं कर सकते थे, कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने की उत्सुकता प्रकट की। अभी अहमदावाद के प्रस्तावों की स्याही सूखने भी न पाई थी कि १४, १५ और १६ जनवरी को वम्बई में एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें भिन्न-भिन्न दलों के लगभग ३०० सज्जनों ने भाग लिया।

सम्मेलन के आयोजकों ने एक ऐसा प्रस्ताव तैयार करने की वात सोची जिसके आधार पर अस्थायी संधि की वात चलाई जा सके। गांधीजी ने असहयोगियों की स्थिति साफ करते हुए कहा कि सम्मेलन में तो वह वाजाब्ता भाग न ले सकेंगे, हां, वैसे वह सम्मेलन की सहायता अवश्य करेंगे। इसका कारण उन्होंने वताया कि सरकार की तरफ से दमन वरावर जारी है; और जवतक कि सरकार के मन में उसपर कोई अफसोस नहीं है तवतक ऐसे सर्वदल-सम्मेलन करने से क्या फायदा? सम्मेलन के वीस सज्जनों की एक विषय-समिति ने जो प्रस्ताव तैयार किया वह सम्मेलन के इजलास में रक्खा गया और गांधीजी ने फिर असहयोगियों की स्थिति स्पष्ट की। सर शंकरन् नायर इस सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को नापसंद किया और सम्मेलन छोड़कर चले गये। उनका स्थान सर एम० विश्वेश्वरय्या ने लिया। सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया कि जिसमें सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया था और साथ में यह भी सलाह दी गई थी कि जवतक समझौते की वातचीत चलती रहे, अहमदावाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय। इस प्रस्ताव के द्वारा एक ऐसी गोल-मेज-परिषद् शीघ्र ही वुलाने की पुष्टि की गई जिसे खिलाफत, पंजाव और स्वराज्य-सम्वन्धी मामलों पर समझौता करने का अधिकार हो, और साथ ही जो देश में अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अंतर्गत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशों को और राज-

द्रोहात्मक सभा-बन्दी-कानून को रद करने और उनके सजायाफ्ता या विचारा
लोगों को और साथ ही फतवा-कैदियों को छोड़ने के लिए सरकार से अनुरोध क
कमिटी के जिम्मे उन मुकदमों की जांच का भी काम किया गया जिनके मात
आन्दोलन में भाग लेनेवालों को साधारण कानून के अनुसार सजा दी गई थ
सम्मेलन के बाद सर शंकरन् नायर ने गलत बातों से भरा एक वक्तव्य प्रका
करके गांधीजी पर घोर आक्रमण किया। इस वक्तव्य के खण्डन में श्री जिन्ना, जय
और नटराजन को मंत्री की हैसियत से और अन्य सज्जनों को भी अपने-अपने वक
प्रकाशित करने पड़े।

अन्तिम चेतावनी

इस सम्मेलन ने जो प्रस्ताव असहयोगियों के सम्बन्ध में पास किये थे, का
समिति ने अपनी ७ जनवरी की बैठक में उनकी पुष्टि कर दी और सत्याग्रह
महीने के अन्त तक के लिए मुल्तवी कर दिया गया। वाइसराय ने सम्मेलन की श
को मन्जूर करने से इन्कार कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कलकत्ते में ल
रीडिंग ने जो आश्वासन दिया था वह कितना खोखला था। इसपर गांधीजी
१-२-२२ को वाइसराय के नाम पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने बारडोली में सत्याग्र
आन्दोलन करने का विचार प्रकट किया।

पत्र (१ फरवरी १९२२) इस प्रकार है:—

"बारडोली बम्बई-प्रान्त के सूरत-जिले का एक छोटा-सा ताल्लुका है जिस
जन-संख्या कुल मिलाकर ८७,००० है।

"गत नवम्बर की दिल्लीवाली महासमिति की बैठक में जो प्रस्ताव प
हुआ था, इस ताल्लुके ने उसकी सारी शर्तों के अनुसार अपनी योग्यता साबित क
दी और गत २९ जनवरी को श्री विट्ठलभाई जवेरभाई पटेल की अध्यक्षता में सामूहि
सत्याग्रह करने का निश्चय किया। पर चूंकि इस निश्चय की जिम्मेवारी मुख्य
शायद मेरे ऊपर ही है, इसलिए मैं उस हालत को, जिसमें यह निश्चय किया ग
है, आपके और जनता के सामने रखना अपना कर्तव्य समझता हूं।

"महासमिति के प्रस्ताव के अनुसार बारडोली को सामूहिक सत्याग्रह
पहला केन्द्र बनाने का निश्चय किया गया था जिससे सरकार की भारत के खिलाफ
पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी संकल्प की अक्षम्य अवहेलना करने की नीति के विरु
देश-व्यापी असन्तोष प्रकट किया जा सके।

"इसके बाद ही बम्बई में १७ नवम्बर को शोचनीय दंगा हो गया, जिसके फल-स्वरूप बारडोली की कार्रवाई स्थगित कर देनी पड़ी।

"इधर भारत-सरकार की रजामन्दी से बंगाल, आसाम, युक्त-प्रान्त, पंजाब, दिल्ली-प्रान्त और एक प्रकार से बिहार में और अन्य स्थानों पर भी घोर दमन से काम लिया गया। मैं जानता हूँ कि इन प्रान्तों के अधिकारियों ने जो कुछ किया है, उसे 'दमन' के नाम से पुकारने पर आपको ऐतराज है। पर मेरी सम्मति यह है कि यदि जरूरत से ज्यादा कार्रवाई की गई हो तो निस्सन्देह उसे दमन के नाम से ही पुकारा जायगा। सम्पति का लूटना, निर्दोष व्यक्तियों पर हमला करना, जेल में लोगों पर पाशविक अत्याचार करना और उनपर कोड़े बरसाना किसी तरह भी कानूनी, सभ्यता-पूर्ण या आवश्यक कार्य नहीं कहा जा सकता। इस सरकारी गैर-कानूनी-पन को केवल गैर-कानूनी दमन के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

"हड़ताल और पिकेटिंग के सिलसिले में असहयोगियों या उनके साथ हम-दर्दी रखनेवालों द्वारा डराने-धमकाने की बात किसी हद तक ठीक है, पर केवल इसी कारण शान्तिपूर्ण पिकेटिंग या उतनी ही शान्तिपूर्ण सभाओं को एक ऐसे असाधारण कानून का अनुचित उपयोग करके जिसे उद्देश और कार्य दोनों प्रकार से हिंसापूर्ण हलचलों को दबाने के लिए पास किया गया था, अन्धाधुन्ध गैर-कानूनी करार देना न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। निर्दोष व्यक्तियों के ऊपर साधारण कानून का जिन गैर-कानूनी ढंगों से प्रहार किया गया है, न उसे ही दमन के अलावा और किसी नाम से पुकारा जा सकता है। रही प्रेस की आजादी का अपहरण करने की बात, सो यह जिस कानून के अनुसार किया गया है वह अब रद होने ही वाला है। यह सरकारी हस्तक्षेप भी दमन के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

"फलतः देश के सामने सबसे बड़ा काम लिखने-बोलने और सभा करने की आजादी को इस साधन से जीवन-दान देना है।

"आजकल भारत-सरकार जिस मनोवृत्ति का परिचय दे रही है, और हिंसा के मूल-स्रोतों पर अधिकार करने के मामले में देश जिस प्रकार गैर-तैयार अवस्था में है, उसे देखते हुए असहयोगियों ने मालवीय-परिषद् से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया था। इस परिषद् का उद्देश था कि वह आपको एक गोलमेज-परिषद् करने के लिए तैयार करे। मैं अनावश्यक दुःख-कष्ट से लोगों को बचाना चाहता था, इसलिए मैंने बिना संकोच कांग्रेस की कार्य-समिति को मालवीय-परिषद् की सिफारिशों को स्वीकार करने की सलाह दी। मेरी सम्मति में शर्तें

आपकी आवश्यकताओं के अनुसार, जैसा मैंने आपके कलकत्तेवाले भाषण से और अन्य सूत्रों से समझा, वाजिव ही थीं; फिर भी आपने उन्हें एकबारगी नामंजूर कर दिया।

"ऐसी हालत में अपनी मांगें मनवाने के लिए—जिनमें भाषण देने, मिलने-जुलने और लिखने की आजादी-सम्बन्धी मांगें भी शामिल हैं—किसी अहिंसात्मक उपाय का अवलम्बन करने के सिवा देश के आगे और कोई रास्ता नहीं है। मेरी विनम्र सम्मति में हाल की घटनायें उस सभ्यता-पूर्ण नीति के विलकुल खिलाफ हैं, जिसका आरम्भ आपने अली-भाइयों की उदारता और वीरतापूर्ण और विना किसी प्रकार की शर्त के क्षमा याचना करने के अवसर पर किया था। वह नीति यह थी कि जवतक असहयोगी शब्दों और कार्यों में अहिंसात्मक रहें, तवतक उनके कार्य-कलाप में सरकार कोई वाधा न डाले। यदि सरकार उदासीन रहने की नीति वरतती और जनता की सम्मति को परिपक्व होने और अपना प्रभाव दिखाने का अवसर देती तो उस समय तक के लिए सत्याग्रह मुल्तवी करना सम्भव होता जवतक कांग्रेस उपद्रवकारी शक्तियों पर पूरा अधिकार न कर लेती और अपने लाखों अनुयायियों में अधिक संयम और नियमवद्धता न ला देती। परन्तु गैर-कानूनी दमन-नीति के कारण (जो इस अभागे देश के इतिहास में अपने ढंग की निराली है) सामूहिक सत्याग्रह तत्काल ही आरम्भ करना हमारा कर्तव्य हो गया है। कार्य-समिति ने सत्याग्रह को कुछ खास-खास इलाकों तक ही सीमित कर दिया है। इन इलाकों को समय-समय पर मैं स्वयं निश्चित करूँगा। फिलहाल सत्याग्रह वारडोली तक ही सीमित रहेगा। यदि मैं चाहूँ तो इस अधिकार के द्वारा तत्काल ही मदरास-प्रान्त के गन्तूर जिले के १०० गांवों में सत्याग्रह आरम्भ करने की स्वीकृति दे दूँ। वशर्ते कि वे अहिंसा, भिन्न भिन्न श्रेणियों में मेल वनाये रखने, हाथ का कता-वुना खद्दर पहनने और वनाने और अस्पृश्यता दूर करने की शर्तों का पालन कर सकें।

"परन्तु पेश्तर इसके कि वारडोली की जनता सचमुच सत्याग्रह आरम्भ करे, आपके सरकार के प्रधान अफसर होने की हैसियत से, मैं आपसे एकवार फिर अनुरोध करता हूँ कि आप अपनी नीति में परिवर्तन करें और उन सारे असहयोगी कैदियों को मुक्त कर दें जो अहिंसात्मक कार्यों के लिए जेल गये हैं या जिनका मामला अभी विचाराधीन है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप साफ-साफ शब्दों में देश की सारी अहिंसात्मक हलचल में—चाहे वह खिलाफत के सम्बन्ध में हो चाहे पंजाव या स्वराज्य के सम्बन्ध में, चाहे और किसी विषयों में हो, यहां तक कि वह

ताजिरात हिन्द या जाब्ता फौजदारी की दमनकारी धाराओं के या दूसरे दमनकारी कानूनों के भीतर क्यों न आती हो—सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दें। हां, अहिंसा की शर्त अवश्य हमेशा लागू रहे। मैं आपसे यह भी अनुरोध करूंगा कि आप प्रेस पर से कड़ाई उठा लें और हाल में जो जुर्माने किये गये हैं उन्हें वापस करा दें। मैं जो आपसे यह करने का अनुरोध कर रहा हूं, सो संसार के उन सभी देशों में किया जा रहा है जहां की सरकारें सभ्य हैं। यदि आप सात दिन के भीतर इस प्रकार की घोषणा कर दें तो मैं उस समय तक के लिए उग्र सत्याग्रह मुल्तवी करने की सलाह दूंगा, जबतक सारे कैदी छूटकर नये सिरे से अवस्था पर विचार न कर लें। यदि सरकार उक्त प्रकार की घोषणा कर दे तो मैं उसे सरकार की ओर से लोकमत के अनुकूल कार्य करने की इच्छा का सबूत समझूंगा और फिर निःसंकोच भाव से सलाह दूंगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मांगों की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्था में उग्र सत्याग्रह केवल तभी किया जायगा जब सरकार बिलकुल तटस्थ रहने की नीति का परित्याग करेगी, या जब वह भारत के अधिकांश जनसमुदाय की स्पष्ट मांगों को मानने से इन्कार कर देगी।"

भारत-सरकार ने तुरन्त ही गांधीजी के वक्तव्य का उत्तर छपवाया, जिसमें दमन-नीति का यह कहकर समर्थन किया गया कि यह नीति बम्बई के दंगों, अनेक स्थानों पर खतरनाक और गैर-कानूनी प्रदर्शनों और स्वयं-सेवक दलों-द्वारा हिंसा, डराने-धमकाने और दूसरे के काम-काज में बाधा डालने के फल-स्वरूप है। इस उत्तर में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि सरकार की नीति वही है जो अली-भाइयों के माफी मांगने के अवसर पर वाइसराय ने बताई थी, क्योंकि उस अवसर पर वाइसराय ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "सरकार जब और जैसे ठीक समझेगी राज 'ोहात्मक अ चरण के विरुद्ध कानून का उपयोग करेगी।" उत्तर में यह भी कहा गया कि सरकार ने गोलमेज-परिषद् के प्रस्ताव को बिलकुल ही रद नहीं कर दिया। वास्तव में इस प्रकार की परिषद् के लिए यह आवश्यक था कि असहयोगी-दल गैर-कानूनी कार्रवाइयां बन्द कर दे। पर यह बात सर्व-दल-सम्मेलन के प्रस्तावों में कहीं नहीं थी। केवल हड़ताल, पिकेटिंग और सत्याग्रह बन्द करना तय हुआ था, और यह कहा गया था कि अन्य गैर-कानूनी काम बदस्तूर जारी रहेंगे। इसके अलावा "गांधीजी ने यह बात भी साफ कर दी है कि गोलमेज-परिषद् का काम उनके निर्णयों पर सही करना मात्र होगा।" उनकी मांगें दो श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं (१) अहिंसात्मक

आचरण के लिए दण्डित अथवा विचाराधीन सभी कैदियों को छोड़ दिया जाय; (२) यह आश्वासन दिया जाय कि सरकार असहयोग-दल के सभी अहिंसात्मक कार्यों में तटस्थता की नीति वरतेगी, फिर वे कार्य ताजिरात-हिन्द के भीतर भी क्यों न आते हों।

चौरी-चौरा काण्ड

पर कांग्रेस के सिर पर एक अशुभ मंडरा रहा था। ५ फरवरी को युक्त-प्रान्त में गोरखपुर के निकट चौरी-चौरा में एक कांग्रेस-जुलूस निकाला गया। इस अवसर पर २१ सिपाहियों और एक थानेदार को भीड़ ने एक थाने में खदेड़ दिया और आग लगा दी। वे सब आग में जल मरे। उधर १३ जनवरी को मदरास में वही हुआ जो १७ नवम्बर को वम्बई में हुआ था, जिसमें ५३ आदमी मरे थे और ४०० घायल हुए थे। इस अवसर पर मदरास में युवराज गये थे। मदरास के काण्ड ने वम्बई जैसा विशाल रूप धारण नहीं किया। तव १२ फरवरी को वारडोली में कार्य-समिति की एक बैठक हुई, जिसमें इन घटनाओं के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। कांग्रेसियों से अनुरोध किया गया कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए कोई काम न किया जाय और स्वयंसेवकों का संगठन और सभायें केवल सरकार की आज्ञा को तोड़ने के लिए न की जायँ। एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमें कांग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य भर्ती करना, चरखे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों को खोलना और मादक-द्रव्य-निषेध का प्रचार और पंचायतें संगठित करना आदि शामिल था। उधर जिस कमिटी को गन्तूर जिले का दौरा करने के लिए नियुक्त किया गया था उसने अपनी सिफारिश प्रकाशित करके लोगों से कर अदा करने को कहा और सारा लगान १० फरवरी तक अदा कर दिया गया। यह वात माननी पड़ेगी कि आन्ध्र-देश में करवन्दी का आन्दोलन सफल हुआ, क्योंकि जवतक कांग्रेस की निषेधाज्ञा जारी रही तवतक ५ फी सदी लगान तक वसूल न किया जा सका।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

वारडोली के प्रस्तावों से देश में कई प्रकार के भाव उत्पन्न हुए। वहुत लोग ऐसे थे जो गांधीजी और उनके निश्चय में अगाध-विश्वास रखते थे। कुछ ऐसे भी थे जो आपत्ति प्रकट करने-योग्य कोई अवसर हाथ से न जाने देते थे। जव २४

और २५ फरवरी को दिल्ली में महासमिति की बैठक हुई तो उसमें कार्य-समिति के बारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावों का समर्थन हुआ। हां, व्यक्तिगत-रूप से किसी खास कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की अनुमति अवश्य दे दी गई। विदेशी कपड़े की पिकेटिंग की भी इजाजत उन्हीं शर्तों पर दी गई थी जो बारडोली के प्रस्ताव में शराब की पिकेटिंग के लिए रक्खी गई थी। महासमिति ने सत्याग्रह में अपनी आस्था प्रकट की और यह राय कायम की कि यदि कार्यकर्त्ता रचनात्मक कार्य में अपनी सारी शक्ति लगा दें तो जिस अहिंसात्मक वातावरण की आवश्यकता है वह अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

महासमिति ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की यह परिभाषा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानून का उल्लंघन किया जाय। उदाहरण के लिए ऐसी निषिद्ध सभा जिसमें प्रवेश करने के लिए टिकटों की आवश्यकता हो, और जिसमें सबको खुलेआम आने की इजाजत न हो व्यक्तिगत सत्याग्रह की मिसाल है। और ऐसी निषिद्ध सभा जिसमें जन-साधारण बिना किसी रोकटोक के जा सकें, सामूहिक सत्याग्रह की। यदि इस प्रकार की सभा कोई रोजमर्रा का कार्यक्रम पूरा करने के लिए की जाय तो वह आत्मरक्षा के लिए की गई समझी जायगी। यदि सभा कोई दैनिक कार्यक्रम पूरा करने के लिए नहीं बल्कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए की गई हो तो वह उग्रस्वरूप की सभा समझी जायगी।

जब महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया तो मध्यस्थ लोगों में दिल्ली में हलचल मच गई। ये सज्जन कांग्रेस और सरकार के पारस्परिक-समझौते की तो आशा छोड़ बैठे थे। पर साथ ही गांधीजी की गिरफ्तारी की विपद को बचाना चाहते थे। यदि महासमिति अब भी सामूहिक सत्याग्रह को अपना अन्तिम लक्ष्य और व्यक्तिगत सत्याग्रह को तुरन्त शुरू किया जानेवाला कार्यक्रम न बनाती तो सम्भव था सरकार कोई कार्रवाई न करती। उधर गांधीजी के विरुद्ध यह आवाज उठी कि उन्होंने आन्दोलन को बिलकुल ठंडा कर दिया। पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल के भीतर से लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने गांधीजी को किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया। जब महासमिति की बाकायदा बैठक हुई तो गांधीजी पर चारों ओर से बौछारें पड़ने लगीं। आन्दोलन से पीछे हटने और बारडोली के प्रस्तावों के लिए उन्हें आड़े हाथों लिया गया। बंगाल और महाराष्ट्र तो गांधीजी

पर टूट ही पड़े। व्यक्तिगत सत्याग्रह क्यों न जारी रक्खा जाय? चाहे कुछ भी हो, वंगाल तो चौकीदारी-टैक्स देने से रहा। वावू हरदयाल नाग जैसे गांधीभक्त ने वगावत का झण्डा खड़ा किया। सत्याग्रही खद्दर क्यों पहनें? वारडोली के प्रस्तावों की एक-एक सतर की कड़ी आलोचना की गई। महासमिति की वैठक में डॉ० मुंजे ने गांधीजी के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पेश किया और कुछ सज्जनों ने भाषणों-द्वारा उनका समर्थन भी किया। पर राय लेने के वक्त केवल उन्हीं सज्जनों ने प्रस्ताव के लिए मत दिये जो गांधीजी के विरुद्ध वोले थे। गांधीजी ने इस प्रस्ताव के विरोध में किसी को वोलने की अनुमति न दी। तूफान आया और निकल गया, और गांधीजी उसी प्रकार पर्वत की भांति अचल रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी

पांसा पड़ चुका था। अव गांधीजी को धर दवोचने की सरकार की वारी थी। कोई भी सरकार देश में किसी नेता पर उस समय हमला नहीं करती जव उसकी लोक-प्रियता वढ़ी हुई हो। वह सब्र के साथ अपना अवसर देखती रहती है और जव सेना पीछे हटने लगती है तो दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ आ टूटता है। १३ मार्च को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अन्तिम सप्ताह में ही कर लिया गया था। गांधीजी को राजद्रोह के अपराध में सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

यह 'ऐतिहासिक मुकदमा' १८ मार्च को अहमदावाद में आरम्भ हुआ। कानूनी अहलकारों ने तीन लेख छांटे जिसके लिए गांधीजी पर मुकदमा चलाया गया था—(१) 'राज-भक्ति में दखल', (२) 'समस्या और उसका हल', (३) 'गर्जन-तर्जन'। ज्योंही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री वैंकर ने भी अपने को अपराधी कुवूल किया। इसके वाद गांधीजी ने अपना लिखित वयान पढ़ा, जो निम्न प्रकार है:—

"यह जो मुकदमा चलाया जा रहा है वह इंग्लैण्ड की जनता को सन्तुष्ट करने के लिए। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं इंग्लैण्ड की और भारतीय जनता को यह वता दूं कि मैं कट्टर सहयोगी से पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे वन गया। मैं अदालत को भी वताऊँगा कि मैं इस सरकार के प्रति जो देश में कानूनन कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करने के लिए अपने आपको दोषी क्यों मानता हूँ।

"मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ में दक्षिण-अफ्रीका में विषम

परिस्थिति में हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते वहां मेरे कोई अधिकार नहीं हैं। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नहीं है, क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी हूँ।

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयों के साथ जो यह दुर्व्यवहार किया जा रहा है यह दोप एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्था में योंही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही दिल से सरकार के साथ सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकार में कोई दोप पाया तो मैंने उसकी खूब आलोचना की, पर मैंने उसके विनाश की इच्छा कभी नहीं की।

"जब १८९० में बोअरों की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान् विपद् में डाल दिया, उस अवसर पर मैंने उसे अपनी सेवायें भेंट कीं—घायलों के लिए एक स्वयंसेवक-दल बनाया और लेडी स्मिथ की रक्षा के लिए जो कुछ लड़ाइयां लड़ी गईं उनमें काम किया। इसी प्रकार जब १९०६ में जुलू लोगों ने 'विद्रोह' किया तो मैंने स्ट्रेचर पर घायलों को ले जानेवाला दल संगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनों अवसरों पर मुझे पदक मिले और खरीतों तक में मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो काम किया उसके लिए लॉर्ड हार्डिंग ने मुझे कैसर-ए-हिन्द पदक दिया। जब १९१४ में इंग्लैण्ड और जर्मनी में युद्ध छिड़ गया तो मैंने लन्दन में हिन्दुस्तानियों का एक स्वयं-सेवक-दल बनाया। इस दल में मुख्यतः विद्यार्थी थे। अधिकारियों ने इस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ में लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिषद् में खास तौर से अपील की तो मैंने खेड़ा में रंगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तक को जोखिम में डाल दिया। मुझे इसमें सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रंगरूट नहीं चाहिएँ। इन सारे सेवा-कार्यों में मेरा एक-मात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्य में अपने देशवासियों के लिए बराबरी का दर्जा हासिल कर सकूंगा।

"पहला धक्का मुझे रौलट-एक्ट ने दिया। यह कानून जनता की वास्तविक स्वतंत्रता का अपहरण करने के लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पंजाब के भीपण काण्ड का नम्बर आया। इसका आरम्भ जालियांवाला बाग के कत्ले-आम से और अन्त पेट के बल रेंगाने, खुले आम बेंत लगाने और दूसरे बयान से बाहर अपमान-

जनक कारनामों के साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मंत्री ने भारत के मुसलमानों को जो आश्वासन दिया था कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ-स्थानों की एकत्रता वदस्तूर रक्खी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा।

"वैसे १६१६ की अमृतसर-कांग्रेस में अनेक मित्रों ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सार्थकता में सन्देह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास पर अड़ा रहा कि भारतीय मुसलमानों के साथ प्रधान-मंत्री ने जो वादा किया है उसका पालन किया जायगा, पंजाव के जख्मों को भरा जायगा और लाख नाकाफी और असन्तोष-जनक होने पर भी सुधार भारत के जीवन में एक नई आशा को जन्म देंगे। फलतः मैं सहयोग और माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-सुधारों को सफल वनाने की वात पर अड़ा रहा।

"पर मेरी सारी आशायें धूल में मिल गईं। खिलाफत-संवंधी वचन पूरा किया जानेवाला नहीं था। पंजाव-संवंधी अपराध पर लीपापोती कर दी गई थी। इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो थोड़ा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है वह विदेशी शोषक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा और सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है। वे यह नहीं जानते कि व्रिटिश-भारत में जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है। चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्क से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय, असंख्य गांवों में जो नर-कंकाल दिखाई पड़ रहे हैं उनकी प्रत्यक्ष गवाही को किसी तरह नहीं झुठलाया जा सकता। यदि हमारा कोई ईश्वर है तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इतिहास में जो यह अपने ढंग का निराला अपराध किया जा रहा है उसकी जवावदेही इंग्लैण्ड की जनता और हिन्दुस्तान के नगरवासियों को करनी होगी। इस देश के कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषकों के सुभीते के लिए किया गया है। पंजाव के फौजी कानून के संवंध में मैंने जो निष्पक्ष जांच की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि १०० पीछे ६५ मामलों में सजा के फैसले विलकुल खराव रहे। हिन्दुस्तान के राजनैतिक मुकदमों का तजुर्वा मुझे वताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे। इन आदमियों का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे। १०० पीछे ६६ मामलों में देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतों में हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकावले में न्याय नहीं मिलता। मैं अतिशयोक्ति से काम नहीं ले रहा हूँ। जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के

मामलों से काम पड़ा है उसका यही तजुर्बा है। मेरी राय में कानून का दुरुपयोग जानबूझ कर सही या बिना जानेबूझे सही, धन-शोषक के लाभ के लिए किया जाता है।

जिस १२४ ए धारा के अंतर्गत मुझपर मुकदमा चलाया गया है वह नागरिकों की आजादी का अपहरण करने में ताजिरात हिन्द की धाराओं में सिरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है न कायदे-कानून के मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमी के हृदय में किसी दूसरे आदमी के प्रति प्रेम के भाव न हों, तो जबतक वह हिंसा-पूर्ण कार्य या विचार या प्रेरणा न करे तबतक उसे अपने अप्रीति के भाव प्रकट करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर पर और मुझपर जिस धारा का प्रयोग किया गया है उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है। इस धारा के अंतर्गत चलाये गये कुछ मामलों का मैंने अध्ययन किया है, और मैं जानता हूँ कि इस धारा के अनुसार देश के कई परमप्रिय देश-भक्तों को सजा दी गई है। इसलिए मुझपर जो इस धारा के अनुसार मामला चलाया गया है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मैंने संक्षेप में अपनी अप्रीति के कारणों का दिग्दर्शन करा दिया है। किसी शासक के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं है, और स्वयं सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति तो मुझमें अप्रीति का भाव बिलकुल है ही नहीं। परन्तु जिस शासन-व्यवस्था ने इस देश को अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाई है उसके प्रति अप्रीति के भाव रखना मैं सद्गुण समझता हूँ। अंग्रेजों की अमलदारी में हिन्दुस्तान में पुरुषत्व का अन्य अमलदारियों की अपेक्षा अधिक अभाव हो गया है। जब मेरी ऐसी धारणा है तो इस शासन-व्यवस्था के प्रति प्रेम के भाव रखना मैं पाप समझता हूँ। और इसलिए मैंने अपने इन लेखों में, जो मेरे खिलाफ प्रमाण के तौर पर पेश किये गये हैं, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम-सौभाग्य समझता हूँ।

"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैण्ड और भारत जिस अप्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बताकर दोनों की एक सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करनेवाले को क्षति पहुँचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढंग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है, इसलिए बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है

के लिए जो कानून की निगाह में जान-बूझ कर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करने को तैयार हूँ। आपके, जज और असेसरों के, सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदय से समझते हैं कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दें और बुराई से अपना सम्बन्ध अलग कर लें; अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने में आप सहायता दे रहे हैं वह वास्तव में इस देश की जनता के मंगल के लिए है और मेरा आचरण लोगों के अहित के लिए है, तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें।"

जज ने फैसले में लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गांधीजी को छः वर्ष की सजा दी, और श्री शंकरलाल बैंकर को एक वर्ष की सजा और १०००) जुर्माने का दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर छः मास और। गांधीजी ने गिने-चुने शब्दों में उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोड़ा गया। उन्होंने जज को सजा देने के मामले में विचारशीलता से काम लेने के लिए और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया। अदालत में उपस्थित लोगों ने गांधीजी को विदा किया। बहुतों की आंखों में आंसू भी भरे हुए थे।

इस प्रकार गांधीजी को दण्ड देकर राष्ट्र की गोद में से हटा दिया गया। यह बात अचानक हुई हो, सो नहीं। स्वयं गांधी जी ने ९ मार्च को 'यंग इंडिया' में "यदि मैं गिरफ्तार हो गया" शीर्षक लेख में लिखा था कि चौरी-चौरा के मामले में श्री कुंजरू की रिपोर्ट निश्चयात्मक है और बरेली से कांग्रेस-मंत्री की रिपोर्ट से भी यह बात जाहिर है कि वैसे स्वयं-सेवकों का जुलूस निकालने में चाहे हिंसा न हो पर हिंसा की प्रवृत्ति अवश्य मौजूद है। फलतः उन्होंने सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दिया और लिखा कि जैसी हालत है उसमें सत्याग्रह 'सत्याग्रह' नहीं, 'दुराग्रह' होगा। पर गांधीजी की समझ में सत्याग्रह के विरुद्ध उस अंग्रेज-जाति का दृष्टिकोण न आया, जो सशस्त्र विद्रोह तक की सराहना करती आई है। अंग्रेज की दृष्टि में सत्याग्रह अनैतिक-सी चीज दिखाई पड़ी। यदि गांधीजी की गिरफ्तारी से सारे देश में तूफान आ जाता तो बड़े दुःख की बात होती। गांधीजी की इच्छा थी कि सारे कांग्रेस-कार्यकर्त्ता यह दिखा दें कि सरकार

की आशंका निर्मूल है; न हड़तालें हों, न शोरगुल के साथ प्रदर्शन किये जायँ, न जुलूस निकाले जायँ। यदि बारडोली में निश्चित किया गया कार्यक्रम पूरा किया जायगा तो उससे वे तो आजाद हो ही जायँगे, स्वराज्य भी मिल जायगा। गांधीजी ने इन्हीं शब्दों के साथ गिरफ्तारी का आवाहन किया था, क्योंकि उन्होंने समझ लिया कि इससे उनके दैवी शक्ति-सम्पन्न होने के सम्बन्ध में जो धारणा फैली हुई है उसका अन्त हो जायगा। यह खयाल भी दूर हो जायगा कि लोगों ने असहयोग-आन्दोलन उनके प्रभाव में आकर अपनाया था, हमारी स्वराज्य की योग्यता साबित हो जायगी, और साथ ही उन्हें शान्ति और शारीरिक विश्राम मिल जायगा जिसके सम्भवतः वह अधिकारी थे। और देश ने भी उनकी इच्छा का पालन किया—उनकी गिरफ्तारी और सजा पर चारों ओर शान्ति कायम रही।

जेल जाने के बाद

गांधीजी की सजा के बाद तीन महीने तक कार्य-समिति काम-काज को ठीक-ठाक करती रही। खद्दर-विभाग सेठ जमनालाल बजाज के जिम्मे कर दिया गया और ५ लाख रुपये उनके हाथ में रखने का निश्चय किया गया। मलाबार में कष्ट-निवारण के लिए कमिटी ने ८४,०००) की मंजूरी दी। सेठ जमनालाल बजाज ने वकीलों के भरण-पोषण के लिए उदारतापूर्वक एक लाख रुपया और भी दिया। खद्दर के अनिवार्य 'उपयोग' का अर्थ 'पहनना' लगाया गया। असहयोगी वकीलों को एक-बार फिर चेतावनी दी गई कि वे मुकदमे हाथ में न लें, और असहयोगियों को आदेश दिया गया कि वे अपनी पैरवी न करें। एक कमिटी बनाई गई, जिसके जिम्मे इन बातों की जांच और रिपोर्ट पेश करने का काम हुआ—(१) मोपला-विद्रोह होने के कारण; (२) विद्रोह ने क्या-क्या रूप धारण किया; (३) सरकार ने विद्रोह को दबाने के लिए फौजी-कानून आदि किन-किन उपायों से काम लिया; (४) मोपलों-द्वारा बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाना; (५) सम्पत्ति का विध्वंस; (६) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित कराना, यदि आवश्यक हो तो किन-किन उपायों से काम लिया जाय। मध्यप्रान्त (मराठी) की कांग्रेस-कमिटी ने असहयोग-कार्यक्रम में कुछ संशोधन पेश किये। अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी योजना बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। ७, ८ और ९ जून १९२२ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें ऊपर लिखी और अन्य सिफारिशों पर गौर किया गया। असल में महासमिति का काम था असहयोग, सविनय भंग और सत्याग्रह के सिद्धान्त और

व्यवहार का मूल्य फिर से निश्चित करना और उनके विज्ञान और कला का सिंहावलोकन करना। देशवन्धु दास और विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के नेता, जिन्होंने असहयोग को वहुत-कुछ संकोच के वाद अपनाया और वाद को उसकी जोरदार पुष्टि की थी, मूल में कुछ परिवर्तन करना चाहते थे। वे ऐसा असहयोग चाहते थे जिसका प्रवेश खास नौकरशाही के गढ़ में हो सके। तदनुसार महासमिति तथा गांधीजी ने शान्ति और सत्य के संदेश के द्वारा मानव-समाज की जो सेवा की थी उसकी सराहना की, अहिंसात्मक असहयोग में अपनी आस्था प्रकट की और कार्य-समिति का वह प्रस्ताव पास किया जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू ने, जो हाल ही में जेल से छूटकर आये थे, पेश किया था और जिसमें मालवीयजी ने संशोधन किया था। इस प्रस्ताव में सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया और इस नीति का मुकावला करने के लिए किसी-न-किसी रूप में सत्याग्रह या और इसी प्रकार का कोई उपाय अपनाया जाय, इस वात को अगस्त के लिए स्थगित कर दिया गया। साथ ही सभापति से अनुरोध किया गया कि कुछ सज्जनों को देश का दौरा करके वर्तमान हालत की रिपोर्ट आगामी कमिटी में पेश करने के लिए नियुक्त किया जाय। तदनुसार सभापति ने पण्डित मोतीलाल नेहरू, डॉ० अन्सारी, श्रीयुत् विट्ठलभाई पटेल, सेठ जमनालाल वजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानी को मुकर्रर किया। हकीम अजमलखां को कमिटी का अध्यक्ष वनाया गया। सेठ जमनालाल ने नियुक्ति स्वीकार न की और उनके स्थान पर श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर को नियुक्त किया गया। सेठ छोटानी शरीक न हो सके।

सत्याग्रह-कमिटी की कार्रवाई और उसकी रिपोर्ट का जिक्र करने से पहले हमें मार्च महीने को एकवार फिर देख लेना चाहिए। मि० माण्टेगु ने तुर्की से की गई सेवर्स की सन्धि के सम्वन्ध में एक सरकारी कागज का भेद खोल दिया था, इसलिए उन्हें २३ मार्च १९२२ को मंत्रि-मण्डल से इस्तीफा देना पड़ा। उस समय तुर्की ने यूनानियों को करारी हार दी थी। गिरफ्तारियों और सजाओं का चारों तरफ दौर-दौरा था। पंजाव में लारेंस की मूर्ति जनता के क्रोध का भाजन वन गई थी। आन्ध्र में गोदावरी में राष्ट्रीय झण्डा फहराने से नौकरशाही भड़क उठी थी और करवन्दी-आन्दोलन भी मौजूद था ही। कानून का शासन १०८ और १४४ धाराओं का शासन रह गया था। सरकारी कार्य-कारिणी के भारतीय सदस्य अपनी लाचारी प्रकट करते थे—क्योंकि कलक्टर (डिप्टी-कमिश्नर) ही सर्वे-सर्वा वने हुए थे। न्याय-विभाग को अपील करने से कुछ होने की सम्भावना थी, पर असहयोगी अपील को तैयार न होते

थे। लोगों के विगड़ उठने का एक कारण प्रधान-मंत्री लायड जॉर्ज की 'स्टील फ्रेम स्पीच' थी। यह इसलिए दी गई थी कि ओडानल-सर्कुलर नामक एक गश्ती-पत्र सारी प्रान्तीय सरकारों में घुमाया गया था। उनसे ऊँचे पदों पर भारतीय रखने के प्रश्न पर राय पूछी गई थी, जिससे भारत-सरकार सारी स्थिति पर विचार कर सके। यह वात कहीं खुल गई और भारत व इंग्लैण्ड के अफसर विगड़ खड़े हुए। उन्हें शान्त करने के लिए लायड जार्ज ने भाषण में कहा कि भारत की सिविल-सर्विस सारे शासन-तंत्र का फौलादी ढांचा है। उन्होंने यह भी कहा कि मेरी समझ में तो ऐसा कोई समय न आयगा जब भारत ब्रिटिश-सिविल-सर्विस की सहायता और पथ-प्रदर्शन के वगैर काम चला सकेगा। ब्रिटिश-सिविल-सर्विस का इसी प्रकार सहायता प्रदान करते रहना ब्रिटेन की भारत-स्थिति वड़ी भारी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए आवश्यक है।

वोरसद-सत्याग्रह

यह सत्याग्रह १९२२ में वोरसद में हुआ। कुछ दिनों से वोरसद ताल्लुका में देवर वावा नाम का एक छटा हुआ डाकू उपद्रव कर रहा था। इधर एक मुसलमान डाकू उठ खड़ा हुआ और देवर वावा के मुकावले में छापे मारने शुरू कर दिये। पुलिस लाचार थी। सरकार ने अपना सवसे वढ़िया अफसर इस काम पर नियुक्त किया, पर उसे भी सफलता न हुई। वड़ौदा-पुलिस भी उपद्रवियों का पता लगाना चाहती थी, क्योंकि वड़ौदा रियासत वोरसद के वगल में ही है। अन्त में ताल्लुके और रियासत के पुलिस और रेवेन्यू अफसरों ने मिलकर अपराधियों का पता लगाने की एक तरकीव सोच निकाली। उन्होंने देवर वावा को पकड़ने के लिए मुसलमान डाकू को मिला लिया। मुसलमान डाकू इस शर्त पर राजी हुआ कि उसके पास हथियार रहें और ४–५ सशस्त्र सिपाही दिये जायँ। अधिकारी राजी हो गये। चोर को पकड़ने के लिए चोर मुकर्रर किया गया। पर पुलिस के इस नये संगी ने अपने आदमियों और हथियारों का उपयोग तहसील में और भी धूम-धड़ाके के साथ लूटमार करने में किया।

अपराधों की संख्या वढ़ी और अन्त में सरकार ने सोचा कि इन अपराधों में गांववालों की भी साजिश है। तहसील में दण्ड-स्वरूप अतिरिक्त पुलिस वैठाई और एक भारी ताजीरी कर भी लोगों पर लगा दिया और वह कर हमेशा की वेरहमी के साथ वसूल किया जाने लगा। इधर गुजरात के नेताओं को पुलिस और मुसलमान डाकू के समझौते का पता चला और श्री वल्लभभाई पटेल ने इस मामले में सरकार को

चुनौती दी। वह वोरसद गये और लोगों से कर न देने को कहा। जिन लोगों को डाकुओं ने घायल किया था उनके शरीर से गोलियां निकाली गईं तो सावित हुआ कि गोलियां सरकारी हैं। अव कोई सन्देह न रहा कि डाकुओं ने सरकारी गोलियां और सरकारी रायफलों का उपयोग किया है। श्री वल्लभभाई पटेल ने २०० स्वयंसेवक रात-दिन चौकी पहरा देने के लिए तैनात किये। लोग-वाग कई हफ्तों से शाम से ही घरों के दरवाजे वन्द कर लेते थे। श्री पटेल ने उन्हें दरवाजे खुले रखने को राजी किया। गांववालों ने फोटो की तसवीरों द्वारा प्रमाणित कर दिया कि ताल्लुके में जो ताजीरी पुलिस नियुक्त की गई है उसके आदमी भीतर से स्वयं दरवाजे वन्द कर देते हैं और वाहर से भी ताले लगा देते हैं, जिससे डाकुओं को भ्रम हो जाय कि घर खाली हैं। वाहर जहां जरा-सा शोर हुआ कि पुलिसवाले अपनी चारपाइयों के नीचे घुस जाते थे। फोटो की तसवीरों के द्वारा ये सारी वातें विलकुल सच्ची सावित हुईं। अव सरकार के आगे दो मार्ग थे। या तो वह इस प्रकार के अभियोग लगानेवालों पर मुकदमा चलाती, या चुप्पी सावकर अपने-आपको कुसूरवार सावित करती। जव इस प्रकार के अभियोग लगाये गये, तो वड़ौदा-पुलिस गांवों से झटपट रियासत में हटा ली गई। पर ब्रिटिश-पुलिस उसी प्रकार वनी रही और ताजीरी कर के लिए सामान कुर्क करती रही। इसी समय वम्वई के गवर्नर लॉर्ड लायड भारत से चले गये और उनका स्थान सर लेसली विल्सन ने लिया। जव उन्होंने वोरसद की कथा सुनी तो वहां तत्काल होम-मेम्वर को भेजा, जिसने सारी वातों की तसदीक कराई और उसी समय पुलिस हटा ली गई। इवर देवर वावा वल्लभभाई और स्वयं-सेवकों के पहुँचते ही वहां से गायव हो गया था।

गुरु-का-वाग

इसके वाद वर्ष में दो महत्त्वपूर्ण घटनायें हुईं। एक सत्याग्रह-कमिटी का गर्मियों में देश में दौरा करना, और दूसरी गुरु-का-वाग की घटना जो अन्त में हुई। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी सिक्खों का सुधारक-दल था। ये लोग अपने-आपको अकाली कहते थे। जो सनातनी सिक्ख थे वे अपने-आपको उदासी कहते थे और गुरुद्वारों के महन्त इन्हीं का पक्ष करते थे। सुधारक सिक्ख सत्याग्रह करके गुरुद्वारों पर दखल करना चाहते थे। कुछ अकालियों ने गुरु-का-वाग के गुरुद्वारे की जमीन का एक पेड़ काट डाला। महन्त ने पुलिस से शिकायत की। पुलिस ने रक्षा का भार लिया। अव सिक्खों के जत्थे अहिंसा का व्रत लिये पुलिस की टुकड़ियों के वीच में

से निकलते और उन्हें गैर-कानूनी समुदाय की हैसियत से खूब पीटा जाता। देश में इस दृश्य से सनसनी मच गई। यह अहिंसा का पाठ था, जो भारत की वह वीर जाति पढ़ा रही थी जिसने यूरोप में जर्मनों से मोर्चे लिये थे और अंग्रेजों के निमित्त विजय प्राप्त की थी।

अकालियों के इस आत्म-नियंत्रण की प्रशंसा सरकार ने भी खुले दिल से की। दस वर्ष बाद भारतीय राजनीति में जिस लाठी-चार्ज को इतना प्रमुख भाग मिलनेवाला था, उसकी कला में गुरु-का-बाग में ही प्रवीणता प्राप्त की गई थी। अन्त में १६२२ के नवम्बर में सर गंगाराम नामक एक सज्जन ने वह जगह महन्त से पट्टे पर ले ली और अकालियों के पेड़ काटने पर कोई एतराज न किया।

सत्याग्रह कमिटी की सिफारिशें

सत्याग्रह-कमिटी ने देश-भर का दौरा किया। लोगों का उत्साह भंग न हुआ था। कमिटी के सदस्य जहां कहीं गये, उनका जोरदार स्वागत हुआ। कमिटी ने अपना काम समाप्त करके रिपोर्ट पेश की। आरम्भ में महासमिति इसकी चर्चा १५ अगस्त की बैठक में करना चाहती थी, पर ऐसा न हो सका और कुछ दिनों बाद कलकत्ते में जब देशबन्धु दास की दूसरी कन्या के विवाह के अवसर पर कुछ लोग एकत्र हुए तो खानगी तौर से इसकी चर्चा की गई। कहते हैं कि इस अवसर पर पण्डित मोतीलाल नेहरू को सत्याग्रह के स्थान पर कौंसिल-प्रवेश के लिए राजी कर लिया गया। कुछ समय बाद जब रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो पता चला कि सब-के-सब सदस्यों के सामने यह प्रश्न था कि कौंसिल के लिए खड़ा होना चाहिए या नहीं? खिलाफत-कमिटी ने भी इसी ढंग की एक कमिटी कायम की, जिसने अपनी रिपोर्ट में कौंसिलों का बहिष्कार जारी रखने की सिफारिश की। सत्याग्रह-कमिटी की सिफारिशें नीचे दी जाती हैं—

१—सत्याग्रह—देश फिलहाल छोटे पैमाने पर या सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है, जैसे किसी खास कानून का भंग या किसी खास कर की गैर-अदायगी। हम सिफारिश करते हैं कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया जाय कि यदि महासमिति की सत्याग्रह-सम्बन्धी शर्तें पूरी होती हों तो वे अपनी जिम्मेवारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक सत्याग्रह की मंजूरी दे सकें।

२—कौंसिल-प्रवेश—(अ) कांग्रेस और खिलाफत अपने गया के अधिवेशनों में यह बात घोषित कर दें कि चूंकि कौंसिलों ने अपने पहले सत्र (सेशन) के

द्वारा यह दिखा दिया है कि वे खिलाफत और पंजाब-संबंधी ज्यादतियों की दादरसी में रुकावट बन रही हैं, स्वराज्य की शीघ्रप्राप्ति में बाधक हो रही हैं, और जनता के लिए बड़ी कष्टदायिनी साबित हुई हैं, इसलिए अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्तों का कड़ाई के साथ पालन करते हुए, जिससे भविष्य में ऐसी बुराइयां न उत्पन्न हों, निम्नलिखित उपायों से काम लेना चाहिए—

(१) असहयोगियों को उम्मीदवारी के लिए पंजाब और खिलाफत की ज्यादतियों की दादरसी और तत्काल-स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश से खड़ा होना चाहिए और अधिक-से-अधिक संख्या में पहुँचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक संख्या में पहुँच जायँ कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल-भवन में जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहां से चले आना चाहिए और फिर किसी बैठक में शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच में वे कौंसिलों में केवल इसलिए जायँ कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी संख्या में पहुँचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हरेक सरकारी कार्रवाई का, जिसमें बजट भी शामिल हो, विरोध करना चाहिए और केवल पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिएँ।

(४) यदि असहयोगी अल्प संख्या में पहुँचे तो उन्हें वही करना चाहिए जो नं० २ में बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिए।

नई कौंसिलों का निर्वाचन १९२४ की जनवरी से पहले न होगा, इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि कांग्रेस का अधिवेशन १९२३ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह के बजाय पहले सप्ताह में हो, और यह मामला एक बार फिर उसमें पेश किया जाय जिससे निर्वाचन के सम्बन्ध में कांग्रेस अपना अन्तिम वक्तव्य दे सके। (हकीम अजमलखाँ, पंडित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल की सिफ़ारिश)

(आ) कौंसिलों के बहिष्कार के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति में किसी प्रकार का परिवर्त्तन न होना चाहिए। (डा० एम० ए० अन्सारी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर की सिफ़ारिश)

३—स्थानिक संस्थायें—हमारी सिफारिश है कि स्थिति को साफ करने के लिए यह घोषणा करना वाञ्छनीय है कि असहयोगी रचनात्मक कार्यक्रम को अमली शक्ल देने के लिए म्युनिसिपैलिटियों, जिला और लोकल-बोर्डों की उम्मीदवारी के लिए खड़े हों, परन्तु असहयोगी सदस्यों के वहां आचरण के सम्बन्ध में अभी किसी खास

ढंग के नियम-उपनियम न बनायें जायँ। हां, यह जरूरी है कि वे प्रान्तीय और स्थानिक कांग्रेस-संस्थाओं के साथ मिल-जुलकर काम करें।

४—स्कूल-कालेजों का बहिष्कार—स्कूल-कालेजों के सम्बन्ध में हमारी सिफारिश है कि इस मामले में बारडोली के बहिष्कार-प्रस्ताव का पालन करना चाहिए और मौजूदा जोरदार प्रचार बन्द करके विद्यार्थियों को स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार करने की सलाह न देनी चाहिए। जैसा कि प्रस्ताव में कहा गया है, हमें अपने राष्ट्रीय विद्यालय इतने उत्तम बना देने चाहिएँ कि विद्यार्थी स्वयं ही सरकारी स्कूल-कालेजों से खिंचकर वहां चले आयँ। हमें पिकेटिंग आदि उग्र उपायों का अवलम्बन न करना चाहिए।

५—अदालतों का बहिष्कार—पंचायतें स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस ओर लोक-प्रवृत्ति जाग्रत करनी चाहिए।

हमारी यह भी सिफारिश है कि इस समय वकीलों पर जो प्रतिबंध लगे हुए हैं, वे उठा दिये जायँ।

६—मजदूर-संगठन—नागपुर-कांग्रेस-द्वारा पास किया गया प्रस्ताव नं० ८ तत्काल अमल में लाना चाहिए।

७—आत्मरक्षा का अधिकार—(अ) हमारी सिफारिश है कि कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने की स्वतंत्रता सबको दी जाय। हां, जब कांग्रेस का काम कर रहे हों, या उसके सिलसिले में कोई अवसर उपस्थित हो, तो दूसरी बात है। पर इस बात का हमेशा खयाल रहे कि इससे खुल्लम-खुल्ला हिंसा की नौबत न आ जाय। धर्म के मामले में, स्त्रियों की रक्षा करने में, या लड़कों और पुरुषों पर अनुचित अत्याचार होने पर शारीरिक बल का प्रयोग किसी हालत में मना नहीं है। (श्री विट्ठलभाई पटेल को छोड़कर सबकी सहमति)

(आ) असहयोगियों को कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने का अधिकार रहना चाहिए; शर्त सिर्फ यही रहनी चाहिए कि इससे सामूहिक हिंसा की नौबत न आ जाय। और किसी प्रकार की शर्त न होनी चाहिए। (श्री विट्ठलभाई पटेल)

८—अंग्रेजी माल का बहिष्कार—(अ) हम इसे सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करते हैं और सिफारिश करते हैं कि इस प्रश्न को विशेषज्ञों के सुपुर्द करना चाहिए और उनकी विशद रिपोर्ट कांग्रेस के पहले आ जानी चाहिए। (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को छोड़कर सबकी सहमति)

(आ) विशेषज्ञों के सारी बातों के संग्रह करने और उनकी जांच-पड़ताल करने

में कोई हानि नहीं है, परन्तु महासमिति-द्वारा सिद्धान्त-रूप में स्वीकृति होने से देश को गलतफहमी होगी और आन्दोलन को हानि पहुँचेगी।" (चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य)

इसपर से यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से वँटे हुए थे। पर दोनों थे असहयोग के ही दल; और सरकार से सहयोग करने को दोनों में से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान में एक दूसरी डोरी चढ़ाकर उससे नौकरशाही के गढ़ कौंसिलों के भीतर से ही तीर छोड़ने का समर्थक था। स्थानिक बोर्डों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की गईं उनकी कल्पना तो पहले ही से की जा सकती थी। कांग्रेसियों और असहयोगियों ने म्युनिसिपैलिटियों और स्थानिक बोर्डों के लिए खड़ा होना आरम्भ कर दिया था। सफल होने पर ये अस्पतालों में खद्दर और नौकरों के लिए खादी की वर्दियों के व्यवहार पर जोर देते, ऑफिसों पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने का आग्रह करते, स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा और हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करते और यदा-कदा गवर्नरों और मिनिस्टरों के आगमन का वहिष्कार करने पर जोर देते। इस प्रकार इन्होंने सरकार की नाक में दम करना आरम्भ कर दिया था। पर इन सारी कार्रवाइयों से केवल उनके रुख का पता लगता था; कोई ठोस काम होता नजर न आता था।

महासमिति की बैठक १५ अगस्त को होनेवाली थी, वह नवम्बर तक के लिए रुक गई। उस महीने की २०, २१, २२, २३ और २४ तारीख को कमिटी की ऐतिहासिक बैठकें हुईं। कांग्रेस-कमिटी की चर्चा क्या थी एक प्रकार का टूर्नामेण्ट था, जिसमें अपने-अपने पक्ष के योद्धाओं को ध्यान-पूर्वक छांटा गया था। पहले दिन की बैठक इण्डियन एसोसियेशन के कमरों में हुई, पर वहां खुली हवा न मिलती दिखाई दी, इसलिए बाकी चार दिन की बैठक १४८ रसा रोड में देशवन्धु चित्तरंजन दास के भव्य भवन में शामियाने के नीचे हुई। वैसे वृद्ध नेहरू और दास जैसे चोटी के नेता कौंसिल-प्रवेश के कार्यक्रम की पुष्टि कर रहे थे, और उनकी सहायता पर उनका पुराना सहयोगी महाराष्ट्र था; परन्तु एक तो गांधीजी जेल में थे, फिर उनके प्रति उनके अनुयायियों की श्रद्धा और भक्ति ने भी जोर लगाया, असहयोग का कार्यक्रम लड़ायक था और दूसरी ओर का कार्यक्रम ऐसा जोरदार नहीं था। पांच दिन की उधेड़-बुन, नुकताचीनी, तानाजनी और वाक-प्रहारों के वाद कमिटी ने निर्णय किया कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। पर कमिटी ने प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया कि यदि कोई मौका आ पड़े तो वे अपनी जिम्मेवारी

पर सीमित-रूप में सत्याग्रह की मंजूरी दे सकती हैं, बशर्ते कि उस सम्बन्ध में लगाई गई सारी शर्तें पूरी होती हों। कौंसिल-प्रवेश का अधिक जटिल प्रश्न गया-कांग्रेस के लिए मुल्तवी कर दिया गया। इसी प्रकार अंग्रेजी माल के बहिष्कार का प्रश्न, स्थानिक बोर्डों में प्रवेश करने का प्रश्न, स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार का प्रश्न, कांग्रेस का काम करते समय को छोड़कर अन्य हर समय कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने के अधिकार का प्रश्न—ये सब भी मुल्तवी कर दिये गये। बोर्डों में प्रवेश प्रश्न को स्थगित इसलिए किया गया कि जिससे रचनात्मक कार्य में बाधा न पड़े। इस प्रकार सत्याग्रह-कमिटी की चर्चा समाप्त हुई, जिसमें कांग्रेस के १६,०००) खर्च हुए।

गया-कांग्रेस

गया-कांग्रेस का जिक्र करने से पहले कार्य-समिति की बैठकों का पूरा विवरण दे देना ठीक होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की जांच करने के लिए एक प्रभावशाली कमिटी मुकर्रर की गई, 'अमृतबाजार पत्रिका' के वयोवृद्ध देशभक्त सम्पादक मोतीलाल घोष की मृत्यु पर शोक प्रकाश किया गया, और मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम-एकता कराने के लिए एक कमिटी मुकर्रर की गई।

पिछले दो वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों में जैसा सराहनीय मेल रहा था वह १९२२ के मुहर्रमों में मुलतान में भंग हो गया, दंगा हुआ, आदमी मरे और खूब लूटमार हुई। यह बड़े शोक की बात हुई। लाख कोशिशें की गईं, पर बेकार साबित हुईं। 'इण्डिया १९२२–२३,' नामक पुस्तक में लिखा है—"गांधीजी ने जिस इमारत को इतने परिश्रम से तैयार किया था वह बुरी तरह से नष्ट हो गई।" जिस प्रकार १९१७ के सितम्बर से हर महीने की १५ वीं तारीख को एनी बेसेण्ट-दिवस, जबतक एनी बेसेण्ट छूट न गईं, मनाया जाता रहा, उसी प्रकार १८ अप्रैल के बाद से प्रति मास की १८ वीं तारीख को देश-भर में गांधी-दिवस मनाया जाता रहा। एक दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि जवाहरलाल नेहरू युवराज का बहिष्कार करने के सिलसिले में मिली सजा भुगतकर लौटे तो १९२२ की मई में उन्हें फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट पर वही चिर-परिचित १२४ ए लिखा हुआ था। पर उनपर मुकदमा चलाया गया "धमकाने और रुपया वसूल करने की कोशिश में सहायता देने" के लिए! उन्होंने एक व्याख्यान में विदेशी दूकानों पर धरना देने का इरादा जाहिर भी किया था। उन्होंने एक कमिटी की मीटिंग का सभापतित्व भी ग्रहण किया था, जिसमें कपड़े के व्यापारियों से अपने नियमों के अनुसार जुर्माना

मांगने के लिए एक पत्र लिखने का निश्चय किया गया था। मामला ताजिरात-हिन्द की ३८५ धारा के अनुसार चलाया गया। असली बात यह थी कि उनपर विदेशी कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग करने के लिए मामला चलाया जा रहा था। उन्होंने १७ मई १९२२ को अदालत में बड़ा ही सुन्दर बयान दिया, जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार अबसे दस साल पहले वह हैरो और केम्ब्रिज की सभ्यता में पले हुए अंग्रेज हो गये थे, और किस प्रकार दस वर्ष के समय में भारत-सरकार की वर्तमान शासन-प्रणाली के कट्टर-शत्रु (बागी) हो गये। उन्होंने कहा—"मुझे अपने सौभाग्य पर स्वयं ही आश्चर्य होता है। स्वतंत्रता के युद्ध में भारत की सेवा करना बड़े सौभाग्य की बात है। और उसकी सेवा महात्मा गांधी जैसे नेता के नेतृत्व में करना दुगुने सौभाग्य की बात है। परन्तु प्यारे देश के लिए कष्ट सहना! किसी भारततीय के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है कि अपने गौरवपूर्ण लक्ष्य की सिद्धि में उसके प्राण चले जायँ?"

१९२२ की गया-कांग्रेस हर प्रकार से अपने ढंग की निराली थी। प्रतिनिधियों में जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मत-भेद उपस्थित हुआ वह कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी समस्या थी। कलकत्ते-वाली महासमिति की बैठक ने यह समस्या कांग्रेस के अवसर के लिए मुल्तवी कर दी थी। कांग्रेस को इस मामले पर और अन्य मामलों पर निर्णय करने के लिए पांच दिन तक बैठना पड़ा। कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि यदि कौंसिल-प्रवेश की इजाजत दे दी गई तो असहयोग की योजना भंग हो जायगी, इसलिए वे इस बात पर जोर देते थे कि कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे, कि हम कौंसिलों में जाकर न शपथ लेंगे न स्थान ग्रहण करेंगे और इस ढंग से शत्रु को पराजित कर देंगे। इसके बाद उन जोशीले राजनीतिज्ञों की बारी थी, जो कहते थे कि हम कौंसिलों पर कब्जा कर लेंगे, मंत्रि-मण्डलों और मंत्रियों को तहस-नहस कर देंगे, शेर को उसकी मांद में जाकर पराजित करेंगे, रुपये की मंजूरी न देंगे और धिक्कार का प्रस्ताव पास करेंगे, और सरकारी यंत्र का चलना असम्भव कर देंगे।

देशबन्धु दास ने जो भाषण पढ़ा वह तर्क, अध्ययन और व्यावहारिक आदर्श-वाद में अपना सानी नहीं रखता। यद्यपि असहयोग की नाव को दूसरी ओर ले जाने के विरुद्ध अनेक शक्तियां जुट गईं, तो भी एस० श्रीनिवास आयंगर और पण्डित मोती-लाल नेहरू की प्रतिभा के बावजूद वह नाव अपने रास्ते चलती रही। एस० श्रीनिवास

आयंगर ने संशोधन पेश किया कि कांग्रेसी उम्मीदवारी के लिए खड़े हों परन्तु कौंसिलों में स्थान ग्रहण न करें। पण्डित मोतीलाल नेहरू कुछ शर्तों के साथ इसपर रजामन्द हो गये। श्रीनिवास आयंगर ने एक वर्ष पहले मदरास-कौंसिल से इस्तीफा दे दिया था, अपना एडवोकेट-जनरल का पद और सी० आई० ई० की उपाधि त्याग दी थी और बधाइयों की वर्षा के मध्य आन्दोलन में पैर रक्खा था। खिलाफतवाले जमैयत-उल-उलेमा के प्रभाव में थे जिसने फतवा निकाला था कि कौंसिल-प्रवेश ममनून है, हराम नहीं है। पर गया में किसीकी न चली। गांधीवाद का चारों ओर दौर-दौरा था। हर किसीका यह विश्वास था कि कांग्रेस का अपने नेता के अनुपस्थित होते ही उसके प्रति पीठ दिखाना कृतघ्नता होगी। स्वर्गीय मोतीलाल घोष और अम्बिका-चरण मुजुमदार के प्रति सम्मान प्रकट करने के बाद गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को साधुवाद दिया गया।

शहीद अकालियों की उनकी असाधारण वीरता और अन्य राजनैतिक कैदियों की उनके अहिंसा का सुन्दर उदाहरण पेश करने के लिए प्रशंसा की गई। कमालपाशा को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई। कौंसिलों का बहिष्कार करने को कहा गया। सरकार को चेतावनी दी गई कि वह और अधिक ऋण न ले, और लोगों को भी सावधान किया गया और नामधारी कौंसिलों के नाम पर जारी किये गये नौकरशाही के ऋण में रुपया न लगाने के लिए कहा गया। गत नवम्बर की महा-समिति के सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव की एक प्रकार से पुष्टि की गई। इस बीच में देश से इस कार्य के लिए रुपया और आदमी एकत्र करने को कहा गया। कालेजों और अदालतों का बहिष्कार जारी रहा और नवम्बर में आत्म-रक्षा-संबंधी अधिकार के विषय में जो कुछ निश्चित किया गया था उसे मान लिया गया। मजदूरों का संगठन करने के लिए एण्डरूज साहब, श्री सेनगुप्त और चार दूसरे सज्जनों की कमिटी बनाई गई जिसे आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता था। दक्षिण-अफ्रीका और काबुल की कांग्रेस-संस्थाओं को कांग्रेस के साथ शामिल किया गया और उन्हें कांग्रेस में क्रमशः १० और २ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

स्वराज्य पार्टी

जिस समय देशबन्धु दास ने गया-कांग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनकी जेब में वास्तव में दो महत्त्वपूर्ण कागज थे। एक था सभापति का

भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग-पत्र, जिसके साथ उनकी स्वराज्य-पार्टी के नियम-उपनियम भी थे। यह किसीको आशा न थी कि दास जैसे व्यक्तित्व का पुरुष, पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के आदमियों का सहारा पाकर भी, जनता के आगे चुपचाप सिर झुका देगा और कौंसिल-वहिष्कार के लिए राजी हो जायगा। फलतः एक पार्टी बनाई गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। श्री दास के जिम्मे बंगाल की प्रान्तीय कौंसिल पर कब्जा करने का काम रहा और नेहरूजी को दिल्ली और शिमला पर धावा बोलने का काम दिया गया।

१९२२ का साल खतम करने से पहले यहां राजनैतिक कैदियों और जेल के नियमों का जिक्र करना ठीक होगा। पिछले सालों की तरह अब सरकार राजनैतिक शब्द से उतना नहीं बचती थी। उनके साथ अब अधिक उदारता का व्यवहार किया जाने लगा। पर इनमें वे कैदी शामिल न थे जो हिंसात्मक कार्यों के लिए, या जमीन-जायदाद आदि के मामलों में, या सैनिकों या पुलिस को फुसलाने के मामले में, या किसी को डराने-धमकाने के सिलसिले में दण्डित हुए थे। किस कैदी के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह उसके अपराध, शिक्षा, सामाजिक स्थिति और चरित्र के ऊपर निर्भर किया गया। इस तरह चुने हुए कैदियों को मामूली कैदियों से अलग रक्खा जाता था और उन्हें पुस्तकें रखने, अपना खाना खाने और बिछौना इस्तेमाल करने, समय-समय पर चिट्ठियां लिखने और इष्टमित्रों से मुलाकात करने की अधिक छूट दी गई। उन्हें कठिन परिश्रम से बरी किया गया। हमने भारत-सरकार की इन सारी हिदायतों को विशद-रूप से इसलिए दिया है कि उनका पालन जेल-अधिकारियों ने अधिकांश कैदियों के सम्बन्ध में न उस समय किया था, न बाद को। बाद को तो सरकार ने 'राजनैतिक' शब्द ही मानने से इनकार कर दिया।

: ४ :

कौंसिलों के भीतर असहयोग—१९२३

खिलाफत का खात्मा

देश के राजनैतिक वातावरण को १९२३ के आरम्भ में साम्प्रदायिक मत-भेदों ने फिर गंदा कर दिया था। १९२२ में मुलतान में दंगा हो ही चुका था। १९२३ के मुहर्रमों में बंगाल और पंजाब में भयंकर दंगे हुए। १९२२ में खिलाफत के प्रश्न का अचानक अन्त हो गया था। १९२२ के अक्तूबर में मुदानिया में अस्थायी संधि हुई। २० नवम्बर को लूसान में मित्र-राष्ट्रों की एक परिषद् हुई। यहां दो महीने तक बात-चीत होती रही। इसी अवसर पर अंगोरा-सरकार के प्रतिनिधियों ने नगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और तुर्की के सुलतान को एक अंग्रेजी जहाज में छिपकर प्राण बचाने के लिए माल्टा भागना पड़ा। उसके विदा होते ही वह सुलतान और खलीफा दोनों पदों से च्युत कर दिया गया। उसका भतीजा अब्दुलमजीद एफेन्डी नया खलीफा चुना गया। सुलतान का अस्तित्व समाप्त हो गया और तुर्की में प्रजातंत्र हो गया। इस प्रकार खिलाफत सिर्फ मजहबी बातों तक ही सीमित रह गई।

समझौते की कोशिश

गया में अपरिवर्त्तनवादियों की जो विजय हुई वह स्थायी साबित न हुई। १ जनवरी १९२३ को महासमिति ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०,००० स्वयंसेवक भर्ती किये जायँ। कार्य-समिति के जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि तुर्की की अवस्था के कारण यदि कोई खास मौका आ पड़े तो सत्याग्रह-सम्बन्धी दिल्ली की कड़ाई को ढीला कर दिया जाय। डॉ० अन्सारी को दूसरी बैठक के लिए एक राष्ट्रीय-पैक्ट का मसविदा तैयार करने को कहा गया। परन्तु सबसे अधिक जरूरी बात सभापति का त्याग-पत्र था। उन्होंने पहले ही विषय-समिति को अपनी स्वराज्य-पार्टी वाली योजना बता दी थी, इसलिए पद-त्याग आवश्यक

ही था। पर त्याग-पत्र पर विचार महासमिति की २७ फरवरी १९२३ को इलाहाबाद में होनेवाली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बैठक में आपस में समझौता करके दोनों दलों ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल तक किसी ओर से कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार-कार्य न हो और इस बीच में अपने-अपने कार्य-क्रम का बाकी हिस्सा दोनों दल पूरा करने को स्वतंत्र रहें। कोई किसीके काम में दखल न दे। ३० अप्रैल के बाद जैसा तय हो उसके अनुसार दोनों दल अपना रवैया रक्खें।

इस समय तक मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेल से छूट गये थे। महासमिति ने यह समझौता करने के लिए दोनों को धन्यवाद दिया।

इधर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जोर-शोर से फैलाया गया। इस काम के लिए जो शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया गया था उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल बजाज और श्री देवदास गांधी थे। इस शिष्ट-मण्डल ने देशभर का दौरा किया और तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए काफी चन्दा इकट्ठा किया। मई १९२३ को बम्बई में हुई कार्य-समिति की बैठक में इसने अपने कार्य की रिपोर्ट पेश की थी।

१९२३ की २५, २६ और २७ मई को कार्य-समिति की बैठक के साथ ही महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमें तय किया गया कि गया-कांग्रेस के अवसर पर मतदाताओं में कौंसिल-प्रवेश-प्रचार करने का जो प्रस्ताव पास किया गया था उसपर अमल न किया जाय। इस बैठक में कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुई। हां, मध्यप्रान्त के स्वयंसेवकों को नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह जारी रखने के लिए बधाई दी गई और साथ ही देश के स्वयंसेवकों को आवश्यकता पड़ने पर नागपुर-सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार रहने का आदेश दिया गया।

बम्बई के इस समझौते से कई प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियां स्वभावतः ही क्षुब्ध हुईं। बाद को नागपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें २६ मई के समझौतेवाले प्रस्ताव को जायज और उपयुक्त समझा गया और इस बात की जोरदार शब्दों में घोषणा की गई। पर इसी कमिटी में अचानक एक ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया और पास हुआ जिसका नोटिस पहले से नहीं दिया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया, जिसमें कौंसिल-बहिष्कार के प्रश्न पर विचार किया जाय। मौलाना अबुलकलाम आजाद को

इसका सभापति चुना गया और कार्य-समिति को इस सम्बन्ध में जरूरी कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया।

झण्डा-सत्याग्रह

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई में नहीं, दिल्ली में हुआ। पर पहले हमें उस समय की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र करना चाहिए। इसमें नागपुर-सत्याग्रह की ओर हमारा ध्यान सबसे पहले जाता है। नागपुर की पुलिस ने १ मई १९२३ को १४४ धारा के अनुसार सिविल लाइन्स में राष्ट्रीय झण्डे समेत जुलूस ले जाने का निषेध कर दिया। स्वयंसेवकों ने कहा—हमें अधिकार है, जहां चाहें झण्डा ले जायँगे। बस, गिरफ्तारियां और सजायें आरम्भ हो गईं। बात-की-बात में इस घटना ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और जिसे पहले कार्य-समिति ने, जैसा कि हम कह आये हैं, आशीर्वाद दिया और फिर महासमिति ने अपनी ८, ९ और १० जुलाई की नागपुर-वाली बैठक में। कमिटी ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का निश्चय किया और साथ ही देश को आवाहन किया कि आगामी १८ तारीख को जो गांधी-दिवस होनेवाला है, उसे झण्डा-दिवस कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आज्ञा हुई कि उस दिन जुलूस निकालकर जनता-द्वारा झण्डे फहरायें। इस समय तक इस सत्याग्रह के सिलसिले में सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमिटी ने सेठजी को उनकी सजा पर बधाई दी। सेठजी की मोटर ३,०००) जुर्माना न देने के कारण कुर्क कर ली गई। पर नागपुर में कोई उसके लिए बोली लगानेवाला न निकला और अन्त में उसे काठियावाड़ ले जाया गया। नागपुर के इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए कार्य-समिति और महासमिति ने देश का जो आवाहन किया था उसके उत्तर में देश के कोने-कोने से सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे और इन्हें कष्ट भी काफी मिले। नागपुर झण्डा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल-भारतीय आन्दोलन हो गया और श्री वल्लभभाई पटेल से १० जुलाई से उसकी जिम्मेवारी लेने का अनुरोध किया गया। देश के कोने-कोने से स्वयंसेवक भेजे जा रहे थे। अगस्त के आरम्भ में कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें श्री विट्ठलभाई पटेल को उनके नागपुर-सत्याग्रह के संचालन में सहायता देने के लिए साधुवाद दिया गया और आशा की गई कि वह इसी प्रकार स्थल पर मौजूद रहकर संचालक वल्लभभाई पटेल की आन्दोलन में सहायता करेंगे। सरकार का कहना था कि जुलूसवालों को इजाजत मांगनी चाहिए। कांग्रेस कहती थी कि सड़क सबके लिए है;

हमें अधिकार है, जहां चाहेंगे वगैर किसी रुकावट के जायँगे। एक जोरदार आन्दोलन का निश्चय किया गया। वल्लभभाई पटेल ने जनता की सारी गलतफहमी दूर कर दी और १८ तारीख के लिए जुलूस का मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी वदस्तूर लगी हुई थी; यही नहीं, उसे हाल ही दुवारा लगाया गया था। पर इतने पर भी १८ तारीख को जुलूस को जाने दिया गया। वाद को इस विषय को लेकर खूव हो-हल्ला मचा। अधगोरे अखवार कहते थे, सरकार की जीत हुई, क्योंकि कांग्रेस ने इजाजत की दरख्वास्त की; और कांग्रेस का कहना था कि ऐसा कभी नहीं किया गया, और ठीक भी यही था। दिल्ली-कांग्रेस ने नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह के आयोजकों और स्वयंसेवकों को अपने वीरता-पूर्ण वलिदान और कष्ट-सहिष्णुता द्वारा युद्ध को अन्त तक निवाहने और इस प्रकार अपने देश के गौरव की रक्षा करने के लिए हृदय से वधाई दी।

प्रवासी भारतीय

जुलाई, अगस्त और सितम्वर में प्रवासी भारतीयों के सम्वन्ध में कुछ महत्त्व-पूर्ण हल-चल हुई, जिसकी ओर कांग्रेस का ध्यान खिचा रहा। केनिया में अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जा रही थी। यहां के प्रवासी भारतीयों की अवस्था वहुत दिनों से असंतोपजनक थी। यह उपनिवेश जो इतना आवाद हो गया उसका श्रेय भारतीय मजदूरों और भारतीय धन को वहुत कुछ था। कई मामलों में भारतीयों ने ही सवसे पहले वहां कदम आगे वढ़ाया था और यूरोपियनों की अपेक्षा वे आवादी में अधिक थे। भारतवासियों को इस उपनिवेश के उस हाईलैण्ड्स (ऊँची भूमि) की खेती योग्य जमीनें देने की जो मुमानियत कर दी गई थी, जो युगाण्डा को जानेवाली सड़क के दूसरी ओर तक चली गई है। और जहां कपास की खेतियों में भारतीयों का काफ़ी धन लगा हुआ है, उससे भारतीयों में वड़ा असंतोष फैला। औपनिवेशिक मंत्री चर्चिल ने १९२३ के आरम्भ में केनिया के गवर्नर को वुला भेजा। गवर्नर के साथ अंतिम समझौते की शर्तों पर चर्चा करने के लिए यूरोपियन और भारतीय प्रतिनिधि भी गये। भारतीय (वड़ी) कौंसिल ने भी एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा, जिसके सदस्य माननीय श्रीनिवास शास्त्री थे। एण्डरूज साहव भी साथ गये।

यह समस्या इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण हो गई थी, क्योंकि रोडेसिया, टांगा-निका, न्यासालैण्ड, युगाण्डा और केनिया का एक वड़ा यूनियन वनाने की वात-चीत हो रही थी। युगाण्डा के प्रवासी भारतवासियों की अवस्था केनिया-प्रश्न के निप-

टारे पर निर्भर थी। "अलग रखने" का जहर इस उपनिवेश में भी काम कर रहा था। कम्पाला की वस्ती में यूरोपियन आवादी से दूर एक जगह एशियावालों के लिए नियत कर दी गई थी। भारत-सरकार की इस सम्वन्ध में सारी लिखा-पढ़ी वेकार गई। १९२१ में टांगानिका में लॉर्ड मिलनर के आश्वासन पर भारतवासियों ने शत्रु की जमीन-जायदाद खरीद ली थी। अव तीन आर्डिनेन्स "आर्थिक प्रयोजन के लिए" जारी किये गये, जिनके द्वारा भारतीयों के वरावरी के अधिकार छीनने की चेष्टा की गई। इसके सम्वन्ध में व्यापक हड़ताल की गई जो १९२२ के अप्रैल तक जारी रही। पहले दर्जे में भारतीयों के सफर करने की मुमानियत की गई, पर वाद को यह मुमानियत उठा दी गई।

इस विषय पर महासमिति ने जो प्रस्ताव पास किया वह इस प्रकार है :—

"केनिया के सम्वन्ध में व्रिटिश-सरकार ने जो निश्चय किया है उससे यह प्रकट है कि व्रिटिश-साम्राज्य में भारत के लिए वरावरी और सम्मान का स्थान मिलना सम्भव नहीं है। अतएव इस महासमिति की राय है कि इस घटना के विरुद्ध देशभर में जोरदार प्रदर्शन किया जाय।"

कमिटी ने वताया कि २९ अगस्त को देशभर में हड़ताल की जाय और जगह-जगह सभायें की जायँ जिनमें जनता से व्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी में, साम्राज्य परिषद् में और साम्राज्य-दिवस में भाग न लेने को कहा जाय।

विशेष अधिवेशन

यह अधिवेशन दिल्ली में सितम्वर के तीसरे हफ्ते में हुआ। सभापति मौलाना अवुलकलाम आजाद थे जो वड़े मुसलमान मौलवी हैं। वंगाल और दिल्ली में इनकी एक-समान ख्याति और मान है। कांग्रेस के दोनों दल इनकी वुद्धि और निष्पक्षता के कायल थे। कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करनेवाले दल ने विना कठिनता के कांग्रेस से अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि "जिन कांग्रेस-वादियों को कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उन्हें अगले निर्वाचनों में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार वन्द किया जाता है।" साथ ही यह भी कहा गया कि रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में दूनी शक्ति से काम लेना चाहिए। पण्डित रामभजदत्त चौधरी के स्वर्गवास, जापान के भूकम्प, महाराजा नाभा के जवर्दस्ती गद्दी छोड़ने और विहार, कनाडा और वर्मा में वाढ़ आने के सम्वन्ध में सहानुभूति और सम-

वेदना-सूचक प्रस्ताव पास किये गये। एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द सत्याग्रह-सम्वन्वी आन्दोलन संगठित करने और विभिन्न प्रान्तों की तत्सम्वन्वी हलचल को व्यवस्थित करने का काम हुआ। एक और कमिटी नियुक्त हुई जिसके जिम्मे कांग्रेस के विधान में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करने का काम हुआ। एक दूसरी कमिटी राष्ट्रीय-पैक्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। समाचार-पत्रों को चेतावनी दी गई कि साम्प्रदायिक मामलों में वड़े संयम से काम लिया जाय और जिले-जिले में मेल-कमिटियां मुकर्रर करने की सलाह दी गई। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक कमिटी ने जांच के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया था। अकाली लोग दमन का जिस साहस और अहिंसा के साथ सामना कर रहे थे, उसके लिए उन्हें एकवार फिर वधाई दी गई। खद्दर के उत्तेजन के द्वारा विदेशी कपड़े का वहिष्कार करने पर जोर दिया गया और एक कमिटी देशी माल वनानेवालों को उत्तेजन और खासकर अंग्रेजी माल का वहिष्कार करने के लिए सवसे वढ़िया उपाय निश्चित करने को मुकर्रर की गई। झण्डा-सत्याग्रह-आन्दोलन को उसकी सफलता के लिए वधाई दी गई और जेल से छूटे नेताओं का, खास कर लालाजी और मौलाना मुहम्मदअली का, स्वागत किया गया।

केनिया के सम्वन्ध में क्रोध और तुर्की के सम्वन्ध में हर्ष प्रकट किया गया। दो कमिटियां और भी नियुक्त की गईं जिनमें से एक के सुपुर्द हिन्दू-मुस्लिम-कलह को रोकने का काम, जो अव फिर शुरू हो गया था, और दूसरी के सुपुर्द शुद्धि और शुद्धि-विरुद्ध आन्दोलनों में वल का प्रयोग करने की सत्यता की जांच करने का काम हुआ। शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए रक्षक-दल वनाने और शारीरिक वल की वृद्धि करने के सम्वन्ध में जोर दिया गया।

इस प्रकार दिल्ली में कांग्रेस के क्रम को फिर से निश्चित करने का मार्ग सफल हो गया। गया में जो वगावत की गई थी अव वह लगभग फलित हो गई। जो लोग आगामी निर्वाचनों में भाग लेना चाहते थे उनके लिए रास्ता साफ हो गया। अव कांग्रेस-वादियों में पहली वार उस कार्यक्रम के ऊपर मतभेद हुआ, जो खुद भी आगे जाकर वँट गया था। स्वराज्य-पार्टी को किस नीति और किन सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए, यह एक घोषणा-पत्र में रख दिया गया।

कोकनडा-कांग्रेस

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कोकनडा में होना निश्चित हुआ। कुछ अपरिवर्त्तनवादियों को अव भी थोड़ी-वहुत आशा थी कि दिल्ली ने जो कुछ कर डाला,

कोकनडा उसे चाहे बिलकुल मिटा न सके, क्योंकि उस समय तक चुनाव खतम हो जायँगे, फिर भी वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उसी पुराने असहयोग का झण्डा खड़ा रक्खा जायगा। मौलाना मुहम्मदअली को सभापति चुना गया। कोकनडा-कांग्रेस में खूब कशमकश रही। अपरिवर्त्तनवादी-दल के कुछ प्रसिद्ध नेता शरीक नहीं हुए। राजेंद्र बाबू अस्वस्थता के कारण कोकनडा-कांग्रेस में न आ सके और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने दिल्ली के प्रस्ताव पर अपना वजन डाला। श्री वल्लभभाई उपस्थित थे, परन्तु दिल्ली के प्रस्ताव के समझौते के सम्बन्ध में दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर उनकी स्वीकृति बंगाल के वृद्ध-जर्जर बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने हासिल कर ली थी। उन्हें देश निर्वासन और कारावास, निर्धनता और दरिद्रता में अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। इन्होंने कोकनडा-कांग्रेस के प्रबल समुदाय को अपने कौंसिल-प्रवेश-विरोधी भाषण से थर्रा दिया। परन्तु पासा पड़ चुका था। कौंसिल-बहिष्कार के भाग्य का निपटारा हो चुका था। वहां का मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"यह कांग्रेस कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद, गया और दिल्ली में पास किये प्रस्ताव को फिर दोहराती है।

"दिल्ली में कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में जो असहयोग का प्रस्ताव पास किया था उसे लेकर संदेह उठ खड़ा हुआ है कि कांग्रेस की नीति में कहीं कोई परिवर्त्तन तो नहीं हुआ। यह कांग्रेस स्पष्ट-रूप से प्रकट करती है कि बहिष्कार के सिद्धान्त और उसकी नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है।

"और यह कांग्रेस इस बात की भी घोषणा करती है कि उक्त नीति और सिद्धान्त रचनात्मक-कार्य के आधार-रूप हैं और देश से प्रार्थना करती है कि बारडोली में निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम को उसी रूप में पूरा करे और सत्याग्रह के लिए तैयारी करे। यह कांग्रेस सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आदेश करती है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई शीघ्र करें, जिससे लक्ष्य-सिद्धि में विलम्ब न हो।"

कोकनडा-कांग्रेस को एस० कस्तूरी रंगा आयंगर और अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश करने का अप्रिय कर्त्तव्य पालन करना पड़ा। श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर का देश-प्रेम दादाभाई की भांति उनकी आयु के साथ-साथ दिन-दिन बढ़ता जाता था। श्री अश्विनीकुमार दत्त को सारा बंगाल प्रेम करता था और उनकी स्मृति का मान सारा देश करता है। विनायक दामोदर सावरकर को लगातार जेल में बन्द रखने की निन्दा की गई। जो राष्ट्रीय पैक्ट तैयार किया गया था उसे देशबन्धु दास के बंगाल-पैक्ट के साथ वितरित करने का निश्चय किया

गया। कांग्रेस ने अखिल-भारतीय स्वयंसेवक-दल की रचना करने के आन्दोलन का स्वागत किया। इस संस्था में वाद को रक्षक-दल भी मिला दिया गया।

दिल्ली में जो सविनय-भंग-कमिटी नियुक्त की गई थी वह और सत्याग्रह-कमिटी कार्य-समिति में मिला दी गई। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ वनाया गया, जिसे खद्दर का काम चलाने का अधिकार दिया गया। सरकार ने शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवंधक-कमिटी के अकाली-दल पर आक्रमण करके भारतीयों के अहिंसात्मक उद्देश से एकत्र होने के अधिकार को जो चुनौती दी थी उसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उनके वर्तमान संघर्ष में उनका साथ देने और उन्हें आदमी और रुपये और हर प्रकार की सहायता देने का निश्चय किया।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

यहां वर्तमान प्रसंग को छोड़कर, सिक्खों में सुधार-संवंधी जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था उसका थोड़ा-सा जिक्र करना ठीक होगा। काली पगड़ी वांधे "सत् श्रीकाल" का घोप करनेवाले सिक्ख और उनके लंगरखाने अव कांग्रेस के जाने-वूझे अंग हो गये हैं। जव कोई विदेशी सरकार किसी देश का शासन अपने अधिकार में लेती है तो स्वभावतः ही उस देश की सारी संस्थाओं पर—चाहे वे आर्थिक हों या शिक्षण-सम्वन्धी, और चाहे धार्मिक ही क्यों न हों—केंकड़े की भांति अपने पंजे फैला देती है। अंग्रेजों ने पंजाव को १८४९ में व्रिटिश-भारत में मिलाया। इस रद्दो-वदल के अवसर पर सिक्ख-धर्म के केन्द्र और गढ़-स्वरूप अमृतसर के दरवारसाहव के वंदोवस्त में गड़वड़ मची हुई थी। इस अवसर पर अमृत छके हुए सिक्खों की एक कमिटी को ट्रस्टी वनाया गया और सरकार-द्वारा नियत व्यक्ति सरवराह या अभि-भावक वना। एक मैनेजर नियुक्त किया गया जिसके हाथों से हर साल लाखों रुपये निकलते थे। जैसा अकसर होता है, १८८१ में यह कमिटी भंग हो गई और मैनेजर के हाथ में ही सारे अधिकार आ गये। नियंत्रण के अभाव में गैर-जिम्मेवारी और आचार-हीनता का जन्म हुआ। एक ओर मैनेजर और ग्रन्थियों और दूसरी ओर सिक्ख-जनता में आये दिन मुठभेड़ होने लगी। सरकार परेशान थी कि क्या करें। अन्त में १९२० के अन्त में एक कमिटी वनाई गई जो वाद को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी हुई। इस कमिटी के पहले सभापति सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया हुए, जो कुछ दिनों वाद ही पंजाव-सरकार की कार्य-कारिणी के सदस्य नियुक्त किये गये। सुधारक सिक्ख अकाली कहलाते थे। इन्होंने अपेक्षा-कृत अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारों को अपने

हाथ में किया। तरन-तारन में फसाद हो गया और कई सिक्ख घायल हुए और दो मरे। हम कह ही आये हैं कि १९२१ के आरम्भ में ननकानासाहव में किस प्रकार निर्दोष यात्रियों की हत्या की गई थी। पुलिस की निगाह में यह आन्दोलन गुरुद्वारों के साथ प्राप्त होनेवाली शक्ति और सामर्थ्य को अपने कब्जे में करने के लिए था। इस दृष्टिकोण से महन्तों को वढ़ावा मिला। इन महन्तों में वे लोग भी थे जिन्होंने अकालियों से समझौता कर लिया था। अव वे इस समझौते से हट गये। सरकार "सुधारक सिक्खों के अन्धा-धुन्ध दमन पर उतारू थी।" १९२१ के मई मास में सैकड़ों सिक्ख जेलों में ठूंस दिये गये और प्रतिष्ठा-हीन महन्तों को फिर अधिकार दिया गया। फलतः जहांतक इस सुधार का सम्वन्ध था, शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी ने १९२१ की मई में सरकार से असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

सरकार जो गुरुद्वारा-विल पास कराना चाहती थी, वह सिक्खों में नरम-दलवालों और सहयोगियों तक को मंजूर न हुआ। फलतः उसका विचार छोड़ दिया गया। सिक्खों पर एक निश्चित लम्बाई से अधिक वड़ी कृपाणें पहनने के लिए मुकदमे चलाये गये। पंजाव-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने १० जुलाई १९२१ को इसका विरोध किया, और महीने के अन्त में सिक्खों को जेल से छोड़ दिया गया। झव्वा के भाई करतारसिंह और भूचड़ के भाई राजासिंह को १८ और ७ वर्ष का वर्वरता-पूर्ण कारावास-दण्ड दिया गया। २८ अगस्त १९२१ को कौंसिलों के सिक्ख सदस्यों को इस्तीफा देने को कहा गया। सरदारवहादुर सरदार महतावसिंह वैरिस्टर ने गुरुद्वारा-आन्दोलन के सम्वन्ध में सरकार की नीति के विरोध में सरकारी वकालत और पंजाव-कौंसिल के उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया। १९२१ के सितम्वर के आरम्भ में उपर्युक्त लम्वी सजा पाये हुए दोनों सिक्खों तथा अन्य कई को छोड़ दिया गया। परन्तु पंजाव प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के प्रधान-मन्त्री सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर को, जिन्हें १९२१ के जून में १२४ ए धारा के अनुसार पांच वर्ष का सपरिश्रम कारावास हुआ था, और गुरुद्वारे के अन्य कार्यकर्त्ताओं को न छोड़ा गया। अचानक १९२१ की ७ नवम्वर को सरकार ने अमृतसर के दरवारसाहव की चावियां छीन लीं, जिसके फल-स्वरूप गुरु नानक के जन्म-दिवस पर सजावट न हो सकी। सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त किया गया, पर उसे शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी ने चार्ज न लेने दिया और उसे इस्तीफा देना पड़ा। वस, इसके वाद से चावियां ही सारे झगड़े की जड़ वन गईं और जन-सभाओं-द्वारा उसका विरोध किया जाने लगा। सरकार ने राजद्रोही सभावन्दी-कानून जारी किया

और सरदार खड़गसिंह और सरदार मेहतावसिंह को कड़ी कैद की सजा दी गई। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म-दिवस ५ जनवरी १९२२ को था। सरकार ने चावियां उस समय तक के लिए सौंपने की तैयारी दिखाई जबतक कि उसके द्वारा दीवानी अदालत में दायर किये गये मुकदमे का फैसला न हो। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी ने चावियां लेने से इन्कार कर दिया। जब २०० सिक्ख-कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो चुके तो सरकार ने हाथ रोक लिया और सारे कैदियों को विना किसी शर्त के छोड़ दिया। १९२२ की ११ जनवरी को चावियां भी सौंप दी गईं। पर पण्डित दीनानाथ को नहीं छोड़ा। फलतः राजद्रोही सभावन्दी-कानून के विरुद्ध फिर सत्याग्रह जारी हुआ और १९२२ की ८ फरवरी को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी की प्रवन्ध-समिति के सारे सदस्य एक सभा में वोले। अन्त में पण्डित दीनानाथ को रिहा कर दिया गया और कोमागाटामारू (१९१४) वाले वावा गुरुदत्तसिंह को भी छोड़ दिया गया।

अकाली काली पगड़ी पहनते थे। १९२२ के मार्च मास के दूसरे सप्ताह से, पहले से ही निश्चित किये गये कार्यक्रम के अनुसार, पंजाव के १३ चुने हुए जिलों में और पटियाला और कपूरथला की रियासतों में अकाली सिक्खों को एक-साथ गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया गया। १५ दिन के भीतर-भीतर १७०० काली पगड़ीवाले सिक्ख पकड़ लिये गये। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी और पंजाव-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सभापति सरदार खड़गसिंह को ४ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। मार्च १९२२ के आरम्भ में सरकार ने कहा—"कृपाण तलवारें हैं जिनके वनाने के लिये लाइसेन्स की जरूरत है।" लोगों को निर्देश किया गया कि सरकार-द्वारा वताये गये ढंग से कृपाण पहनी जायँ। फौजी सिक्खों का कृपाण धारण करना ही जुर्म माना गया। कुछ को गिरफ्तार करके ४ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की कड़ी सजा दी गई। कोमागाटामारूवाले वावा गुरुदत्तसिंह को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२२ में उन्हें ५ वर्ष का निर्वासन-दण्ड मिला। रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन में प्रसिद्धि पाये हुए मास्टर मोतासिंह को ८ साल की सजा मिली।

चारों ओर क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट का दौर-दौरा था और जमानत-सम्वन्धी धारायें उसकी सहायक थीं। एक नेता ने लिखा—"सव कुछ पुलिस के हाथ में था, और पुलिस ने भी उससे खूब आनन्द उठाया।" पण्डित मदनमोहन मालवीय पंजाव गये और राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में कमिटी नियुक्त कराई, जिसके जिम्मे सरकारी ज्यादतियों, गैर-कानूनी कार्रवाइयों और निर्दयता के सम्वन्ध में जांच करना था। १९२२ की १४ मई को पंजाव-सरकार ने एक विज्ञप्ति निकालकर धार्मिक-

सुधारकों को चेतावनी दी कि वे उन लोगों के "जिनका सुधार से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, बदअमनी फैलानेवाले और गैर-कानूनी कामों से" अलग रहें। १५ जून १६२२ तक १,६०० से २,००० तक सिक्ख गिरफ्तार किये जा चुके थे।

गुरु-का-बाग-काण्ड

इसी अवसर पर गुरु-का-बाग-काण्ड हुआ जिसका जिक्र १६२२ की चर्चा में हो चुका है। इतना ही कहना काफी है कि सिक्खों ने गांधीजी का यह कहना चरितार्थ कर दिखाया कि गोली खाने के बजाय लाठी की मार सहना कठिन है, और जो उस मार को सहते हैं वे आदर के पात्र हैं। इस काण्ड के सिलसिले में जो ज्यादतियां की गईं उनकी जांच पंजाब-सरकार के एक युरोपियन सदस्य ने की। एण्ड्रूज साहब जैसे व्यक्तियों ने इन ज्यादतियों के गम्भीर स्वरूप की पुष्टि की। उन्होंने कहा, "अबतक मैंने जितने हृदयविदारक और करुणाजनक दृश्य देखे हैं, यह उनमें सबसे बढ़कर है। अहिंसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे हैं।" जैसा कि पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा है, 'एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक कांटेदार लोहे के तारों को भेदकर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये, उन्हें बुरी तरह पीटा गया। जब मेरी मोटरकार की गुरुद्वारे के द्वार पर तलाशी ले ली गई, तब कहीं उस घेरे के एक छोटे-से प्रवेश-द्वार में जाने की इजाजत मिली।"

एक स्त्री घायल कर दी गई, क्योंकि उसने कुछ पीड़ितों की सुश्रूषा की थी। एक के शरीर पर घोड़े की टाप के निशान थे। दो आदमी मारे गये थे और सरकार ने कथित अपराधियों पर मुकदमा चलाया तो वे बरी कर दिये गये। कुछ दर्शकों को परेशान किया गया। अखबारों में पुलिस के विरुद्ध चोरी, डाकाजनी और लूट-मार के अभियोग लगाये गये। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० मैकफरसन ने लाठी के अभ्यास पर एक पुस्तक लिखी। उन्होंने अभियोग की सत्यता की इस प्रकार तसदीक की :—

"बहुत सम्भव है, सिर आदि फूटने की किस्म की चोटें आ गई हों। जत्थों ने पुलिस का मुकाबला कभी नहीं किया और वे बराबर अहिंसात्मक आचरण करते रहे। सम्भव है, कुछ घायल बेहोश भी हो गये हों। चोटों के ६५३ केस नजर से गुजरे जिनमें से २६६ ऊपर के भाग में थे, ३०० शरीर के आगे के भाग में, ७६ सिर पर, ६० फोतों पर, १६ गुदा-द्वार पर, ७ दांतों पर, १५८ रगड़ के घाव, ८ बन्द चोटों के, २ छिल जाने के, ४० पेशाब-सम्बन्धी शिकायतें, ६ सिर फटने के, और २ हड्डियों के जोड़ टूटने के थे।"

इस सिलसिले में २१० गिरफ्तारियां हुईं। एक ही आनरेरी मजिस्ट्रेट ने ४

इजलासों में १,२७,०००) के जुर्माने किये। स्वामी श्रद्धानन्द को १८ महीने की सजा मिली। २२ अक्तूबर को एक जत्था अमृतसर से गुरु-का-बाग को रवाना हुआ। इस जत्थे में १०१ फौजी पेन्शनयाफ्ता लोग थे, जिनमें से ५५ नान-कमिशन्ड अफसर थे और बाकी सिपाही थे। ये लोग मारू बाजा बजाते रवाना हुए। इनके साथ ५०,००० आदमी दर्शक-रूप में थे। पंजासाहब के स्टेशन से होकर एक रेलगाड़ी गुजरनेवाली थी, जिसमें फौजी कैदी थे। स्टेशन पर कुछ लोग उनके लिए भोजन की सामग्री लिये बैठे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि गाड़ी स्टेशन पर न रुकेगी तो वे पटरियों पर लेट गये। रेलगाड़ी तब भी न रोकी गई। फलतः २ आदमी मरे और ११ घायल हुए। कुछ दिनों बाद पीटना बन्द कर दिया गया और गिरफ्तारियां आरम्भ हुईं। जत्थों के मुखियों को कड़ी सजायें मिलीं। पर अभी इससे भी बुरी घटना आने को थी। जनता के दबाव और ८ मार्च १९२३ के कौंसिल के प्रस्ताव के उत्तर में अकालियों को थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ा जाने लगा। १७० अकालियों को रावलपिण्डी में छोड़ा गया; पर उन्हें बुरी तरह मारा-पीटा गया। कसूर यह बताया गया कि वे रेलवे-स्टेशन से बताये रास्ते से होकर नहीं गये थे। फौजी सिपाही, पुलिस और घुड़सवार—सबने एकसाथ मिलकर उन्हें तितर-बितर किया। १२८ लोगों को संगीन चोटें आईं। ३ मई से रावलपिण्डी ने पूर्ण हड़ताल मनानी आरम्भ की। जब पंजाब-कौंसिल में इस मामले की जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का सवाल उठाया गया तो सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने बड़ी शान्ति से सलाह दी कि पुरानी बातों को भुला देना ही ठीक है। हंटर-कमिटी की भांति पुराने जख्मों को दुबारा खोलने का नतीजा ठीक न होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की दुःखदायी घटनाओं की स्मृति को जितनी जल्दी भुला दिया जाय, अच्छा है। परन्तु अकालियों के दुर्दिन अभी पूरे न हुए थे। यद्यपि अब हमें १९२४ की घटनाओं का कुछ जिक्र करना पड़ेगा, फिर भी अकाली-आन्दोलन का वर्णन यहीं एक सिलसिले में कर देना ठीक है। १९२३ के मध्य में महाराजा नाभा ने गद्दी 'त्याग दी', पर शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी ने इसे महाराजा का गद्दी से उतारा जाना समझा और उन्हें दुबारा गद्दी पर बिठाने के लिए नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर और दूसरी जगहों पर सभायें आदि करके एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। जो भाषण दिये गये उन्हें राजद्रोहात्मक समझा गया और वक्ताओं को अखण्ड-पाठ पढ़ते-पढ़ते गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर अखण्ड-पाठ के ऊपर झगड़ा शुरू हो गया और कुछ समय तक २५—२५ सिक्खों के जत्थे रोज जैतो भेजे जाने लगे।

वाद को फरवरी में ५०० आदमियों का शहीदी जत्था भेजा गया। डा० किचलू और आचार्य गिडवानी इस जत्थे के साथ दर्शक की हैसियत से गये। जैतो के निकट इस जत्थे पर गोली चलाई गई और कुछ आदमी मरे। किचलू और गिडवानी दोनों को नाभा के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर लिया, क्योंकि वे घायलों की सुश्रूषा कर रहे थे। कुछ दिनों वाद किचलू को तो छोड़ दिया गया, पर गिडवानी उस वर्ष के अन्त तक नाभा जेल ही में रहे। शहीदी जत्थे वरावर जाते रहे और गिरफ्तारियां भी होती रहीं। इस प्रकार अकाली हजारों की संख्या में जेल में पहुँच गये। उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसकी खराव रिपोर्टें आईं। अकाली-सहायक व्यूरो में आचार्य गिडवानी का स्थान श्री पणिक्कर ने लिया। कांग्रेस की कार्य-समिति ने जेल में अकालियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार की जांच के लिए जांच-कमिटी भेजी और साथ ही अकाली-परिवारों को काफी आर्थिक सहायता भी दी। वाद को जव गुरुद्वारों के प्रवन्ध के सम्वन्ध में कानून वना दिया गया तो यह प्रश्न भी तय हो गया।

: ५ :

कांग्रेस चौराहे पर—१९२४

गांधीजी की बीमारी

जब १९२४ का आरम्भ हुआ तो देश के वातावरण में भारी उदासी फैली हुई थी। गांधीजी की अचानक और भयानक बीमारी ने और सारी बातों को ढक दिया था।

१२ जनवरी १९२४ को महात्मा गांधी के 'अपेंडिसाइटिस' रोग से भयंकर रूप में बीमार पड़ने और आधी रात में कर्नल मैडॉकद्वारा भारी आपरेशन किये जाने के समाचार से देशभर में चिन्ता उत्पन्न हो गई। पर गांधीजी के स्वस्थ होने लगने और अन्त को ५ फरवरी को उन्हें समय से पहले ही बिना किसी शर्त के छोड़ दिये जाने से वह चिन्ता दूर हो गई।

पर जेल से छूट कर भी उन्हें न शान्ति मिली न विश्रान्ति। कोकनडा-कांग्रेस में जो फूट पैदा हो गई थी वह दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। एक ओर अपरिवर्त्तनवादी आशा कर रहे थे कि गांधीजी अब छूट ही गये हैं, इससे कांग्रेस का इंजन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पड़ेगा। दूसरी ओर परिवर्त्तन-वादियों को चिन्ता थी कि दिल्ली और कोकनडा में प्राप्त हुई विजयों को पक्का करके अपने ऊपर जो कुछ धब्बा बाकी रह गया है उसे धो लिया जाय। देश के परस्पर-विरुद्ध दृष्टिकोणों और समस्याओं में सामंजस्य स्थापित करने की जी-तोड़ चेष्टा की गई। गांधीजी ने बम्बई के निकट जुहू नामक समुद्रतटवर्ती स्थान पर कुछ समय व्यतीत किया। यहां पर गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी में कुछ दिनों तक बात-चीत चलती रही, जिससे लोगों को आशा होती रही कि समझौता हो जायगा। १९२४ के मई मास में गांधीजी ने वक्तव्य प्रकाशित किया, साथ ही श्री दास और नेहरू ने भी एक सम्मिलित वक्तव्य दिया।

परन्तु इन ऐतिहासिक वक्तव्यों को देने से पहले यहां यह बताना ठीक होगा कि कौंसिलों में स्वराज्य-पार्टी ने क्या किया और कौंसिलों से भीतर विभिन्न शक्तियों को किस प्रकार अपने अधिकार में कर लिया।

स्वराज्य पार्टी ने क्या किया

स्वराज्य-पार्टी बनने के बाद देश की विभिन्न कौंसिलों के निर्वाचनों में भाग लिया गया। बड़ी कौंसिल में ४५ स्वराजी पहुंचे जिनमें खूब अनुशासन था और जो अपना कार्यक्रम पूरा करने का व्रत लिये हुए थे। वे राष्ट्रीय-दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करके कौंसिल में आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके। पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रंगाचारी ने शासन-व्यवस्था में तत्काल परिवर्त्तन करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह संशोधन पेश किया कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय।

सरकार को यों तो कई बार हार खानी पड़ी; परन्तु इन प्रस्तावों पर उसकी हार विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य है—कुछ राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव; १८१८ के रेग्युलेशन ३ को रद करने का प्रस्ताव; दक्षिण-अफ्रीका से भारत में आनेवाले कोयले पर कर लगाने का प्रस्ताव; और सिक्ख-आन्दोलन की अवस्था के सम्बन्ध में जांच करने के लिए एक कमिटी बैठाने का प्रस्ताव। सरकार की पराजय स्वराज्य-पार्टी की विजय थी। जिसका बल स्वतंत्र, राष्ट्रीय तथा कभी-कभी नरम-दल तक का सहयोग प्राप्त होने के कारण भी बढ़ गया था। हम यह इसलिए कहते हैं कि स्वराज्य-पार्टी ने अपने कार्यक्रम में रख छोड़ा था कि "हमारी मांग सारे राजनैतिक कैदियों की रिहाई, दमनकारी-कानूनों को रद करने और एक ऐसा राष्ट्रीय कन्वेंशन बुलाने की अन्तिम चेतावनी का रूप धारण करे जो भारत के लिए भावी शासन-व्यवस्था तैयार करे।"

स्वराज्य-पार्टी ने दूसरा काम यह किया कि 'सरकारी मांगों' की चार मदों को नामंजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी न हुआ था। यह तो मानो रसद बन्द करना हुआ पर पण्डित मोतीलाल ने कहा कि "मेरे इस प्रस्ताव का असहयोग की विध्वंस-कारिणी नीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह प्रस्ताव तो देशवासियों की शिकायतों की ओर ध्यान आकर्षित करने का बिलकुल वैध और वाजिब उपाय है।"

१९२४ की गर्मियों में जो कुछ हो रहा था उसका चित्र पाठकों के आगे पेश करने के लिए हम अब गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के वे वक्तव्य देते हैं जो शुरू के वार्तालाप के बाद प्रकाशित किये गये।

गांधीजी का वक्तव्य

"अपने स्वराजी मित्रों के साथ कांग्रेसवादियों के द्वारा कौंसिल-प्रवेश के जटिल प्रश्न पर बातचीत करने के बाद मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मैं उनसे सहमत

न हो सका। × × × देश के कुछ परम-आदरणीय और वहुमूल्य नेताओं के विरोध का विचार करना भी मेरे लिए सुखदायी नहीं हो सकता। × × × परन्तु चेप्टा करने और इच्छा रहने पर भी मैं उनके तर्क को न समझ सका। मेरी अव भी यही सम्मति है कि असहयोग के सम्वन्ध में जैसी मेरी धारणा है उसके अनुसार कौंसिल-प्रवेश असंगत है। हमारा मतभेद 'असहयोग' शव्द की भिन्न-भिन्न परिभाषा तक ही सीमित हो सो वात भी नहीं है; यह मतभेद तो चित्तवृत्ति से संवंध रखता है, जिसके कारण महत्त्वपूर्ण समस्याओं के सुलझाने में मतभेद अनिवार्य हो जाता है। उस मनोवृत्ति के पैमाने से ही वहिष्कार-त्रयी की सफलता या विफलता को जांचना होगा, फल-सिद्धि के पैमाने से नहीं। मैं इसी दृष्टिकोण से कह रहा हूँ कि देश के लिए कौंसिलों से वाहर रहना उनके भीतर रहने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक होगा। परन्तु मैं अपने स्वराजी मित्रों को अपने दृष्टिकोण पर न ला सका। तथापि मैं यह समझता हूँ कि जवतक उनका विचार दूसरा रहेगा, उनका स्थान निस्संदेह कौंसिल में है। हम सवके लिए यही अच्छा भी है।············

"दिल्ली और कोकनडा-कांग्रेस ने उन कांग्रेसवादियों को इच्छा होने पर कौंसिलों और असेम्वली में जाने की इजाजत दे दी है जिनकी आत्मा उन्हें न रोकती हो। इसलिए मेरी राय में स्वराजी कौंसिलों में जाने का और अपरिवर्त्तन-वादियों से तटस्थ रहने की आशा रखने का अधिकार रखते हैं। उनको वहां जाकर अड़ंगा-नीति धारण करने का भी हक है; क्योंकि उनकी नीति ही यह थी और कांग्रेस ने उनके कौंसिल-प्रवेश के सम्वन्ध में किसी प्रकार की शर्तें नहीं लगाई थी। यदि स्वराजियों को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा, तो मेरे जैसे संशयशील व्यक्तियों को अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी। और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियों का मोह दूर हो गया, तो मैं जानता हूँ कि वे देशभक्त हैं और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेंगे। इसलिए मैं उनके मार्ग में वाधा डालने के काम में शरीक न होऊँगा और न स्वराजियों के कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार करने में ही भाग लूंगा। हां, मैं ऐसे कार्य में स्वयं कोई ऐसी सहायता नहीं दे सकता जिसमें मेरा विश्वास नहीं है·······।

"कौंसिलों में क्या ढंग अपनाना चाहिए, इसके सम्वन्ध में मेरा कहना यही है कि मैं कौंसिलों में तभी घुसूंगा जव मुझे मालूम हो जाय कि मैं उसके उपयोग से लाभ उठा सकूंगा। अतएव यदि मैं कौंसिलों में जाऊँगा तो मैं सोलह आने अड़ंगा-नीति का अवलम्वन न करके कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को सफल वनाने की चेष्टा करूँगा।

मैं उस हालत में प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों से चाहूँगा कि :—

(१) वे सारे कपड़े हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के खरीदें।

(२) विदेशी कपड़ों पर बहुत भारी चुंगी लगा दें।

(३) शराब आदि की आय को ही रद कर दें, और सेना-विभाग के व्यय में, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दें।

"यदि सरकार कौंसिलों में पास होने के बाद भी इन प्रस्तावों पर अमल करने से इन्कार कर दे, तो मैं सरकार से कौंसिलों को भंग करने के लिए कहूँगा और उन्हीं खास-खास बातों पर फिर निर्वाचकों के वोट हासिल करूँगा। यदि सरकार कौंसिल भंग करने से इन्कार कर दे तो मैं अपनी जगह से इस्तीफा दे दूंगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करूँगा। जब यह अवस्था आ पहुँचे तो स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्व में पायँगे। सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में मेरी कसौटी वही पुरानी है।"

स्वराजी-वक्तव्य

देशबन्धु चित्तरंजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा :—

"हमें अफसोस है कि हम गांधीजी को कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियों की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नहीं आता कि कौंसिल-प्रवेश नागपुर के कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यों नहीं है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक अवस्था से उसका कोई विशेष सम्बन्ध न हो, जबकि हमारे राष्ट्रीय-जीवन की गति-विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहनेवाले रंग-ढंग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारी राय में इस सिद्धान्त में उन सभी कामों में, जिनके द्वारा राष्ट्रीय-जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालनेवाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है।........

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अड़ंगा' शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं। मातहत और सीमित अधिकारोंवाली कौंसिलों में उस अर्थ में अड़ंगा डालना

असम्भव है, क्योंकि सुधार-कानून के अंतर्गत असेम्वली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़ंगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही-द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकावला करने का अधिक है। 'अड़ंगा' शव्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलव इसी मुकावले से है। हमने स्वराज्य-पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में असहयोग की परिभाषा करते हुए इस वात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।

"अव हम इसी सिद्धान्त और नीति को सामने रखकर अपना भावी कार्य-क्रम, जिसे हम कौंसिलों में और कौंसिलों से वाहर पूरा करेंगे, वयान करते हैं।

"कौंसिलों के भीतर हमें निम्नलिखित काम जारी रखना चाहिए :—

१—वजट रद करना—जवतक हमारे अधिकारों की मान्यता के रूप में वर्तमान सरकार के विधान में परिवर्त्तन न कर दिया जाय, या जवतक पार्लमेण्ट और इस देश की जनता के वीच में समझौता न हो जाय, तवतक वजट रद करते रहना।

२—कानून सम्वन्धी प्रस्तावों को रद करना—कानून वनाने के सम्वन्ध में सारे प्रस्तावों को, जिनके द्वारा नौकरशाही अपनी जड़ मजवूत करना चाहती है, रद करना।

३—रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव, योजनायें और विल हमारे राष्ट्रीय-जीवन की वृद्धि करने के लिए और फलतः नौकरशाही की जड़ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों उन सवको पेश करना।

४—आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलम्वन करना जो पूर्वोक्त सिद्धान्तों के ऊपर तय की गई हो और जिसका उद्देश भारत से वाहर जाते हुए धन-प्रवाह को रोकना हो। इसके लिए धन-शोषण करनेवाले सारे कामों में रुकावट करना आवश्यक है।

"इस नीति को फलदायिनी वनाने के लिए हमें प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलों पर कव्जा कर लेना चाहिए जो चुनाव के लिए खुली हों। हमें ऐसी सारी प्राप्य जगहों पर तो कव्जा करना ही चाहिए, साथ ही हमें हरेक कमिटी में भी जहांतक सम्भव हो घुस जाना चाहिए। हम अपनी पार्टी के सदस्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और उन्हें निमंत्रण देते हैं कि इस सम्वन्ध में निश्चय शीघ्र-से-शीघ्र कर डालें।

"कौंसिलों के वाहर हमारी नीति इस प्रकार होनी चाहिए—पहली वात

तो यह है कि हमें महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से समर्थन करना चाहिए और कांग्रेस की संस्थाओं के द्वारा उसको पूरा करना चाहिए। हमारी यह निश्चित राय है कि कौंसिलों के बाहर रचनात्मक कार्य की सहायता के बिना कौंसिलों के भीतर हमारे काम का बल बहुत कम हो जायगा। क्योंकि हमें जिस बल की जरूरत है वह कौंसिलों के भीतर नहीं, बाहर तलाश करना होगा, और उस बल के बिना हमारी कौंसिल-नीति की सफलता असम्भव है। रचनात्मक कार्य के मामले में कौंसिलों के भीतर और बाहर के कार्य का एक-दूसरे की सहायता करना आवश्यक है जिससे उस बल को, जिसपर हम निर्भर करते हैं, मजबूती आये। इस सम्बन्ध में हम महात्मा गांधी की सत्याग्रह-सम्बन्धी सलाह को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करते हैं। हम उन्हें आश्वासन देते हैं कि ज्यों ही हमें मालूम हो जायगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थ-पूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौंसिलों को छोड़कर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में, यदि वह स्वयं ही उस समय तक तैयार न कर दिया गया हो तो, उनकी सहायता करेंगे। तब हम बिना किसी हीला-हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस की संस्थाओं के द्वारा उनके झण्डे के नीचे काम करेंगे जिससे सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस प्रोग्राम पूरा कर सकें।......"

अहमदाबाद में महासमिति

अहमदाबाद में २७, २८ और २९ जून को जो निश्चय किया गया, जुहू के वार्तालाप ने उसके लिए पहले से ही मार्ग तैयार कर दिया था। निर्वाचित कांग्रेस-संस्थाओं के सारे सदस्यों के लिए हर महीने २,००० गज अच्छी तरह ऐंठा और कता हुआ सूत भेजना लाजिमी कर दिया गया। न भेजने पर उस सदस्य का स्थान खाली समझने को कहा गया। जिस समय इस विषय पर चर्चा हो रही थी, कुछ सदस्य इस जुर्मानेवाली बात के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बैठक से उठकर चले गये। यह प्रस्ताव पास हो गया। ६७ अनुकूल और ३७ प्रतिकूल रहे। पर यह सोचकर कि जो लोग उठकर चले गये थे यदि वे खिलाफ राय देते तो सम्भव था कि यह गिर जाता, गांधीजी ने जुर्मानेवाली बात हटा ली और महासमिति ने नागा करनेवालों के खिलाफ जाब्ता कार्रवाई करने की सिफारिश की।

विदेशी कपड़े, अदालतों, स्कूल-कालेजों, उपाधियों और कौंसिलों के पांचों प्रकार के (कोकनडा के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए) बहिष्कार पर जोर दिया

गया और कांग्रेस के मत-दाताओं को खास तौर से हिदायत कर दी गई कि उन लोगों को कांग्रेस की मातहत-संस्थाओं में न चुना जाय जो पांचों प्रकार के वहिष्कार के सिद्धान्त में विश्वास न रखते हों और स्वयं भी उसपर अमल न करते हों। सरकार की अफीम-सम्वन्धी नीति की निन्दा की गई और एण्डरूज सा० से अनुरोध किया गया कि वह आसामवालों के अफीम-व्यसन के सम्वन्व में जांच करें। सिक्खों ने जैतो के अनावश्यक और निर्दयता-पूर्ण गोली-काण्ड के अवसर पर जो शान्तिपूर्ण साहस दिखाया था उसके लिए उन्हें वधाई दी गई।

इस वैठक में जिस प्रस्ताव ने काफी जोश पैदा किया वह गोपीनाथ साहा-द्वारा आर्नेस्ट डे की हत्या के धिक्कार और मृत व्यक्ति के परिवार के प्रति समवेदना-प्रकाशन के सम्वन्व में था। प्रस्ताव में गोपीनाथ साहा के देश-प्रेम की वात को, जिससे प्रेरित होकर उसने हत्या की, हृदय के साथ स्वीकार किया गया, पर साथ ही उसे पथ-भ्रष्ट वताया गया। महासमिति ने इस और इसी प्रकार की सारी राजनैतिक हत्याओं को जोरदार शव्दों में धिक्कारा और अपनी स्पष्ट राय प्रकट की कि इस प्रकार के कृत्य कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध हैं, स्वराज्य के मार्ग में रुकावट डालते हैं और सत्याग्रह की तैयारी में वाधक वनते हैं। इस प्रस्ताव पर खूब वाग्युद्ध हुआ। यह वात छिपी नहीं थी कि यह प्रस्ताव देशवन्धु को पसन्द न आया। इसलिए नहीं कि वह अहिंसा के कायल थे, वल्कि इसलिए कि वह प्रस्ताव के भिन्न-भिन्न अंशों के जोर को वहुत वदल देना चाहते थे। गांधीजी को यह देखकर वड़ा ही सन्ताप हुआ कि उनके कुछ निकटस्थ और अभिन्न-हृदय अनुयायियों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध राय दी। इसी प्रसंग को लेकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। ऐसे अवसर उनके जीवन में अधिक नहीं आये हैं। वाताकाश में तीव्रता इसलिए और भी उत्पन्न हो गई थी कि दीनाजपुर (वंगाल) की प्रान्तीय-परिषद् में एक और भी अधिक जोरदार प्रस्ताव पास हो चुका था, जिसमें गोपीनाथ साहा के स्वार्थ-त्याग और वलिदान की सराहना की गई थी और उसकी देश-भक्ति के प्रति सम्मान प्रकट किया गया था।

स्वराजी इस वैठक में अपने इच्छानुसार सव-कुछ प्राप्त न कर सके और उन्हें अपनी कठोर परिश्रम से प्राप्त की सफलता को मजवूत वनाने के लिए नवम्वर तक रुकना पड़ा। जहांतक अपरिवर्त्तनवादियों का सम्वन्व था, सूतवाली शर्त को उन्होंने आश्चर्यजनक रीति से पूरा किया। अगस्त में २७८० सदस्य थे, सितम्वर में ६२०१ हुए, अक्तूवर में ७७४१ और नवम्वर में ७९०५ हो गये।

साम्प्रदायिक दंगे और गांधीजी का उपवास

परन्तु उस वर्ष की सबसे बुरी बात थी जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगों का होना, खासकर दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में। सबसे अधिक भयंकर दंगा कोहाट में हुआ। कोहाट के दंगे ने तो भारतवर्ष की कमर ही तोड़ दी। दंगों के कारणों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में गांधीजी और मौ० शौकतअली की एक कमिटी नियुक्त की गई। दोनों ने रिपोर्ट पेश की, पर दुर्भाग्य से दोनों का इस विषय में मत-भेद था कि दंगों की जिम्मेदारी किसपर है। १९२४ की ९ और १० सितम्बर की घटनाओं को बीते आज दस वर्ष से भी अधिक हुए, पर दंगे के फौरन बाद ही कोहाट के भातृस्कूल के हेडमास्टर लाला नन्दलाल ने जो रिपोर्ट लिखी और जिसे कोहाट-दंगा-पीड़ित-सहायक-समिति ने प्रकाशित किया, उसे पढ़ने पर तो अब भी शरीर में रोमांच हो आता है। हम इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकते कि ९ और १० सितम्बर के गोलीकाण्ड और कत्ले-आम के बाद एक स्पेशल ट्रेन ४००० हिन्दुओं को सवार कराकर ले गई। इनमें से २६०० दो महीने बाद तक रावलपिण्डी की जनता की और १४०० अन्य स्थानों की जनता की दान-शीलता पर जीते रहे।

ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं जो गांधीजी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्ति का जिम्मेदार उन्होंने अपने-आपको ठहराया और उपवास के द्वारा प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। अभी अपेण्डिसाइटिस के भयंकर और लगभग सांघातिक प्रकोप से उठे उन्हें अधिक दिन नहीं हुए थे। अतः यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। गांधीजी ने व्रत मौलाना मुहम्मदअली के मकान पर आरम्भ किया, पर बाद को उन्हें शहर के बाहर एक मकान में ले जाया गया। इस अवसर का लाभ उठाकर सारी जातियों के नेताओं को एकत्र किया गया। कलकत्ते के बड़े पादरी भी शरीक हुए। यह एकता-परिषद् २६ सितम्बर से २ अक्तूबर सन् १९२४ तक होती रही। परिषद् के सदस्यों ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का पालन कराने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने में कोई कसर न रक्खेंगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत बनाई गई, जिसके संयोजक और अध्यक्ष गांधीजी हुए और हकीम अजमलखां, लाला लाजपतराय, के० एफ० नरीमान, डॉ० एस० के० दत्त और लायलपुर के मास्टर सुन्दरसिंह सदस्य हुए। परिषद् ने धार्मिक सिद्धान्तों को मानने, धार्मिक विचारों को प्रकट करने और

धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने, धर्मस्थानों की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे वाजा वजाने के सम्वन्व में सवका एक-समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओं का भी निदर्शन किया। अखवारों को चेतावनी दी कि वे साम्प्रदायिक मामलों में समझवूझ कर लिखा करें और जनता से अनुरोध किया गया कि गांधीजी के उपवास के अन्तिम सप्ताह में देशभर में प्रार्थना की जाय। ८ अक्तूवर जन-सभाओं द्वारा ईश्वर का धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।

अभी गांधीजी ने अपना उपवास समाप्त ही किया था कि उन्हें वम्वई में २१ और २२ नवम्वर को सर्वदल-सम्मेलन में और उसके वाद ही और उसीके सिलसिले में २३, २४ को महासमिति की वैठक में शरीक होना पड़ा। सर्वदल-सम्मेलन करने का उद्देश यह था कि वंगाल में सरकार का दमन जोर पकड़ता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य-पार्टी और तारकेश्वर में सत्याग्रह करनेवाले कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध आरम्भ की गई थी। लोकमत को इसके विरुद्ध तैयार करना था। परिषद् ने वंगाल-सरकार-द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-आर्डिनेन्स के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया और उसके साथ ही १८१८ के रेग्युलेशन ३ को रद करने पर जोर दिया। सर्व-दल-सम्मेलन ने वंगाल की अशान्ति का कारण स्वराज्य न मिलना ठहराया और एक कमिटी नियुक्त की, जिसके सुपुर्द स्वराज्य की योजना और साम्प्रदायिक समझौता तैयार करने का काम किया गया। इस कमिटी में देश के सारे राजनैतिक दलों के प्रमुख व्यक्तियों को रक्खा गया। ३१ मार्च १९२५ तक रिपोर्ट मांगी गई। परिषद् के द्वारा कुछ विशेष काम होने की आशा न थी। पर इससे सम्भवतः देशवन्धु चित्तरंजन दास की गिरफ्तारी टल गई। उस वर्ष की मुख्य घटना थी गांधीजी का देशवन्धु और नेहरूजी के आगे वहिष्कार के मामले में झुक जाना। इन तीनों प्रमुख व्यक्तियों ने एक सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया और उसे महासमिति ने मान लिया। इस वक्तव्य का सारांश यह था कि सारी पार्टियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए असहयोग को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्थगित किया जाता है। हां, विदेशी कपड़ा न पहनने के सम्वन्ध में वही पुरानी नीति रहेगी। यह भी कहा गया कि अन्य दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में रचनात्मक कार्य करें, और स्वराज्य-पार्टी कौंसिलों में काम करे। इसके एवज में गांधीजी ने यह तय कराया कि कांग्रेस-सदस्यों के द्वारा ।) साल के वजाय २००० गज हाथ का कता सूत प्रति मास दिया जाय।

वेलगांव-कांग्रेस

असहयोग के इतिहास में वेलगांव-कांग्रेस खास महत्त्व रखती है। गांधीवाद के विरुद्ध जो विद्रोह उठा था वह करीव-करीव अन्तिम सीमा तक पहुँच चुका था। कांग्रेस अव ऐसे स्थान पर खड़ी थी जहां से दो मार्ग दो ओर को जाते थे। कांग्रेस-वादियों को अव दो परस्पर-विरुद्ध दलों में वंट जाना चाहिए या समझौता करके अपने भेद-भाव को मिटा लेना चाहिए, और यदि समझौते की वात ठीक हो तो इस जटिल काम को गांधीजी के सिवा और कौन हाथ में ले? केवल गांधीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का कार्यक्रम वापस लेकर भी अपरिवर्त्तन-वादियों को शान्त कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेश का सामना करके भी स्वराजियों को सन्तुष्ट रख सकते थे। १९२४ की कांग्रेस के सभापति गांधीजी हुए। उन्होंने अपना अद्भुत भाषण पेश किया। पर कांग्रेस में उसका संक्षेप ही सुनाया गया। इस भाषण में उन्होंने १९२० से उस समय तक की घटनाओं पर प्रकाश डाला और वताया कि किस प्रकार कांग्रेस मुख्यतः एक ऐसी संस्था रही है जिसके द्वारा भीतर से शक्ति का विकास होता रहा है। सव तरह के वहिष्कारों को भिन्न-भिन्न दलों ने अपनाया। वैसे कोई भी वहिष्कार पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन संस्थाओं का वहिष्कार किया गया उनका रोव वहुत-कुछ कम हो गया। सवसे वड़ा वहिष्कार हिंसा का वहिष्कार था। पर अहिंसा ने असहायावस्था की निष्क्रियता को छोड़कर अभी साधन-सम्पन्न और परिष्कृत-रूप धारण नहीं किया था। जिन्होंने असहयोग में साथ नहीं दिया उनके विरुद्ध एक प्रकार की छिपी हुई हिंसा से काम लिया गया। पर अहिंसा जैसी कुछ भी थी, उसने हिंसा को दवाये रक्खा।....पर 'ठहरो' कहने का भी समय आया और जिन्होंने असहयोग किया था उनमें से वहुत से लोग पश्चात्ताप भी करने लगे। फलतः सव प्रकार के वहिष्कार उठा लिये गये और केवल एक वहिष्कार—विदेशी कपड़ों का—रह गया। इस प्रकार वहिष्कार करने का जनता का न केवल अधिकार ही था, वल्कि कर्त्तव्य भी था। उनके और स्वराजियों के मत-भेदों में समझौता हो गया था। स्वराजी सूत कात कर देने को राजी हो गये और गांधीजी ने उनके कौंसिलों में काम करने पर आपत्ति नहीं की। उन्होंने कोहाट के दंगे पर संताप प्रकट किया, अकालियों के साथ सहानुभूति प्रकट की, अस्पृश्यता के सम्वन्ध में अपने विचार प्रकट किये और स्वराज्य-योजना का जिक्र किया। यह तो लक्ष्य है, पर हम इसे नहीं जानते। चरखा, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण ये साधन हैं। "मेरे लिए तो साधनों का जानना ही काफी है। मेरे जीवन-सिद्धान्त में साधन और साध्य पर्य्यायवाची

शब्द हैं।" इस प्रकार भूमिका बांधने के बाद गांधीजी ने स्वराज्य की योजना के सम्बन्ध में कुछ बातें बताईं।

मताधिकार के लिए शारीरिक परिश्रम की शर्त, सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, मादक द्रव्य और उससे आनेवाली चुंगी का अन्त, सिविल और सैनिक नौकरियों के वेतनों में कमी, प्रान्तों का भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, इस देश में विदेशियों के इजारों (मोनोपली) की नये सिरे से जांच-पड़ताल, भारतीय नरेशों को उनकी पद-मर्यादा की गारंण्टी और केन्द्रीय सरकार-द्वारा खलल न पहुँचने का आश्वासन, तानाशाही का अन्त, नौकरियों में जाति-भेद का अन्त, भिन्न-भिन्न संस्थाओं को धार्मिक स्वतंत्रता, देशी-भाषाओं-द्वारा सरकारी काम-काज, और हिन्दी को राष्ट्रीय-भाषा मानना।

पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न की ओर भी गांधीजी का ध्यान आकर्षित हुआ। अहमदाबाद के बाद से उनके विचार सौम्य हो गये थे; क्योंकि उस समय वह आशा से भरे हुए थे, किन्तु अब जहांतक सरकार के रंग-ढंग और स्थिति का सम्बन्ध था, गांधीजी की आशाओं पर पानी पड़ गया था। उन्होंने कहा : "मैं साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य पाने की चेष्टा करूँगा, पर यदि स्वयं ब्रिटेन के दोष से ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मैं ऐसा करने में संकोच नहीं करूँगा। इसके बाद उन्होंने स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्यक्रम का जिक्र किया और बंगाल की अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के बाद अहिंसा में अपनी आस्था प्रकट करके भाषण समाप्त किया। बंगाल में लॉर्ड रीडिंग ने १६२४ का आर्डिनेन्स नं० १ जारी कर दिया था, जिसके द्वारा उन लोगों को जिनपर स्थानिक सरकार-द्वारा क्रांतिकारी-दल से सम्बन्ध रखने का सन्देह किया जाता हो गिरफ्तार किया जा सकता था और स्पेशल कमिश्नरों की अदालतों में उनके मामले का सरसरी में फैसला किया जा सकता था। गांधीजी ने इस बात को माना कि यह सब कुछ स्वराजियों के विरुद्ध किया जा रहा है।

कांग्रेस ने बी अम्मा, सर ए० चौधरी, सर आशुतोष मुकर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु, डॉ० सुब्रह्मण्य ऐयर, ए० जी० एम० भुरग्री और अन्य कई कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं और नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। नवम्बर में महासमिति ने गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के जिस समझौते को पास किया था उसे सही किया गया। कांग्रेस-मताधिकार में भी परिवर्त्तन किया गया। हिन्दुओं के कोहाट-त्याग पर खेद प्रकट किया गया। कोहाट के मुसलमानों को सलाह दी गई कि वे हिन्दुओं को उनके

जान-माल के सम्बन्ध में आश्वासन दें, साथ ही हिन्दू मुहाजरीन को सलाह दी गई कि जबतक कोहाट के मुसलमान उन्हें सम्मानपूर्वक न बुलायें तबतक वे वापस न जायँ। इसी तरह गुलबर्गा के पीड़ितों के प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। अस्पृश्यता और वायकोम-सत्याग्रह के सम्बन्ध में उचित कार्रवाई की गई। वैतनिक राष्ट्र-सेवा को पूर्ण सम्मानप्रद बताया गया। अकालीदल मदिरा और अफीम के सम्बन्ध में भी विचार हुआ और कांग्रेस के विधान में कुछ जरूरी तब्दीलियां की गईं।

प्रवासी-भारतवासियों के लिए श्री वझे, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और श्रीमती सरोजिनी नायडू की सेवाओं की सराहना की गई। सरकार भी चुपचाप नहीं बैठी थी। वह भी केनिया के मामले में काफी जोर की लड़ाई लड़ रही थी। भारत-सरकार ने "भारत-मंत्री को चेतावनी दी कि यदि निश्चय केनिया-प्रवासियों के विरुद्ध गया तो भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य से पृथक् होने और उपनिवेशों के विरुद्ध बदले की कार्रवाई करने के सम्बन्ध में जोर का आन्दोलन आरम्भ हो जायगा।" अगस्त १९२४ में उपनिवेश-मंत्री मि० थामस ने निश्चय किया कि दूसरे देशों से आकर बसने पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में जो आर्डिनेन्स बनाया गया था वह अमल में न लाया जाना चाहिए, परन्तु हाइलैण्ड्स और मताधिकार के सम्बन्ध में जो निश्चय है वही कायम रहेगा। यह भी निश्चय किया कि जो भारतवासी दक्षिण-अफ्रीका में जाकर बसना चाहें वे निचली भूमि पर जाकर बस सकते हैं और उसपर खेती कर सकते हैं। १९२४ के जून में सम्राट की सरकार ने एक ईस्ट अफ्रीकन कमिटी नियुक्त की, जिसके चेयरमैन लॉर्ड साउथबरो थे। इसके सामने भारतीय दृष्टिकोण रक्खा जा सकता था। इसी बीच दक्षिण-अफ्रीका की सरकार में परिवर्त्तन हो गया, इसलिए 'क्लास-एरिया-बिल' अपने-आप ही रद हो गया। साथ ही 'नेटाल बरोज आर्डिनेन्स' पास हो गया, जिसके अनुसार और अधिक भारतीय नागरिक या रईस न हो सकते थे।

: ६ :

हिस्सा या साझा ?—१९२५

स्वराजियों को सफलता

१९२५ की राजनीति मुख्यतः कौंसिलों में किये गये काम तक सीमित रही। अव स्वराजियों को अपरिवर्त्तन-वादियों की तरफ से परेशानी न रही। क्योंकि गांधीजी दोनों दलों को एक तराजू पर रखने को मौजूद थे ही। मध्यप्रदेश और वंगाल में द्वैधशासन का अन्त हो गया था। लॉर्ड लिटन के निमंत्रण पर देशवन्धु दास ने वंगाल में मंत्रिमण्डल वनाने से इन्कार कर दिया और न दूसरों को ही वनाने दिया। वह इसी प्रकार के विध्वंस की वात सोचते आ रहे थे। जव लॉर्ड रीडिंग का १९२४ का नं० १ आर्डिनेन्स समाप्त हुआ तो वंगाल-कौंसिल में एक विल पेश किया गया जिसे स्वराजियों ने और स्वराजियों के प्रभाव ने १९२५ की जनवरी में रद कर दिया। लॉर्ड लिटन ने उसे सही कर दिया और लन्दन सम्राट्-सरकार की मंजूरी के लिए भेजा। १७ फरवरी को वंगाल-कौंसिल ने प्रस्ताव पास करके वजट में मंत्रियों के वेतन की गुंजाइश रखने की सिफारिश की। स्वराजियों को हारना पड़ा। पर उन्होंने शीघ्र ही इस क्षति को पूरा कर लिया। २३ मार्च को वजट पर वहस के दौरान में मंत्रियों के वेतन ६९ रायों से रद कर दिये गये। पक्ष में ६३ रायें थीं। इधर वंगाल असहयोग के इस निश्चित मार्ग पर चल रहा था, उधर मध्यप्रान्त में इस वात की चर्चा की जा रही थी कि स्वराज्य-पार्टी को मंत्रित्व ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए, जिससे वह भीतर से विध्वंस कर सके? वड़ी कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी १९२४ और १९२५ में विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियों ने सिलेक्ट कमिटियों में भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का, और यदा-कदा सरकार का भी।

जव श्री सी० दौरास्वामी आयंगर ने वंगाल-आर्डिनेन्स को एक कानून के द्वारा रद करने का प्रस्ताव पेश किया तो उसके पक्ष में ५८ और विपक्ष में ४५ रायें आईं। १९२५ की ३ फरवरी को श्री विट्ठलभाई पटेल ने १८५० का शाही कैदियों का कानून, १८६७ का सीमान्त के अत्याचारों का कानून और १९२१ का राजद्रोही

सभाबन्दी कानून रद करने के लिए बिल पेश किया तो सीमान्तवाले कानून के सिवा बाकी हिस्सा पास हो गया।

श्रीयुत नियोगी ने अपना बिल पेश किया, जिसके द्वारा वह रेलवे-एक्ट का संशोधन करके किसी जाति-विशेष के लिए डब्बे रिजर्व करने की प्रथा को मिटा देना चाहते थे। यह बिल नामंजूर हुआ। डॉ० गौड़ ने बिल पेश किया कि लन्दन की प्रिवी कौंसिल में अपीलें न भेजी जाया करें, पर वह रद हो गया और स्वराजियों ने उसमें सरकार का साथ दिया। वेंकटपति राजू का यह प्रस्ताव कि देश में तत्काल सैनिक-विद्यालय कायम किया जाय, पास हो गया और सरकार को हार खानी पड़ी। २५ फरवरी १९२५ को रेलवे-बजट की बहस में स्वराजियों और स्वतंत्र-दलवालों ने सरकारी सदस्यों का मुकाबला करने के बजाय एक-दूसरे पर प्रहार किया और फलतः पण्डित मोतीलाल का बजट को रद करने का प्रस्ताव ६६ रायों से रद हो गया। पक्ष में केवल ४१ रायें आईं। इस प्रकार बजट और उसकी मदों पर उनके गुण-दोषों के अनुसार ही विचार किया गया। आरम्भ में लगातार और एकसा अड़ंगा डालने का जो संकल्प किया गया था, उससे कहीं काम न लिया गया। पण्डित मोतीलाल का कार्यकारिणी के सदस्यों का सफर-खर्च घटाने का प्रस्ताव ६५:४८ से पास हो गया। कोहाट का दंगा, सेना में भारतीयों का अभाव, मुडीमैन-कमिटी की रिपोर्ट, गोलमेज-परिषद्, दमन आदि सब लिये गये थे। जब असेम्बली में ऐसा बिल पेश किया गया जिसके अनुसार बंगाल-क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत मामलों की अपील हाईकोर्ट में की जा सकती थी, तो बड़ी विचित्र अवस्था हुई। बिल में तीन अन्य धारायें ऐसी थीं जिनके द्वारा अदालत में हाजिर होने के हुक्मनामे को रद किया और अभियुक्तों को बंगाल से बाहर नजरबन्द रक्खा जा सकता था। स्वतन्त्र-दलवाले और स्वराजी बिल के पहले विभाग का तो अनुमोदन करना चाहते थे और बाकी तीन विभागों को रद करना। सरकार की दृष्टि से बिल इस प्रकार बिलकुल अधूरा रह जाता। फलतः जब उसे राज्य-परिषद् ने पास कर दिया तो लॉर्ड रीडिंग ने उसपर सही कर दी।

इस समय तक देशबन्धु दास ने कांग्रेस में अपने लिए एक गौरवपूर्ण स्थान तैयार कर लिया था। इसके अतिरिक्त बेलगांव-कांग्रेस के अवसर पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि देशबन्धु दास ने अपनी सारी सम्पत्ति देश के अर्पण कर दी है, जिसका उपयोग परोपकार में किया जायगा। इस बात से देशबन्धु दास जनता की निगाह में बहुत ऊँचे उठ गये। इधर डॉ० बेसेण्ट के नेशनल कन्वेन्शन ने 'कामनवेल्थ आफ

इण्डिया बिल' का मसविदा भी प्रकाशित कर दिया था। एकता-परिषद् ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी वह अलग माथा-पच्ची कर रही थी। लाला लाजपतराय ने हिन्दू-महासभा की ओर से २५ फरवरी को एक प्रश्नावली प्रकाशित की। गत नवम्बर में बम्बई में जो सर्व-दल-सम्मेलन हुआ था उसके द्वारा नियुक्त की गई उप-समिति कोई अच्छी स्वराज्य-योजना तैयार न कर सकी और अन्त को मार्च में अनिश्चित समय के लिए स्थगित हो गई। १६२५ के मार्च और अप्रैल में गांधीजी ने दक्षिण-भारत और केरल में दौरा किया। वायकोम-सत्याग्रह जोरों पर था। गांधीजी की उपस्थिति ने समझौता होने में मदद दी। कुछ खास सड़कों पर से होकर अस्पृश्य न गुजर पाते थे। यह आन्दोलन इस कड़ाई को दूर करने के लिए आरम्भ किया गया था। त्रावणकोर-सरकार ने सत्याग्रहियों का प्रवेश रोकने के लिए कुछ बाड़े बना दिये थे और सिपाही तैनात कर दिये थे। त्रावणकोर-सरकार को यह बात सुझाई गई कि उसके इस रवैये से वह जनता में यह धारणा उत्पन्न कर देगी कि वह त्रावणकोर के हिन्दुओं की संकीर्णता का अपने शारीरिक-बल-द्वारा समर्थन कर रही है। जब सरकार ने बाड़े और सिपाही हटा लिये तो सत्याग्रहियों का शत्रु केवल लोकमत रह गया और सत्याग्रह का कारण उस समय के लिए हट गया।

दक्षिण से गांधीजी बंगाल जानेवाले थे। दास बाबू अस्वस्थ होने लगे थे। उन्हें शाम को ज्वर रहने लगा, जो चिन्ता का कारण हो रहा था। इलाज के लिए उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध किया गया था। साथ ही यह आशा थी कि वह ब्रिटिश-सरकार के साथ समझौता करा सकेंगे। यह 'सफलता' की मनोवृत्ति उन सारे कार्यकर्त्ताओं में मिलती है जिन्होंने बड़े-बड़े आन्दोलनों का संगठन किया है।

देशबन्धु की मृत्यु और उसके बाद

फरीदपुर की बंगाल-प्रान्तीय परिषद् के अवसर पर यही स्थिति थी। देशबन्धु ने फरीदपुर में कुछ शर्तों पर सहयोग प्रदान करने की जो बात कही सो इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर। गांधीजी का विश्वास था कि वर्तमान अशान्ति दूर करने के लिए जिस प्रकार के हृदय-परिवर्त्तन की आवश्यकता है, वह दिखाई नहीं पड़ता। पर दास बाबू का विश्वास था कि हृदय में परिवर्त्तन हो गया है। उन्होंने 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधि से कहा—"मैं हृदय-परिवर्त्तन के लक्षण हर जगह देख रहा हूँ। मेल-जोल के चिह्न मुझे हर जगह दिखाई पड़ रहे हैं। संसार संघर्ष से थक गया है और उसमें मुझे सर्जन और संगठन की इच्छा दिखाई पड़ रही है।" दास बाबू ने ब्रिटिश-

राजनीतिज्ञों को संबोधन करते हुए कहा—"आज आप ऐसी शान्ति प्राप्त कर सकते हैं जो हम दोनों के लिए सम्मान-प्रद हो।" इन दिनों गांधीजी ने दास बाबू को अपना 'एटर्नी' कहा था और स्वराज्य-पार्टी को कौंसिलों में कांग्रेस की प्रतिनिधि कहा करते थे। उनकी अपने-आपको भुला देने की क्षमता अद्भुत थी और कभी-कभी उनके पुराने अनुयायियों की भक्ति तो नहीं, पर धैर्य भंग करनेवाली अवश्य सिद्ध होती थी।

इस अवसर पर लॉर्ड रीडिंग कुछ महीनों की छुट्टी पर इंग्लैण्ड में थे। लॉर्ड बर्कनहेड ने स्वराजियों को सलाह दी थी कि वे विध्वंस के बजाय सहयोग करें। इन दोनों बातों ने मिलकर दास बाबू के हृदय में आशा उत्पन्न कर दी थी। इसके अलावा कर्नल वेजवुड और मि० रेमजे मैकडानल्ड भारत में समझौता कराने की चेष्टा कर रहे थे। गांधीजी ने दास बाबू की मृत्यु के बाद एक मर्मपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था कि दास बाबू को लॉर्ड बर्कनहेड में बड़ी आस्था थी और उन्हें विश्वास था कि बर्कनहेड भारत के लिए बहुत-कुछ करेंगे।

देशबन्धु दास ने पंडित मोतीलाल नेहरू को जो अन्तिम पत्र लिखा था, जिसे पण्डितजी देशबन्धु का अन्तिम राजनैतिक वसीयतनामा कहा करते थे, उसमें उन्होंने कहा—"हमारे इतिहास की सबसे अधिक नाजुक घड़ी आ रही है। इस वर्ष के अन्त में ठोस काम होना चाहिए और दूसरे साल के आरम्भ में हमारी सारी शक्तियां काम में लग जायँगी। इधर हम दोनों बीमार पड़े हैं। ईश्वर ही जाने, क्या होनेवाला है।" इसके कुछ ही दिनों बाद ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि उसने देशबन्धु को स्वर्ग में बुला लिया। १६ जून १९२५ को दार्जिलिंग में उनका परलोकवास हुआ। दास बाबू का जीवन स्वयं ही भारत के इतिहास का एक परिच्छेद था। दास बाबू के देहान्त के सम्बन्ध में खुलना में गांधीजी ने गद्गद् होकर कहा था—"उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ? आंसू बहाना बड़ा आसान है। परन्तु आंसुओं से हमें या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियों को कोई लाभ न होगा। यदि हम सब, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, वे सब जो अपने-आपको भारतीय कहते हैं, संकल्प कर लें कि जिस काम के लिए देशबन्धु जिये और जिस काम में वह निमग्न रहे, उसे पूरा करेंगे, तो हम सचमुच उनके स्मारक के रूप में कुछ कर सकेंगे। हम सब परमात्मा में विश्वास रखते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर नाशमान् है। आत्मा का नाश कभी नहीं होता। जिस शरीर में देशबन्धु दास की आत्मा का निवास था वह नष्ट हो गया। पर उनकी आत्मा का नाश कभी न होगा। उनकी आत्मा ही क्यों, उनका नाम भी, जिन्होंने इतनी सेवा की है और इतना त्याग किया है, अमर रहेगा और जो कोई बूढ़ा

या जवान उनका जरा भी अनुकरण करेगा वह उनकी स्मृति को अमर बनाने में सहायक होगा। हम सबमें उनके-जैसी बुद्धि नहीं है, पर वह जिस उत्साह के साथ अपनी मातृभूमि को प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते हैं।" यहां जरा सरकारी राय का उद्धरण भी देना चाहिए—"श्री दास में अपने प्रतिद्वन्द्वी की दुर्बलताओं को अचूक खोज निकालने की जन्म-जात शक्ति थी। वह अपनी योजनाओं को पूरा करने में लौह-संकल्प से काम लेते थे, जिसके कारण उनका स्थान अपने योग्य-से-योग्य साथियों से कहीं ऊँचा रहता था।" महात्मा गांधी की तरह उनकी भी प्रशंसा शत्रु तक करते थे। उनके प्रति जिन असंख्य लोगों ने सम्मान प्रकट किया था उनमें से अनेक यूरोपियन और सरकार के उच्चपदस्थ अफसर भी थे। जिन-जिनने सन्देशे भेजे उनमें भारत-मंत्री और वाइसराय भी थे। जब कौंसिल की बैठक अगस्त में हुई तो सबसे पहले देशबन्धु दास की और फिर वयोवृद्ध देश-भक्त सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की, जिनका परलोकवास ६ अगस्त को हुआ, मृत्यु के द्वारा हुई देश की क्षति का उल्लेख उपयुक्त शब्दों में किया गया।

गांधीजी देशबन्धु दास से अत्यन्त स्नेह रखते थे। वह बंगाल ही में रुक गये और उनकी स्मृति में एक महान् स्मारक बनाया। उन्होंने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दास का भवन १४८ रसा-रोड देश के अर्पण हुआ। इस भवन को दास बाबू की उस ट्रस्ट-योजना के अनुसार, जो उन्होंने बेलगांव-कांग्रेस से पहले प्रकट की थी, स्त्रियों और बच्चों का अस्पताल बना दिया गया। गांधीजी ने स्वराजियों के हाथ में सारी शक्ति देने और बंगाल में स्वराज्यपार्टी की जड़ मजबूत जमाने में कोई कसर न उठा रक्खी। इस प्रकार श्री जे० एम० सेनगुप्त को कौंसिल में स्वराज्य पार्टी का नेता, कलकत्ता-कारपोरेशन का मेयर, और बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का सभापति बनाने का काम उन्हींका था। यह तिहरा राजमुकुट जो दास बाबू धारण किये हुए थे, सेनगुप्त के सिर पर रख दिया गया।

गांधीजी इस्तीफे के लिए तैयार

इधर गांधीजी स्वराजियों को निश्चिन्त करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे, उधर गांधीजी की इस उदारता का उत्तर स्वराज्य-पार्टी दूसरे ढंग से दे रही थी। स्वराज्य-पार्टी की जनरल कौंसिल का विरोध सूत देने की उस शर्त के खिलाफ हुआ था, जो बेलगांव में तय हो चुकी थी। वह विरोध बढ़ता ही गया, और अन्त में इस शर्त को उड़ा देने का फैसला महासमिति के हाथ में सौंप दिया गया। महासमिति में

स्वराज्य-पार्टी का बहुमत था ही। १५ जुलाई को महासमिति की कलकत्ते की बैठक के बाद सम्भवतः गांधीजी ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के पास एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूंकि कांग्रेस में स्वराजियों की बहुलता है, और चूंकि आप स्वराज्य-पार्टी के सभापति हैं, इसलिए आपको कार्य-समिति के सभापतित्व का भार भी अपने ऊपर लेना चाहिए। गांधीजी ने यह भी सपष्ट कर दिया कि मैं इसका सभापति और अधिक रहना नहीं चाहता। इस पर्ची से स्वराजियों में हलचल मच गई। पर अन्त में यह तय हुआ कि कम-से-कम उस साल के अन्त तक गांधीजी ही महासमिति के सभापति बने रहेंगे, पर यदि अगली बैठक में सूत कातने की शर्त उठा दी जायगी तो वह इस्तीफा दे देंगे और एक अलग चर्खा-संघ स्थापित करेंगे। कार्य-समिति ने सूत कातने की शर्त में परिवर्त्तन करने के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार किया और अन्त में सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने के लिए १ अक्तूबर को बैठक करने का निश्चय किया। इस बीच में गांधीजी ने स्वराज्य-पार्टी का समर्थन करने में कुछ उठा न रक्खा। अगस्त में गांधीजी ने लिखा था—"मुझे कांग्रेस के मार्ग में और अधिक खड़ा न होना चाहिए। कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन मुझ-जैसे आदमी के द्वारा, जिसने अपने-आपको अपढ़ जनता में मिला दिया है और जिसका भारत के शिक्षित-समाज की मनोवृत्ति से मौलिक अन्तर है, होने की अपेक्षा शिक्षित भारतीयों के द्वारा होने के मार्ग में मैं बाधक बनना नहीं चाहता। मैं अब भी उनपर अपना असर डालना चाहता हूँ, परन्तु कांग्रेस को छोड़कर नहीं। यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मैं रास्ते में से हट जाऊँ और कांग्रेस की सहायता से, उसके नाम पर, अपना सारा ध्यान रचनात्मक कार्य में लगा दूं। मैं कांग्रेस की सहायता और उसके नाम का उपयोग उसी हद तक करूँगा जिस हद तक शिक्षित भारतीय मुझे अनुमति देंगे।" असली बात यह थी कि एक ओर तो स्वराजी लोग गांधीजी के सिद्धान्तों का खण्डन करते थे और दूसरी ओर उनका नेतृत्व भी चाहते थे। वे उनका सहयोग अपनी शर्तों पर चाहते थे।

स्वराजी प्रस्ताव

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने असेम्बली के १९२५–२६ के शिमला-अधिवेशन से कुछ पहले ही भारतीय सैण्डहर्स्ट कमिटी में स्थान ग्रहण किया था। कमिटी का काम यह देखना था कि सम्राट् की सेना में अफसरों के पद के लिए योग्य भारतीय उम्मीदवार किस प्रकार प्राप्त हों, और उनके मिलने पर उन्हें सबसे अच्छे ढंग से किस प्रकार शिक्षा दी जाय। इसलिए कमिटी से यह पता लगाने को कहा गया कि भारत

में सैनिक-विद्यालय खोलना उचित और सम्भव है या नहीं, और यदि सम्भव हो तो इस विद्यालय में ही शिक्षा की पूरी व्यवस्था हो या उम्मीदवारों को इंग्लैण्ड भेजा जाय।

१९२४ में मुडीमैन-कमिटी की नियुक्ति यह पता लगाने के लिए हुई कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-सुधार कैसे चल रहे हैं। इस कमिटी की दो रिपोर्टें थीं—बहु-संख्यक और अल्प-संख्यक। बहुसंख्यक-रिपोर्ट सरकारी थी, पर सरकार इस रिपोर्ट की सिफारिशें भी मानने को तैयार न थी। १९२५ के सितम्बर में एक प्रस्ताव पेश किया गया कि सरकार की रिपोर्ट को सिद्धान्त-रूप में मान लेना चाहिए। और वह सिद्धान्त यह था कि सुधारों की मशीन जहां-जहां आवाज दे रही है, उसमें तेल लगाया जाय, और उसके कल-पुर्जों में तेल लगाकर उन्हें चिकना कर दिया जाय, जिससे मंत्रियों को नियुक्त करना आसान हो, उनके वेतनों पर बजटों की बहस में रायें न ली जायँ और वे अड़ंगा डालने पर भी सरकारी काम करते रहें। मान्ट-फोर्ड सुधारों में तो इस प्रकार की घटनाओं को सुदूरवर्ती सम्भावना मात्र समझा गया था पर अब तो वे कल ही की प्रत्यक्ष घटनायें हो चुकी हैं। स्वराज्य-पार्टी ने बड़ी कौंसिल में घुसने के कुछ ही दिनों बाद पता लगा लिया था कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना में क्या-क्या बातें पीछे हटानेवाली हैं। उसने १९२४ की फरवरी में निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया था :—

"यह बड़ी कौंसिल स-कौंसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि भारत-सरकार-विधान में इस प्रकार संशोधन कराने के लिए आवश्यक कार्रवाई करे कि देश में पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो जाय, और इस उद्देश से (१) शीघ्र ही एक गोलमेज-परिषद् बुलाये जो महत्त्वपूर्ण अल्प-संख्यक जातियों या वर्गों के अधि-कारों और हितों को ध्यान में रखकर, भारत के लिए शासन-विधान की सिफारिश करे; और (२) बड़ी कौंसिल को भंग करके नई निर्वाचित कौंसिल की स्वीकृति के लिए उसके आगे वह योजना पेश करे और फिर उसे कानून का रूप देने के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के पास भेज दे।"

इस प्रस्ताव के फल-स्वरूप ही मुडीमैन-कमिटी नियुक्त हुई थी, जिसने अल्प-संख्यक और बहु-संख्यक दो रिपोर्टें पेश की थीं। इन रिपोर्टों पर ७ सितम्बर १९२५ को सर अलेक्जेण्डर मुडीमैन के प्रस्ताव के रूप में विचार किया गया था। इस प्रस्ताव के ऊपर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने एक लम्बा-चौड़ा संशोधन पेश किया था, जिसका सारांश यह था कि (१) सम्राट् की सरकार को पार्लमेण्ट में तत्काल ही

यह घोषणा करने का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन-व्यवस्था और शासन-प्रणाली में ऐसे परिवर्त्तन किये जायँगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायगी; (२) एक गोलमेज-परिषद् या इसी प्रकार का कोई उपयुक्त साधन पैदा किया जाय जिसमें भारतीय, यूरोपियन और अवगोरों के हितों का पूरा प्रतिनिधित्व रहे। यह बैठक अल्प-संख्यक जातियों या वर्गों के हितों को ध्यान में रखकर ऊपर लिखे सिद्धान्तों के अनुसार एक विस्तृत योजना बड़ी कौंसिल की स्वीकृति के लिए तैयार करे। स्वीकृति के बाद उसे विधान का रूप देने के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के पास भेजा जाय। यह संशोधन दो दिनों के वाद-विवाद के बाद सरकार के खिलाफ ४५ रायों के मुकाबले ७२ रायों से पास हो गया।

बंगाल में जहां स्वराजी-दल ने मंत्रि-मण्डल का निर्माण असम्भव-सा कर दिया था वहां अब उसका प्रभाव कौंसिल में कम होता जा रहा था। कौंसिल के अध्यक्ष-पद का स्वराजी उम्मीदवार एक स्वतंत्र-दलवाले के मुकाबले पर ६ रायों से हार गया। अन्तिम जोर-आजमाई के अवसर पर भी, जब दास बाबू को स्ट्रेचर पर डालकर कौंसिल-भवन में ले जाया गया था, अवस्था संदिग्ध थी। डॉ० सुहरावर्दी ने स्वराज्य-पार्टी से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने गवर्नर से मुलाकात की थी, जिसके ऊपर गांधीजी ने उन्हें बड़े आड़े हाथों लिया था और कहा कि उन्होंने यह बड़ा अनुचित काम किया और इस तरह "अपने देश को बेच दिया।" जब डॉ० सुहरावर्दी ने यह सुना तो उन्होंने इस्तीफा दे दिया और कहा—"मैं इस नई जो-हुक्मी के आगे सिर झुकाने के बजाय राजनैतिक मृत्यु कर लेना अधिक सम्मान-प्रद समझता हूँ।" डॉ० सुहरावर्दी के गवर्नर से मुलाकात करने का समाचार प्रकाशित होने के दूसरे दिन गांधीजी ने कलकत्ते के अधगोरे पत्र को अपने रुख के सम्बन्ध में पूरा वक्तव्य दिया और कहा :—

"मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्वराज्य-पार्टी के सदस्यों को बिना पार्टी की अनुमति लिए सरकारी अफसरों से मिलने से रोकने के सम्बन्ध में जो नियम है वह अच्छा है।"

२२ अगस्त को श्री विट्ठलभाई पटेल बड़ी कौंसिल के पहले गैर-सरकारी अध्यक्ष चुने गये।

पटना-महासमिति

इस समय २१ सितम्बर १६२५ को पटना में महासमिति की बैठक हुई। जब हम स्मरण करते हैं कि पटने की १६२४ की मई की बैठक में सत्याग्रह उठाया

गया था तो हमें यह बैठक विशेष रूप से दिलचस्प मालूम होती है, क्योंकि इस बैठक में कांग्रेस की स्थिति में तीन महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे। खद्दर का राजनैतिक महत्त्व छिन गया। हाथ-कता सूत देने की शर्त केवल चार आना न देने की हालत में ही लागू रही। राजनैतिक काम का भार स्वराज्य-पार्टी को सौंप दिया गया। अब स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस का एक अंग-मात्र—वह अल्पमत जिसे रिआयतें मिलें या वह थोड़ा-सा बहुमत जिसे सहायता के लिए औरों का मुंह ताकना पड़े—न रही। वह स्वयं कांग्रेस हो गई। इसके बाद से निर्वाचन का काम स्वराज्य-पार्टी नहीं स्वयं कांग्रेस करेगी। कौंसिल-प्रवेश में विश्वास रखनेवाले बड़ी कौंसिल के सदस्य अब "स्वराजिस्ट" नहीं कहलायेंगे, बल्कि कौंसिलों में कांग्रेस-सदस्य कहलायेंगे। सूत कातने की शर्त अब एकमात्र शर्त नहीं रही। इसका कारण यह न था कि उस शर्त को माननेवाले कम थे।—१०,००० सदस्य मौजूद थे—परन्तु यह था कि स्वराजियों को यह शर्त पसन्द न थी। गांधीजीने लॉर्ड बर्केनहेड और लॉर्ड रीडिंग को करारा उत्तर देने के लिए स्वराजियों को जो उन्होंने मांगा दे डाला। जब गोपीनाथ साहा के सम्बन्ध में सीराजगंज के प्रस्ताव को लेकर दास बाबू की स्थिति और स्वतंत्रता खतरे में पड़ी, और बंगाल-आर्डिनेन्स एक्ट बना, तो गांधीजी ने दास बाबू का साथ देने का निश्चय किया। वर्ष बीत गया पर बर्केनहेड की शेखी मौजूद थी। गांधीजी ने बचा-खुचा असहयोग भी समेटने का निश्चय किया, जिससे कौंसिलों के मोर्चे पर पूरी सहायता पहुँचाई जा सके। उन्हें भारत-मन्त्री को उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं थी। उन्होंने राजनैतिक अवस्था का सामना करने के लिए स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस का अधिकार दे दिया।

उस समय गांधीजी की जैसी मनोदशा थी उसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए कोई चीज सिर्फ मांगने की देर थी, और वह उन्हें तुरन्त मिल जाती। गांधीजी ने महासमिति के अध्यक्ष की हैसियत से स्वराज्य-पार्टी-द्वारा बड़ी कौंसिल में किये गये काम की आलोचना तक न होने दी, क्योंकि इससे सौहार्द्र-पूर्ण वातावरण में खलल पड़ता और उदाराशयता की शोभा और मूल्य बहुत-कुछ कम हो जाता। जब राजेन्द्र बाबू ने गांधीजी से पूछा कि क्या उनका दास बाबू और नेहरूजी के साथ कोई पैक्ट हुआ है, तो उन्होंने कहा कि "नहीं; परन्तु मेरा सम्मान यह कहता है कि दूसरा पक्ष जो कुछ मुझसे मांगे, मैं दे दूं।"

पटना की बैठक के अवसर पर और उसके बाद प्रश्न यह था कि पटना के निश्चय के द्वारा कांग्रेस की दोनों पार्टियों में साझा तय हुआ था या हिस्सा? कांग्रेस में

परिवर्त्तन बड़ी तेजी से एक-के-बाद-एक होते गये। हर बार कोई नया दृश्य, नया रंग और नई बात दिखाई देती थी। जून में कोई बात निश्चित न हो सकी। जब १९२४ के जून में अहमदाबाद में बैठक हुई तो गांधीजी अब भी अपनी स्थिति के मल सिद्धान्तों पर अड़े हुए थे। उन्होंने खद्दर-सम्बन्धी कड़ाई को और भी कड़ा कर दिया और कार्य-समिति के सदस्यों को कातने पर विवश कर दिया। सीराजगंज के प्रस्ताव के ऊपर नौकरशाही ने दास बाबू का अनुकरण करनेवालों को धमकी दी तो गांधीजी कांग्रेस के भीतरी मतभेद को मिटाने पर तुल गये। एक इंच झुकने का परिणाम यह होता है कि सोलह आने झुकना पड़ता है। यहां भी यही बात हुई। बेलगांव के निर्णय को पटना में रद कर दिया गया। पटना में कौंसिल ने कांग्रेस की सारी मर्यादा अपने हाथ में ले ली और सूत कातने की शर्त को भी उड़ा दिया। इस प्रकार खद्दर के समर्थकों और कौंसिल के समर्थकों में कांग्रेस का बंटवारा हो गया। एकता ऊपर-ही-ऊपर थी। वास्तव में खद्दर के समर्थकों में असंतोष फैला हुआ है, यह बात छिपाई न जा सकती थी। स्वराज्य-पार्टी ने गोलमेज-परिषद् या और किसी उपयुक्त साधन की जो मांग पेश की थी वह नाकाफी समझी गई। लोगों में यह भाव उत्पन्न हुआ कि एटर्नी ने अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन किया है या उसका पूरी तौर से पालन नहीं किया है। पर गांधीजी इस प्रकार के गणित का हिसाब-किताब नहीं लगाते। वह जब कभी झुकते हैं तो पूरे तौर से झुकते हैं, जिससे न उन्हें पछतावा रहे न दूसरे पक्ष को। भीष्म ने भी सब प्रकार के दान में इसी नीति का अनुसरण करने की सलाह दी है। फलतः पटना में जो कुछ निश्चित हुआ कानपुर में हमें उसपर सही करनी पड़ी।

कानपुर-कांग्रेस

१९२५ की कानपुर-कांग्रेस के दिन आ लगे थे। जनता ज्यों-की-त्यों थी—उसमें पहले की भांति प्रबल शक्ति उत्पन्न हो सकती थी, पर वह तभी जब "शिक्षित" समुदाय उनके पास कोई जीता-जागता आदर्श, कोई फड़कता हुआ कार्यक्रम ले जायें। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। फलतः मसाला मौजूद था, पर उसकी 'शक्ति' गायब हो गई थी। जिस प्रकार किसी मोटरकार के साधारण उपायों से न चलने पर उसे पीछे से ढकलने का उपाय अपनाया जाता है, और इस प्रकार ढकेले जाने के दो-चार कदम बाद मोटर के इंजन में गति उत्पन्न हो जाती है और वह दुबारा रोके जाने तक काम करता रहता है, उसी प्रकार सत्याग्रह की सारी शक्तियां उस समय के लिए रुकी हुई थीं और उसमें गति उत्पन्न करने के लिए हर तरह का उपाय किया जा रहा था।

स्थानिक संस्थाओं पर कब्जा करने का कार्यक्रम दिन-पर-दिन आकर्षक होता जा रहा था। कलकत्ते के मेयर-पद को देशवन्धु दास और वाद को श्री सेनगुप्त ने जिस सुन्दरता के साथ सुशोभित किया था, उससे आकर्षण और भी वढ़ गया था। देश के चार कारपोरेशन कांग्रेसवादियों के हाथ में थे। श्री वल्लभभाई पटेल अहमदावाद-म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे और १९२८ तक उसी पद पर रहे। वम्वई-कारपोरेशन के मेयर का पद श्री विट्ठलभाई पटेल सुशोभित कर रहे थे। पं० जहावरलाल इलाहावाद-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष वनाये गये, पर उन्हें यह पता लगाने में देर न लगी कि वह वहां निभ न सकेंगे और स्थानिक संस्थायें कांग्रेसवादियों के मतलव की चीज नहीं हैं। वावू राजेन्द्रप्रसाद पटना-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष हुए, पर उन्हें जो अनुभव हुए वे आनन्द-दायक न थे, फलतः वह १५ महीने के वाद ही वहां से अलग हो गये। मदरास के म्युनिसिपैलिटी में नेता श्री श्रीनिवास आयंगर कांग्रेस के भी नेता हो गये—परन्तु सरकार की चक्की के पहिये वैसे धीरे-धीरे पीसते हैं; पर पीसते अचूक हैं। इसलिए थोड़े ही दिनों में सरकार ने कांग्रेसियों के लिए यह असम्भव कर दिया कि वे स्थानिक संस्थाओं के द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम को आगे वढ़ा सकें। वे जेल हो आनेवालों को नौकरी नहीं दिला सकते थे, खादी नहीं खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नहीं दे सकते थे, शालाओं में चरखा नहीं चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओं को मानपत्र नहीं दे सकते थे और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा सकते थे।

स्वराज्य-पार्टी में फूट

१९२५ का साल वड़ी हलचल का साल रहा है। अव इतने समय के वाद जव हम पुरानी घटनाओं पर निगाह दौड़ाते हैं तो उस समय कांग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न दलों में, और दलों के भीतर भिन्न-भिन्न वर्गों जो में, कशमकश चल रही थी उसकी ओर ध्यान गये विना नहीं रह सकता। जव अपरिवर्त्तनवादी ही, जिनके जिम्मे खद्दर, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता के रूप में वची-खुची वसीयत आई थी, आपस में मतभेद उपस्थित कर रहे थे तो परिवर्त्तन-वादियों का कार्यक्रम तो नया और आन्दोलनकारी समझा जानेवाला कार्यक्रम था, फिर उनमें मत-भेद होना कोई आश्चर्य की वात न थी। स्वराज्य-पार्टी के सिद्धान्तों के विरुद्ध मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र ने झण्डा खड़ा किया। ये प्रान्त वंगाल के योग्य सहयोगी थे और जवतक देशवन्धु जीवित रहे, वंगाल के साथ-साथ चलते रहे। देशवन्धु का स्वभाव किसी वगावत को सहन

करने का न था, वह उसे कठोरता के साथ कुचल देते थे। परन्तु उनकी मृत्यु होते ही महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में अनहोनी बातें हो गईं। मध्यप्रांतीय कौंसिल के अध्यक्ष श्री ताम्बे ने मध्यप्रान्त की सरकार की कार्यकारिणी का पद स्वीकार कर लिया। इसपर मध्यप्रान्त और बरार के नेताओं और बम्बई प्रान्त के महाराष्ट्र के नेताओं में खूब घमासान युद्ध हुआ। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने भी श्री ताम्बे के आचरण पर और श्री केलकर और श्री जयकर जैसे व्यक्तियों के उनकी सफाई पेश करने पर बड़ी आपत्ति की और इन दोनों के विरुद्ध जाब्ता कार्रवाई करने की धमकी दी और कहा कि इन्होंने "अपराध में सहायता की है।" इधर श्री केलकर और श्री जयकर ने भी बम्बई प्रान्त की स्वराज्य-पार्टी से इन्हीं विचारों को दोहराने के लिए कहा।

१ नवम्बर को नागपुर में अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की बैठक हुई, जिसमें श्री श्रीपाद बलवन्त ताम्बे की कार्रवाई नियम के विरुद्ध और दल के साथ विश्वास-घात समझी गई और उनकी निन्दा की गई। फिर पण्डित मोतीलाल नेहरू श्री जयकर और केलकर के विद्रोह को कुचलने के लिए नागपुर से झटपट बम्बई पहुँचे। इस बीच इन दोनों ने 'प्रतियोगी सहयोग' की आवाज पहले से ही ऊँची कर रक्खी थी। इन्होंने अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की कार्य-समिति से इस्तीफा दे दिया; यही नहीं, इसके बाद डॉ० मुंजे, श्री जयकर और श्री केलकर ने बड़ी कौंसिल से भी इस्तीफा दे दिया; क्योंकि वे स्वराज्य-पार्टी के टिकट पर चुने गये थे।

अब हम कानपुर-कांग्रेस पर आते हैं। कानपुर को पटना के निर्णय पर सही करनी थी। पटना में भी यह बात संदिग्ध समझी जा रही थी कि बेलगांव के आदेश के विरुद्ध सूत कातने के, मिल्कियत का बटवारा करने के और कार्य-विभाग करने के सम्बन्ध में जो निश्चय किया गया है वह महासमिति भी स्वीकार करेगी या नहीं। इसके बाद यह बात और भी अधिक विचारणीय थी कि स्वराज्य-पार्टी के मूडीमैन-कमिटीवाले प्रस्ताव पर प्रस्तुत किये गये संशोधन में की गई मांग की पुष्टि करेगी या नहीं। कानपुर-कांग्रेस के अधिवेशन के सामने, जिसकी सभानेत्री भारत की कवयित्री सरोजिनी नायडू थीं, इसी प्रकार के जटिल प्रश्न मौजूद थे। इस कांग्रेस की एक अजूबा बात थी पिछले वर्ष के सभापति गांधीजी-द्वारा इस वर्ष की सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू को कांग्रेस का भार सौंपा जाना। गांधीजी केवल ५ मिनट बोले। उन्होंने कहा कि "अपने ५ वर्ष के काम का पर्य्यालोचन करने के बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नहीं पाता जिसे रद करूँ; न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ जिसे वापस लूं। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगों में जोश और उत्साह है तो मैं आज सत्याग्रह

आरम्भ कर दूं। पर अफसोस! हालत ऐसी नहीं है।" सरोजिनीदेवी ने गिने-चुने शब्दों के साथ भार ग्रहण किया। उन्होंने सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया वह कांग्रेस-मंच से दिया गया शायद सबसे छोटा भाषण था और साथ ही वह मधुरता में अपना सानी न रखता था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया और उस राष्ट्रीय मांग की चर्चा की जो बड़ी कौंसिल में पेश की गई थी और भय को दूर करने की सलाह दी। उन्होंने कहा—"स्वतंत्रता के युद्ध में भय ही एकमात्र अक्षम्य विश्वास-घात है, और निराशा एकमात्र अक्षम्य पाप।" फलतः उनका भाषण मानो साहस और आशा की प्रतिमूर्ति था। इस सुकुमार हस्त-द्वारा अनुशासन और सहिष्णुता के उपयोग करने का फल यह हुआ कि कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन मजदूरों के प्रदर्शन और कुछ प्रतिनिधियों के उपद्रव को छोड़कर, जिन्हें काबू करने के लिए जवाहरलाल जैसे कठोर व्यक्तित्व की आवश्यकता पड़ी, निर्विघ्न समाप्त हो गया।

कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन स्वभावतः ही देशबन्धु दास, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डॉ० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और अन्य नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश में दक्षिण अफ्रीका से एक शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। कांग्रेस ने उसका स्वागत किया और यह जाहिर किया कि 'एरिया रिजर्वेशन और इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन बिल', अर्थात् भिन्न-भिन्न जातियों के लिए पृथक स्थान नियत करने और आकर बसने के लिए नाम लिखाने के सम्बन्ध में पेश किया गया बिल, १९१४ के गांधी-स्मट्स-समझौते के विरुद्ध है, और यह भी कहा कि १९१४ के समझौते का ठीक-ठीक अर्थ करने के लिए एक पंचायत बैठाकर निपटारा करा लिया जाय। कांग्रेस ने इस प्रश्न के निपटारे के लिए एक गोलमेज-परिषद् की बात की पुष्टि की और सम्राट् की सरकार से अनुरोध किया कि यदि बिल पास हो जाय तो उसे स्वीकृति प्रदान न की जाय। बंगाल-आर्डिनेन्स-एक्ट और गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियों के सम्बन्ध में भी उपयुक्त प्रस्ताव पास हुए। बर्मा के गैर-बर्मन अपराधियों को निर्वासित करने और समुद्र-यात्रा करनेवालों पर कर लगाने के सम्बन्ध में पेश किये बिलों को नागरिकों की स्वतंत्रता पर नया आक्रमण समझा गया। उसके बाद कांग्रेस का मताधिकार-सम्बन्धी प्रस्ताव आया, जिसने २२ सितम्बर १९२५ के पटनावाले प्रस्ताव के (आ) भाग की पुष्टि की जिसमें कांग्रेस से, उस कोष को छोड़कर जो अखिलभारतीय चर्खा-संघ के सुपुर्द कर दिया गया है, बाकी सारे कोष और मशीनरी का उपयोग देश-हित के लिए आवश्यक राजनैतिक कार्य में करने को कहा गया था। कांग्रेस ने सत्याग्रह अर्थात् सविनय-भंग में अपनी आस्था प्रकट की और

इस बात पर जोर दिया कि सारे राजनैतिक कामों में आत्मनिर्भरता ही एकमात्र पथ-प्रदर्शक समझी जाय। इसके बाद कांग्रेस ने नीचे लिखा कार्यक्रम अपनाया :—

कार्यक्रम

१—देश के भीतर कांग्रेस का काम यह होगा कि देश-वासियों को उनके राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाय और उन्हें इतना बल और प्रतिकार करने की शक्ति हासिल करने की तालीम दी जाय कि वे अपने अधिकार प्राप्त कर सकें। इस उद्देश की पूर्ति के लिए कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा किया जाय। इस रचनात्मक कार्यक्रम में विशेषकर चर्खे और खद्दर के प्रचार, साम्प्रदायिक ऐक्य की वृद्धि करने, अस्पृश्यता-निवारण करने, दलित जातियों का उद्धार करने और नशे की चीजों का सेवन न करने पर जोर दिया जायगा और इस कार्यक्रम में स्थानिक संस्थाओं पर अधिकार करना, ग्राम-संगठन करना, राष्ट्रीय ढंग से शिक्षा का प्रचार करना, मिल-मजदूरों और खेती का काम करनेवाले मजदूरों का संगठन करना, मजदूरों और मालिकों, तथा जमींदारों और किसानों में सौहार्द्र स्थापित करना, और देश के राष्ट्रीय, आर्थिक, उद्योग-सम्बन्धी एवं व्यापारिक हितों की वृद्धि करना शामिल रहेगा।

२—देश से बाहर कांग्रेस का काम विदेशी राष्ट्रों में वस्तुस्थिति का प्रचार करना होगा।

३—यह कांग्रेस देश की ओर से समझौते की उन शर्तों को मंजूर करती है जो बड़ी कौंसिल की इण्डिपेण्डेण्ट और स्वराज्य-पार्टियों ने अपने १८ फरवरी १९२४ के प्रस्ताव-द्वारा सरकार के आगे रक्खी थीं, और यह देखते हुए कि सरकार ने अभीतक कोई उत्तर नहीं दिया है, निश्चय करती है कि निम्नलिखित कार्रवाई की जाय :—

स्वराज्य-पार्टी जल्दी-से-जल्दी बड़ी कौंसिल में सरकार से उन शर्तों पर अपना आख़िरी निर्णय सुनाने का अनुरोध करेगी और यदि फरवरी के अन्त तक कुछ निर्णय सरकार न दे सके या जो निर्णय सुनाया जाय उसे कांग्रेस की कार्य-समिति-द्वारा नियुक्त विशेष समिति ने और उन सदस्यों ने, जिन्हें महासमिति नियुक्त करना चाहे, संतोष-जनक न समझा, तो स्वराज्य-पार्टी उचित कार्रवाई-द्वारा बड़ी कौंसिल में सरकार को सूचित कर देगी कि अब वह पहले की तरह वर्त्तमान कौंसिलों में काम न करेगी। बड़ी कौंसिल और राज्यपरिषद् के स्वराजी-सदस्य बजट की नामंजूरी के लिए वोट देंगे और तत्काल ही अपनी जगह छोड़कर चले जायंगे। जिन प्रान्तीय

कौंसिलों की बैठक उस अवसर पर न हो रही हो, उसके सदस्य फिर उन कौंसिलों में न जायंगे और वे भी उसी प्रकार विशेप-समिति को इस वात से सूचित कर देंगे।

(२) उसके वाद स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य—चाहे वह राज्यपरिषद् में हो, चाहे वड़ी कौंसिल में, चाहे छोटी कौंसिलों में—उनकी किसी वैठक में, या उनके द्वारा नियुक्त की गई किसी कमिटी में शरीक न होगा। हां, अपनी जगह को खाली घोषित होने से रोकने और प्रान्तीय वजटों को नामंजूर करने या कोई नया कर लगानेवाले विल को रद करने के लिए कौंसिलों में जाया जा सकता है।

इस कार्यक्रम के विस्तार के लिए विशेष समिति और महासमिति को अधिकार देने की शर्तों का भी उल्लेख इस लम्वे प्रस्ताव में था।

कानपुर-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव विना तू-तू मैं-मैं के पास न हो सका। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक संशोधन पेश किया जिसका अनुमोदन श्री जयकर ने किया। उनका संशोधन इस प्रकार था:—

"कौंसिलों में काम इस प्रकार जारी रक्खा जायगा कि उनका उपयोग शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार के स्थापित करने में किया जा सके; जव राष्ट्रीय हित की वृद्धि सहयोग के द्वारा होगी तो सहयोग किया जायगा, और रुकावट डालने से होगी तो रुकावट डाली जायगी।"

इस संशोधन का अनुमोदन करते हुए ही श्री जयकर ने अपने और श्री केलकर व डॉ० मुंजे के वड़ी कौंसिल से इस्तीफा देने का जिक्र किया। इस चर्चा के दौरान में पण्डित मोतीलालजी पर भारतीय सैण्डहर्स्ट या स्कीन-कमिटी की सदस्यता स्वीकार करने के लिए भयंकर आक्रमण किया गया। उन्होंने कहा—"वड़ी कौंसिल ने भारतीय सैण्डहर्स्ट की मांग पेश की थी और सरकार ने कहा, 'अच्छा मार्ग दिखाओ।' हम लोग यह चाहते थे कि ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसके द्वारा सरकार हमारी मांगें स्वीकार कर ले, उससे वात-चीत चलाई जाय। यदि इसी प्रकार सरकार हमसे सुधारों का मार्ग दिखाने को कहे तो हम निश्चय ही उसके साथ सहयोग करेंगे।"

अन्त में कांग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। महासमिति को प्रवासी भारतवासियों के हितों की देख-भाल रखने के लिए अपने अन्तर्गत एक वैदेशिक-विभाग खोलने का अधिकार दिया गया। अगला अधिवेशन आसाम में करना तय हुआ। डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी, श्री० ए० रंगास्वामी आयंगर और श्री के० सन्तानम प्रधानमंत्री नियत हुए। कानपुर-कांग्रेस

के कुछ ही दिनों बाद १९२६ की जनवरी के दूसरे सप्ताह में मि० वी० जी० हार्निमैन भारत वापस लौट आये।

कानपुर-कांग्रेस की एक विशेषता यह थी कि उसमें अमरीका के मि० होल्म्स मौजूद थे। यह वैसे अमरीकन कपड़े पहने थे पर सिर पर गांधी-टोपी दिये थे। करतलध्वनि के बीच यह उठे और बोले—"कल मैंने डॉ० अब्दुलरहमान को यह दावा करते हुए सुना कि गांधीजी तो दक्षिण अफ्रीकन हैं। क्या मैं आज यह दावा नहीं कर सकता कि वह सारे संसार के हैं? क्या मैं यह नहीं कह सकता कि 'मित्र-मण्डल' (सोसाइटी आफ फ्रेन्ड्स), जिसकी ओर से मैं बोल रहा हूँ, उन्हें उसी आदर की दृष्टि से देखता है जिससे आप देखते हैं और आपकी ही भांति वह भी उनके काम में विश्वास करता है? मुझे कहना चाहिए कि हम लोग अपनी पाश्चात्य-सभ्यता की धुन में बहुत गलत रास्ते पर चले गये हैं। हम लोग धन और शक्ति की खोज में बहुत आगे बढ़ गये हैं। हमारी सारी पाश्चात्य सभ्यता में यह एक बहुत बड़ा दुर्गुण है। हम पैसे से प्रेम करते रहे, फलतः वह एक स्थान पर एकत्र हो गया। हम शक्ति के लिए लालायित रहे, फलतः युद्धों पर युद्ध होते गये और सम्भवतः और भी होंगे और अन्त में हमारी सभ्यता विध्वंस हो जायगी। इसीलिए हम आपकी ओर प्रसन्नता-पूर्वक मुखातिब हुए हैं। आप एक नया और अधिक अच्छा मार्ग दिखा रहे हैं, और हम आशा करते हैं कि जहां हम प्रकृति और आविष्कारों की अच्छी-अच्छी चीजों को अपनाये रखेंगे, वहां हम उस भ्रातृभाव का अनुकरण करेंगे जिसकी अभिव्यक्ति आपके मध्य में इस महान् पैगम्बर ने की है।"

हिन्दू मुस्लिम दंगे

इस वर्ष को समाप्त करने से पहले हमें उन हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जिक्र करना है जो बीच-बीच में १९२५ में और १९२६ में भी होते रहे। हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जिक्र करते हुए १९२५ की पहली मई को गांधीजी ने कलकत्ते के मिर्जापुर-पार्क में कहा था—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बतानेवाले वैद्य की विशेषता मुझमें नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि हिन्दू या मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसलिए आजकल मैंने इस समस्या की यों ही उड़ती-सी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर लिया है। मैं यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते हैं तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानों को एक होना पड़ेगा। और

यदि हमारे भाग्य में ही यह वदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून वहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिये उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोड़ने पर उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमें झूठ-मूठ के आंसू न वहाने चाहिएँ; और यदि हम दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करनी चाहिए।"

१९२५ की जुलाई में सारे महीने-भर दंगे होते रहे। इनमें प्रमुख स्थान दिल्ली, कलकत्ता और इलाहावाद थे। वकर-ईद के अवसर पर निजाम की रियासत में हुस्नावाद नामक स्थान पर भी दंगा हो गया। १९२५ का साल समाप्त करने से पहले सिक्खों की समस्या का जिक्र करना भी आवश्यक है। १९२५ में सिक्खों की समस्या ने शान्ति धारण कर ली थी। पंजाव-कौंसिल में गुरुद्वारा-विल पेश किया गया और पास हो गया, साथ ही सर मालकम हेली ने कहा कि यदि गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदी शर्तनामे पर दस्तखत करके नये कानून को मंजूर कर लेंगे और पहले की भांति आन्दोलन न करने का जिम्मा लेंगे तो उन्हें छोड़ दिया जायगा। वहुतों ने इसपर क्रोध प्रकट किया, पर धीरे-धीरे क्रोध शान्त हो गया। वहुतसे कैदियों ने कानून मानने का जिम्मा लिया। शिरोमणि-गुरुद्वारा-कमिटी में इस वात को लेकर फूट पड़ गई। अधिकांश कैदी छोड़ दिये गये, पर कुछ पूरी सजा भुगतने के लिए जेलों में ही रहे।

: ७ :

कौंसिल का मोर्चा—१९२६

सहयोग की तरफ

१९२६ का आरम्भ कौंसिलों के कार्यक्रम के लिए कुछ विशेष शुभ न रहा। १९२३ की नवीनता का आकर्षण इस समय तक फीका पड़ चुका था। केवल 'युद्ध' की खातिर लगातार 'युद्ध' किये जाना कुछ थकानेवाली वात सावित हुई और नये वर्ष के आरम्भ में ही थकावट और प्रतिक्रिया के लक्षण दिखाई देने लगे।

वास्तव में १९२५ के अन्त में ही प्रतियोगी सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप से सुनाई देने लगी थी। वड़ी कौंसिल २० जनवरी को खुलनेवाली थी, पर उससे पहले ही वम्बई-कौंसिल की स्वराज्य-पार्टी ने प्रतिसहयोगी-दल को उसके प्रचार-कार्य में सहायता देने का पूरा निश्चय कर लिया था।

६ और ७ मार्च को महासमिति की वैठक राय सीना (दिल्ली) में हुई, जिसमें कानपुर के निश्चय की पुष्टि की गई। एकवार फिर दिल्ली ने प्रकट किया कि "स्वराज्य के मार्ग में रोड़े अटकानेवाले किसी भी कार्य का, चाहे वह सरकारी हो या और किसी प्रकार का, पूरे संकल्प के साथ मुकावला किया जायगा। और विशेष रूप से उस समय तक कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले पदों को स्वीकार न करेंगे जवतक कि सरकार की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा।"

महासमिति की चर्चा करते हुए यहां यह भी कह देना उचित होगा कि ५ मार्च को कार्य-समिति ने २०००) हिन्दुस्तानी-सेवा-दल को और ५०००) विदेशी प्रचार-कार्य के लिए मंजूर किया था। हिन्दुस्तानी सेवा-दल स्वयंसेवकों का वह दल था जिसका संगठन कोकनडा-कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार हुआ था। इसके दो वार्षिक अधिवेशन हो चुके थे—एक मौलाना शौकतअली की अध्यक्षता में वेलगांव में और दूसरा श्री तुलसीचरण गोस्वामी की अध्यक्षता में कानपुर में।

असेम्बली में वाक-आउट

बड़ी कौंसिल में जब बजट की चर्चा आरम्भ हुई तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जाहिर किया कि मैं और मेरे समर्थक मत देने में कोई भाग न लेंगे। कौंसिल-भवन की गैलरियां खचाखच भरी हुई थीं, क्योंकि स्वराजियों के बड़ी कौंसिल से 'वाक-आउट' करने की बात पहले से ही लोगों को अच्छी तरह मालूम थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने बताया कि सरकार ने देशबन्धु की सम्मानपूर्ण समझौते की बात का किस प्रकार तिरस्कार किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने सावधानी से काम न लिया तो देशभर में गुप्त-समितियां कायम हो जायँगी। इतना कहकर नेहरूजी अपनी पार्टी के सदस्यों के साथ कौंसिल-भवन से बाहर चले गये।

इस 'वाक-आउट' के कारण एक और घटना भी हुई, जिसका संक्षिप्त वर्णन करना उचित है। अध्यक्ष पटेल ने इस 'वाक-आउट' का जिक्र करते हुए कहा कि चूंकि कौंसिल की सबसे जबर्दस्त पार्टी कौंसिल-भवन छोड़कर चली गई है, इसलिए अब भारत-सरकार कानून के अनुसार आवश्यक प्रातिनिधिक रूप इस कौंसिल का नहीं रह जाता है। अब यह बात भारत-सरकार ही निश्चित करे कि बड़ी कौंसिल की बैठक जारी रहे या नहीं? उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि वह कोई विवादग्रस्त कानून पेश न करें, नहीं तो मुझे विवश होकर उन विशेष अधिकारों का उपयोग करके, जो भारत-सरकार-कानून ने मुझे प्रदान किये हैं, बैठक को अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित करना पड़ेगा। दूसरे दिन उन्होंने बड़ी सज्जनता के साथ अपने शब्द वापस लिये और कहा—"मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अच्छी तरह विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अध्यक्ष को अपने अधिकारों का जिक्र न करना चाहिए था, और न ऐसी भाषा का ही व्यवहार करना चाहिए था जिसका अर्थ सरकार को धमकी देने के रूप में किया जा सके, बल्कि कोई कार्रवाई करने से पहले मुझे देखना चाहिए था कि आगे क्या होता है।" इससे सरकार की चिन्ता मिट गई।

समझौते की असफल चेष्टा

असहयोग का जो पत्थर गया में ऊँचाई से ढलकना शुरू हुआ था वह १९२६ के आरम्भ में साबरमती में करीब-करीब नीचे आ गिरा। हम यह देख ही चुके हैं कि प्रतिसहयोगी स्वतंत्र और राष्ट्रीय-दलवालों के कितना निकट पहुँच गये थे। तदनुसार उन्होंने ३ अप्रैल को बम्बई में अन्य दलों के नेताओं के साथ एक बैठक की, जिसके फल-स्वरूप "इण्डियन नेशनल पार्टी" का जन्म हुआ। इस पार्टी का कार्यक्रम था,

शान्तिपूर्ण और वैध उपायों से (सामूहिक सत्याग्रह और करबन्दी को छोड़कर) औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी स्थापित करने की तैयारी करना। और इसमें कौंसिलों के भीतर प्रतियोगी-सहयोग की नीति बरतने की स्वतंत्रता दी गई थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस पार्टी के संगठन को स्वराज्य-पार्टी के विरुद्ध चुनौती समझा। कुछ समझौते की बात-चीत के बाद यह निश्चय किया गया कि स्वराज्य-पार्टी के दोनों दलों की एक बैठक २१ अप्रैल को यह देखने के लिए कि मेल सम्भव है या नहीं, साबरमती में बुलाई जाय। इस बैठक में अन्य नेताओं के अलावा सरोजिनीदेवी, लाला लाजपतराय, श्री केलकर, जयकर, अणे और डॉ० मुंजे भी थे। यहां महासमिति-द्वारा पुष्टि मिलने की शर्त रखते हुए समझौते पर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओं के बीच में यह तय हुआ कि १९२४ की फ़रवरी में स्वराजियों ने जो मांग पेश की थी उसके सरकार-द्वारा दिये गये उत्तर को संतोष-जनक समझा जाय, यदि मंत्रियों को प्रान्तों में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक अधिकार, उत्तरदायित्व और स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की सुविधा कर दी जाय। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की कौंसिलों के कांग्रेसी सदस्यों के ऊपर इस बात का निर्णय छोड़ा गया कि इस प्रकार दिये गये अधिकार पर्याप्त हैं या नहीं, पर साथ ही उनके निर्णय पर एक कमिटी की, जिसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री मुकुन्दराव जयकर हों, पुष्टि मिल जाना आवश्यक रक्खा गया। 'इंडिया १९२५–२६' में कहा गया है—"पर अभी इस समझौते की स्याही मुश्किल से सूखी होगी कि आन्ध्र प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के सभापति श्री प्रकाशम् ने अपनी असहमति प्रकट की और कहा कि "कांग्रेस की स्थिति को साबरमती में कानपुर से भी अधिक कमजोर बना दिया गया।" अन्य अनेक प्रमुख कांग्रेसवादियों ने भी इसी प्रकार का असंतोष प्रकट किया। साधारणतया यह समझा जाने लगा, चाहे कुछ ही दिनों के लिए सही, कि स्वराजी शीघ्र ही फिर कौंसिलों में चले जायँगे और मंत्रि-मण्डल कायम करेंगे। परन्तु पं० मोतीलालजी ने यह प्रकट करके कि पद-ग्रहण करने से पहले तीन शर्तों का पूरा होना जरूरी है, वातावरण को स्वच्छ कर दिया। वे तीन शर्तें ये हैं :—

(१) मंत्री कौंसिलों के प्रति पूर्ण-रूप से उत्तरदायी समझे जायँ, और उनपर सरकार का कोई शासन न रहे। (२) आय का एक उचित भाग "राष्ट्र-निर्माण" विभाग के लिए नियत किया जाय। (३) मंत्रियों को हस्तान्तरित विभागों की नौकरियों पर पूरा अधिकार हो।

परन्तु सारी बातें फिर खटाई में पड़ गईं। श्री जयकर ने उस मसविदे को,

जो कमिटी के सामने रक्खा गया, समझौते के बिलकुल विरुद्ध बताया और कहा कि समझौते के ठीक-ठीक अर्थों के संबंध में संदेह और मतभेद को दूर करने के बहाने शर्तों का पूरी तरह खण्डन किया गया है। बस, इसके बाद से स्वराजियों और प्रतियोगी-सहयोगियों का मन-मुटाव बढ़ता गया; परन्तु अभी साबरमती के समझौते का महासमिति-द्वारा निपटारा होना था, जो ५ मई को हुई। इस बैठक में पंडित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "चूंकि शर्तों के ठीक-ठीक अर्थ के संबंध में समझौते पर हस्ताक्षर करने-वालों में इतना मतभेद है कि उसका दूर होना असम्भव है, इसलिए मैं पिछले कुछ दिनों से समझौते की जो बात-चीत चला रहा था वह भंग हो गई है, और इसलिए पैक्ट को समाप्त और रद समझा जाय।" वह इंग्लैण्ड जाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दो महीने की छुट्टी ली और श्री श्रीनिवास आयंगर ने उनका स्थान ग्रहण किया।

हिन्दू-मुसलिम दंगे

१९२६ के मध्य में हमें देश की राजनैतिक स्थिति का सिंहावलोकन करने के लिए ठहर जाना चाहिए। ६ अप्रैल १९२६ को लॉर्ड अर्विन भारत में आये। लगभग उसी समय कलकत्ते में बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दंगा हो गया। छः सप्ताह तक कलकत्ते की सड़कें हत्या-काण्ड और अव्यवस्था का अखाड़ा बनी रहीं। जगह-जगह सड़कों पर दंगे हुए, ११० जगह आग लगाई गई, मन्दिरों और मस्जिदों पर हमला किया गया। सरकारी बयान के अनुसार पहली मुठभेड़ में ४४ आदमी मरे और ५८४ घायल हुए और दूसरी मुठभेड़ में ६६ आदमी मरे और ३९१ घायल हुए। ६ सप्ताह के विध्वंस और हत्या-काण्ड के बाद दंगा शान्त हुआ। लॉर्ड अर्विन इन दंगों से बड़े बेचैन हुए। उन्होंने इस विषय पर जो भाषण दिये उनमें उन्होंने अपनी सारी आस्था और विह्वलता, सारी धर्म-भावना और सहृदयता रख दी। उन्होंने जनता को समझाया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन और धर्म के नाम पर भारत की उस सुकीर्ति को बचाओ जिसे वर्तमान वैमनस्य मिटा रहा है।

अगस्त के महीने में हिल्टन-यंग-कमीशन ने मुद्रा और विनिमय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और सरकार ने उसके अनुसार झटपट १८ पेंसवाला बिल पेश कर दिया। सरकार की इस जल्दबाजी की निन्दा हुई और उसने १९२७ की फरवरी तक ठहर जाना मंजूर कर लिया, जिससे लोगों और जानकारों को यह निर्णय करने का अवसर मिले कि कीमतें १८ पेंस के अनुपात पर आकर ठहर रही हैं या नहीं।

सितम्बर में लाला लाजपतराय और पण्डित मोतीलाला नेहरू में बड़ी

कौंसिल के काम के संबंध में फिर मतभेद उठ खड़ा हुआ। लालाजी का खयाल था कि स्वराजियों की 'वाक-आउट' की नीति हिन्दू-हितों के लिए स्पष्टतया हानिकर है। वह पद-ग्रहण करने के सम्वन्ध में सावरमती के समझौते की पुष्टि के पक्ष में भी थे। इसलिए उन्होंने वड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी से इस्तीफा दे दिया। वड़ी कौंसिल की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त होनेवाली थी। नये निर्वाचन सिर पर मौजूद थे।

इसी अवसर पर सर अव्दुलरहीम भारत-सरकार की कार्यकारिणी में एक मुसलमान की नियुक्ति की चेप्टा कर रहे थे। लॉर्ड अर्विन ने उसका करारा उत्तर दिया—"किसकी नियुक्ति सार्वजनिक हितों के लिए सवसे अधिक लाभकारी सिद्ध होगी, इसका निर्णय करने के संबंध में गवर्नर-जनरल स्वतंत्र रहेगा।" वास्तव में लॉर्ड अर्विन हरेक को साम्प्रदायिक ऐक्य के लाभ से प्रभावित कर रहे थे।

१९२६ के नवम्वर में निर्वाचन हुआ। मदरास में कांग्रेसी उम्मीदवार—अव वे स्वराजी न कहलाते थे—पूर्ण-रूप से विजयी हुए। लॉर्ड वर्केनहेड प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें, गोहाटी में कांग्रेस के सहयोग करने का कोई लक्षण दिखाई देता है या नहीं। श्री एस० श्रीनिवास आयंगर गोहाटी-कांग्रेस के सभापति चुने गये।

गोहाटी-कांग्रेस

गोहाटी-कांग्रेस स्वभावतः ही तनातनी के वातावरण में हुई। तनातनी का कारण सहयोग और असहयोग का पारस्परिक संघर्प था। यह याद रखने की वात है कि आरम्भ में असहयोग का अर्थ लगातार और एक-सी रुकावट डालना था, उसके वाद इस नीति का अनुसरण उस अवस्था में जव कौंसिलों में स्वराजियों का मताधिक्य हो, करने की वात कही गई। धीरे-धीरे यह सहयोग लगभग असहयोग के निकट आ लगा, क्या कौंसिलों की कमिटियों की निर्वाचन द्वारा प्राप्त होनेवाली जगहों के सम्वन्ध में, और क्या भारत-सरकार की कमिटियों की नामजद जगहों के सम्वन्ध में। अन्त में यह असहयोग सावरमती में सहयोग के आस-पास घूमने लगा, पर झिझक के साथ। कौंसिल-पार्टी इस सम्वन्ध में वात-चीत चलाने को तो तैयार थी, पर स्वीकार करने से संकोच करती थी। इसके अलावा स्वराज्य-पार्टी में भी सहयोग करने की प्रवृत्ति मौजूद थी। पर वह राष्ट्रीय-दल, स्वतन्त्र-दल या उदार दलवालों की स्थिति अपनाने को तो तैयार न थी। सहयोग के विचार को तो वह खिलवाड़ में उड़ाती थी, परन्तु स्वराजी खुद प्रतिसहयोग की, सम्मान-पूर्ण सहयोग की, सम्भव होने पर सहयोग

और आवश्यक होने पर अड़ंगा डालने की, और सुधारों के मामले में सहयोग करने की वात करते जरूर थे। इन्हीं सूक्ष्म पर पूर्ण-रूप से व्यावहारिक प्रश्नों ने प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में आपस में खिचाव पैदा कर दिया था। साथ ही सरकार भी खुल्लम-खुल्ला प्रशंसा करके, और अप्रत्यक्ष-रूप से उसे आमंत्रित करके, प्रलोभन दे रही थी और उन सारे हथकण्डों से काम ले रही थी, जिनके द्वारा अनिश्चित मस्तिष्क और भीरु-हृदय कावू में आते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या

यह खिचाव ही काफी सताने और तपानेवाला था, पर दुःखान्त न था। किन्तु जव अकस्मात् गोहाटी में यह समाचार पहुँचा कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को रोगशय्या पर, उनसे मुलाकात करने के वहाने, गोली मार दी तो यह और भी वढ़ गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन गोहाटी में कांग्रेस के सभापति का हाथी पर जुलूस निकाला जानेवाला था। आसाम हाथियों का देश ठहरा, इसलिए वह कांग्रेस के सभापति का सम्मान अद्भुत और अपूर्व ढंग से करना चहता था। पर जुलूस का विचार छोड़ देना पड़ा। हिन्दू-मुसलमान दोनों में इस दुःखदायी संवाद से शोक छा गया।

गोहाटी के प्रस्ताव हस्वमामूल थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के सम्वन्ध में प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और अनुमोदन मौलाना मुहम्मदअली ने। गांधीजी ने समझाया कि मजहव की असलियत क्या है, और हत्या के कारणों को वताया—"शायद अव आप लोग समझ जायँगे कि मैंने अव्दुलरशीद को भाई क्यों कहा। मैं तो उसे स्वामीजी की हत्या का दोषी तक नहीं ठहराता। दोषी तो असल में वे हैं जिन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध घृणा को उत्तेजित किया।" केनिया का नम्वर प्रस्तावों में दूसरा था। केनिया में प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध कानून और भी कठोर होता जा रहा था। आरम्भ में कर २० शिलिंग था। फिर वह मुद्रा-व्यवस्था की उलट-फेर के द्वारा वढ़ाकर ३० शिलिंग कर दिया गया और उसके वाद कानून के द्वारा ५० शिलिंग कर दिया गया। इस प्रकार वहां यूरोपियन हितों की रक्षा भारतीय हितों के, उनकी स्वतंत्रता के और उनकी आकांक्षाओं के विरुद्ध की जा रही थी। कौंसिलों के कार्यक्रम के सम्वन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया कि—

(अ) जवतक सरकार राष्ट्रीय मांग का ऐसा उत्तर न दे देगी जो कांग्रेस की या महासमिति की राय में सन्तोषजनक हो, तवतक कांग्रेसवादी मन्त्रित्व के पद को

या सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले और किसी पद को स्वयं ग्रहण न करेंगे, और अन्य पार्टियों-द्वारा मन्त्रि-मण्डल की रचना का विरोध करेंगे।

(आ) जबतक सरकार उपर्युक्त प्रकार का उत्तर न देगी तबतक कांग्रेसवादी (ई) धारा में वर्णित बातों का ध्यान रखते हुए धन-सम्बन्धी मांगों को अस्वीकार करेंगे और बजटों को रद करेंगे, जब कि महासमिति की आज्ञा कोई और प्रकार की न हो।

(इ) जिन कानूनों के द्वारा नौकरशाही अपनी शक्ति मजबूत करना चाहती हो उनके सम्बन्ध में किये गये सारे प्रस्तावों को कांग्रेसवादी फेंक देंगे।

(ई) कांग्रेसवादी ऐसे प्रस्ताव पेश करेंगे और ऐसे प्रस्तावों और बिलों का समर्थन करेंगे जो राष्ट्रीय जीवन की उचित वृद्धि के लिए, देश के आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी, उद्योग और व्यापार-सम्बन्धी हितों की उन्नति के लिए, और व्यक्तिगत तथा भाषण देने, सभा-संगठन करने और समाचार-पत्रों की आजादी और फलतः नौकरशाही को स्थान-च्युत करने के लिए आवश्यक हों।

(उ) कांग्रेसवादी कृषकों की दशा में उन्नति करने के निमित्त ऐसे प्रस्ताव स्वयं पेश करेंगे या उनका अनुमोदन करेंगे, जिनके द्वारा किसानों को मौरूसी हक प्राप्त हों और जिनके द्वारा किसानों की दशा में शीघ्र ही सुधार हो।

(ऊ) और खेती का काम करनेवाले और मिलों में काम करनेवाले मजदूरों के हितों की रक्षा करेंगे और जमींदार और किसान और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध में सामंजस्य स्थापित करेंगे।

बंगाल के नजरबन्दों के लिए विशेष कानून पास करने की नीति को धिक्कारा गया। देश में और देश के बाहर काम करने के सम्बन्ध में, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सम्बन्ध में, गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियों के और मुद्रा-नीति के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रस्ताव पास किये गये। अगले अधिवेशन के लिए स्थान नियत करने का काम महासमिति के ऊपर छोड़ दिया गया।

गोहाटी-कांग्रेस ने ग्राम-संगठन के काम पर जोर दिया और उन कांग्रेस-वादियों के लिए, जो प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए या कांग्रेस-संस्था की किसी भी प्रकार की समिति या उपसमिति के निर्वाचन के लिए राय देना चाहते हों, या जो स्वयं निर्वाचित होना चाहते हों या कांग्रेस की किसी भी संस्था की बैठक या समिति या उपसमिति में भाग लेना चाहते हों, खद्दर पहनना लाजिमी कर दिया।

इस जमाने में कांग्रेस का काम वार्षिक अधिवेशनों में लम्वे-चौड़े प्रस्ताव पास करना और कौंसिलों में मुठभेड़ करते रहना मात्र रह गया था। पर एक वात ऐसी भी थी जिसने उन दिनों में विशेषता धारण कर ली थी। जब से अखिल-भारतीय चर्खा-संघ वना खद्दर, ग्रामोन्नति और मितव्ययिता के पवित्र वातावरण में पनपने लगा। जिन स्त्री-पुरुषों ने खद्दर का व्रत ले लिया था वे अथक् रूप से इसके प्रचार में लगे हुए थे। वार्षिक प्रदर्शिनियों के द्वारा सिद्ध हुआ कि कताई ने कितनी उन्नति कर दिखाई है। विहार ने गोहाटी के अवसर पर खद्दर तैयार करने में अपनी छः-सात साल की जो उन्नति दिखाई वह सारे देश के लिए दृष्टांत-स्वरूप थी। दो-एक वर्षों को छोड़कर इधर बाकी वर्षों में प्रदर्शिनियां, जो अव कांग्रेस का अनिवार्य अंग हो गई हैं, सोलह आने खद्दर की प्रदर्शिनियां हो गई हैं। इन प्रदर्शिनियों ने देश की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के साथ ही साथ आर्थिक उन्नति की ओर भी ध्यान देने में सहायता पहुँचाई है और लोगों को विश्वास दिला दिया है कि स्वराज्य का अर्थ है **'निर्धनों के लिए भोजन और वस्त्र'**।

: ८ :

कांग्रेस का 'कौंसिल-मोर्चा'—१९२७

बड़ी कौंसिल में कांग्रेस का युद्ध

अब हमें भिन्न-भिन्न कौंसिलों में कांग्रेस-पार्टी-द्वारा किये गये काम का पर्यालोचन करना है। यह याद रहे कि बंगाल और माध्य-प्रान्त में पिछले तीन साल से द्वैध-शासन का अंत हो गया था। १९२७ में इन दोनों प्रान्तों में यह फिर कायम कर दिया गया। बंगाल में मंत्री के वेतन की मांग के पक्ष में ९४ रायें आईं, विपक्ष में ८८। मध्य-प्रान्त में पक्ष में ५५ और विपक्ष में १६। १९२६ के मार्च में स्वराज्य-पार्टी बड़ी कौंसिल से उठकर चली गई। उसका इरादा नये निर्वाचन समाप्त होने तक आने का न था। पर जब सरकार ने चाल चलकर १६ पेंस की बजाय १८ पेंस की दर लगाने का प्रस्ताव पेश किया तो स्वराज्य-पार्टी एक मिनट के लिए कौंसिल-भवन में आई और प्रस्ताव को अक्तूबर तक के लिए, अर्थात् वर्तमान कौंसिल भंग होने तक, स्थगित करा दिया। जब बड़ी कौंसिल की नई बैठक हुई तो हरेक को १८ पेंस की दरवाली बात पर उत्तेजना हो रही थी। प्रारम्भिक बैठक में पण्डितजी ने सरकार की नीति के ऊपर अपना पहला आक्रमण आरम्भ किया। उन्होंने सत्येन्द्रचन्द्र मित्र की—जो जेल में बन्द रहते हुए भी निर्वाचन के लिए चुने गये थे—अनुपस्थिति की चर्चा करने के लिए कौंसिल की बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव पेश किया। अभी हाल ही में १९३५ में बड़ी कौंसिल में ठीक इसी प्रकार का प्रस्ताव श्री शरतचन्द्र वसु की अनुपस्थिति के सम्बन्ध में पास हुआ। श्री शरतचन्द्र वसु निर्वाचन के समय जेल में शाही कैदी थे। पण्डितजी का कहना था कि श्री मित्र को जेल में बन्द रखकर सरकार बड़ी कौंसिल के हक पर और उन्हें चुननेवालों के अधिकारों पर आघात कर रही है। इस प्रश्न पर सरकार १८ रायों से हारी। पर तो भी श्री मित्र को बड़ी कौंसिल में भाग लेने के लिए स्वतंत्र न किया गया। बंगाल के नजरबन्दों का प्रश्न भी उठाया गया। पण्डितजी की मांग मूल प्रस्ताव के संशोधन के रूप में थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि या तो नजरबन्द छोड़ दिये जायँ या उनपर मामला चलाया जाय।

पण्डितजी का संशोधन १३ रायों की अधिकता से पास हो गया। श्री मित्रवाले प्रस्ताव के वाद वड़ी कौंसिल को स्थगित करने के लिए और भी कई प्रस्ताव पेश किये गये। उनमें से एक चीन को सेनायें भेजने के सम्वन्ध में था। दूसरा फिजी को भेजे गये भारतीय शिष्ट-मण्डल की रिपोर्ट प्रकाशित न करने के सम्वन्ध में था। इन प्रस्तावों को पेश करने की अनुमति नहीं मिली। एक और प्रस्ताव रेलवे-वजट की वहस समाप्त होने और वड़े वजट के पेश होने तक विनिमय की दरवाले प्रस्ताव को स्थगित करने के सम्वन्ध में था। यह प्रस्ताव ७ अधिक मत से पास हो गया। अन्तिम प्रस्ताव खड्गपुर की और वंगाल-नागपुर-रेलवे के अन्य स्थानों की हड़ताल की चर्चा करने के सम्वन्ध में था। इसके वाद सरकार में और निर्वाचित सदस्यों में कई प्रश्नों पर मुठभेड़ हुई। उनमें से एक प्रश्न फौलाद-संरक्षण-विल-सम्वन्धी था। इस विपय पर दो-एक शव्द कहना अप्रासंगिक न होगा। १९२३ के आसपास भारतीय फौलाद और लोहे के उद्योग को संरक्षण प्रदान करने का प्रश्न उठाया गया। टैरिफ-वोर्ड ने सरकार से आर्थिक सहायता देने की सिफारिश की और तीन वर्ष के वाद इस प्रश्न पर फिर विचार करने की भी सिफारिश की। यह समय वीत गया। इसके वाद इस प्रश्न पर दुवारा विचार किया गया तो टैरिफ-वोर्ड इस नतीजे पर पहुँचा कि वाहर से आनेवाले लोहे और फौलाद के माल पर अधिक चुंगी लगाई जाय, पर अंग्रेजी माल पर एकसी चुंगी लगे, और अन्य देशों के माल पर भिन्न-भिन्न प्रकार की चुंगियां लगाई जायँ। यह साम्राज्य के माल को तरजीह देने का प्रश्न था और लोकमत इसके विरुद्ध था। पर इस मामले पर खूव वहस करने के वाद सरकारी योजना को वड़ी कौंसिल नें स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय-दल के उपनायक श्री जयकर ने सारे वजट को रद करने का प्रस्ताव पेश किया और इस विषय पर चर्चा होने के वाद श्री जयकर का प्रस्ताव ८ या ९ रायों से पास हो गया। अव सवसे वड़ा प्रश्न १८ पेंस का आया। इसका प्रभाव भारत के मिल-मालिकों और व्यापारियों पर ही नहीं, किसानों पर भी पड़ता था। कच्चा माल और अन्न वाहर भेजनेवालों पर इसका प्रभाव विशेष रूप से पड़ता था। युद्ध से पहले और युद्ध के समय पौण्ड की दर १५) थी। अव यही १३।-)४ के वरावर हो गई। दूसरे शव्दों में वाहर से माल मंगानेवाले को माल मंगाने का उत्तेजन दिया गया, क्योंकि विदेशी माल फी रुपया २ पेंस सस्ता हो गया या फी १६ पेंस २ पेंस कम हो गया; अर्थात् ८ या १२$\frac{1}{2}$% सस्ता हो गया। इसी प्रकार वाहर भेजे जानेवाले कच्चे माल के सम्वन्ध में देखा जाय तो एक पौण्ड की कीमत का कपड़ा जो पहले १६ पेंस की दर पर भेजा जाता था, और १५) में

पड़ता था, अब १३।-)४ को पड़ने लगा; और जो कच्चा माल पौण्ड की कीमत का पहले १५) में बिकता था, अब १३।-)४ में बिकने लगा। इस प्रकार १९२५ में बाहर भेजे जानेवाले माल का हिसाब लगाया जाय तो किसान को ३१६ करोड़ के आठवें भाग का अर्थात् लगभग ४० करोड़ का हर साल घाटा होता रहेगा। यदि साल-भर में बाहर से आनेवाला माल २४९ करोड़ का था तो यह कहना कि बाहर से माल मंगानेवाले देश को ३१ करोड़ का नफा रहा, उसके लिए कोई संतोष प्रदान नहीं कर सकता, क्योंकि अब भी वह ४० करोड़ के घाटे में अर्थात् कुल मिलाकर ९ करोड़ के वार्षिक घाटे में रहा। इस प्रकार भारत जैसे देश को, जिसका व्यापारिक जमा-खर्च उसके अनुकूल है, अर्थात् वह-बाहर माल जितना भेजता है उससे कम माल मंगाता है, इस प्रकार का घाटा निरन्तर उठाना पड़ेगा। यही कारण था कि इस प्रश्न पर घमासान युद्ध हुआ, पर लोकमत को ३ रायों से हारना पड़ा और सरकार के पक्ष में ६८ रायें आईं। फौलाद-रक्षण, आर्थिक और दर-सम्बन्धी समस्याओं का निपटारा होने के बाद, १९२७ में बड़ी कौंसिल की दिल्ली की बैठक में कांग्रेस के लिए और कोई महत्त्वपूर्ण काम न रहा।

यहां हम कुछ रोचक घटनाओं का जिक्र करना ठीक समझते हैं। अध्यक्ष पटेल एकबार फिर अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने गांधीजी को अपने वेतन से १६५६) मासिक देते रहने का वचन दिया और २०००) अपने व्यय और अपने पद के अनुरूप मर्यादा और आराम के लिए रख छोड़े। गांधीजी इस थाती का प्रबन्ध-भार अकेले अपने ऊपर लेने को तैयार न थे। इसलिए और नेताओं से सलाह ली और दूसरे ट्रस्टी उसमें शामिल किये। ३१ मई १९३५ को गांधीजी ने गुजरात-प्रान्त के रास नामक स्थान पर एक बालिका-विद्यालय का उद्‌घाटन करते हुए कहा कि इस फण्ड के मद्धे उनके पास ४०,०००) हैं और उनके व्याज में से १०००) खर्च किया गया है।

गांधीजी ने साल-भर-क्षेत्र-संन्यास का जो व्रत कानपुर में धारण किया था उसकी मीयाद पूरी हो गई थी। उन्होंने हाल ही में राजनीति से जो विश्राम ग्रहण किया है और उसे जो लोग विचित्र या सनक समझते होंगे, वे इस कानपुरवाले व्रत के द्वारा इसका रहस्य समझ जायँगे। जब कभी कांग्रेस ने उनकी सलाह की अवहेलना की, उन्होंने उसके लिए रास्ता साफ कर दिया कि जिधर चाहे जाय। उन्होंने काम का आरम्भ देशबन्धु-स्मृति-कोष के लिए बिहार में दौरा करके किया। इस प्रकार संग्रह किया हुआ धन खद्दर-प्रचार में लगाया गया। कौंसिल के काम में उनके लिए कोई आकर्षण न था। लाला लाजपतराय तक को यह काम सार-हीन

प्रतीत हुआ था। उन्होंने कौंसिल के कार्य को निस्सार और शक्तियों का अपव्यय मात्र वताया था। लालाजी के वाद एस० श्रीनिवास आयंगर की वारी थी, जिन्होंने कहा, "वड़ी कौंसिल ऐसा स्थान नहीं, और प्रान्तीय कौंसिलें तो और भी कम, जहां राष्ट्रीय रूप में अड़ंगा-नीति सफल हो सके।"

दक्षिण अफरीका

१९२४ में दक्षिण-अफ्रीका में स्थिति वहुत ही वुरी थी और जनरल-स्मट्स 'सेग्रेगेशन विल' पास कराने ही वाले थे कि भारतीय कांग्रेस के अनुरोध से सरोजिनी-देवी पूर्वी-अफ्रीका से दक्षिण-अफ्रीका तक गईं और उनका वड़े जोर का स्वागत हुआ। विल लगभग पास हो चुका था, पर जनरल स्मट्स की सरकार ने इस्तीफा दिया, इसलिए वह विल भी त्याग दिया गया। १९२५ में जनरल हर्टजोग ने अधिकार प्राप्त किया और एक पहले से भी अधिक कठोर विल तैयार किया गया। इस विल का नाम था 'क्लास एरिया विल।' यदि यह यूनियन पार्लमेण्ट में पेश किया जाता तो सरकार और विरोधी दल दोनों इसके लिए स्वीकृति दे देते। दीनवन्धु एण्डरूज से गांधीजी और कांग्रेस ने वहां जाने का अनुरोध किया और उन्होंने तत्काल ही यह आवाज उठाई कि यदि विल पास हो जायगा तो गांधी-स्मट्स-समझौता भंग हो जायगा। वाद को भारत-सरकार ने पैडीसन-शिष्ट-मण्डल भेजा, जिसकी ओर यूनियन-सरकार ने अधिक ध्यान नहीं दिया। पर धीरे-धीरे यह तय हुआ कि प्रस्ताव को उस समय तक रोक रक्खा जाय जवतक भारत-सरकार का शिष्ट-मण्डल, जिसे यूनियन-सरकार के साथ समझौता करने का अधिकार प्राप्त है, पहुँचकर दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की स्थिति के सम्वन्ध में अच्छी तरह से चर्चा न कर ले।

१६ अक्तूवर १९२६ को दक्षिण-अफ्रीका के लिए एक भारतीय शिष्ट-मण्डल के नियत किये जाने की घोषणा हुई, जिसके नेता सर मुहम्मद हवीवुल्ला थे। १७ दिसम्वर १९२६ को एक परिषद् हुई, जिसका उद्घाटन दक्षिण-अफ्रीका के प्रधान-मंत्री जनरल हर्टजोग ने किया। यह अधिवेशन १९२७ की १३ जनवरी तक रहा और एक चालू समझौता दोनों प्रतिनिधि-मण्डलों में हुआ।

दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन-सरकार ने भारत-सरकार से प्रार्थना की कि वह दोनों सरकारों में लगातार व कारगर सहयोग वनाये रखने के लिए एक एजण्ट नियुक्त करे।

जब प्रथम केपटाउन-परिषद् खतम हुई तो गांधीजी ने, जो दक्षिण-अफ्रीका एजण्ट भेजने के पक्ष में थे ही, भारत के समाचार-पत्रों में माननीय श्रीनिवास शास्त्री का नाम पेश किया। सरकार व भारतीय-जनता फौरन ही इस सलाह से सहमत हो गये। जैसा हम बाद में देखेंगे, श्री शास्त्री की नियुक्ति का परिणाम अच्छा ही रहा।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का हल

जब गांधीजी ने अपना दौरा शुरू किया तो राजा-महाराजाओं के दिल का डर तो अब निकल चुका था और उनमें से कुछ ने तो गांधीजी को बुलाना भी शुरू कर दिया। वे अब खद्दर को इस नजर से न देखकर कि वह कांग्रेस-स्वयंसेवकों के फौजी-दल की राष्ट्रीय-पोशाक है, इस नजर से देखने लगे कि वह देश के आर्थिक उत्थान के लिए जरूरी चीज है। उन्होंने गांधीजी को एक सच्चा और ईमानदार आदमी पाया; हां, राजनैतिक क्षेत्र में काम करने के उनके उपाय उन्हें गुमराह करनेवाले और उनके राजनैतिक विचार कुछ सनकियों-जैसे मालूम होते थे। गांधीजी कुछ समय तक ही दौरा कर पाये थे कि बीमार पड़ गये। जब बम्बई में १५ व १६ मई को महासमिति की बैठक हुई, कार्य-समिति ने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का एक हल बनाकर उसके सामने पेश किया। महासमिति ने उसे मंजूर भी कर लिया। लेकिन आज इतने समय बाद जब हम उस हल को पढ़ते हैं और इस बात पर विचार करते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में उस समय से अबतक कितने उलट-फेर हो गये हैं, तो यह बात हमारे दिमाग में आये बिना नहीं रह सकती कि बम्बईवाला हल वास्तविकता से कोसों परे था। उसके बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि उसने प्रान्तों व केन्द्रीय धारा-सभाओं में संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली नियत की थी और आबादी के हिसाब से जगहों का बटवारा किया था। साथ में यह शर्त भी जोड़ दी गई कि यदि भिन्न-भिन्न जातियों में आपस में समझौता हो सके तो मय पंजाब के सिक्खों के अल्प-संख्यक जातियों के साथ रिआयत की जाय और उन्हें हिस्से से ज्यादा जगह दे दी जायँ और जिस हिसाब से उन्हें प्रान्तों में अधिक जगहें दी जायँ वही हिसाब बड़ी कौंसिल की जगहों के बटवारे में भी लागू हो।

चीन की आजादी की लड़ाई के साथ भारतीयों की सहानुभूति प्रकट की गई और चीन को फौजें भेजने की भारत-सरकार की कार्रवाई की निन्दा की गई; साथ-ही-साथ फौजों की वापसी की भी मांग की गई। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने चीन

को एम्बुलैन्स कोर भेजने का जो इरादा किया था उसकी भी महासमिति ने प्रशंसा की। ब्रिटेन का प्रस्तावित ट्रेड-यूनियन-कानून, बंगाल-कांग्रेस का झगड़ा, मजदूरों का संगठन, नागपुर का सत्याग्रह तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार ये अन्य विषय थे जिनपर महासमिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किये। इनमें आखिरी विषय पर गौर से विचार होना था।

इस समय मई के चौथे सप्ताह में एक बड़ा अनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। चार साल के जेल-जीवन के बाद सुभाष बाबू छोड़ दिये गये। लॉर्ड लिटन इस विषय में जरा घबराते रहते थे; अतः बंगाल के नजरबन्दों के साथ नरमी दिखाने का काम सर स्टैनले जैकसन के जिम्मे पड़ा। सुभाष बाबू का स्वास्थ्य पूरी तरह से बिगड़ गया था और इसी वजह से सबको बड़ी फिक्र होने लगी थी।

गुजरात की बाढ़

जुलाई १९२७ के अन्त में गुजरात प्रान्त में भीषण बाढ़ के रूप में एक दैवी विपत्ति आ गई। चार पांच दिन में ५० इंच से अधिक मूसलाधार पानी बरसने के कारण बहुत से गांव बह गये। मवेशी, झोपड़ियां, कपड़े-लत्ते कुछ न बचा, हजारों लोग बे-घर-बार हो गये। ४,००० घर बाढ़ की झपेट में आ गये। इन गांवों में ५०-६० फी सदी और कहीं कहीं ९० फी सदी मकान तक गिर गये। अहमदाबाद म्यूनिसिपल कमिटी तथा गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के अध्यक्ष सरदार पटेल के नेतृत्व में करीब २,००० स्वयंसेवकों ने इस बाढ़ में गजब का काम किया। एक सप्ताह तक तो सरकार की शासन मशीनरी बेकार पड़ी रही। सरकारी कर्मचारी किंकर्तव्य विमूढ़ से हो गये, लेकिन कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने पानी के अपार सागर को चीर कर विपत्ति ग्रस्त लोगों को भोजन और कपड़े की सहायता पहुँचाई। कई महीनों तक यह सहायता-कार्य चलता रहा और किसानों को मकान बनाने, खेत बोने तथा हल-बैल खरीदने आदि के कार्यों में कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने सरकार का पूरा सहयोग दिया। सरकार ने १,५४,००,००० रुपया दुर्भिक्ष कोष से दिया। अन्य संस्थाओं ने भी ३ लाख रुपया एकत्र किया। सभी संस्थाएँ मिलकर कांग्रेस के नेतृत्व में एक साल तक काम करती रहीं। बम्बई के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर चुन्नीलाल मेहता ने इन स्वयंसेवकों की और म० गांधी के ठोस कार्य की बहुत प्रशंसा की।

दंगों की बाढ़

सन् १९२७ की गर्मियों में अन्य सालों की भांति कोई मार्के का कानून पास नहीं हुआ, लेकिन देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की बाढ़-सी आ गई। सबसे भीषण दंगा लाहौर में हुआ, जो ३ मई से ७ मई तक होता रहा और जिसमें २७ व्यक्ति मारे गये और २७२ घायल हुए। बिहार, मुलतान (पंजाब), बरेली (युक्त-प्रान्त) व नागपुर (मध्य प्रान्त) में भी इसी प्रकार के दंगे हुए। लाहौर के बाद नागपुर का दंगा इन सबमें भीषण था, जिसमें १९ व्यक्ति मारे गये और १२३ घायल हुए। इन दंगों के पहले क्या-क्या घटनायें घटीं, जो इन दंगों में कछ का कारण बनीं, इसके बारे में कुछ कहना आवश्यक है। तीन साल पहले एक किताब छपी थी, जिसका नाम था 'रंगीला रसूल'। सरकार ने उसके लेखक पर मुकदमा चलाया, जो दो साल तक चलता रहा। अदालत ने दो साल की सजा का हुक्म सुनाया जो अपील में भी बहाल रहा, लेकिन हाईकोर्ट ने सजा रद कर दी और लेखक को बरी कर दिया। 'रिसाला वर्तमान केस' नाम का एक केस और भी हुआ; जिसमें अभियुक्त को सजा हो गई। इन दो मुकदमों का यह फल हुआ कि सरकार ने कानून में अनिश्चितता देखकर अगस्त १९२७ में असेम्बली में एक बिल पेश कर दिया, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार था :—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुँचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दों से या दृश्य-संकेतों से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओं का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उसपर सजा व जुर्माना दोनों होंगे।"

दो दिन बहस होकर ही बिल पास हो गया। अभीतक २५ दंगे हो चुके थे जिनमें १० युक्त-प्रान्त में, ६ बम्बई में और २-२ पंजाब, मध्य-प्रान्त, बंगाल, बिहार व दिल्ली में हुए थे। २९ अगस्त सन् १९२७ को भारतीय धारा-सभा में भाषण देते हुए वाइसराय लॉर्ड अर्विन ने बताया कि १८ महीने से भी कम समय में दंगों के कारण २५० व्यक्ति मौत के घाट उतर गये और २५०० से अधिक घायल हुए। वाइसराय ने एकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया इसके बाद एक एकता-सम्मेलन भी किया गया लेकिन उसे कुछ अधिक कामयाबी न मिली। महासमिति ने भी २७ अक्तूबर १९२७ को इसी प्रकार के एक एकता-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्घाटन श्री श्रीनिवास आयंगर ने किया, और बहुत लम्बी बहस के बाद सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया :—

"चूंकि भारत की किसी भी जाति को अपने धार्मिक कर्तव्यों अथवा धार्मिक विचारों को दूसरी जाति पर लादने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए और चूंकि हरेक जाति व व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था व सदाचार का विचार रखते हुए अपने धर्म में विश्वास रखने का और उसके अनुसार कार्य करने का अधिकार होना चाहिए, हिन्दुओं को धार्मिक व सामाजिक कार्यों के लिए हर मस्जिद के सामने जुलूस निकालने की और बाजा बजाने की स्वतंत्रता है; लेकिन उन्हें मस्जिदों के सामने न तो जुलूस रोकना चाहिए न कोई विशेष प्रदर्शन करना चाहिए और न ही मस्जिदों के सामने ऐसे भजन गाने चाहिएँ या ऐसी तरह बाजा बजाना चाहिए कि मस्जिदों के इबादत करनेवाले व नमाज पढ़नेवाले दिक हों या उनके कार्य में बाधा हो। जिस शहर या गांव में मुसलमानों को गो-वध करने का अधिकार है, उस शहर या गांव में उन्हें अपने इस अधिकार को काम में लाने की स्वतंत्रता होगी; लेकिन वे गो-वध न तो किसी आम रास्ते पर करेंगे; न किसी मन्दिर के पास। और न किसी ऐसी जगह पर कि जहां हिन्दुओं की नजर पड़ती हो। गायों को, उनका वध करने के लिए जुलूस में भी न निकाला जाय और न कोई विशेष प्रदर्शन किया जाय। चूंकि गो-वध के सम्बन्ध में हिन्दुओं की भावनायें बहुत गहरी जड़ पकड़ चुकी हैं अतः मुसलमानों से आग्रहपूर्वक अपील की जाती है कि वे गो-वध इस प्रकार न करें जिससे शहर या गांव के हिन्दुओं को दुःख पहुँचे।"

सम्मेलन ने उन्हीं दिनों के कुछ कातिलाना हमलों की भी निन्दा की और हिन्दू व मुसलमान नेताओं से अपील की कि वे देश में अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करें। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को भी यह अधिकार दिया कि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रान्त में एक-एक कमिटी नियुक्त करे।

एकता-सम्मेलन के खतम होते ही २८,२९ व ३० अक्तूबर १९२७ को कलकत्ता में महासमिति की बैठक हुई। साम्प्रदायिक प्रश्न पर एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव ज्यों-के-त्यों पास कर दिये गये। इसके पश्चात् बंगाल के नजरबन्दों का सवाल सामने आया। इन नज़रबन्दों में कुछ तो चार-चार साल से जेलों में पड़े हुए थे। इसलिए उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई कराने का प्रयत्न करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई।

कलकत्ते की बैठक में महासमिति ने जिन-जिन विषयों को उपयुक्त प्रस्तावों द्वारा निबटाया वे ये थे—अमरीका-स्थित भारतीय, भारत के हित-समर्थन के लिए

सिनेटर कोपलैण्ड के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश, श्री सकलातवाला को पासपोर्ट का न दिया जाना, तथा नाभा-नरेश का 'राज्य-च्युत' होना। यह प्रस्ताव गौहाटी में तो छोड़ दिया गया था, लेकिन कलकत्ते में इसपर फिर विचार हुआ। इस विषय को श्री वी० जी० हार्निमैन ने उठाया, जिसके फलस्वरूप महासमिति ने महाराज के साथ न्याय किये जाने के लिए एक प्रस्ताव कर दिया।

साइमन-कमीशन

नवम्बर के पहले हफ्ते में कुछ सनसनीदार बातें हुईं। वाइसराय अपने दौरे का कार्यक्रम रद करके वापस दिल्ली आ गये। भारत के मुख्य-मुख्य नेताओं को ५ नवम्बर व उसके बाद की तारीखों में सुविधानुसार वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिया गया। गांधीजी इस समय दिल्ली से बहुत दूर बंगलौर में थे। उन्हें भी वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण मिला। उन्होंने अपना कार्यक्रम रद कर दिया और दिल्ली आ पहुँचे। जब वह वाइसराय से जाकर मिले तो कोई ऐसी विशेष बात न निकली। लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी के हाथ में साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में भारत-मंत्री की घोषणा रख दी। जब गांधीजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या बस यही काम है, तो लॉर्ड अर्विन ने कहा, "बस, यही।" गांधीजी ने सोचा कि यह सन्देश तो एक आने के लिफाफे के जरिये भी उनके पास पहुँच सकता था। पर बात यह थी कि साइमन-कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय उसके प्रति सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। कांग्रेस के सिवाय भी भारत की सब पार्टियां साइमन-कमीशन की नियुक्ति से इसलिए नाराज हुईं कि उसमें एक भी भारतीय नहीं रक्खा गया। और कांग्रेस का यह मत स्वाभाविक ही था कि साइमन-कमीशन तो उसकी अधकचरी मांग के निकट भी कहीं नहीं पहुँचता। डॉ० बेसेण्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो क्या है?

श्री दिनशा वाचा जैसे अखिल-भारतीय नरम नेताओं ने कमीशन के खिलाफ एक घोषणा-पत्र निकाला। कांग्रेस के सिवा भारत के सब राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। मिस विल्किन्सन ने तो यहांतक कह डाला कि अमृतसर-काण्ड के पश्चात् ब्रिटिश-सरकार के किसी भी कार्य की भारत में इतनी भारी निन्दा नहीं हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। कांग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड के विचारों का हवाला दिया कि कमीशन के बहिष्कार से भारत के पक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।

और आखिरकार यह कमीशन जिसे हर जगह धिक्कारा जा रहा था, किस काम के लिए नियुक्त किया गया था? सरकारी शब्दों में कमीशन को यह काम सौंपा गया था कि वह "ब्रिटिश-भारत के शासन-कार्य की, शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओं के विकास की एवं तत्सम्बन्धी विषयों की जांच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नहीं? यदि है तो किस दरजे तक? और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा में स्थापित किया गया है, उसे बढ़ाया जाय; या कम किया जाय या उसमें और किसी प्रकार कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नों के साथ इस बात की रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तों में दो-दो कौंसिलों का स्थापित करना वाञ्छनीय है या नहीं?

"जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे देगा और उसपर भारत-सरकार व सम्राट् की सरकार विचार कर लेंगी तो सम्राट्-सरकार का यह फर्ज होगा कि वह पार्लमेण्ट के सामने अपने निर्णय पेश करे। लेकिन सम्राट्-सरकार का पार्लमेण्ट से यह कहने का इरादा नहीं है कि जबतक उक्त निर्णयों पर भारत के भिन्न-भिन्न विचारवालों की रायें जाहिर न हो जायँ उससे पहले ही वह उन निर्णयों को स्वीकृत कर ले। इसीलिए सम्राट्-सरकार ने निश्चय किया है कि वह पार्लमेण्ट से यह कहे कि ये निर्णय विचारार्थ दोनों हाउसों की एक ज्वाइण्ट (संयुक्त) कमिटी के सुपुर्द किये जायँ और इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारत की केन्द्रीय धारा-सभायें उक्त कमिटी के सामने अपने विचार पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजें जो ज्वाइन्ट कमिटी की बैठकों में भाग लें और उसके साथ विचार-विमर्श करें। ज्वाइन्ट-कमिटी जिन-जिन संस्थाओं के विचार जानना चाहे उसके प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने का भी उसे अधिकार हो।"

मदरास-कांग्रेस

अब हम १९२७ की कांग्रेस की ओर आते हैं, जो मदरास शहर में होनेवाली थी। जब गोहाटी की कांग्रेस हुई थी, लोगों ने इस बात को पसन्द नहीं किया था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन किसी कस्बे में हो; और अब तो अर्थात् १९२७ में शाही कमीशन आनेवाला था। कमीशन के सम्बन्ध में कांग्रेस को क्या करना होगा, यह ठीक-ठीक किसी को पता नहीं था। गोहाटी में अधिवेशन-स्थान का प्रश्न महासमिति पर ही छोड़ दिया गया था। और फिर सवाल यह था कि इस अधिवेशन का सभापति कौन

हो ? १९२७ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे। दो एकता-सम्मेलन हो चुके थे और महासमिति ने एक सम्मेलन के प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिये थे। ऐसे साल में कांग्रेस का सभापतित्व एक मुसलमान से बढ़कर और कौन कर सकता था ? और मुसलमानों में भी डॉ० अन्सारी से बढ़कर ? डॉ० अन्सारी १८९६ या १८९९ में मदरास मेडिकल कॉलेज के छात्र रहे थे और १९१२ में रेडक्रास-मिशन के साथ बालकन-प्रायद्वीप भी गये थे। डॉक्टरी में तो आप नाम पा ही चुके थे। डॉक्टरी-पेशे के बाहर भी अपनी शायस्तगी व विचारों की उदारता के कारण सुविख्यात थे। इसीलिए आप मदरास-कांग्रेस के सभापति चुने गये और, जैसी कि उम्मीद थी, आपने अपने भाषण में साम्प्रदायिक मेल-जोल के प्रश्न को खूब जगह दी। कांग्रेस की नीति का संक्षेप में वर्णन करते हुए आपने बताया कि कांग्रेस की नीति ३५ साल तक तो सहयोग की रही, फिर डेढ़ साल तक असहयोग की, और फिर चार साल कौंसिलों में अड़ंगेबाजी करने, और कौंसिल का काम ही रोक देने की। "असहयोग असफल सिद्ध नहीं हुआ," डॉ० अन्सारी ने कहा, "हम ही असहयोग के लिए असफल सिद्ध हुए।" इसके पश्चात् आपने शाही कमीशन, नजरबन्द, भारत व एशिया तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये। कांग्रेस-अधिवेशन में मि० स्प्रैट, मि० पार्सेल व पार्लमेण्ट के मजदूर-सदस्य मि० मार्डी जोन्स भी मौजूद थे। शाही कमीशन के प्रस्ताव के अलावा इस वर्ष के प्रस्तावों में कोई खास बात न थी। शोक-प्रस्ताव, साम्राज्यवाद-विरोधी-संघ, चीन, पासपोर्टों का न मिलना आदि ऐसे विषय थे जिनपर लगभग हर साल ही प्रस्ताव पास होते रहते थे। एक प्रस्ताव-द्वारा 'युद्ध के खतरे' की आवाज उठाई गई और कांग्रेस ने यह घोषणा की कि प्रत्येक भारतीय का यह फर्ज है कि वह ऐसे किसी युद्ध में भाग लेने से या सरकार से किसी भी प्रकार का सहयोग करने से इन्कार करे। जनरल अवारी की भूख-हड़ताल को ७५ वां दिन हो चुका था; उन्होंने शस्त्र-कानून के विरुद्ध सत्याग्रह, जिसका मुख्य भाग वर्जित हथियारों के साथ जुलूस निकालना था, छेड़ दिया था। जनरल अवारी को उनकी गैर-हाजिरी में ही बधाई दी गई और उनके साथ सहानुभूति प्रकट की गई। बर्मा को भारत से अलग करने के सरकारी प्रयत्नों की भी निन्दा की गई। स्मरण रहे कि १८८५ में जब पहली कांग्रेस हुई थी तब ही उसने बर्मा के ब्रिटिश-राज्य में मिलाये जाने का विरोध किया था और यह कहा था कि यदि दुर्भाग्यवश सरकार उसे मिलाने ही का निश्चय करे तो उसे सम्राट् के आधीन एक उपनिवेश (Crown Colony) बना दिया जाय। कांग्रेस ने शाही कैदियों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया

और उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई की मांग की। पूर्व-अफ्रीका व दक्षिण-अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में भी दो प्रस्ताव पास हुए। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी —राजनैतिक अधिकार व धार्मिक एवं अन्य अधिकार दोनों ही विषयों पर—एक प्रस्ताव महासमिति के प्रस्ताव के तर्ज पर पास किया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार पर भी एक प्रस्ताव पास किया गया; यह एक नया विषय था जो कांग्रेस के सामने कुछ वर्षों से प्रस्ताव के रूप में आ रहा था। चूंकि स्वराज्य का मसविदा तैयार करने की मांग की गई थी और कांग्रेस के सामने कई मसविदे पेश थे, अतः कांग्रेस ने कार्य-समिति को अधिकार दिया कि वह अन्य संस्थाओं से मशविरा करके स्वराज्य का मसविदा तैयार करे और उसे एक विशेष कन्वेन्शन (पंचायत) के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे। इस कार्य के लिए कार्य-समिति को और सदस्य बढ़ाने का भी अधिकार दिया गया। कांग्रेस के विधान में भी कुछ परिवर्त्तन किया गया। लेकिन इस वर्ष का सबसे मुख्य प्रस्ताव शाही कमीशन के सम्बन्ध में था, जिसे हम ज्यों-का-त्यों नीचे देते हैं :—

कमीशन का बहिष्कार

"चूंकि ब्रिटिश-सरकार ने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्मसम्मान-पूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर तरह से बहिष्कार करे। विशेष करके—

(अ) यह कांग्रेस भारत की जनता और देश की समस्त कांग्रेस-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि वे (१) कमीशन के भारत में आने के दिन सामूहिक प्रदर्शनों का आयोजन करें, और भारत के जिस-जिस शहर में कमीशन जाय वहां भी उस दिन इसी प्रकार के प्रदर्शन करें और (२) जोरों के साथ प्रचार-कार्य करके लोकमत को इस प्रकार संगठित करें कि हर तरह के राजनैतिक विचारवाले भारतीय कमीशन का जोरों से बहिष्कार करने के लिए तैयार हो जायँ।

(ब) यह कांग्रेस भारतीय कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों व भारत के राजनैतिक दलों व जातियों के नेताओं से तथा दूसरे लोगों से अनुरोध करती है कि वे न तो कमीशन के सामने गवाही दें, न सार्वजनिक अथवा खानगी तौर पर उसके साथ सहयोग करें, और न उसके सम्बन्ध में किये जानेवाले किसी सामाजिक उत्सव में भाग लें।

(स) यह कांग्रेस भारतीय धारा-सभाओं के गैर-सरकारी सदस्यों से अनुरोध

करती है कि वे (१) कमीशन के सिलसिले में बिठाई जानेवाली किसी भी "सिलेक्ट कमिटी" के लिए न तो राय दें और न उसकी सदस्यता स्वीकार करें और (२) कमीशन के कार्य के सम्बन्ध में अन्य जो कोई भी प्रस्ताव या खर्चे की मांग पेश की जाय उसे ठुकरा दें।

(द) यह कांग्रेस भारतीय धारा-सभाओं के सदस्यों से यह भी अनुरोध करती है कि वे निम्न सूरतों के सिवाय धारा-सभाओं की बैठकों में भाग न लें, अर्थात् यदि उनका स्थान रिक्त होने से बचाने के लिए या बहिष्कार को सफल व जोरदार बनाने के लिए, या किसी मन्त्रि-मण्डल को गिराने के लिए या किसी ऐसे महत्त्वपूर्ण कानून का विरोध करने के लिए जो कांग्रेस की कार्य-समिति की राय में भारत के हितों के विरुद्ध हो, ऐसा करना आवश्यक हो।

(य) यह कांग्रेस कार्य-समिति को अधिकार देती है कि बहिष्कार को प्रभावकारी व पूर्ण बनाने के लिए जहांतक हो सके वह दूसरी संस्थाओं व पार्टियों से सलाह-मशविरा करे और उनका सहयोग प्राप्त करे।"

काकोरी-केस के अभियुक्तों को बर्बरतापूर्ण सजायें दी जाने पर और उससे जनता में रोष की प्रबल भावना फैलने पर भी सरकार ने उनकी सजायें न घटाईं, उसपर भी एक विशेष प्रस्ताव-द्वारा दुःख प्रकट किया गया और कांग्रेस ने उनके परिवारों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

अन्त में कांग्रेस के ध्येय की भी एक पृथक् प्रस्ताव-द्वारा परिभाषा की गई। इसके अनुसार यह कहा गया, "यह कांग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता है।" यह प्रस्ताव कुछ साल तक कांग्रेस के हरेक अधिवेशन में पेश होता चला आ रहा था। यूरोप से जवाहरलालजी के लौट आने के कारण इस प्रस्ताव को और भी बल प्राप्त हुआ। स्वयं श्रीमती बेसेण्ट ने भी इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न देखी। आपने विषय-समिति की बैठक में कहा कि भारत के लक्ष्य का यह बड़ा ही शानदार व स्पष्ट वक्तव्य है। गांधीजी उस समय समिति की बैठक में मौजूद नहीं थे और उन्हें इस प्रस्ताव का पता तभी चला, जब कि वह पास हो गया।

: ९ :

भावी संग्राम के बीज—१९२८

कमीशन का बहिष्कार

जब १९२८ का साल प्रारम्भ हुआ तो देश के राजनैतिक वातावरण में साइमन-कमीशन की नियुक्ति के कारण सरकार के प्रति रोष-ही-रोष विद्यमान था। देश कमीशन के बहिष्कार में जी-जान से जुटा हुआ था। कमीशन की घोषणा करते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था कि भारतीय सम्मान तथा भारतीय गौरव को जान-बूझकर अपमानित करने का सम्राट्-सरकार का कोई इरादा नहीं है। पर साथ में उन्होंने इस बात की भी धमकी दे दी कि यदि कमीशन के कार्य में भारतीयों की सहायता न प्राप्त हुई तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लमेण्ट को पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद पार्लमेण्ट उसपर अपनी मर्जी के अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी करेगी।

३ फरवरी को कमीशन बम्बई में आकर उतरा। उस दिन भारत-भर में हड़ताल मनाई गई और कमीशन के बहिष्कार का श्रीगणेश कर दिया गया। अखिल-भारतीय हड़ताल के अलावा ३ फरवरी को और कोई मार्के की घटना नहीं हुई। हां, मदरास में हाइकोर्ट के पास भीड़ में अवश्य कुछ उत्तेजना दिखाई दी। वहां पुलिस ने दुर्भाग्य-वश भीड़ पर गोली चला ही दी, हालांकि काम शायद बिना गोली चलाये भी चल सकता था। पुलिस की गोली से कई व्यक्ति घायल हुए, जिनमें से एक तो जहां-का-तहां मर गया और दो बाद में जाकर मरे। कलकत्ते में भी छात्रों और पुलिस की मुठभेड़ हुई।

कमीशन बम्बई से चलकर सबसे पहले दिल्ली आया। दिल्ली शहर में जैसे ही कमीशन के चरण पड़े कि उसका विरोधी-प्रदर्शनों द्वारा विराट् स्वागत किया गया और "गो बैक, साइमन!" "साइमन वापस लौट जाओ!" के झण्डे तथा तख्ते दिखाये गये। दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जो आमतौर पर जस्टिस-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध है) व कुछ मुस्लिम-संस्थाओं को छोड़कर यह कहा जा सकता है कि भारत ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया।

कमीशन के वहिष्कार की इतनी भारी सफलता देखकर सरकार के मन में यह वात आई कि अव आतंक व दवाव से काम लेना चाहिए। लाहौर में कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करने के लिए लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक वड़ा भारी जन-समूह एकत्र हुआ। पुलिसवालों ने भीड़ पर हमला किया और कई प्रतिष्ठित नेताओं को डण्डों और लाठियों से ठोंका-पीटा। लालाजी के कई जगह गहरी चोटें आईं। यह एक आम ख़याल है कि लालाजी की मृत्यु इस वुजदिलाना हमले के कारण ही हुई थी। यद्यपि लालाजी की मृत्यु के सम्वन्ध में खुले तौर पर पुलिस पर यह अभियोग लगाया गया, तो भी सरकार ने निष्पक्ष जांच करने से साफ इन्कार कर दिया।

लखनऊ में भी कमीशन के आने के दिन निःशस्त्र व शान्त भीड़ पर पुलिस ने कई वार जान-वूझ कर व अकारण डण्डे वरसाये। युक्त-प्रान्त की पुलिस ने तो जवाहरलालजी तक को न छोड़ा। सव दलों के प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्त्ताओं पर डंडे व लाठियां वरसाने में तो मानो घुड़सवार व पैदल पुलिस ने अपनी सारी चतुराई ही खतम कर दी और वीसियों आदमियों को घायल कर डाला।

लखनऊ तो पैदल व घुड़सवार पुलिस के कारण एक विशाल फौजी पड़ाव-सा ही वन गया। चार दिन तक पुलिस के वर्वरतापूर्ण हमले होते रहे। पुलिसवाले लोगों के घरों तक में घुस गये और "साइमन वापस चले जाओ!" के नारे लगाने पर ही उन्होंने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया और वुरी तरह पीटा। लेकिन लखनऊ के जोशीले नागरिकों को धन्य है कि वे इन वर्वरतापूर्ण हमलों व कृत्यों से तनिक भी न घवराये और अपने प्रदर्शन और भी अधिक जोशो-ख़रोश के साथ करते रहे! अधिकारी-वर्ग को तो उन्होंने एकवार इतना छकाया कि वह देखता-का-देखता रह गया और सारा शहर हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। मामला इस प्रकार था। कुछ ताल्लुकेदारों ने कैसरवाग में साइमन-कमीशन को एक पार्टी दी। पुलिस ने कैसरवाग को चारों ओर से घेर लिया और ऐसे किसी भी आदमी को वाग की सड़कों के करीव न आने दिया जिसपर पुलिस विरोधी-दलवाला होने का सन्देह करने लगती थी। इतना अहतियात रखने पर भी जव आसमान से सैकड़ों काली-काली पतंगे व ग़ुव्वारे, जिनपर 'साइमन, चले जाओ', 'भारत भारतवासियों के लिए है' आदि शव्द लिखे हुए थे, आ-आकर वाग में गिरने लगे तो सारी पार्टी का मजा किर-किरा हो गया।

जव कमीशन पटना पहुँचा तो उसके विरोध में प्रदर्शन करने के लिए ५० हजार आदमियों की एक भारी भीड़ इकट्ठी हुई। कमीशन का स्वागत करने के

लिए भी कुछ सरकारी चपरासी और मुट्ठी-भर सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। सरकार ने आस-पास के गांवों से लारियों में भर-भरकर किसान बुलवाये, लेकिन स्वागत-कैम्पों में घुसने के बजाय वे बहिष्कार-कैम्पों में जा डटे। और स्टेशन पर विराट् जन-समूह ने कमीशन के विरोध में जो अहिंसा-पूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार पार्टियों के दल को देखकर तो सरकार की आंखें ही खुल गई।

"भारत के भिन्न-भिन्न भागों की जातियों व सम्प्रदायों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात्"—जैसा कि सर जान साइमन ने कहा था—कमीशन बम्बई से ३१ मार्च को रवाना हो गया। वास्तव में यह एक प्रकार की मिथ्योक्ति ही थी, क्योंकि सरकारी रिपोर्ट में स्वयं इस बात को स्वीकार किया गया है कि "असेम्बली के विरोधी दलों के नेता कमीशन का केवल सरकारी तौर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक तौर पर भी बहिष्कार करने के लिए बद्ध थे।" इसलिए सर जान साइमन और उनके साथियों का उनके सम्पर्क में आना असम्भव था।

कमीशन के भारत आते ही सर जान साइमन ने वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि कमीशन एक संयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन का रूप लेगा जिसमें एक ओर कमीशन के सातों अंग्रेज सदस्य होंगे और दूसरी ओर बड़ी कौंसिल-द्वारा चुने गये सातों भारतीय। सम्मेलन के सब सदस्यों को सब कागजात देखने का अधिकार होगा और भारतीय-सदस्य उसमें बराबरी के दर्जे पर माने जायँगे।

प्रान्तीय कौंसिलों से भी इसी प्रकार की प्रान्तीय सिलेक्ट कमिटियां चुनने की सिफारिश करने को कहा गया था। यह निश्चय हुआ कि जब केन्द्रीय विषयों पर कमीशन के सामने विचार होगा तो उसके साथ बड़ी कौंसिल-द्वारा निर्वाचित संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी और जब प्रान्तीय विषयों पर विचार होगा तो उस प्रान्तीय कौंसिल की सिलेक्ट कमिटी काम करेगी, जिसका उन विषयों से सम्बन्ध है। कमीशन अपनी रिपोर्ट अलग ब्रिटिश-सरकार को देगा और संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी अपनी रिपोर्ट अलग बड़ी कौंसिल को। इस घोषणा का भारत में कुछ असर न हुआ। घोषणा के निकलने के दो-तीन घंटे के भीतर ही राजनैतिक नेतागण दिल्ली में इकट्ठे हुए और यह घोषणा की कि कमीशन के खिलाफ उनकी जो आपत्तियां थीं वे ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और वे किसी भी हालत में कमीशन से सरोकार नहीं रखना चाहते। असेम्बली ने तो केन्द्रीय संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी के लिए अपने सदस्य तक चुनने से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने १६ फरवरी को असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि चूंकि कमीशन की सदस्यता व उसके कार्य की सारी योजना असेम्बली

'को अस्वीकार है अतः वह उससे किसी भी हालत में और किसी भी तरह कोई सरोकार नहीं रखना चाहती। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "कमीशन के साथ भारतीय उसी हालत में सहयोग कर सकेंगे जबकि उसमें भारतीय भी इतनी ही संख्या में नियुक्त किये जायँ।" प्रस्ताव ६२ के विरुद्ध ६८ रायों से पास हो गया। सरकार को लाचार होकर स्वयं केन्द्रीय कमिटी के लिए असेम्बली के सदस्य नामजद करने पड़े। यहां इस बात को सुनकर ताज्जुब होगा कि जब कमीशन बम्बई में घूम रहा था तो 'सर' की पदवी धारण करनेवाले २२ नाइटों में से एक ने भी कमीशन से मिलने की तकलीफ़ गवारा न की। देश में बहिष्कार की जो लहर फैली हुई थी उसका इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

प्रसंगवश यहां यह कह देना भी जरूरी है कि जहां कमीशन तो एक ओर अपने काम में आकर जुट गया, तहां उसके कुछ अधिक चतुर सदस्य, जो राजनीति के मुकाबले तिजारत में अधिक चाव रखते थे, इस बात के अध्ययन में लग गये कि भारत में तिजारत को बढ़ाने की किस तरफ गुंजाइश है। लॉर्ड बर्नहाम ने, जो कमीशन के एक सदस्य थे, देखा कि पंजाब में ब्रिटेन और भारत की तिजारत बढ़ाने की सबसे अधिक गुंजाइश है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत के बाजारों में ब्रिटेन की मोटरों, लारियों व ट्रैक्टरों की खपत बढ़ाने की सबसे अधिक गुंजाइश है।

सन् १९२८ की खास-खास घटनायें साइमन-कमीशन का देश में भ्रमण, सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें और बारडोली का आन्दोलन हैं। कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली में फरवरी-मार्च १९२८ में सर्वदल-सम्मेलन की बैठक की गई। सम्मेलन में उपस्थित संस्थायें और कांग्रेस इस बात पर एकमत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर विचार 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर ही होना चाहिए। दो महीनों में सम्मेलन की कुल मिलाकर २५ बैठकें हुईं और लगभग ⅘ समस्यायें शान्तिपूर्वक तय हो गईं। १९ मई को डॉ० अन्सारी के सभापतित्व में फिर सम्मेलन की बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धान्तों का मसविदा तैयार करने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देश की भिन्न-भिन्न संस्थाओं के पास भेजा जाय। २९ राजनैतिक संस्थाओं ने कमिटी नियुक्त करने के प्रस्ताव के पक्ष में राय दी। इस विषय पर आगे विचार फिर किया जायगा।

जून के महीने में दो-तीन घटनायें ऐसी हुईं जिनका हमें अवश्य जिक्र करना चाहिए। कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कलकत्ता में होनेवाला था और पं० मोतीलाल

नेहरू का नाम उसके सभापतित्व के लिए आमतौर से लिया जा रहा था। यह देखकर पण्डितजी ने 'एम्पायर पार्लमेण्टरी डेलीगेशन' की सस्दयता से भी, जिसके लिए उनको असेम्वली ने पिछले मार्च में अपने चार प्रतिनिधियों में से एक चुना था, इस्तीफा दे दिया। पण्डितजी ने अपने इस्तीफे का कारण राजनैतिक गगन में नई घटनाओं का होना वताया। स्वयं गांधीजी ने कहा—"वंगाल को वड़े नेहरू की जरूरत है। वह सम्मानपूर्ण समझौते के मार्ग को ग्रहण करनेवाले आदमियों में से हैं। देश को इसीकी जरूरत है और देश यही चाहता है, इसलिए नेहरूजी को ही इस कार्य के लिए पकड़ा जाय।"

वारडोली सत्याग्रह

दूसरी घटना ऐसी थी जिसपर कई दिनों तक लोगों का ध्यान आकर्षित होता रहा, वह है वारडोली का सत्याग्रह। वारडोली वह तहसील है जहां गांधीजी 'सामूहिक सविनय अवज्ञा' का प्रयोग करना चाहते थे, लेकिन दो-तीन वार इरादा वदलकर उन्होंने फरवरी १९२२ में आखिर इरादे को पूरी तरह से छोड़ ही दिया था। वारडोली में वन्दोवस्त, जो अक्सर २० या ३० साल में हर जगह हुआ करता है, होनेवाला था, वन्दोवस्त का और कोई परिणाम होता हो या न होता हो, यह एक परिणाम अवश्य होता है कि मालगुजारी लगभग २५% अवश्य वढ़ जाती है। वारडोली के आदमियों का कहना था कि उनपर मालगुजारी वढ़ने का कोई कारण नहीं होना चाहिए, क्योंकि जमीन से जो कुछ भी उनकी फसल वढ़ी है या अच्छी हुई है उसके लिए उनको वहुत परिश्रम और समय खर्च करना पड़ा था। उनका कहना विलकुल यह भी नहीं था कि कर वढ़ाया ही न जाय; वे तो केवल यह चाहते थे कि आर्थिक दशा व मजदूरी, सड़कों, कीमतों व करों की जांच करने के लिए एक निष्पक्ष कमिटी नियुक्त की जाय और यह देखा जाय कि मालगुजारी वढ़ाई जा सकती है या नहीं, और यदि हां, तो कितनी ? सरकार आमतौर पर अपनी मर्जी से, चुपचाप और विना किसी निश्चित सिद्धान्त के ही सव वातों का फैसला कर लेती है। जव कभी वह ऐसी या और कोई आर्थिक जांच करती है तो जनता की राय तक, सलाह तक, नहीं ली जाती। वारडोली में भी सरकार ने २५ प्रतिशत मालगुजारी वढ़ा दी। जांच कराने के सव वैध व प्रचलित उपायों को अमल में लाने की कोशिश की गई, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में चुनौती दे दी गई और करवन्दी-आन्दोलन शुरू हो गया—आन्दोलन स्वराज्य के लिए नहीं, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के एक अंग के रूप में भी नहीं, वल्कि किसानी

पेशे से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी एक शिकायत को रफा कराने के लिए। कांग्रेस ने पहले कोई दखल नहीं दिया। किसानों ने कर न देने का निश्चय पहले ही अपनी ताल्लुका-परिषद् में कर लिया था और सरदार वल्लभभाई पटेल को आमन्त्रित किया था कि उनका नेतृत्व करें। इसी हालत में सरदार पटेल ने आन्दोलन को संगठित किया। सरकार ने जानवरों की कुर्की करना शुरू किया। उसने बाहर से पठान बुला-बुलाकर अन्धाधुन्ध कुर्कियाँ करने की नीति अख्तियार कर ली। पठानों का बुलाना सरासर ज्यादती थी। लोगों ने कुर्कियां होने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली थी और सरकार के पास पशु-बल इतनी पर्याप्त-मात्रा में मौजूद था कि खूंखार प्रकृति व आदतों के लोगों का बुलाना सरासर अनावश्यक था। कहा जाता है कि सरकार ने लगभग ४० पठान बुला लिये थे; बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विल्सन ने कहा था कि उनकी संख्या केवल २५ ही थी। सवाल संख्या का नहीं था; सवाल यह था कि पठान बुलाये क्यों गये? इसके बाद जल्द ही, बम्बई-कौंसिल के कुछ निर्वाचित सदस्यों ने विरोध में कौंसिल की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया और आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगे। असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल ने भी वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने इस बात की धमकी दी कि यदि सरकार न झुकेगी तो वह इस्तीफा देकर इस काम में जुट जायँगे। आखिरकार एक मार्ग निकल ही आया, जिसके अनुसार एक तीसरे आदमी ने बढ़ाई गई मालगुजारी जमा कर दी; कैदियों की रिहाई की शर्त मान ली गई, जायदाद का लौटाया जाना तय हो गया और आन्दोलन वापस लेने का निश्चय हुआ।

सरकार ने एक अदालत बिठा दी, जिसमें न्याय-विभाग के और शासन-विभाग के प्रतिनिधि थे। अदालत ने मामले की जांच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल ६$\frac{1}{8}$ प्रतिशत बढ़ाई जाय। यह निर्णय अगस्त में हुआ और इसका फायदा चोरासी तहसील को भी हुआ। ज्ञात रहे कि चोरासी तहसील ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया था और बढ़े हुए कर भी दे दिये थे; यह देखकर सरकार ने बारडोली को सम्बोधित करके कहा भी था—"जब चोरासी तहसील कर दे सकती है, तो बारडोली ही क्यों नहीं दे सकती?"

यहां यह कहना शायद मनोरंजक होगा कि बम्बई-कौंसिल में भाषण देते हुए बम्बई के गवर्नर ने कहा था कि बारडोली के करबन्दी-आन्दोलन को कुचलने के लिए साम्राज्य की सारी शक्तियां लगा दी जायँगी। इसके कुछ दिन बाद ही फैसला हो गया। वास्तव में देखा जाय तो न तो कानून में ही और न मालगुजारी के नियमों

में ही ऐसा कोई विधान था कि उक्त प्रकार की ऐसी कोई अदालत जांच के लिए बिठाई जाय। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि अदालत ने यह सिफारिश की थी कि केवल ६$\frac{1}{4}$% मालगुजारी बढ़ाई जाय, लेकिन जब इन सब कारणों पर उपयुक्त विचार किया गया जिन्हें किसानों ने पेश किया था लेकिन जिनपर अदालत को विचार करने का अधिकार नहीं था, तो वास्तव में बारडोली तहसील में मालगुजारी बिलकुल बढ़ी ही नहीं और फ़ैसले के बाद भी अपनी पहली हद तक ही रही। समझौते की वास्तविक सफलता तो इस बात में थी कि बेची हुई जमीनें मालिकों को फिर वापस मिल गईं और पटेल व तलाटियों को अपनी जगहें फिर मिल गई।

सर्वदल सम्मेलन

नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें लखनऊ में फिर २८, २९ व ३० अगस्त १९२८ को हुईं। नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गई; सम्मेलन ने अपने-आपको औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया, यद्यपि उन राजनैतिक दलों को अपने विचारों के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता दी गई जिनका ध्येय 'पूर्ण-स्वतंत्रता' था। उन पूर्ण स्वतन्त्रतावादियों ने, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में न थे, सम्मेलन में एक वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिसमें यह बात स्पष्ट की गई कि भारत का विधान पूर्ण-स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश था कि वे उक्त प्रस्ताव से, जिसके द्वारा उन्हें कार्य-स्वतंत्रता दी गई थी, खूब फायदा उठावें। इसलिए जहां उन्होंने प्रस्ताव का समर्थन न करने का निश्चय किया, वहां उन्होंने सम्मेलन के कार्य में भी कोई बाधा न डाली। उन्होंने कहा कि इस प्रस्ताव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और इसीलिए वे न तो उसपर होनेवाली बहस में भाग लेंगे और न उसमें कोई संशोधन पेश करेंगे। सम्मेलन में जिन अन्य विषयों पर विचार हुआ वे सिन्ध, प्रान्तों का बटवारा तथा संयुक्त-निर्वाचन से सम्बन्ध रखते थे। एक प्रस्ताव पर बोलते हुए जवाहरलालजी की इस टिप्पणी से कि महमूदाबाद के महाराज व राजा रामपालसिंह जैसे ताल्लुकेदारों की समाज को कुछ आवश्यकता नहीं, कई लोग भड़क उठे। इसका यह परिणाम हुआ कि दूसरे दिन ही यह प्रस्ताव पास किया गया :—

"कामनवेल्थ की स्थापना के समय जो व्यक्ति जिस जायदाद का मालिक होगा और जो कानूनन उसे मिली होगी वह उससे नहीं छीनी जा सकेगी।"

लखनऊ में उक्त दोनों लोकप्रिय जमींदारों के अलावा डॉ० सप्रू, सर अली-

इमाम, सर शंकरन् नायर, श्री सच्चिदानन्द सिंह व सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी उपस्थित थे। ये सब केन्द्रीय या प्रान्तीय कार्यकारिणी के सदस्य रह चुके थे।

सम्मेलन की रिपोर्ट पर महासमिति ने दिल्ली में ४ व ५ नवम्बर को विचार किया। महासमिति ने पूर्ण-स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया, नेहरू-कमिटी के साम्प्रदायिक फैसले को स्वीकार किया और यह राय जाहिर करते हुए कि नेहरू-कमिटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में सहायक हैं उन्हें आमतौर पर स्वीकार किया, यद्यपि उसकी विगत की बातों में अपने हाथ-पांव नहीं बांध दिये।

अब हम फिर कौंसिलों की ओर आते हैं। वास्तव में देखा जाय तो कौंसिलों में अड़ंगे की नीति का, जिसमें विश्वास कम होता जा रहा था, स्थान 'साइमन' का बहिष्कार ले रहा था और वह दिन-पर-दिन जोर पकड़ता जा रहा था।

असेम्बली में

असेम्बली के कार्यक्रम में रिजर्व-बैंक-बिल व सार्वजनिक-रक्षा बिल दो ही मुख्य विषय थे। रिजर्व-बैंक-बिल सम्बन्धी लड़ाई कांग्रेस की सरकार के विरुद्ध सम्भवतः सबसे बड़ी लेकिन निरर्थक लड़ाई थी। सरकार का दावा था कि चूंकि यह बिल मुद्रा-सम्बन्धी नीति को भारत-मन्त्री के नियंत्रण से हटाकर देश के एक बैंक के नियंत्रण में कर देगा, अतः यह भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग में एक बड़ा पग होगा। लेकिन भारत-सरकार जैसी सरकार, जिसने द्वैध-शासन की योजना को अमल में लाते हुए इतनी खराबी मंजूर की, इतनी आसानी से और खुद-बखुद मुद्रा व बैंकिंग पर से अपना नियन्त्रण हटा लेने के लिए कैसे तैयार हो सकती थी? असेम्बली के सदस्यों को फौरन ही इस बात का सन्देह हो गया कि जनता के हितों के विरुद्ध सरकार अवश्य ही कुछ कर रही है। जब दोनों पक्ष प्रश्न की तह में उतरे तो कई विवाद-ग्रस्त बातें सामने आईं, जिनमें सबसे मुख्य यह प्रश्न था कि बैंक हिस्सेदारों का हो (जैसा कि सरकार चाहती थी) या सरकारी (जैसा कि जनता कहती थी)? इसके बाद दूसरा प्रश्न यह था कि बैंक के डाइरेक्टर-मण्डल का निर्वाचक कौन होगा और डाइरेक्टरों में कितने सदस्य नामजद होंगे और कितने चुने जायँगे और कैसे? यदि एकबार यह तय हो जाय कि बैंक का संगठन कैसा होगा तो शेष प्रश्न स्वयं हल हो जायँगे। यदि बैंक हिस्सेदारों का होगा तो हिस्सेदार ही उसके डाइरेक्टरों को चुनेंगे; लेकिन यदि बैंक सरकारी होगा तो डाइरेक्टरों का चुनाव व्यापार-मण्डल, प्रान्तीय सहकारी बैंक व केन्द्रीय व प्रान्तीय कौंसिलें आदि संस्थायें करेंगी। किस संस्था को कितने डाइरेक्टर चुनने का

अधिकार होगा, इसके पचड़े में पड़ना आवश्यक नहीं। केवल इतना ही कहना काफी है कि सरकार पहले इस बात पर तैयार थी कि १६ डाइरेक्टरों में से ६ चुने हुए हों। लेकिन अब सन् १९३४ में जो रिजर्व-बैंक-एक्ट बना है उसके अनुसार तो १६ में से केवल ८ ही डाइरेक्टर चुने हुए रक्खे गये हैं और सो भी इनका चुनाव चार-साल में जाकर होगा। जब बिल पर विचार प्रारम्भ हुआ तो उसमें कदम-कदम पर रद्दोबदल किया गया। अन्त में श्री श्रीनिवास आयंगर के प्रस्ताव पर सरकार इस बात के लिए तैयार हो गई कि बैंक स्टाक-होल्डरों का हो, अर्थात् बैंक की पूंजी तो सरकार लगाये लेकिन बाद में वह उस पूंजी को इस प्रकार बेच दे कि किसी भी व्यक्ति को १०,०००) से अधिक की पूंजी अर्थात् स्टाक न मिले। प्रत्येक स्टाक खरीदनेवाले अर्थात् स्टाक-होल्डर को डाइरेक्टरों के चुनाव में केवल एक मत देने का अधिकार हो। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब सब मामला तय हो जायगा। जब सरकार ने देखा कि सब लोग सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं तो उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और उसने उस बिल के बजाय एक दूसरा बिल पेश करने की सूचना दी। लेकिन अध्यक्ष महोदय ने कामन-सभा के प्रमुख-द्वारा निर्धारित एक सिद्धान्त का हवाला देते हुए कहा कि जब किसी ऐसे बिल में जो सभा के सामने पेश हो चुका हो, आवश्यक परिवर्त्तन करने हों, तो उचित मार्ग यह है कि मूल बिल को पहले वापस लिया जाय और फिर उसमें परिवर्त्तन करके उसे परिवर्तित रूप में दुबारा पेश किया जाय। अध्यक्ष के इस निर्णय के कारण सरकार ने पुराने बिल को ही कायम रखने का निश्चय किया, लेकिन चूंकि एक महत्त्वपूर्ण अंश के ऊपर मत-विभाग होते समय सरकार की हार हो गई इसलिए सरकार ने बिल पर विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

सार्वजनिक-रक्षा (पब्लिक सेफ्टी) बिल दूसरा बिल था, जिसपर खूब वाद-विवाद चला और जिसका कांग्रेस-पार्टी ने खूब विरोध किया। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह बिल विदेशियों के विरुद्ध काम में लाया जानेवाला था, किन्तु जनता को इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि देश-रक्षा-कानून की भांति यह कानून भी भारतीयों के विरुद्ध काम में लाया जायगा। जब बिल पर मत लिये गये तो दोनों ओर बराबर मत आये। अध्यक्ष ने बिल के विरुद्ध मत दिया और बिल गिर गया।

कलकत्ता-कांग्रेस

कलकत्ता-कांग्रेस राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक बड़े महत्त्व का सम्मेलन था, क्योंकि

नेहरू उसके सभापति चुने गये। इसके साथ सर्व-दल-सम्मेलन भी लगा हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते में हुआ। इस समय भारत में साइमन-कमीशन का दूसरा दौरा शुरू हो चुका था और जिस समय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था उस समय भी कमीशन देश का दौरा कर रहा था। पण्डितजी ने सभापति के अपने अभिभाषण में इस बात को बताया कि कमीशन का देश में, खासकर कानपुर, लाहौर व लखनऊ में, कितने जोर के साथ बहिष्कार हुआ और उस बहिष्कार ने एंग्लो-इण्डियनों के दिमाग पर क्या असर किया। कलकत्ते के कुछ गोरे अखबार तो यह सलाह तक देने लगे कि कम-से-कम बीस वर्ष तक भारत में फौलादी शासन किया जाय और जबतक एक रत्तीभर भी गोला-बारूद रह जाय तब तक भारतीय-स्वतंत्रता की मांग का मुकाबला किया जाय। पण्डितजी ने जोरदार शब्दों में बताया कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता है, जिसका स्वरूप इस बात पर निर्भर है कि वह किस समय और किस परिस्थिति में हमें प्राप्त होती है। आगे पण्डितजी ने इस बात पर जोर दिया कि "सर्व-दल-सम्मेलन जिस स्थल तक पहुँच गया है वहीं से सरकार को उसका कार्य शुरू कर देना चाहिए और जहांतक हम जा सकें वहांतक उसे हमारा साथ देना चाहिए।"

कलकत्ता-कांग्रेस की एक भारी विशेषता यह थी कि विदेशों से व्यक्तियों तथा संस्थाओं की सहानुभूति के सैकड़ों सन्देश प्राप्त हुए जिनमें न्यूयार्क से श्रीमती सरोजिनी नायडू के, श्रीमती सनयात सेन, मोशिये रोम्यां रोलां के और फारस के समाजवादी दल व न्यूजीलैण्ड के कम्यूनिस्ट-दल के सन्देश विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत के भविष्य के बारे में सरकार को अन्तिम चेतावनी देने के अलावा प्रस्तावों के विषय हर साल जैसे ही रहे। विदेशों से आये सन्देशों व बधाइयों के उत्तर में विदेशी मित्रों को भी उसी प्रकार के सन्देश व बधाइयां दी गईं और महासमिति को आदेश किया गया कि वह एक वैदेशिक विभाग खोलकर विदेशी मित्रों से सम्पर्क स्थापित करे। अखिल-एशिया-सम्मेलन का आयोजन भारत में करने के लिए भी एक प्रस्ताव पास किया गया। चीन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर उसे बधाई दी गई और मिश्र, सीरिया, फिलस्तीन व ईराक के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति दिखाई गई। साम्राज्य-विरोधी-संघ के द्वितीय विश्व-सम्मेलन के आयोजन का स्वागत किया गया और मदरास-कांग्रेस के 'युद्ध के खतरे' वाले प्रस्ताव को दोहराया गया। ब्रिटिश-माल के बहिष्कार के आन्दोलन पर भी जोर दिया गया। बारडोली की शानदार विजय पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बधाई दी गई। सरकारी उत्सवों व दरबारों तथा सरकारी अधिकारियों-द्वारा आयोजित या उनके सम्मान में किये जानेवाले अन्य सब

सरकारी तथा गैर-सरकारी उत्सवों में भाग लेने की कांग्रेस-वादियों को मनाही की गई। देशी-राज्यों में उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की भी एक प्रस्ताव-द्वारा मांग की गई। चूंकि देशी-राज्यों के सम्वन्ध में इस प्रस्ताव को लेकर देश में खूब आन्दोलन उठाया गया है जिससे इस प्रस्ताव का महत्त्व अब बढ़ गया है, इसलिए इसे हम यहां ज्यों-का-त्यों देते हैं :—

"यह कांग्रेस भारत के देशी-नरेशों से आग्रह-पूर्वक अनुरोध करती है कि वे अपने राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायी-शासन स्थापित करें और फौरन ही ऐसे आदेश जारी करें या कानून वनायें जिनके द्वारा सभा-संगठन के, स्वतन्त्रता से भाषण देने के व लेख लिखने के, जान-माल की रक्षा के व नागरिकता के तथा इसी प्रकार के अन्य मौलिक अधिकारों को सुरक्षित कर दिया जाय।"

नाभा के भूत-पूर्व नरेश के साथ सहानुभूति दिखाते हुए इस साल भी एक प्रस्ताव पास किया गया। जिन पांच वंगालियों की कारावास में ही मृत्यु हो गई थी उनके परिवारवालों के साथ भी कांग्रेस ने सहानुभूति प्रकट की। लाहौर में पुलिस-द्वारा किये गये धावों व खानातलाशियों की निन्दा की गई। लाला लाजपतराय, हकीम अजमलखां, आन्ध्र-रत्न श्री गोपाल कृष्णैया, श्री मगनलाल गांधी, श्री गोपबन्धु दास और लॉर्ड सिंह की स्मृति में एक प्रस्ताव पास किया गया।

सरकार को अन्तिम चेतावनी देने का जो प्रस्ताव पास हुआ वह इस प्रकार था :—

"सर्व-दल-समिति (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्ट में शासन-विधान की जो तजवीज पेश की गई है उसपर विचार करके कांग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारत की राजनैतिक व साम्प्रदायिक समस्याओं को हल करने में वहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है; और अपनी सव सिफारिशों को प्रायः सर्व-सम्मति से ही करने के लिए कमिटी को वधाई देती है। और यद्यपि यह कांग्रेस मदरास-कांग्रेस के पूर्णस्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह कमिटी-द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनैतिक प्रगति की दिशा में एक वड़ा पग मानकर उसे मंजूर करती है, खासकर इस विचार से कि देश के मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलों में जितना अधिक-से-अधिक मतैक्य हो सका है उसका वह सूचक है।

"अगर ब्रिटिश-पार्लमेण्ट इस विधान को ज्यों-का-त्यों ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार कर ले तो यह कांग्रेस इस विधान को अपना लेगी, वशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्त्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक

पार्लमेण्ट उसे मंजूर न करे या इसके पहले ही उसे नामंजूर कर दे तो कांग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द कर दे और उन अन्य तरीकों-द्वारा, जिनका बाद में निश्चय हो, अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन संगठित करेगी।

"कांग्रेस के नाम पर पूर्ण स्वाधीनता का प्रचार करने में यह प्रस्ताव कोई बाधा नहीं डालेगा, यदि ऐसा कार्य इस प्रस्ताव के विरुद्ध न हो।"

खुले अधिवेशन में जिस रूप में कलकत्ता-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पास हुआ वह तो ऊपर दिया जा चुका है; लेकिन गांधीजी के मूल प्रस्ताव में ३१ दिसम्बर १९२९ के बदले ३१ दिसम्बर १९३० तक की मीयाद थी तथा नीचे लिखा टुकड़ा था, जो बाद में हटा लिया गया :—

"सभापति को यह अधिकार दिया जाता है कि वह इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि और रिपोर्ट की प्रति वाइसराय महोदय के पास भिजवा दें जिससे कि वह उस पर अपनी मर्जी के माफिक जो कार्रवाई करना चाहें कर सकें।"

भावी कार्य-क्रम

कलकत्ता-कांग्रेस ने निम्न प्रस्ताव में अपना अगला कार्यक्रम भी निर्धारित किया :—

"इस बीच कांग्रेस का भावी कार्यक्रम यह होगा—

(१) सब नशीली चीजों का व्यवहार बन्द कराने के लिए कौंसिलों के भीतर और बाहर देश में हर तरह से कोशिश की जायगी। जहां कहीं भी उचित और संभव हो वहां शराब, अफीम आदि की दूकानों पर पिकेटिंग करने का प्रबन्ध किया जायगा।

(२) हाथ की कती और बुनी खादी की उत्पत्ति बढ़ाकर और उसके इस्तेमाल का प्रतिपादन करके विदेशी कपड़े का बहिष्कार कराने के लिए कौंसिलों के भीतर और बाहर स्थान व अवस्था के अनुसार तुरन्त उपयुक्त उपाय काम में लाये जायँगे।

(३) जहां कहीं लोगों को कोई खास तकलीफ हो और यदि वे लोग तैयार हों तो उस शिकायत को दूर कराने के लिए अहिंसात्मक अस्त्र का उपयोग किया जाय, जैसा कि हाल ही में बारडोली में किया गया था।

(४) कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के लिए जो सदस्य चुने गये हों उन्हें अपना अधिक समय कांग्रेस-कमिटी द्वारा समय-समय पर नियत किये गये रचनात्मक कार्यक्रम में लगाना होगा।

(५) नये सदस्यों की भर्ती करके और कड़ा अनुशासन रखके कांग्रेस-संगठन को सुदृढ़ बनाया जाय।

(६) स्त्रियों की अयोग्यताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा और उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में उचित भाग लेने के लिए प्रोत्साहित और आमन्त्रित किया जायगा।

(७) देश की सामाजिक कुरीतियां दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा।

(८) प्रत्येक कांग्रेसवादी का, जो हिन्दू हो, यह कर्तव्य होगा कि वह अस्पृश्यता को दूर करने के लिए जो कुछ कर सकता है करे और अछूत कहे जानेवालों को उनकी अयोग्यतायें दूर करने और अपनी हालत सुधारने के प्रयत्नों में यथासंभव सहायता दे।

(९) शहर के मजदूरों में काम करने के लिए, और चर्खे और खद्दर के द्वारा जो कार्य हो रहा है उसके अतिरिक्त ग्राम-संगठन का और कार्य करने के लिए, स्वयंसेवक भर्ती किये जायँगे।

(१०) राष्ट्र-निर्माण के कार्य को उसके भिन्न-भिन्न पहलुओं में बढ़ाने के लिए और राष्ट्रीय प्रयत्न में कांग्रेस को भिन्न-भिन्न कारोबार में लगे हुए लोगों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वे सब कार्य किये जायँगे जो उचित समझे जायँगे।

"कांग्रेस हरेक कांग्रेसवादी से आशा करती है कि वह उपर्युक्त कामों का खर्च चलाने के लिए यथाशक्ति अपनी आमदनी का कुछ भाग कांग्रेस-कोप को देता रहेगा।"

कलकत्ता-कांग्रेस के अन्य मुख्य प्रस्तावों में एक प्रस्ताव साम्राज्य-विरोधी संघ के मि० डब्ल्यू० जे० जान्स्टन के सम्बन्ध में था, जिन्हें संघ ने मित्र-प्रतिनिधि के रूप से कांग्रेस में भेजा था। उन्हें गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाये देश-निकाला देने पर सरकार की निन्दा की गई और यह मत प्रकट किया गया कि "सरकार ने यह कार्रवाई जान-बूझकर कांग्रेस के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढ़ने से रोकने के इरादे से की है।"

कलकत्ता-कांग्रेस में लगभग ५०,००० से अधिक मजदूरों-द्वारा किया गया प्रदर्शन सदा स्मरण रहेगा। आस-पास के मिल-क्षेत्रों के रहनेवाले मजदूर सुव्यवस्थित रूप से एक जुलूस बना कर कांग्रेस-नगर में घुस आये और राष्ट्रीय-झण्डे की सलामी करके पंडाल में आ गये और दो घंटे तक अपनी सभा करते रहे। 'भारत के लिए स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव पास करके वे लोग पंडाल छोड़कर चले गये।

देश में युवक-आन्दोलन का प्रादुर्भाव होना इस वर्ष की एक विशेषता थी।

देश में जगह-जगह युवक-संघ व छात्र-संघ बन गये। बम्बई व बंगाल में तो उनका बड़ा जोर था। अगस्त मास में हालैण्ड में यूड स्थान पर जो विश्व-युवक-सम्मेलन हुआ था उसमें इन संस्थाओं में से कुछ ने प्रतिनिधि भी भेजे। युवकों ने साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में किये गये बहिष्कार-प्रदर्शनों में भी खूब भाग लिया था। लखनऊ में पुलिस की लाठियों और डंडो की मार तो खास तौरपर उन्होंने खाई थी।

हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने कर्नाटक प्रान्त में बागलकोट में एक व्यायाम-शाला स्थापित की। उसने देश के भिन्न-भिन्न भागों में कई ट्रेनिंग-कैम्प खोले और मिहनत का मोटा-झोटा काम करने में नाम पा लिया।

गांधीजी की ओर

अब हमें पाठकों को यह बताना है कि गांधीजी अपने एकान्त-जीवन से कलकत्ता-कांग्रेस में कैसे आ फंसे। याद रहे कि उन्हें अहमदाबाद-कांग्रेस के बाद मार्च १९२२ में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। वह १९२२ की गया-कांग्रेस, सितम्बर १९२३ के दिल्ली के विशेष-अधिवेशन और १९२३ के कोकनडा के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। ५ फरवरी १९२४ को वह छूटे और बेलगांव-कांग्रेस के सभापति बने। कानपुर-कांग्रेस में स्वराज्य-पार्टी से साझेदारी—या जो कुछ कहिए—के पटना के निर्णयों पर कांग्रेस की छाप लगवाने के लिए ही वह आये थे। इसके बाद उन्होंने राजनीति में चुप्पी साधने की एक साल की शपथ खा ली और गोहाटी में उसे पूरा कर दिया। गोहाटी में उन्होंने कांग्रेस के बहस-मुबाहसों में सक्रिय भाग लिया, लेकिन मदरास में तो वह बिलकुल उदासीन रहे और विषय-समिति की बैठकों में भी भाग नहीं लिया। यह बात सन्देह-जनक ही थी कि वह कलकत्ता-कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेंगे या नहीं। कुछ वर्षों से वह कांग्रेस के सालाना अधिवेशनों के पहले एक मास वर्धा-आश्रम में बिताया करते थे। इस साल भी जब कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में दिसम्बर १९२८ में होने ही वाला था, वह वर्धा में थे। पंडित मोतीलाल नेहरू, जिन्हें स्वागतार्थ ३६ घोड़ों की गाड़ी में बिठाकर शहर में जुलूस में निकाला गया था, अपने-आपको बड़ी विकट परिस्थिति में पाने लगे। लखनऊ में सर्व-दल-सम्मेलन में जिन विरोधियों ने सभापति के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर करके औपनिवेशिक-स्वराज्य के विरोध में और स्वतंत्रता के पक्ष में घोषणा की थी, वे भी वहां मौजूद थे और उन्होंने अपना स्वाधीनता-संघ भी बना लिया। इनमें जवाहर-

लाल भी शामिल थे। बंगाल ने अपना संघ अलग बनाया था और श्री सुभाषचन्द्र वसु उसके मुखिया थे।

सर्व-दल-सम्मेलन के वारे में भी एक शब्द इस समय कहना बाकी है। सम्मेलन बुरी तरह असफल हुआ; मुसलमानों के सिवा अन्य अल्प-संख्यक जातियों ने एक-एक करके साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को धिक्कारा। उधर श्री जिन्ना भी, जो अभी इंग्लैण्ड से वापस आये थे और जिन्होंने आते ही नेहरू-रिपोर्ट को कोसना शुरू कर दिया था, उसका विरोध करने लगे। कुछ मुसलमान पहले ही उसकी मुखालफत जाहिर कर चुके थे। कोरम पूरा न होने के कारण श्री जिन्ना ने लीग की वैठक स्थगित कर दी। कलकत्ते में सर्व-दल-सम्मेलन रोग-शय्या पर या यों कहें कि मृत्यु-शय्या पर पहुँच चुका था। जितना ही अधिक वह जिन्दा रहा, उतनी ही अधिक उसके सम्बन्धियों की, जो वहां इकट्ठे हुए थे, मांगें बढ़ती जाती थीं। उसकी हालत सावरमती के बछड़े की तरह थी। न तो वह जिन्दा रह सकता था और न वह मरता ही था। उसे स्वर्ग में पहुँचाने की आवश्यकता थी। गांधीजी के अलावा उसे स्वर्ग-द्वार तक कौन पहुँचा सकता था। गांधीजी के अलावा इस मरते हुए जीव की आखिरी सेवा करने की हिम्मत और किसमें थी? अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन की कार्रवाई अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाय। प्रस्ताव पास हो गया। अव कांग्रेस निश्चित रूप से गांधीजी की ओर झुक रही थी; लेकिन वह अपने खुद के कई वोझों से लदी हुई थी। गांधीजी देखना चाहते थे कि कांग्रेस की कौंसिल-पार्टी कौंसिलों का मोह छोड़ देने के लिए क्या-क्या करने को तैयार है। दिल्ली में अक्तूबर १९२८ में महासमिति कौंसिलों के सम्वन्ध में निम्न प्रस्ताव पास कर ही चुकी थी :—

यह समिति दुःख के साथ इस वात को देखती है कि कांग्रेस के भिन्न-भिन्न कौंसिल-दलों ने कौंसिल-कार्य के सम्बन्ध में मदरास-कांग्रेस के प्रस्ताव में किये गये आदेशों पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए विपम परिस्थिति को देखकर यद्यपि कांग्रेस के कौंसिल-दलों को अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी तथापि समिति का विश्वास था कि कांग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट कायम रक्खी जायगी।"

इस प्रस्ताव में चार परस्पर-विरोधी स्थितियां दिखाई गई हैं। पहले निन्दा, फिर उसकी दर-गुजर, फिर कुछ कार्य-स्वतन्त्रता के लिए गुंजाइश और फिर कांग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट को न त्यागने की उम्मीद।

गांधीजी कलकत्ता गये, अधिवेशन के कार्य में खूब भाग लिया, प्रस्तावों की रूप-रेखा वनाई और उन्हें सामने लाये। राजनैतिक वातावरण इस समय वहुत

अन्धकारमय था। स्वतन्त्रता के हामियों पर मुकदमे चलने की अफवाहें, वाइसराय का कलकत्ता में उत्तेजनापूर्ण भाषण, "फारवर्ड" के सम्पादक को सजा होना, मदरास में मुकदमों का दौर-दौरा—ये ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने गांधीजी के ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। यद्यपि ये घटनायें स्वयं ही बहुत बेचैनी पैदा करनेवाली थीं, पर गांधीजी खास कलकत्ते की घटनाओं से और भी अधिक बेचैन हुए; अर्थात् जान-बूझकर एक समझौते का किया जाना और फिर उसका क्रमशः बंगाल, युक्त-प्रान्त और अन्त में मदरास-द्वारा तोड़ा जाना। इन दोनों बातों के अलावा गांधीजी के पास यूरोप आने का भी निमंत्रण था। परिस्थिति अनुकूल हुई तो, गांधीजी का पूरा इरादा था कि वह १६२६ के प्रारम्भ में ही यूरोप का दौरा शुरू करें। आश्चर्य की बात है कि पं० मोतीलाल नेहरू ने भी उन्हें इस बात की अनुमति दे दी थी। लेकिन खूब विचार कर लेने के बाद और मित्रों से खूब परामर्श कर लेने के बाद गांधीजी इस नतीजे पर पहुँचे कि कम-से-कम इस एक वर्ष के लिए तो उन्हें अपना दौरा बन्द रखना चाहिए। गांधीजी ने लिखा, "मैं अगले वर्ष के बारे में विचार भी नहीं कर सकता। डेनमार्क के मेरे एक मित्र ने लिखा है कि स्वतन्त्र-भारत का प्रतिनिधि होकर ही मेरा यूरोप आना श्रेयस्कर है। मैं इस कथन की सचाई महसूस करता हूँ।" हृदय की आवाज को पहचानकर गांधीजी ठीक निश्चय पर पहुँच गये; उन्होंने लिखा, "अन्तरात्मा की आवाज मुझे यूरोप जाने को नहीं कहती। इसके विपरीत, कांग्रेस के सामने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रस्ताव रखकर और उसका इतना सर्वव्यापी समर्थन देखकर मुझे यह महसूस होता है कि यदि अब मैं यूरोप चला गया तो मैं कार्य को छोड़ भागने का दोषी होऊँगा। अन्तरात्मा की एक आवाज मुझको कह रही है कि जो कुछ कार्य मेरे सामने आवे उसके लिए केवल तैयार ही न रहूँ बल्कि उस कार्यक्रम को, जो मेरी दृष्टि में बहुत बड़ा है, कार्यान्वित करने के लिए उपाय भी बताऊँ और सोचूं। इन सबके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि मुझे अगले साल की लड़ाई के लिए भी अपने-आपको तैयार करना चाहिए, चाहे उस लड़ाई का स्वरूप कैसा ही हो।"

यह फरवरी १६२६ के प्रथम सप्ताह की बात है। हमें अब देखना है कि फरवरी १६३० के लिए देश के भाग्य में क्या-क्या बदा था।

: १ :

तैयारी—१९२९

पब्लिक-सेफ्टी-बिल

१९२९ के आरम्भ में भारत की परिस्थिति वस्तुतः बड़ी विकट थी। इस समय साइमन-कमीशन के साथ-साथ सेण्ट्रल-कमिटी भी देश में दौरा कर रही थी। इस कमिटी में चार सदस्य तो राज्य-परिषद् के चुने हुए थे और पांच सरकार न असेम्बली में से मनोनीत कर दिये थे। साइमन-कमीशन ने भी १४ अप्रैल १९२९ में अपना भारतीय कार्य समाप्त कर दिया। कमीशनवाले विलायत में पहुँचे ही थे कि मई १९२९ में अनुदार-दल की सरकार साधारण चुनाव में हार गई। मजदूर-दल का मन्त्रि-मण्डल बना। मैकडानल्ड साहब प्रधान मंत्री बने और वेजवुड बेन साहब भारत-मंत्री। लॉर्ड अर्विन चार मास की छुट्टी लेकर जून में इंग्लैण्ड पहुँचे। इस यात्रा का उद्देश यह था कि "साइमन-कमीशन के परिणाम-स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लमेण्ट के समक्ष रक्खी जाय उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों का अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।"

लॉर्ड अर्विन ने वापस आकर नीति-सम्बन्धी जो वक्तव्य दिया उसपर तो हम उचित स्थान पर विचार करेंगे ही। तबतक कांग्रेस की कौंसिलों में होनेवाली लड़ाई का अध्ययन कर लें। पब्लिक-सेफ्टी-बिल जनवरी १९२९ में ही दुबारा पेश हो चुका था, परन्तु उसपर विचार अप्रैल में हुआ। ११ अप्रैल को अध्यक्ष महोदय ने इस बिल पर चर्चा की मनाही कर दी। २ अप्रैल को उन्होंने निम्न-लिखित वक्तव्य दिया :—

"पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर सिलेक्ट-कमिटी ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है। परन्तु उसपर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा आरम्भ करने की इजाजत देने से पहले मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। असेम्बली की पिछली बैठक के समय से ही

मैंने दो वातों पर परिश्रम-पूर्वक गौर किया है। इनमें से एक तो है पब्लिक-सेफ्टी-विल पर समय-समय पर दिये गये सरकारी पक्ष के नेता के भाषण, और दूसरी वात है मेरठ की अदालत में ३१ व्यक्तियों के विरुद्ध सरकार का दावा। इसके अध्ययन से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस विल का और इस मुकदमे का आधार एक ही है। माननीय सदस्य जानते हैं कि हमारी कार्रवाई के नियमों में एक यह भी है कि साम्राज्य के भीतर किसी अदालत में भी यदि कोई मामला विचाराधीन है तो उसके विषय में न कोई प्रश्न पूछा जा सकता है और न कोई प्रस्ताव रक्खा जा सकता है। अतः यह सवाल उठता है कि मेरठ के मुकदमे का कोई हवाला दिये विना इस सभा में पब्लिक-सेफ्टी-विल पर वाद-विवाद करना सम्भव है या नहीं? मेरी समझ से इस मामले में दो रायें नहीं हो सकतीं कि इस विल पर वास्तविक चर्चा होना असम्भव है। साथ ही विल को स्वीकार करने का मतलव उस मुकदमे के मूल-आधार को स्वीकार करना होगा और विल को अस्वीकार करने का अर्थ मुकदमे के आधार को अस्वीकार करना होगा। दोनों ही दशाओं में मुकदमे पर बुरा असर पड़ेगा, भले ही वादी घाटे में रहें या प्रतिवादी। ऐसी स्थिति में मैं नहीं समझता कि न्याय-पूर्वक मैं इस समय सरकार को इस विल के सम्बन्ध में आगे कार्रवाई करने की अनुमति कैसे दे सकता हूँ। इसलिए बजाय निर्णय देने के मैंने सरकार को यह सलाह देने का निश्चय किया है कि प्रथम तो मेरी दलीलों पर ध्यान देकर वह स्वयं मेरठ का मुकदमा खतम होने तक इस विल को स्थगित कर दे, और यदि वह इसी समय विल का पास होना ज्यादा जरूरी समझती है तो पहले मेरठ का मामला उठा ले और विल का मामला हाथ में ले।"

सरकार ने दोनों में से एक भी वात नहीं मानी और अध्यक्ष महोदय ने अपना अन्तिम निर्णय यह दिया कि "यह इस सभा की कार्यप्रणाली और शिष्टाचार विरुद्ध है" इसलिए इस प्रस्ताव पर चर्चा होने की इजाजत नहीं दी जा सकती। दूसरे ही दिन वाइसराय साहव ने दोनों धारा-सभाओं में भाषण दिये और घोषणा की कि सरकार के लिए पब्लिक-सेफ्टी-विल में प्रस्तावित अधिकारों का अविलम्ब प्राप्त करना अत्यावश्यक है। तदनुसार उन्होंने एक विशेष आज्ञा (आर्डिनेन्स) निकालकर अधिकारियों को, जैसी वे चाहते थे, अनियंत्रित सत्ता दे दी।

ट्रेड-डिस्प्यूट-विल अर्थात् मजदूरों और मालिकों के झगड़ों-सम्बन्धी प्रस्तावित कानून का जिक्र ऊपर आ चुका है। इस वारे में इतना कहना वाकी है कि यह विल ८ अप्रैल को पास हुआ और इसके पास होने के साथ-साथ एक स्मरणीय घटना भी

हो गई। घटना यह हुई कि जब राय लेने के बाद असेम्बली फिर से एकत्र हो रही थी और अध्यक्ष आगे की कार्रवाई की घोषणा कर रहे थे उसी समय दर्शकों के झरोखे में से सरकारी पक्ष के बीच में दो बम आकर गिरे और उनके फूटने से कुछ लोग जरा घायल हो गये।

उपसमितियां

कांग्रेस के कलकत्ते के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने कांग्रेस के निश्चयों को कार्य-रूप देने के लिए अनेक उप-समितियां बनाई। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक-द्रव्यों के निषेध, अस्पृश्यता के निवारण, महासभा के संगठन, स्वयं-सेवकों और स्त्रियों की बाधाओं को दूर करने के लिए कमिटियां नियुक्त की गई। मालूम होता है कि आखिरी कमिटी ने कोई काम नहीं किया और कोई रिपोर्ट पेश नहीं की।

स्वयं-सेवकों-सम्बन्धी उपसमिति ने कई सिफारिशें कीं। उसकी खास सूचना यह थी कि हिन्दुस्तानी-सेवादल को दृढ़ बनाया जाय और राष्ट्रीय कार्य के लिए स्वयंसेवक तैयार करने के लिए उसका पूरा उपयोग किया जाय। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार-समिति के अध्यक्ष थे गांधीजी और मंत्री थे श्री जयरामदास दौलतराम। यह समिति वर्षभर काम करती रही। बहिष्कार के पक्ष में जबरदस्त हलचल रही। बहिष्कार के काम में अपना सारा समय लगाने के लिए श्री जयरामदास ने बम्बई-कौंसिल का सदस्य-पद छोड़ दिया और अपनी समिति का केन्द्र बम्बई में बनाकर बैठ गये। मादक-द्रव्य-निषेध-समिति का काम चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के हाथ में था। इन्होंने इस कार्य को अपना खास विषय बना लिया और इस आन्दोलन की सफलता के लिए अपनी महान् योग्यता का पूरा उपयोग किया। यह कार्य अधिकतर दक्षिण-भारत और गुजरात में हुआ। सफलता भी अच्छी मिली। इस आन्दोलन की ओर विदेशों तक का ध्यान आकर्षित हुआ। नशे के विरुद्ध सरकारी तौर पर प्रचार करने के लिए मदरास-सरकार चार लाख रुपया खर्च करने को राजी हो गई। युक्तप्रान्त की सरकार से भी इसी प्रकार की कार्रवाई की आशा हुई। श्री राजगोपालाचार्य भारतीय मद्यपान-निषेध-संघ के मंत्री हुए और उसके अंग्रेजी त्रैमासिक मुख-पत्र 'प्रॉहिबिशन' का सम्पादन करते रहे। अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन का काम श्री जमनालाल बजाज के सुपुर्द किया गया। इन्होंने भी काफी परिश्रम किया। जो लोग दीर्घकाल से दलित रक्खे गये हैं उनकी

वाधायें दूर करने के लिए सर्वत्र लोकमत जाग्रत किया गया। जहां दलित-जातियों को मनाई थी, ऐसे अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। समिति को वहुत से कुएँ और पाठशालायें भी खुलवाने में सफलता मिली। कई म्युनिसिपैलिटियों ने इस कार्य में सहयोग दिया। समिति के मंत्री श्री जमनालाल वजाज ने मदरास, मध्यप्रान्त, राजस्थान, सिंध, पंजाव और सीमाप्रान्त में लंवे प्रवास किये। कांग्रेस के पुनस्संगठन के लिए जो समिति वनाई गई थी उसने साल के शुरू में ही अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।

गांधीजी पर जुरमाना

कौंसिलों की सितम्वर की वैठकों की राम-कहानी फिर से आरम्भ करने के पहले गांधीजी से सम्वन्ध रखनेवाली एक-दो घटनायें वर्णन कर देना आवश्यक है। गांधीजी उस समय भारत का दौरा कर रहे थे और वर्मा जाते हुए कलकत्ते से गुजरे। वहां विदेशी कपड़े की होली हुई और इस सम्वन्ध में मार्च १६२६ के दूसरे सप्ताह में उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होंने आज्ञाभंग की या आज्ञा-भंग में सहायता दी। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानों पर घास-फूस आदि न जलाया जाय। कलकत्ता के पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टैगार्ट ने कलकत्ता-पुलिस के कानून की ६६ वीं धारा की दूसरी कलम को खोद निकाला था। पुलिस का इरादा तो यह था कि इस कार्य को सविनय-अवज्ञा सिद्ध किया जाय। परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। गांधीजी पर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। उसके वाद उन्होंने आन्ध्रदेश की स्मरणीय यात्रा की और डेढ़ मास में खद्दर के लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये इकट्ठे किये। थोड़े दिन वाद मई १६२६ में महासमिति की वम्वई में वैठक हुई।

वम्वई में महासमिति

वम्वई की वैठक जरा महत्त्वपूर्ण थी। सरकार घोषणा कर चुकी थी कि असेम्वली का कार्य-काल वढ़ाया जायगा। इस वात पर भी कांग्रेस को कार्रवाई करने की जरूरत थी। इधर देश-भर में गिरफ्तारियों का तांता वंध गया था; कार्य-समिति के सदस्य श्री साम्वमूर्ति पकड़ लिये गये थे और पंजाव में घोर दमन-चक्र चल रहा था। इससे यह सन्देह होता था कि शायद और वातों के साथ-साथ इसका उद्देश लाहौर के कांग्रेस-अधिवेशन की तैयारियों में वाधा डालना भी हो। इन सव कारणों

से प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस की शाखाओं के लिए जोरदार कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। अतः बम्बई में यह निश्चय हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों में प्रान्त की समस्त जन-संख्या के ¼ फी सदी से कम चार आनेवाले सदस्य नहीं होने चाहिएँ और प्रान्तीय-कमिटी में कम-से-कम आधे जिलों के प्रतिनिधि होने चाहिएँ। जिला और तहसील-कमिटी में आवादी के कम-से-कम ¾ फी सदी चार आनेवाले सदस्य होने चाहिएँ और ग्राम-समिति में कम-से-कम एक फी सदी। कार्य-समिति को अधिकार दिया गया कि जो शाखा इन आदेशों का पालन न करे उसका सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकेगा। कार्य-समिति को यह भी सत्ता दी गई कि देश के हित के लिए वह जो उपाय उचित समझे उनका पालन असेम्बली और प्रान्तीय कौंसिलों के कांग्रेसी-सदस्यों से भी करा सके। पूर्व-अफ्रीका के विषय में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि वहां भारतीयों की राजनैतिक और आर्थिक समानता की लड़ाई में कांग्रेस पूरी हिमायत करे। समिति ने यह भी निश्चय किया कि कांग्रेस एक ऐसी पुस्तिका तैयार कराये जिसमें स्वराज्य-आन्दोलन के अन्तर्गत जिन राजनैतिक, शासन-सम्बन्धी, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का समावेश होता है उनपर अधिकार-पूर्ण परिच्छेद हों। इसके लिए महासमिति को आवश्यक ख़र्च करने का अधिकार दिया गया।

डॉ० सनयातसेन के मृत्यु-संस्कार के समय भिक्षु उत्तमा को कांग्रेस की ओर से उपस्थित रहने का जो अधिकार अध्यक्ष ने दिया था उसका कार्य-समिति ने समर्थन किया। श्री शिवप्रसाद गुप्त को साम्राज्य-विरोधक-संघ के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए भारत का प्रतिनिधि चुना गया। धारा-सभाओं में कांग्रेसी दल के बारे में कार्य-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि "बंगाल और आसाम के सिवा बड़ी या अन्य प्रान्तीय कौंसिलों के सारे कांग्रेसी सदस्य इन कौंसिलों की भी बैठक में अथवा उनके द्वारा अथवा सरकार-द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की किसी भी बैठक में तबतक शामिल न होंगे जबतक कि महासमिति या कार्य-समिति दूसरा निर्णय न करे। यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेसी सदस्य अबसे अपना सारा उपलब्ध समय कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगायेंगे। हां, बंगाल और आसाम की कौंसिलों के कांग्रेसी सदस्य निर्वाचित होने के बाद अपने नाम दर्ज कराने मात्र के लिए सिर्फ एक-एक बैठक में उपस्थित रह सकेंगे।"

मेरठ-षड्यन्त्र-केस

२० मार्च १९२९ के दिन बम्बई, पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में ताजिरात-हिन्द

की १२१ अ धारा के अनुसार सैकड़ों घरों की तलाशी ली गई। जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें महासमिति के ८ सदस्य भी थे। गिरफ्तार किये गये लोगों को मेरठ ले जाकर उनपर मुकदमा चलाया गया। अभियुक्तों पर अपराध साम्यवादी प्रचार का लगाया गया था। आगे चलकर "न्यू स्पार्क" के सम्पादक मिस्टर एच० एल० हचिसन भी अभियुक्तों में शामिल कर दिये गये। अभियुक्तों की सहायता के लिए, एक सेंट्रल डिफेन्स-कमिटी भी बनाई गई। इसमें मुख्यतः बड़े-बड़े कांग्रेसी ही थे। कार्य-समिति ने अभियुक्तों की सफाई के लिए अपनी साधारण परिपाटी छोड़कर भी १५००) की रकम मंजूर की थी। इस मुकदमे में प्रारम्भिक तफतीश में ही कई महीने लग गये और वर्ष का अन्त आ पहुँचा। भारत और इंग्लैण्ड में इस मुकदमे ने बड़ा नाम पाया। मुकदमे के समय सरकारी प्रकाशन-विभाग के सञ्चालक स्वयं उपस्थित रहते थे और मुकदमे-सम्बन्धी प्रचार और प्रकाशन के काम की खुद देख-भाल रखते थे।

१५ जुलाई को दिल्ली में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई। समिति ने राय दी कि भिन्न-भिन्न कौंसिलों के सदस्यों को इस्तीफा देने की सलाह देने में ही स्वराज्य-आन्दोलन का लाभ है। परन्तु इस प्रश्न के महत्त्व को देखते हुए कार्य-समिति ने सोचा कि अन्तिम निर्णय महासमिति को ही करना चाहिए। इसलिए यह निश्चय किया गया कि शुक्रवार २६ जुलाई १६२६ को प्रयाग में महासमिति की विशेष बैठक बुलाई जाय। स्मरण रहे कि कलकत्ते के मुख्य प्रस्ताव की अन्तिम धारा में लोगों से यह अनुरोध किया गया था कि वे अपनी आय का एक विशेष भाग कांग्रेस को दें। पहले-पहल ५ फी सदी रक्खा गया और बाद में २½ फी सदी, परन्तु फिर समिति ने यह मामला लोगों की इच्छा पर ही छोड़ दिया। जुलाई के बुलेटिन में इस चन्दे की सूची प्रकाशित की गई थी, जिससे मालूम हुआ कि सब मिलाकर बहुत थोड़ा रुपया प्राप्त हुआ था।

दमन-चक्र जारी

देश में यह बड़ा दमन-काल था। इस समय सरकार ने डॉ० सण्डरलैंड की "इंडिया इन बॉण्डेज" नामक पुस्तक को निषिद्ध ठहरा दिया और इसके प्रकाशित करने के अपराध में 'मॉडर्न-रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी को गिरफ्तार कर लिया। असेम्बली-बम-केस के अभियुक्त श्री भगतसिंह और दत्त को आजन्म काले-पानी की सजा दी गई। उन्होंने प्रकट किया था कि बम तो प्रदर्शन के लिए फेंका गया था। लाहौर षड्यन्त्र-केस के अभियुक्तों की भूख-हड़ताल का वर्णन विस्तार से

किया ही जा चुका है। कलकत्ते में भी एक सामूहिक अभियोग चल रहा था। इसमें कार्य-समिति के सदस्य श्री सुभाषचन्द्र वसु और अन्य कई प्रमुख कांग्रेसी अभियुक्त थे। शंघाई से और मलाया राज्यों से भी राजनैतिक कारणों से भारतीयों की गिरफ्तारी के समाचार मिले थे।

ये वहुसंख्यक मुकदमे तो चल ही रहे थे और राजनैतिक और मजदूर-कार्यकर्त्ताओं को सजायें दी ही जा रही थीं। इनके सिवा पुलिस दमन के ऐसे तरीके भी इस्तेमाल कर रही थी जिन्हें महासमिति ने जंगली वताया। एक अवसर पर लाहौर के अभियुक्तों की सफाई के लिए धन एकत्र करनेवाले सात युवकों को पुलिस ने जिला-मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में इतना मारा कि उनमें से कुछ वे-सुध तक हो गये। चोटें तो सभी को गहरी लगीं। उनका अपराध था 'साम्राज्यवाद का नाश हो' और 'क्रान्ति अमर हो' के नारे लगाना। लाहौर-षड्यन्त्र के अभियुक्तों के साथ इससे भी अधिक पाशविक व्यवहार किया गया। वे न्यायाधीश के सामने खुली अदालत में पीटे गये—और, कहा जाता है कि, अदालत के वाहर भी उनके साथ कई तरह का दुर्व्यवहार किया गया। यह भी भूलने की वात नहीं है कि भारत के भिन्न-भिन्न जेलों में और अण्डमान-द्वीप में वहुत-से लम्बी सजाओंवाले राजनैतिक कैदी भी थे। इनमें १८१८ के तीसरे रेग्युलेशन के शिकार नजरवन्द और फौजी-कानून के शिकार दूसरे कैदी भी थे। इन कैदियों को १९१९ में पंजाव के फौजी-शासन-द्वारा स्थापित विशेष अदालतों ने सजायें दी थीं। इनके सिवा जेलों में २७ राजनैतिक कैदी वे भी थे जिन्हें युद्धकाल में, अर्थात् सन् १९१४–१५ में, काले-पानी की सजायें दी गई थीं। इनके मुकदमे भी विशेष कमीशनों के सामने हुए थे, मामूली अदालतों में नहीं। इस समय तक ये लोग १५–१५ वर्ष की जेल काट चुके थे।

कलकत्ता-कांग्रेस के वाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने ३० पौण्ड मासिक की रकम इसलिए मंजूर की कि वर्लिन में भारतीय छात्रों को सलाह और सहायता देनेवाली एक समिति स्थापित की जाय।

कलकत्ता-कांग्रेस ने महा-समिति को वैदेशिक विभाग खोलने का आदेश दिया था। कार्य-समिति ने इस मामले में आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार प्रधान-मंत्री को दे दिया। वह स्वयं इस विभाग की देख-भाल रखने लगे। उन्होंने अन्य देशों के व्यक्तियों और संस्थाओं से सम्वन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि सरकार की कड़ी नजर के कारण विदेशों से पत्र-व्यवहार रखने में अनेक वाधायें आती थीं।

महा-समिति के निर्णयानुसार समिति के कार्यालय की शाखा के रूप में ही मजदूरों-सम्बन्धी प्रश्नों के लिए एक अनुसंधान-विभाग भी खोला गया।

हिन्दुस्तानी सेवा-दल ने स्वयंसेवक तैयार करने का कार्य देश के भिन्न-भिन्न भागों में किया। अधिकतर कार्य तो कर्नाटक में ही हुआ। वहीं दल का दफ्तर और व्यायाम-मन्दिर भी था। परन्तु दल की छावनियां देश के अन्य भागों में भी बहुत थीं और शिक्षकों की मांग इतनी रही कि पूरी न की जा सकी। कांग्रेस के सदस्य बनाने और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के काम में दल ने बड़ी मदद दी। लाहौर-कांग्रेस के लिए चुस्त स्वयंसेवक-सैन्य संगठित करने में दल ने पूरा सहयोग दिया। मासिक झण्डाभिवादन के कार्यक्रम का संगठन करने में हिन्दुस्तानी-सेवादल को आशातीत सफलता मिली। दल ने कलकत्ते में निश्चय किया कि हर महीने के आखिरी रविवार को सुबह ८ बजे देशभर में राष्ट्र-ध्वज फहराया जाय। मासिक झण्डाभिवादन का कार्यक्रम खूब लोकप्रिय हुआ। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियों ने भी अपनी इमारतों पर विधि-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डे लगाये। हिन्दुस्तानी-सेवादल की पुनर्रचना की गई।

यतीन्द्र का अनशन

पिछले महीनों से अगस्त कुछ अच्छा नहीं निकला। नेताओं की गिरफ्तारियां सर्वत्र जारी रहीं। पंजाब में सरदार मंगलसिंह, मौलाना जफरअलीखां, मास्टर मोतासिंह और डॉ० सत्यपाल तथा आन्ध्र-देश में श्री अन्नपूर्णय्या पकड़े गये। मास्टरजी तो बेचारे ७ वर्ष की सजा काटकर निकले ही थे। डॉ० सत्यपाल को दो वर्ष की कड़ी कैद मिली। पंजाब में दमन का जोर खास तौर पर रहा। बाहर तो लोग यों पकड़े ही जा रहे थे; जेलों के भीतर भी अत्यंत कठोरता का व्यवहार किया जा रहा था। श्री भगतसिंह, दत्त और अन्य कई कैदियों की भूख-हड़ताल को इस समय तक डेढ़ महीना हो चुका था। श्री भगतसिंह और दत्त को हाल ही में असेम्बली-बम-केस में तो आजीवन काले-पानी की सजा हुई थी। ये दोनों लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमे में भी अभियुक्त थे। हां, पीछे से श्री दत्त को इस मुकदमे में छोड़ दिया गया था। यह मुकदमा लाहौर-पुलिस के मिस्टर सांडर्स नामक अफसर की हत्या के कारण हुआ था। यह हत्या १७ सितम्बर १९२८ को दिन के ४ बजे हुई थी। भूख-हड़ताल का उद्देश कुछ कष्टों का निवारण और खास तौर पर कैदियों के लिए मनुष्योचित व्यवहार की प्राप्ति करना था। अनशन करनेवालों में विख्यात श्री० यतीन्द्रनाथ दास

मुख्य थे। श्री यतीन्द्र की शिकायत यह थी कि गोरे और हिन्दुस्तानी कैदियों के साथ भेद-भाव-पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इन भूख-हड़तालियों को जो खास रिआयतें दी गई थीं, उनकी यतीन्द्र ने कुछ परवा नहीं की और मैक्स्विनी की भांति अकेले ही भूख-हड़ताल पर अन्त तक डटे रहे और चौंसठवें दिन चल बसे।

प्रयाग में महासमिति की बैठक के अवसर पर अखिल-भारतीय राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल की स्थापना हुई। इस बैठक में महासमिति ने कार्य-समिति के इस मत का समर्थन किया कि कौंसिलों के कांग्रेसवादी सदस्यों को इस्तीफे दे देने चाहिएँ, परन्तु इस विषय पर जो पत्र प्राप्त हुए उनको ध्यान में रखकर इस विषय को लाहौर-कांग्रेस के बाद के लिए स्थगित रखना ही उचित समझा। इसका यह अर्थ नहीं था कि जो पहले त्याग-पत्र देना चाहें उन्हें मनाई की गई हो।

पंजाब की भूख-हड़ताल का उल्लेख संक्षेप में ऊपर किया गया है। इन हड़तालों से सरकार हैरान हुई। उसने सोचा कि ये हड़तालें लाहौर-षड्यन्त्र केस में पुलिस को तंग करने के अभिप्राय से की गई हैं। अतः १२ सितम्बर १९२९ को सरकार ने असेम्बली में एक बिल पेश किया। इस बिल में न्यायाधीशों को अधिकार दिया गया था कि यदि अभियुक्त लोग अपने ही कृत्यों से अपने को अदालत में उपस्थित होने में असमर्थ बना लें तो उनकी अनुपस्थिति में भी मुकदमे की कार्रवाई जारी रह सकती है। किन्तु १६ सितम्बर को सरकार ने यह देखकर कि इस बिल पर बड़ा मतभेद है, यह मंजूर कर लिया कि इसपर और अधिक राय ली जाय, परन्तु साथ ही सरकार ने अपना यह हक सुरक्षित रख लिया कि भविष्य में आवश्यकता हुई तो सरकार अपने प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करेगी। और आखिर हुआ भी ऐसा ही। गवर्नर-जनरल ने लाहौर-षड्यन्त्र-केस के बारे में एक आर्डिनेन्स निकाल दिया।

लाहौर-कांग्रेस का सभापतित्व

भविष्य के गर्भ में बड़ी-बड़ी घटनायें छिपी थीं। लाहौर-कांग्रेस के लिए सभापति के प्रश्न पर दस प्रान्तों ने गांधीजी के लिए, पांच ने श्री वल्लभभाई पटेल के लिए और तीन ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए राय दी। गांधीजी का चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया। परन्तु उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। विधान के अनुसार उनके स्थान पर दूसरे का निर्वाचन आवश्यक हुआ। अतः २८ सितम्बर १९२९ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गांधीजी पर लगी हुई थी। वे ही ऐसे व्यक्ति दीखते थे जो कांग्रेस की रक्षा और उसे विजय-पथ पर अग्रसर

कर सकते थे। कौंसिलों और उनके कुछ सदस्यों से पण्डित मोतीलाल जैसों का भी उकता उठना छिपा नहीं रह गया था। यह संकेत स्पष्टतः आ चुका था कि कौंसिलों की मेम्बरी छोड़ दी जाय, पर आगे क्या किया जाय? सविनय-अवज्ञा के सिवाय चारा ही क्या था? परन्तु इस नवीन मार्ग पर गांधीजी के अतिरिक्त राष्ट्र का सफल पथ-प्रदर्शन और कौन करे? उन्हें पहले भी दवाया गया था। लखनऊ में उनपर फिर जोर डाला गया कि वह अपनी अस्वीकृति वापस ले लें। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने कांग्रेस की गद्दी पर ऐसे किसी युवक को ही बिठाने की सलाह दी जिसपर देश के युवक-हृदयों की श्रद्धा हो। गांधीजी ने इसके लिए युवक जवाहरलाल को सभापति बनाना उचित समझा। नवयुवकों को कांग्रेस की नीति रीति धीमी और सुस्त मालूम होती थी। ऐसी दशा में यदि कांग्रेस की विजय-यात्रा को आगे लेजाना हो तो उसका सूत्र किसी नौजावन के हाथ में देना ही उचित है। श्री वल्लभभाई ने गांधीजी और जवाहरलालजी के बीच में आना पसन्द नहीं किया। लखनऊ में उपस्थिति अधिक नहीं थी। उपस्थित मित्रों ने बहुमत से पं० जवाहरलाल को चुन लिया।

लखनऊ-महासमिति

लखनऊ में महा-समिति के सामने दूसरा विचारार्थ विषय था श्री यतीन्द्र नाथ दास और फुंगी विजया के देहावसान का। इनमें से पहले देशभक्त पंजाब की जेल में ६४ दिन के अनशन से और दूसरे ब्रह्मदेश में १६४ दिन के उपवास से शहीद हुए। भिक्षु विजया एक बौद्ध साधु थे। वह राजद्रोह के अपराध में २१ मास का कठोर कारावास भुगतकर २८ फरवरी १९२९ को ही छूटे थे। इसके सवा मास बाद ही अर्थात् ४ अप्रैल को, वह राजद्रोहात्मक भाषण देने के अभियोग में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें ६ वर्ष के कालेपानी की सजा हुई। बाद में घटाकर यह सजा ३ वर्ष कर दी गई। गिरफ्तारी के थोड़े समय बाद उन्होंने अच्छा व्यवहार किये जाने और विशेष अवसरों पर भिक्षुओं के भगवां वस्त्र पहनने के अधिकार के मामले में अनशन आरम्भ किया। यह तप १६४ दिन के बाद १९ सितम्बर १९२९ को उनके जीवन के साथ समाप्त हुआ। श्री यतीन्द्रनाथ दास का देहावसान इससे छः दिन पूर्व अर्थात् १३ सितम्बर १९२९ को, हो चुका था। इस प्रकार दो सप्ताह के भीतर इन दो देशभक्तों ने स्वेच्छापूर्वक राष्ट्र के स्वाभिमान के रक्षार्थ अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। श्री दास की मृत्यु पर देश-भर में मातम छा गया और देशवासियों के हृदय उनकी प्रशंसा से गद्-गद् हो गये। स्थान-स्थान पर विशाल प्रदर्शन हुए। कलकत्ते

का जुलूस तो अनोखा ही था। इतना ही नहीं, कई विदेशों से भी सहानुभूति-सूचक सन्देश आये। आयर्लैण्ड के मैक्स्विनी-परिवार का पैगाम विशेष रूप से उल्लेखनीय था।

यहां उस प्रस्ताव का जिक्र करना आवश्यक है जो २८ सितम्बर की लखनऊ में महासमिति ने जेल में होनेवाले अनशनों के विषय में पास किया। समिति ने इन बन्दियों के उद्देश की हार्दिक प्रशंसा करते हुए यह राय दी कि गंभीरतम परिस्थिति उत्पन्न हुए बिना भूख-हड़ताल नहीं करनी चाहिए। समिति ने यह भी सलाह दी कि चूंकि श्री दास और श्री विजया के आत्म-बलिदान हो चुके हैं, सरकार ने भी अन्तिम वक्त पर हड़तालियों की अधिकांश मांगें स्वीकार कर ली हैं और पूर्ण कष्ट-निवारण के लिए प्रयत्न जारी है। अतः अन्य भूख-हड़तालियों को अपनी तपस्या खतम कर देनी चाहिए।

लॉर्ड अर्विन की घोषणा

अक्तूबर का महीना घटनापूर्ण था। लॉर्ड अर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबर को लौट आये थे और उन्होंने एक घोषणा भी की थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने पहली नवम्बर को दिल्ली में कार्य-समिति की जरूरी बैठक बुलाई। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त राजधानी में अन्य दलों के नेता भी उक्त घोषणा को सुनने और उसपर सम्मिलित कार्रवाई करने के लिए मौजूद थे। जून १९२९ के अन्त में इंग्लैण्ड को रवाना होते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था, "विलायत पहुँचकर मैं ब्रिटिश-सरकार से इन गम्भीर मामलों पर चर्चा करने के अवसर ढूंढूंगा। जैसा मैं अन्यत्र कह चुका हूँ, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमत के प्रतिनिधि हैं उनकी भिन्न-भिन्न दृष्टियों को ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख रखना मेरा कर्त्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होंने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्-द्वारा दिये गये उनके नाम के आदेश-पत्र का हवाला दिया। इस आदेश-पत्र में सम्राट् ने कहा था—"हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसी में है कि हमारे साम्राज्य का अंगभूत रहते हुए ब्रिटिश-भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेण्ट ने जो योजना बनाई है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशों में ब्रिटिश-भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।"

लॉर्ड अर्विन ने अपनी ३१ अक्तूबर की घोषणा में कहा—"साइमन-कमीशन के अध्यक्ष ने प्रधान-मंत्री के साथ अपने पत्र-व्यवहार में कुछ महत्त्व-पूर्ण सूचनायें दी हैं। पहली बात तो यह कि आगे चलकर ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यों के पार-

स्परिक सम्बन्ध कैसे होंगे? अध्यक्ष महोदय की सम्मति में इस बात की पूरी जांच होना आवश्यक है। दूसरी सूचना यह दी है कि यदि कमीशन की रिपोर्ट और उसपर सरकार-द्वारा बननेवाली योजना में यह वृहत् समस्या शामिल करनी हो तो फिर अभी से कार्य-पद्धति में परिवर्तन कर लेना जरूरी मालूम होता है। उनका प्रस्ताव है कि साइमन–कमीशन और सेण्ट्रल कमिटी की रिपोर्टों पर विचार होकर जब वे प्रकाशित कर दी जायँ और पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं की सम्मिलित समिति नियुक्त हो उससे पहले ब्रिटिश-सरकार को ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्य दोनों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना चाहिए, जिससे सरकार की ओर से पार्लमेण्ट के सम्मुख पेश होनेवाली अन्तिम सुधार-योजना के पक्ष में अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त हो सके। भारतीय धारा-सभाओं एवं अन्य संस्थाओं की सलाह लेना तो ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी के लिए फिर भी लाभदायक होगा ही। परन्तु इसका अवसर तब आवेगा जब यह योजना आगे चलकर बिल के रूप में पार्लमेण्ट के सामने आवेगी। किन्तु कमीशन की राय में इससे पहले पूर्वोक्त ढंग की परिषद् बुलानी पड़ेगी। मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश-सरकार इन विचारों से पूर्णतः सहमत है·········· अगस्त १९१७ की घोषणा में ब्रिटिश-नीति का ध्येय यह बताया गया था कि स्व-शासन-संस्थाओं का क्रमशः विकास किया जाय जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहकर भारत धीरे-धीरे दायित्वपूर्ण शासन प्राप्त कर सके। परन्तु १९१९ के सुधार-कानून का अर्थ लगाने में विलायत और भारत दोनों ही देशों में ब्रिटिश-सरकार की इच्छाओं पर सन्देह किया गया है। इसलिए ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त में उपनिवेश का दर्जा मिले।"

यह घोषणा तो हुई ३१ अक्तूबर को और २४ घंटे के भीतर पण्डित मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और डॉ० बेसेण्ट आदि बड़े-बड़े लोग दिल्ली आ पहुँचे। कांग्रेस की कार्य-समिति तो वहां थी ही, गम्भीर विचार के पश्चात् इस सम्मिलित-सभा ने कुछ निर्णय किये। इन्हीं निर्णयों के प्रकाश में एक वक्तव्य तैयार किया गया, जिसमें ब्रिटिश-सरकार की घोषणा की सचाई की और भारतीय लोकमत को सन्तुष्ट करने की सरकार की इच्छा की प्रशंसा की गई।

इस वक्तव्य में कहा गया कि "हमें आशा है, भारतीय आवश्यकताओं के अनुकूल औपनिवेशिक विधान तैयार करने के सरकार के प्रयत्न में हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी राय में देश की मुख्य-मुख्य राजनैतिक संस्थाओं में विश्वास

उत्पन्न करने और उनका सहयोग प्राप्त करने के हेतु कुछ कार्यों का किया जाना और कुछ वातों का साफ होना जरूरी है।

"प्रस्तावित परिषद् की सफलता के लिए हम अत्यन्त जरूरी समझते हैं कि—

(क) वातावरण को अधिक शान्त करने के लिए समझौते की नीति अख्तियार की जाय।

(ख) राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ।

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओं को काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सबसे बड़ी संस्था होने के कारण कांग्रेस के प्रतिनिधि सबसे अधिक लिये जायँ।

(घ) औपनिवेशिक दर्जे के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा में सरकार की ओर से जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या हैं, इस विषय में लोगों ने सन्देह प्रकट किया है किन्तु हम समझते हैं कि प्रस्तावित परिषद् औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का समय निश्चित करने को नहीं बुलाई जा रही है, बल्कि ऐसे स्वराज्य का विधान तैयार करने को आमंत्रित की जायगी। हमें आशा है कि वाइसराय महत्त्वपूर्ण वक्तव्य का यह भावार्थ और फलितार्थ लगाने में हम भूल नहीं कर रहे हैं। जबतक नये विधान पर अमल शुरू न हो तबतक हमारे खयाल से यह आवश्यक है कि देश के वर्तमान शासन में उदार भावनाओं का संचार होना चाहिए, प्रबन्ध-विभाग एवं कौंसिलों का प्रस्तावित परिषद् के उद्देश्यों के साथ मेल बिठाना चाहिए और वैध उपायों और प्रणालियों का अधिक आदर होना चाहिए। हमारी सम्मति में जनता को यह अनुभव कराना अत्यावश्यक है कि आज ही से नवीन युग आरम्भ हो गया है और नया विधान केवल इस भावना पर मुहर लगावेगा।

"अन्त में परिषद् की सफलता के लिए हम इसे एक आवश्यक बात समझते हैं कि परिषद् जल्दी-से-जल्दी बुलाई जाय।"

निस्सन्देह इस नये रवैये का कारण मजदूर-सरकार का अधिक उदार दृष्टिकोण था। इस बीच में अंग्रेज मित्र तार-पर-तार भेजकर गांधीजी पर जोर डाल रहे थे कि वह भारत की सहायता करने के प्रयत्न में मजदूर-सरकार का साथ दें।

गांधीजी का उत्तर

उत्तर में गांधीजी ने कहा, "मैं तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। इसी हेतु से पहला मौका आते ही मैंने हाथ आगे बढ़ा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-कांग्रेस के प्रस्ताव के प्रत्येक शब्द पर कायम हूँ, वैसे नेताओं के इस सम्मिलित वक्तव्य के हर्फ-

हर्फ पर भी अटल हूँ। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। किसी भी दस्तावेज के शब्दों में क्या धरा है, यदि व्यवहार में उसकी भावना की रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहार में सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधान के लिए मैं ठहरा भी रह सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो, अंग्रेज लोग भारतवर्ष को एक स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में वस्तुतः देखना चाहें और भारत में अधिकारी-मण्डल की भावना सेवापूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है संगीनों के वजाय जनता के सद्भाव की स्थापना। क्या अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपने जान-माल की रक्षा के लिए अपने किलों और तोप-बन्दूकों के स्थान पर प्रजा के सद्भाव पर विश्वास रखने को तैयार हैं। यदि उनकी यह तैयारी अभी नहीं है, तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य संतुष्ट नहीं कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश-सम्बन्ध विच्छेद कर सकूं। ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णय करने में जबरदस्ती जैसी कोई बात नहीं चल सकती।

"यदि मैं साम्राज्य के भीतर रहना पसन्द करता हूँ तो इसलिए नहीं कि शोषण या जिसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी ध्येय कहते हैं उसकी वृद्धि हो, वल्कि इसलिए कि संसार में शान्ति और सद्भावना फैलाने की शक्ति में हिस्सा मिले।

"मुझे खूब मालूम है कि जिस स्थिति का मैंने यहां वर्णन किया है उसपर डटे रहने की शक्ति अभी भारतवर्ष में पैदा नहीं हुई है। इसलिए यदि हमें अभी वह स्थिति प्राप्त हो जाय तो यह अधिकतर ब्रिटिश-राष्ट्र की कृपा का ही फल होगा। यदि इस समय वे लोग ऐसी कृपा करें तो कोई आश्चर्य की बात भी नहीं होगी। इससे भारत के प्रति किये गये पिछले अन्यायों की थोड़ी क्षति-पूर्ति तो हो ही जायगी।"

वाइसराय की घोषणा में भारतवासियों को बहुत छोटी-सी चीज देने का वचन दिया गया था। फिर भी पार्लमेण्ट में इसीपर तूफान खड़ा हो गया। कामन-सभा को सफाई पेश करनी पड़ी। बाल्डविन साहब को वेन साहब और लॉर्ड अर्विन की सूचनायें स्वीकार करने की जिम्मेवारी अपने सिर लेनी पड़ी। सर जॉन साइमन को अपनी और अपने कमीशन की जान बचाना मुश्किल हो गया। लायड जार्ज साहब ने कैप्टन वेन साहब से पूछा, भारतीय नेताओं के सम्मिलित वक्तव्य में हमारी नीति का जो अर्थ लगाया गया है, "क्या आपको वह स्वीकार है ?" लान्सबरी साहब ने लोगों से वाइसराय की घोषणा का साधारण अर्थ लगाने का अनुरोध किया। अलवत्ता भारतवासी इसे वाजार-भाव से ही आंकना चाहते थे और वस्तुतः तो

इसका मूल्य उन्हें और भी कम मालूम हुआ। हां, नरमदल वाले भारतीय इस परिषद् के लिए बहुत उत्सुक दिखाई दिये। उन्होंने इसका नाम भी गोलमेज-परिषद् रक्खा, हालांकि लॉर्ड अर्विन इसे लन्दन की परिषद् के नाम से ही पुकारते रहे। कैप्टन वेन साहब हिन्दुस्तानियों से तो यह कहते थे कि हमने अपनी नीति वदल दी है और पार्लमेण्ट के सदस्यों को यह दिलासा देते थे कि नीति नहीं वदली। उनका कहना था कि नीति तो १६१७ के घोषणा-पत्र की भूमिका में दी हुई है, भूमिका १६१६ के सुधार-कानून में दर्ज है, और सुधार-कानून इंग्लैण्ड के कानूनों में शामिल कर लिया गया है। इस प्रकार के उद्गारों से युवक कांग्रेसियों में निराशा फैली।

सर्वदल-सम्मेलन

१६ नवम्वर को प्रयाग में सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन फिर वुलाया गया और साथ ही कार्य-समिति की बैठक हुई। ऐक्य-भाव वनाये रखने के सव प्रयत्न किये गये। कार्य-समिति ने अपना कोई निश्चित निर्णय दिया भी नहीं था कि पंडित जवाहरलाल और सुभाष वावू ने समिति की सदस्यता को पहले ही छोड़ दिया। पंडित मोतीलाल नेहरू अपने नौजवान साथियों से भी वढ़कर थे। उन्हें कामन-सभा की छल-कपट-पूर्ण कार्रवाई और कैप्टन वेन के दुमुंहेपन पर वड़ा क्रोध आ रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि ब्रिटिश-मंत्रि-मण्डल जो चित्र खींच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियों को उसमें स्वराज्य दीखे और विलायतवालों को ब्रिटिश-राज्य।

वाइसराय की नेताओं से भेंट

इधर 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक विलसन साहव समाचार-पत्रों में चिट्ठी-पर-चिट्ठियां छपवा रहे थे और लॉर्ड अर्विन पर जोर डाल रहे थे कि लाहौर-कांग्रेस से पहले सरकार की ओर से कोई ऐसी वात होनी चाहिए जिससे भारत के राजनैतिक नेताओं को खाली हाथ लाहौर न पहुँचना पड़े। लॉर्ड अर्विन, डॉ० सप्रू के मार्फत, १५ तारीख को मिलने का निमन्त्रण पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेज चुके थे। परन्तु १५ ता० तक पण्डितजी लखनऊ में अपने वकालत के काम से मुक्त न हो सके। विलसन साहव ने अखवारों में लिखा कि वाइसराय गांधीजी, पण्डित मोतीलालजी और मालवीयजी से शीघ्र ही मुलाकात करनेवाले हैं। इधर वाइसराय साहव १५ ता० को दक्षिण-भारत के लिए रवाना हो रहे थे, इसलिए उन्होंने डॉ० सप्रू को लिखा कि अगर पहले हैदरावाद (दक्षिण) में न मिल सका तो २३ दिसम्वर को

दिल्ली में गांधीजी और नेहरूजी से मुलाकात होगी; कुछ भी हो, बड़े दिन से पहले जरूर मिल लेंगे। लॉर्ड अर्विन समय पर, अर्थात् २३ दिसम्बर को, दिल्ली लौट आये। उसी दिन नई दिल्ली से १ मील दूर पुराने किले के स्थान पर उनकी गाड़ी के नीचे बम फटा। लॉर्ड अर्विन तो बाल-बाल बच गये, परन्तु उनके खाने की गाड़ी को नुकसान पहुँचा और उनका एक नौकर घायल हुआ। उसी दिन गांधीजी और मोतीलालजी कांग्रेस की ओर से वाइसराय से नये भवन में मिलनेवाले थे। दूसरे विचारवालों की बात कहनेवालों में श्री जिन्ना, सप्रू और विट्ठलभाई पटेल थे। आशा तो यह थी कि कि बात-चीत मित्रों की भांति दिल खोलकर होगी। पर हुआ यह कि एक बाजाब्ता शिष्ट-मण्डल का रूप बन गया फिर भी लॉर्ड अर्विन ने हंसते-हंसते बात-चीत की। उनके दिल पर प्रातःकालीन दुर्घटना का कोई असर न था। जितने वह शान्त थे उतने ही मेहमानों के प्रति सच्ची खातिरदारी से पेश आये। पौन घण्टे तक तो बम की घटना और उसके परिणामों पर ही चर्चा होती रही। फिर लॉर्ड अर्विन ने प्रस्तुत विषय को हाथ में लिया। उन्हें राजनैतिक कैदियों से अच्छी शुरुआत करनी थी और और राजनैतिक कैदियों का मामला था भी ऐसा जिसमें सद्भाव का परिचय आसानी से दिया जा सकता था। परन्तु गांधीजी तो वाइसराय से औपनिवेशिक स्वराज्य के मसले पर निपट लेना चाहते थे। वह यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् की कार्रवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी। वाइसराय साहब ने उत्तर दिया, "सरकार ने अपने विचार अपने वक्तव्य में स्पष्ट कर दिये हैं। इससे आगे मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य देने का वादा करके गोलमेज-परिषद् में आप लोगों को बुला सकूं।"

लाहौर में

उत्तर-भारत के निर्दय हेमन्त में लाहौर का कांग्रेस-अधिवेशन अन्तिम था। तम्बुओं में रहना प्रतिनिधियों के लिए बड़ा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कार्य-समिति में बैठे-बैठे हमें बार-बार पैर गरम करने पड़ते थे। किन्तु यदि बाहर इतनी असह्य सर्दी थी तो भीतर भावना और जोश की गर्मी भी कम न थी। सरकार से समझौता न होने पर रोष था और युद्ध के बाजे सुन-सुनकर लोगों की बांहें फड़क रही थीं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जितने कम-उम्र थे उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानों उन्होंने अपने हृदय को उंडेलकर देशवासियों के सामने रख दिया था। उसमें भारत के अपमान पर क्रोध भरा था। उसमें उन्होंने

भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना, अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शों और सफल होने के अपने दृढ़-निश्चय को व्यक्त किया था।

औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए वेन साहव संसार को विश्वास दिला रहे थे कि व्यवहार में तो वह एक युग से मौजूद है। वर्सेलीज के संधिपत्र पर भारतवर्ष के हस्ताक्षर हैं, हिन्दुस्तानी हाई-कमिश्नर नियुक्त हो चुका है, राष्ट्रसंघ के भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल का नेता हिन्दुस्तानी रहता है, अन्तर्राष्ट्रीय नेवीगेशन कमीशन में भारत को अलग मताधिकार प्राप्त है, औपनिवेशिक कानून-निर्माताओं की परिषद् में और पञ्चराष्ट्रीय जलसेना-परिषद् में भारत शामिल होता है, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-परिषद् की शासन-समिति में भारत को स्थान मिला हुआ है। ये सब बातें व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रमाणस्वरूप बताई गईं। परन्तु लोग ऐसे खिलौनों से धोखे में आनेवाले नहीं थे। उनके सामने जो वस्तुस्थिति थी उसीके अनुसार उन्हें वर्त्तमान समस्याओं को हल करना था।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने अभिभाषण में बताया कि वाइसराय साहब की घोषणा दीखने में समझौते का प्रस्ताव है। वाइसराय साहब का इरादा नेक और उनकी भाषा मेल-मिलाप की भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर वस्तुस्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातों से कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम अपनी ओर से कोई घोर राष्ट्रीय संग्राम आरम्भ करने की जल्दी नहीं कर रहे हैं। समझौते का द्वार अभी खुला है। परन्तु कैप्टन वेजवुड वेन का व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्ते के प्रस्ताव पर कायम हैं। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। अध्यक्ष-पद से जवाहरलालजी ने ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का वर्णन किया और साफ कहा, "मैं तो साम्यवादी और प्रजातंत्रवादी हूँ। मैं बादशाहों और राजाओं को नहीं मानता।" इसके पश्चात् उन्होंने अल्प-संख्यक जातियों, देशी-राज्यों और किसानों तथा मजदूरों के तीन बड़े प्रश्नों को लिया। इसके बाद उन्होंने अहिंसा के प्रश्न का विवेचन किया—"हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। खासकर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। यह बिलकुल सच है कि आज जगत् में संगठित हिंसा का ही बोलबाला है। सम्भव है हमें भी इससे लाभ हो; परन्तु हमारे पास तो संगठित हिंसा के लिए न सामग्री है न तैयारी; और व्यक्तिगत अथवा स्फुट हिंसा तो निराशा को कबूल करना है। मैं समझता हूँ हममें से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत् व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हैं; और यदि हमने हिंसा के मार्ग का

परित्याग किया है तो सिर्फ इसीलिए किया है कि हमें इससे कोई सार निकलता नहीं दिखाई देता। स्वतंत्रता के किसी भी वड़े आन्दोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आन्दोलन तो शान्त ही हो सकते हैं। हां, संगठित विद्रोह की वात अलग है।" अन्त में उन्होंने इन शब्दों में एक महान् प्रयत्न कर देखने की अपील की—यह कोई नहीं कह सकता कि सफलता कव और कितनी मिलेगी। सफलता हमारे कावू की चीज नहीं। परन्तु विजय का सेहरा प्रायः उन्हींके सिर वंधता है जो साहस करके कार्यक्षेत्र में वढ़ते हैं। जो सदा परिणाम से भयभीत रहते हैं, ऐसे कायरों के भाग्य में सफलता क्वचित् ही होती है।"

लाहौर-कांग्रेस के सम्मुख प्रश्न यह था कि स्वाधीनता-सम्वन्धी १६२७ की मदरास-कांग्रेस का प्रस्ताव विधान में ध्येय के रूप में शामिल किया जाय अथवा केवल स्पष्टीकरण के रूप में। इस विषय पर सभापति के भाषण में कुछ वातें मजेदार थीं; "हमारे लिए स्वाधीनता का अर्थ है ब्रिटिश-प्रभुत्व और ब्रिटिश-साम्राज्य से पूर्णतः मुक्त होना। मुझे जरा भी संदेह नहीं कि इस प्रकार मुक्त होने के वाद भारतवर्ष विश्व-संघ वनाने के प्रयत्न का स्वागत करेगा और यदि उसे वरावरी का दर्जा मिलेगा तो वह किसी वड़े समूह में शामिल होने के लिए अपनी स्वाधीनता का कुछ हिस्सा छोड़ देने को भी राजी हो जायगा।" आगे चलकर उन्होंने कहा—"जवतक साम्राज्यवाद और उसके साथ लगी हुई सारी खुराफात का अन्त नहीं हो जाता तवतक ब्रिटिश-राष्ट्र समूह में भारतवर्ष को वरावरी का दर्जा मिल ही नहीं सकता।" उनके भाषण के कुछ अंश यहाँ और दिये जाते हैं, जिनसे वस्तुस्थिति समझने में सहायता मिलेगी :—

इन विचारों में भारत के नेता गांधीजी और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू दोनों सहमत थे। इस कारण लाहौर-कांग्रेस का कार्यसञ्चालन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। श्री यतीन्द्र दास और श्री फुंगी विजया के महान् आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा की गई और पण्डित गोकरणनाथ मिश्र, प्रोफेसर पराञ्जपे, श्री भक्तवत्सल नायडू, श्री रोहिणीकान्त हाथीवरुवा, श्री लाहिड़ी और श्री व्योमकेश चक्रवर्ती के देहावसान पर शोक प्रदर्शित किया गया। इसके वाद हाल की वम-दुर्घटना पर यह प्रस्ताव पास हुआ :—

"यह कांग्रेस वाइसराय साहव की गाड़ी पर किये गये वम-प्रहार पर खेद प्रकट करती है और अपने इस विश्वास को दोहराती है कि इस प्रकार का कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश के विरुद्ध है वल्कि राष्ट्रीय हित को भी हानि पहुँचाता है। कांग्रेस वाइसराय, लेडी अर्विन, उनके गरीव नौकरों और साथ के अन्य लोगों को सौभाग्यवश वाल-वाल वच जाने पर वधाई देती है।"

पूर्ण-स्वाधीनता

इस कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पूर्ण स्वाधीनता के सम्वन्ध में था :—

'औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्वन्ध में ३१ अक्तूवर को वाइसराय साहव ने जो घोपणा की थी और जिस पर कांग्रेस एवं अन्य दलों के नेताओं ने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था उस सम्वन्ध में की गई कार्य-समिति की कारवाई का यह कांग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्य के राष्ट्रीय आन्दोलन को निपटाने के लिए वाइसराय महोदय की कोशिशों की कद्र करती है। किन्तु उसके वाद जो घटनायें हुई हैं और वाइसराय साहव के साथ महात्मा गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओं की मुलाकात का जो नतीजा निकला है उसपर विचार करने पर कांग्रेस की यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के के शामिल होने से कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्प कलकत्ते के अधिवेशन में किये हुए अपने निश्चय के अनुसार यह कांग्रेस घोपणा करती है कि कांग्रेस-विधान की पहली कलम में 'स्वराज्य' शव्द का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता होगा। कांग्रेस यह भी घोपणा करती है कि नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना खतम समझी जाय। कांग्रेस आशा करती है कि अव समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्प की पूर्ण-स्वाधीनता को प्राप्त करने पर ही लगायेंगे। चूंकि स्वाधीनता का आन्दोलन संगठित करना और कांग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक-से-अधिक अनुकूल वनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कौंसिलों और कमिटियों के मौजूदा कांग्रेसी मेम्वरों को इस्तीफे देने की आज्ञा देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साहपूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोव करती है और महा-समिति को अधिकार देती है कि वह जव और जहां चाहे, आवश्यक प्रतिवन्धों के साथ सविनय-अवज्ञा और करवन्दी तक का कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

दूसरी वात इस कांग्रेस ने यह की कि वार्पिक अधिवेशन का समय फरवरी या मार्च वदल दिया :—

देशी-राज्यों का विपय महत्त्वपूर्ण था ही। कांग्रेस ने सोचा अव समय आ गया है कि भारतीय-नरेश अपनी प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करें और उनके आवागमन, भापण, सम्मेलन आदि अविकारों और व्यक्ति एवं सम्पति की रक्षा के नागरिक हकों के वारे में घोपणायें करें और कानून वनावें।

नेहरू-रिपोर्ट के रद हो जाने से साम्प्रदायिक समस्या पर फिर से विचार करना पड़ा। इस सम्बन्ध में अपनी नीति घोषित करना जरूरी मालूम हुआ। कांग्रेस ने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि "स्वाधीन-भारत में तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा सर्वथा राष्ट्रीय ढंग से ही होगा। परन्तु चूंकि सिक्खों ने विशेषतः और मुसलमानों और दूसरी अल्प-संख्यक जातियों ने साधारणतः नेहरू-रिपोर्ट के प्रस्तावों पर असन्तोष प्रकट किया है, इसलिए कांग्रेस इन जातियों को विश्वास दिलाती है कि किसी भी भावी विधान में कांग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नहीं करेगी जिससे सब पक्षों को पूर्ण सन्तोष न हो।" पार्लमेण्ट के भूतपूर्व सदस्य श्री शापुरजी सकलातवाला और इंग्लैण्ड एवं अन्य विदेशों में रहनेवाले भारतीयों ने स्वदेश को लौटने के लिए सरकार से परवाने मांगे थे वे नहीं दिये गये। इसपर भी कांग्रेस ने निन्दा का प्रस्ताव पास किया।

१९२२ की गया-कांग्रेस के इतने अर्से बाद भारत पर लादे गये आर्थिक भार और उसे अस्वीकार करने के प्रश्न पर भी विचार किया गया : "इस कांग्रेस की राय में विदेशी शासन ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतवर्ष पर जो आर्थिक भार लाद दिया है वह ऐसा नहीं है जिसे स्वतंत्र-भारत बरदाश्त कर सके या उससे बरदाश्त करने की आशा की जाय, अतः यह कांग्रेस १९२२ वाले गया-कांग्रेस के प्रस्ताव का समर्थन करती है और सब सम्बन्धित लोगों को सूचना देती है कि स्वाधीन-भारत किसी भी आर्थिक जिम्मेवारी या रिआयत को, फिर भले ही वह किसी भी प्रकार दी गई हो, उसी हालत में स्वीकार करेगा जब कि स्वतंत्र-न्यायालय द्वारा उसका औचित्य सिद्ध हो जायगा, अन्यथा वह रद कर दी जायगी।" बम-दुर्घटना पर जो प्रस्ताव पास हुआ वह आसानी से नहीं हुआ। प्रतिनिधियों के एक खास समूह ने उसका प्रबल विरोध किया और बहुत ही थोड़े बहुमत से प्रस्ताव पास हो सका।

कार्य-विभाग

यह कह देना जरूरी है कि ये भिन्न-भिन्न समितियां कलकत्ता-कांग्रेस के बाद फरवरी १९२९ से बनी थीं। इनका काम विशेषज्ञों को सौंपा गया। स्वयं सेवकों का संगठन जवाहरलालजी और सुभाष बाबू के हवाले किया गया। कांग्रेस का कार्य पहली ही बार विभागों में बांटा और कार्य-समिति के अलग-अलग सदस्यों के सुपुर्द किया गया। किन्तु गांधीजी तो यह चाहते थे कि चर्खा-संघ की तरह ये कमिटियां भी स्वतन्त्र रूप से काम करने लगें। परन्तु लोगों ने उनके प्रस्तावों को

सन्देह की दृष्टि से देखा। कारण, नेता अपने अनुयायियों से सदा आगे चलता है और कल उसने जो वात कही वह आज मानी जाती है। हुआ भी यही। आज अर्थात् सन् १९३५ में अस्पृश्यता-निवारण का काम एक ऐसी स्वतंत्र संस्था चला रही है जो राजनीति के झंझावात से वरी है और राष्ट्र के राजनैतिक उतार-चढ़ाव का उसपर कोई असर नहीं पड़ता। कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या भी इस समय बम्बई से एक-तिहाई हो गई है। जो वात गांधीजी लाहौर में नहीं करवा सके थे वही कुछ तो उनके कारावास के समय हो गई और कुछ उनके छूटने के वाद हो गई।

कलकत्ते में राष्ट्रीय मांग को स्वीकार करने के लिए सरकार को वारह मास का समय दिया गया था। तदनुसार ३१ दिसम्वर को ठीक आधी रात के समय प्रस्ताव के इस मत-भेद-पूर्ण अंश पर रायों की गिनती खतम हुई। उस समय सारी कांग्रेस ने मिलकर पूर्ण स्वाधीनता का झंडा फहराया।

सब वातों को देखते हुए लाहौर के अधिवेशन में परिश्रम भी वहुत करना पड़ा और स्थिति भी नाजुक थी। गांधीजी के मुकावले में जो प्रस्ताव रक्खे गये वे या तो काल्पनिक थे या ध्वंसात्मक। हरवार जो संकुचितता, उग्रता अथवा असहिष्णुता दिखाई दी वह परेशान करनेवाली थी। वंगाल के गृह-युद्ध के कारण चुनाव-सम्वन्धी झगड़े मुद्दत से चले आ रहे थे। लाहौर के कांग्रेस-सप्ताह में वे और भी उग्र रूप में प्रकट हुए और सुभाष वावू और पण्डित मोतीलालजी में कहा-सुनी भी हो गई। श्री सेनगुप्त और सुभाष वावू में प्रान्तीय नेतृत्व के लिए स्पर्धा थी ही, कौंसिल-प्रवेश के मत-भेद-पूर्ण मसले पर उनका आपसी वैमनस्य और भी तीव्र रूप में सामने आया। गांधीजी ने कांग्रेस के ध्येय में 'शान्त एवं उचित उपायों' के स्थान पर 'सत्य एवं अहिंसा-पूर्ण उपायों' को रखवाने की खूब कोशिश की, पर उनकी वात न चली।

कुछ भी हो, लाहौर में गांधीजी और जवाहरलालजी को सफलता मिली, यह निर्विवाद है हां, अधिवेशन के वाद तुरन्त ही श्री श्रीनिवास आयंगर और सुभाष वावू ने कांग्रेस डेमाक्रेटिक पार्टी के नाम से एक नये दल की स्थापना घोषित कर दी। इससे सरकार ने उस समय यह धारणा वनाई कि कांग्रेस के गरम दल को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ है और कांग्रेस में फूट पड़ने ही वाली है। इन मित्रों की इच्छा थी कि कार्य-समिति का संगठन चुनाव-द्वारा हो। जव इनकी नहीं चली तो ये कुछ दक्षिण-भारतीय मित्रों के साथ उठकर कांग्रेस के वाहर चल दिये। गांधीजी अपनी परिपाटी के अनुसार कार्य-समिति के गत वर्ष के सदस्यों से पूछ

लिया करते थे कि कौन-कौन स्वेच्छा से अलग होना चाहते हैं ? लाहौर में कार्य-समिति दो स्वतन्त्र सूचियों के आधार पर बनाई गई थी। एक सूची गांधीजी की सलाह से मोतीलालजी ने तैयार की थी और दूसरी सेठ जमनालाल बजाज ने। दोनों सूचियों में केवल एक नाम का अन्तर था। यह अन्तर ठीक कर लिया गया और कार्य-समिति बन गई। परन्तु इन मित्रों को तो निर्वाचन चाहिए था। जब इनकी इच्छा पूरी न हुई हुई तो उठकर चले गये। दस मिनट के भीतर यह खबर सर्वत्र फैल गई और एक नया दल खड़ा हो गया। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने श्रीमती वासन्तीदेवी को यह तार भेजा—"परिस्थिति एवं बहुमत के अत्याचार से तंग आकर हमने गया की भांति कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी के नाम से एक अलग दल बना लिया है। आशीर्वाद दीजिये कि देशबन्धु की आत्मा हमारा पथ-प्रदर्शन करे।"

इधर दल के मन्त्रियों ने अपनी जाब्ते की घोषणा में यह, कहा, "नया दल भारत की पूर्ण स्वाधीनता के अपने ध्येय को हानि पहुँचाये बिना ध्येय की पूर्ति के लिए देश के अन्य दलों से भी सहयोग करने का भरसक प्रयत्न करेगा।"

हमारी यात्रा कठिन, नाव कमजोर, समुद्र तूफानी, आकाश मेघाच्छादित, चारों ओर कुहरा और केवट नौसिखुये थे। केवल एक बात हमारे बचाव की थी, और वह यह कि हमारा पथ-प्रदर्शक अपना मार्ग जानता था। वह मँजा हुआ कप्तान था। वह अपने नक्शे और कम्पास से सुसज्जित था। यदि यात्री उसकी आज्ञा पालते तो सफलता हाथ में रक्खी थी। अन्यथा राष्ट्र की फौजी अदालत में हमपर अभियोग लगने ही वाला था।

: २ :

प्राणों की बाजी—१९३०

प्रतीक्षा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। परन्तु तीन सप्ताह भी नहीं बीतने पाये थे कि महाराष्ट्र में विद्रोह खड़ा हो गया। हम देख चुके हैं कि असहयोग के आरम्भ-काल में भी महाराष्ट्र और बंगाल ने मिलकर उस नवीन आन्दोलन का विरोध किया था। अब महाराष्ट्र-प्रान्तीय-कमिटी ने कार्य-समिति से कौंसिल-बहिष्कार का आग्रह छोड़ देने का अनुरोध किया और कहा कि देश को दिल्ली की शर्तों और स्वाधीनता के आधार पर गोलमेज-परिषद् में शामिल होना चाहिए। वैसे तो ये प्रश्न सदा के लिए तय हो चुके थे। जब कैदियों को छोड़कर सरकार ने हृदय-परिवर्तन का परिचय नहीं दिया और औपनिवेशिक स्वराज्य की भावना का तुरन्त अमल में लाना शुरू नहीं किया तो दिल्ली की शर्तों में धरा ही क्या था?

नई कार्य-समिति की बैठक २ जनवरी १९३० को हुई। पहला काम उसने किया कौंसिल-बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का। इसके लिए उसने मत-दाताओं से अनुरोध किया कि जो सदस्य कांग्रेस की अपील पर ध्यान न दें उन्हें मत-दाता मजबूर करें कि वे इस्तीफा दें और नये चुनाव में शामिल न हों। इसके परिणाम-स्वरूप असेम्बली के २७ सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये। दूसरा निश्चय कार्य-समिति ने देश-भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का किया और इसके लिए २६ जनवरी १९३० का दिन नियत हुआ। देश-भर में नगर-नगर और गांव-गांव में एक घोषणा-पत्र तैयार करके जनता के सन्मुख पढ़कर सुनाना और उसपर हाथ उठाकर श्रोताओं की सम्मति लेना तय हुआ। उस दिन सुनाया जानेवाला घोषणा-पत्र यह था:—

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें

और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतंत्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्णस्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। जनता की आमदनी को देखते हुए उससे बेहिसाब कर वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये जाते हैं उनका २० फी सदी किसानों से लगान के रूप में और ३ फी सदी गरीबों से नमक-कर के रूप में वसूल किया जाता है।

"हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम-से-कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते हैं। हाथ की कारीगरी जाते रहने से उनकी बुद्धि भी मन्द हो गई। और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये हैं उनके स्थान पर दूसरे देशों की भांति कोई नये उद्योग जारी भी नहीं किये गये हैं।

"चुंगी और सिक्के की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उससे किसानों का भार और भी बढ़ गया। हमारे देश में बाहर का माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानों से आता है। चुंगी के महसूल में अंग्रेजी माल के साथ साफ तौर पर पक्षपात होता है। इसकी आय का उपयोग गरीबों का बोझा हलका करने में नहीं किया जाता बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासन को कायम रखने में किया जाता है। विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई है कि जिससे देश का करोड़ों रुपया बाहर चला जाता है।

"राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजों के जमाने में घटा है उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ में वास्तविक राजनैतिक सत्ता नहीं आई है। हमारे बड़े-से-बड़े आदमी को विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आजादी से जाहिर करने और आजादी से मिलने-जुलने के हमारे हक छीन लिये गये हैं और हमारे बहुत-से-देशवासी निर्वासित कर दिये गये हैं। हमारी शासन की सारी प्रतिभा मारी गई है और सर्व-साधारण को गांवों के छोटे-छोटे ओहदों और मुंशीगिरी से सन्तोष करना पड़ता है।

"संस्कृति के लिहाज से, शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड़ ही काट दी और हमें जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे हैं।

"आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जवरदस्ती छीन कर हमें नामर्द वना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकावले की भावना को वड़ी वुरी तरह से कुचल दिया है। उसने हमारे दिलों में यह वात विठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते हैं। इतना ही नहीं, चोर डाकू और वदमाशों के हमलों से भी हम अपने वाल-वच्चों और जान-माल को नहीं वचा सकते। जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान् दोनों के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश-सरकार से यथासम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तैयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एवं करवन्दी तक के साज सजावेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये वगैर कर देना वन्द कर सके तो इस अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। अतः हम शपथपूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय समय पर जो आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"

गांधीजी की ११ शर्तें

स्वाधीनता-दिवस जिस ढंग से मनाया गया उससे प्रकट हुआ कि ऊपर-ऊपर दीखनेवाली शिथिलता और निराशा की तह में कितनी असीम भावना, उत्साह और स्वार्थ-त्याग की तैयारी दवी पड़ी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-वलिदान के अंगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अंगारों पर जमी हुई राख को फूंक मारकर हटा दिया जाय। स्वधीनता-दिवस का समारोह खतम ही हुआ था कि २५ जनवरी को असेम्वली में दिया गया वाइसराय का भापण भी प्रकाशित हो गया। इसने भारत के आशावादी और विश्वासशील राजनीतिज्ञों की रही-सही आशाओं पर पानी फेर दिया। लॉर्ड अर्विन ने कहा :—

"यह सही है कि साम्राज्य के अन्य लोगों के साथ व्यवहार करने में भारत

को स्वराज्यभोगी उपनिवेशों के समान कई अधिकार मिल चुके हैं। परन्तु यह भी सही है कि भारतीय लोकमत इन अधिकारों को सम्प्रति बहुत महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं है। इसका कारण यह है कि इन अधिकारों का प्रयोग ब्रिटिश-सरकार के नियंत्रण तथा स्वीकृति में है। ब्रिटिश-सरकार जो परिषद् बुलायेगी वह वस्तुतः वही चीज नहीं है जो भारतवासी चाहते हैं। उनकी मांग तो यह है कि उसके निर्णय बहुमत से हों और वह जो विधान बना दे उसे पार्लमेण्ट ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर ले।······

"····परिषद् भिन्न-भिन्न मतों को स्पष्ट और एक करने और सरकार को रास्ता दिखाने के हेतु की जायगी, योजना बनाकर पार्लमेण्ट के सम्मुख रखने की जिम्मेवारी तो सरकार पर ही रहेगी।" इस भाषण के जवाब में गांधीजी ने "यंग इण्डिया' में यों लिखा :—

"वाइसराय ने वातावरण साफ कर दिया और हमें ठीक-ठीक बता दिया कि कि वह कहां और हम कहां हैं। इसके लिए प्रत्येक कांग्रेसवादी को उनका आभारी होना चाहिए।

"वाइसराय साहब को क्या परवाह कि जबतक भारत का प्रत्येक करोड़पति ७ पैसे रोज की मजदूरी पानेवाला भिखारी न बन जाय तबतक यदि औपनिवेशिक स्वराज्य के मिलने की प्रतीक्षा ही करनी पड़ेगी। यदि कांग्रेस का बस चले तो आज वह प्रत्येक भूखे किसान को पेट-भर खाना ही नहीं दे बल्कि करोड़पति की हालत तक में पहुँचा दे। वैसे भी जब उसे अपनी दुर्दशा का पूरा ज्ञान हो जायगा और जब वह समझ जायगा कि उसकी यह निस्सहाय अवस्था किस्मत के कारण नहीं हुई बल्कि वर्तमान शासन के द्वारा हुई है तो वह संगठित होकर उठ बैठेगा और अधीर होकर एक ही सपाटे में वैध-अवैध का ही नहीं, हिंसा-अहिंसा का भेद भी भूल जायगा। कांग्रेस को आशा है कि ऐसी दशा में वह किसानों को सच्चा मार्ग बतायगी।"

आगे चलकर गांधीजी ने लॉर्ड अर्विन के सामने नीचे लिखी शर्तें रक्खीं :—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) विनिमय की दर घटाकर एक शिलिंग चार पेंस रख दी जाय।

(३) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उसपर कौंसिलों का नियंत्रण रहे।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५) सैनिक व्यय में आरम्भ में ही कम-से-कम ५० फी सदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायँ।

(७) विदेशी कपड़े की आयात पर निषेध कर लगा दिया जाय।

(८) भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्यूनलों द्वारा सजा पाये हुओं के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायँ, १२४ अ धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयों को देश में वापस आजाने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उसपर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायँ, और उनपर जनता का नियंत्रण रहे।

गांधीजी ने आगे लिखा—"हमारी बड़ी-से-बड़ी आवश्यकताओं की यह कोई सम्पूर्ण सूची नहीं है, पर देखें वाइसराय साहब इन सीधी-सादी किन्तु अत्यावश्यक भारतीय आवश्यकता की पूर्त्ति तो करके दिखावें। ऐसा होने पर सविनय-अवज्ञा की बात भी उनके कान पर नहीं पड़ेगी और जहां अपनी बात कहने और काम करने की पूरी आजादी होगी, ऐसी किसी भी परिषद् में कांग्रेस हृदय से भाग लेगी।" इसका यह अर्थ हुआ कि यदि ये मामूली और जरूरी मांगें पूरी न की गईं तो सविनय अवज्ञा होगी।

असेम्बली से इस्तीफे

जब असेम्बली में वाइसराय साहब ने अपना भाषण दिया, तब वसन्तऋतु थी। उस समय वातावरण सरकार के अनुकल नहीं था, क्योंकि वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून उसी समय बना था। इसके बहुत-से विरोधी समझते थे कि इसके द्वारा सरकार ने आर्थिक-परिषद् की भावना के विपरीत हिन्दुस्तान के माथे पर साम्राज्य के साथ रिआयत करने की नीति लाद दी है। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय और उनके राष्ट्रीय दल के कुछ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। वस्तुतः

कांग्रेस-आन्दोलन को इस सहायता की आशा न थी और इसलिए उसे दैविक ही समझना चाहिए।

यहां यह बयान कर देना जरूरी है कि यह कानून क्या था। साथ ही सूती कपड़े पर लगाये गये उत्पत्ति-कर और आयात-कर का इतिहास भी बता देना आवश्यक है। महासमर की समाप्ति के समय स्थिति यह थी कि भारतीय कारखानों में बने हुए १९ नम्बर से ऊपर के सूत और कपड़े पर ३।। फी सदी उत्पत्ति-कर लगता था। यह कर सरकार बिक्री या मुनाफे पर नहीं लेती थी, बल्कि तैयार माल पर लेती थी। विदेशी कपड़े पर जो आयात-कर लगता था वह सिर्फ आमदनी के लिए था और माल की कीमत पर ७) फी सदी के हिसाब से लिया जाता था। भारतीय कारखानेदारों, व्यापारियों और नरम-दल-वालों ने अपनी युद्ध-कालीन सेवाओं का हवाला दे दे-कर सरकार को बताया कि युद्ध के बाद विदेशी कपड़े के आने से हिन्दुस्तानी कारखानों को बड़ा धक्का पहुँच रहा है। १९२५ में सरकार ने आयात-कर ७ फी सदी से बढ़ाकर ११ फी सदी कर देना मंजूर किया इससे विदेशी कपड़ा ४ फी सदी महँगा हो गया। स्वदेशी कपड़े का उत्पत्ति-कर भी उठा दिया गया, इससे स्वदेशी कपड़ा ३।। फी सदी सस्ता हो गया। परन्तु इधर जनता स्वदेशी कपड़े के लाभ पर खुशियां मना रही थी, उधर १९२७ के शुरू में ही सरकार ने विनिमय-कानून पास कर दिया। इससे रुपये की कीमत १६ पेंस से बढ़कर १८ पेंस हो गई। अर्थात् जो एक पौण्ड का विदेशी कपड़ा पहले लंकाशायर से १५) में पड़ता था उसके अब १३।-)४ पाई ही लगने लगे। इस तरह विदेशी कपड़ा १२।। फी सदी सस्ता हो गया। अर्थात् १९२५ में हिन्दुस्तानी मिल-मालिकों को जो ७।। फी सदी का लाभ हुआ था उसके मुकाबले में विदेशी कारखानेदारों को दो वर्ष बाद ही १२।। फी सदी का फायदा मिलने लग गया। इस मामले पर भारत में बड़ी हलचल मची और आयात-कर में परिवर्तन की मांग की गई। सरकार ने वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून पास करके इंग्लैण्ड के कपड़े पर १५ फी सदी और अन्य विदेशी कपड़े पर २० फी सदी कर लगा दिया। पण्डित मालवीयजी ने इस भेद-भाव को आर्थिक-परिषद् (फिस्कल कन्वेन्शन) के खिलाफ बताकर उसका विरोध किया। जापान इस समय बड़ा दूरदर्शी निकला। यह कानून तो लंकाशायर के साथ जापान की स्पर्धा को रोकने के लिए बना था, परन्तु जापान ने अपने भारत को भेजे जानेवाले कपड़े पर जहाजों का भाड़ा ५ फी सदी कम करा दिया और जहाजी कम्पनियों को जापानी सरकार ने ५ फी सदी सहायता दे दी। इस तरह भारतीय आयात-कर की चाल धरी

ही रह गई। आगे चलकर भारत-सरकार ने आयात-कर ५ फी सदी और वढ़ा दिया। इससे लंकाशायर को ५ फी सदी की हानि हो गई। इसकी क्षति-पूर्ति सरकार ने दूसरी तरह कर दी। उसने भारत में आनेवाली रुई पर एक आना सेर का महसूल लगा दिया। यह रुई मिश्र और अमरीका से आती है और इससे लंकाशायर के मुकावले का वारीक कपड़ा तैयार किया जाता है। इस एक आने सेर के महसूल से लंकाशायर की स्पर्धा करने में भारतीय-मिलों को उतनी ही वाधा हो गई। ये सव वातें तो प्रसंगवश कही गई हैं। जव वस्त्र-उद्योग-रक्षण-विल असेम्वली में पेश हुआ तो उसपर दो संशोधन उपस्थित किये गये। मालवीयजी का संशोधन यह था कि इंग्लैण्ड के साथ कोई रिआयत न करके सव विदेशों के कपड़े पर कर की एक ही दर मुकर्रर कर देनी चाहिए। ३१ मार्च को असेम्वली की इस वैठक का अन्तिम दिन था। अध्यक्ष पटेल ने कहा कि यदि सरकार का प्रस्ताव असेम्वली में ज्यों-का-त्यों स्वीकार न हो तो सरकार फिर विचार करके वता दे कि वह अपना विल वापस ले लेगी क्या? परन्तु सरकार ने कहा कि ऐसा करना अपनी जिम्मेवारी से हाथ धो वैठना है। अन्त में वहस हुई और मालवीयजी का संशोधन तो गिर गया और श्री चेट्टी का संशोधन स्वीकार हुआ। परन्तु संशोधित अवस्था में विल पर राय ली गई। उससे पहले ही पण्डित मालवीयजी और उनके साथी, दीवान चमनलाल और नई स्वराज्य-पार्टी के अन्य सदस्य उठकर चले गये। उस दिन की सभा वर्खास्त करने से पहले अध्यक्ष ने कहा—"आप सव मुझसे हाथ मिलाते जाइए। कौन जाने हममें से कौन-कौन यहां रहेंगे।" यों देखा जाय तो फरवरी १९३० के वाद की इन घटनाओं का लड़ाई से कोई सम्वन्ध नहीं है। परन्तु इनका वर्णन हमने तत्कालीन परिस्थिति का पूरा चित्र खींचने और यह वताने के लिए कर दिया है कि कांग्रेस-दल के पीछे-पीछे मालवीयजी और उनके दल ने भी किस प्रकार मेम्वरी छोड़ दी।

अव हमें १९३० के महान् आन्दोलन का अध्ययन करना है। यह कहा जा चुका है कि स्वाधीनता-दिवस देशभर में वड़ी धूम-धाम से मनाया गया। एक-न-एक कारण से भारत में गिरफ्तारियां प्रवल वेग से हो रही थीं। मेरठ के ३२ अभियुक्तों में से एक के सिवा सव दौरा सुपुर्द कर दिये गये, कलकत्ते में सुभाष वावू और उनके ११ साथियों को एक-एक वर्ष की कड़ी सजा दी गई। कांग्रेस के आदेश पर कौंसिलों के १७२ सदस्यों ने फरवरी १९३० तक इस्तीफे दे दिये। इनमें से २१ असेम्वली के और ९ राज्य-परिषद् के सदस्य थे। प्रान्तीय कौंसिलों में वंगाल से ३४, विहार-उड़ीसा से ३१, मध्यप्रान्त से २०, मदरास से २०, युक्त-

प्रान्त से १६, आसाम से १२, वम्बई से ६, पंजाव से २ और वर्मा से १ ने इस्तीफा दिया।

सविनय-अवज्ञा का श्रीगणेश

१४, १५ और १६ फरवरी को कार्य-समिति की सावरमती में वैठक हुई। कौंसिलों के जिन मेम्वरों ने इस्तीफे नहीं दिये थे या देकर चुनाव में फिर खड़े हो गये थे उन्हें कहा गया कि या तो वे कांग्रेस की निर्वाचित समितियों की मेम्वरी छोड़ दें, अन्यथा उनपर जाब्ते की कार्रवाई की जायगी। सरकार ने राजनैतिक कैदियों के साथ सद्व्यवहार करने का आश्वासन दिया था, परन्तु सरकार ने इस वचन का पालन नहीं किया। इसपर सावरमती में कार्य-समिति ने खेद प्रकट किया। किन्तु इस वैठक का मुख्य प्रस्ताव तो सविनय-अवज्ञा के सम्वन्ध में था। वह इस प्रकार था :—

"कार्य-समिति की राय में सविनय-अवज्ञा का आन्दोलन उन्हीं लोगों के द्वारा आरम्भ और संचालित होना चाहिए जिनका पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास हो; और चूंकि कांग्रेस के संगठन में सव ऐसे ही स्त्री-पुरुष नहीं हैं वल्कि ऐसे भी लोग शामिल हैं जो अहिंसा को देश की वर्तमान स्थिति में सिर्फ नीति के तौर पर मानते हैं, इसलिए कार्य-समिति महात्मा गांधी के प्रस्ताव का स्वागत करती है और उन्हें तथा अहिंसा में विश्वास रखनेवाले उनके साथियों को अधिकार देती है कि वे जव, जिस तरह और जहां तक उचित समझें सविनय अवज्ञा जारी कर दें। कार्य-समिति को विश्वास है कि जव आन्दोलन वस्तुतः चल रहा होगा उस समय सारे कांग्रेसवादी और दूसरे लोग सव तरह से सत्याग्रहियों को पूर्ण सहयोग देंगे और वड़ी-से-वड़ी उत्तेजना के समय भी सम्पूर्ण अहिंसा का पालन और रक्षण करेंगे। कार्य-समिति को यह भी आशा है कि आन्दोलन के सर्व-साधारण में फैल जाने पर वकील आदि लोग जो सरकार के साथ स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग कर रहे हैं, और विद्यार्थीगण जो सरकार से कथित लाभ उठा रहे हैं, वे सव यह सहयोग और यह लाभ छोड़ देंगे और स्वतन्त्रता के अंतिम संग्राम में कूद पड़ेंगे।

"कार्य-समिति को विश्वास है कि नेताओं के गिरफ्तार और कैद हो जाने पर जो लोग पीछे रह जायंगे और जिनमें त्याग और सेवा की भावना है वे अपनी योग्यता के अनुसार कांग्रेस के काम और आन्दोलन को जारी रक्खेंगे।"

जाब्ते के इस प्रस्ताव से भी पहले गांधीजी ने कुछ चुने हुए आमन्त्रित मित्रों के साथ जो खानगी वात चीत की थी वह ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी। उसमें एकमात्र

विषय नमक था; अर्थात् नमक का कानून कैसे तोड़ा जाय, नमक कैसे बनाया जाय पड़ा हुआ नमक कैसे इकट्ठा किया जाय और नमक के ढेरों पर धावा कैसे बोला जाय?

नमक-कानून भंग

परन्तु सविनय अवज्ञा शुरू करें तो कैसे? गांधीजी के इरादे पहले ही ज़ाहिर हो गये थे। वम्बई में ये समाचार पहुँच चुके थे और कार्य-समिति की साबरमती की बैठक से पहले ही पहुँच चुके थे कि नमक के ढेरों पर धावा बोला जायगा। १४ फरवरी से पहले ही वम्बई में प्रचार-कार्य भी शुरू हो गया। नमक-कर का इतिहास खोद निकाला गया। मालूम हुआ कि १८३६ में एक नमक-कमीशन बैठा था और उसने भारत में अंग्रेजी नमक की बिक्री की खातिर भारतीय नमक पर कर लगाने की सिफारिश की थी। लिवरपूल बन्दर में माल के बिना जहाज खाली पड़े थे और अशान्त समुद्र पर वे तबतक चल नहीं सकते थे जबतक कि आवश्यक भार को पूरा करने के लिए भी कोई माल उनपर लदा न हो। इसलिए कुछ माल, कुछ भार, कुछ वजन तो उन्हें लाना ही पड़ता था। कुछ समय तक तो उनमें लन्दन के समुद्र-तट की रेत भर कर आती रही, इसीसे कलकत्ते की चौरंगी सड़क तैयार हुई। यहां पहले हुगली से कालीघाट-मन्दिर तक नहर थी। असल बात यह है कि भारत में सदा से माल आता कम और यहां से जाता अधिक रहा है। १९२५ में निर्यात ३१६ करोड़ का और आयात २४९ करोड़ रुपये का रहा। इतना ही नहीं, निर्यात-माल में अधिकतर खाद्य-पदार्थ और कच्चा माल होने के कारण वह जगह अधिक घेरता है। सब बातों को ध्यान में रखकर देखा जाय तो निर्यात-माल को लेजाने के लिए आयात-माल लाने की अपेक्षा कम-से-कम चार-पांच गुने जहाजों की जरूरत तो अवश्य होती है। अर्थात् भारत में आनेवाले जहाजों को खाली आना पड़ता था। भारतीय व्यापार के लिए आवश्यक जहाजों में ७२ फी सदी या ३/४ अंग्रेजी जहाज होते हैं। इसलिए भारत में आनेवाले जहाजों को अपना भार पूरा करने के लिए भी कुछ-न-कुछ अंग्रेजी माल लाना जरूरी होता है। इसके लिए चेशायर के नमक से अच्छी चीज और क्या होती? हां, अखबारों की रद्दी और चीनी के टुकड़े आदि चीजें भी लाई जाती हैं। इटली के जहाज अपना भार पूरा करने को इटली का संगमरमर और आलू लाते हैं। यही कारण है कि ये वस्तुयें भारतीय पैदावार से सस्ती पड़ जाती हैं।

साबरमती की बैठक के बाद थोड़े दिनों में वातावरण नमक-ही-नमक से

व्याप्त हो गया। लोग पूछने लगे, क्या वनाया हुआ नमक पड़ता खायगा? सरकारी-कर्मचारी और भी आगे वढ़े। उन्होंने समुद्र के पानी से नमक वनाने में ईंधन और मजदूरी का हिसाव लगाकर वताया कि नमक-कर से तिगुना खर्च नमक वनाने में लगता है। ये वेचारे यह न समझ सके कि यह संग्राम भौतिक नहीं, नैतिक था।

प्रस्तुत नमक-सत्याग्रह का विकास होनेवाला था। गांधीजी किसी नमक के क्षेत्र में जाकर नमक उठावेंगे। दूसरे नहीं उठावेंगे। अगर कोई पूछता, 'क्या हाथ-पर हाथ धरे वैठे रहें?' तो यही उत्तर मिलता—'अवश्य। परन्तु मैदान में उतरने के लिये तैयार रहो।' उन्हें तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। वल्लभभाई तक को वह कूच में साथ न ले गये। केवल सावरमती-आश्रम के निवासियों को ही उन्होंने साथ में लिया। वर्धा-आश्रमवालों को भी तैयारी करने और गांधीजी की गिरफ्तारी तक ठहरे रहने का आदेश मिला। फिर तो एकसाथ भारत-भर में लड़ाई शुरू होनेवाली ही थी। गांधीजी की गिरफ्तारी के वाद लोग जो चाहते वह करने को स्वतन्त्र थे। उन्हें दीख गया था कि उनके वाद भारत में सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायगा और खूव जोर पकड़ लेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेंगे। परन्तु जिस राष्ट्र ने अंग्रेजों का कभी वुरा नहीं चाहा उसे वे नेस्तनावूद नहीं कर सकते थे। ऐसा होने पर तो साम्राज्य तक की जड़ें हिल जातीं। अहिंसा पर अटल रहने का और कोई परिणाम हो ही नहीं सकता। लोग यदि यह पूछते कि सरकार वम वरसायगी तो क्या होगा? तो उसका उत्तर यही था कि यदि निर्दोष-स्त्री-पुरुष और वच्चों को जमींदोज कर दिया जाय तो उन्हींकी खाक में से साम्राज्य को भस्म करनेवाली अग्नि प्रज्वलित होगी।

वाइसराय को अन्तिम चेतावनी

गांधीजी की योजना सदा उनकी अन्तः प्रेरणा से वनी है, मस्तिष्क के भावना-हीन, हानि-लाभ-दर्शक तर्क से नहीं वनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्तःकरण ही रहा है। गांधीजी की दिव्य दृष्टि और शुद्ध विचार का लोहा सभी ने माना। नरम-दल-वालों तक ने नमक-सत्याग्रह को भले ही वेहूदा और खतरनाक वताया हो, गांधीजी के हेतु की पवित्रता से वे भी इन्कार नहीं कर सके। गांधीजी ने वाइसराय को वहुत देर तक अन्धेरे में नहीं रक्खा। सदा की भांति इस वार भी (२ मार्च १९३० को) उन्होंने लॉर्ड अर्विन को चिट्ठी भेजी।

सत्याग्रहाश्रम सावरमती से भेजी गई वह चिट्ठी यह थी:—

"सरकारी आय का मुख्य भाग जमीन का लगान है। इसका बोझा इतना भारी है कि स्वाधीन-भारत को इसमें काफी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इससे भी मुट्ठी भर अमीर जमींदारों को लाभ है, गरीब किसानों को कोई लाभ नहीं। वे तो सदा से बेबसी में रहे हैं। उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता है।

"भूमिकर को ही घटा देने से काम नहीं चलेगा। सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पड़ेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है कि सरकार ने जो तरीका जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने को ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उसपर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यों दीखने में तो वह सब पर बराबर पड़ता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक गरीबों पर ही पड़ता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरों से गरीब लोग अधिक मात्रा में खाते हैं। इस कारण नमक-कर का बोझा गरीबों पर और भी ज्यादा पड़ता है। नशे की चीजों का महसूल भी गरीबों से ही अधिक वसूल होता है, इससे गरीबों के स्वास्थ्य और सदाचार दोनों पर कुठाराघात होता है। इस कर के पक्ष में व्यक्तिगत-स्वतन्त्रता की झूठी दलील दी जाती है, परन्तु दरअसल यह लगाया जाता है आमदनी के लिए। १६१६ की सुधार-योजना के जन्मदाताओं ने बड़ी होशियारी से इस आय को द्वैध-शासन के जिम्मेवार कहलानेवाले विभाग के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार मदिरा-निषेध का भार मंत्री पर आ गया और वह बेचारा भलाई करने के लिए शुरू से ही निकम्मा हो गया। यदि अभागा मंत्री इस आमदनी को बन्द कर देता है तो उसे शिक्षा-विभाग का खर्च बिलकुल कम कर देना पड़ता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति में आबकारी के बजाय उसके पास और कोई आमदनी का साधन नहीं है। इधर ऊपर से कर का भार लाद-लादकर गरीबों की कमर तोड़ दी गई है, उधर हाथ-कताई के मुख्य सहायक-धन्धे को नष्ट करके उनकी उत्पादक-शक्ति बर्बाद कर दी गई है।

"भारतवर्ष के विनाश की दुःखद कहानी उसके नाम पर लिये गये कर्ज का उल्लेख किये बिना पूरी नहीं हो सकती। हाल में इसपर समाचारपत्रों में काफी लिखा जा चुका है। इस ऋण की स्वतंत्र न्यायालय-द्वारा पूरी जांच कराना और जो रकम अन्यायपूर्ण सिद्ध हो उसे चुकाने से इन्कार करना स्वाधीन-भारत का कर्त्तव्य होगा।

"उपर्युक्त अन्याय संसार के सबसे महँगे विदेशी शासन को कायम रखने के

लिए किये जाते हैं। आपके वेतन को ही देखिए। दूसरे अनेक लवाजमात के अलावा आपको २१ हजार रुपये मासिक मिलते हैं। आज के विनिमय के भाव से ब्रिटिश प्रधानमंत्री को ५,००० पौण्ड वार्षिक अर्थात् ५,४०० रुपये माहवार ही दिये जाते हैं। भारतवासियों की औसत दैनिक आय दो आने से कम है और आप ७००) रोज से ज्यादा पाते हैं। एक अंग्रेज की रोजाना आमदनी लगभग दो रुपये हैं और वहां के प्रधानमंत्री की १८०) रुपये। इस प्रकार आपको प्रत्येक हिन्दुस्तानी से पांच हजार गुना से भी ज्यादा मिलता है और ब्रिटिश प्रधानमंत्री को प्रत्येक अंग्रेज से सिर्फ ९० गुना ही अधिक दिया जाता है। मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि इस करिश्मे पर गौर कीजिए। यह व्यक्तिगत उदाहरण मैंने इसलिए दिया है कि एक हृदय विदारक सत्य आप भलीभांति समझ जायँ। आपके लिए व्यक्तिशः मेरे मन में इतना आदर है कि मैं आपके दिल को चोट पहुँचाने की इच्छा भी नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, आपको इतने भारी वेतन की जरूरत भी नहीं है। शायद आप सारी तनख्वाह खैरात ही कर देते होंगे। परन्तु जिस शासन-प्रणाली में ऐसी व्यवस्था हो वह तो जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लायक है। जो बात वाइसराय के वेतन के बारे में सच है, सामान्यतः वही सारे शासन पर भी लागू होती है।

"अतः कर का भार बहुत अधिक उसी हालत में कम किया जा सकता है जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजना की काया-पलट कर देना। मेरी राय में २६ जनवरी के स्वाभाविक प्रदर्शन में लाखों ग्रामीणों ने स्वेच्छा से जो भाग लिया उसका भी यही अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भार से स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायगी।

"फिर भी यदि भारतीय राष्ट्र को जीवित रहना है और यदि भारतवासियों को भूख से तड़प-तड़पकर शनैः शनैः मिट नहीं जाना है तो कष्ट-निवारण का कोई-न-कोई उपाय तुरन्त ढूंढना पड़ेगा। प्रस्तावित परिषद् से तो यह उपाय हो ही नहीं सकता, यह बात तर्क से मनवाने की नहीं है। यहां तो बराबर की शक्ति खड़ी करनी होगी; तर्क-वर्क कुछ नहीं। ब्रिटेन अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने व्यापार एवं हितों की रक्षा करेगा। इसलिए भारतवर्ष को मृत्यु के बाहुपाश में से मुक्त होने के लिए उतनी ही शक्ति सम्पादन कर लेनी होगी।

"यह सभी को मालूम है कि भले ही हिंसक-दल कितना ही असंगठित या सम्प्रति महत्त्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढ़ता जा रहा है। उसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह मूक जनता का कष्ट-निवारण

नहीं कर सकता। मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढ़तर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकार की संगठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। मेरा अनुभव अवश्य ही सीमित है, परन्तु वह बताता है कि अहिंसा बड़ी जबरदस्त क्रियात्मक शक्ति हो सकती है। मेरा इरादा इस शक्ति-द्वारा सरकार की संगठित हिंसा और हिंसक-दल की बढ़ती हुई असंगठित हिंसा दोनों का मुकाबला करने का है। हाथ-पर-हाथ धर बैठने से तो ये दोनों शक्तियां स्वच्छन्द होकर विचरेंगी। मेरा अहिंसा की सफलता में निःशंक और अटल विश्वास है। ऐसी दशा में और प्रतीक्षा करना मेरे लिए पाप होगा।

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी। आरम्भ में आश्रम-निवासी ही इसमें भाग लेंगे, परन्तु बाद में इसकी मर्यादाओं को समझकर जो चाहेंगे वे सभी इसमें शामिल हो जायँगे।

"मैं जानता हूँ कि अहिंसात्मक संग्राम का प्रारम्भ करने में जोखिम है। लोग इस तरह से ठीक ही कहेंगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्य की विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमों के उठाये बिना नहीं हुई है। जिस राष्ट्र ने जान या अनजान में अपने से अधिक जन-संख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने-समान सभ्य दूसरे राष्ट्र को शिकार बनाया उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई भी जोखिम बड़ी नहीं है।

"मैंने 'ठीक रास्ते पर लाने' के शब्द जान-बूझकर प्रयोग किये हैं। कारण, मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश जाति का हृदय पलट दूं और उसे भारत के प्रति किये गये अपने अन्याय का अनुभव करा दूं। मैं आपकी जाति को हानि पहुँचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूँ, जैसी अपनी जाति की। मेरा विश्वास है कि मैंने सदा ही ऐसी सेवा की है। १९१९ तक आंखें बन्द करके उनकी सेवा की पर जब मेरी आंखें खुलीं और मैंने असहयोग की आवाज बुलन्द की तब भी मेरा उद्देश उनकी सेवा ही था। जिस हथियार का उपयोग मैंने अपने प्रिय-से-प्रिय रिश्तेदार पर कामयाबी के साथ किया है, वही मैंने सरकार के खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयों के समान ही अंग्रेजों को भी चाहता हूँ, तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के बाद मेरे कुनबेवालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है; वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओं के अनुकूल जनता ने मेरा साथ दिया तो या तो पहले ही ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट-सहन करेगी जिन्हें देखकर पत्थर का दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता।

"सविनय-अवज्ञा की योजना उपर्युक्त बुराइयों के मुकाबले के लिए है। ब्रिटिश-सम्बन्ध-विच्छेद भी हम इन्हीं बुराइयों के कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जाने पर हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौते का द्वार खुल जायगा। यदि ब्रिटेन के भारतीय व्यापार में से लोभ का मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेने में कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि इन बुराइयों को तुरन्त दूर करने का मार्ग सुगम बनाइए और इस प्रकार वास्तविक परिषद् के लिए अनुकूलता पैदा कीजिए। यह परिषद् बराबरी के लोगों की होगी, जिनका हेतु एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छा-पूर्वक मित्रता का सम्बन्ध रखकर मानव-जाति की भलाई का उद्योग किया जाय और उभय-पक्ष के लाभ को ध्यान में रखकर पारस्परिक सहायता एवं व्यापार की शर्तें तय की जायँ। दुर्भाग्यवश इस देश में साम्प्रदायिक झगड़े हैं अवश्य, किन्तु आपने उनपर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है। यद्यपि किसी भी शासन-सम्बन्धी योजना में इस समस्या पर विचार करना महत्वपूर्ण बात है, परन्तु इससे भी बड़ी-बड़ी अन्य समस्यायें हैं जो कौमी झगड़ों से परे हैं और जिनके कारण सब जातियों को समान-रूप से हानि उठानी पड़ती है। अस्तु, यदि इन बुराइयों को दूर करने का उपाय आप नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्र का आपके हृदय पर असर नहीं होगा, तो इस मास की ११ तारीख को मैं आश्रम से उपलब्ध साथी लेकर नमक-कानून तोड़ने के लिए चल पड़ूंगा। गरीबों की दृष्टि से मैं इस कानून को सबसे अधिक अन्यायपूर्ण समझता हूँ। स्वाधीनता का आन्दोलन मूलतः गरीब-से-गरीब की भलाई के लिए है। इसलिए इस लड़ाई की शुरुआत भी इसी अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमक के इस निर्दय एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में, मुझे आशा है कि, मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप में यह काम सम्हालने को तैयार होंगे और नमक-कानून जैसे घृणित कानून को, जो कभी बनाना ही नहीं चाहिए था, तोड़ने के कारण जो सजायें दी जायँगी उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।

"मेरा बस चले तो मैं आपको अनावश्यक ही क्या जरा-सी कठिनाई में भी नहीं डालना चाहूँ। यदि आपको मेरे पत्र में कुछ सार दिखाई दे और मेरे साथ बातचीत करना चाहें और इस हेतु से आप इस पत्र को छपने से रोकना पसन्द करें तो इसके पहुँचते ही आप मुझे तार कर दीजिए, मैं खुशी से रुक जाऊँगा। परन्तु

इतनी कृपा अवश्य कीजिए कि यदि आप इस पत्र के सार को भी अंगीकार करने को तैयार न हों तो मुझे अपने इरादे से रोकने का प्रयत्न न करें।

"इस पत्र का हेतु कोई धमकी देना नहीं है। यह तो सत्याग्रही का साधारण और पवित्र कर्तव्य मात्र है। इसीलिए मैं इसे भेज भी खास तौर पर एक ऐसे युवक अंग्रेज-मित्र के हाथ रहा हूँ जो भारतीय पक्ष का हिमायती है, जिसका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाता ने इसी काम के लिए मेरे पास भेजा है।"

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड रेनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। यह भाई कुछ समय तक आश्रम में रह चुके थे। गांधीजी के इस पत्र को जनता और अखबारों ने अन्तिम चेतावनी का नाम दिया था। लॉर्ड अर्विन का उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय साहब ने खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करनेवाले हैं जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शांति भंग होगी। गांधीजी का प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच, विनय और साहस की भावना से कूट-कूटकर भरा था। उन्होंने लिखा, "मैंने दस्तबस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर।[1] अंग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहब के उत्तर पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेलखाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रेजी कानून को मानने से इन्कार करता हूँ और इस जबर्दस्ती की शान्ति की मनहूस एकरसता को भंग करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ। इस शान्ति से राष्ट्र का गला रुँधा हुआ था। अब उसके हृदय का चीत्कार प्रकट होना चाहिए।"

इस प्रकार गांधीजी का कूच अनिवार्य हो गया था। सब तैयारियां पहले से ही हो चुकी थीं। लम्बी-चौड़ी तैयारी की तो जरूरत भी न थी। उनके ७९ साथी आश्रमवासियों और विद्यापीठ के छात्रों में से चुने हुए लोग थे। ये सैनिक दो सौ मील लम्बी पैदल यात्रा के कष्टों को सहन करने के लिए फौलादी अनुशासन में सधे हुए थे। दाण्डी समुद्र-तट पर एक गांव है। गांधीजी को वहीं पहुँचना था। उन्होंने मार्ग के ग्रामवासियों को मना कर दिया था कि यात्रियों को बढ़िया भोजन न दें। इधर गांधीजी शुद्ध नैतिक ढंग की ये तैयारियां कर रहे थे, उधर वल्लभभाई अपने

---

[1] रहम को तुझसे तवक्को थी, सितमगर निकला।
मोम समझे थे तेरे दिल को, सो पत्थर निकला॥

'गुरु' के पहले ही आनेवाली तपस्या और संकटों के लिए तैयार होने की प्रेरणा करने के लिए गांवों में पहुँच चुके थे। सरकार ने प्रथम प्रहार करने में विलम्ब नहीं किया। जब वल्लभभाई इस प्रकार गांधीजी के आगे-आगे चल रहे थे, सरकार ने समझा, 'यह तो १९०० वर्ष पहले ईसामसीह का दूत जॉन बैपटिस्ट है।' उसने तुरन्त मार्च के प्रथम सप्ताह में वल्लभभाई को रास गांव में गिरफ्तार कर लिया और उन्हें चार मास की सादी सजा दे दी। इस घटना के साथ-साथ गुजरात का बच्चा-बच्चा सरकार के खिलाफ खड़ा हो गया। साबरमती के रेतीले तट पर ७५ हजार स्त्री-पुरुषों ने एकत्र होकर यह निश्चय किया :—

"हम अहमदाबाद के नागरिक संकल्प करते हैं कि जिस रास्ते वल्लभभाई गये हैं उसी रास्ते हम जायँगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनता को प्राप्त करके छोड़ेंगे। देश को आजाद किये बिना न हम चैन लेंगे, न सरकार को लेने देंगे। हम शपथपूर्वक घोषणा करते हैं कि भारतवर्ष का उद्धार सत्य और अहिंसा से ही होगा।"

गांधीजी ने कहा, 'जो यह प्रतिज्ञा लेना चाहें, अपने हाथ ऊँचे कर दें।' सारे जन-समूह ने हाथ उठा दिये। वल्लभभाई ने गुजरात में अपने भाषणों से जीवन फूंक दिया। उन्होंने कहा, "तुम्हारी आंखों के सामने तुम्हारे प्यारे पशु कुर्क होंगे। अरे! क्या विवाह-उत्सव मना रहे हो? इतनी बलवती सरकार से जूझनेवाले को ये रंग-रेलियां शोभा दे सकती हैं। कल ही से ऐसी नौबत आ सकती है कि अपने-अपने घरों के ताले लगाकर तुम्हें दिन-भर खेतों में रहना और सांझ पड़े लौटना पड़े। तुमने यश कमाया है, परन्तु उसकी पात्रता सिद्ध करने के लिए अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। पासा पड़ चुका है। अब पीछे हटने की गुंजाइश नहीं रही। गांधीजी ने सामूहिक सविनय-अवज्ञा के प्रथम प्रयोग में तुम्हारे ताल्लुके को ही चुना है। देखना, उनकी लाज रखना। ....मैं जानता हूँ, तुममें से कुछ लोगों को जमीनें जब्त होने का डर है। पर जब्ती से क्या होगा? क्या अंग्रेज तुम्हारी जमीनें सिर पर उठाकर विलायत ले जायँगे? विश्वास रक्खो, तुम्हारी जमीनें जब्त हो जायँगी उस दिन सारा गुजरात तुम्हारी पीठ पर आकर खड़ा हो जायगा।

"अपने गांव का ऐसा संगठन करो कि दूसरे तुम्हारा अनुकरण करें। अब गांव-गांव छावनियां बन जानी चाहिएँ। अनुशासन और संगठन से आधी लड़ाई तो जीती ही समझो। सरकार तो हर गांव में एक-एक पटेल और एक-एक तलाटी रखती है। गांव के प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को हमारे स्वयंसेवक बन जाना चाहिए।

दाण्डी-कूच

गांधीजी अपने ७९ साथियों को लेकर १२ मार्च १९३० को दाण्डी की कच पर निकल पड़े। यह एक ऐतिहासिक भव्य-दृश्य था और प्राचीनकाल की राम एवं पाण्डवों के वन-गमन की घटनाओं की स्मृति ताजा करता था। यह विद्रोहियों की कूच थी। इधर कूच जारी थी, उधर ग्राम-कर्मचारियों के धड़ाधड़ त्याग-पत्र आ रहे थे। ३०० ने नौकरी छोड़ दी। अहमदाबाद की खानगी बातचीत में गांधीजी ने कहा था, "मैं शुरुआत करूँ तबतक ठहरना। जब मैं कूच पर निकलूंगा तो विचार अपने-आप फैल जायँगे। फिर आप लोगों को भी मालूम हो जायगा कि क्या करना चाहिए।" यह बात एक तरह से दिमागी अटकल लगाने के विरुद्ध चेतावनी के रूप में कही गई थी। यह विरोध की योजना थी ही ऐसी कि उस समय इसके पूरे-पूरे स्वरूप की कल्पना इसके योग्यसे-योग्य अनुगामी भी नहीं कर सकते थे। शायद गांधीजी को भी भावी की पूरी कल्पना नहीं थी। ऐसा लगता है मानों उनपर आन्तरिक ज्योति की एक किरण पड़ती थी और उसीके प्रकाश में वह अपना व्यवहार निश्चित करते थे। सन्त पुरुषों के जीवन में बुद्धि या तर्क के बजाय ये ही दो चीजें मार्ग-दर्शक होती हैं। कूच आरम्भ होते ही जनता ने उनके उपदेशों की भावना और आन्दोलन की योजना को समझ लिया। वह उनके झण्डे के नीचे आ खड़ी हुई। विचार फैल गया और अलग-अलग रूप में प्रकट होने लगा। लोगों ने शीघ्र अनुभव कर लिया कि असहयोग और अहिंसा अभावात्मक नहीं बल्कि प्रतिकार की योजना है। इनकी युद्ध-नीति अलग है और वह है सत्य। अहिंसा प्रतिकार है। ज्योंही विचारों और भावनाओं को छुट्टी मिली, लोगों की क्रिया-शक्ति के बन्द भी खुल गये। नगर तो डरते रहे, पर गांव पीछे हो लिये। सीधे-सादे लोगों का गांधीजी के अचूक निर्णय पर विश्वास था। उनका नमक-सत्याग्रह किसी सुरक्षित भण्डार या अनन्त महासागर की लूट का धावा नहीं था। यह तो अंग्रेजों की सत्ता के खिलाफ ३३ करोड़ भारतीयों के विद्रोह का परिचायक-मात्र था। अंग्रेजों के बनाये हुए कानून-कायदों का आधार न तो प्रजा की सम्मति पर है और न नीति अथवा मनुष्यता के विशुद्ध सिद्धान्तों पर।

भावी आदेश

यह सही है कि पहला वार गोला-बारूद या अन्य विस्फोटक पदार्थों के शोर-गुल के साथ नहीं किया गया। यहां तो नमक जैसी सादी चीज से काम लिया गया। फिर भी जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकता के इस पदार्थ से जो वेग उत्पन्न हुआ वह

आश्चर्यजनक था। सरकार पर भी इस सीधे-सादे और हास्यास्पद-से आन्दोलन का असर अद्भुत-सा हुआ। सभ्य संसार पर तो इसका जितना गहरा और जल्दी असर हुआ वह वर्णन नहीं किया जा सकता। गांधीजी की कूच ने यह विचार प्रसारित कर दिया कि ब्रिटिश-सरकार के विरोध में भारत ने रक्त-रहित विद्रोह का झण्डा फहरा दिया है और यदि विधाता की यही इच्छा है कि असत्य पर सत्य की, अंधकार पर प्रकाश की और मृत्यु पर अमरता की विजय होनी चाहिए तो भारतवर्ष की भी जीत होकर रहेगी।

कूच के बीच में ही २१ मार्च १९३० को अहमदाबाद में महासमिति की बैठक हुई। इसमें कार्य-समिति के पूर्व-कथित प्रस्ताव का समर्थन और नमक कानून पर ही शक्ति केन्द्रित रखने का अनुरोध किया गया। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि गांधीजी के दाण्डी पहुँचकर नमक-कानून तोड़ने से पहले देश में और कहीं सविनय-अवज्ञा शुरू न की जाय। सरदार वल्लभभाई और श्री सेनगुप्त की गिरफ्तारियों पर और सरकारी नौकरियां छोड़नेवाले ग्राम-कर्मचारियों को बधाई दी गई। सत्याग्रहियों के लिए एक ही तरह की प्रतिज्ञा निश्चित करना वाञ्छनीय समझा गया और गांधीजी की अनुमति से यह प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया :—

"१—राष्ट्रीय महासभा ने भारतीय स्वाधीनता के लिए सविनय-अवज्ञा का जो आन्दोलन खड़ा किया है उसमें मैं शरीक होना चाहता हूँ।

"२—मैं कांग्रेस के शान्त एवं उचित उपायों से भारत के लिए पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के ध्येय को स्वीकार करता हूँ।

"३—मैं जेल जाने को तैयार और राजी हूँ और इस आन्दोलन में और भी जो कष्ट और सजायें मुझे दी जायँगी उन्हें मैं सहर्ष सहन करूँगा।

"४—जेल जाने की हालत में मैं कांग्रेस-कोष से अपने परिवार के निर्वाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं मांगूंगा।

"५—मैं आन्दोलन के संचालकों की आज्ञाओं का निर्विवाद रूप से पालन करूँगा।"

गांधीजी के गिरफ्तार होने पर जनता क्या करे और कैसा व्यवहार रक्खे, इस विषय में गांधीजी अपनी सूचनायें सदा से देते आये हैं। कूच के आरम्भ से पहले २७ फरवरी को गांधीजी ने 'मेरे गिरफ्तार होने पर' यह लेख लिखा। उसमें कहा :—

"यह तो समझ ही लेना चाहिए कि सविनय-अवज्ञा आरम्भ होने पर मेरी

गिरफ्तारी निश्चित है। अतः ऐसा होने पर क्या किया जाय, यह सोच लेना जरूरी है।

"मेरी गिरफ्तारी पर मूक और निष्क्रिय अहिंसा की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है अत्यन्त सक्रिय अहिंसा को कार्य-रूप देने की। पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास रखने वाला एक-एक स्त्री-पुरुष इस गुलामी में अब नहीं रहेगा। या तो मर मिटेगा या कारावास में बन्द रहेगा। इसलिए मेरे उत्तराधिकारी अथवा कांग्रेस के आदेशानुसार सविनय-अवज्ञा करना सबका कर्तव्य होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी तो मुझे सारे भारत के लिए अपना कोई उत्तराधिकारी नजर नहीं आता। परन्तु मुझे अपने साथियों और अपने ध्येय में भी इतना विश्वास अवश्य है कि उन्हें मेरा उत्तराधिकारी परिस्थिति स्वयं दे देगी। हां, यह अनिवार्य शर्त सभी के ध्यान में रहनी चाहिए कि उस व्यक्ति को निर्धारित ध्येय की प्राप्ति के लिए अहिंसा की शक्ति में अचल विश्वास होना चाहिए। ऐसा न होगा तो ऐन मौके पर उसे अहिंसात्मक उपाय नहीं सूझ सकेगा।

"जब शुरुआत भलीभांति और वस्तुतः हो चुकेगी तब मुझे आशा है कि देश के कोने-कोने से सहयोग मिलेगा। आन्दोलन की सफलता के प्रत्येक इच्छुक का धर्म होगा कि वह इसे अहिंसात्मक और नियंत्रित बनाये रक्खे। हरेक से आशा है कि वह अपने सरदार की आज्ञा बिना अपने स्थान से न हटेगा।............संसार-भर के सामूहिक आन्दोलनों में नेता अकल्पित रूप में निकल पड़े हैं। फिर हमारा आन्दोलन भी इस नियम का अपवाद क्यों होगा?"

इसी समय के आस-पास पण्डित मोतीलाल नेहरू ने आनन्द भवन का शाही दान दिया। उस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू थे। उन्होंने देश के प्रतिनिधि के रूप में इस भेंट को स्वीकार किया।

जिस समय गांधीजी की कूच जारी थी, भारत बड़ा अधीर होकर उसको देख रहा था। प्रमाद को दूर करना प्रायः जितना कठिन है उतना ही व्याकुलता पर अंकुश रखना कठिन होता है। परन्तु अनुशासन संगठन का प्राण होता है। इस विकट अवसर पर भारतवर्ष ने अनुशासन का परिचय दिया। गांधीजी द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन को संख्या, धन और प्रभाव का बल मिलता ही गया। गांधीजी ने सूत्र-रूप से विचार दिया था। उनके शिष्योंने भाष्यकार बनकर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्त्ता राष्ट्र-दूत बनकर उसका प्रचार करने दूर-दूर निकल पड़े। गुरु एक, चेले अनेक और प्रचारक असंख्य होते हैं। इस प्रकार यह नवीन धर्म

देश के कोने-कोने और घर-घर में फैल गया। गांधीजी की कूच के समय जो सरकार अविचलित दिखाई देती थी, एक ही सप्ताह में उसके होश-हवाश गुम हो गये। गांधीजी के महा-प्रस्थान से पहले ही मार्च के प्रथम सप्ताह में वह वल्लभभाई को गिरफ्तार करने और उन्हें चार मास की सजा देने की दो गैर-कानूनी कार्रवाइयां कर चुकी थी। कूच के बाद उसने यह आज्ञा दी कि लंगोटी और दण्डधारी गांधी की पैदल यात्रा का सिनेमा-चित्र न दिखाया जाय। बम्बई, युक्त-प्रान्त, पंजाब और मदरास आदि सभी प्रान्तों ने ऐसी ही आज्ञायें निकाल दीं। पुलिस को मामूली काम से एक तरह छुट्टी-सी दे दी गई। सारा ध्यान असहयोगियों पर लगा दिया गया।

इस सारी प्रसव-पीड़ा में पूर्ण-स्वराज्य का जन्म हो रहा था। यह क्या कम सन्तोष की बात थी? इसमें किसी बाहरी मदद की जरूरत भी न पड़ी। कष्ट तो हुआ ही, परन्तु इससे भारत-माता पहले से अधिक शुद्ध, बलवती और गौरवान्वित होकर प्रकट हो रही थी।

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में चमत्कार होते आये हैं। भारत को भी अपना चमत्कार दिखाना ही था। इसीको देखने, और अपने ही युग और अपनी ही मातृभूमि में देखने के लिए, १२ मार्च १९३० से पहले ही से साबरमती-आश्रम में हजारों नर-नारी गांधीजी के चारों ओर एकत्र हुए थे। जहांतक चलने का सामर्थ्य था वहां तक ये लोग गांधीजी के साथ-साथ गये। स्वाधीनता-पथ के इन यात्रियों के साथ कई भारतीय और विदेशी संवाददाता, चित्रकार और आस-पास के सैकड़ों लोग तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आये हुए प्रमुख व्यक्ति भी गये। गांधीजी को जाननेवालों को मालूम है कि वह कितना तेज चलते हैं। एक संवाददाता ने इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"१२ मार्च को सुबह होते ही गांधीजी सविनय-अवज्ञा की मुहिम पर चल पड़े। उनके साथ चुने हुए ७९ स्वयंसेवक थे। इन लोगों को दो सौ मील की दूरी पर, समुद्र-तट पर बसे, दाण्डी नामक गांव जाना था और वहां पहुंचकर नमक बनाना था।"

'बॉम्बे क्रानिकल' के शब्दों में "इस महान् राष्ट्रीय घटना से पहले, उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने में आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन फूंकनेवाले थे कि वर्णन नहीं किया जा सकता। इस महान् अवसर पर मनुष्यों के हृदयों में देश-प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नहीं

वहीं थी। यह एक महान् आन्दोलन का महान् प्रारम्भ था, और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।"

यात्रा में

गांधीजी सहारे के लिए हाथ में लम्बी लकड़ी लिए हुए चलते थे। उनकी सारी सेना बिलकुल करीने से पीछे-पीछे चलती थी। सेना-नायक का कदम फुर्ती से उठता था और सभीको प्रेरणा देता था। असलाली गांव १० मील दूर था, सारे रास्ते इस सेना को दोनों ओर खड़ी हुई भारी भीड़ के बीच में होकर गुजरना पड़ा। लोग घण्टों पहले से भारत के महान् सेनापति के दर्शनों की उत्सुकता में खड़े थे। इस अवसर पर अहमदाबाद में जितना बड़ा जुलस निकला, उतना पहले कभी निकला हुआ याद नहीं पड़ता। शायद बच्चों और अपंगों के सिवाय नगर का प्रत्येक निवासी इस जुलूस में शामिल था। इसकी लम्बाई दो मील से कम न थी। जिन्हें बाजार में खड़े होने को जगह न मिली, वे छतों और झरोखों, दीवारों और दरख्तों पर, जहां-कहीं जगह मिली, पहुँच गये थे। सारे नगर में उत्सव-सा दिखाई देता था। रास्ते-भर 'गांधीजी की जय' के गगनभेदी घोष होते रहे।

कूच में ही गांधीजी ने घोषित कर दिया था "कि स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है।" गांधीजी की गिरफ्तारी होने ही वाली थी। श्री अब्बास तय्यबजी उनके उत्तराधिकारी मुकर्रर हुए। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने कहा, "महात्मा गांधी की ऐतिहासिक कूच की उपमा हजरत मूसा और उनके यहूदी साथियों के देश-त्याग से ही दी जा सकती है। जबतक यह महापुरुष मंजिले-मकसूद पर नहीं पहुँच जायगा, पीछे फिरकर नहीं देखेगा।"

गांधीजी ने कहा, "अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ।

"मैंने स्वयं 'गॉड सेव दि किंग' के गीत गाये हैं। दूसरों से भी गवाये हैं। मुझे 'भिक्षांदेहि' की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसीको मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खतम कर देना हमारा परम-कर्तव्य है।"

जम्बूसर नामक स्थान पर भाषण देते हुए गांधीजी ने पुलिस के थानेदारों के सामाजिक बहिष्कार की निन्दा की और कहा, "सरकारी कर्मचारियों को भूखों मारना धर्म नहीं है। शत्रु को सांप काट ले तो उसकी जान बचाने के लिए तो उसका जहर चूस लेने में मैं भी संकोच नहीं करूंगा।"

१४ फरवरी १९३० को कार्य-समिति ने नमक-सत्याग्रह के विषय में जो प्रस्ताव पास किया था २१ मार्च को महा-समिति ने अहमदाबाद की बैठक में उसका इस प्रकार समर्थन किया :—

"यह समिति कार्य-समिति के १४ फरवरीवाले उस प्रस्ताव का समर्थन करती है जिसमें सविनय-अवज्ञा का प्रारम्भ और संचालन करने का महात्मा गांधी को अधिकार दिया गया था। साथ ही यह समिति गांधीजी, उनके साथियों एवं देश को १२ मार्च को शुरू किये गये कूच पर बधाई देती है। समिति को आशा है कि देशभर गांधीजी का इस काम में इस तरह साथ देगा जिससे पूर्ण-स्वराज्य का आन्दोलन शीघ्र सफल हो जाय।

"महा-समिति प्रान्तीय समितियों को अधिकार देती है कि वे जिस प्रकार उचित समझें उसी प्रकार सविनय-अवज्ञा जारी कर दें, अलबत्ता समय-समय पर कार्य-समिति की आज्ञाओं का पालन करना प्रान्तीय समितियों के लिए आवश्यक होगा। किन्तु समिति को आशा है कि प्रान्त यथा-संभव नमक-कानून तोड़ने पर ही जोर लगावेंगे। समिति को विश्वास है कि सरकारी हस्तक्षेप की परवा न करके भी पूरी तैयारी तो जारी रक्खी जायगी, परन्तु जबतक गांधीजी दाण्डी पहुँचकर नमक-कानून का भंग न कर दें और दूसरों को भी अनुमति न दें दें तबतक अन्यत्र सविनय-अवज्ञा आरम्भ न की जायगी। हां, यदि गांधीजी पहले ही पकड़ लिये जायँ तो प्रान्तों को सविनय-अवज्ञा आरम्भ करने की पूरी आजादी होगी।"

तीर्थ यात्रा

गांधीजी को कूच में २४ दिन लगे। रास्ते भर वह इस बात पर जोर देते रहे कि यह तीर्थयात्रा है। इसमें शरीर को कायम रखने मात्र के लिए खाने में ही पुण्य है, स्वादिष्ट भोजन करने में नहीं है। वह बराबर आत्म-निरीक्षण कराते रहे। सूरत में गांधीजी ने कहा :—

"आज ही प्रातः कालीन प्रार्थना के समय मैं साथियों से कह रहा था कि जिस जिले में हमें सविनय-अवज्ञा करनी है उसमें हम पहुंच गये हैं। अतः हमें आत्म-शुद्धि

और समर्पण-वुद्धि का और भी प्रयत्न करना चाहिए। यह जिला अधिक संगठित है और यहां कार्यकर्त्ताओं में घनिष्ठ मित्र भी अधिक हैं, इसलिए हमारी खातिर-तवाजो भी अधिक होने की संभावना है। देखना उनके आग्रह को न मानना। हम देवता नहीं हैं, निर्वल प्राणी हैं, आसानी से प्रलोभनों के शिकार हो जाते हैं। हमसे अनेक भूलें हुई हैं। कई तो आज ही प्रकट हुईं। जिस समय मैं यात्रियों की भूलों पर चिन्ता-मग्न था उसी समय एक दोपी ने स्वयं आकर अपराध कवूल किया। मैंने समझ लिया कि मैंने चेतावनी देने में उतावली नहीं की है। स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने हमारे लिए मोटर भरकर सूरत से दूध मंगवाया था और अन्य अनुचित खर्च किया था। अतः मैंने तीव्र शब्दों में उनकी भर्त्सना की। परन्तु इससे मेरा दुःख शान्त नहीं हुआ। उलटा ज्यों-ज्यों मैं उस भूल पर विचार करता हूँ त्यों-त्यों दुःख बढ़ता ही है।

"मैं विरोध तभी कर सकता हूँ जव मेरा रहन-सहन जनता की औसत-आय से कुछ तो साम्य रखता हो। हम यह कूच परमेश्वर के नाम पर कर रहे हैं। हम अपने कार्य में नंगे, भूखे और वेकार लोगों की भलाई की दुहाई देते हैं। यदि हम देशवासियों की औसत-आय अर्थात् ७ पैसे रोज से पचास गुना खर्च अपने पर करा रहे हैं तो हमें वाइसराय के वेतन की टीका करने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने कार्यकर्त्ताओं से खर्च का हिसाव और अन्य विगत मांगी है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसमें प्रत्येक ७ पैसे का पचास गुना खर्च अपने ऊपर कर रहा हो। और होगा भी क्या, जव वे कहीं-न-कहीं से मेरे लिए वढ़िया-से-वढ़िया सन्तरे और अंगूर लायेंगे, १ दर्जन सन्तरों के स्थान पर १० दर्जन पहुँचायेंगे और आधा सेर दूध की जरूरत होगी तो डेढ़ सेर ला धरेंगे? आपका जी दुखाने के भय का वहाना लेकर आपके परोसे हुए व्यंजन यदि हम खा लेंगे, तो भी वही परिणाम होगा। आप अमरूद और अंगूर लाकर देते हैं और हम उन्हें उड़ा जाते हैं। क्यों? इसलिए कि धनाढ्य किसान ने भेजे हैं! और फिर यह तो सोचिए कि किसी कृपालु मित्र ने मुझे फाउण्टेन-पेन दे दिया और मैंने विना आत्म-पीड़ा अनुभव किये वढ़िया चिकने कागज पर उसीसे वाइसराय साहव को खत लिख डाला? क्या यह मुझे और आपको शोभा दे सकता है? क्या इस प्रकार लिखे हुए पत्र का कुछ भी असर हो सकता है?

"इस प्रकार के जीवन से तो अखा भगत की यह कहावत चरितार्थ होती है कि चोरी का माल खाना कच्चा पारा निगलना है। गरीव देश में वढ़िया भोजन करना चोरी करके खाना नहीं तो क्या है? चोरी का माल खाकर यह लड़ाई कभी नहीं जीती जा सकती। मैंने यह कूच हैसियत से ज्यादा खर्च करने के लिए शुरू भी नहीं

की थी। हमें तो आशा है कि हमारी पुकार पर हजारों स्वयंसेवक हमारा साथ देंगे। उनपर बेशुमार खर्च करके रखना हमारे लिए असंभव होगा।"

नमक-कानून टूटा

५ अप्रैल को प्रातःकाल गांधीजी दाण्डी पहुँचे। श्रीमती सरोजिनीदेवी भी उनसे मिलने आई थीं। प्रातःकाल की प्रार्थना के थोड़ी देर बाद गांधीजी और उनके साथी समुद्र-तट से नमक बीनकर नमक-कानून तोड़ने निकले। नमक-कानून तोड़ते ही गांधीजी ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया :—

"नमक-कानून विधिवत् भंग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह, जहां चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्त्ता नमक बनावें; जहां उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो वहां उसे काम में भी लावें और ग्रामवासियों को भी सिखा दें, परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि नमक बनाने में सजा होने की जोखिम है। या यों कहो कि गांववालों को पूरी तरह समझा दिया जाय कि नमक-कर का भार किन-किन पर कितना पड़ता है, और इसके कानून को किस प्रकार तोड़ा जाय जिससे नमक-कर उठ जाय।

"नमक-कर के खिलाफ यह लड़ाई राष्ट्रीय सप्ताह भर, अर्थात् १३ अप्रैल तक, जारी रहनी चाहिए। जो इस पवित्र कार्य में शरीक न हो सकें उन्हें विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और खद्दर-प्रचार के लिए व्यक्तिशः काम करना चाहिए। उन्हें अधिक-से-अधिक खादी बनवाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। इस काम के और मदिरा-निषेध के बारे में मैं भारतीय महिलाओं के लिए अलग सन्देश तैयार कर रहा हूँ। मेरा विश्वास दिन-दिन दृढ़ होता जा रहा है कि स्वाधीनता की प्राप्ति में स्त्रियां पुरुषों से अधिक सहायक हो सकती हैं। मुझे लगता है कि अहिंसा का अर्थ वे पुरुषों से अच्छा समझ सकती हैं। यह इसलिए नहीं कि वे अबला हैं—पुरुष अहंकार-वश उन्हें ऐसा ही समझते हैं।—बल्कि सच्चे साहस और आत्म-त्याग की भावना उनमें पुरुषों से कहीं अधिक है।"

स्त्रियों के विषय में गांधीजी ने नवसारी में कहा :—

"स्त्रियों को पुरुषों के साथ नमक की कढ़ाइयों की रक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं सरकार पर इतना विश्वास अब भी रख सकता हूँ कि वह हमारी बहनों से लड़ाई मोल नहीं लेगी। इसकी उत्तेजना देना हमारे लिए भी अनुचित होगा। जबतक सरकार की कृपा पुरुषों तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषों को ही लड़ना चाहिए; जब

सरकार सीमोल्लंघन करे तव भले ही स्त्रियां जी खोलकर लड़ें। कोई यह न कहे कि 'चूंकि हम जानते थे कि स्त्रियां कितनी भी आगे वढ़कर कानून भंग करें उनपर कोई हाथ न डालेगा, इसीलिए पुरुषों ने स्त्रियों की आड़ ली।' मैंने स्त्रियों के सामने जो कार्यक्रम रक्खा है उसमें उनके लिए वहुत काम है। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखावें और जोखिम उठावें।"

६ अप्रैल से नमक-सत्याग्रह की छुट्टी क्या मिली, देश में इस छोर से उस छोर तक आगसी लग गई। सारे वड़े-वड़े शहरों में लाखों की उपस्थिति में विराट् सभायें हुईं। करांची, पूना, पटना, पेशावर, कलकत्ता, मदरास और शोलापुर की घटनाओं ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आघार हिंसा है। पेशावर में सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये। मदरास में भी गोली चली।

करांची की दुर्घटना का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने लिखा :—

"वहादुर युवक दत्तात्रेय, कहते हैं, सत्याग्रह को जानता भी न था। पहलवान था, इसलिए सिर्फ शान्ति कायम रखने के लिए गया था। गोली लगकर मारा गया। १८ साल का नौजवान मेघराज रेवाचन्द्र गोली का शिकार हुआ। इस प्रकार जयरामदास सहित ७ मनुष्य गोली से घायल हुए।"

२३ अप्रैल को वंगाल-आर्डिनेन्स फिर से जारी कर दिया गया। २७ अप्रैल को वाइसराय साहव ने भी कुछ संशोधन करके १६१० के प्रेस-एक्ट को आर्डिनेन्स-रूप में फिर से जीवित कर दिया। गांधीजी का 'यंग इंडिया' अव साइक्लोस्टाइल पर निकलने लगा था। एक वक्तव्य में उन्होंने कहा :—

"हमें अनुभव होता हो या न होता हो, कुछ दिन से हम पर एक प्रकार से फौजी शासन हो रहा है। फौजी शासन आखिर है क्या। यही कि सैनिक अफसर की मर्जी ही कानून वन जाती है। फिलहाल वाइसराय वैसा अफसर है और वह जहां चाहे साधारण कानून को वालाय-ताक रखकर विशेष आज्ञायें लाद देता है और जनता वेचारी में उनके विरोध करने का दम नहीं होता। पर मैं आशा करता हूं, वे दिन जाते रहे कि अंग्रेज शासकों के फरमानों के आगे हम चुपचाप सिर झुका दें।

"मुझे उम्मीद है कि जनता इस आर्डिनेन्स से भयभीत न होगी। और अगर लोकमत के सच्चे प्रतिनिधि होंगे तो अखवारवाले भी इससे नहीं डरेंगे। थोरो का यह उपदेश हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए कि अत्याचारी शासन में ईमानदार आदमी का धनवान रहना कठिन होता है। अतः जव हम चीं-चपड़ किये विना अपने शरीर

ही अधिकारियों के हवाले कर देते हैं तो हमें उसी भांति अपनी सम्पत्ति भी उनके सुपुर्द कर देने में क्यों हिचकिचाहट होनी चाहिए? इससे हमारी आत्मा की तो रक्षा होगी।

"इस कारण मैं सम्पादकों और प्रकाशकों से अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे जमानत देने से इन्कार कर दें और सरकार न माने तो या तो वे प्रकाशन वन्द कर दें, या सरकार जो-कुछ जब्त करना चाहे कर लेने दें। जब स्वतंत्रता-देवी हमारा द्वार खटखटा रही है और उसे रिझाने को हजारों ने घोर यातनायें सहन की हैं, तो देखना, अखबारवालों को कोई यह न कह सके कि मौका पड़ने पर वे पूरे नहीं उतरे। सरकार टाइप और मशीनरी जब्त कर सकती है; परन्तु कलम और जवान को कौन छीन सकता है? और असल चीज तो राष्ट्र की विचार-शक्ति है; वह तो किसी के दवाये नहीं दव सकती।"

थोड़े दिन वाद गांधीजी ने अपने 'नवजीवन-प्रेस' के व्यवस्थापक को कह दिया कि सरकार जमानत मांगे तो न दी जाय और प्रेस को जब्त होने दिया जाय। 'नवजीवन' गया और उसके साथ-साथ नवजीवन-प्रेस-द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र भी जाते रहे। देश के अधिकांश पत्रकारों ने जमानतें दाखिल कर दीं।

अव गांधीजी ने जनता को गांवों में ताड़ी के सारे पेड़ काट डालने का आदेश दिया। शुरुआत तो उन्होंने अपने ही हाथों से की। ४ मई को सूरत में स्त्रियों की सभा में वह वोले—"भविष्य में तुम्हें तकली के विना सभाओं में न आना चाहिए। तकली पर तुम वारीक-से-वारीक सूत कात सकती हो। विदेशी कपड़ा पहले-पहल सूरत के वन्दर पर उतरा था। सूरत की वहनों को ही इसका प्रायश्चित्त करना है।" यहीं पर उन्होंने जातीय पंचायतों से अपनी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा पालन करने का अनुरोध किया। किन्तु नवसारी में सरकारी कर्मचारियों के सामाजिक वहिष्कार के विरुद्ध उन्हें जनता को चेतावनी देनी पड़ी। खेड़ा जिला गुजरात का रणांगण वन गया था। गांधीजी ने 'नवजीवन' में लिखा—

"खेड़ा जिला-निवासियों को सावधान होकर वहिष्कार को मर्यादा के भीतर रखना चाहिए। उदाहरणार्थ, मैंने संकेत कर दिया है कि ग्राम-कर्मचारियों का वहिष्कार उनके काम तक ही सीमित रहना चाहिए। उनकी आज्ञा न मानी जाय, परन्तु उनका खाना-पीना वन्द न होना चाहिए। उन्हें घरों से नहीं निकालना चाहिए। यदि हमसे इतना न हो सके तो वहिष्कार छोड़ देना चाहिए।"

धारासना पर धावा

इस समय गांधीजी ने वाइसराय साहब के लिए अपना दूसरा पत्र तैयार किया और सूरत जिले के धारासना और छरसाड़ा के नमक के कारखानों पर धावा करने का इरादा जाहिर किया। उन्होंने वाइसराय को लिखा :—

"ईश्वर ने चाहा तो धारासना पहुँचकर नमक के कारखाने पर अधिकार करने का मेरा इरादा है। मेरे साथी भी मेरे साथ रवाना होंगे। जनता को यह बताया गया है कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखाधड़ी है। धारासना पर सरकार का उतना ही वास्तविक नियंत्रण है जितना वाइसराय साहब की कोठी पर है। अधिकारियों की स्वीकृति के बिना चुटकीभर नमक भी कोई वहां से नहीं ले जा सकता।

"इस धावे को—रोकने के तीन उपाय हैं—

(१) नमक-कर उठा देना।

(२) मुझे और मेरे साथियों को गिरफ्तार कर लेना। परन्तु जैसी मुझे आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ्तार होने के लिए आते रहेंगे तो यह उपाय कारगर न होगा।

(३) खालिस गुण्डापन। परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड़वाने को तैयार रहेगा तो यह वार भी खाली जायगा।

"यह निश्चय बिना हिचक के नहीं कर लिया गया। मुझे आशा थी कि सत्याग्रहियों के साथ सरकार सभ्य तरीके से लड़ेगी। यदि उनपर साधारण कानून का प्रयोग करके सरकार सन्तोष कर लेती तो मैं कही क्या सकता था? इसके बजाय जहां प्रसिद्ध नेताओं के साथ सरकार ने थोड़ा-बहुत जाब्ता बरता भी है, वहां साधारण सैनिकों पर पाशविक ही नहीं निर्लज्ज प्रहार भी किये गये हैं। ये घटनायें इक्की-दुक्की होतीं तो उपेक्षा भी कर ली जाती। परन्तु मेरे पास बंगाल, बिहार, उत्कल, संयुक्तप्रान्त, दिल्ली और बम्बई से जो संवाद पहुँचे हैं उनसे गुजरात के अनुभव का समर्थन होता है। गुजरात-सम्बन्धी सामग्री तो मेरे पास ढेरों है। करांची, पेशावर और मदरास के गोली-काण्ड भी अकारण एवं अनावश्यक प्रतीत होते हैं। हड्डियां चूर-चूर करके और अण्डकोष दबादबाकर स्वयंसेवकों से वह नमक छीनने का प्रयत्न किया गया है जो सरकार के लिए निकम्मा था। हां, स्वयंसेवकों के लिए अलबत्ते वह बेश-कीमती था। कहा जाता है कि मथुरा में नायब मजिस्ट्रेट ने १० वर्ष के बालक के हाथ में से राष्ट्रीय झण्डा छीन लिया। यह कार्य कानून के विरुद्ध था परन्तु जब जनता ने झण्डा वापस मांगा तो उसे निर्दय प्रहार करके खदेड़ दिया गया। अधिकारी

स्वयं अपना अपराध समझते थे तभी तो अन्त में झण्डा वापस दे दिया गया। बंगाल में नमक के सम्बन्ध में मुकदमे और प्रहार तो कम ही हुए दीखते हैं, परन्तु स्वयंसेवकों से झण्डा छीनने के काम में अकल्पनीय निर्दयता का परिचय दिया गया बताते हैं। समाचार है कि चावल के खेत जला दिये गये और खाद्य-पदार्थ जबरदस्ती लूट लिये गये। कर्मचारियों के हाथ शाक-भाजी न बेचने के अपराध पर गुजरात में एक सब्जी की मण्डी ही नष्ट कर दी गई। ये कृत्य जन-समूहों की आंखों के सामने हुए हैं। कांग्रेस की आज्ञा न होती तो क्या ये लोग बदला लिये बिना छोड़ते? कृपया इन वृत्तान्तों पर विश्वास कीजिए। ये मुझे उन लोगों से मिले हैं जिन्होंने सत्य का व्रत ले रक्खा है बारडोली की भांति बड़े-बड़े कर्मचारियों-द्वारा किया गया प्रतिवाद भी झूठा सिद्ध हुआ है। मुझे खेद है, इन दिनों भी कर्मचारी झूठी बातें प्रकाशित करने से बाज नहीं रहे। गुजरात के कलक्टरों के दफ्तर से जो सरकारी विज्ञप्तियां निकली हैं उनके कुछ नमूने ये हैं:—

१—'वयस्क लोग प्रतिवर्ष २॥ सेर नमक खाते हैं इसलिए प्रति व्यक्ति तीन आना कर देते हैं। सरकार एकाधिकार हटा ले तो लोगों को अधिक मूल्य देना पड़ेगा और एकाधिकार के हटाने से सरकार को जो हानि होगी वह भी पूरी करनी पड़ेगी। समुद्र-तट से बटोरा हुआ नमक खाने के काम का नहीं होता, इसीलिए सरकार उसे नष्ट कर देती है।'

२—'गांधीजी कहते हैं कि इस देश में हाथ-कताई का उद्योग सरकार ने नष्ट कर दिया। परन्तु सब लोग जानते हैं कि यह बात सच नहीं है। देश भर में कोई गांव ऐसा नहीं है जहां आज भी रुई हाथ से न काती जाती हो। इतना ही नहीं, प्रत्येक प्रान्त में सरकार कातनेवालों को बढ़िया तरीके बताती है और कम कीमत पर अच्छे औजार देकर उनकी सहायता करती है।'

३—'सरकार ने जितना ऋण लिया है उसके पांच में से चार रुपये प्रजा की भलाई के कामों में लगाये हैं।'

"मैंने ये तीन तरह के बयान तीन अलग-अलग हस्त-पत्रकों में से लिये हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि इनमें से एक-एक बयान झूठे साबित किये जा सकते हैं। प्रत्येक वयस्क उपयुक्त मात्रा से कम-से-कम तिगुना नमक काम में लेता है और इसलिए निश्चय ही ९ आने प्रति वर्ष तो कर के देता ही है। और यह कर लिया भी जाता है स्त्री, पुरुष, बच्चे, पालतू पशु, छोटे-बड़े और अच्छे-बीमार सबसे।

"यह कहना एक दुष्टतापूर्ण असत्य है कि हर गांव में एक-एक चर्खा चलता है और सरकार चर्खा-आन्दोलन को किसी भी रूप में प्रोत्साहन देती है। सरकारी ऋण के पांच में से चार हिस्से सार्वजनिक हित के लिए खर्च होने की झूठी वात का उत्तर तो अर्थशास्त्री लोग अधिक अच्छा दे सकते हैं। परन्तु ये नमूने तो उन वातों के हैं जो सरकार के सम्वन्ध में जनता के सामने रोज आती हैं। उस दिन एक वीर गुजराती कवि को झूठी सरकारी शहादत पर सजा दे दी गई। कवि वेचारा कहता ही रहा कि मैं तो उस समय दूसरे स्थान पर सुख की नींद ले रहा था।

"अव सरकार की निष्क्रियता की वानगी देखिए। शराव के व्यापारियों ने धरना देनेवालों को पीटा और नियम-विरुद्ध शराव वेची। सरकारी आदमियों तक ने कवूल किया कि स्वयंसेवक शान्त थे। फिर भी कर्मचारियों ने न तो मारपीट पर ध्यान दिया और न शराव की अनियमित विक्री पर। मार-पीट के वारे में तो सवको मालूम होते हुए भी कर्मचारी यह वहाना कर सकते हैं कि किसीने शिकायत नहीं की।

"और अव देश की छाती पर एक नया आर्डिनेन्स और लाद दिया है। इसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। भगतसिंह वगैरा के मुकदमे में कानून के द्वारा देर होती, उससे वचने के लिए साधारण जाव्ते को ताक़ में रखने का आपको अच्छा अवसर मिल गया। इन कृत्यों को फौजी-शासन कहा जाय तो आश्चर्य क्यों होना चाहिए? और अभी तो आन्दोलन का पांचवां सप्ताह ही है।

"ऐसी दशा में, कुछ समय से भय-प्रदर्शन का वोलवाला शुरू हुआ है। उसका आतंक देश पर छा जाय उससे पहले ही अधिक साहस का काम, अधिक कठोर कार्रवाई कर डालना चाहता हूँ, जिससे आपका क्रोध जल्दी ही भड़क उठे और वह अधिक साफ रास्ते पर चल निकले। मैंने जो वातें वयान की हैं उनका सम्भव है आपको इल्म न हो। शायद आपको उनपर अव भी भरोसा न हो। मेरा धर्म तो आपका ध्यान दिलाना मात्र है।

"कुछ भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आपसे सत्ता के लाल पंजे को पूरी तरह आजमा लेने का अनुरोध करूँ। ऐसा न करना मेरे लिए कायरता की वात होगी। जो लोग आज कष्ट-सहन कर रहे हैं, जिनकी मिल्कियत वरवाद हो रही है, उन्हें यह कदापि न अनुभव होना चाहिए कि मैंने उनकी सहायता से इस लड़ाई को छेड़ तो दिया पर कार्यक्रम को उस हद तक पूरा नहीं किया जिस हद तक वह किया

जा सकता था। क्योंकि एक तो इस लड़ाई की बदौलत सरकार का असली रूप प्रकट हुआ है और दूसरे इसके छेड़ने में मेरा ही मुख्य हाथ रहा है।

"सत्याग्रह-शास्त्र के अनुसार सत्ताधारी जितना अधिक दमन और कानून-भंग करेंगे, सत्याग्रही उतने ही अधिक कष्टों को आमन्त्रण देंगे। स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया जाय तो जितना अधिक कष्ट-सहन उतनी ही निश्चित सफलता।

"मैं जानता हूँ कि मेरे प्रतिपादित उपायों में कितनी विपत्तियां निहित हैं। परन्तु अब देश मुझे समझने में भूल करनेवाला नहीं दीखता। मैं जो सोचता और मानता हूँ वही करता हूँ। मैं भारत में गत १५ वर्ष से और भारत से बाहर और भी २० वर्ष पहले से कहता आया हूँ कि हिंसा पर शुद्ध अहिंसा की ही विजय हो सकती है। मैंने यह भी कहा है कि हिंसा के एक-एक कार्य शब्द और विचार से भी अहिंसात्मक कार्य की प्रगति में बाधा पड़ती है। बार-बार ऐसी चेतावनियां देने पर भी लोग हिंसा कर बैठें तो मैं क्या करूँ? मेरे शिर पर उस दशा में उतना ही दायित्व होगा जितना प्रत्येक मनुष्य का दूसरे के कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से हुआ करता है। इसके अलावा और मेरी जिम्मेवारी नहीं हो सकती। दायित्व की बात छोड़ भी दी जाय तो भी मैं अपना काम किसी भी कारणवश मुल्तवी नहीं रख सकता। अन्यथा अहिंसा में वह शक्ति ही कहां रहे, जो संसार के सन्तों ने वर्णन की है और जो मेरे दीर्घकालीन अनुभव ने सिद्ध की है?

"हां, मैं आगे की कारंवाई सहर्ष स्थगित रख सकता हूँ। आप नमक-कर उठा दीजिए। इसकी निन्दा आपके कई विख्यात देश-वासियों ने बुरी तरह की है; और अब तो आपने देख लिया होगा कि सविनय-अवज्ञा के रूप में इस देश ने भी सर्वत्र इसपर रोष प्रकट कर दिया है। आप सविनय-अवज्ञा को भरपेट कोसिए। परन्तु क्या आप कानून-भंग से हिंसामय विद्रोह को अच्छा समझते हैं? आपने कहा है कि सविनय-अवज्ञा का परिणाम हिंसा हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसा हुआ तो इतिहास यही निर्णय देगा कि ब्रिटिश-सरकार अहिंसा को नहीं समझी और इसलिए उसकी सुनवाई भी नहीं की; फल यह हुआ कि मनुष्य-स्वभाव सरकार की प्रिय और परिचित वस्तु हिंसा पर उतर आने को विवश हुआ। परन्तु मुझे आशा है कि सरकारी उत्तेजना के बावजूद परमात्मा भारत-वासियों को हिंसा के प्रलोभन से दूर रहने की बुद्धिमत्ता और शक्ति को प्रदान करेगा।

"अत: आप नमक-कर उठा न सकें और नमक बनाने की मनाई दूर न करा

सकें तो मुझे अनिच्छा होते हुए भी इस पत्र के आरम्भ में वर्णित कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

गांधीजी की गिरफ्तारी

५ तारीख की रात को १ बजकर १० मिनट पर गांधीजी को चुपके से गिरफ्तार करके मोटर-लारी में विठा दिया गया। साथ में पुलिसवाले थे। वम्बई के पास वोरीविली तक रेलगाड़ी में और वहां से यरवडा-जेल तक मोटर में पहुँचा दिया गया। 'लन्दन टैलीग्राफ' नामक अखवार के संवाददाता अशमीद वार्टीलेट ने इस प्रसंग पर लिखा था :—

"जव हम गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय हमें वातावरण में नाटक का-सा चमत्कार प्रतीत होता था। हमें लगा, इस दृश्य के प्रत्यक्षद्रष्टा हमी हैं। कौन जाने यह घटना आगे चलकर ऐतिहासिक वन जाय? एक ईश्वर-दूत की गिरफ्तारी कोई छोटी वात है? सच्चे-झूठे की भगवान जाने, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि गांधी आज करोड़ों भारतीयों की दृष्टि में महात्मा और दिव्य-पुरुष है। कौन कह सकता है कि सौ वर्ष वाद तीस करोड़ भारतीय उसे अवतार मानकर नहीं पूजेंगे? इन विचारों को हम रोक न सके और इस ईश्वर-दूत को हिरासत में लेने के लिए उषा के प्रकाश में रेल की पटरी पर खड़ा रहना हमें अच्छा नहीं लगा।"

हां, गिरफ्तार होने से पहले गांधीजी ने दाण्डी में अपना अन्तिम सन्देश लिखवा दिया था। वह यह था :—

"......सम्प्रति भारत का स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमक में निहित है। मुट्ठी टूट भले ही जाय, पर खुलनी हरगिज न चाहिए।

"मेरी गिरफ्तारी के वाद जनता या मेरे साथियों को घवराना न चाहिए। इस आन्दोलन का संचालक मैं नहीं हूँ, परमात्मा है। वह सवके हृदय में निवास करता है। हममें श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखावेगा। हमारा मार्ग निश्चित है। गांव-गांव को नमक वीनने या वनाने को निकल पड़ना चाहिए। स्त्रियों को शराव अफीम और विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देना चाहिए। घर-घर में आवाल-वृद्ध सवको तकली पर कातना शुरू कर देना चाहिए और रोज सूत के ढेर लग जाने चाहिएँ। विदेशी वस्त्रों की होलियां की जायँ। हिन्दू किसीको अछूत न मानें। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सव हृदय से गले मिलें। वड़ी जातियां छोटी जातियों को देने के वाद वचे हुए भाग से सन्तोष करें। विद्यार्थी सरकारी मदरसे छोड़ दें

ोर सरकारी नौकर उन पटेलों और तलाटियों की भांति नौकरियां छोड़कर जनता ी सेवा में जुट जायँ। इस प्रकार आसानी से हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"

गांधीजी की गिरफ्तारी पर देश के इस छोर से उस छोर तक सहानुभूति ी लहर अपने-आप फैल गई। गिरफ्तारी का समाचार पहुँचना था कि वम्वई, लकत्ता और अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण और स्वेच्छापूर्वक हड़ताल हो गई। गिरफ्तारी : दूसरे दिन की हड़ताल और भी व्यापक थी। वम्बई में विराट् जुलूस निकला। ाम को इतनी विशाल सभा हुई कि कई मंचों पर से भाषण देने पड़े। ८० में से ०० के लगभग मिलें वन्द रहीं; कारण ५० हजार मजदूर विरोध-स्वरूप निकल ाये थे। जी० आई० पी० और वी० वी० सी० आई० के कारखानों के मजदूर भी ाम छोड़कर हड़ताल में शरीक हो गये थे। गिरफ्तारी पर अपनी नाराजी जाहिर रने के लिए कपड़े के व्यापारियों ने ६ दिन की हड़ताल का निश्चय किया। ांधीजी पूना में नजरवन्द किये गये थे। वहां भी पूरी हड़ताल हुई। समय-समय पर सरकारी पदों और पदवियों के छोड़ने की घोषणा होने लगी। देश ने प्रायः सर्वत्र महात्माजी के उपदेशों का आश्चर्यजनक रूप में पालन किया। एक-दो स्थानों पर झगड़ा भी हो गया। शोलापुर में ६ पुलिस-चौकियां जला दी गईं, जिसके फल-स्वरूप पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें २५ व्यक्ति मरे और लगभग १००० घायल हुए। कलकत्ते में शहर की हड़तालें तो शान्तिपूर्ण रहीं, परन्तु हवड़ा और पंचतल्ला में भीड़ को तितर-वितर करने के लिए पुलिस ने गोली चला दी। १४४ वीं धारा के अनुसार ५ से अधिक मनुष्यों के एकत्र होने की मनाही कर दी गई।

परन्तु गांधीजी की गिरफ्तारी का असर तो विश्व-व्यापी हुआ। पनामा के भारतीय व्यापारियों ने २४ घंटे की हड़ताल मनाई। सुमात्रा के पूर्वीय समुद्र-तटवासी हिन्दुस्तानियों ने भी ऐसा ही किया और वाइसराय साहब एवं कांग्रेस को तार भेजकर गांधीजी की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट किया। फ्रांस के पत्र गांधीजी और उनकी वातों से भरे थे। वहिष्कार आन्दोलन का परिणाम जर्मनी पर भी हुआ। वहां के कपड़े के व्यापारियों को उनके भारतीय आढ़तियों ने माल भेजने की मनाही करदी। रूटर ने यह समाचार भेजा कि सैक्सनी की सस्ती छींट के कारखानों को खास तौर पर हानि हो रही है। नैरोबी के भारतीयों ने भी हड़ताल रक्खी।

इसी बीच में अमरीका के भिन्न-भिन्न दलों के १०२ प्रभावशाली पादरियों ने तार-द्वारा रैम्जे मैकडानल्ड साहब की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा और उनसे अनुरोध किया कि गांधीजी और भारतवासियों के साथ शान्तिपूर्ण समझौता किया

जाय। इसपर हस्ताक्षर न्यूयॉर्क के डॉक्टर जॉन हेनीज होम्स ने करवाये थे। सन्देश में प्रधानमंत्री से अपील की गई थी कि भारत, ब्रिटेन और जगत का हित इसी में है कि इस संघर्ष को बचाया जाय और समस्त मानव-जाति की भयंकर विपत्ति से रक्षा की जाय।

कार्य-समिति के प्रस्ताव

महात्मा जी के स्थान पर श्री अब्बास तैयबजी नमक-सत्याग्रह के नायक हुए थे। वह भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारियों, लाठी-प्रहारों और दमन का दौर-दौरा जारी रहा। एक के बाद दूसरा स्वयंसेवक-दल नमक के गोदामों पर धावा करता रहा। पुलिस उन्हें लाठियों से मारती रही। बहुतों को सख्त चोटें आईं।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद कार्य-समिति की बैठक प्रयाग में हुई और उसने कानून-भंग का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया। नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत हुए :—

"१. कराडी तक महात्मा गांधी के साथ जानेवाले स्वयंसेवकों को कार्य-समिति बधाई देती है और आशा करती है कि नये-नये दल धावे करते रहेंगे। समिति निश्चय करती है कि अबसे नमक के धावों के लिए धारासना अखिल-भारतीय केन्द्र माना जाय।

"२. गांधीजी ने इस महान् आन्दोलन का संचालन करके देश को जो मार्ग दिखाया है उसकी कार्य-समिति प्रशंसा करती है, सविनय कानून-भंग में अपना शाश्वत विश्वास प्रकट करती है और महात्माजी के कारावास-काल में लड़ाई को दुगुने उत्साह से चलाने का निश्चय करती है।

"३. समिति की राय में अब समय आ गया है कि समस्त राष्ट्र ध्येय की प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगा कर कोशिश करे। अतः समिति विद्यार्थियों, वकीलों, व्यवसायियों, मजदूरों, किसानों, सरकारी नौकरों और समस्त भारतीयों को आदेश देती है कि वे इस स्वातंत्र्य-संग्राम की सफलता के लिए अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर भी सहायता दें।

"४. समिति की राय में देश का हित इसीमें है कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समस्त देश में अविलम्ब पूरा हो जाय और इसके लिए मौजूदा माल की बिक्री रोकने, पहले के दिये हुए आर्डर रद कराने और नये आर्डर न भिजवाने के लिए कारगर उपाय

किये जायँ। समिति समस्त कांग्रेस-कमिटियों को आदेश देती है कि वे विदेशी वस्त्र-वहिष्कार का तीव्र प्रचार करें और विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग विठा दें।

"५. समिति पण्डित मदनमोहन मालवीय-द्वारा किये गये वहिष्कार-आन्दोलन की सहायता के प्रयत्नों की प्रशंसा करती है, किन्तु उसे खेद है कि वह ऐसा कोई समझौता मंजूर नहीं कर सकती जिससे मौजूदा माल वेचने दिया जा सके और समय-विशेष के लिए विदेशी कपड़ा न मंगाने के व्यापारियों के वचन से सन्तोष किया जा सके। समिति सभी कांग्रेस-समितियों को ऐसे किसी समझौते में शामिल होने से मना करती है।

"६. समिति निश्चय करती है कि वढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिए हाथ-कते हाथ-वुने कपड़े की पैदावार वढ़ाई जाय। रुपये से वेचने के साथ-साथ सूत लेकर खद्दर देने वाली संस्थायें खड़ी की जायँ और सामान्यत: हाथ-कताई को प्रोत्साहन दिया जाय। समिति प्रत्येक देशवासी से अपील करती है कि वह रोज थोड़ी-वहुत देर अवश्य काते।

"७. समिति की राय में समय आ पहुँचा है कि कुछ प्रान्तों में खास-खास महसूल देना वन्द करके करवन्दी का आन्दोलन भी शुरू किया जाय और गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र, तामिल नाड और पंजाव जैसे रैयतवारी प्रान्तों में जमीन का लगान रोका जाय और वंगाल, विहार और उड़ीसा आदि में चौकीदारी-कर न दिया जाय। समिति इन प्रान्तों को आज्ञा देती है कि वे प्रान्तीय समितियों-द्वारा चुने हुए क्षेत्रों में जमीन का लगान और चौकीदारी-कर न देने का आन्दोलन संगठित करें।

"८. प्रान्तीय समितियों को आदेश दिया जाता है कि वे गैर-कानूनी नमक वनाने का काम जारी रक्खें और उसका विस्तार करें और जहां सरकार गिरफ्तारियों से या अन्य प्रकार से वाधा दे वहां नमक-कानून तोड़ने का काम और भी जोश के साथ किया जाय। समिति निश्चय करती है कि नमक-कानून के प्रति देश की नापसन्दगी प्रदर्शित करने के लिए कांग्रेस-संस्थायें हर रविवार को इस कानून के सामूहिक उल्लंघन का आयोजन करें।

"९. स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय ने मध्य-प्रान्त में जंगलात कानून तोड़ने की जो अनुमति दी है, समिति उसका समर्थन करती है और निश्चय करती है कि अन्य प्रान्तों में भी जहां ऐसा कानून हो वहां प्रान्तीय समितियों की स्वीकृति से उसका भंग किया जा सकता है।

"१०. समिति स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय को अधिकार देती है कि स्वदेशी मिलों के कपड़े की कीमत में अनुचित वृद्धि और नकली खद्दर की बनवाई को रोकने एवं विदेशी वस्त्र वहिष्कार की पूर्त्ति के लिए वे भारतीय मिल-मालिकों से समझौते की वातचीत करें।

"११. समिति जनता से अनुरोध करती है कि अंग्रेजी माल का वहिष्कार जल्दी-से-जल्दी पूरा होने के लिए वह प्रवल प्रयत्न करे।

"१२. समिति जनता से प्रवल अनुरोध करती है कि अंग्रेजी वैंकों, वीमा-कम्पिनियों, जहाजों और ऐसी अन्य संस्थाओं का भी वहिष्कार करे।

"१३. समिति एकवार पुनः सम्पूर्ण मदिरा-निषेध के लिए घोर प्रचार-कार्य की आवश्यकता पर जोर देती है और शराव और ताड़ी की दुकानों पर पिकेटिंग करने का प्रान्तीय समितियों से अनुरोध करती है।

"१४. समिति को कहीं-कहीं भीड़-द्वारा हिंसा हो जाने पर दुःख है और वह इस हिंसा की अत्यंत कठोर निन्दा करती है। समिति अहिंसा के पूर्ण पालन की आवश्यकता पर आग्रह रखने की इच्छा प्रकट करती है।

"१५. समिति प्रेस-आर्डिनेन्स की तीव्र निन्दा करती है और जिन अखवारों ने उसके आगे सिर नहीं झुकाया उसकी प्रशंसा करती है। जिन भारतीय पत्रों ने अभीतक प्रकाशन वन्द नहीं किया है या वन्द करके फिर निकलने लगे हैं उनके अव वन्द किये जाने का अनुरोध करती है। जो भारतीय अथवा गोरे पत्र अव भी प्रकाशन वन्द न करें उनका वहिष्कार करने के लिए यह समिति जनता से अपील करती है।"

श्रीमती सरोजिनीदेवी कार्य-समिति की वैठक में प्रयाग गई हुई थीं। श्री तैयवजी की गिरफ्तारी के समाचार सुनकर वह जल्दी-से धारासना लौट आईं और धावे का संचालन करने का गांधीजी को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया। वह और उनका स्वयंसेवक-दल जाब्ते से गिरफ्तार तो १६ तारीख को कर लिये गये, किन्तु वाद में पुलिस के घेरे से निकालकर उन्हें रिहा कर दिया गया। उसके वाद स्वयंसेवकों के दल नमक के गोदामों पर टूट पड़े। उन्हें मार-मार कर हटा दिया गया। उसी दिन शाम को पुलिस ने २२० स्वयंसेवकों को गैर-कानूनी संस्था के सदस्य करार देकर गिरफ्तार कर लिया और धारासना की अस्थायी जेल में नजरवन्द कर दिया।

१६ ता० को प्रातःकाल ही वड़ाला के नमक के कारखाने पर स्वयंसेवक वड़ी

संख्या में एकत्र हो गये। पुलिस की तत्परता के कारण धावा न हो सका। उस दिन पुलिस तमंचे लेकर आई थी। उसने ४०० सत्याग्रहियों को पकड़ लिया।

× × × ×

बहिष्कार-आन्दोलन का क्या असर हो रहा था, इसपर 'फ्री-प्रेस' के संवाददाता ने यह लिखा था :—

"आक्रमण का जोर कपड़े पर ही विशेष होने के कारण इस आन्दोलन की सफलता भी इसी दिशा में सबसे अधिक नजर आती है। परन्तु यह भय इतना नहीं है कि अन्त में भारतीय बाजार हाथ से जाता रहेगा। बल्कि भय इस बात का अधिक है कि मौजूदा सौदे पूरे नहीं होंगे या रद कर दिये जायँगे। मौजूदा सौदे रद करने की वृत्ति बढ़ती जाती है। 'डेली मेल' का मैंचेस्टर-स्थिति संवाददाता लिखता है, 'भारतवर्ष के ताजा समाचारों से ऐसा लगता है कि लंकाशायर का भारतीय व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा। पहले ही कताई-बुनाई के कारखाने अनिश्चित काल के लिये बन्द होते जा रहे हैं और हजारों मजदूर बेकारों की संख्या बढ़ा रहे हैं।'

नमक के धावे और भी होते रहे। उनका वर्णन 'गांधी : दी मैन एण्ड हिज मिशन' (अर्थात् 'गांधी : उसका व्यक्तित्व और जीवन-ध्येय') नामक पुस्तक में १३३ वें पृष्ठ से आगे यों किया गया है :—

"इस बीच में कार्य-समिति की लगातार कई बैठकों ने कार्यक्रम को जारी रखने का निश्चय किया। धावे भी जारी रहेंगे। २१ मई को धारासना पर सामूहिक धावा हुआ। इसमें सारे गुजरात से आये हुए २५०० स्वयंसेवकों ने भाग लिया। इमाम साहब उनके नायक बने। यह ६२ वर्ष के वृद्ध पुरुष गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका से साथी थे। धावा तड़के ही शुरु हो गया। जिधर से स्वयंसेवक नमक के ढेरों पर हमला करते उधर ही से पुलिस उन्हें लाठियां मार-मारकर खदेड़ देती।

"हजारों मनुष्यों ने यह दृश्य देखा। दो घण्टे तक द्वन्द-युद्ध चलता रहा। फिर श्री इमाम साहब, प्यारेलाल और मणिलाल गांधी आदि नेता पकड़ लिये गये और बाद में श्रीमती सरोजिनीदेवी भी गिरफ्तार हो गई। उस दिन कुल मिलाकर २९० स्वयंसेवक घायल हुए। इन चोटों से श्री भाईलालभाई डायाभाई नामक स्वयंसेवक तो चल ही बसा। इसके बाद पुलिस ने सेना की सहायता से धारासना और उँटड़ी के सब रास्ते बन्द करके इनका सम्बन्ध बाहर से काट दिया। उँटड़ी से सब स्वयंसेवकों को पुलिस न जाने कहां ले गई और फिर उन्हें छोड़ दिया।"

३ जून को उँटड़ी की छावनी से २०० स्वयंसेवकों के दो दल धारासना के

नमक-भण्डार पर आक्रमण करने निकले। दोनों को पुलिस ने रास्ते में ही रोक लिया और जब भीड़ वर्जित सीमा में घुसी तो उसपर लाठियां चला दीं। घायलों को छावनी के अस्पताल में पहुँचा दिया गया।

वड़ाला के धावे

वड़ाला के नमक के कारखाने पर कई धावे हुए। २२ ता० को १८८ स्वयंसेवक पकड़े गये और वर्ली भेज दिये गये। २५ ता० को १०० स्वयंसेवकों के साथ २००० दर्शकों की भीड़ भी गई। पुलिस ने लाठी-प्रहार करके १७ को घायल किया और ११५ को गिरफ्तार। धावा दो घण्टे तक रहा। तीसरे पहर फिर हुआ। इसमें १८ घायल हुए। प्रसिद्ध उड़ाके श्री० कवाड़ी भी इनमें शामिल थे। २६ ता० को ६५ स्वयंसेवक मैदान में गये और ४३ गिरफ्तार हुए। बाकी भीड़ के साथ नमक लेकर भाग गये। उस समय एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि अबतक जो गड़बड़ें हुई हैं वे अधिकतर दर्शकों ने की हैं और इनमें सैनिकों-का-सा अनुशासन नहीं है, अतः जनता को धावों के समय वड़ाला से दूर रहना चाहिए। किन्तु सबसे चमत्कारी धावा तो १ जून को हुआ। युद्ध-समिति उसके लिए बड़े परिश्रम से तैयारियां कर रही थी। उस दिन सुबह १५००० सैनिकों और असैनिकों ने वड़ाला के विशाल सामूहिक धावे में भाग लिया।

पोर्ट-ट्रस्ट के रेल्वे चौराहे पर एक के बाद दूसरा दल पहुँचता और वहीं पुलिस उन्हें और भीड़ को रोक लेती। थोड़ी देर में धावा करनेवाले स्त्री और बच्चे तक पुलिस का घेरा तोड़ कर कीचड़ पार करके कढ़ाइयों पर पहुँच जाते। लगभग १५० कांग्रेसी सैनिकों के मामूली चोटें आईं। पुलिस ने धावा करनेवालों को खदेड़ दिया। यह सब खुद होम-मेम्बर साहब की देख-रेख में हुआ।

३ जून को वर्ली की अस्थायी जेल में बड़ा उपद्रव हो गया। स्थिति को सम्हालने के लिए पुलिस को दो बार प्रहार करने पड़े और सेना बुलानी पड़ी। उस दिन वड़ाला के ४ हजार अभियुक्तों से पुलिस की भिड़न्त हो गई। लगभग ९० घायल हुए। २५ को सख्त चोटें आईं। किन्तु जिस प्रकार धावा करनेवालों के साथ पुलिस ने बरताव किया उस पर जनता में बड़ा रोष फैला। दर्शक लोग उस निर्दय दृश्य को देखकर चकित रह गये। बम्बई की अदालत खफीफा के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री हुसेन, श्री के० नटराजन और भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष श्री देवधर धारासना का हाल देखने खुद गये थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा।

"हमने अपनी आंखों देखा कि सत्याग्रहियों को नमक की सीमा के बाहर भगा देने के बाद भी यूरोपियन सवार हाथों में लाठियां लिये हुए अपने घोड़े सरपट दौड़ाते और जहां सत्याग्रही धावे के लिए पहुँच गये थे वहां से गांव तक लोगों को मारते रहे। गांव के रास्तों पर भी खूब तेजी से घोड़े दौड़ाकर स्त्री-पुरुष और बच्चों को तितर-बितर किया। ग्रामवासी दौड़-दौड़ कर गलियों और घरों में छिप गये। संयोगवश कोई न भाग सका तो उसपर लाठियां पड़ीं।"

'न्यू फ्रीमेन' के संवाददाता वेब मिलर साहब ने धारासना के इस घृणित दृश्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला :—

"मैं २२ देशों में १८ वर्ष से संवाददाता का काम कर रहा हूँ। इस अर्से में मैंने असंख्य उपद्रव, मारपीट और विद्रोह देखे हैं; किन्तु धारासना-के-से पीड़ाजनक दृश्य मेरे देखने में कभी नहीं आये। कभी-कभी तो ये इतने दुःखद हो जाते थे कि क्षणभर के लिए आंख फेर लेनी पड़ती थी। स्वयंसेवकों का अनुशासन अद्भुत चीज थी। मालूम होता था, इन लोगों ने गांधीजी के अहिंसा-धर्म को घोलकर पी लिया है।"

स्लोकोम्ब साहब की गवाही

लन्दन के 'डेली हेरल्ड-पत्र के प्रतिनिधि जार्ज स्लोकोम्ब साहब भी नमक के कुछ धावों के प्रत्यक्षदर्शी थे। वह २० मई को गांधीजी से यरवडा-जेल में मिले। उन्होंने अपने पत्र को जो खरीता भेजा वह इतना असाधारण था कि कामन-सभा की नींद हराम हो गई और अनुदार-दल के पत्रों की चिढ़ और क्रोध का पार न रहा। इस खरीते में स्लोकोम्ब साहब ने बतलाया कि अब भी समझौते की सम्भावना है और यदि नीचे लिखी शर्तें मान ली जायँ तो गांधीजी कानन-भंग स्थगित करने और गोलमेज-परिषद् के साथ सहयोग करने की कांग्रेस से सिफारिश करने को तैयार हैं :—

(१) गोलमेज-परिषद् को ऐसा विधान बनाने का अधिकार भी दिया जाय जिससे भारतवर्ष को स्वाधीनता का सार मिल जाय।

(२) नमक-कर उठा देने और शराब और विदेशी वस्त्र की मनाई करने के सम्बन्ध में गांधीजी को सन्तोष दिलाया जाय।

(३) कानून-भंग बन्द होने के साथ-साथ राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ।

(४) वाइसराय साहब के नाम गांधीजी ने अपने पत्र में जो सात बातें और लिखी थीं उनकी चर्चा बाद पर छोड़ दी जाय।

स्लोकोम्ब साहब ने सरकार से पूछा कि वह गांधीजी से सम्मानपूर्वक संधि करने को तैयार है या नहीं? उन्होंने कहा, "समझौते की बात चीत अब भी हो सकती है। गांधीजी से दो बार मिलने के बाद मुझे यकीन हो गया है कि मेल करने से ही मेल होगा और एक पक्ष की हिंसा दूसरे को झुकने पर मजबूर नहीं कर सकती। गांधीजी जेल में क्या बन्द हैं भारत की आत्मा बन्द है, यह स्पष्ट स्वीकार कर लेने से अब भी असीम हानि टाली जा सकती है।"

दमन का दौर-दौरा

परन्तु एक-एक बात को कहां तक गिनावें? घटनाओं का क्या पार था? लॉर्ड अर्विन ने अपनी सत्ता का पेच कसना शुरू कर दिया। आरम्भ में तो उन्होंने गांधीजी को गिरफ्तार नहीं करने दिया। परन्तु गांधीजी की कूच का रोग तो सारे राष्ट्र को लग गया। सर्वत्र कूच के नक्कारे बजने लगे। उनकी पुकार पर हजारों महिलायें मैदान में निकल आईं। उनके कारण सरकार बड़े चक्कर में पड़ गई। उन्होंने आते ही शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देने का काम अपने हाथ में ले लिया और जबतक शौर्य पर स्वेच्छाचार ने विजय प्राप्त न की तबतक पुलिस भी उनके आगे कुछ न कर सकी। ऐसी स्थिति में गांधीजी को खुला छोड़ा जाय? न जाने वह कहां से देश की छिपी हुई शक्ति को ढूंढकर निकाल लाते। उनके हाथ में जादू की लकड़ी थी। उसे जरा घुमाया कि धन-जन का ढेर लग जाता था। अतः उन्हें गिरफ्तार तो करना था, पर समय पाकर। कारण गांधी पर हाथ डालना सारे राष्ट्र-रूप भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी को पकड़ कर सजा दे दी गई। जवाहर क्या बन्दी हुआ, कांग्रेस बन्दी हो गई। सारा देश एक विशाल जेलखाना बन गया। धरना, करबन्दी और सामाजिक बहिष्कार सबकी रोक के लिए आर्डिनेन्स निकल गये। राष्ट्रीय झंडे पर अनेक मुठ-भेड़ें हुईं। सजायें दिन-दिन कठोर होने लगीं। कैद के साथ-साथ जुर्माने किये जाने लगे। लाठी-प्रहार भी आ पहुँचे। लोगों को विश्वास ही नहीं होता था कि लाठियों और सब शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करके पुलिस को जो कवायद-परेट सिखाई जा रही है वह सत्याग्रहियों के सिर पर आजमाई जायगी। यह कोरी धमकी या आशंका नहीं निकली। लाठी-प्रहार तो भयंकर सत्य के रूप में प्रगट हुआ। सभा-भंग की आज्ञा तो होती थी देश के साधारण कानून के अनुसार, और उसपर अमल होता था लाठी के निर्दय प्रहारों से। नमक-कानून के साथ-साथ ताजिरात-हिन्द की धारायें मिलाकर लम्बी-से-लम्बी सजायें दी जाने

लगीं। फरवरी १९३० के मध्य में एक सरकारी आज्ञा निकली। उसमें राजनैतिक कैदियों का वर्गीकरण किया गया। हां, उसमें 'राजनैतिक' शब्द सावधानी के साथ नहीं आने दिया गया। दिल्लगी तो यह है कि दस वर्ष पहले से सरकार अपनी 'इंडिया' नामक सालाना पुस्तक में —अलबत्ते अवतरण-चिन्ह देकर—यह शब्द बराबर प्रयोग करती आ रही थी! यह सरकारी आज्ञा परिशिष्ट ४ में दी गई है।

'ए' वर्ग तो नाममात्र को ही था। 'बी' क्लास भी बड़ी कंजूसी से दिया जाता था। विपुल सम्पत्ति के स्वामी और ऊंचे रहन-सहन के अभ्यासी सरकार की शर्तों के अनुसार भी उच्च वर्ग के हकदार थे। पर उन्हें भी 'सी' क्लास में डाल दिया जाता था और काम भी उन्हें जेलों में पत्थर तोड़ने, घानी पेलने और पानी निकालने का दिया जाता था। सत्याग्रहियों के साथ किये गये व्यवहार ने इस सरकारी आज्ञा की शीघ्र कलई खोल दी। वह तो जनता की आंखों में धूल झोंकने मात्र का प्रयत्न था। परन्तु स्वयंसेवक इस व्यवहार की शिकायत करनेवाले थोड़े ही थे। वे तो पतिंगों की भांति आन्दोलन में पड़ते ही रहे। बहुतों को सरकार पकड़ती न थी, उनपर सिर्फ लाठी का वार होता था। सौभाग्य से कोई जेल में पहुँच जाते, तो वहां भी कई बार दूसरा लाठी-प्रहार उनको तैयार मिलता था। आन्दोलन के आरम्भकाल की बात है। एक बार कलकत्ते के सार्वजनिक उद्यान में उपस्थित लोग तो ताले में बन्द करके बुरी तरह पीटे गये। फाटकों पर आड़ लगाकर पहरे बिठा दिये गये थे। पाशविक व्यवहार की शुरुआत तो संयुक्तप्रान्त और बंगाल से हुई। किन्तु थोड़े ही दिन में दक्षिण-भारत में भी यही हाल होने लगा, आन्दोलन के उत्तरार्द्ध-काल में वहां दमन की अमानुषता का पार नहीं रहा।

वहां भी आरम्भ में तो गिरफ्तारियों और भारी जुर्मानों की नीति आजमाई गई, परन्तु थोड़े ही दिन बाद मारपीट आ पहुँची। बाजार में सौदा खरीदते हुए खद्दर या गांधी-टोपी-धारी मनुष्य पीट दिये जाते थे। मलाबार की फौजी पुलिस को आन्ध्र के ब्रह्मपुर से एलोर तक कोकनडा और राजमहेन्द्री होकर सिर्फ इसलिए घुमाया गया कि रास्ते-चलते खद्दर-धारियों की मरम्मत करने का आनन्द लूटा जाय। ये करतूतें आखिर एलोर के विरोध से बन्द हुईं। वहां पुलिस ने गोली चलाई, दो-तीन आदमी मरे और पांच-छः घायल हुए।

दमन के भिन्न-भिन्न रूपों का दिग्दर्शन करा सकना वस्तुतः कठिन है। वह जन्मा तो था कानून-भंग की नाक में नाथ डालने, किन्तु वह हो गया 'अनेक रूप-रूपाय'! इसलिए हमें १९३० और १९३१ के इतिहास की थोड़ी-सी प्रमुख

घटनाओं का उल्लेख करके ही सन्तोष करना पड़ेगा। बीच-बीच में समझौते के जो प्रयत्न हुए उनका जिक्र तो पीछे ही किया जायगा। बम्बई शीघ्र ही लड़ाई का मुख्य केन्द्र बन गया। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार पर सारा जोर आ पड़ा। इसमें मिल-मालिकों का स्वार्थ साफ था। सौभाग्य से पण्डित मोतीलाल नेहरू उस समय जेल के बाहर थे। वह बम्बई गये और बम्बई तथा अहमदाबाद के मिलवालों से उन्होंने समझौते की बातचीत की। अहमदाबाद वालों से निपटना आसान था, पर बम्बई के मिलों में यूरोपियनों का हिस्सा भी था। उनसे कांग्रेस की मुहर लगवाने की शर्त (परिशिष्ट ५ देखिए) कबूल कराना बड़ा मुश्किल काम था। परन्तु मोतीलालजी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। बात यह थी कि वायुमण्डल ही उस समय बहिष्कार की भावना से परिपूर्ण था। जनता के हृदय में वह व्याप्त हो चुकी थी। विदेशी कपड़े की सैकड़ों गांठें बन्दर पर पड़ी थीं। व्यापारी उन्हें उठवाते न थे। उन्होंने एकत्र होकर निश्चय कर लिया था कि वह माल नहीं लेंगे। इस कारण देश में कपड़े की तंगी होने लगी थी।

कार्य-समिति-द्वारा प्रोत्साहन

२७ जून आ पहुँची। उस दिन प्रयाग में कार्य-समिति की बैठक हुई और उसने यह निश्चय किये :—

"१. बहुत-से शहरों और गांवों में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की जो प्रगति हुई है उसे देखकर समिति को सन्तोष है। समिति व्यापारियों की देशभक्ति की भावना की भी प्रशंसा करती है, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने न केवल विदेशी कपड़ा बेचना बन्द कर दिया है प्रत्युत् पहले के आर्डर रद कर दिये और नये आर्डर भेजना भी छोड़ दिया है और इस प्रकार तमाम विदेशी कपड़े की आयात में भारी कमी कर दी है। जिन स्थानों के व्यापारियों ने अभी तक विदेशी कपड़ा बेचना बन्द नहीं किया है उनसे यह समिति तुरन्त बन्द कर देने का अनुरोध करती है। इतने पर भी यदि वे बिक्री बन्द न करें तो समिति सम्बन्धित कांग्रेस-संस्थाओं को आदेश देती है कि उनकी दूकानों पर सख्त पिकेटिंग लगा दिया जाय। समिति को आशा है कि १५ जुलाई १९३० तक देशभर में विदेशी कपड़े की बिक्री बिलकुल बन्द हो जायगी। समिति प्रान्तीय-समितियों से उस दिन पूरा विवरण भेजने का अनुरोध करती है।

"२. समिति समस्त कांग्रेस-संस्थाओं और देशभर से अनुरोध करती है कि ब्रिटिश माल के सम्पूर्ण बहिष्कार का पहले से भी अधिक जोरदार प्रयत्न करें और इसके

लिए हिन्दुस्तान में न बननेवाली चीजों को ब्रिटेन के सिवा अन्य विदेशों से खरीदा जाय।

"३. समिति जनता से अनुरोध करती है कि जिन सरकारी नौकरों और दूसरे लोगों ने राष्ट्रीय-आन्दोलन का गला घोंटने के लिए जनता पर अमानुष अत्याचार करने में सीधा भाग लिया है उन सबका संगठित और कठोर रूप में सामाजिक बहिष्कार किया जाय।

"४. कार्य-समिति देश का ध्यान कांग्रेस के १९२२ वाले गया के और १९२९ वाले लाहौर के उस निश्चय की ओर आकर्षित करती है जिसमें विदेशी-शासन-द्वारा भारत पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लादे गये ऋण-भार को अस्वीकार कर दिया गया था और केवल उतना ऋण स्वीकार करना तय किया गया था जितना स्वतन्त्र न्यायालय (ट्रिब्यूनल) द्वारा जांच होकर उचित ठहरा दिया जाय। अतः समिति जनता को सलाह देती है कि नई पूंजी लगाने या पुरानी का रूपान्तर करने के लिए भी भारत-सरकार के नये पुर्जे (बांड) न खरीदे जायँ और न लिये जायँ।

"५. चूंकि बृटिश-सरकार ने प्रबल लोकमत की पर्वाह न करके मनमाने तौर पर रुपये का कानूनी भाव उसकी असली कीमत से तिगुना मुकर्रर कर दिया है और चूंकि रुपये का भाव और भी गिर जाने की शीघ्र सम्भावना है, अतः कार्य-समिति भारतवासियों को सलाह देती है कि सरकार से जो-कुछ लेना हो उसके बदले में यथासम्भव सोना लिया जाय, रुपये या नोट न लिये जायँ। समिति की यह भी सलाह है कि लोग जल्दी-से-जल्दी अपने रुपयों और नोटों के बदले में सोना लेलें और निर्यात-माल की कीमत सुवर्ण के रूप में लेने का आग्रह करें।

"६. इस समिति की राय में अब समय आ पहुँचा है कि भारत के कॉलिजों के विद्यार्थी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संग्राम में पूर्ण भाग लें। समिति सब प्रान्तीय समितियों को आदेश देती है कि वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रों में इन विद्यार्थियों से कांग्रेस की सेवा में लग जाने का अनुरोध करें और आवश्यकता हो तो उनकी पढ़ाई बिलकुल छुड़वा दें। समिति को विश्वास है कि समस्त विद्यार्थी इस अनुरोध का अनुकूल उत्तर तत्परता से देंगे।

"७. चूंकि सरकार ने अपनी दमन-नीति के अनुसार अनेक प्रान्तीय और जिला-समितियों तथा सम्बद्ध संस्थाओं को गैर-कानूनी करार दे दिया और सम्भव है शेष समितियों और संस्थाओं के लिए भी भविष्य में ऐसी ही कार्रवाई करे, अतः यह समिति इन समस्त समितियों और संस्थाओं को आदेश देती है कि सरकार की घोषणा

की पर्वाह न करके वे पहले की भांति काम करती रहें और कांग्रेस-कार्यक्रम को जारी रक्खें।

"८. इस समिति ने अपनी ७ जून की बैठक में पांचवां प्रस्ताव सेना और पुलिस के कर्तव्य के सम्बन्ध में पास किया था। युक्तप्रान्त की सरकार ने एक घोषणा-द्वारा इस प्रस्ताव की प्रतियां जब्त कर ली हैं। इस घोषणा पर समिति को आश्चर्य है। उसकी राय में जनता पर दिल दहलाने वाले अत्याचार करने के लिए फौज और पुलिस को अस्त्र बनाना ऐसी कार्रवाई है कि समिति न्याय-पूर्वक इससे भी कड़ा निश्चय कर सकती थी; परन्तु फिलहाल समिति ने जिस रूप में निश्चय किया उसीको काफी समझती है क्योंकि उसमें उस विषय पर वर्तमान कानून का ठीक-ठीक उल्लेख मात्र किया गया है। यह समिति समस्त कांग्रेस-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि सरकारी घोषणा की पर्वाह न करके उक्त निश्चय को अधिक-से-अधिक प्रकाशन दिया जाय।

"९. चूंकि समिति की पिछली बैठक के बाद भी सरकार ने अपने नृशंस दमन-चक्र को आंख बन्द करके जारी रक्खा है और सत्याग्रह-आन्दोलन का गला घोंटने की गरज से अपने नौकरों और गुर्गों को अधिकाधिक निर्दयता और पशुता के कृत्य करने दिये हैं, अतः समिति सरकार के जुल्मों का इस बहादुरी के साथ मुकाबला करने पर जनता को बधाई देती है और सरकार को फिर सचेत करती है कि चाहे सरकार की ओर से कितनी भी यातनायें बरसाई जायँ भारतवासियों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई को आखिरी दम तक जारी रखने का निश्चय कर लिया है।

"१०. समिति भारतीय महिलाओं को इस बात पर बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में दिन-दूने रात-चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही हैं।"

विलायती कपड़े का बहिष्कार दिन-दिन जोरदार और कारगर होता जा रहा था। खद्दर से किसी भांति कपड़े की मांग पूरी होती दीखती न थी। इसके बाद मिल के सूत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही देश-भक्त नागरिकों के लिए ग्राह्य हो सकता था। इसी कारण राष्ट्रीय कार्य में सहायक और बाधक होनेवाले कारखानों में भेद करना पड़ा। तदनुसार उन्हें सनद देने की प्रथा-द्वारा कांग्रेस के नियंत्रण में लाया गया। मिलों से जो शर्तें करवाई गई उनमें से मुख्य ये थीं कि वे अपनी मशीनरी ब्रिटिश कम्पनियों से नहीं खरीदेंगी, अपने आदमियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने से न रोकेंगी और कांग्रेस की दी हुई रिआयत का बेजा फायदा उठाकर अपने माल की

कीमत न बढ़ायेंगी और ग्राहकों को हानि न पहुँचायेंगी। मिलों ने बड़ाधड़ इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। इनी-गिनी मिलों ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये। उन्हें भी थोड़े दिन बाद पता लग गया कि उस समय कांग्रेस कितनी बलवती संस्था थी।

ब्रेल्सफोर्ड साहब का बयान

यहां पहुँचकर महासमिति गैरकानूनी ठहरा दी गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू को ३० जून १९३० के दिन गिरफ्तार करके ६ महीने की सजा दे दी गई। दमन-पुराण में इतनी वृद्धि और हुई कि बहिष्कार-आन्दोलन की तीव्रता के साथ-साथ दमन-चक्र की कठोरता भी बढ़ती गई। बम्बई के स्वयंसेवक-संगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रियां आती ही गईं और जब ये कोमलांगियां केसरिया साड़ी पहन-पहन कर अत्यन्त विनम्रता के साथ धरना देती थीं, तो लोगों के हृदय बात की बात में पिघल जाते थे। कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसीकी पत्नी धरना देने आ बैठती! अन्यत्र की तरह बम्बई में भी सार्वजनिक सभायें वर्जित करार दे दी गईं। पर इन आज्ञाओं को मानता कौन था? ब्रेल्सफोर्ड साहब ने आन्दोलन के समय इस देश की यात्रा की थी और जनता के साथ जो पाशविक व्यवहार किया जाता था, उसे अपनी आंखों देखा था। १२ जनवरी १९३१ के 'मैंचेस्टर गार्जियन' में उन्होंने अपना अनुभव इन शब्दों में प्रकट किया:—

"पुलिस के खिलाफ जिम्मेवार भारतीय नेताओं को जगह-जगह इतनी शिकायतें हैं कि उन की जांच करना बड़ी टेढ़ी खीर है। इसी तरह की बहुत सी बातें मुझे प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेजों और घायलों की मरहमपट्टी करनेवाले हिन्दुस्तानी डाक्टरों ने सुनाई। मैंने भी दो सभायें देखीं। उन्हें नहीं रोका गया था। भाषण राजद्रोहात्मक थे, पर किये गये थे शांतिपूर्वक। हिंसा की बराबर निन्दा की गई। भीड़ खूब थी। लोग जमीन पर बैठे तकलियां चलाते हुए भाषण सुन रहे थे। स्त्रियों की संख्या भी खूब थी। सभी का व्यवहार विनम्र और शान्त था। अगर इन सभाओं को रोका न जाता तो कोई उपद्रव न होता और जनता सुनते-सुनते थोड़े दिन में ऊबकर अपने-आप घर बैठ जाती। पर हुआ यह कि खासकर बम्बई में मारपीट कर तितर-बितर करने की नीति से सारे शहर का रोष उमड़ आया, लाठी-प्रहार सहन करना सम्मान का प्रश्न बन गया और शहादत के जोश में सैकड़ों स्वयंसेवक मार खाने को निकल आये। उन्होंने नियमबद्धता और शान्त साहस का परिचय दिया। यूरोपियन लोगों ने भी मुझे बार-

बार बयान किया कि हट्टे-कट्टे पुलिस के सिपाही दुबले-पतले शान्त युवकों को जिस बुरी तरह मारते थे उसे देखकर बड़ी ग्लानि होती थी।

"इस बात में तो मुझे कोई शंका रही नहीं कि अंग्रेज अफसरों की अधीनता में भी पुलिस राजद्रोह की सजा अकसर शारीरिक रूप में देना चाहती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुछ छात्र झरोखों पर खड़े थे। शान्त जुलूस पर होने वाले लाठी-प्रहार देखकर वे जोर से पुकार उठे—"बुजदिलो!" दो घण्टे बाद एक अंग्रेज अफसर पुलिस लेकर पहुँच गया, और पढ़ाई के कमरों में घुस-घुसकर पढ़ते-लिखते हुए विद्यार्थियों की आंख मींचकर पिटाई हुई। यहां तक कि दीवारें खून से रंग गईं। विश्वविद्यालय की ओर से जाब्ते में शिकायत की गई, पर कौन सुनता था? इस घटना का हाल मुझे ऐसे अध्यापकों ने सुनाया जिनकी युरोप के विज्ञान-जगत में खूब ख्याति है। हाई कोर्ट के एक भारतीय न्यायाधीश का लड़का भी इस पिटाई का शिकार हुआ था। मुझसे न्यायाधीश ने इस घटना का उल्लेख इतने आवेश में किया कि सरकार के उच्चाधिकारी सुनते तो उनकी आंखें खुलतीं। लाहौर में भी ऐसी ही घटना हुई। वहां भी एक अंग्रेज अफसर ने पुलिस सहित एक कालेज पर धावा किया और पढ़ते हुए छात्रों के साथ-साथ उनके अध्यापक को भी पीटा। बहाना यहां भी यह लिया गया कि कुछ छात्रों ने बाजार में शान्तिपूर्ण धरना दिया था। दिल्लगी यह थी कि ये छात्र भी उस कालेज के नहीं, दूसरे के थे। बंगाल के कण्टाई गांव में निर्दोष भीड़ को तितर-बितर करते हुए पांच आदमी तालाब में ढकेल दिये गये। पांचों डूबकर मर गये! मेरठ में एक बड़े वकील से मिला। वहां भी एक सभा भंग की गई थी। वकील महाशय मुख्य वक्ता थे। उन्हें गिरफ्तार करके पीटा गया, और उसी हालत में पास खड़े पुलिस के किसी सिपाही ने उन पर गोली चला दी। बेचारे को अपनी बांह कटवानी पड़ी। ऐसे अनेकों और उदाहरण दिये जा सकते हैं।

"गुजरात के गांवों में पुलिस की पशुता का तो मुझे खूब परिचय मिला। मैंने वहां पांच दिन दौरा किया। प्रथम तो कानूनी दमन ही कम सख्त न था। बारडोली और खेड़ा जिले के किसानों का बच्चा-बच्चा लगान देने से इन्कार कर रहा था। कारण अनेक थे। गांधीजी पर श्रद्धा थी, स्वराज्य की आकांक्षा थी और पैदावार का भाव गिर जाने से भयंकर आर्थिक संकट छाया हुआ था। सरकार ने इसका जवाब दिया उनके खेत, पशु और सींचने के सामान आदि जब्त और नीलाम करके। और नीलाम भी इस तरह किया कि लगान के ४० रुपये के बदले में किसान का सर्वस्व बिक जाता था। इन सबकी दक्षिणा-स्वरूप मारपीट-द्वारा भय-प्रदर्शन भी किया जाता

था। पुलिस का यह दस्तूर था कि बन्दूक और लाठियों से सुसज्जित होकर विद्रोही गांव को घेर लेना और जो ग्रामीण सामने आ गया बिना देखे-भाले उसे लाठी या बन्दूकों के ठोसे से मारना। इन आक्रमणों के शिकार हुए ४५ व्यक्तियों ने मेरे रूबरू बयान दिये हैं। दो के सिवाय सबके घाव और चोटें मैंने देखी हैं। एक लड़की ने तो शर्म के मारे अपनी चोटें नहीं दिखाईं। कइयों के घाव गंभीर भी थे। कई आदमियों के मेरे पास बयान हैं। वे लगान देनेवालों में से थे। लेकिन उनसे तो पड़ोसियों के बदले में मारपीट कर लगान वसूल किया गया था।........एक गांव में कांग्रेस के विज्ञापन और राष्ट्रीय झण्डे फाड़-फाड़कर वृक्षों और घरों पर से उतार दिये गये। साथ ही ८ किसानों को भी पीट दिया गया। इसलिए कि उनके घर इन राष्ट्र-चिन्हों के नजदीक थे! दो आदमियों को गांधी-टोपी पहने रहने पर पीट दिया गया। एक जगह एक आदमी पर लाठी-वर्षा होती रही। उसके १२ लाठियां लगीं। जब उससे सात बार पुलिस की सलामी करा ली गई तब पिण्ड छोड़ा। बहुधा पुलिस यह विनोद किया करती, 'स्वराज्य चाहिए? तो यह लो!' और कहकर लाठी बरसा देती।

"आप कह सकते हैं, यह तो एक पक्ष की शहादत है। किन्तु मैंने अपनी ओर से भरसक सावधानी से काम लिया है। अपने सारे प्रमाण मैंने उच्च कर्मचारियों को दिखाये। एक 'नमूने' के गांव में कमिश्नर मेरे साथ गये, उन्होंने किसानों की चोटें देखीं और उनसे पूछ-ताछ की। गंभीर विचार के बाद उनकी क्या सम्मति होगी, इसका अन्दाज लगाने का मुझे हक नहीं है; परन्तु मौके पर तो ९ में से केवल १ ही घटना पर सन्देह प्रकट किया। यह अपवाद उस लज्जाशील लड़की का था। मैं दो स्थानीय हिन्दुस्तानी अफसरों से भी मिला और उनके रंग-ढंग देखे। इनमें से एक ने मेरे सामने ही जान-बूझकर पशुतापूर्ण व्यवहार किया। उसने बोरसद में जेरतजवीज कैदियों को रखने के लिए जो पिंजड़ा बनाया था वह भी मैंने देखा। अजायबघर के जानवरों के लिए जैसे खुले बाड़े बनाये जाते हैं यह भी वैसा ही था। इसके लोहे के सींखचे लगे हुए थे। इसकी लम्बाई-चौड़ाई ३० वर्ग फीट के करीब थी। इसमें १८ राजनैतिक कैदी दिन-रात बन्द रहते थे। एक कैदी को तो इसमें डेढ़ महीना बीत चुका था। उसे न पुस्तकें दी गई थीं, न कोई काम ही दिया गया था। यह खचाखच भरा रहता था। कैदियों को दिन में एक बार बाहर निकाला जाता था, और वह भी केवल पौन घण्टे के लिए शौच स्नानादि के निमित्त। उनमें से एक ने मुझसे कहा, 'हमें जेल में पीटा गया था।' क्या मैं उनकी बात न मानता? इस जेल में और मारपीट में क्या अन्तर था? दोनों ही मध्यकालीन बर्बरता के परिचायक थे।"

गोली-काण्ड का विवरण

देश में जो गोली-काण्ड हुए उनके विषय में असेम्बली में श्री एस० सी० मित्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए होम मेम्बर हेग साहब ने गोली-काण्डों-सम्बन्धी अंकों की नीचे लिखी तालिका पेश की (देखिए लेजिस्लेटिव असेम्बली की बहस, पृष्ठ २३७, सोमवार १४ जुलाई १९३०—जिल्द ४, अंक ६):—

जनता के हताहत

प्रान्त	तारीख	मरे	घायल	विविध
मदरास शहर . .	२७ अप्रैल	२	६	१ पीछेसे मर गया
करांची.	१६ ,,	१	६	१ ,, ,,
कलकत्ता . . .	१ ,,	७	५९	१ ,, ,,
,, ...	१५ ,,	—	३	
२४ परगना . . .	२४ ,,	१	३	
चटगांव	१८,१९,२०अप्रैल	१०	२	दोनों पीछे से मर गये
पेशावर	२३ ,,	३०	३३	
चटगांव	२४ ,,	१	—	
मदरास	३० मई	—	२	
शोलापुर	८ ,,	१२	२८	
वडाला	२४ ,,	—	१	
भिण्डी वाजार वम्वई	२६,२७ मई	५	६७	
हवड़ा	६ ,,	—	५	
चटगांव	७ ,,	४	६	३ पीछे से मर गये
मैमनसिंह . . .	१४ ,,	१	३० से ४० के वीच	
प्रतापदिगी (मेदिनी-पुर) . . .	३१ ,,	२	२	
लखनऊ	२६ ,,	१	४२	२ पीछे से मर गये
कलू (झेलम-पंजाव)	१८ ,,	—	१	
रंगून	अन्तिम सप्ताह	५	३७	
सीमा-प्रान्त . . .	,,	१७	३७	
दिल्ली	६ मई	४	४०	

१२ मई को ८॥ बजे सायंकाल शोलापुर के जिला-मजिस्ट्रेट ने परिस्थिति सैनिक अधिकारियों के सुपुर्द कर दी।

१५ मई को शोलापुर का फौजी-शासन-सम्बन्धी आर्डिनेन्स निकाल दिया गया। ८ मई को शोलापुर में १२ मारे गये और २८ घायल हुए। ६ अलग-अलग मौकों पर गोली चली।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद शोलापुर में एक खेद-जनक घटना हो गई। स्वयंसेवक रास्तों पर व्यवस्था रख और आवागमन का नियमन कर रहे थे। ऐसा कई दिन तक होता रहा। पुलिस वस्तुतः बेकार हो गई। अधिकारियों को यह कब पसन्द आता? इस प्रकार की परिस्थिति में पुलिस एवं स्वयंसेवकों में संघर्ष के अवसर आने सम्भव थे ही। आखिर भिड़न्त हो ही गई और चार-पांच पुलिसवाले मार दिये गये। १९१९ में पंजाब में जैसा फौजी कानून जारी किया गया था शोलापुर में भी वैसा ही हुआ। इसके साथ-साथ जो भय-सामग्री आती है वह भी आई। एक बड़े सेठ और तीन अन्य व्यक्तियों को फांसी पर लटका दिया। कई आदमियों को फौजी कानून के अनुसार लम्बी-लम्बी सजायें दे दी गईं। जुलाई-अगस्त की समझौते की बात-चीत में, जोकि अन्त में असफल रही, इन्हीं कैदियों के छुटकारे का प्रश्न झगड़े का विषय बन गया था। पर इसका जिक्र तो आगे किया जायगा।

पेशावर-काण्ड

२३ अप्रैल १९३० को पेशावर में जो घटनायें हुईं उनका भी सार यहां दे देना ठीक होगा। भारत के अन्य भागों की भांति सीमा-प्रान्त में भी कानून-भंग का आन्दोलन चल रहा था। पेशावर शहर में कांग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि २३ अप्रैल से शराब की दुकानों पर पहरा लगेगा। परन्तु शकुन अच्छे नहीं हुये। २२ अप्रैल को महासमिति का प्रतिनिधि-मण्डल पेशावर पहुँचनेवाला था। इसका उद्देश सीमा-प्रान्त के विशेष कानूनों के अमल की जांच करना था। मण्डल अटक में ही रोक दिया गया और प्रान्त में उसे घुसने नहीं दिया गया। इस समाचार पर पेशावर में जुलूस निकला और शाही बाग में विराट् सभा हुई। दूसरे दिन तड़के ही ९ नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। ९ बजे दो नेता और पकड़ लिये गये। परन्तु जिस मोटर-लारी में पुलिस उन्हें थाने पर ले जा रही थी वह बिगड़ गई। नेताओं ने थाने पर आ जाने का आश्वासन दिया और वे छोड़ दिये गये। तदनुसार जनता उक्त नेताओं का जुलूस बनाकर काबुली दरवाजे के थाने पर ले गई। पर थाना बन्द था। इतने में एक पुलिस-

अफसर घोड़े पर आ पहुँचा। उसके आते ही जनता नारे लगाने और राष्ट्रीय गीत गाने लगी। अफसर चला गया और अकस्मात् दो-तीन सशस्त्र मोटरें आ पहुँची और भीड़ के भीतर घुस गईं। इसी समय एक अंग्रेज मोटर-साइकिल से तेजी से आ रहा था, उसकी मोटर-साइकिल सशस्त्र मोटर से टकरा गई और चूर-चूर हो गई। मोटर में से किसीने गोली चलाई और संयोग से मोटर में आग भी लग गई। डिप्टी-कमिश्नर अपनी सशस्त्र मोटर में से उतरा और थाने में जाते हुए जीने पर गिर पड़ा। वह वेहोश हो गया, किन्तु जल्दी ही होश में आ गया। उसके वाद सशस्त्र मोटरों में से गोलियां चलने लगीं। लोगों ने मृत शरीरों को वहां से हटाने का प्रयत्न किया। फौजी दस्ते और मोटरें भी हटा ली गईं। दूसरी वार फिर गोलियां चलाई गईं और वे करीव ३ घण्टे तक चलती रहीं। दुर्घटनाओं के सम्वन्ध में सरकार-द्वारा प्रकाशित वक्तव्य में मृतकों की संख्या ३० और घायलों की संख्या ३३ दी गई है; किन्तु लोग इन संख्याओं को करीव-करीव ७ से १० गुना तक वतलाते थे। सायंकाल फौज कांग्रेस-दफ्तर में आई और कांग्रेस के विल्लों और राष्ट्रीय झण्डे को उठा ले गई। २५ तारीख को फौज और सामान्यतः वहां रहनेवाली पुलिस दोनों हटा ली गईं। २८ तारीख को पुलिस ने फिर आकर कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों से, जो शहर के दरवाजों पर पहरा दे रहे थे, सव शहर का चार्ज ले लिया। ४ मई को शहर पर फौज ने कब्जा कर लिया।

३१ मई १९३० को सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के जमाने में गंगासिंह केम्वोज नाम के एक सज्जन, जो कि एक फौजी डेरी में सरकारी नौकर हैं, अपने वाल-वच्चों के साथ पेशावर में एक तांगे में काबुली-दर्वाजे से गुजर रहे थे। उन पर के० ओ० वाई० एल० आई० के अंग्रेजी लैन्स जमादार ने गोली चलाई, जिससे वीवी हरपाल कौर नाम की एक ९½ साल की उनकी लड़की और काका वचीतरसिंह नाम का १६ मास का उनका लड़का ये दो वच्चे मारे गये और तांगे से ऐसे गिर गये जैसे चिड़िया के वच्चे उसके घोंसले से गिर जाते हैं। उन वच्चों की मां श्रीमती तेजकौर वांह और छाती में सख्त घायल हुईं। उनका स्तन तो विलकुल उड़ ही गया था। उन वच्चों के मृत-शरीरों का जुलूस डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा से निकाला गया और उसमें हजारों लोगों ने भाग लिया। किन्तु डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा लेने पर भी फौज ने अर्थियां उठानेवालों और जूलूसवालों पर तितर-वितर होने की कोई सूचना दिये विना ही केवल दो गज के फासले से गोलियां चलाईं। अर्थियों के पहले उठानेवाले मारे जाते तो अर्थियां जमीन पर गिर जातीं और उन्हें फिर नये लोग आकर उठा लेते। ऐसा वार-वार हुआ। इस

प्रकार असेम्वली में दिये सरकारी उत्तर के अनुसार भी १७ वार गोलियां चलाने पर जुलूस के ९ आदमी मारे गये और १८ घायल हुए थे।

जुलाई १९३० में सरकार ने एक और वक्तव्य निकाला था, जिसमें दिखलाया गया था कि ११ नं० प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार २ लाख ४० हजार रुपये की जमानतें १३१ अखवारों से उस समय तक मांगी जा चुकी थीं। इनमें से ९ पत्रों ने जमानतें नहीं दी, अतः उनका प्रकाशन वन्द हो गया।

वम्वई में लाठी-चार्ज

१ अगस्त १९३० को वम्वई में लोकमान्य तिलक की वरसी मनाई गई थी और श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में, जो उस समय नगर-कांग्रेस की डिक्टेटर थीं, एक जुलूस निकाला गया था। कांग्रेस-कार्य-समिति की वैठक नगर में लगातार तीन दिन से हो रही थी। वह उस समय वहां गैर-कानूनी घोषित नहीं हुई थी, क्योंकि सरकार उस हुक्म को एक प्रान्त से दूसरे में धीरे-धीरे जारी कर रही थी। कार्य-समिति के कुछ सदस्य सायंकाल के जुलूस में शामिल हो गये थे और जिस समय वे आगे वढ़े चले जा रहे थे उस समय उन्हें जुलूस निकालने की निषेधाज्ञा का दफा १४४ का नोटिस मिला। उस समय तक जुलूस में हजारों आदमी हो गये थे। जिस समय वह हुक्म मिला उस समय सड़क पर एक विशाल जन-समुदाय वैठा था और सारी रात पानी वरसते रहने के वाद भी एक इंच हटना नहीं चाहता था। लोग सचमुच पानी के पोखरों में ही वैठे थे। यह आशा की जा रही थी कि जुलूस को आधी रात के वाद आगे वढ़ने दिया जायगा, जैसा कि एक वार पहले हुआ था। किन्तु वह न हुआ। चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट ने इस स्थिति की सूचना पूना-स्थित होम-मेम्वर को दी। मि० हॉटसन ने उत्तर दिया कि जवतक मैं न आजाऊँ तवतक कुछ भी नहीं करना चाहिए। वह सुवह होते-होते वहां पहुँचे और भीड़ को विक्टोरिया-टर्मिनस की इमारत की गैलरी की एक छत से देखने लगे। कुछ चुने हुए आदमी सुवह गिरफ्तार कर लिये गये और उनके साथ कोई सौ महिलायें भी; और तव भीड़ को तितर-वितर करने के लिए लाठी-प्रहार का हुक्म हुआ। कार्य-समिति के जो मेम्वर उस समय थे और गिरफ्तार हुए वे पं० मदनमोहन मालवीय, श्री वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम, और श्रीमती कमला नेहरू थे। श्रीमती मणिवहन (वल्लभभाई की सुपुत्री) जुलूस में थीं, इसलिए वह भी गिरफ्तार करली गई। कोई सौ अन्य महिलायें भी गिरफ्तार की गई थीं। उनमें डिक्टेटर श्रीमती हंसा मेहता भी थीं।

पुलिस ने गैर-कानूनी जमायत वनानेवालों को सजा देने का एक नया ढंग शुरू किया था। वह धरना देनेवालों को भिन्न-भिन्न स्थानों से इकट्ठा करके लारी में रखकर शहर से वहुत दूर ले जाती और उन्हें वहां छोड़ आती। वे लोग विना पैसे तकलीफ पाते हुए, जैसे होता वैसे, अपने स्थानों पर आते। वम्वई में व्यापारियों की दूकानों में विदेशी कपड़े का धरना और मुहरवन्दी दोनों कार्य इतनी तीव्रता से हुए कि एक वार छिपे-छिपे विदेशी कपड़ा ले जानेवाली लारी को रोकने के लिए उसके सामने वावू गणू नामक लड़का खड़ा हो गया। घटना कालवादेवी रोड की है। हुआ यह कि मोटर लड़के के ऊपर होकर निकल गई और लड़का मर गया! इसके वाद वम्वई में हर मास इस वीर वालक की यादगार में वावू गणू-दिवस मनाया जाता था। कांग्रेस वहां जिन पवित्र-दिवसों को मानती थी उनमें से एक यह दिवस भी था।

विभिन्न प्रान्तों में दमन

जव वल्लभभाई पटेल अपनी ४ मास की पहली सजा काटकर वाहर आये तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने वम्वई और गुजरात में कार्य को संगठित करना शुरू किया और आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। उनके व्याख्यानों में कार्यकर्त्ताओं के लिए एक नई ध्वनि और एक नया उत्साह मिला। १३ जुलाई को वह उस आर्डिनेन्स पर भापण दे रहे थे जिसके अनुसार देश के सारे कांग्रेस-संगठन गैर-कानूनी घोषित कर दिये गये थे और कांग्रेस का दफ्तर जव्त कर लिया गया था। वल्लभभाई ने अपने भापण में कहा था कि आज से भारतवर्प का हरेक घर कांग्रेस का दफ्तर और हरेक व्यक्ति कांग्रेस-संस्था होना चाहिए। लॉर्ड अर्विन ने असेम्वली में जो प्रतिगामी भाषण दिया था, और जिसमें सविनय-अवज्ञा पर उन्होंने अपना महादण्ड उठाया था, उसका वल्लभभाई ने मुंहतोड़ जवाव दिया था।

गुजरात में, वारडोली और वोरसद ताल्लुकों में जिस तरह करवन्दी-आन्दोलन सफलता-पूर्वक चलाया गया था, वह सारे आन्दोलन की मानो नाक थी। उसे दवाने के लिए अविकारियों ने ऐसे-ऐसे जुल्म किये थे कि उनसे तंग आकर ८० हजार आदमी अंग्रेजी सीमा से निकल-निकलकर अपने पड़ोस के वड़ौदा राज्यस्थ गांवों में चले गये थे।

खुद श्री वल्लभभाई पटेल की मां, जिनकी उम्र ८० वर्प से ऊपर है जव अपना खाना पका रही थीं, उनके पकाने के वर्तन को पुलिस ने नीचे गिरा दिया था।

चावल में पत्थर-बालू और मिट्टी का तेल मिला दिये गये थे। बेचारे देहातियों को जो और शारीरिक कष्ट दिये गये वे इन सब से अलग थे। किन्तु फिर भी उनका संगठन आश्चर्यजनक था। पर उससे भी आश्चर्यजनक थी अहिंसा में उनकी दृढ़ता—आचार में भी और भावना में भी।

इस लम्बी कहानी को संक्षिप्त करने के लिए केवल यह कह देना जरूरी है कि राष्ट्रीय-आन्दोलन में भारतवर्ष के हरेक प्रान्त और भाग ने अपने-अपने हिस्से का कष्ट सहन किया।

भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न तरह से आन्दोलन और दमन चल रहा था जिसका कारण था भिन्न-भिन्न परिस्थिति, सम्बन्धित अफसरों का स्वभाव, पट्टे की शर्तें आदि। एक अर्थ में दक्षिण भारत पर बहुत ही बुरी बीती। वहां लाठी-प्रहार, भारी-भारी जुर्मानों और लम्बी-लम्बी सजाओं की शुरुआत आन्दोलन के बढ़ने पर नहीं, बल्कि पहले ही से हो गई थी। बंगाल-प्रान्त ने देशभर में सब प्रान्तों से अधिक कैदी दिये। अंग्रेजी कपड़े का बहिष्कार बंगाल और बिहार-उड़ीसा में सबसे अधिक हुआ। वहां नवम्बर १९२९ के मुकाबले में नवम्बर १९३० में अंग्रेजी कपड़े का आयात ९५% गिर गया था। स्वतन्त्रता के युद्ध में गुजरात की कारगुजारियां अनुपम थीं, यह हम पहले कही चुके हैं। आम कर-बन्दी का आन्दोलन तो केवल संयुक्त-प्रान्त में ही शुरू किया गया था। वहां अक्तूबर १९३० में जमींदारों और काश्तकारों दोनों को ही लगान और मालगुजारी रोक लेने के लिए कहा गया था। पंजाब भी किसीसे पीछे न रहा। अहिंसा-धर्म को हृदय से स्वीकार करके सीमाप्रान्त की जितनी राजनैतिक जीत हुई उतनी ही नैतिक विजय भी हुई। बिहार में चौकीदारी-टैक्स देना काफी हिस्से में बन्द कर दिया गया था। उसके लिए उस प्रान्त ने पूरे-पूरे कष्ट सहे। वहां के लोगों को सजा देने के लिए वहां अतिरिक्त-पुलिस रख दी गई और छोटी-छोटी रकमों के लिए उनकी बड़ी-बड़ी जायदादें जब्त कर ली गई। मध्यप्रान्त में जंगल-सत्याग्रह शुरू किया गया। उसमें सफलता मिली। लोगों ने भारी-भारी जुर्मानों और पुलिस की ज्यादतियों के होने पर भी उसे जारी रक्खा। तीन लाख ताड़ और खजूर के पेड़ काट डाले गये थे। सिर्सी ताल्लुके के १३० पटेलों में से ९६ ने, सिद्दापुर ताल्लुके के २५ ने और अंकोला ताल्लुके के ६३ पटेलों में से ४३ ने त्याग-पत्र दे दिये थे। ये सभी ताल्लुके उत्तर कन्नाड में हैं।

अंकोला में करबन्दी-आन्दोलन का हेतु शुरू से ही राजनैतिक था, किन्तु सिर्सी और सिद्दापुर में वह आर्थिक कारणों से शुरू हुआ था। किसानों की तबाही भी कारण

थी। केरल में, जो कि प्रान्तों में सबसे छोटा है, सविनय-अवज्ञा आन्दोलन का झण्डा अन्त तक फहराता रहा। दूसरे सिरे पर आसाम प्रान्त ने, जिसमें कछार और सिलहट भी शामिल हैं, राष्ट्रीय महासभा की आवाज का शानदार जवाब दिया।

अन्य कुछ प्रान्तों में जो मुख्य-मुख्य घटनायें हुईं उनमें से कुछ की ओर भी ध्यान दें। कुछ बातें तो सभी प्रान्तों में समान ही थीं; जैसे कांग्रेस-दफ्तरों का बन्द कर दिया जाना, कांग्रेस के कागजों, किताबों, हिसाबों और झंडों का ले जाया जाना, लाठी-प्रहार और सार्वजनिक सभाओं का बलपूर्वक भंग कर देना, सभी जगहों पर दफा १४४ का लगा दिया जाना, १०८ दफा में व्यक्तियों को नोटिस देना, घरों पर पुलिस का छापे मारना, तलाशियां लेना, प्रेसों को कब्जे में कर लेना और प्रेसों तथा पत्रों से जमानतें मांग लेना। किन्तु जो चीज घटनाओं को देखनेवाले पर सबसे अधिक प्रभाव डालती थी वह यह थी कि देश का शासन विदेशी वस्त्र और शराब की दुकानों के हित को दृष्टि में रखकर हो रहा था। बंगाल में मिदनापुर ही खासकर एक ऐसा स्थान था जहां दमन जोरों का हुआ। बंगाल और आन्ध्र दोनों में कांग्रेस-स्वयंसेवकों को और उनको जो पीटे गये थे और असहाय पड़े हुए थे, स्थान, खाना या पानी देने के कारण मकान-मालिकों को सजायें हुईं थीं। बंगाल में, उदाहरण के लिए खेरसाई में, जरा-सा मौका मिलते ही गोली चला देने की आज्ञायें दे दी गई थीं। उस गांव में एक घर के पास बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई थी, क्योंकि वहां कुछ जायदाद कुर्क की जा रही थी। उस समय भीड़ पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी गई, जिसके परिणाम-स्वरूप एक आदमी मरा और कई घायल हुए। चेचना में लौटती हुई भीड़ पर गोली चला दी गई, जिससे ६ मनुष्य मर गये और १८ घायल हो गये। जून १९३० में कण्टाई में नमक बनाया जा रहा था। उसे देखने के लिए इकट्ठी हुई भीड़ पर गोली चला दी गई, जिससे २५ मनुष्य घायल हो गये। खेरसाई में एक मनुष्य की गिरफ्तारी के समय इकट्ठी हुई भीड़ जब चेतावनी देने पर न हटी तो वहां गोली चलाई गई, जिससे ११ आदमी मारे गये। २२ जून को कलकत्ते में पुलिस ने देशबन्धु दास का मृत्यु-दिवस मनाने का निषेध कर दिया था, फिर भी लोगों ने जुलूस निकाला। पुलिस ने जुलूस पर निर्दयतापूर्वक लाठी-प्रहार किया। उस समय घायलों को घोड़ों के खुरों-द्वारा कुचले जाने से बचाने के लिए स्त्रियां घरों में से निकल-निकल कर सामने आ खड़ी हुई थीं।

पुलिस ने कालेज की इमारतों में घुसकर दरजों में बैठे हुए विद्यार्थियों को पीटा। बरीसाल में एक दिन के लाठी-प्रहार में ५०० मनुष्य घायल हुए थे! तामलुक में, कहा जाता है कि, पुलिस ने सत्याग्रहियों और उनसे सहानुभूति रखनेवाले लोगों

की जायदाद में आग लगा दी थी। इसी प्रकार कई जगहों से भद्दे हमलों की खबरें आई थीं। गोपीनाथपुर में कांग्रेस-स्वयंसेवक निर्दयतापूर्वक पीटे गये थे। उनमें से एक मुसलमान लड़का था। इस घटना से गांववाले अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने पुलिस-वालों को पकड़ लिया और उन्हें कुछ समय तक स्थानीय स्कूल में बन्द रखने के बाद स्कूल में आग लगा दी। दो कांग्रेस-स्वयंसेवकों ने स्कूल के किवाड़ तोड़ डाले और अपने जीवन को खतरे में डालकर आग की लपटों से उन्हें बचाया। ३१ दिसम्बर को लाहौर में स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ था। ३१ दिसम्बर १९३० को उसके वार्षिकोत्सव के जुलूस में जाते हुए सुभाष बाबू को बुरी तरह पीटा गया। वह उससे कुछ दिन पूर्व ही राजद्रोह के अपराध में एक वर्ष की सजा भुगतकर जेल से छूटे थे। लाहौर में अधिकारी इतने उत्तेजित हो गये थे कि उन्होंने असहयोग-वृक्ष के चित्र को भी जब्त कर लिया था। लुधियाना में एक परदेवाली मुसलमान महिला पिकेटिंग करती हुई गिरफ्तार हुई थी। जो विदेशी वस्त्र बेचते थे उनके घरों पर स्यापा (पंजाबी रोदन) किया जाता था। रावलपिंडी में खराब खाना खाने से इन्कार करने के लिए कैदियों पर अभियोग चलाये गये थे। माण्टगुमरी में एक भूख-हड़ताली ला० लाखीराम कई दिनों के उपवास के बाद मर गये। टमटम में एक महिला के साथ बड़ा बुरा सलूक किया गया था। सीनेट-हाल में पंजाब-गवर्नर पर जो गोली चली उससे पुलिस को चाहे जिसकी तलाशी लेने का अवसर मिल गया। बिहार में आन्दोलन ने शान्तिपूर्वक प्रगति की थी। समस्तीपुर सब-डिवीजन में शाहपुर-पटोरिया नाम का एक छोटासा बाजार है। जवाहर-सप्ताह मनाने के चार दिन बाद एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की अधीनता में १२५ पुलिसवालों ने उसे घेर लिया। वे ४६ व्यक्तियों को गिरफ्तार करके ले गये और गांव से बाहर गये हुए कुछ आदमियों की सम्पत्ति १२ बैलगाड़ियों में भरकर साथ लेते गये। दूसरे जिलों से भी ऐसी ही खबरें मिली थीं। मुंगेर और भागलपुर में आन्दोलन जोरों पर था। शराब की दुकानों पर धरना देने से सरकार को ४० लाख का नुकसान हुआ था। मोतीहारी में फुलवारिया के धान के खेतों में होकर फौजी पुलिस और गोरखे फसल को कुचलते हुए ले जाये गये थे और अनेक देहातियों को गिरफ्तार करके लोगों में भय का संचार किया गया था। चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, पटना और शाहबाद जिलों में चौकीदारी-कर बन्द कराया गया था। मध्यप्रान्त में शराब के नीलाम की बोली ६०% कम बोली गई थी। अमरावती में गढ़वाल-दिवस मनाने के समय लाठी-प्रहार हुआ। आन्ध्र में पुलिस की सबसे बुरी करतूत यह थी कि उसने ८० व्यक्तियों की एक मित्र-मण्डली को, जो

२१ दिसम्बर १९३० को पैड्डापुर में मनोरञ्जन के लिए इकट्ठी हुई थी, खूब पीटा। उनमें से कितने ही लोगों को सख्त चोटें आईं। दो-तीन बहनें भी घायल हुई थीं। उसके परिणाम-स्वरूप पुलिस पर दीवानी अभियोग चलाया गया, जिसका फैसला अभीतक नहीं हुआ। केरल में ताड़ी की बिक्री ७०% कम हो गई थी। तामिलनाड में ताड़ी की बिक्री बन्द हो जाने से कितनी जगहों पर गोलियां चलाई गईं और लाठी-प्रहार हुए। दिल्ली में एक रायसाहब शराब के व्यापारी थे। उन्होंने ८० महिलाओं और १०० पुरुष-स्वयंसेवकों की गिरफ्तारी के लिए जिम्मेवार होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। अजमेर में एक दिन में लगभग १५० गिरफ्तारियां हुईं। जेल में 'ए' क्लास के कैदियों तक को पीटा गया।

किसानों की हिजरत

गुजरात में किसानों की हिजरत एक ऐतिहासिक घटना है, जिसका वर्णन मि० ब्रेल्सफोर्ड ने इस प्रकार किया है:—

"......और तब उनकी वह हिजरत आरम्भ हुई जो इतिहास की विचित्रतम हिजरतों में है। इन देहातियों ने आश्चर्यजनक एकता के साथ एक-एक करके पहले अपना सारा सामान अपनी-अपनी गाड़ियों में जमाया और फिर वे उन्हें बड़ौदा की सीमा में हांक ले गये। दृढ़-जाति-संगठन के कारण ऐसी एकता हिन्दुस्तानियों में ही हो सकती है। उनमें से कुछ ने अपनी कीमती फलसों को ले जाना असम्भव देख जला दिया। मैंने उनके एक पड़ाव को देखा है। उन्होंने चटाइयों की दीवारें और टाट पर ताड़के पत्ते बिछाकर छतें बनालीं और कामचलाऊ घर बना लिये हैं। वर्षा समाप्त हो गई है। इसलिए अब उन्हें मई मास तक अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। किन्तु वे अपने प्यारे पशुओं-सहित एक जगह इकट्ठे पड़े हुए हैं, और उनका सामान जिसमें चावल रखने के उनके बड़े-बड़े मिट्टी के बर्तन, बिछौने और दूधबिलौने, सन्दूक, पीतल के चमकते हुए बर्तन थे, चुना हुआ था। उनका हल भी एक ओर रक्खा हुआ था, दूसरी ओर उनके देवताओं का चित्र था, और सर्वत्र इधर-उधर इस पड़ाव के मानों अध्यक्ष देवता महात्मा गांधी के भी चित्र थे। मैंने उनमें से एक बड़े दल से पूछा कि आप लोगों ने अपने-अपने घर क्यों छोड़ दिये हैं? स्त्रियों ने बहुत जल्दी सीधे-सादे उत्तर दिये, 'क्योंकि महात्माजी जेल में हैं'। पुरुषों को अपने आर्थिक कष्ट का ज्ञान था। उन्होंने कहा, 'खेती में इतना पैदा नहीं होता और लगान बेजा है'। एक दो ने कहा, 'स्वराज्य लेने के लिए'।

"मैंने सूरत की कांग्रेस के सभापति के साथ उन परित्यक्त गांवों में भ्रमण करते हुए दो दिन व्यतीत किये, जो मुझे सदा याद रहेंगे। घरों की कतार-की-कतार खाली पड़ी थीं। उनपर कपड़ा सिले हुए ताले लगे थे। खिड़कियां खुली पड़ी थीं। जिनमें से देखा जा सकता था कि ये घर बिलकुल खाली हैं। गलियां प्रकाश की नीरव झीलें थीं, कहीं भी कोई हलचल दिखाई नहीं दी।

"चूंकि मैंने खुद उनके कुछ तौर-तरीके देखे थे, इसलिए इस बात पर विश्वास करना कठिन न था। इन परित्यक्त गांवों में से एकसे जब हमारी मोटर रवाना होने लगी तो संगीन चढ़ी हुई राइफल वाले पुलिसमैन ने हमें ठहर जाने का हुक्म दिया। उसने कहा कि 'आप पुलिस की लिखित आज्ञा लेकर ही गांव से जा सकते हैं', किन्तु जब उसने मेरी यूरोपियन पोशाक देखी तो वह तुरन्त डर गया। टूटी-फूटी अंग्रेजी में सिटपिटाते हुए बोला, 'हुजूर!' किन्तु मजे की बात तो यह थी कि उसकी वर्दी पर नम्बर का कहीं पता भी न था। जब मैंने उससे उसका नम्बर पूछा तो उसने मुझे विश्वास दिलाया कि हम सब लोग गुप्त नम्बर रखते हैं। वह सिपाही उस दल का आदमी था जो उस विशेष कार्य के लिए तैयार किया गया था, और जो आयर्लैण्ड के 'ब्लेक एन्ड टान्स' दल से मिलता-जुलता है। इस दल के संगठन-कर्त्ता यह बात न जानते होंगे कि उनकी वर्दियों पर उनके नम्बर नहीं रहते हैं।

इस दुःखभरी कहानी को समाप्त करते हुए हमें पेशावर और वहां के पठानों के विषय में कुछ अन्तिम शब्द और कहने हैं। ये मनुष्य, जिनका नाम निर्दयता और हिंसा के लिए प्रसिद्ध है, मेमनों के समान सीधे-सादे और अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गये। खान अब्दुलगफ्फारखां ने अपने 'खुदाई खिदमतगारों' का ऐसे सुनियंत्रित और सच्चे ढंग से संगठन किया था कि भारतवर्ष का जो हिस्सा इस दिशा में अत्यन्त भयजनक था वह अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के प्रयोग के लिए बहुत ही सुरक्षित केन्द्र बन गया था। सीमा-प्रान्त में की गई निर्दयताओं को बिलकुल अन्धकार में रक्खा गया था और श्री विट्ठलभाई पटेल की रिपोर्ट सरकार ने जब्त करली थी; किन्तु कुछ मिसालें तो इतनी मशहूर हैं कि उनसे इन्कार नहीं किया जा सकता। उनमें से कुछ का वर्णन हो ही चुका है।

एक महत्वपूर्ण घटना जो सीमाप्रान्त में हुई थी, वह यहां उल्लेखनीय है। उस प्रान्त में जो दमन हुआ उस सिलसिले में गढ़वाली सिपाहियों को, एक सभा में बैठे हुए लोगों पर, गोली चलाने की आज्ञा दी गई। उन्होंने शान्त और निःशस्त्र भीड़ पर गोली चलाने के लिए ले जानेवाली मोटर पर चढ़ने से इन्कार कर दिया। इसी कारण इन

सिपाहियों पर फौजी अदालत में मुकदमा चलाया गया और इन्हें १० से लगाकर १४ साल तक की लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। मार्च १९३१ की कांग्रेस और सरकार के बीच की अन्तिम बातचीत में इन सिपाहियों के छुटकारे का प्रश्न मुख्य विवादास्पद विषय था।

यहां हमें यह याद रखना चाहिए कि ये सिपाही गांधी-अर्विन समझौते में नहीं छोड़े गये थे; किन्तु कुछ साल बाद इनकी सजायें घटा दी गईं। कुछ लोग कुछ जत्थों में छूट गये और कुछ अभीतक जेल में हैं।

इस रोमाञ्चकारी दुःख-कथा को हम २१ जनवरी १९३१ के दिन एक उत्सव मनाने के समय बोरसद में दिखाई हुई महिलाओं की वीरता के एक वर्णन के साथ समाप्त करेंगे। पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियों ने जुलूसवालों को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर पानी के बड़े-बड़े बर्तन रख छोड़े थे। पुलिस ने पहले इन बर्तनों को ही तोड़ा। फिर स्त्रियों को बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियां गिर गईं तो पुलिसवाले उनके सीनों को बूटों से कुचलते हुए चले गये! पुलिस के गुण्डेपन का कदाचित् यह अन्तिम कार्य था, क्योंकि २६ जनवरी को समझौते की बातचीत चलाने योग्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गांधीजी और उनके २६ साथियों को बिना शर्त छोड़ देने की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी।

सुलह के असफल प्रयत्न

हम अपने पाठकों को जून, जुलाई, और अगस्त महीनों की ओर फिर वापस ले जाना चाहते हैं। २० जून १९३० को पंण्डित मोतीलाल जी से, जबकि वह बाहर ही थे, 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता मि० स्लोकोम्ब ने मुलाकात की। मि० स्लोकोम्ब ने बम्बई में पण्डितजी से 'कांग्रेस किन शर्तों पर गोलमेज-परिषद् में शामिल हो सकती है?' इस विषय पर बातचीत की थी। उसके थोड़े दिन बाद मि० स्लोकोम्ब की सोची हुई शर्तों पर एक सभा में, जिसमें पण्डितजी, श्री जयकर और मि० स्लोकोम्ब खुद मौजूद थे, विचार हुआ और वे स्वीकार हुईं। मि० स्लोकोम्ब ने सर सप्रू को भी एक पत्र लिखा था, उसके परिणाम-स्वरूप सर सप्रू और श्री जयकर उन शर्तों के आधार पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए मध्यस्थ हुए। पण्डित मोतीलालजी समझौते की तजवीजें लेकर कांग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी के पास जाने को राजी हो गये। शर्त यह थी कि ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार दोनों

निजी तौर पर यह आश्वासन देने को राजी हो जायँ कि, चाहे गोलमेज-परिषद् की कुछ भी सिफारिशें हों और चाहे पार्लमेण्ट हमारे प्रति कुछ भी रुख रक्खे, वे स्वयं भारतवर्ष की पूर्ण उत्तरदायी-शासन की मांग का समर्थन करेंगी। शासन-परिवर्तन की खास-खास तर्मीमों और शर्तों की, जिन्हें गोलमेज-परिषद् रक्खें, उसमें गुंजाइश रहे। इस आधार पर मध्यस्थों ने वाइसराय से लिखा-पढ़ी की और गांधीजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी से जेल में मिलने की इजाजत मांगी। यह १३ जुलाई की बात है। तबतक मोतीलालजी को जेल हो चुकी थी। वाइसराय ने अपने उत्तर में भारतवासियों को दिये जानेवाले स्वराज्य के प्रकार को और भी नरम कर दिया। उन्होंने वादा किया कि 'हम भारतवासियों को उनके गृह-प्रबन्ध का उतना अंश दिलाने में सहायता देंगे जितना कि उन विषयों के प्रबन्ध से मेल खाता हुआ दिखाया जायगा, जिनमें जिम्मेवारी लेने की स्थिति में वे नहीं हैं।' इन दो कागजों को लेकर श्री सप्रू और जयकर ने यरवडा-जेल में २३ और २४ जुलाई को गांधीजी से मुलाकात की, जिसमें गांधीजी ने उन्हें नैनी-जेल (इलाहाबाद) में पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए एक नोट और पत्र दिया। गांधीजी चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् के वाद-विवाद को संरक्षणों-सम्बन्धी विचार तक ही सीमित रक्खा जाय। संक्रमण-काल के सिलसिले में स्वाधीनता का प्रश्न विचार-क्षेत्र से निकाल न देना चाहिए। गोलमेज-परिषद् की रचना संतोष-जनक होनी चाहिए। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के रोक लेने की दशा में भी तबतक विदेशी वस्त्र और शराब का धरना जारी रहना चाहिए जबतक कि सरकार स्वयं शराब और विदेशी वस्त्र का निषेध कानूनन न करदे और नमक का बनाया जाना बिना किसी भी तरह की सजा के जारी रखना चाहिए।

इसके बाद उन्होंने राजनैतिक बन्दियों के छुटकारे का, जायदादों, जुर्मानों और जमानतों के वापस करने का, जिन अफसरों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिये थे उनकी पुनर्नियुक्ति का और आर्डिनेन्सों को वापस लेने का जिक्र किया था। उन्होंने सन्देश-वाहकों को सावधान किया था कि मैं एक कैदी हूँ इसलिए मुझे राजनैतिक गति-विधियों पर राय देने का कोई हक नहीं है। ये मशविरे मेरे अपने हैं। मैं स्वराज्य की हरेक योजना को अपनी ११ शर्तों से कसने का हक अपने लिए सुरक्षित रखता हूँ। पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को गांधीजी ने जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने समझौते का ठीक समय आ पहुँचा है या नहीं, इसपर सन्देह प्रकट किया था। इन कागजों के साथ सन्देश-वाहकों ने २७ और २८ जुलाई को पं० मोतीलाल और जवाहर-लाल नेहरू से मुलाकात की। खूब बहस भी हुई। मोतीलालजी और जवाहरलाल जी

ने २८ जुलाई १९३० के पत्र में अपनी यह राय प्रकट की कि जबतक मुख्य-मुख्य विषयों पर एक समझौता न हो जाय तबतक किसी भी परिषद् में हमें कोई भी चीज न मिल सकेगी।

जवाहरलालजी ने एक पृथक् नोट में लिखा था कि मुझे या मेरे पिताजी को वैधानिक विषय-सम्बन्धी गांधीजी के विचार जँचते नहीं हैं, क्योंकि वे कांग्रेस की प्रतिज्ञाओं और स्थिति के योग्य नहीं हैं, और न उनसे वर्तमान समय की मांग की ही पूर्ति होती है। ३१ जुलाई तथा १ और २ अगस्त को श्री जयकर गांधीजी से मिले, तब गांधीजी ने उनसे साफ-साफ कहा कि मुझे ऐसी कोई भी शासन-विधान सम्बन्धी योजना स्वीकार न होगी जिसमें चाहे जब साम्राज्य से पृथक होने की इजाजत न हो और जिससे भारतवर्ष को मेरी ग्यारह बातों के अनुसार कार्य करने का अधिकार और शक्ति न मिले। मैं अंग्रेजों के जो दावे हैं और भूतकाल में उन्हें जो रिआयतें दी गई हैं उनकी जांच के लिए एक स्वतंत्र कमिटी चाहूँगा। गांधीजी चाहते थे कि वाइसराय को मेरी इस स्थिति से आगाह कर दिया जाय, ताकि वह पीछे यह न कह सकें कि मेरे इन विचारों को वह पहले न जानते थे। उसके थोड़े दिन बाद ही दोनों नेहरू और डा० सैयद महमूद यरवडा-जेल में ले जाये गये, ताकि उन्हें गांधीजी से तथा उनके दूसरे मित्रों से, जो यरवडा जेल में थे, मिलने का अवसर मिल सके।

इस प्रकार वहां १४ अगस्त को एक सम्मेलन हुआ, जिसमें एक तरफ मध्यस्थ थे जयकर-सप्रू और दूसरी तरफ गांधीजी, दोनों नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। इस सम्मेलन का परिणाम १५ अगस्त के एक पत्र में लिखा गया था जिसमें हस्ताक्षर-कर्त्ताओं ने, जिनमें सब उपस्थित कांग्रेसी थे, समझौते की शर्तों को, जिनका अभी जिक्र किया जा चुका है, दोहराया था। उसमें उन्होंने भारतवर्ष के पृथक् होने के हक को और अंग्रेजों के दावों और उनकी रिआयतों की जांच के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की मांग को भी शामिल कर दिया था। बातचीत को समाप्त करते समय गांधीजी, श्रीमती सरोजिनी, वल्लभभाई पटेल और श्री जयरामदास दौलतराम ने सन्देश-वाहकों को शान्ति-स्थापना के लिए उठाई हुई तकलीफों के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने उन्हें सुझाया कि "अब जिनके हाथ में कांग्रेस-संस्थायें हैं वे हम किसीसे मिलने-जुलने की सुविधा स्वभावतः पा सकेंगे। जब सरकार भी शान्ति-स्थापना के लिए उतनी ही इच्छुक है तो उस हालत में उन्हें हम तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।"

वाइसराय ने २८ अगस्त को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने बतलाया था

कि मैं तो प्रान्तीय सरकारों से राजनैतिक वन्दियों को बड़ी संख्या में छोड़ने की प्रेरणा कर सकता हूँ, किन्तु मामलों पर उनके प्रकारों और योग्यता के अनुसार विचार वही करेंगी। दोनों नेहरुओं ने, जो नैनी-जेल में वापस ले आये गये थे, ३१ तारीख को गांधीजी को लिखा कि वाइसराय मुख्य प्रारम्भिक वातों पर विचार करना भी गैर-मुमकिन ख़याल करते हैं। कुछ समय तक और भी पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु अन्त में हुआ यह कि शान्ति की वात-चीत असफल हो गई। (देखिये परिशिष्ट ६)

सप्रू-जयकर की समझौते की वात-चीत के असफल हो जाने से भारतवर्ष के हितैपियों को निराशा नहीं हुई। उसके वाद मि० हौरेस जी० अलैक्जैण्डर के, जो सैली ओक कॉलेज में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्यापक थे, उत्साह-पूर्ण प्रयत्न शुरू हुए। वह वाइसराय से और जेल में गांधीजी से मिले। गांधीजी की साफ मांगों से वह प्रभावित हुए। उनमें कोई शब्दाडम्बर न था, केवल हिन्दुस्तान की गरीवी की सीधी-सादी समस्यायों का मुकावला भर करने का प्रयत्न किया गया था। इस समय तक लॉर्ड अर्विन ने एक दर्जन के करीव आर्डिनेन्स निकाल दिये थे, जिनमें गैर-कानूनी उत्तेजन (Unlawful Instigation) आर्डिनेन्स, प्रेस-आर्डिनेन्स और गैर-कानूनी संस्था (Unlawful Association) आर्डिनेन्स भी शामिल थे। लॉर्ड अर्विन ईमानदारी के साथ एकदम 'दुहरी नीति' का अनुसरण कर रहे थे। वह आर्डिनेन्सों की वहुत आवश्यकता भी वताते जा रहे थे और भारतीय राष्ट्रीयता की थोड़ी कद्र भी कर रहे थे। उन्होंने कलकत्ते की यूरोपियन असोसियेशन से कहा था—"यद्यपि हम जोरदार शब्दों में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की निन्दा कर सकते हैं, किन्तु यदि हम भारतवासियों के मस्तिष्क में आज जो राष्ट्रीयता की आग धधक रही है उसके सच्चे और शक्तिपूर्ण अर्थ को ठीक-ठीक न समझेंगे तो हम वड़ी भारी गलती करेंगे।"

गोलमेज-परिषद् शुरू

१२ नवम्बर १९३० को गोलमेज-परिषद् शुरू हुई। अपर-हाउस की शाही गैलरी में वड़ी शान के साथ उसका उद्‌घाटन हुआ था। कुल ८६ प्रतिनिधि थे जिनमें १६ रियासतों से गये थे, ५७ ब्रिटिश भारत से और वाकी १३ इंग्लैण्डके भिन्न-भिन्न दलों के मुखिया थे। गोलमेज-परिषद् वीच-वीच में सेण्ट जेम्स महल में भी हुई। शुरू के भाषणों में प्रायः सभीने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, वीकानेर, अलवर और भूपाल के नरेश-प्रतिनिधि संघ-राज्य के पक्ष में थे। शास्त्रीजी

जो भारतवर्ष की स्वाधीनता के पक्ष में बहुत अच्छा बोले, पहले तो संघ-शासन के पक्ष में कुछ झिझकते हुए बोले, किन्तु पीछे उसी के पक्ष में दृढ़ हो गए। प्रधान-मंत्री ने शासन-विधान की सफलता के लिए जरूरी दो मुख्य शर्तें रक्खीं। पहली यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होंने इस पिछली बात की खूबियां दिखलाईं। उन्होंने कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढ़ी पवित्र विरासत समझेगी। उसके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितियां बनाई गईं जिन्होंने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्प-संख्यकों, ब्रह्मा, सरकारी नौकरियों और प्रान्तीय तथा संघ-शासन के ढांचों के बाबत बाकायदा रिपोर्टें दीं। परिषद् अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इस लिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ और उसमें यह निश्चय हुआ कि रिपोर्टों और नोटों में भारतवर्ष का विधान बनाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सामग्री मिलती है यह भी निश्चय हुआ कि आगे कार्य जारी रक्खा जाय।

प्रधानमंत्री ने यह भी साफ कर दिया था कि संघ-शासन के आधार पर जो व्यवस्थापक-सभा बने, जिसमें रियासतें और प्रान्तों दोनों का प्रतिनिधित्व हो, उसमें सरकार व्यवस्थापक-सभा के प्रति कार्यकारिणी की जवाबदेही के सिद्धान्त को स्वीकार करने को तैयार होगी। केवल बाह्यरक्षा और वैदेशिक मामलों के विषय सुरक्षित रक्खे जायँगे। राज्य की शान्ति और आर्थिक स्थिति की मजबूती के लिए गवर्नर-जनरल की जो खास जिम्मेवारियां हैं उन्हें पूरा करने के लिए गवर्नर-जनरल को विशेष अधिकार दे दिये जायँगे। दूसरे भिन्न-भिन्न विषयों की विगतें भी बतलाई गई थीं। उसके बाद प्रधानमंत्री ने भारतवर्ष के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार की नीति और उसके इरादों की घोषणा की थी :—

"ब्रिटिश-सरकार का विचार यह है कि भारतवर्ष के शासन की जिम्मेवारी प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभाओं पर रक्खी जाय। संक्रमण-काल में खास-खास जिम्मेवारियों का ध्यान रखने की गारंटी देने के लिए और दूसरी खास-खास स्थितियों का मुक़ाबला करने के लिए उसमें आवश्यक गुंजाइश रख ली जाय। अपनी राजनैतिक स्वाधीनता की और अधिकारों की रक्षा के लिए अल्पसंख्यकों को जितनी गारंटी आवश्यक है वह भी उसमें हो।

"संक्रमण-काल की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए जो कानूनी संरक्षण रक्खे जायँगे उनमें यह ध्यान रखना ब्रिटिश-सरकार का प्रथम कर्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकार इस प्रकार के हों और उन्हें इस प्रकार से काम में लाया जाय कि

उनसे नये शासन-विधान-द्वारा भारतवर्ष को अपने निजी शासन की पूरी जिम्मेवारी तक बढ़ने में कोई बाधा न आवे।"

प्रधानमंत्री ने यह भी कहा था कि "यदि इस बीच में वाइसराय की अपील का जवाब उन लोगों की ओर से भी मिलेगा, जो इस समय सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में लगे हुए हैं, तो उनकी सेवायें स्वीकार करने की कार्रवाई भी की जायगी।"

पहली गोलमेज-परिषद् की, जिसका कि कांग्रेस से कोई सम्बन्ध न था, कार्रवाई जल्दी से संक्षेप में देने का कारण प्रधानमंत्री की घोषणा से उद्धृत उक्त वाक्य से मालूम हो जाता है। उस परिषद् को समाप्त हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि भारतवर्ष की स्थिति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गांधीजी और उनके १९ साथियों को जेल से बिना शर्त रिहा कर दिया गया। पीछे ७ आदमियों की रिहाई से यह संख्या और भी बढ़ गई। उस समय वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था वह भाषा और भाव दोनों में ही सुन्दर था। हम उसे ज्यों-का-त्यों नीचे देते हैं। किन्तु उसे देने से पूर्व हम कांग्रेस-कार्य-समिति-द्वारा पास किये हुए एक विशेष प्रस्ताव को यहां देना आवश्यक समझते हैं, जिसपर 'रिआयती' (Privileged) लिखा हुआ था।

'रिआयती' प्रस्ताव

यह 'रिआयती' प्रस्ताव कांग्रेस-कार्यकारिणी ने २१ जनवरी १९३१ को शाम के ४ बजे स्वराज्य-भवन इलाहाबाद में स्वीकार किया था :—

"अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की यह कार्य-समिति उस 'गोलमेज-परिषद्' की कार्रवाइयों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है जो ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के खास-खास सदस्यों, भारतीय नरेशों और ब्रिटिश-सरकार द्वारा अपने समर्थकों में से चुने हुए उन व्यक्तियों ने मिलकर की थीं, जो भारतवासियों के किसी भी वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं थे। इस कार्य-समिति की राय में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियों से सलाह लेने का प्रदर्शन करने के लिए जिन तरीकों का इस्तेमाल किया है, उनसे उसने स्वयं अपने-आपको निन्दनीय ठहराया है। वास्तव में बात तो यह है कि वह भारतवासियों के महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे वास्तविक नेताओं को जेलों में बन्द करके, आर्डिनेन्सों और सजाओं-द्वारा और सविनय-अवज्ञा-द्वारा (जिसे यह कार्य-समिति सभी कुचली हुई जातियों के हाथों में कानूनी हथियार मानती है) अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के देशभक्ति-पूर्ण प्रयत्न में लगे हुए

हजारों शान्त, शस्त्र-हीन और मुकावला न करने वाले लोगों पर लाठी-प्रहार करके और गोलियां चलाकर, इस देश की सच्ची आवाज को रोकती रही है।

"इस कार्य-समिति ने १९ जनवरी १९३१ को मन्त्रि-मण्डल की ओर से इंग्लैण्ड के प्रधान-मन्त्री मि० रैम्जे मैकडानल्ड-द्वारा घोषित ब्रिटिश-सरकार की नीति पर खूब विचार कर लिया है। इस समिति की राय में वह इतनी अस्पष्ट और सामान्य है कि उससे कांग्रेस की नीति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

"यह समिति लाहौर-कांग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पर दृढ़ है और यरवडा जेल से १५ अगस्त १९३० को लिखे हुए पत्र में म० गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य लोगों ने जो विचार प्रकट किया है उसका समर्थन करती है। उक्त पत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों की जो स्थिति है, प्रधानमन्त्री-द्वारा की हुई नीति की घोषणा में उसके लायक उत्तर इस समिति को दिखाई नहीं देता। समिति का विचार है कि ऐसे उत्तर के अभाव में और हजारों स्त्री-पुरुषों के जेल में होते हुए, जिनमें कि कांग्रेस-कार्य-समिति के असली सदस्य और महा-समिति के अधिकांश-सदस्य भी हैं, तथा जबकि सरकारी दमन का पूरा जोर है, नीति की कोई भी सामान्य घोषणा राष्ट्रीय संघर्ष का कोई सन्तोषप्रद अन्त करने में असमर्थ है। उससे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का अन्त हर्गिज नहीं हो सकता। इसलिए समिति आन्दोलन को पहले दी हुई हिदायतों के अनुसार पूर्ण शक्ति से चलाये जाने की सलाह देश को देती है और विश्वास करती है कि उसने अबतक जिस उच्च तेज का परिचय दिया है वह उसे कायम रक्खेगी।

"समिति देश के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की उस हिम्मत और मजबूती की इस अवसर पर कद्र करती है जिसके साथ उन्होंने सरकार के जुल्मों का मुकावला किया है, और वह भी उस सरकार के जुल्मों का जो कि ७५ हजार के करीब निर्दोष स्त्री-पुरुषों को जेलों में ठूंसने की, कितने ही आम और पाशविक लाठी-प्रहारों की, भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाओं की जो जेलों में तथा बाहर लोगों को दी गईं, गोली चलाने की जिससे कि सैकड़ों ही मनुष्य अपंग हो गये और मर गये, सम्पत्ति लूटने की, घरों को जलाने की, कितने ही देहाती हिस्सों में सशस्त्र पुलिसवालों, सवारों और गोरे सिपाहियों की, लाइनों को घुमाने की, लोगों के सार्वजनिक व्याख्यान देने, जुलूस निकालने और सभा करने के हकों को छीनने की और कांग्रेस तथा उससे

"समिति देश से अपील करती है कि वह, २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस, प्रकाशित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार, मनावे और यह सिद्ध कर दे कि वह निर्भय और आशापूर्ण होकर स्वाधीनता की लड़ाई जारी रखने का दृढ़-निश्चय कर चुका है।"

सवाल यह था कि आया यह प्रस्ताव प्रकाशित किया जाय या नहीं? इसपर मतभेद था। अन्त में यह तय हुआ कि इसे अगले दिन तक प्रकाशित न किया जाय। किन्तु दूसरे दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई जिससे उसे प्रकाशित न करने का निश्चय ही ठीक सिद्ध हुआ। लन्दन से डॉ० सप्रू और शास्त्रीजी का एक तार मिला, जिसमें उन्होंने कार्य-समिति से उनके आने से पहले उनकी बातें बिना सुने प्रधानमंत्री के भाषण पर कोई निर्णय न करने की प्रार्थना की थी। वह तभी गोलमेज-परिषद् के बाद भारतवर्ष को लौटनेवाले थे। उस तार के अनुसार प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया गया; किन्तु जैसा कि ऐसे प्रायः सभी मामलों में हुआ करता है, इसकी सूचना इसके पास होने के कुछ देर बाद ही सीधी सरकार के पास पहुँच गई थी।

गवर्नर-जनरल का वक्तव्य

२५ जनवरी १९३१ को गवर्नर-जनरल ने यह वक्तव्य निकाला :—

"१९ जनवरी को प्रधानमंत्री ने जो वक्तव्य दिया था उसपर विचार करने का अवसर देने की गरज से मेरी सरकार ने प्रान्तीय सरकारों की राय से यह ठीक समझा है कि कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यों को आपस में और उन लोगों के साथ जो १ जनवरी १९३० से समिति के सदस्य के तौर पर काम करते रहे हैं, बातचीत करने की पूरी-पूरी छूट दी जाय।

"इस निर्णय के अनुसार इस उद्देश से और इस गरज से कि वे जो सभायें करें उनके लिए कानूनन कोई रुकावट न हो, समिति को गैर-कानूनी घोषित करनेवाला ऐलान प्रान्तीय सरकारों-द्वारा वापस ले लिया जायगा और गांधीजी तथा अन्य लोगों को, जो इस समय समिति के सदस्य हैं या जो १ जनवरी १९३० से सदस्य के तौर पर काम करते रहे हैं, छोड़ने की कार्रवाई की जायगी।

"मेरी सरकार इन रिहाइयों पर कोई शर्त नहीं लगायेगी, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि शान्तिपूर्ण स्थिति वापस लाने की अधिक-से-अधिक आशा इसीमें है कि सम्बन्धित लोग बिना शर्त आजाद होकर बातचीत करें। हमने यह कार्रवाई ऐसी शान्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न करने की हार्दिक इच्छा से की है कि जिसमें प्रधानमंत्री

ने जो जिम्मेवारी ली है, कि यदि शान्त रहने की घोषणा कर दी जाय और उसका विश्वास दिलाया जाय तो सरकार भी अनुकूल उत्तर देने में पीछे न रहेगी, वह सरकार द्वारा पूरी की जा सके ।

"हमारे इस निर्णय का असर जिन-जिन लोगों पर होगा उनपर यह विश्वास करने में मुझे सन्तोष है कि वे उसी भावना से काम करेंगे जिस भावना से प्रेरित होकर यह किया गया है। मुझे विश्वास है कि वे उन गम्भीर परिणामों की शान्तिपूर्ण और निष्पक्ष भाव से जांच करने के महत्त्व को स्वीकार करेंगे।"

: १ :

गांधी-अर्विन-समझौता—१९३१

गांधीजी का सन्देश

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई २६ जनवरी की आधीरात से से पहले होनेवाली थी और इस बात की हिदायत निकाल दी गई थी कि उनकी पत्नियां यदि जेल में हों तो उन्हें भी रिहा कर दिया जाय। चूंकि जो लोग बीच-बीच में किसीके बजाय (कार्य-समिति के) सदस्य बने थे उनकी रिहाई की भी हिदायत थी, इसलिए इस प्रकार रिहा होनेवालों की कुल संख्या २६ पर पहुँच गई। गांधीजी जैसे ही जेल से छूटे, उन्होंने भारतीय जनता के नाम एक सन्देश निकाला, जो उनके स्वभाव के ही अनुरूप था। क्योंकि जैसे पराजय से वह दुखी नहीं होते उसी प्रकार सफलता में वह फूल भी नहीं उठते। उन्होंने कहा :—

"जेल से मैं अपनी कोई राय बनाकर नहीं निकला हूँ। न तो किसीके प्रति मुझे कोई शत्रुता है और न किसी बात का तास्सुब। मैं तो हरेक दृष्टि-कोण से सारी परिस्थिति का अध्ययन करने और सर तेजबहादुर सप्रू तथा दूसरे मित्रों से, जब वे लौटकर आयेंगे, प्रधानमंत्री के वक्तव्य पर विचार करने के लिए तैयार हूँ। लन्दन से कुछ प्रतिनिधियों ने तार भेजकर मुझसे ऐसा करने का आग्रह किया है, इसीलिए मैं यह बात कह रहा हूँ।"

समझौते के लिए उनकी क्या शर्तें होंगी, यह पत्र-प्रतिनिधियों की मुलाकात में उन्होंने इंगित किया; लेकिन इस बात की घोषणा अविलम्ब की, कि "पिकेटिंग का अधिकार नहीं छोड़ा जा सकता, न लाखों भूखों-मरते लोगोंद्वारा नमक बनाने के अधिकार को ही हम छोड़ सकते हैं।" उन्होंने कहा, "यह ठीक है कि ज्यादातर आर्डिनेन्स नमक बनाने और विदेशी कपड़े व शराब के बहिष्कार को रोकने के लिए ही बने हैं; लेकिन ये बातें तो ऐसी हैं जो वर्तमान कुशासन के प्रतिरोधस्वरूप नहीं बल्कि परिणाम प्राप्त करने के लिए जारी की गई हैं।" उन्होंने कहा कि मैं शान्ति

के लिए तरस रहा हूँ, बशर्ते कि इज्जत के साथ ऐसा हो सके; लेकिन चाहे और सब मेरा साथ छोड़ दें और मैं बिलकुल अकेला रह जाऊँ तो भी ऐसी किसी सुलह में मैं साझीदार न होऊँगा जिसमें पूर्वोक्त तीन बातों का सन्तोषजनक हल न हो। "इसलिए गोलमेज-परिषद्-रूपी पेड़ का निर्णय मुझे उसके फल से ही करना चाहिए।"

गांधीजी, छूटते ही, पं० मोतीलाल नेहरू से मिलने के लिए इलाहाबाद चल दिये, जहांकि वह बीमार पड़े हुए थे। कार्य-समिति के सब सदस्यों को भी वहीं बुलाया गया। वहीं स्वराज्य-भवन में, ३१ जनवरी और १ फरवरी १९३१ को, कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें निम्न प्रस्ताव पास हुआ :—

"कार्य-समिति ने श्री शास्त्री, सप्रू और जयकर के इच्छानुसार २१–१–३१ को पास किया हुआ अपना प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया था, इससे सर्वसाधारण में यह खयाल फैल गया है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है। इसलिए समिति के इस निश्चय की ताईद करना आवश्यक है कि जबतक स्पष्ट रूप से आन्दोलन को बन्द करने की हिदायत न निकाली जाय तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। यह सभा लोगों को इस बात का स्मरण कराती है कि विदेशी कपड़े और शराब तथा अन्य नशीली चीजों की दूकानों पर धरना देना अपने-आप में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का कोई अंग नहीं है, बल्कि जबतक वह बिलकुल शान्ति-पूर्ण रहे और जबतक सर्वसाधारण के कार्य में उससे कोई रुकावट न पड़ती हो तबतक वह नागरिकों के साधारण अधिकार के अन्तर्गत ही है।

"यह समिति विदेशी कपड़े के, जिसमें विदेशी सूत से बना हुआ कपड़ा भी शामिल है, व्यापारियों और कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को स्मरण कराती है कि चूंकि सर्व-साधारण की भलाई के लिए विदेशी कपड़े का बहिष्कार बहुत जरूरी है, इसलिए यह राष्ट्रीय हलचल का एक आवश्यक अंग है और उस वक्त तक ऐसा ही बना रहेगा जबतक कि राष्ट्र को तमाम विदेशी कपड़ा और विदेशी सूत हिन्दुस्तान से बहिष्कृत कर देने की शक्ति प्राप्त न हो जाय, फिर ऐसा चाहे विदेशी कपड़े पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर किया जाय या प्रतिबन्धक-तटकर लगाकर।

"विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने की कांग्रेस की अपील पर ध्यान देकर, विदेशी कपड़े और सूत के व्यापारियों ने इस दिशा में जो कार्य किया है, उसकी यह समिति प्रशंसा करती है; लेकिन इसके साथ ही वह उन्हें यह स्मरण करा देना चाहती है कि कोई भी कांग्रेस-संस्था उन्हें इस बात का आश्वासन नहीं दे सकती कि हिन्दुस्तान में जो ऐसा माल बचा हुआ है उसको वह कहीं और खपा देगी।"

पं० मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास

कार्य-समिति के असली और ऐवजी सदस्य ३ फरवरी तक इलाहाबाद ही रहे। पण्डित मोतीलाल की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती थी और यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें 'एक्सरे-परीक्षा' के लिए लखनऊ ले जाया जाय। तबतक करीब-करीब सभी लोग थोड़े दिनों के लिए वहां से चले गये, पर गांधीजी-सहित कुछ लोग वहीं रहे। गांधीजी तो मोतीलालजी के साथ लखनऊ भी गये, जहां मौत से बड़ी कशमकश के बाद इन अन्तिम शब्दों के साथ मोतीलालजी सदा के लिए हमसे विदा हो गये—"हिन्दुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य-भवन में ही कीजिए। मेरी मौजूदगी में ही फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमि के भाग्य-निर्णय के आखिरी सम्मान-पूर्ण समझौते में मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतन्त्र-भारत की गोद में ही मुझे मरने दो। मुझे अपनी आखिरी नींद गुलाम देश में नहीं बल्कि आज़ाद देश में ही लेने दो।" इस प्रकार पण्डितजी की महान् आत्मा हमसे जुदा हो गई। निस्सन्देह वह एक शाही तबीयत के आदमी थे—न केवल बौद्धिक दृष्टि से बल्कि धन, संस्कृति और स्वभाव सभी दृष्टियों से। जब कि उनकी दूरन्देशी और तत्काल-बुद्धि से राष्ट्र को अपने सामने उपस्थित पेचीदा समस्यायों को स्पष्ट रूप से सुलझाने में बड़ी मदद मिलती उस समय उनका हमारे बीच से उठ जाना राष्ट्र की ऐसी भारी क्षति थी कि वस्तुतः जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती; क्योंकि वह न केवल बड़े दूरन्देश ही थे, बल्कि हमारे सामने छाई हुई राजनैतिक समस्याओं की तफसीलों में उतरकर जल्द और सही निर्णय पर पहुँचने में भी एक ही थे।

हालांकि उनका रहन-सहन बहुत अमीरी था, मगर गांधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने भी जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने की आवश्यकता महसूस की; और इसके लिए स्वेच्छा-पूर्वक गरीबी और कष्ट-सहन को अपनाया। यह भी नहीं कि उन्होंने अपने धन का अकेले ही उपभोग किया हो। वह धनिकवर्ग के उन थोड़े-से व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने राष्ट्र को भी अपने धन का भागीदार बनाया है। कांग्रेस को उन्होंने आनन्द-भवन की जो भेंट दी वह उनकी देशभक्ति और उदारता के अनुकूल ही थी। लेकिन दरअसल इसे ही हम राष्ट्र के प्रति उनकी सबसे बड़ी भेंट नहीं कह सकते; उनकी सबसे बड़ी भेंट तो उनकी वह विरासत है जो अपने पुत्र के रूप में उन्होंने राष्ट्र को प्रदान की है। ऐसे पिता बहुत कम मिलेंगे जो अपने पुत्रों को जज, मिनिस्टर, राजदूत या एजेण्ट-जनरल के बड़े-बड़े ओहदों पर न देखना चाहें;

लेकिन मोतीलालजी ने दूसरा ही रास्ता पकड़ा। मोतीलालजी अब नहीं रहे, लेकिन उनकी स्पिरिट, अब भी कांग्रेस के ऊपर मँडरा रही है और विचार-विनिमय एवं निर्णय के समय मार्ग-प्रदर्शन करती रहती है।

राजनैतिक परिस्थिति में इस समय जो बात वस्तुतः शोकजनक थी, और जिसके लिए गांधीजी खास तौर पर चिन्तित थे, वह तो यह थी कि इंग्लैण्ड में खूब चिल्ला-चिल्लाकर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने की जो बात कही जा रही थी उसके कारण हिन्दुस्तान के अधिकारियों के रुख में कोई परिवर्त्तन नजर नहीं आ रहा था। "चारों ओर दमन-चक्र अपने भयंकर रूप में जारी है," 'न्यूज क्रानिकल' को दिये हुए अपने तार में गांधीजी ने लिखा, "निर्दोष व्यक्तियों पर अकारण मारपीट अभीतक जारी है। इज्जतदार आदमियों की चल और अचल सम्पत्ति, बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के, सरसरी तौर पर बरायनाम कानूनी कार्रवाई करके जब्त कर ली जाती है। स्त्रियों के एक जुलूस को भंग करने में बल-प्रयोग किया गया। उन्हें जूतों की ठोकरें मारी गईं और बाल पकड़कर घसीटा गया। ऐसा दमन जारी रहा तो कांग्रेस के लिए सरकार से सहयोग करना सम्भव न होगा, चाहे दूसरी कठिनाइयां हल ही क्यों न हो जायँ।

वाइसराय से मुलाकात

खानगी तौर पर इस बात की हिदायतें जारी की गईं कि आन्दोलन तो जरूर जारी रहे, पर कोई नया आन्दोलन या ऐसी बात शुरू न की जाय जिससे परिस्थिति कोई नया रूप धारण कर ले। ठीक इसी समय गोलमेज-परिषद् में, गये हुए प्रतिनिधि लौट कर हिन्दुस्तान आये और आते ही, ६ फरवरी १९३१ को उन्होंने कांग्रेस से निम्न प्रकार अपील की :—

"(गोलमेज-परिषद् की) योजना अभी तो खाली एक खाका है, तफसील की बातें तो, जिनमें से कुछ बहुत सार की और महत्त्वपूर्ण हैं, अभी तय होनी हैं। हमारी यह दिली ख्वाहिश है कि अब कांग्रेस तथा अन्य दलों के नेता आगे बढ़कर इस योजना की पूर्त्ति के लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। हमें आशा है कि वातावरण को ऐसा शान्त कर दिया जायगा जिसमें इन आवश्यक विषयों पर भलीभांति विचार किया जा सके और राजनैतिक कैदियों की रिहाई हो सके।"

लेकिन इसके बाद भी सजायें दी जाती रहीं और फरवरी १९३१ में कानपुर शहर में पिकेटिंग के अपराध में १३६ गिरफ्तारियां हुईं? साथ ही जेलों में भी—

क्या खाना-कपड़ा और क्या दवा-दारू—कैदियों के साथ वैसा ही खराब व्यवहार होता रहा जैसा पहले होता था, और उन्हें पहले की ही तरह सजा भी दी जाती रही। १३ फरवरी को इलाहाबाद में कार्य-समिति की बाजाब्ता बैठक हुई। इस समय तक डॉ० सप्रू और शास्त्रीजी हिन्दुस्तान आ गये थे। गांधीजी व कार्य-समिति से मिलने के लिए वे दौड़े हुए इलाहाबाद गये। कार्य-समिति के साथ उनकी लम्बी बहस हुई, जिसमें कार्य-समिति के सदस्यों ने उनसे कड़ी-से-कड़ी जिरह की। यहां तक कि कभी-कभी तो कार्य-समिति के सदस्य उनके प्रति मृदुता तक न रख पाते थे; क्योंकि शास्त्रीजी इंग्लैण्ड में कुछ ऐसी बात कह गये थे कि जिससे सर्वसाधारण में उत्तेजना ही नहीं फैल रही थी, वल्कि उनके प्रति रोष भी छा रहा था। खैर, जो हो। गांधीजी ने लॉर्ड अर्विन को एक पत्र लिखा, जिसमें देश में पुलिस-द्वारा की जा रही ज्यादतियों, खास-कर २१ जनवरी को वोरसद में स्त्रियों पर किये जानेवाले हमले की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए उनसे पुलिस के कारनामों की जांच कराने के लिए कहा। लेकिन इस मांग को ठुकरा दिया गया और ऐसा मालूम होने लगा मानो सुलह-शान्ति की सारी बात-चीत का खात्मा हो गया। मगर यह महसूस किया गया कि अगर कांग्रेस और सरकार को मिलना है तो इसके लिए दो में से किसी एक को ही पहले आगे बढ़ाना पड़ेगा। सरकार अपनी तरफ से कार्य-समिति के सदस्यों को बिना किसी शर्त के रिहा कर चुकी थी। तब कार्य-समिति या गांधीजी अपनी ओर से वाइसराय को मुलाकात के लिए क्यों न लिखें, बजाय इसके कि बाजाब्ता पत्र-व्यवहार की बाट देखते रहें? सत्याग्रही को शान्ति के लिए ऐसे उपाय ग्रहण करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। अतएव गांधीजी ने लॉर्ड अर्विन को मुलाकात के लिए एक संक्षिप्त पत्र लिखा, जिसमें उनसे बहैसियत एक मनुष्य बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। यह पत्र १४ तारीख को भेजा गया और १६ तारीख के बड़े सवेरे तार-द्वारा इसका जवाब आ गया। १६ तारीख को ही गांधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये, और पुरानी कार्य-समिति के अन्य सदस्य भी शीघ्र ही दिल्ली पहुँच गये। कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव-द्वारा गांधीजी को कांग्रेस की ओर से सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये थे। गांधीजी ने १७ फरवरी को वाइसराय से पहली बार मुलाकात की और कोई चार घण्टे तक वाइसराय से उनकी बातें होती रहीं। तीन दिन तक लगातार यह बात-चीत चलती रही।

इस बात-चीत के दौरान में गांधीजी ने पुलिस-द्वारा की गई ज्यादतियों की जांच और पिकेटिंग के अधिकार पर जोर दिया। इनके अलावा वे शर्तें थीं जोकि

सुलह के समय आम तौर पर हुआ करती हैं; जैसे कैदियों की आम रिहाई, विशेष कानूनों (ऑर्डिनेन्सों) को रद करना, जब्त की हुई सम्पत्ति को लौटाना और उन सब कर्मचारियों को जिन्हें इस्तीफा देना पड़ा है या नौकरी से हटा दिया गया है फिर से बहाल करना। ये सब बातें, खासकर पिकेटिंग का अधिकार और पुलिस की जांच के विषय, ऐसी विवादास्पद थीं कि जिनपर तुरन्त कोई समझौता होने की सम्भावना नहीं थी। १९ फरवरी को वाइसराय-भवन से जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमें कहा गया कि बात-चीत के दौरान में कई ऐसी बातें सामने उठी हैं जिनके बारे में विचार किया जा रहा है। यह बहुत सम्भव है कि उसके आगे बात-चीत होने में कई दिन लग जायँ।

पहले दिन बड़े उत्साह के साथ गांधीजी डॉ० अन्सारी के मकान पर लौटे जहां कि वह स-दलबल ठहरे हुए थे। पहले दिन की बातचीत से एक प्रकार की निश्चित आशा बँधती थी। दूसरे दिन यह स्पष्ट हो गया कि गांधीजी की स्थिति को वाइसराय समझते तो हैं, लेकिन उसके अनुसार करने को तैयार न थे। चूंकि इंग्लैण्ड के निर्णय की प्रतीक्षा थी, इसलिए बातचीत कुछ समय के लिए रुकने की सम्भावना पैदा हो गई; और स्वयं वाइसराय ने गांधीजी को दुबारा शनिवार २१ तारीख को बुलाने के लिए कहा। लेकिन गुरुवार १९ तारीख को एकाएक बुलावा आ पहुँचा। इधर सरकार और कांग्रेस के बीच चलनेवाली बातचीत के दौरान में उठनेवाले विविध विषयों के विचारार्थ १२ व्यक्तियों का एक छोटा सम्मेलन करने का विचार किया गया, जिनकी संख्या बाद में बढ़कर २० हो गई। वाइसराय लन्दन से इस विषय में तार आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसलिए इस सम्मेलन को २४ ता० तक ठहरना पड़ा।

बहुत प्रतीक्षा के बाद आखिर २६ ता० को वाइसराय का बुलावा आ ही पहुँचा। २७ ता० को गांधीजी वाइसराय के पास गये और साढ़े-तीन घण्टे तक बहुत खुलकर, साफ-साफ और मित्रता-पूर्वक बातचीत हुई। बातचीत में कठोर शब्द एक भी नहीं कहा गया, और वाइसराय इस बात के लिए उत्सुक थे कि गांधीजी बातचीत तोड़ न दें।

२८ ता० को, वाइसराय की इच्छानुसार गांधीजी ने पिकेटिंग के बारे में उन्हें अपना मन्तव्य भेजा और वाइसराय ने प्रस्तावित समझौते के बारे में अपने कुछ विचार गांधीजी को लिख भेजे। समझौते के सिलसिले में उठी हरेक बात पर वाइसराय ने गांधीजी के निश्चित विचार जानने चाहे और इसके लिए, जैसा कि

पहले तय हो चुका था, १ मार्च के दिन दोपहर के २॥ बजे उन्हें वाइसराय-भवन में मिलने के लिए बुलाया। १ मार्च के रोज हालत एकदम निराशाजनक मालूम पड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि फिर से लड़ाई छेड़े बिना कोई चारा नहीं है। कार्य-समिति के हरेक सदस्य के मुंह से यही एक आवाज सुनाई पड़ती थी कि "समझौते की बातचीत बन्द कर दो।" कोई एक भी सदस्य इसका अपवाद न था। तुरन्त ही चारों तरफ यह बात फैल गई। चारों तरफ हलचल मच गई और हर जगह परेशानी नजर आने लगी।

निश्चित समय पर गांधीजी वाइसराय से मिले और सायंकाल ६ बजे वाइसराय-भवन से वापस आ गये। इतने थोड़े समय में उनके लौट आने से एकदम निराशा छागई, लेकिन शीघ्र ही समझौते की फिर से आशा बंधने लगी। १ मार्च के तीसरे पहर जब गांधीजी वाइसराय से मिले तो वाइसराय का रुख बिलकुल दोस्ताना था। होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन भी बड़ी अच्छी तरह पेश आये। वाइसराय ने गांधीजी से कहा कि मि० इमर्सन के सलाह-मशविरे से वह पिकेटिंग के बारे में कोई हल सोचें।

आशाजनक परिस्थिति

इसके बाद वातावरण बिलकुल बदल गया। आपस में मित्रता के आसार नजर आने लगे। इतने समय के बाद अब सम्भवतः हम यह कह सकते हैं कि अधिकारों की भावना के ऊपर कर्त्तव्य-भाव ने विजय न पाई होती तो शायद समझौता बिलकुल ही न हुआ होता। पिकेटिंग के बारे में बहस-तलब एक बात यह थी कि वह सारे "विदेशी माल के खिलाफ की जाय या ब्रिटिश माल के ?" दूसरी बात उसके लिए ग्रहण किये जानेवाले साधनों के बारे में थी। यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश-माल का बहिष्कार प्रारम्भ से कांग्रेस-कार्यक्रम का अंग नहीं था बल्कि बाद के सालों में, खासकर लड़ाई के दिनों में, उसमें शामिल किया गया, इसलिए यह निश्चित है कि उसी लड़ाई के लिए और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दबाव डालने को राजनैतिक शस्त्र मानकर ही ग्रहण किया गया था। अतएव विदेशी माल की पिकेटिंग का ही विचार किया गया। इस प्रकार, जैसा कि आगे हम देखेंगे, समझौते की एतद्विषयक भाषा बिलकुल स्पष्ट कर दी गई। वाइसराय ने बहिष्कार शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उनके खयाल में पिकेटिंग और बहिष्कार ऐसी चीजें हैं जो एक-दूसरे के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं। और अस्थायी सन्धि के समय विदेशी माल और ब्रिटिश-माल में फर्क तो किया ही जाना

चाहिए। इस सम्बन्धी सामान्य वाद-विवाद के बाद लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी और मि० इमर्सन से आपस में मिलकर कोई हल निकालने के लिए कहा और वह निकाल भी लिया गया।

इसके बाद ताजीरी पुलिस के बारे में बातचीत हुई और वह सन्तोषजनक रही। यह तय रहा कि इसके बाद जुर्माने वसूल नहीं किये जायँगे लेकिन अभीतक जो रकम वसूल हो चुकी है वह नहीं लौटाई जायगी। कैदियों के रिहाई के बारे में वाइसराय ने उदारता और सहानुभूति के साथ विचार करने का वादा किया। पहली मार्च की रात को जेल-सम्बन्धी और दंगा, शरारत व चोरी के जुर्मों पर विचार हुआ। प्रसंगवश यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि शाम को भोजन के बाद गांधीजी फिर से वाइसराय-भवन गये थे और बातचीत पुनः जारी हुई थी। गांधीजी ने नजरबन्दों का भी प्रश्न उठाया और वाइसराय ने निश्चित रूप से यह आश्वासन दिया कि सामूहिक रूप में नहीं पर वैयक्तिक रूप में वह उनके मामलों की तहकीकात अवश्य करेंगे। जब्त सम्पति के बारे में तय हुआ कि उसमें से जो बिक चुकी है वह नहीं लौटाई जा सकती। गांधीजी से कहा गया कि इसके लिए वह प्रान्तीय सरकारों से मिलें, क्योंकि भारत-सरकार प्रान्तीय-सरकारों से सीधी बातचीत चलाने के लिए तैयार नहीं है। मगर जब्त जमीनों के बारे में बम्बई-सरकार के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी गांधीजी को देने का वाइसराय ने वादा किया।

गांधीजी ने इस बात-चीत का जो बयान किया उसे सुनकर श्री वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलेक्टरों का मामला भी इसमें शामिल करने के लिए कहा जिन्होंने लड़ाई के समय पद-त्याग किया था। नमक के बारे में तो स्थिति अच्छी ही रही। जिन जगहों पर नमक अपने-आप तैयार होता है वहां से आजादी के साथ नमक लेने देने का वाइसराय ने आश्वासन दिया। यह एक ऐसी सुविधा थी जो गांधीजी के लिए बड़ी सन्तोष-जनक हुई। पुलिस की ज्यादतियों के प्रश्न पर दोनों ही अड़ गये। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में अपनेको कार्य-समिति पर ही छोड़ दिया। उन्होंने कहा, जो कुछ वह मुझे आदेश देगी मैं तो बाखुशी उसीका पालन करूँगा। "अगर आप बात-चीत तोड़ना चाहें", उन्होंने कहा, "तो मैं बातचीत तोड़ने के लिए ही वाइसराय के पास जाऊँगा।" वाइसराय से बातचीत करके वह रात के १ बजे वापस आये और रात के २। बजे तक कार्य-समिति के सदस्यों व अन्य मित्रों के सामने भाषण दिया। वाइसराय और मि० इमर्सन दोनों ही अच्छी तरह पेश आये थे। पिकेटिंग के बारे में उसी रात एक हल निकल आया, लेकिन उसपर और विचार करने के लिए ३ मार्च

का दिन तय रहा; क्योंकि २ मार्च को सोमवार पड़ता था, जो गांधीजी का मौन-दिवस था।

समझौते की जो आशा वँध रही थी, ३ मार्च को उसमें एक और बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई। बारडोली के किसानों की जमीन लौटाने के मामले पर पहले भी विचार हुआ था, अब फिर उस मामले को उठाया गया। इस बारे में जो भी हल सोचा जाय, वह ऐसा होना लाजिमी था जिसे वल्लभभाई मान लें। अतएव दिन की बातचीत में गांधीजी ने वाइसराय से कहा कि मैं कोई ऐसा हल सोचकर कि जो वल्लभभाई को मान्य हो, रात को फिर आऊँगा, इसलिए फिलहाल इस विषय की चर्चा बन्द कर देना चाहिए। उधर, वस्तुस्थिति यह थी कि, वाइसराय की भी अपनी कठिनाइयां थीं। यह समझा जाता है कि जब बारडोली में करबन्दी-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था तब उन्होंने बम्बई-सरकार को एक पत्र लिखा था, जिसमें लिखा था कि चाहे कुछ हो, मैं किसानों की जब्त ज़मीनें लौटाने के लिए कभी नहीं कहूँगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अब उससे बिलकुल उलटी बात लिखने के लिए वह तैयार नहीं थे। उन्होंने चाहा कि गांधीजी सर पुरुषोत्तमदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला से इसके लिए बीच में पड़ने को कहें; और आशा प्रकट की कि सब ठीक हो जायगा। गांधीजी ने चाहा कि वाइसराय स्वयं ऐसा करें। आखिरकार वाइसराय बम्बई-सरकार के नाम ऐसा पत्र लिखने को तैयार हुए कि जमीनें प्राप्त कराने के मामले में पूर्वोक्त दोनों महानुभावों की मदद की जाय। और असलियत तो यह है कि इस बातचीत के दौरान में बम्बई-सरकार के रेवेन्यु-मेम्बर भी दिल्ली पहुंचे थे जो, यह स्पष्ट है, इस सम्बन्धी बातचीत के लिए ही बुलाये गये थे। श्री सप्रू, जयकर और साथ ही शास्त्रीजी ने, जब कोई कठिनाई उत्पन्न हुई तो उसे सुलझाने के लिए, बड़ा काम किया।

आरज़ी सुलह

इसपर लम्बी बहस हुई और ३ तारीख के सायंकाल एक बार फिर ऐसा मालूम पड़ने लगा कि बस अब समझौते की बातचीत भंग हुई। लेकिन फिर उपर्युक्त नोट में उल्लिखित हल निकाला गया और उसके साथ धारा (स) में यह वाक्य भी जोड़ा गया कि 'जहांतक सरकार से सम्बन्ध है'—जो कि सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे लोगों के बीच में पड़कर सम्भव हो तो किसानों को जमीनें वापस दिलाने की गुंजाइश रखने की गर्ज से किया गया।

३ तारीख की रात के २॥ बजे (अर्थात् ४ मार्च १९३१ के बड़े सवेरे) गांधीजी

वाइसराय-भवन से वापस लौटे। सब लोग उनकी प्रतीक्षा में जाग रहे थे। गांधीजी बड़े उत्साह में थे। मामूल के मुताबिक गांधीजी ने उस रात की सब घटनायें कार्य-समिति के सदस्यों को सुनाईं। कार्य-समिति के सदस्यों में शाम तक भी पिकेटिंग के सम्बन्ध में सोचे गये हल पर खूब गरमागरम वादविवाद हुआ था, क्योंकि पहले-पहल उसका जो मसविदा बनाया गया उसमें मुसलमान दूकानदारों के यहां पिकेटिंग न करने की धारा रक्खी गई थी। सरकार उसे रखना चाहती थी, लेकिन अन्त में उसे छोड़ ही दिया गया। समझौते की हरेक मद में थोड़ी-बहुत खामी थी। कैदियों की रिहाई में सिर्फ सत्याग्रही कैदियों का उल्लेख था। नजरबन्दों के मामलों पर सिर्फ यह कहा गया कि तफसील में उनपर विचार किया जायगा। शोलापुर के और गढ़वाली कैदियों का तो उसमें जिक्र ही नहीं था। पिकेटिंग-सम्बन्धी धारा के कारण विशेषतः ब्रिटिश माल पर ही धरना नहीं दिया जा सकता था। जब्तशुदा या बेच दी जानेवाली जमीनों की वापसी स्वयं ही एक समस्या बन गई थी, क्योंकि १७ (स) धारा उसमें मौजूद थी, जो कांग्रेस के लिए एक विकट समस्या थी।

आखिरी बैठक में आखिरकार गांधीजी ने स्वयं ही विधान-सम्बन्धी एक अत्यन्त आवश्यक विषय को तय कर लिया; अलबत्ता यह शर्त रक्खी गई कि यदि कार्य-समिति उसे मंजूर कर ले। गांधीजी उस योजना पर आगे विचार चलाने के लिए तैयार हो गये, जिसपर "भारत में वैध-शासन स्थापित करने की दृष्टि से गोलमेज-परिषद् में विचार हुआ था और जिस योजना का संघ-शासन तो अनिवार्य अंग था ही, पर साथ ही भारतीय उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेवारियों की अदायगी जैसे विषयों पर प्रतिबन्ध या संरक्षण भी जिसके मुख्य भाग थे।" इस प्रकार गांधीजी और वाइसराय-द्वारा बनाया हुआ यह आरजी समझौता फिर कार्य-समिति के सामने आया। अब यह उसके ऊपर था कि वह चाहे तो उसे मंजूर करे और चाहे तो रद कर दे। वल्लभभाई समझौते के जमीनों-सम्बन्धी अंश से सहमत नहीं थे। जवाहरलालजी को विधान-सम्बन्धी अंश नापसन्द था। कैदियों वाली बात पर तो किसीको भी सन्तोष न था। लेकिन अगर हरेक मुद्दा ऐसा होता कि उसपर हरेक को सन्तोष हो जाता तो फिर वह समझौता ही कहां रहता, वह तो कांग्रेस की जीत ही न होती! जब कांग्रेस समझौता या राजीनामा कर रही थी तब ऐसा नहीं हो सकता कि उसी-उसकी बात रहे। अलबत्ता कार्य-समिति चाहे तो प्रस्तावित समझौते के किसी मुद्दे को या सारे समझौते को ही रद्द कर सकती थी। गांधीजी ने अलग-अलग

कार्य-समिति के हरेक सदस्य से पूछा कि क्या कैदियों के प्रश्न पर, पिकेटिंग के मामले पर, जमीनों के सवाल पर, अन्य किसी बात पर या हरेक बात पर, या आप कहें तो समूचे समझौते पर, मैं सुलह की बातचीत तोड़ दूं ?

इस प्रकार १५ दिन तक सरकार और कांग्रेस के बीच खूब गहरा वाद-विवाद होने के बाद यह समझौता बनकर तैयार हुआ। गांधीजी और लॉर्ड अर्विन में जो श्रेष्ठतम गुण थे उनमें से कुछ का इस बातचीत के दौरान में पूरा प्रयोग हुआ। उसीके परिणाम-स्वरूप (५ मार्च १९३१ को), यह समझौता हुआ जो ज्यों-का-त्यों नीचे दिया जाता है :—

सरकारी विज्ञप्ति

"सर्व-साधारण की जानकारी के लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है :—

(१) वाइसराय और गांधीजी के बीच जो बात-चीत हुई उसके परिणाम-स्वरूप, यह व्यवस्था की गई है कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द हो, और सम्राट् सरकार की सहमति से भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें भी अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करें।

(२) विधानसंबंधी प्रश्न पर, सम्राट्-सरकार की अनुमति से, यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान के वैध-शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा जिसपर गोलमेज-परिषद् में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है; इसी प्रकार भारतीय-उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेदारियों की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग हैं।

(३) १९ जनवरी १९३१ के अपने वक्तव्य में प्रधान-मंत्री ने जो घोषणा की है उसके अनुसार, ऐसी कार्रवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारों की योजना पर आगे जो विचार हो उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सकें।

(४) यह समझौता उन्हीं बातों के सम्बन्ध में है, जिनका सविनय अवज्ञा-आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध है।

(५) सविनय अवज्ञा अमली रूप में बन्द कर दी जायगी और (उसके बदले में) सरकार अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आन्दोलन

को अमली तौर पर वन्द करने का मतलव है उन सव हलचलों को वन्द कर देना, जोकि किसी भी तरह उसको वल पहुँचानेवाली हों—खासकर नीचे लिखी हुई वातें—

१. किसी भी कानून की धाराओं का संगठित भंग।
२. लगान और अन्य करों की वन्दी का आन्दोलन।
३. सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समर्थन करनेवाली खवरों के परचे प्रकाशित करना।
४. मुल्की और फौजी (सरकारी) नौकरियों को या गांव के अधिकारियों को सरकार के खिलाफ अथवा नौकरी छोड़ने के लिए आमादा करना।

(६) जहां तक विदेशी कपड़ों के वहिष्कार का सम्वन्ध है, दो प्रश्न उठते हैं—एक तो वहिष्कार का रूप और दूसरा वहिष्कार करने के तरीके। इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ जारी किये गये आन्दोलन के अंग-रूप भारतीय कला-कौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और इसके लिए किये जानेवाले प्रचार, शान्ति से समझाने-वुझाने व विज्ञापनवाजी के उन उपायों में रुकावट डालने का उसका कोई इरादा नहीं है जो किसीकी वैयक्तिक-स्वतन्त्रता में वाधा उपस्थित न करें और जो कानून व शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हों। लेकिन विदेशी माल का वहिष्कार (सिवा कपड़े के, जिसमें सव विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के दिनों में—सम्पूर्णतः नहीं तो भी प्रधानतः—ब्रिटिश माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी निश्चित-रूप से राजनैतिक उद्देश की सिद्धि के लिए दवाव डालने की गरज से।

यह मानी हुई वात है कि इस तरह का और इस उद्देश से किया जानेवाला वहिष्कार ब्रिटिश-भारत, देशी राज्य, सम्राट् की सरकार और इंग्लैण्ड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के वीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रता-पूर्ण वातचीत में कांग्रेस के प्रतिनिधियों की शिरकत के, जो कि इस समझौते का प्रयोजन है, अनुकूल न होगा। इसलिए यह वात तय पाई है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन वन्द करने में ब्रिटिश माल के वहिष्कार को राजनैतिक-शस्त्र के तौर पर काम में लाना निश्चित रूप से वन्द कर देना भी शामिल है; और इसलिए आन्दोलन के समय में जिन्होंने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त वन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय वदलना चाहें तो अवाध-रूप से उन्हें ऐसा करने दिया जायगा।

(७) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और

शराव आदि नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने के लिए काम में लाये जानेवाले उपायों के सम्बन्ध में तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम में नहीं लाये जायँगे जिनसे कानून की मर्यादा का भंग होता हो। पिकेटिंग उग्र न होगा और उसमें जवरदस्ती, धमकी, रुकावट डालने, विरोधी प्रदर्शन करने, सर्वसाधारण के कार्य में खलल डालने या ऐसे किसी उपाय को ग्रहण नहीं किया जायगा जो साधारण कानून के अनुसार जुर्म हो। यदि कहीं इन उपायों से काम लिया गया तो वहां की पिकेटिंग तुरन्त मौकूफ कर दी जायगी।

(८) गांधीजी ने पुलिस के आचरण की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट अभियोग भी पेश किये हैं, जिनकी सार्वजनिक जांच कराई जाने की उन्होंने इच्छा प्रकट की है। लेकिन मौजूदा परिस्थिति में सरकार को ऐसा करने में वड़ी कठिनाई दिखाई पड़ती है और उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किया गया तो उसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि एक-दूसरे पर अभियोग-प्रति-अभियोग लगाये जाने लगेंगे, जिससे पुनः शान्ति स्थापित होने में वाधा पड़ेगी। इन वातों का खयाल करके, गांधीजी इस वात पर आग्रह न करने के लिए राजी हो गये हैं।

(९) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के वन्द किये जाने पर सरकार जो-कुछ करेगी वह इस प्रकार है—

(१०) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जो विशेष कानून (आर्डिनेन्स) जारी किये गये हैं वे वापस ले लिये जायँगे।

आर्डिनेन्स नं० १ (१९३१), जो कि आतंकवादी-आन्दोलन के सम्बन्ध में है, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता है।

(११) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायँगे, वशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जारी किये गये हों।

वर्मा की सरकार ने हाल में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के मातहत जो हुक्म जारी किया है वह इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता।

(१२) १. जो मुकदमे चल रहे हैं उन्हें वापस ले लिया जायगा, यदि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में चलाये गये होंगे और ऐसे अपराधों से सम्बन्धित होंगे जिनमें हिंसा सिर्फ नाम के लिए होगी या ऐसी हिंसा को प्रोत्साहन देने की वात हो।

२. यही सिद्धान्त जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत चलनेवाले मुकदमों पर लागू होगा।

३. किसी प्रान्तीय सरकार ने वकालत करनेवालों के खिलाफ सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में 'लीगल प्रैक्टिशनर्स एक्ट' के अनुसार मुकदमा चलाया होगा या इसके लिए हाईकोर्ट से दरख्वास्त की होगी तो वह सम्वन्धित अदालत में मुकदमा लौटाने की इजाजत देने के लिए दरख्वास्त देगी, वशर्ते कि सम्वन्धित व्यक्ति का कथित आचरण हिंसात्मक या हिंसा को उत्तेजन देनेवाला न हो।

४. सैनिकों या पुलिसवालों पर चलनेवाले हुक्म-उदूली के मुकदमे, अगर कोई हों, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आयँगे।

(१३) १. वे कैदी छोड़े जायँगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों के लिए कैद भोग रहे होंगे जिनमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

२. पूर्वोक्त १. क्षेत्र में आनेवाले किसी कैदी को यदि साथ में जेल का कोई ऐसा अपराध करने के लिए भी सजा हुई होगी कि जिसमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़कर और किसी प्रकार हिंसा या अहिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो तो वह सजा भी रद कर दी जायगी, या यदि इस अपराध-सम्वन्धी कोई मुकदमा चल रहा होगा तो वह वापस ले लिया जायगा।

३. सेना या पुलिस के जिन आदमियों को हुक्म-उदूली के अपराध में सजा हुई है—जैसा कि वहुत कम हुआ है—वे इस माफी के क्षेत्र में नहीं आयँगे।

(१४) जुर्माने जो वसूल नहीं हुए हैं, माफ कर दिये जायँगे। इसी प्रकार जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत निकले हुए जमानत-जब्ती के हुक्म के वावजूद जो जमानत वसूल नहीं हुई होंगी उन्हें भी माफ कर दिया जायगा।

जुर्माने या जमानतों की जो रकमें वसूल हो चुकी हैं, चाहे वे किसी भी कानून के मुताविक हों, उन्हें वापस नहीं किया जयागा।

(१५) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में किसी खास स्थान के वाशिन्दों के खर्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तिक सरकारों के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रकम, असली खर्चे से जायद हो तो भी, लौटायी नहीं जायगी, लेकिन जो रकम वसूल नहीं हुई है वह माफ कर दी जायगी।

(१६) (अ) वह चल-सम्पत्ति जो गैर-कानूनी नहीं है और जो सविनय

अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में आर्डिनेन्सों या फौजदारी-कानून की धाराओं के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभीतक सरकार के कब्जे में होगी तो लौटा दी जायगी।

(ब) लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में जो चल-सम्पत्ति जब्त की गई है वह लौटा दी जायगी, जबतक कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि बकैयादार अपने जिम्मे निकलती हुई रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जानबूझ कर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलों का खास खयाल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए राजी होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) नुकसान की भरपाई नहीं की जायगी।

(द) जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अंतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हरजाना नहीं दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी, सिवा उस सूरत के कि जब बिक्री से प्राप्त होनेवाली रकम उस रकम से ज्यादा हो जिसकी वसूली के लिए सम्पत्ति बेची गई हो।

(इ) सम्पत्ति की जब्ती या उसपर सरकारी कब्जा कानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस बिना पर कानूनी कार्रवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१७) (अ) जिस अचल-सम्पत्ति पर १९३० के नवें आर्डिनेन्स के मातहत कब्जा किया गया है उसे आर्डिनेन्स के अनुसार लौटा दिया जायगा।

(ब) जो जमीन तथा अन्य अचल-सम्पत्ति लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में जब्त या अधिकृत की गई है और सरकार के कब्जे में है वह लौटा दी जायगी, बशर्ते कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि देनदार अपने जिम्मे निकलती रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान-बूझकर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलों का खयाल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए रजामन्द होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य-सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) जहां अचल-सम्पत्ति वेच दी गई होगी, जहांतक सरकार से सम्बन्व है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

नोट—गांधीजी ने सरकार को वताया है कि जैसी कि उन्हें खवर मिली है और जैसा कि उनका विश्वास है, इस तरह होनेवाली विक्री में कुछ अवश्य ऐसी हैं जो गैर-कानूनी तरीके से और अन्यायपूर्ण हुई हैं। लेकिन सरकार के पास इस सम्वन्धी जो जानकारी है उसे देखते हुए वह इस धारणा को मंजूर नहीं कर सकती।

(द) सम्पत्ति की जव्ती या उसपर सरकारी कव्जा कानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस विना पर कानूनी कार्रवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१८) सरकार का विश्वास है कि ऐसे मामले वहुत कम हुए हैं जिनमें वसूली कानून की धाराओं के अनुसार नहीं की गई है। ऐसे मामलों के लिए, अगर कोई हों, प्रान्तिक सरकारें जिला-अफसरों के नाम हिदायतें जारी करेंगी कि स्पष्ट रूप से इस तरह की जो शिकायत सामने आये उसकी वे तुरन्त जांच करें और अगर यह साबित हो जाय कि गैर-कानूनीपन हुआ है तो अविलम्ब उसको रफा-दफा करें।

(१९) जिन लोगों ने सरकारी नौकरियों से इस्तीफा दिया है उनके रिक्त-स्थानों की जहां स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहां सरकार पुराने (इस्तीफा देनेवाले) व्यक्ति को पुनः नियुक्त नहीं कर सकेगी। इस्तीफा देनेवाले अन्य लोगों के मामलों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रान्तिक सरकारें विचार करेंगी, जो फिर से नियुक्ति की दरख्वास्त करनेवाले सरकारी कर्मचारियों व ग्रामीण अधिकारियों की पुनःनियुक्ति के वारे में उदार-नीति से काम लेंगी।

(२०) नमक-व्यवस्था-सम्वन्वी मौजूदा कानून के भंग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नहीं है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-कानून में ही कोई खास तवदीली की जा सकती है।

परन्तु जो लोग ज्यादा गरीव हैं उनके सहायतार्थ, इस सम्वन्व में लागू होनेवाली धाराओं को वह (सरकार) इस तरह विस्तृत कर देने को तैयार है, जैसा कि अभी भी कई जगह हो रहा है, जिससे जिन स्थानों में नमक वनाया या इकट्ठा किया जा सकता है उनके आसपास के इलाकों के गांवों के वाशिन्दे वहां से नमक ले सकेंगे; लेकिन यह सिर्फ उनके अपने उपयोग के ही लिए होगा, वेचने या वाहर के लोगों के साथ व्यापार करने के लिए नहीं।

(२१) यदि कांग्रेस इस समझौते की वातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत में, सरकार वह सव कार्रवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-

साधारण तथा व्यक्तियों के संरक्षण एवं कानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिए आवश्यक होगी।"

भगतसिंह आदि की फांसी

समझौते की बातचीत के दौरान में, सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरु व सुखदेव की फांसी की सजा को, जो कि मि० सौण्डर्स की हत्या के कारण लाहौर-षड्यन्त्र केस में उन्हें दी गई थी, और किसी सजा के रूप में तबदील कर देने के बारे में गांधीजी व वाइसराय के बीच बार-बार लम्बी बातें हुईं। क्योंकि, उन्हें जो फांसी की सजा दी जानेवाली थी, उससे देश में बहुत हलचल मच रही थी। स्वयं कांग्रेसवाले भी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि इस समय जो सद्भाव चारों ओर दिखाई पड़ रहा है उसका लाभ उठाकर उनकी फांसी की सजा बदलवा दी जाय। लेकिन वाइसराय ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा; हमेशा एक मर्यादा रखकर इस बारे में उन्होंने बात की। उन्होंने गांधीजी से सिर्फ यही कहा कि मैं पंजाब-सरकार को इस बारे में लिखूंगा। इसके अलावा और कोई वादा उन्होंने नहीं किया। यह ठीक है कि स्वयं उन्हीं को सजा रद करने का अधिकार था—लेकिन वह अधिकार राज-नैतिक कारणों के लिए अमल में लाने के लिए नहीं था, हालांकि दूसरी ओर राजनैतिक कारण ही पंजाब-सरकार के इस बात को मानने के मार्ग में बाधक हो रहे थे।

दरअसल वे बाधक थे भी। चाहे जो हो, लॉर्ड अर्विन इस बारे में कुछ करने में असमर्थ थे, अलबत्ता करांची में कांग्रेस-अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा देने का उन्होंने जिम्मा लिया। मार्च के अन्तिम-सप्ताह में करांची में कांग्रेस होनेवाली थी। लेकिन स्वयं गांधीजी ने ही निश्चित रूप से वाइसराय से कहा—अगर इन नौजवानों को फांसी पर लटकाना ही है, तो कांग्रेस-अधिवेशन के बाद ऐसा किया जाय, इसके बजाय उससे पहले ही ऐसा करना ठीक होगा। इससे देश को यह साफ पता चल जायगा कि वस्तुतः उसकी क्या स्थिति है और लोगों के दिलों में झूठी आशायें नहीं बँधेंगी। कांग्रेस में गांधी-अर्विन-समझौता अपने गुणों के ही कारण पास या रद होगा—यह जानते-बूझते हुए कि तीन नौजवानों को फांसी दे दी गई है। अस्तु; ५ मार्च १९३१ को समझौते पर हस्ताक्षर हुए और उसके बाद ही मि० इमर्सन ने गांधीजी को एक सुन्दर पत्र लिखा, जिसमें पिछले दस महीनों की सरकारी कार्रवाइयों के लिए अपने को जिम्मेवार बताते हुए यह भी लिखा कि स्वराज्य-प्राप्त भारत में नौकरी करने

में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी को एक सुन्दर पत्र लिखकर आशा प्रकट की कि शीघ्र ही इंग्लैण्ड में वह उन्हें देखेंगे।

युगान्तरकारी वक्तव्य

समझौते से निवटते ही गांधीजी ने, ५ मार्च की शाम को अमरीकन, अंग्रेज व भारतीय पत्रकारों और प्रेसमैनों के एक समूह के सामने एक युगान्तरकारी वक्तव्य दिया। पूरा वक्तव्य लिखाने में गांधीजी को पूरा डेढ़ घण्टा लगा। वक्तव्य गांधीजी ने मुंह-जवानी ही लिखाया था और उसमें कहीं भी एक-बार भी रद्दो-वदल नहीं किया। इस वक्तव्य में उन्होंने लॉर्ड अर्विन की उचित प्रशंसा की और पुलिस, सिविल-सर्विस व क्रान्तिकारियों से उपयुक्त अपील की। हम इस वक्तव्य को यहां उद्धृत करते हैं, क्योंकि भारतीय-स्वराज्य के इतिहास में इसे सदा स्थायी-साहित्य का स्थान मिलेगा:—

"सवसे पहले मैं यह वात कह देना चाहता हूँ कि वाइसराय के अपार धीरज व उतने ही अपार परिश्रम व अचूक शिष्टाचार के बिना यह समझौता, जैसा भी वह है, होना असंभव था। मुझे इस वात का पता है कि मैंने उनके सामने कई वार झुंझला पड़ने के कारण, चाहे अनजान में ही, उपस्थित किये होंगे। मैंने उनके धीरज को भी छुड़ाया होगा। लेकिन ऐसे किसी समय की मुझे याद नहीं आती जवकि वह झुंझलाते दिखाई दिये हों या उन्होंने धीरज छोड़ दिया हो। यह भी कह दूं कि इस वहुत ही नाजुक वातचीत के दौरान में उन्होंने शुरू से आखीर तक खुलकर वातचीत की। मेरा विश्वास है कि यदि समझौता सम्भव हो सके तो उसे करने पर वह तुले हुए थे। मुझे यह वात स्वीकार करनी पड़ेगी कि मैंने इस वातचीत में डरते हुए और कांपते हुए भाग लिया। मेरे अन्दर अविश्वास भी था, लेकिन उन्होंने फौरन ही मेरे सन्देहों का निराकरण करके मुझे निश्चिन्त कर दिया।

"इस प्रकार के समझौते के वारे में यह कहना कि विजयी-दल कौन सा है, न तो सम्भव ही है और न बुद्धिमत्तापूर्ण ही।

"यदि किसी की विजय है तो, मुझे कहना चाहिए, दोनों की है। कांग्रेस ने विजय की होड़ कभी नहीं लगाई थी।

"वात यह है कि कांग्रेस को एक निश्चित उद्देश तक पहुँचना है और उस उद्देश तक पहुँचे विना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सव देशवासियों से और अपनी सव वहनों से आग्रह करूँगा कि वे फूलकर कुप्पा हो जाने के वजाय—यदि समझौते में फूलकर कुप्पा हो जाने की कोई ऐसी वात है—परमात्मा के आगे सिर

झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय उनसे जिस मार्ग का अनुसरण करने का तकाजा करता है उसपर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट-सहन का हो और चाहे वह धैर्य-पूर्वक संधि-वार्ता या विचार विनिमय करने का हो।

"इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि कष्ट-सहन से पूर्ण इस संग्राम में गत बारह महीनों में जिन लाखों लोगों ने भाग लिया है वे विचार-विनिमय और निर्माण के इस काल में भी वही खुशनुदी, वही एकता, वही कोशिश और वही समझदारी दिखलायेंगे जो उन्होंने इतनी अधिक मात्रा में इस युग में, जिसे मैं भारत के आधुनिक इतिहास का वीरतापूर्ण युग कहूँगा, दिखलाई है।

"लेकिन, मुझे मालूम है, जहां ऐसे स्त्री-पुरुष होंगे जो इस समझौते के कारण फूलकर कुप्पा हो जायँगे, वहां ऐसे लोग भी हैं जो बहुत निराश होंगे और जो बहुत निराश हैं।

"वीरता से कष्ट सहना तो उनके लिए इतना स्वाभाविक है जैसे मानों सांस लेना। वे तो मानों इसीमें सबसे ज्यादा खुश हैं, असह्य कष्टों को भी सह लेंगे। लेकिन जब उनके कष्टों का अन्त होता है तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारा काम बन्द हो गया है और हमारा लक्ष्य आंखों से ओझल हो गया। उनसे मैं केवल यही कहूँगा कि धैर्य रक्खो, देखो, प्रार्थना करो, और आशा रक्खो।

"कष्ट-सहन की भी एक हद होती है। कष्ट सहन में बुद्धिमानी और मूर्खता दोनों सम्भव हैं; और जब कष्ट-सहन की हद आ जाती है तो उसे और बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं बल्कि परले सिरे की बेवकूफी है।

"जब आपका विरोधी आपकी इच्छानुसार ही आपसे बातचीत करने की आपके लिए आसानी पैदा करदे, तो कष्ट सहते रहना बेवकूफी है। यदि रास्ता वास्तव में खुल जाय तो हरेक का यह कर्तव्य है कि वह उससे फायदा उठावे। मेरी यह नम्र सम्मति है कि इस समझौते ने वास्तव में रास्ता खोल दिया है। इस प्रकार के समझौते का स्थायी होना तो स्वाभाविक ही है। यह जो संधि हुई है वह कई बातों के पूरा होने पर निर्भर है। इस लिखित समझौते का बड़ा भारी अंग तो 'समझौते की शर्तों' से घिर गया है। यह स्वाभाविक ही था। कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में भाग ले सके इसके पहले कई बातों का पूरा हो जाना आवश्यक है। इनका उल्लेख होना अत्यन्त आवश्यक था। लेकिन कांग्रेस का ध्येय पुरानी भूलों का सुधार कराना नहीं है, यद्यपि यह भी है महत्वपूर्ण; उसका ध्येय तो पूर्ण-स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजी में अनुवाद करके 'पूर्ण-

स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रों की भांति भारत का यह जन्मसिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर सन्तुष्ट नहीं हो सकता। समझौते भर में हमें वह मनमोहक शब्द कहीं नहीं दिखाई देता। जिस धारा में यह शब्द छिपा हुआ है वह द्विअर्थक है।

"संघ-शासन (फेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, या एक ऐसे सजीव राष्ट्र का रूप धारण कर सकता है जिसके दोनों हाथ इस प्रकार कार्य करते हों कि उससे उसका सारा शरीर मजबूत बन जाय।

"इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है, वह या तो बिलकुल छाया के समान निःसार हो या बड़ा ऊँचा, विशाल व न झुकनेवाले बरगद के पेड़ के सदृश हो सकता है। भारत के हित में संरक्षण भी बिलकुल धोखे से भरे और इसलिए ऐसे रस्सों के समान हो सकते हैं जिनसे देश चारों ओर से जकड़ा जा सके, या वे ऐसी चहारदीवारी के समान हो सकते हैं जो एक छोटे व मुलायम पौधे की रक्षा करने के लिए उसके चारों ओर लगा दी जाती है।

"एक दल इन तीन पायों का एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा। इस धारा के अनुसार दोनों दल अपनी-अपनी दिशा में काम कर सकते हैं। कांग्रेस ने परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने की जो रजामन्दी दिखाई है वह इसी कारण कि वह संघ-शासन, उत्तरदायित्व, संरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हें जिन नामों से भी पुकारा जाता हो उनको ऐसा रूप देना चाहती है कि उससे देश की वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति हो।

"यदि परिषद् ने कांग्रेस की स्थिति को ठीक-ठीक समझकर मान लिया तो, मेरा दावा है, इसका परिणाम 'पूर्ण-स्वाधीनता' होगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देनेवाला है। मार्ग में बहुत-सी चट्टानें हैं और बहुत-से गड्ढे हैं। लेकिन यदि कांग्रेस-वादी इस नये काम को विश्वास व उत्साह के साथ करेंगे तो मुझे इसके परिणाम के बारे में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। अतः यह उन्हींके हाथ में है कि वे इस नये अवसर का, जो उन्हें मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें या वे आत्म-विश्वास व उत्साह के न होने के कारण अवसर ही खो दें।

"मैं जानता हूँ कि इस कार्य में कांग्रेस को दूसरे दलों की सहायता लेनी होगी—भारत के नरेशों की और स्वयं अंग्रेजों की भी। इस अवसर पर मुझे भिन्न-भिन्न दलों से अपील करने की जरूरत नहीं। मुझे इस बात में सन्देह नहीं कि अपने देश की वास्तविक स्वतंत्रता की उन्हें भी उतनी ही आकांक्षा है जितनी कि कांग्रेसवालों को।

"लेकिन नरेशों का सवाल दूसरा है। उनका संघ-शासन के विचार को मान

लेना मेरे लिए निश्चित रूप से आश्चर्यजनक था। यदि वे संघ-शासित, भारत में बराबरी के साझीदार बनना चाहते हैं, तो मैं इस बात को कह देना चाहता हूँ कि उन्हें उसी ओर बढ़ना होगा जिस ओर बढ़ने की ब्रिटिश-भारत इतने वर्षों से कोशिश कर रहा है।

"पूर्ण एकतंत्री शासन, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, व विशुद्ध लोकसत्ता ये दो ऐसी चीजें हैं जिनका मिश्रण अवश्य ही फट पड़ेगा। इसलिए, मेरी राय में, उनके लिए आवश्यक है कि वे तने न रहें, अड़े न रहें, और अपने भावी साझीदार-द्वारा या उसकी ओर से की गई अपील को बेसब्री में न सुनें। यदि वे इस प्रकार की अपील को न सुनेंगे तो वे कांग्रेस की स्थिति को बहुत असह्य, खराब और वास्तव में बहुत विषम बना देंगे। कांग्रेस भारत की सारी जनता की प्रतिनिधि है या उसका प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। ब्रिटिश-भारत या देशी-रियासतों में बसनेवालों में वह कोई भेद-भाव नहीं करती।

"कांग्रेस ने बड़ी बुद्धिमानी से और बड़ी रोक-थाम के साथ रियासतों के मामलों व उसके कारोबार में दखल देने से अपने-आपको रोका है। ऐसा उसने इस खातिर किया है कि रियासतों की भावनाओं को अनावश्यक चोट न पहुँचे, और इस वजह से भी कि जब कोई उपयुक्त अवसर आवे तो यह कैद, जो उसने अपने-आप लगा रक्खी है, रियासतों पर अपना असर डालने में काम आवे। मेरा विचार है कि वह अवसर अब आ गया है। क्या मैं इस बात की आशा करूँ कि हमारे बड़े नरेश रियासती प्रजा की ओर से की गई कांग्रेस की अपील पर कान बन्द न कर लेंगे?

"अंग्रेजों से भी मैं एक ऐसी अपील करना चाहता हूँ। यदि भारत को परिषदों व विचार-विमर्श के जरियों से ही अपने निश्चित उद्देश को प्राप्त करना है तो अंग्रेजों की सद्भावना व सक्रिय सहायता की बड़ी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पड़ेगी कि लंदन में पहली परिषद् में जिन-जिन बातों को उन्होंने मान लिया है वह तो उसका आधा भी नहीं है जिस ध्येय तक कि भारत पहुँचना चाहता है। यदि वे वास्तव में सच्ची मदद करना चाहते हैं तो उन्हें भारत को भी उसी स्वतन्त्रता की मस्ती का अनुभव करा देना पड़ेगा, जिसको वे स्वयं मरते दम तक नहीं छोड़ सकते। उन्हें इस बात के लिए तैयार होना पड़ेगा कि वे भारत को गलतियां करने के लिए छोड़ दें। यदि गलती करने की, यहां तक कि पाप तक करने की, स्वतन्त्रता न हुई तो ऐसी स्वतंत्रता किस काम की? यदि परम-पिता परमात्मा ने अपने छोटे-से-छोटे जीव को गलती करने की स्वतन्त्रता दी है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि वे कैसे मनुष्य-जीव होंगे

जो, चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यों न हों, दूसरी जाति के मनुष्यों के इस अमूल्य अधिकार को छीनने में खुशी मना सकते हैं?

"खैर, कुछ भी हो; कांग्रेस को परिषद् में आमंत्रित करने से यह तात्पर्य खूब अच्छी तरह निकल आता है कि अयोग्यता के अलावा किसी और कारण-वश उसे पूर्ण-से-पूर्ण स्वाधीनता पर जोर देने से नहीं रोका जा सकता। कांग्रेस भारत को उस बीमार बालक की भांति नहीं मानती जिसे देख-भाल, सेवा-सुश्रूषा व अन्य सहारों की जरूरत हो।

"अमरीकन-राजतंत्र व संसार के अन्य राष्ट्रों की जनता से भी मैं एक अपील करना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि इस युद्ध ने, जिसका आधार सत्य व अहिंसा है—लेकिन जिनसे हम उसके उपासक कभी-कभी कुछ भटक जाते हैं—उनके मन पर बड़ा असर डाला है और उनमें उत्सुकता पैदा की है। उत्सुकता ही नहीं; वे इससे भी आगे बढ़े हैं। उन्होंने, और खासकर अमरीका ने, सहानुभूति के द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद भी की है। कांग्रेस की ओर से और अपनी ओर से मैं कहता हूँ कि इस सहानुभूति के लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। मुझे आशा है कि कांग्रेस अब जिस मुश्किल काम में पड़नेवाली है उसमें हमें न केवल उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही प्राप्त रहेगी बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ती भी जायगी। मैं बड़ी नम्रता से यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि यदि सत्य व अहिंसा के द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुँच गया तो जिस विश्व-शान्ति के लिए संसार के सब राष्ट्र तड़प रहे हैं उसके हित में बड़ा भारी काम कर दिखायगा और इन राष्ट्रों ने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है उसका कुछ थोड़ा-सा बदला भी चुक जायगा।

"मेरी आखिरी अपील पुलिस व सिविल-सर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियों से है। समझौते में एक वाक्य है, जिसमें जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिस की कुछ ज्यादतियों की जांच की मांग की थी। इस जांच की मांग को छोड़ देने का कारण भी समझौते में दिया गया है। महकमा पुलिस-द्वारा शासन की जो मशीन चलती रहती है उसका सिविल-सर्विस एक अभिन्न अंग है। यदि वे वास्तव में यह महसूस करते हैं कि भारत शीघ्र ही अपने घर का मालिक बननेवाला है और उन्हें वफादारी व ईमानदारी से भारत के सेवकों की तरह काम करना है, तो उन्हें यह शोभा देता है कि वे अभी से लोगों को अनुभव करा दें कि सिविल-सर्विस व पुलिस उनके सेवक हैं—अवश्य ही सम्मान-योग्य व बुद्धिमान सेवक, लेकिन हर हालत में सेवक ही न कि मालिक।

"मुझे अपने उन हजारों तो नहीं लेकिन सैकड़ों साथी-बन्दियों के बारे में भी एक शब्द कहना है, जिनके लिए मेरे पास तार-पर-तार चले आ रहे हैं लेकिन जो गत १२ महीनों में जेल भेजे गये सत्याग्रही कैदियों के छूट जाने पर भी जेलों में पड़े रहेंगे। व्यक्तिगत रूप से तो उन लोगों के भी, जो हिंसा करने के दोषी हैं, जेल भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नहीं है। मैं जानता हूँ कि वे लोग जिन्होंने राजनैतिक उद्देशों से प्रेरित होकर हिंसा की है, यदि बुद्धिमानी का नहीं तो कम-से-कम देश के लिए प्रेम व आत्म-त्याग करने का उतना दावा तो कर ही सकते हैं जितना कि मैं। इसलिए अपनी या अपने साथी-सत्याग्रहियों की रिहाई के बजाय यदि मैं न्यायपूर्वक उनकी रिहाई करा सकता तो सचमुच ही कराता।

"मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि मैं न्याय-पूर्वक उनकी रिहाई के लिए नहीं कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मुझे या कार्य-समिति के सदस्यों को उनका खयाल ही नहीं है।

"कांग्रेस ने जान-बूझकर, चाहे अस्थायी तौर पर ही सही, सहयोग का मार्ग ग्रहण किया है। यदि कांग्रेसवादी ईमानदारी से समझौते की उन शर्तों का जो उन पर लागू होती हैं पूरी-पूरी तरह से पालन करें तो कांग्रेस का गौरव बहुत बढ़ जायगा और सरकार पर इस बात का सिक्का बैठ जायगा कि जहां कांग्रेस ने, मेरी राय में, अवज्ञा-आन्दोलन चलाने की योग्यता सिद्ध कर दी है वहां उसमें शान्ति बनाये रखने की भी क्षमता है।

"और यदि जनता कांग्रेस को यह शक्ति और गौरव प्रदान कर दे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह समय दूर नहीं है जब कि इन कैदियों में से, मय नजरबन्दों व मेरठ-षड्यन्त्र के कैदियों व सब अन्यों के, एक-एक छूट जायगा।

"इस बात में सन्देह नहीं कि भारत में एक ऐसा छोटा किन्तु कर्मण्य दल विद्यमान है जो भारत की स्वतन्त्रता हिंसात्मक कार्यों-द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मैं इस दल से अपील करता हूँ, जैसा कि मैं पहले भी कर चुका हूँ, कि वह अपनी प्रवृत्तियों को बन्द करे। यदि उसे अभी इसमें विश्वास नहीं तो कम-से-कम उपयोगिता की दृष्टि से ही उसे ऐसा करना चाहिए। अनुमान है कि वे इस बात को तो महसूस कर ही चुके होंगे कि अहिंसा में कितनी जबरदस्त शक्ति है। वे इस बात से नहीं मुकरेंगे कि यह चमत्कारिक सामूहिक-जागृति अहिंसा के अगम्य लेकिन अचूक असर के कारण ही हुई है। मैं चाहता हूँ कि वे धीरज धरें और कांग्रेस को, या वे चाहें तो मुझे, सत्य व अहिंसा की योजना का प्रयोग करने का अवसर दें। दाण्डी-यात्रा को तो अभी पूरा एक साल भी

नहीं हुआ। तीस करोड़ व्यक्तियों के जीवन में एक वर्ष का समय तो काल-चक्र के एक क्षण के समान है। क्यों न वे अपने अमूल्य जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए, जिसका वुलावा शीघ्र ही सवों को दिया जायगा, सुरक्षित रक्खें और कांग्रेस को इस वात का अवसर दें कि वह अन्य सव राजनैतिक कैदियों की भी रिहाई करा सके और सम्भवत: उन लोगों को भी फांसी के तख्ते से वचा सके जिन्हें हत्या के अभियोग में फांसी की सजा मिली है ?

"लेकिन मैं किसी को झूठा दिलासा नहीं देना चाहता। खुद मेरी और कांग्रेस की जो आकांक्षायें हैं उनका मैं सार्वजनिक तौर पर केवल उल्लेख ही कर सकता हूँ। प्रयत्न करना हमारे हाथ में है, परिणाम सदा परमात्मा के हाथ में है।

"एक व्यक्तिगत वार्त और। मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करने के प्रयत्न में मैंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैंने लॉर्ड अर्विन को अपना वचन दे दिया है कि मैं समझौते की शर्तों का, जहांतक उनका कांग्रेस से सम्वन्ध है, पालन कराने में जी-जान से जुट जाऊँगा। मैंने समझौते का प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि पहला अवसर मिलते ही मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूं वल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है उसे विलकुल पक्का करने में कोई भी कसर न छोड़ूं और इसे उस ध्येय तक पहुँचाने वाला पेशवा समझूं जिसे प्राप्त करने के लिए कांग्रेस कायम है।

"सवसे अन्त में मैं उन सव लोगों को धन्यवाद देता हूँ जो समझौते को सम्भव वनाने में निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं।"

कांग्रेस की हिदायतें

लॉर्ड अर्विन ने भी गांधीजी की उसी प्रकार प्रशंसा की, जिस प्रकार कि स्वयं गांधीजी ने लॉर्ड अर्विन की की थी। अपने को दिये गये एक प्रीति-भोज में आपने महात्माजी की ईमानदारी, नेकनीयती व उच्चतम देशभक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि 'उनके साथ कार्य करना वड़ी खुशी और खुश-किस्मती की वात है। महात्मा गांधी अपनी ओर से इस वात की भरसक कोशिश कर रहे हैं कि वे अपने देशवासियों को तसल्ली करा सकें और शान्ति के योग्य वातावरण स्थापित कर सकें। इधर मैं इस वात की पूरी कोशिश करूँगा कि भारत और इंग्लैण्ड के वीच में शान्तिपूर्ण समझौता हो सके।'

चूंकि अव लड़ाई खतम हो गई थी, कांग्रेस-कमिटियों व संस्थाओं पर से रोक उठा ली गई और वे फिर से जीवित हो गईं। कांग्रेस-संस्था उस जानवर की भांति है

जो एक मौसम में तो मुर्दे की भांति पड़ा रहता है और मौसम के बदलते ही उसमें विशाल शक्ति आ जाती है। जैसे ही समझौते पर हस्ताक्षर हुए कि महासमिति के प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में अपनी सूचनायें कांग्रेसवादियों के पास भेजीं। कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि प्रत्येक जिले से दो प्रकार प्रतिनिधि चुने जायँ। आधे प्रतिनिधियों का चुनाव तो वे व्यक्ति करें जिन्हें आन्दोलन में सजा मिल चुकी हो, और शेष आधों का चुनाव साधारण नियमों के अनुसार हो। इस सम्बन्ध में विस्तार-सहित कई हिदायतें जारी की गईं। जेल हो आनेवालों का चुनाव एक सभा बुलाकर करना था। गाल के प्रतिनिधियों के चुनाव के निर्णायक श्री अणे नियत किये गये थे। उसी दिन कांग्रेसवादियों को यह भी हिदायत दी गई कि वे सविनय अवज्ञा व करबन्दी-आन्दोलनों को और ब्रिटिश-माल के बहिष्कार को बन्द कर दें। लेकिन नशीली चीजों, सब विदेशी कपड़ों व शराब की दुकानों के बहिष्कार की इजाजत दे दी गई और उन्हें जारी रखने की भी हिदायत कर दी गई। साथ ही यह भी कहा गया कि पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए, लेकिन उसमें दबाव न रहना चाहिए, विरोधी प्रदर्शन न होना चाहिए, जनता के मार्ग में रुकावट नहीं डाली जानी चाहिए और देश के साधारण कानून के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं किया जाना चाहिए। गैर-कानूनी समाचार-पत्रों के प्रकाशन बन्द करने का आदेश भी हुआ। वास्तव में समझौते की हरेक मद के सम्बन्ध में हिदायतें जारी की गईं और स्वयं गांधीजी ने उन आदेशों के साथ वे शर्तें जोड़ दीं जो शराब व विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करते समय स्वयंसेवकों को माननी चाहिएँ। वे इस प्रकार थीं:—

(१) दुकानदार या खरीददार के साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं किया जा सकता।

(२) स्वयंसेवक दुकानों अथवा गाड़ी, मोटर आदि के सामने लेट नहीं सकते।

(३) 'हाय-हाय' जैसी आवाजें नहीं लगानी चाहिएँ।

(४) किसी का पुतला बनाकर गाड़ना या जलाना नहीं चाहिए।

(५) यदि बहिष्कार किया भी जाय, तो किसी दुकानदार या खरीददार की खाने-पीने की तथा अन्य सामग्री नहीं रोकी जा सकती। लेकिन उनके घर भोजन के लिए न जाना चाहिए और न उनकी कोई सेवा ग्रहण करनी चाहिए।

(६) उपवास तथा भूख-हड़ताल किसी हालत में भी न होने चाहिएँ।

प्रतिज्ञा तोड़ने पर ही उपवास किया जा सकता है; और सो भी तव, जवकि दोनों ओर के आदमी एक-दूसरे का आदर व प्रेम करते हों।

करांची-कांग्रेस

कार्य-समिति ने सरदार वल्लभभाई पटेल को करांची-कांग्रेस के सभापति-पद के लिए चुन लिया, क्योंकि करीव एक साल तक कांग्रेस की जो असाधारण परिस्थिति रही थी उसके कारण साधारण प्रणाली-द्वारा सभापति का चुनाव होना सम्भव न था।

करांची-कांग्रेस के लिए आवश्यक प्रवन्ध करना कोई आसान काम न था; क्योंकि यद्यपि १ मार्च के आसपास कार्य-समिति के सदस्यों के छूटने पर ही अधिवेशन का होना निश्चित-सा दिखाई देने लगा था, लेकिन अस्थायी-सन्धि के भाग्य ने करांची-कांग्रेस के प्रवन्धकों की स्थिति वड़ी असमंजस में डाल दी। एक सुभीता अवश्य था— और वह यह कि अव केवल गुलावी जाड़े रह गये थे। लाहौर में कांग्रेस ने यह निश्चय किया था कि उसका अधिवेशन दिसम्वर में न होकर फरवरी या मार्च में हुआ करे। यह एक इत्तफाक की वात है कि कांग्रेस इस वर्ष अपना वार्षिक अधिवेशन मार्च के महीने में कर सकी, क्योंकि अस्थायी-संधि अभी हाल ही हो चुकी थी। अधिवेशन के मार्च में करने से पंडाल की भी कोई जरूरत नहीं रही, क्योंकि कांग्रेस अव खुले मैदान में हो सकती थी। केवल एक सभा-मञ्च और व्यासपीठ की जरूरत थी और जमीन के चारों ओर एक घेरा डालने की।

करांची-अधिवेशन के प्रवन्ध की सफलता का वहुत अधिक श्रेय करांची की म्युनिसिपैलिटी को था जिसने श्री जमशेद मेहता की अध्यक्षता व संचालकत्व में कार्य किया। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही २५ मार्च को खुले मैदान में एक मीटिंग की गई, जिसमें चार-आने की प्रवेश-फीस देनेवाले गांधीजी को देख और उनका भाषण सुन सकते थे। इस प्रकार १०,०००) इकट्ठा हुआ। यह वही मीटिंग थी जिसमें गांधीजी ने यह वाक्य कहा था, जो अव प्रसिद्धि पा गया है, "गांधी भले ही मर जाय लेकिन गांधीवाद सदा जीवित रहेगा।"

सरदार वल्लभभाई पटेल ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। आपने अपने छोटे-से अभिभाषण में सभापति चुने जाने पर कहा कि यह गौरव एक किसान को नहीं किन्तु गुजरात को, जिसने स्वतन्त्रता के युद्ध में एक वड़ा भाग लिया था, प्रदान किया गया है।

काले फूल

करांची-कांग्रेस जो एक सर्वव्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जा रही थी, वास्तव में विषाद और संताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव फांसी के तख्ते पर चढ़ाये जा चुके थे। इन तीनों युवकों की आत्मायें उस समय कांग्रेस-नगर पर मंडराती हुई लोगों को शोक-सन्ताप में डुबो रही थीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यह वह समय था जबकि भगतसिंह का नाम भी भारत-भर में उतना ही जाना जाता था और उतना ही लोकप्रिय था जितना कि गांधीजी का। अधिकाधिक प्रयत्न करने पर भी गांधीजी इन तीन युवकों की फांसी की सजा रद नहीं करा सके थे। लेकिन जो लोग इन तीनों युवकों की जान बचाने के गांधीजी के प्रयत्नों की अभीतक प्रशंसा कर रहे थे, अब इस बात पर बेतहाशा नाराज होने लगे कि इन तीनों शहीदों के सम्बन्ध में पास किये जानेवाले प्रस्ताव की भाषा क्या हो। पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मदअली, मौलवी मजहरुलहक, श्री रेवाशंकर झवेरी, शाह मुहम्मद जुबैर व गुरुनन्था मुदालियर की मृत्यु पर शोक प्रकाशित करने के पश्चात् सबसे पहले जिस प्रस्ताव पर विचार हुआ वह भगतसिंह के सम्बन्ध में ही था। इस प्रस्ताव में बहस व मतभेद की केवल यही बात थी कि भगतसिंह व उसके साथियों की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशंसा करते हुए ये शब्द कि 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए' भी प्रस्ताव में जोड़े जायँ या नहीं? हम वह प्रस्ताव नीचे देते हैं :—

"प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए यह कांग्रेस स्वर्गवासी सरदार भगतसिंह तथा उनके साथी श्री सुखदेव और श्री राजगुरु की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशंसा करती है तथा उनके जीवन-नाश पर उनके दुःखित परिवारों के साथ स्वयं भी शोक का अनुभव करती है। कांग्रेस की राय में ये तीनों फांसियां अनियन्त्रित प्रतिहिंसा का कार्य हैं तथा प्राण-दण्ड रद करने के लिए की हुई सारे राष्ट्र की मांग का पद-दलन है। कांग्रेस की यह भी राय है कि सरकार ने दो राष्ट्रों में प्रेम स्थापित करने का, जिसकी इस समय निश्चय ही बहुत जरूरत थी, और उस दल को, जिसने हताश हो कर राजनैतिक हिंसा के मार्ग का अवलम्बन किया है, शान्ति के उपाय से जीतने का अत्युत्तम अवसर खो दिया है।"

कांग्रेस ने अहिंसा के अपने सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए वचत का जो यह वाक्य रक्खा था उसके सिवाय कांग्रेस और कुछ नहीं कर सकती थी; लेकिन इस वाक्य से युवकों का वह दल जो गांधीवाद में विश्वास नहीं करता था, अप्रसन्न था और उसकी ओर से उक्त वाक्यांश को निकाल देने के संशोधन पेश किये गये। स्वयंसेवकों के सम्मेलन ने तो उक्त प्रस्ताव को उसमें से वह वाक्य निकालकर पास कर दिया। यह वाक्य वाद में प्रान्तीय-सम्मेलनों में खूव विवाद का कारण वन गया था। जव करांची में इस प्रस्ताव पर विचार हो रहा था तो हाते के वाहर उन कुछ युवक-मित्रों-द्वारा दंगा व हो-हुल्लड़ किया गया जिन्होंने एक दिन पूर्व प्रातःकाल स्टेशन पर, जवकि गांधीजी सरदार वल्भभाई पटेल के साथ करांची से १२ मील दूर ट्रेन से उतरे थे, काले झंडों का प्रदर्शन किया था। गांधीजी ने अपने सहज-स्वभाव से उन युवकों के दल का स्वागत किया और वड़े अदव से उनके हाथों से काले फूल ले लिये। यह दल आया तो था उनपर हमला करने के लिए, लेकिन रह गया उनकी 'रक्षा' के लिए। वह गांधीजी व उनके दल के साथ स्टेशन से कुछ दूर तक गया।

दूसरा प्रस्ताव जिसपर कांग्रेस ने विचार किया, वह वन्दियों की रिहाई के वारे में था। उस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि वन्दियों की रिहाई के सम्वन्ध में सरकार केवल कंजूसों-जैसी नीति ही नहीं वरत रही है वल्कि उन वादों से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड़ रही है जो उसने समझौते के सिलसिले में की थीं। इसलिए कांग्रेस ने अपना यह दृढ़ मत प्रकट किया कि 'यदि सरकार और कांग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट ब्रिटेन और भारत में सद्भाव वढ़ाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोड़ने की इच्छा को वास्तविकता में प्रकट करता है तो सरकार को चाहिए कि वह सव राजनैतिक वन्दियों, नजरवन्दों तथा विचाराधीन वन्दियों को, जो समझौते की शर्तों में नहीं भी आते हैं, रिहा कर दे और उन सव राजनैतिक प्रतिवन्धों को हटा ले जो सरकार ने भारतीयों पर चाहे वे भारत में हों या विदेशों में, उनके राजनैतिक विचारों या कार्यों के कारण लगा रक्खी हैं।'

कांग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि 'यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फांसियों के कारण उत्पन्न हो गया है, कुछ कम हो जायगा।'

गणेशजी का वलिदान

भगतसिंह आदि की फांसियों के अलावा एक और कारण भी था जिसने करांची-कांग्रेस में उदासी के वादल छा दिये। जव इधर कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था कानपुर में जोरों का हिन्दू-मुस्लिम दंगा शुरू हो गया और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी शान्ति व सद्भाव स्थापित करने और मुसलमानों को हिन्दुओं के रोष से वचाने के प्रयत्न में मारे गये। इस घटना ने कांग्रेस व देश को उसी प्रकार अपार शोकसागर में डुवो दिया जिस प्रकार कि सन् १९२६ में गोहाटी-कांग्रेस के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या ने किया था। कानपुर के दंगों के वारे में एक शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। कानपुर कोई ऐसी जगह नहीं है जो साम्प्रदायिक कलहों के लिए वदनाम रही हो। १९०७ में एक इक्की-दुक्की मार-पीट हुई थी और फिर १९२८ व २९ में। कानपुर में अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं जो कुल आवादी के ५/६ हैं। मुसलमान व अन्य जातियां मिलाकर कुल १/६ होते हैं। भगतसिंह व उनके साथियों को लाहौर में २३ मार्च को फांसी दी गई थी। देशभर में हड़तालें की गईं जिनमें वम्वई, करांची, लाहौर, कलकत्ता, मदरास, व दिल्ली की हड़तालें शान्तिपूर्वक समाप्त हो गईं। कानपुर में हड़ताल पूरी नहीं हुई; तीनों शहीदों के चित्रों व काले झण्डों-सहित एक वड़ा भारी मातमी जुलूस निकाला गया। हिन्दुओं ने तो अपनी दुकानें वन्द कर दीं, लेकिन मुसलमानों ने नहीं कीं। कुछ काल पहले जव मौ० मुहम्मदअली मरे थे उस समय हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की हड़ताल में भाग नहीं लिया था। वस, अधिक कहने की जरूरत नहीं—चिंगारी भी मौजूद थी और वारूद का ढेर भी मौजूद था। २४ मार्च को हिन्दुओं की दुकानों का लूटना प्रारम्भ हो गया। २३ मार्च की रात को ही लगभग ५० व्यक्ति घायल कर दिये गये थे। २५ मार्च को अग्नि-काण्ड प्रारम्भ हो गये। दुकानों और मन्दिरों में आग लगा दी गई। और वे जल-जलकर खाक हो गये। पुलिस ने कोई सहायता नही दी। लूट-मार, मार-काट, अग्निकाण्ड व हुल्लड़वाजी का वाजार गरम हो गया। लगभग ५०० परिवार अपने घर छोड़-छोड़कर आसपास के गांवों में जा वसे। डाक्टर रामचन्द्र का वड़ा वुरा हाल हुआ। उनके परिवार के सव व्यक्ति, मय उनकी स्त्री व वूढ़े माता-पिता के, दंगे में मारे गये और उनकी लाशें नालियों में ठूंस दी गईं। सरकारी अनुमान के अनुसार १६६ व्यक्ति मरे और ४८० घायल हुए। कांग्रेस ने वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन व अन्य कुछ मित्रों को शीघ्र ही कानपुर घटना-स्थल पर भेजा; लेकिन शान्ति के वातावरण को वापस लाना सहल न था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी

२५ ता० से लापता थे। उनकी लाश का पता २६ ता० को जाकर लगा। उन्होंने उस दिन कई मुसलमान परिवारों को बचाया था। पता चलता है कि उन्हें फँसाकर किसी एक स्थान पर ले जाया गया था जहां वह विना किसी संकोच के चले गये और फिर एक सच्चे सत्याग्रही की भांति क्रुद्ध भीड़ के सामने उन्होंने अपना सिर झुका दिया। यदि उनका लहू एकता स्थापित कर सकता और उन लोगों की प्यास बुझ सकती तो बखूबी उनके कत्ल का स्वागत किया जा सकता था। कांग्रेस ने इस शोकभरी घटना पर निम्न प्रस्ताव पास किया:—

"इस उपद्रव में युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु हो जाने से कांग्रेस को अत्यन्त दुःख हुआ है। विद्यार्थीजी अत्यन्त स्वार्थत्यागी देश-सेवकों में से थे और साम्प्रदायिक राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त होने के कारण सभी दलों और सम्प्रदायों के प्रेम-भाजन हो गये थे। उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए कांग्रेस इस वात पर अभिमान प्रकट करती है कि प्रथम श्रेणी के एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता ने खतरे में पड़े हुए लोगों के उद्धार तथा घोर उपद्रव और उन्मत्त उत्तेजना के समय शान्ति-स्थापना के प्रयत्न में अपने को वलिदान कर दिया।

"कांग्रेस सव लोगों से अनुरोध करती है कि इस वलिदान का उपयोग शान्ति की स्थापना तथा पुष्टि के लिए करें, प्रतिहिंसा का भाव जगाने के लिए नहीं। इस उद्देश से कांग्रेस एक कमिटी वना रही है जो वैमनस्य के कारणों की जांच करेगी और मेल कराने तथा आस-पास के स्थानों व जिलों में इस जहर को न फैलने देने के लिए जो-कुछ आवश्यक होगा करेगी।"

कांग्रेस ने डॉक्टर भगवानदास की अध्यक्षता में ६ सदस्यों की एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने किस प्रकार गवाहियां लीं, कानपुर का दौरा किया, आदि वातों में विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं। यहां इतना ही कहना काफी है कि कमिटी ने एक मोटी रिपोर्ट तैयार करके कार्य-समिति के सामने पेश की, जो वहुत दिनों वाद छापी गई, लेकिन सरकार ने उसका वितरण रोक दिया।

अस्थायी संधि का प्रस्ताव

इसके पश्चात् अस्थायी सन्धिवाला प्रस्ताव आता है जो एक मुकम्मिल चीज है। इसमें कांग्रेस का दृष्टि-कोण दर्शाने के साथ-साथ कांग्रेस की ओर से वह वात भी स्पष्ट कर दी गई जो गांधी-अर्विन-समझौते में स्पष्ट, या कहिए सन्देहास्पद,

समझी गई थी। समझौते में प्रयोग किये गये 'संरक्षण' (Reservations) शब्द की जगह 'घटा-चढ़ी' (Adjustments) शब्द रक्खा गया और 'भारत के हित में 'संरक्षण' शब्दों की जगह 'घटा-चढ़ी, जो प्रत्यक्ष रूप से भारत के हित में हो' शब्दों को रक्खा गया। गांधी-अर्विन-समझौते के कारण जो बात कम कर दी गई मानी जाने लगी थी, वह करांची के प्रस्ताव के इन शब्दों से फिर जुड़ गई—अर्थात् अपने देश को सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायें। इस एक वाक्य में कांग्रेस का ध्येय दिया हुआ है। इसके बाद कांग्रेस ने उन सब व्यक्तियों को, खासकर महिलाओं को, बधाई दी जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में महान् कष्ट उठाये थे। कांग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी, जिसमें मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियों व पुरुषों में भेद किया गया हो। अन्य प्रस्ताव तो इतने साफ हैं कि उनपर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उनका सम्बन्ध रचनात्मक कार्यक्रम से है और वे नीचे दिये जाते हैं:—

"भारत-सरकार और कांग्रेस-कार्य-समिति के बीच जो अस्थायी-सन्धि हुई है उसपर विचार करके कांग्रेस उसका समर्थन करती है और यह स्पष्ट कह देना चाहती है कि कांग्रेस का पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करने का उद्देश ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यदि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के किसी सम्मेलन में कांग्रेस के प्रतिनिधियों के जाने के मार्ग में दूसरे प्रकार की रुकावटें न रह जायँ (और कांग्रेस के प्रतिनिधि उस सम्मेलन में शरीक हों), तो कांग्रेस के प्रतिनिधि अपने उसी उद्देश की पूर्ति के लिए प्रयत्न करेंगे—खासकर इसलिए कि अपने देश को सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायें; भारतवर्ष की ब्रिटिश-सरकार ने जो लेन-देन किये हैं उनकी जांच होकर इस बात का निपटारा हो जाय कि भारत और इंग्लैण्ड इन दोनों में से कोई भी जब चाहे तब एक-दूसरे से अलग हो जाय। कांग्रेस के प्रतिनिधियों को इस बात की स्वतन्त्रता रहेगी कि इसमें ऐसी घटा-बढ़ी करें जो भारतवर्ष के हित के लिए प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सिद्ध हो।

"महात्मा गांधी को कांग्रेस गोलमेज-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती है और उनके अतिरिक्त जिन्हें कांग्रेस-कार्य-समिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजी के नेतृत्व में सम्मेलन में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।"

खद्दर और बहिष्कार—"पिछिले दस वर्षों के भीतर सैकड़ों गांवों में काम करने से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो गई है कि साधारण

जनता की गरीवी दिन-दिन वढ़ती जाने का एक कारण यह भी है कि फुरसत के समय के लिए लोगों के पास कोई सहायक-धन्धा न होने से उनको लाचार होकर वेकार रहना पड़ता है, और केवल चर्खा ही ऐसी चीज है जो इस अभाव को व्यापक रूप में पूरा कर सकती है। यह भी देखने में आया है कि चरखा और फलतः खद्दर को भी छोड़ देने के वाद लोग विदेशी या देशी मिल का कपड़ा खरीदते हैं जिससे गांवों का पैसा दो तरह से छीना जाता है—उनकी कमाई भी कम हो जाती है और कपड़े के लिए पास से पैसा भी देना पड़ता है। इस दुहरे धन-शोषण को रोकने का एकमात्र उपाय यही है कि विदेशी कपड़े और सूत का वहिष्कार किया जाय और उनकी जगह खद्दर का उपयोग किया जाय। देशी मिलें केवल आवश्यकतानुसार खद्दर की कमी की पूर्ति करें। अतः यह कांग्रेस सर्व-साधारण से अनुरोध करती है कि विलायती कपड़ा खरीदने से परहेज करें और विलायती कपड़े तथा सूत का रोजगार करने के उस व्यवसाय को छोड़ दें जिससे करोड़ों ग्रामवासी जनता की भारी हानि हो रही है।

"और यह कांग्रेस सम्पूर्ण कांग्रेस-कमिटियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी संस्थाओं को आदेश करती है कि खादी के लिए जोर-शोर से प्रचार शुरू करके विदेशी वहिष्कार को और जोरदार वनावें।

"कांग्रेस रियासतों से अनुरोध करती है कि वे इस रचनात्मक-उद्योग में शामिल हों और विलायती कपड़े तथा सूत को अपनी सीमा के अन्दर न घुसने दें।

"कांग्रेस देशी मिलों के मालिकों से अनुरोध करती है कि वे नीचे लिखे कार्य करके इस महान् रचनात्मक तथा आर्थिक-उद्योग को सहायता पहुँचावें :—

(१) खुद हाथकते सूत का व्यवहार करके ग्रामवासियों के सहायक-धन्धे चरखे को अपनी नैतिक पुष्टि दें।

(२) ऐसा कपड़ा वनाना वन्द कर दें जो किसी प्रकार खद्दर से प्रतियोगिता कर सकता हो और इस विषय में चरखा-संघ की कोशिशों में उसका साथ दें।

(३) अपने माल का दाम जहांतक हो सके कम-से-कम रक्खें।

(४) अपने माल में विलायती सूत, रेशम या नकली रेशम का व्यवहार न करें।

(५) दूकानदारों के पास जो विलायती माल पड़ा हुआ है उसको ले लें और उसके वदले में स्वदेशी माल देकर उन्हें अपने व्यवसाय को स्वदेशी वना लेने में सहायता दें और उनसे लिये हुए विलायती कपड़े को फिर विदेश भेजने का प्रवन्ध करें।

(६) मिल-मजदूरों का दरजा ऊपर उठावें और उन्हें यह समझने का मौका दें, कि वे नफे और नुकसान दोनों में उनके हिस्सेदार हैं।

"बड़े-बड़े विदेशी कोठीवालों को कांग्रेस की यह सूचना है कि यदि वे इस बात को मान लें कि विदेशी वस्त्र का बहिष्कार भारत के आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक है, और ऐसा विदेशी व्यापार छोड़ दें जिसके सम्बन्ध में सबकी यह राय है कि उससे भारतीय-जनता की आर्थिक हानि होती है, तथा ऐसे व्यापार की ओर ध्यान दें, जो उनके अपने हित के सिवा इस राष्ट्र के लिए भी हितकर हों, तो वे अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व को प्रोत्साहन देंगे और व्यापारिक नीति-शास्त्र को भी बहुत अधिक उन्नत करेंगे।"

शान्तिमय-धरना—"विदेशी वस्त्र और मादक द्रव्यों की बिक्री के बहिष्कार में जो सफलता प्राप्त हुई है उसे यह कांग्रेस हर्ष की दृष्टि से देखती है तथा कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा देती है कि शान्तिमय धरने के सम्बन्ध में ढिलाई न करें, बशर्ते कि यह धरना पूरी तौर से समझौते की उन शर्तों के अनुसार हो जो इस सम्बन्ध में सरकार और कांग्रेस में हुआ है।"

बर्मा का पृथक्करण—"कांग्रेस यह स्वीकार करती है कि बर्मा-वासियों को इस बात का अधिकार है कि वे यदि चाहें तो भारतवर्ष से अलग होकर एक स्वतन्त्र बर्मन-राज कायम करें या स्वतन्त्र-भारत का एक पूर्णाधिकार-प्राप्त अंग बनकर रहें और जब चाहें तब उन्हें भारतवर्ष से अलग हो जाने का अधिकार रहे। तथापि बर्मा-वासियों को अपना मत प्रकट करने का पूर्ण अवसर दिये बिना और उनके निर्वाचित-प्रतिनिधियों की इच्छा के विरुद्ध बर्मा को जबरन् भारत से अलग करने की ब्रिटिश-सरकार की चेष्टा की यह कांग्रेस निन्दा करती है। मालूम होता है कि यह प्रयत्न जान-बूझकर इस उद्देश से किया जा रहा है कि वहां ब्रिटिश-प्रभुत्व बना रहे, जिसमें बर्मा और सिंगापुर, जहां मिट्टी का तेल बहुत निकलता है और जो सैनिक-दृष्टि से बड़े महत्त्व का स्थान है, मिलकर पूर्वी-एशिया में ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का मजबूत अड्डा बन जाय। यह कांग्रेस इस नीति का घोर विरोध करती है जिसका नतीजा यह हो कि बर्मा एक ब्रिटिश-शासित देश बना रहे और उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति से ब्रिटिश-साम्राज्य-वादियों का उद्देश सिद्ध होता रहे और इस प्रकार वह स्वतन्त्र-भारत तथा पूर्व के अन्य राष्ट्रों के लिए एक खतरा बना रहे। कांग्रेस चाहती है कि बर्मा की सरकार को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं वे वापस ले लिये जायँ और उसकी यह घोषणा भी रद कर दी जाय, कि बर्मा की प्रतिनिधि-

मूलक और महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय-संस्थायें गैर-कानूनी हैं, ताकि वहां की अवस्था पुनः स्वाभाविक हो जाय और वर्मा के भविष्य पर उसके अधिवासी शान्त वातावरण में विना रोक-टोक के विचार कर सकें और अन्त में वर्मा के अधिवासियों की इच्छा की विजय हो।"

मौलिक अधिकार का प्रस्ताव

यहां यह कह देना वाकी है कि 'मौलिक अधिकारों व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव कार्य-समिति के सामने कुछ यकायक तौर पर पेश हुआ था। यह एक अनुभव से जानी गई वात है कि देश में जैसा वातावरण रहता है उसीके अनुसार कांग्रेस में प्रस्ताव पेश होते हैं। मौलिक अधिकारों का प्रश्न सवसे पहले श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य ने पंजाव के ठिरठिराते हुए जाड़े में आधी रात को अमृतसर-कांग्रेस में उठाया था। जव दूसरे साल नागपुर में कांग्रेस-अधिवेशन के वह स्वयं सभापति वने तो इस प्रश्न को और महत्त्व मिल गया। करांची में युवक-वर्ग तथा प्रौढ़-वर्ग में इस प्रश्न पर कुछ मतभेद-सा था। ऐसे आदमी मौजूद थे जो इस वात पर सन्देह करते हुए नहीं चूकते थे कि क्या अव कांग्रेस 'औपनिवेशिक-स्वराज्य', व्रिटिश-साम्राज्य-वाद व काली नौकरशाही की लहर में फिर नहीं वही जा रही है और मजदूरों व क़िसानों की समस्या व समाजवादी विचार हवा में उड़ रहे हैं? इस विषय पर देश को आश्वासन दिलाने की जरूरत थी। गांधीजी हर विषय पर विचार करने के लिए तैयार थे, यदि वह सत्य व अहिंसा पर अवलम्बित हो, और फिर यह तो गांववालों और गरीव लोगों का विषय था। ऐसी हालत में समाजवादी आदर्श, आर्थिक-परिवर्तन व मौलिक अधिकारों के प्रश्न से हिचकने की उन्हें क्या जरूरत थी?

यह भी सोचा गया कि इतने महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर फुरसत के साथ विचार होना चाहिए था और कार्य-समिति व महासमिति के सदस्यों-द्वारा उसका अध्ययन-मनन होना चाहिए। यह सलाह मान ली गई और इसीलिए महासमिति को अधिकार दिया गया कि प्रस्ताव के सिद्धान्तों व उसकी नीति को आघात पहुँचाये विना उसमें रद्दो-वदल करे। वम्वई में, अगस्त १९३१ में, महासमिति ने मूल-प्रस्ताव में कुछ परिवर्तन किये। उसके वाद उसे जो रूप प्राप्त हुआ उसीमें उस प्रस्ताव को हम नीचे देते हैं:—

"इस कांग्रेस की राय है कि कांग्रेस जिस प्रकार के 'स्वराज्य' की कल्पना करती है उसका जनता के लिए क्या अर्थ होगा—इसे वह ठीक-ठीक जान जाय, इसलिए

यह आवश्यक है कि कांग्रेस अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट करदे जिसे वह आसानी से समझ सके । साधारण जनता की तबाही का अन्त करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता में लाखों भूखों मरनेवालों की वास्तविक आर्थिक स्वतन्त्रता भी निहित हो। इसलिए यह कांग्रेस घोषित करती है कि उसकी ओर से स्वीकृत होनेवाले किसी भी शासन-विधान में नीचे लिखी बातों की व्यवस्था रहनी चाहिए, या स्वराज्य-सरकार को इस बात का अधिकार होना चाहिए कि वह उनकी व्यवस्था कर सके :—

मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य—१. (१) भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक विषय में, जोकि कानून और सदाचार के विरुद्ध न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थायें और संघ बनाने और बिना हथियार के और शान्ति-पूर्वक एकत्र होने का अधिकार है।

(२) भारत के प्रत्येक नागरिक को, अन्तरात्मा का अनुसरण करने और सार्वजनिक शान्ति और सदाचार में बाधक न होनेवाले, धार्मिक विश्वास और आचरण की स्वतन्त्रता है।

(३) अल्पसंख्यक जातियों और भिन्न-भाषा-भाषी वर्ग की संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) भारत के सब नागरिक, कानून की दृष्टि में बिना किसी धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के भेद-भाव के समान हैं।

(५) सरकारी नौकरियों, अधिकार और सम्मान के ओहदों और किसी भी व्यापार या धन्धे के करने में किसी भी नागरिक स्त्री-पुरुष को धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के कारण अयोग्य नहीं ठहराया जायगा।

(६) सरकारी अथवा सार्वजनिक खर्च से बने अथवा नागरिकों-द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित कुओं; सड़कों, पाठशालाओं और सार्वजनिक आवागमन के स्थानों के सम्बन्ध में सब नागरिकों के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं।

(७) हथियार रखने के सम्बन्ध में बनाये गये नियम और मर्यादा के अनुसार प्रत्येक नागरिक को हथियार रखने और धारण करने का अधिकार है।

(८) कानूनी आधार के बिना किसी तरह किसी भी मनुष्य की स्वतन्त्रता न छीनी जायगी, और न किसीके घर और जायदाद में प्रवेश और कुर्की या जब्ती की जायगी।

(९) सरकार सब धर्मों के प्रति तटस्थ रहेगी।

(१०) बालिग उमर के तमाम मनुष्यों को मताधिकार होगा।

(११) राज्य मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(१२) सरकार किसी को खिताब न देगी।

(१३) मौत की सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारत का प्रत्येक नागरिक भारत-भर में भ्रमण करने, उसके किसी भाग में ठहरने या बसने, जायदाद ख़रीदने और कोई भी व्यापार या धंधा करने में स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई और रक्षा के विषय में, भारत के सब भागों में, उसके साथ समानता का व्यवहार होगा।

श्रमिक—२. (अ) आर्थिक जीवन के संगठन में न्याय के सिद्धान्त अवश्य सन्निहित होने चाहिएँ कि जिससे जीवन-निर्वाह का एक उपयुक्त स्टैण्डर्ड प्राप्त हो जाय।

(ब) सरकार कारख़ानों के मजदूरों के स्वार्थों की रक्षा करेगी और उपयुक्त कानून-द्वारा एवं अन्य उपायों से उनके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, काम के लिए आरोग्यप्रद परस्थिति, मजदूरी के घण्टों की मर्यादा, मालिकों और मजदूरों के बीच के झगड़ों के निपटारे के लिए उपयुक्त साधन और बुढ़ापा बीमारी तथा बेकारी के आर्थिक परिणामों के विरुद्ध रक्षा का उपाय करेगी।

३. दासत्व या लगभग दासत्व-जैसी दशा से मजदूर मुक्त होंगे।

४. मजदूर-स्त्रियों की रक्षा और प्रसूति-काल के लिए पर्याप्त छुट्टी का विशेष प्रबन्ध होगा।

५. स्कूल में जा सकने योग्य आयु के लड़के खानों और कारखानों में नौकर न रक्खे जायँगे।

६. किसान और मजदूरों को अपने हितों की रक्षा के लिए संघ बनाने के अधिकार होंगे।

कर और व्यय—७. जमीन की मालगुजारी और लगान का तरीका बदला जायगा और छोटे किसानों को वर्तमान कृषि-कर और मालगुजारी में तुरन्त और यदि आराजी से लाभ न होता हो तो आवश्यक समय तक के लिए छूट देकर या उससे मुक्त करके कृषकों के बोझ का न्याययुक्त निपटारा किया जायगा, और इसी उद्देश से लगान-अदायगी की उक्त मुक्ति और भूमि-कर की कमी से छोटी जमीनों

के मालिकों को होनेवाली हानि की पूर्त्ति एक निश्चित तादाद से अधिक की भूमि की मूल आय पर क्रमशः बढ़नेवाला कर लगाकर की जायगी।

८. एक न्यूनतम निश्चित रकम के अलावा की जायदाद पर क्रमागत विरासत कर लिया जायगा।

९. फौजी खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी, जिससे कि वर्त्तमान व्यय से वह कम-से-कम आधा रह जायगा।

१०. मुल्की विभाग के व्यय और वेतन में बहुत कमी की जायगी। खास तौर पर नियुक्त किये गये विशेषज्ञ अथवा ऐसे ही व्यक्ति के सिवा राज्य के किसी भी नौकर को, एक निश्चित रकम के सिवा, जोकि आमतौर पर ५००) मासिक से अधिक न होनी चाहिए, अधिक वेतन न दिया जायगा।

११. हिन्दुस्तान में बने हुए नमक पर कोई कर नहीं लिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम—१२. राज्य देशी कपड़े की रक्षा करेगा; और इसके लिए ब्रिटिश वस्त्र और सूत को देश में न आने देने की नीति और आवश्यक अन्य उपायों का अवलम्बन करेगा। राज्य अन्य देशी धन्धों की भी, जब कभी आवश्यक होगा, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करेगा।

१३. औषधियों के काम के सिवा, नशीले पेय और पदार्थ सर्वथा बन्द कर दिये जायँगे।

१४. हुंडावन और विनिमय का नियंत्रण राष्ट्र-हित के लिए होगा।

१५. मुख्य उद्योगों और विभागों, खनिज साधनों, रेलवे, जल-मार्ग, जहाजरानी और सार्वजनिक आवागमन के अन्य साधनों पर राज्य अपना अधिकार और नियंत्रण रक्खेगा।

१६. कृषकों के ऋण से उद्धार के उपाय और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लिये जानेवाले ऊँचे दर के ब्याज पर सरकार का नियंत्रण होगा।

१७. नियमित सेना के सिवा, राष्ट्र-रक्षा का साधन संगठित करने के लिए राज्य नागरिकों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।"

कुछ और भी प्रस्ताव पास किये गये थे। एक प्रस्ताव में साम्प्रदायिक दंगों की निन्दा करते हुए दंगों की बर्बरता के शिकार परिवारों से सहानुभूति प्रकट की गई थी। मद्य-निषेध को जारी रखने की दूसरे प्रस्ताव में अपील की गई थी। भारत-सरकार की सीमा संबंधी नीति की निन्दा एक प्रस्ताव द्वारा करके अन्य प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की गई थी कि कांग्रेस की सम्मति में सीमा प्रान्त को भी अन्य प्रान्तों

के समान शासन-अधिकार मिलने चाहिये। एक प्रस्ताव अफ्रीकाप्रवासी भारतीयों के वारे में था।

गांधीजी—एकमात्र प्रतिनिधि

गांधी-अर्विन समझौते की सफलता व इससे भी अधिक करांची के प्रस्तावों की सफलता गांधीजी व कांग्रेस के भारी वोझों को और भी अधिक वोझीला वनाती गई। करांची-कांग्रेस में एक-दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न ऐसे रह गये थे जिन्हें वह नहीं निवटा सकी थी और जिन्हें उसने कार्य-समिति व महा-समिति के लिए छोड़ दिया था। सिक्खों ने राष्ट्रीय झण्डे व उसमें उनके लिए समाविष्ट किये जानेवाले रंग के प्रश्न को उठाया। यह प्रश्न पहले लाहौर में भी उठाया जा चुका था, करांची में इसे और भी अधिक महत्त्व मिला। चूंकि कांग्रेस का अधिवेशन ऐसी तफसील पर विस्तार-सहित विचार नहीं कर सकता था, उसे कांग्रेस की कार्य-समिति के सुपुर्द किया गया। नई कार्य-समिति ने, जिसकी वैठकें १ व २ अप्रैल को हरचन्द्रराय-नगर में हुईं, इस आपत्ति की जांच कराने के लिए कि राष्ट्रीय-झण्डे के रंग साम्प्रदायिक आधार पर निर्धारित किये गये हैं अथवा नहीं, और यह सिफारिश करने के लिए कि कांग्रेस कौनसा झण्डा स्वीकृत करे, एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय किया। कमिटी को गवाहियां लेने का अधिकार दिया गया और जुलाई १९३१ से पहले उसकी रिपोर्ट मांगी गई। दूसरा विषय जिसपर करांची में कांग्रेसी क्षुब्ध हो रहे थे, वह जोरों से फैली व उड़ती हुई यह खवर थी कि स्वर्गीय सरदार भगतसिंह और श्री राजगुरु व सुखदेव की लाशों को चीर-फाड़ डाला गया था, उन्हें ठीक तरह नहीं जलाया गया और उनके साथ अन्य अपमानजनक व्यवहार किया गया। इन अभियोगों की फौरन जांच करने के लिए और ३० अप्रैल से पहले-पहले अपनी रिपोर्ट कार्य-समिति को पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। यहां हम यह कह देना चाहते हैं कि यह कमिटी खास तौर पर भगतसिंह के पिता के आग्रह पर नियुक्त की गई थी, लेकिन न तो उन्होंने इस सम्वन्ध में कोई शहादत पेश की और न खुद कमिटी के सामने पेश हुए और न कमिटी को और किसी प्रकार की सहायता कर सके। इसलिए कमिटी कुछ भी न कर सकी। हम यह वता चुके हैं कि कांग्रेस ने किस प्रकार जल्दी में 'मौलिक अधिकार व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव पास किया था। इसलिए प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों तथा अन्य संस्थाओं व व्यक्तियों से उक्त प्रस्ताव पर सम्मतियां प्राप्त करने और ३१ मई तक अपनी रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी

नियुक्त की, जिससे कि प्रस्ताव को अधिक पूर्ण और विस्तृत बनाया जा सके और उसमें आवश्यक परिवर्तन व संशोधन किये जा सकें। हम देख चुके हैं कि कांग्रेस वर्षों से इस बात पर जोर देती आई है कि ब्रिटेन ने भारत में जो खर्चे किये हैं व उसके लिए जो कर्जे लिये हैं उनकी एक निष्पक्ष पंच-द्वारा जांच हो। इस विषय पर जो वाद-विवाद व द्वन्द्व होना लाजिमी था उसके लिए अपने तीर-तरकस तैयार रखना जरूरी ही था। इसलिए ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी व ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत में किये गये आर्थिक खर्चों व भारत के राष्ट्रीय कर्जे की छान-बीन करने के लिए और इस बात की रिपोर्ट पेश करने के लिए कि भविष्य में भारत कितना आर्थिक बोझा सहे, कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी से प्रार्थना की गई कि मई के अन्त तक वह अपनी रिपोर्ट पेश करे। एक कमिटी और भी नियुक्त की गई—वास्तव में यह केवल कमिटी नहीं थी बल्कि एक शिष्ट-मण्डल था—जिसके गांधीजी, वल्लभभाई व सेठ जमनालाल बजाज सदस्य थे। यह शिष्ट-मण्डल इसलिए नियुक्त किया गया था कि वह साम्प्रदायिक समस्या को निबटाने के लिए मुसलमान नेताओं से मिले। कांग्रेस के तीसरे प्रस्ताव के अनुसार जिन राजबन्दियों की रिहाई चाही गई थी उनके बारे में सब प्रान्तों से सामग्री एकत्र करने के लिए श्रीनरीमैन को नियुक्त किया गया। अपनी बैठक समाप्त करने से पूर्व सबसे अन्त में कार्य-समिति ने जिस प्रश्न को निबटाया वह था गोलमेज-परिषद् को भेजे जाने-वाले कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का। कार्य-समिति के कई सदस्यों की राय थी कि शिष्ट-मण्डल केवल एक व्यक्ति का न हो किन्तु लगभग १५ सदस्यों का हो। सरकार तो २० सदस्यों तक के लिए खुशी से राजी थी। उसकी दृष्टि से तो एक सदस्य के बजाय १५ या २० सदस्यों का होना ही अधिक लाभदायक था। जब कार्य-समिति में विवाद चला तो यह बात साफ कर दी गई कि गांधीजी लन्दन शासन-विधान की तफसीलें तय करने के लिए नहीं बल्कि सन्धि की मूल बातें तय करने के लिए जा रहे हैं। जब यह बात साफ करदी गई तो मतभेद दूर हो गया और सदस्यों की यह सर्वसम्मत राय बन गई कि भारत का प्रतिनिधित्व केवल गांधीजी को करना चाहिए। यह निर्णय केवल सर्वसम्मत ही नहीं था बल्कि इसमें किसी कोई उज्र भी न था; क्योंकि भारत का प्रतिनिधित्व कई व्यक्तियों के बजाय एक व्यक्ति करे, यह ज्यादा अच्छा था। यह कांग्रेस के लिए एक महान् नैतिक लाभ भी था, क्योंकि जैसे युद्ध-संचालन में उसने एकता का परिचय दिया वैसे ही सन्धि की शर्तें तय करने में यह उसके नेतृत्व की एकता का परिचायक था। कांग्रेस का नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना ही, जिसका निज का

कोई स्वार्थ न हो और जिसे मनुष्य-जाति की प्रसन्नता, उसके सद्भाव व उसकी शान्ति के अलावा और कोई भौतिक इच्छा न हो, नैतिक-क्षेत्र में स्वयं एक ऐसा लाभ था जिसका ठीक मूल्य आंकना कठिन है। इस तरह भारत का एक अर्ध-नग्न फकीर न केवल वाइसराय-भवन (दिल्ली) की सीढ़ियां चढ़ता-उतरता था बल्कि ठेठ सेंट जेम्स पैलेस-भवन में भी बराबरी के नाते सन्धि-चर्चा करने बैठा था। ब्रिटेन की प्रतिष्ठा को इससे क्या कम धक्का पहुँचा होगा?

: २ :

समझौते का भंग

समझौता और उसके बाद

संघर्ष व संग्राम का समय खतम हो गया था। जिन कांग्रेस-कमिटियों की कल तक कोई हस्ती न थी, वे उन वृक्षों की तरह सब स्थानों पर फिर अपनी बहार पर आ गईं, जो पहले मुरझाये और सूखे हुए दीखते हैं लेकिन वसन्त में फिर हरे-भरे हो जाते हैं। एक बार फिर कांग्रेसी-झण्डा कांग्रेस के दफ्तरों व कांग्रेसियों के घरों पर लहराने लगा। कांग्रेस के अधिकारी एक बार फिर पुलिस से एक-एक कागज और कपड़े को वापस लेने का दावा करने लगे, जो पहले जब्त कर लिये थे और उनसे ले लिये गये थे। एक बार फिर स्वयंसेवक-गण बिल्ले, तमगे और पेटी लगाये अपनी अर्ध-सैनिक या राष्ट्रीय पोशाक में झण्डे हाथ में लिये माला पहने राष्ट्रीय गीत गाते हुए जुलूस निकालने लगे, एक क्षण पूर्व जिनका निकालना निषिद्ध था।

सबसे बढ़कर कांग्रेस के लोग, छोटी-छोटी बालिकायें और बालक, वयस्क स्त्री-पुरुष शराब और विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटिंग लगाकर लोगों को शराब न पीने और विदेशी कपड़े से तन न ढकने की शिक्षा देने लगे। और ये सब बातें उसी सिपाही की आंख के सामने होने लगीं जो कल इन लोगों पर भेड़िये की तरह टूटता था, लेकिन आज वह कुछ कर न सकता था। पुलिस के निम्न कर्मचारी इतने आत्म-समर्पण से सन्तुष्ट नहीं थे। मजिस्ट्रेटों की भी कृपा-दृष्टि इसपर न थी। सिविलियन भी यह अनुभव कर रहे थे कि उनकी पगड़ी गिर गई है और नौकरशाही सरकार यह समझ रही थी कि उसने तो सब कुछ खो दिया है। कानून और अमन के ठेकेदार बननेवाले निराशा और पराजय का अनुभव कर रहे थे। कैदी रोज छोड़े जा रहे थे, उन्हें मालायें पहनाई जाती थीं, उनके जुलूस निकाले जाते थे। वे भाषण देते थे। उनके भाषणों में सदा ही विवेक नहीं वर्ता जाता था; और न शायद नम्रता ही रहती थी। अब उनके व्याख्यानों में विजय की ध्वनि और ललकार की भावना होती थी। कांग्रेस का लोहा मानने की नौबत आ गई थी। कांग्रेस के पदाधिकारी एक स्थान पर एक कैदी की रिहाई की मांग करते थे तो दूसरी जगह जायदाद वापसी की मांग करते थे और तीसरी जगह

किसी सरकारी नौकर को फिर वहाल करने पर जोर देते थे। १८ अप्रैल को लॉर्ड अर्विन ने भारत से प्रस्थान किया और गांधीजी ने वम्बई में उन्हें विदाई दी। वाइसराय-भवन के व्यक्ति वदल गये। नये वाइसराय पुरानी दोस्तियों और वायदों से नावाकिफ थे। लॉर्ड अर्विन ने यदि शोलापुर के कैदियों को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो क्या? यदि उन्होंने नजरवन्दों के मामले पर एक-एक करके गौर करने का वायदा कर लिया था, तो क्या? यदि वाइसराय ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलक्टरों की पेंशनें व प्राविडेन्ट-फन्ड, जिन्होंने गुजरात में इस्तीफा दे दिया था, वापस जारी करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो उससे क्या? यदि लॉर्ड अर्विन ने वारडोली की वेची गई जायदाद को वापस करने के लिए प्रान्तीय सरकार को लिखने का वचन दे दिया था, तो उससे नई सरकार को क्या? यदि लॉर्ड अर्विन ने यह वायदा कर लिया था कि मेरठ-षड्यन्त्र के अभियुक्तों की सजा में वह समय भी शामिल कर लिया जायगा, जो मुकदमे के दौरान में वे भुगत रहे हैं, तो उससे क्या?

अधिकारियों की कुचेष्टायें

लॉर्ड अर्विन भारत से १८ अप्रैल को विदा हुए। इससे पहले दिन १७ अप्रैल को लॉर्ड विलिंगडन ने चार्ज लिया था। वाइसराय आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन सेक्रेटेरियट वही रहता है। जिलों पर शासन करनेवाले सिविलियन ही दरअसल वाइसराय होते हैं। २ नवम्वर १९२९ के दिल्लीवाले वक्तव्य पर हस्ताक्षर करनेवालों ने जब यह लिखा था कि शासन-प्रवन्ध की स्पिरिट उसी दिन से वदल जानी चाहिए, तब उनके दिल में भारत-सरकार के प्रजातंत्रीकरण का और सिविलियन कलक्टरों के निरंकुश शासन से मुक्त हो जाने का भाव था। परन्तु यह स्पिरिट एक वर्ष के संग्राम के वाद भी न वदली और न गांधी-अर्विन-समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के वाद ही वदली। देश के हाकिमों ने समझौते को अपनी हतक-इज्जत समझा। सभी जगह वस्तुतः एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। रोजमर्रा कांग्रेस के दफ्तरों में यह शिकायतें आने लगीं कि समझौते की शर्तों का ठीक पालन नहीं होता। अपनी ओर से कांग्रेस अपने पर लगाई शर्तों के पालन के लिए चिन्तित थी। वे शर्तें मुख्यतः पिकेटिंग और वहिष्कार-प्रचार में ब्रिटिश माल को शामिल न करने की थीं। यदि कहीं इन शर्तों के पालन में शिथिलता आती थी, तो सरकार के कर्मचारी कांग्रेसियों की चौकी पर थे। कांग्रेसी लोग इधर-उधर और किसी अन्य स्थान पर होनेवाले लाठी-प्रहार की, जो अव भी जारी था, उपेक्षा करते जाते थे। गुन्तूर में समझौते पर हस्ताक्षर होने के वाद भी

पुलिस इससे वाज न आई। पूर्वी गोदावरी में वादपल्ली में बहुत दुःखद गोली-काण्ड हुआ था, जिसमें चार आदमी मर गये और कई घायल हो गये। यह गोली-काण्ड महज इसलिए हुआ था कि लोगों ने एक मोटर पर गांधीजी का चित्र रक्खा था और पुलिस इसपर ऐतराज करती थी। स्थिति शीघ्र ही खेदजनक और असमर्थनीय गोली-काण्ड में बदल गई। लाठियां और गोलियां चला देना पुलिस का स्वभाव ही हो गया था। वे इसके विना रही नहीं सकते थे। पर ऐसी ज्यादतियां आम वात हो गई हों सो नहीं; लेकिन जो थोड़ी-वहुत ऐसी घटनायें हुईं, वे भी ऐसी स्थितियों में हुईं जिनका पुलिस के पास कोई जवाव नहीं हो सकता।

जव कांग्रेस ने अस्थायी संधि की, तब वह इस उम्मीद में थी कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में भी एक समझौता हो जायगा और सरकार भी इस दिशा में हमारी मददगार होगी। लेकिन ये सव उम्मीदें नाकामयाव हुईं। गांधीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि यहां हिन्दू-मुस्लिम-समझौता हुए विना लन्दन जाने की वनिस्वत भारत में ही रहना अधिक उपयुक्त है। फिर भी, कार्य-समिति ९, १० और ११ जून १९३१ को वैठी और, गांधीजी की इच्छा न होते हुए भी, मुसलमान मित्रों के आग्रह से उसने ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया :—

"समिति की यह सम्मति है कि दुर्भाग्य से यदि इन प्रयत्नों में सफलता न मिले तो भी कांग्रेस के रुख के सम्वन्ध में किसी तरह की गलतफहमी फैलने की सम्भावना से वचने के लिए महात्मा गांधी गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व करें, यदि वहां कांग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

कार्य-समिति को यह उम्मीद थी कि यदि भारत में नहीं तो इंग्लैण्ड में अवश्य समझौता हो जायगा।

अस्थायी सन्धि की शर्तों के पालन के विषय की ओर लौटने से पहले कार्य-समिति की जून मास की वैठक की कार्रवाई का आशय दे देना ठीक होगा। मौलिक-अधिकार-उप-समिति और सार्वजनिक ऋण-समिति की रिपोर्ट आने की मियाद वढ़ा दी गई। मिल के सूत से वने कपड़े के व्यापारियों तथा ऐसे करघों को प्रमाण-पत्र देने की प्रथा को, जो पिछले दिनों वहुत वढ़ गई थी, वन्द कर दिया गया। कुछ कांग्रेस-संस्थायें विदेशी कपड़े के वर्तमान स्टाक को वेचने की इजाजत दे रही थीं। इनको वुरा वताया गया। श्रीनरीमैन से कहा गया कि एक सूची उन कैदियों की तैयार करें जोकि अस्थायी सन्धि की शर्तों के अन्दर नहीं आते हैं, और उसे गांधीजी को पेश करें। कपड़ों के सिवा अन्य वस्तुओं को प्रमाणपत्र देने के लिए एक स्वदेशी वोर्ड वनाया जाने

को था। चुनाव के कुछ झगड़ों (बंगाल और दिल्ली) पर भी ध्यान दिया गया। १८८५ से अवतक के कांग्रेस के प्रस्तावों का हिन्दी-अनुवाद करने के लिए २५०) रु० स्वीकृत किये गये।

गांधीजी की चेतावनी

अव हम अस्थायी सन्धि और उसकी शर्तों के पालन की कहानी पर आते हैं। कांग्रेस की नीति विलकुल रक्षणात्मक थी। गांधीजी ने सारे देश के कांग्रेसियों को आप होकर झगड़ा न शुरू करने की पर साथ ही राष्ट्रीय आत्म-सम्मान पर चोट भी न सहने की सख्त चेतावनी दी थी। गांधीजी पस्त-हिम्मती के भारी शैतान को दूर रखना चाहते थे। वह भय और असहायता पर हावी होने का सदा आग्रह करते रहे। उनकी नसीहतों का आशय इस प्रकार है :—

"यदि वे समझौते का सम्मान-पूर्वक पालन असम्भव कर देते हैं, यदि वे चीजें जो स्वीकृत कर ली गई हैं देने से इन्कार कर दिया जाता है, तो यह इस वात की स्पष्टतम चेतावनी है कि हम भी रक्षणात्मक उपाय करने के अधिकारी हैं। जैसे वे मदरास में कहते हैं—तुम ५ पिकेटरों से अधिक नहीं खड़ा कर सकते। मैं पहले कह चुका हूँ—इस समय मान लो; लेकिन इसके वाद हम नहीं मानेंगे, हम प्रत्येक प्रवेश-द्वार पर पांच पिकेटर नियुक्त करेंगे। लेकिन तुम्हें यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि यह नौ दिन का तमाशा होगा, या तो वे लौट जायँगे या फिर आगे वढ़ेंगे। हम कोई नई स्थिति अपने-आप पैदा नहीं करते, लेकिन हमें अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर झण्डाभिवादन रोक दिया जाता है तो हम इसे सहन नहीं कर सकते और हमें इसपर जरूर अड़े रहना चाहिए। यदि एक जुलूस रोक दिया जाता है, तो हमें उसके लिए लाइसेन्स की प्रार्थना करनी चाहिए; और यदि वह नहीं दिया जाता, तो हमें जुलूस न निकालने की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। लेकिन जहां मासिक झण्डाभिवादन और सार्वजनिक सभा का मामला हो, हमें प्रतीक्षा—इजाजत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए और न इसके लिए दरख्वास्त ही देनी चाहिए। हमें असहायता और उससे उत्पन्न होनेवाली पस्त-हिम्मती को दूर करना चाहिए।

"करवन्दी-आन्दोलन के वारे में, तुम इसकी इजाजत दे सकते हो, लेकिन इसे अपने कार्यक्रम में शामिल नहीं कर सकते। वे इसे खुद अपने हाथ में लेंगे और अपने मित्रों को भी इस आन्दोलन में ले आवेंगे। जव ऐसा होगा, तव आर्थिक प्रश्न

वन जायगा; और जव यह् आर्थिक प्रश्न वन जाय, जनता इस आन्दोलन की ओर खिंच जायगी।"

जगह-जगह सन्धि-भंग

सरकार की ओर से वहुत सहानुभूति दिखाई गई और लॉर्ड विलिंगडन ने मीठे शब्दों की भी कमी न रक्खी। ऐसा कोई कारण न था कि उनके वचनों की सच्चाई पर सन्देह किया जाता। लेकिन यह जानने में अधिक समय न लगा कि वाइसराय की हवाई वातों से जो ऊँची आशायें की गई थीं, वे सव झूठी हैं। जुलाई के पहले सप्ताह में गांधीजी के दिल में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि क्या यह सव टूट और गिर तो नहीं रहा है?

युक्तप्रांत सुलतानपुर में ६० आदमियों पर दफा १०७ ताजिरात हिन्द में मुकदमा चलाया गया था। भवन शाहपुर में ताल्लुकेदार ने किसानों को राष्ट्रीय झण्डा हटा लेने का हुक्म दिया और उनके इन्कार करने पर उन्हें हवालात में विठा दिया। एक जिला-कांग्रेस-कमिटी के सव प्रमुख सदस्यों पर १४४ दफा की रू से नोटिस दे दिये गये। मथुरा में एक थानेदार ने सार्वजनिक सभा को जवरदस्ती भंग कर दिया। लखनऊ की एक खवर थी कि उन दिनों ७०० मुकदमे चल रहे थे। देश-भर में जिन अध्यापकों व अन्य सरकारी नौकरों को अलग कर दिया गया था, या जिन्होंने स्वयं इस्तीफा दे दिया था, उन्होंने चाहा कि वे फिर नियुक्त हों, लेकिन कई मामलों में कोई सुनवाई न हुई। कॉलेजों में दाखिले की इजाजत मांगनेवाले विद्यार्थियों से यह वचन लिया गया कि वे भविष्य में किसी आन्दोलन में भाग न लेंगे। विचारी में लारी-भरे पुलिस-सिपाहियों ने कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के घरों पर छापा मारा, स्त्रियों का अपमान किया और राष्ट्रीय झण्डों को जला दिया। वारावंकी में जिला-मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इंसपेक्टरों को १४४ धारावाले कोरे आर्डर अपने दस्तखत करके दे दिये। डिप्टी कमिश्नर ने गांधी-टोपियों को उतरवा दिया और लोगों को गांधी-टोपी न पहनने व कांग्रेस में न जाने की चेतावनी दी गई। युक्तप्रान्त के विविध जिलों में यही कहानी दोहराई गई। कुछ ताल्लुकेदारों ने अपने क्रूरतापूर्ण उपायों के द्वारा सरकार को सहयोग का आश्वासन दिया। सशस्त्र पुलिस गांववालों को भयभीत करने लगी। एक जागीर के प्रवन्धकर्त्ता जिलेदार व उसके आदमी ने एक शख्स को पीट-पीट कर मार दिया। किसानों को 'मुर्गा' वनाने (मुर्गा वनाकर खड़ा करने) की प्रथा आम वात हो गई। हिसार (पंजाव) के चौताला में और नौशेरा से ताज़ीरी पुलिस नहीं हटाई गई।

एक पेंशनयाफ्ता फौजी सिपाही की पेंशन जब्त कर ली गई। तरुतन में शान्त जुलूस पर लाठी बरसाई गई। छावनियों में राजनैतिक सभायें बन्द कर दी गईं।

बम्बई—अहमदाबाद, अंकलेश्वर और रत्नागिरि जिलों में गैर-लाइसेन्स-शुदा शराब की दूकानों पर और गैर-लाइसेन्स-शुदा घण्टों में शान्तिमय पिकेटिंग की आज्ञा नहीं दी गई। कैदी भी नहीं छोड़े गये। वलसाड़ में पांच आदमियों से इसलिए जुरमाना मांगा गया कि सत्याग्रह-संग्राम के दिनों में उन्होंने स्वयंसेवक-कैम्प के लिए अपनी जमीन दे दी थी। जबतक जुरमाना वसूल न हुआ, जमीनें नहीं दी गईं। अस्थायी सन्धि के बहुत दिनों बाद भूल से एक साल्ट-कलक्टर ने एक नाव बेच दी थी, वह भी वापस नहीं की गई और न मालिक को कोई मुआवजा दिया गया। नवजीवन-प्रेस नहीं दिया गया। कर्नाटक में पश्चिमी जमीनें तबतक वापस नहीं की गईं, जबतक यह वचन नहीं ले लिया कि आगे वे आन्दोलन में भाग न लेंगे। कई पटेल और तलाटी फिर बहाल नहीं किये गये। दो डिप्टी-कमिश्नरों को, जिन्होंने इस्तीफा दे दिया था, पेन्शन नहीं दी गई, यद्यपि लॉर्ड अर्विन वचन दे चुके थे। दो डाक्टरों व एक सुपरवाइजर को बहाल नहीं किया गया। आठ लड़कियों तथा ११ बालकों को सदा के लिए सरकारी स्कूलों से 'रस्टिकेट' कर दिया। इसी तरह अंकोला में चार विद्यार्थी निकाल दिये गये। सिरसी व दिसापुर ताल्लुकों में किसानों पर सख्तियां और ज्यादतियां शुरू की थीं—उनकी केवल कृषि-सम्बन्धी कुछ शिकायतें दूर की गईं।

बंगाल में वकीलों व बैरिस्टरों से 'आयन्दा ऐसा न करने का' वचन लेने से एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई। नवें आर्डिनेन्स के मातहत एक जब्त आश्रम वापस नहीं लौटाया गया। गोहाटी में विद्यार्थियों से ५०)-५०) की जमानतें मांगी गईं। जोरहट में सुपरिन्टेण्डेण्ट बार्टली की आज्ञा से १९ जून को प्रभात-फेरी करनेवाले लड़कों को पीटा गया।

दिल्ली—विद्यार्थियों से आगे के लिए वायदे लिये गये।

अजमेर-मेरवाड़ा—कई अध्यापकों को सहायता-प्राप्त स्कूलों में जगह न देने का हुक्म निकाला गया।

मदरास—१२ जुलाई को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई और अफसरों को भेजी गई कि अस्थायी संधि के शान्तिमय पिकेटिंग में 'स्लिकारी साल' पर पिकेटिंग शामिल नहीं है। तंजोर के वकीलों पर शराब की दूकानों की पिकेटिंग न करने के लिए १४४ दफा की रू से नोटिस तामील किये गये। पिकेटिंग करते हुए स्वयंसेवकों को ताड़ी की दूकान से १०० गज के अन्दर खड़ा रहने की आज्ञा न थी। उनपर बनावटी

अभियोग लगाये गये। अनेक स्थानों पर उन्हें पीटा गया और झण्डा व छाता रखने से भी रोका गया। लोगों को यह चेतावनी दी गई कि उन्हें (स्वयंसेवकों को) पानी न दिया जाय। एलोर में कपड़े की दुकानों पर पिकेटरों की संख्या एक या दो तक सीमित कर दी गई। कोमलपट्टी में जहां पिकेटरों की संख्या ५ तक सीमित की गई थी, उनपर मई में मुकदमा चलाया गया। कोयम्बटूर में उनकी संख्या ६ तक बांध दी। गुन्तूर में आंध्र के एक ऑनरेरी असिस्टैण्ट सर्जन को कहा गया कि तुम तबतक बहाल नहीं किये जाओगे, जबतक सरकार-विरोधी आन्दोलन के लिए क्षमा न मांग लो। आन्दोलन में भाग लेने के कारण जो बन्दूकें और उनके लाइसेन्स जब्त किये गये थे, उनमें से बहुत-से नहीं लौटाये गये। बहुत-से कैदी नहीं छोड़े गये, हालांकि वे एक ही गवाही के कारण अन्य ऐसे कैदियों के साथ गिरफ्तार किये गये थे जो छोड़ दिये गये। शोलापुर के मार्शल-लॉ कैदियों की रिहाई की निश्चित प्रतिज्ञा लॉर्ड अर्विन कर गये थे, लेकिन फिर भी वे न छोड़े गये।

परन्तु बारडोली में सरकार ने अस्थायी संधि का जो स्पष्ट भंग किया, उसके सामने ये सब बातें भी फीकी पड़ जाती हैं। पाठकों को यह याद होगा कि इस ताल्लुके में लगानबन्दी का आन्दोलन था। नई मालगुजारी २२ लाख रुपये देनी थी, जिसमें से २१ लाख रुपये दे दिये गये। हम नीचे गांधीजी की शिकायत और सरकार के जवाब में से कुछ उद्धरण देते हैं:—

शिकायत और जवाब

शिकायत—"बारडोली में नये साल की मालगुजारी २२ लाख रुपये में से २१ लाख रुपये दे दिये गये हैं। यह दावा किया जाता है कि इस अदायगी के जिम्मेवार कांग्रेसी-कार्यकर्त्ता हैं। यह सब जानते हैं कि जब उन्होंने मालगुजारी इकट्ठी करनी शुरू की, तब उन्होंने किसानों को कहा कि उन्हें पूरी मालगुजारी—इस साल की और पिछली—चुकानी है। अधिकांश किसानों ने यह जाहिर किया है कि वे नई मालगुजारी भी मुश्किल से चुका सकते हैं। अधिकारियों ने पहले तो संकोच किया और कुछ समय तक तो अधूरा लगान लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया, पर उसके बाद हिचकिचाते हुए अदायगी मंजूर कर लीं और नये लगान के हिसाब में रसीदें दे दीं। अब जो लगान देने में असमर्थता प्रकट करते हैं, उनसे नया या पिछला लगान मांगना कार्यकर्त्ताओं और लोगों के साथ विश्वास-घात है। जहांतक बकाया का ताल्लुक है, हमें यह कहना है कि यदि मुल्तवी बकाया पदार्थों के दाम कम हो जाने के कारण मुल्तवी कर दिया

गया है, तो फिर गैर-मुल्तवी वकाया को स्थगित कर देने के तो और भी जवरदस्त कारण हैं, क्योंकि सत्याग्रही किसानों को पदार्थों के मूल्य में कमी के सिवा प्रवास (खेत छोड़कर दूसरे इलाकों में जाने) की वजह से भी सख्त नुकसान पहुँचा है। इस नुकसान का अन्दाजा लगाकर अधिकारियों के पास भेज भी दिया गया है। फिर कांग्रेसी-कार्यकर्त्ताओं ने तो यहां तक कह दिया है कि जिस मामले में सन्देह हो ,उसकी अधिकारी फिर जांच कर सकते हैं। परन्तु इस वात को वे जरूर वुरा समझते हैं कि किसानों को दवाया जाय, जुरमाना किया जाय और पुलिस जाकर लोगों के घरों को घेर ले।"

प्रान्तीय सरकार का उत्तर—"(वम्वई) हम यह नहीं मानते कि देने में असमर्थता प्रकट करनेवालों से नया या पिछला लगान मांगना कार्यकर्त्ताओं और जनता के साथ विश्वास-घात है। असमर्थता सिद्ध होनी चाहिए, केवल कहने से काम नहीं चलता। गैर-मुल्तवी वकाया के साथ भी मुल्तवी वकाया का-सा व्यवहार होना चाहिए, इस दलील में भी कोई जोर नहीं है। सरकार तभी वकाया मंजूर करती है, जवकि फसल, जिसपर लगान देना हो, पूरी या अधूरी खराव हो गई हो और किसान हमेशा की तरह अपना देना न दे सकते हों। वारडोली में वकाया इसलिए नहीं रहा कि फसल खराव हो गई, वल्कि इसलिए कि किसानों ने सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में अपना लगान देने से इन्कार कर दिया। किसी किस्म के नुकसान के कारण कोई खास व्यक्ति लगान चुका सकता है या नहीं, इसकी जांच प्रत्येक मामले में पृथक्-पथक् होनी चाहिए। वारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले में केवल एक जायदाद जव्त की गई है। कलक्टर ने उनका पूरा खयाल रक्खा है, जो रिआयत के अधिकारी थे। यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने १८,०००) रुपये के लगभग वसूली स्थगित कर दी है और १६००) रु० तक की छूट भी स्वीकृत कर ली है। लगान-वसूली के लिए पुलिस का भी प्रत्यक्ष इस्तेमाल नहीं किया गया। केवल ऐसे कुछ गांवों में वे पुलिस को ले गये, जहां उसकी सहायता के विना वसूली के उद्देश से जाने में वे उपद्रव की आशंका से डरते थे। मामलतदार या गाँव के मुख्य लगान-अफसर की रक्षा करना, जव्ती के सिलसिले में घर पर पहरा विठाना, और कुछ मामलों में अपरावी को वुलाने के लिए गांव के निम्न कर्मचारियों के साथ जाना—यही काम सिपाहियों के जिम्मे थे।"

जव गांधीजी जुलाई के मध्य में शिमला गये, उन्होंने ये सव शिकायतें भारत-सरकार तक पहुँचाईं। अगले दस दिनों में स्थिति में जो परिवर्तन हुआ, उसकी कोई

उम्मीद न थी। गांधीजी ने वारडोली से इस विषय पर अपने विचार सीधे सूरत के कलक्टर को लिखे और उसकी एक प्रति बम्बई-सरकार को भी भेज दी। बम्बई-गवर्नर का जवाब भी असन्तोष-जनक था। शिमला के अधिकारियों ने भी बम्बई-सरकार का समर्थन किया।

जांच का प्रस्ताव

तब गांधीजी ने पंच नियुक्त करने का प्रश्न उठाया। इस सिलसिले में जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह नीचे दिया जाता है :—

१. भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गांधीजी के १४ जून, १९३१ के पत्र का उद्धरण :—

"प्रान्तीय सरकारों के समझौते के पालन करने या न करने में आप शायद हस्तक्षेप करने में समर्थ न होंगे। यह भी सम्भव है कि आप जितना मैं चाहता हूं उतना हस्तक्षेप न करें। इसलिए शायद इसका समय आ गया है कि समझौते के स्पष्टीकरण से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों को तथा उन सब प्रश्नों को, कि आया समझौते की शर्तों का पालन हो रहा है या नहीं, तय करने के लिए स्थायी पंच नियुक्त किये जायं।"

२. भारत-सरकार के होम सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गांधीजी के २० जून, १९३१ के पत्र की नकल :—

"आपका १६ जून का पत्र मिला और साथ ही पिकेटिंग के सम्बन्ध में मदरास-सरकार से प्राप्त विवरण का एक उद्धरण भी ? यदि रिपोर्ट सच है, तो बहुत बुरी बात है। लेकिन पूर्ण विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी कार्यकर्त्ताओं से मदरास के जो दैनिक समाचार मुझे मिलते हैं, वे मुझे आपको प्राप्त होनेवाली रिपोर्ट पर विश्वास नहीं करने देते। लेकिन मैं जानता हूं कि इससे कोई लाभ नहीं होगा। जहांतक कांग्रेस का सम्बन्ध है, मैं समझौते का पूर्ण पालन चाहता हूं। इसलिए मैं एक बात पेश करता हूं। क्या आप प्रान्तीय सरकारों को किसी भी पक्ष के आरोपों की सरसरी जांच करने के लिए एक जांच-समिति—एक प्रतिनिधि सरकार की ओर से और एक कांग्रेस की ओर से—नियुक्त करने की सलाह देंगे ? और यदि कहीं यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोड़ा गया है, तो वहां पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय; और दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयंसेवक पकड़ लिये गये हैं, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। यदि आपको मेरी यह सलाह पसन्द न हो तो, आप कोई और

अधिक अच्छा और स्वीकार करने योग्य परामर्श देंगे। तब-तक मैं आपके पत्र में लगाये गये विशेष आरोपों की जांच करता हूँ।"

३. गांधीजी को लिखे गये भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब के ता० ४ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल:—

"१४ जून के पत्र में आपने यह सलाह दी है कि समझौते के अर्थ-संबंधी प्रश्नों को तय करने के लिए शायद स्थायी पंच नियुक्त करने का समय आगया है। फिर २० जून के पत्र में आपने यह सलाह दी है कि भारत-सरकार प्रान्तीय-सरकारों को किसी भी पक्ष के आरोपों की जांच करने के लिए एक जांच-समिति—जिसमें प्रान्तीय सरकार का एक प्रतिनिधि और एक कांग्रेस का प्रतिनिधि हो—नियुक्त करने की सलाह दे और यदि कहीं यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोड़ा गया है, तो वहां पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय तथा दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयंसेवक पकड़ लिये गये हैं, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। समझौते के बारे में उठने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव स्वीकार करके झगड़े के संभावित कारणों को ही दूर करने के आपके इस परामर्श की मैं कद्र करता हूँ। पहले छोटे सवाल को ही लीजिए, क्योंकि मेरा खयाल है कि यह मुख्यत: उन्हीं मामलों तक सीमित है, जहां तक पिकेटिंग के तरीकों का सम्बन्ध है, जो साधारण कानून का उल्लंघन करते हुए बताये गये हैं, और इसलिए पुलिस ने पिकेटरों पर मुकदमा चलाया है या वह चलाने का खयाल कर रही है। आपके परामर्श का एक परिणाम यह होगा कि कानून की शरण लेने से पूर्व सरकार का एक मनोनीत प्रतिनिधि और कांग्रेस का एक मनोनीत प्रतिनिधि इस मामले की जांच करेंगे और असली कार्रवाई उसके निर्णय पर निर्भर होगी। दूसरे शब्दों में इस खास विषय पर कानून-रक्षण का कर्तव्य पुलिस से हटकर, जिसका यह प्रधान कर्तव्य है, एक जांच-मण्डल के पास चला जायगा। इस मण्डल के सदस्य किसी भिन्न परिणाम पर पहुँच सकते हैं, जब कि पुलिस को तो स्वभावत: कानून के अनुसार ही कार्रवाई करनी पड़ती है; अत: न तो यह व्यावहारिक है और न समझौते की यह मंशा ही थी कि इस विषय पर पुलिस के कर्तव्यों को किसी तरह रद कर दिया जाय।

"ऐसे मामलों में, कानून तोड़ा गया है या नहीं, इसका फैसला तो अदालत ही कर सकती है। और जबतक अपील में अदालत का यह फैसला कि पिकेटिंग से साधारण कानून और इसलिए समझौते की शर्तों का भंग हुआ, बदल नहीं जाता, तबतक अदालत का ही फैसला मानना होगा और इसलिए समझौते के फल-स्वरूप पिकेटिंग को बन्द कर

देना पड़ेगा। जांच-समिति से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों में से एक कठिनाई इस उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। समझौते से कांग्रेस पर जो कर्तव्य-भार आपड़ा है, उनका सम्बन्ध अधिकांशत: अमन व कानून-सम्बन्धी मामलों, व्यक्तिगत कार्य-स्वतंत्रता और शासन-प्रबन्ध से है। अर्थात् समझौते का भारी उल्लंघन इनमें किसी-न-किसी पर अवश्य बड़ा असर डालेगा। जहां तक कोई व्यक्ति साधारण कानून का उल्लंघन करता है, वहां तक पिकेटिंग की सी ही स्थिति होती है। यदि कानून-भंग आम होने लगता है और उससे अमन व कानून-सम्बन्धी नीति का प्रश्न खड़ा हो जाता है या उसका असर शासन-प्रबन्ध पर पड़ने लगता है, तो सरकार के लिए यह असंभव होगा कि वह मामला जांच-समिति के पास भेज कर अपने कार्य-स्वातंत्र्य पर रुकावट डाल दे। जब समझौते की अन्तिम धारा बनाई गई थी, तब इसका ख्याल भी नहीं किया गया था और न सरकार की आधार-भूत जिम्मेवारियों के निभाने से इसकी संगति ही बैठाई जा सकती है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि इस समझौते का पालन मुख्यत: दोनों पक्षों के इसके प्रति सच्चे रहने पर ही निर्भर रहना चाहिए। जहांतक सरकार का ताल्लुक है वहां तक वह उसकी शर्तों का कठोरता से पालन करने की इच्छुक है, और हमारी जानकारी से मालूम होता है कि प्रान्तीय सरकारों ने अपने पर डाले गये इस कर्तव्य-भार को चिन्ता के साथ निभाया है। कुछ संदेहास्पद मामलों का होना तो स्वभावत: अनिवार्य है, लेकिन प्रान्तीय सरकारें उनपर बहुत ध्यानपूर्वक विचार करने को भी उद्यत हैं और भारत-सरकार उन मामलों को प्रान्तीय सरकारों के ध्यान में लाना जारी रखेगी, जो उसके पास पहुँचाये जावेंगे और यदि जरूरी हुआ तो वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में अपनी दिलजमई भी कर लेगी।"

४. इमर्सन साहब को शिमला से लिखे गये गांधीजी के २१ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल:—

"वाइसराय-भवन में आज शाम को किये गये वायदे के अनुसार मैं अपनी यह प्रार्थना लेखबद्ध कर रहा हूँ कि सरकार व कांग्रेस में हुए समझौते-सम्बन्धी उन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए निष्पक्ष पंच बिठाये जायँ, जो समय-समय पर सरकार या कांग्रेस की ओर से इसके सामने पेश किये जायँ। निम्नलिखित कुछ ऐसे मामले हैं, जिनपर शीघ्र विचार होना अत्यन्त आवश्यक है, यदि उनके आशय के सम्बन्ध में सरकार व कांग्रेस में मतभेद रहे—

(१) क्या पिकेटिंग में शराब की दुकानों या नीलामों का पिकेटिंग शामिल है?

(२) क्या प्रान्तीय-सरकारों को पिकेटिंग के लिए दुकान से ऐसी दूरी निर्धारित करने का अधिकार है कि जिससे पिकेटरों का उस दुकान की नजर में रहना ही असम्भव हो जाय?

(३) क्या सरकार को पिकेटरों की ऐसी संख्या सीमित करने का अधिकार है जिससे उस दुकान के सभी रास्तों पर पिकेटिंग करना असम्भव हो जाय?

(४) क्या शान्तिमय पिकेटिंग का उद्देश नष्ट करने के लिए सरकार को दुकानदार को लाइसेन्स-प्राप्त स्थान और समय से अतिरिक्त स्थान व समय पर शराब बेचने देने की आज्ञा देने का अधिकार है?

(५) कुछ उदाहरणो में, १३ और १४ कलमों के अमल के सिलसिले में उनकी मंशा को साफ करना, जिनमें प्रान्तीय सरकारों ने एक अर्थ किया है और कांग्रेस ने दूसरा।

(६) कलम १६ (अ) में 'लौटाना' शब्द की व्याख्या करना।

(७) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण जिनकी बन्दूकें लाइसेन्स रद करने के बाद जब्त की गई हैं, क्या उन्हें लौटाना समझौते के अन्तर्गत है?

(८) नवें आर्डिनेन्स के अनुसार जब्त हुई कुछ जायदाद और कर्नाटक की 'पानीवाली जमीन' (Water Lands) की वापसी क्या इस समझौते के अन्तर्गत है और क्या सरकार को ऐसी वापसी पर कुछ शर्तें लगाने का अधिकार है?

(९) धारा १९ में 'स्थायी' का अर्थ।

(१०) जिन विद्यार्थियों ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लिया है, उन्हें दाखिल करने से पूर्व क्या शिक्षा-विभाग को उनपर शर्तें लगाने या सविनय अवज्ञा-संग्राम में लगाई गईं पाबन्दियों के अनुसार उन्हें दाखिल न करने का अधिकार है?

(११) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण क्या सरकार को किसी व्यक्ति या संस्था को दण्ड देना—पेंशन, और म्यूनिसिपैलिटियों को मदद इत्यादि बन्द करने का अधिकार है?

"यह नहीं समझना चाहिए कि पंच के सामने केवल यही मामले पेश होंगे। यह भी संभव है कि भविष्य में ऐसे अकल्पित मामले भी खड़े हो जावें, जिनके संबंध में समझौते की सीमा के अन्दर होने का दावा किया जा सके। हम यह तरीका रक्खें कि सरकार या कांग्रेस दोनों की ओर से लिखित वक्तव्य पेश हों। दोनों पक्ष के वकील उन विषयों पर अपनी-अपनी दलीलें पेश करें और बाद को पंच जो निर्णय करे वह दोनों पक्षों को मान्य हो। बातचीत के सिलसिले में जैसा मैंने कहा था कि सरकार और कांग्रेस

के मतभेदों की अवस्था में प्रश्नों के निपटारे के लिए पंच नियुक्त करने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता, तब उसका यह मतलब न लिया जाय कि मैंने अपनी मांग वापस ले ली है। ऐसा समय आ सकता है, जब कि मतभेद इतने तीव्र हो जावें कि मुझे ऐसे प्रश्नों की भी छान-बीन करने के लिए पंच पर जोर देना आवश्यक हो जाय। फिर भी मैं यह उम्मीद रखता हूँ कि हम पंच के पास बिना भेजे ही सब मतभेदों का निर्णय कर सकेंगे।"

५. गांधीजी के नाम इमर्सन साहब के शिमला से ३० जुलाई १९३१ के लिखे पत्र की नकल:—

"आपके २१ जुलाई के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमें आपने (१) ५ मार्च के समझौते की व्याख्या-संबंधी प्रश्नों के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पंच का अनुरोध किया है और (२) कुछ ऐसी बातें भी लिखी हैं जो आप पंच के सामने यदि उसकी नियुक्ति हो तो उस हालत में पेश करना चाहते हैं, जबकि उनके आशयों पर कांग्रेस व सरकार में एकमत न हो सके।.........

"भारत-सरकार ने व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों के लिए निर्णायक-मण्डल-सम्बन्धी प्रस्ताव पर खूब गौर किया है। आपके पत्र में वर्णित उन ११ प्रश्नों पर भी सरकार ने खास ध्यान दिया है, जिन्हें आप इस श्रेणी के अन्तर्गत समझते हैं। इसके साथ सरकार ने यह भी ध्यान में रक्खा है कि इन प्रश्नों पर निर्णायक-मण्डल मंजूर करने का आवश्यक परिणाम होगा सरकार की खास जिम्मेवारियों और फर्जों का उलझन में पड़ जाना। आप भी निस्संदेह यह स्वीकार करेंगे कि सरकार के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को मान लेना संभव नहीं है, जिससे हुकूमत की नियमित मशीनरी अथवा साधारण कानून मौकूफ हो जाय, या जिसमें किसी ऐसी बाहरी शक्ति को सम्मिलित किया जाय जिसे सरकार शासन-प्रबन्ध पर सीधा असर डालनेवाले मामलों के निर्णय तक पहुँचने की जिम्मेवारी दे दे, या जिस व्यवस्था का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम एक खास तरीके का अख्तियार किया जाना हो, जिससे कांग्रेस के सदस्य तो लाभ उठा सकें लेकिन जनता के दूसरे (गैर-कांग्रेसी) लोग पृथक् रहें और जो अदालत की अधिकार-सीमा में प्रवेश करे। ५ मार्च के समझौते में इस तरह की किसी बात की कोई गुंजाइश नहीं है।

"ऊपर बताये उसूलों के सिलसिले में अब मैं आपके पत्र में वर्णित कुछ प्रश्नों की छानबीन करता हूँ। पहले तीन प्रश्न पिकेटिंग से सम्बन्ध रखते हैं और सामान्य स्वरूप के हैं। पिकेटिंग के कुछ खास मामलों में क्या कार्रवाई की जाय, यह उसके

स्वरूप पर अवलम्वित रहेगा, लेकिन सरकार किसी ऐसे व्यापक-निर्णय को विलकुल स्वीकार नहीं कर सकती जिसका असर शासन तथा न्याय के अधिकारियों को कानून व अमन की रक्षा की अपनी जिम्मेवारियों को निभाने पर पड़े या जो लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करे। आपने जो सामान्य स्वरूप की वातें रक्खी हैं वे सव इन विचारों के कारण इस दायरे में नहीं आतीं और सरकार खास-खास मामलों को भी निर्णायक-मण्डल के पास भेजने के लिए रजामन्द नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा करने से उन सम्वन्धित व्यक्तियों को वह रुतवा मिल जायगा जिससे कि सर्व-साधारण वंचित हैं। आपने चौथी वात यह लिखी है कि प्रान्तीय सरकारें आवकारी-कानून का उल्लंघन करनेवालों को दरगुजर करती हैं, सो भारत-सरकार को इस सम्वन्ध में ऐसी कोई इत्तिला नहीं मिली है। जहांतक कानून के अनुसार आवकारी-मामलों के शासन से ताल्लुक है, आप भी निस्संदेह यह अनुभव करेंगे कि प्रान्तीय-सरकारें आवकारी का कैसे प्रवन्ध करें यह निश्चित करने का अधिकार देकर पंच नियुक्त करना व्यावहारिक नहीं है। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि महकमा आवकारी प्रान्तीय हस्तान्तरित विषय है। १० वें और १२ वें मुद्दे एक जुदा परन्तु वहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करते हैं। समझौते की वातचीत करते समय उनमें वर्णित प्रश्नों पर वहस ही नहीं हुई थी। इसलिए इन मामलों को पंच के पास भेजने का अर्थ यह वेहद व्यापक वसूल मान लेना होगा कि समझौते के वास्तविक क्षेत्र व उद्देश से वाहर भी सरकार की सहमति के विना पंच को समझौते की पावन्दी कराने का अधिकार है।

"पंच कायम करने के रास्ते में, चाहे उसके पास केवल व्याख्या-सम्वन्धी प्रश्न ही भेजे जायँ, वहुत-सी दुर्गम वाधायें हैं। इसी वात पर लगातार झगड़े होंगे कि अमुक मामला व्याख्या-सम्वन्धी है या नहीं? यह व्यवस्था पुरानी दिक्कतों को हटाने के वदले नई दिक्कतें पैदा करेगी।

"सन्धि-भंग होने की जव कोई शिकायत होगी तो सरकार अपनी दिलजमई कर लेने को तैयार रहेगी। क्योंकि समझौते के पालन को सरकार अपनी इज्जत का सवाल समझती है और उसे कोई सन्देह नहीं है कि आप भी उसे ऐसा ही मानते हैं। और यदि ऐसी स्थिति से काम लिया गया—न कि पंच वनाने के झंझट में पड़ने के—तो सरकार को विश्वास है कि ये कठिनाइयां अच्छी तरह हल हो सकती हैं।"

परिषद् से गांधीजी का इन्कार

संयुक्त-प्रान्त में किसानों पर दमन और अत्याचार जारी था। अपने खेतों

व घरों से निर्वासित किसानों की दुर्दशा से युक्त-प्रान्त के नेताओं को—पं० मदनमोहन मालवीय को भी—चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। गांधीजी ने युक्त-प्रान्त के गवर्नर सर माल्कम हेली को एक तार भेजा। लेकिन उसका जवाब बहुत निराशाजनक मिला। सभी ओर से ऐसी शिकायतें आ रही थीं और परिस्थितियां इतनी दिल तोड़नेवाली थीं कि ११ अगस्त १९३१ को गांधीजी वाइसराय को निम्नलिखित तार भेजने पर विवश हो गये:—

"बहुत दुःखके साथ आपको सूचित कर रहा हूँ कि अभी हाल में बम्बई-सरकार का जो पत्र मिला है, उसने मेरा लन्दन जाना असम्भव कर दिया है। पत्र से कई कानूनी समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। पत्र में हकीकत और कानून दोनों दृष्टियों से एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और लिखा है कि सरकार ही हर प्रकार से दोनों बातों में अन्तिम निर्णय करेगी। इसका साफ अभिप्राय यह है कि जिन मामलों में सरकार और शिकायत करनेवाले दो दल हों, उनमें भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। कांग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई-सरकार के पत्र, सर माल्कम हेली के तार और युक्त-प्रान्त, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में होनेवाले अत्याचारों की रिपोर्ट पर जब मैं ध्यान देता हूँ तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मैं लन्दन को रवाना न होऊँ। जैसा मैंने वादा किया था कि कोई भी अन्तिम निर्णय करने के पहले मैं आपको लिखूंगा, मैं ऊपर लिखी हुई सब बातें आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम घोषणा करने से पहले मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।"

वाइसराय का उत्तर—१३ अगस्त १९३१

"आपने जो कारण बताये हैं, यदि उन्हींके आधार पर कांग्रेस उस अवस्था को स्वीकार नहीं करती, जो गोलमेज-परिषद् में उसका प्रतिनिधित्व रखने के लिए की गई थी, तो मुझे खेद है। मैं इन कारणों को उचित नहीं मान सकता। मैं ऐसा सोचे बिना नहीं रह सकता कि सरकार की नीति तथा उसके आधार-भूत बातों को गलत समझने के कारण ही यह अन्देशा पैदा हुआ है। मेरा खयाल था कि युक्त-प्रान्त के सम्बन्ध में आपका सन्देह सर माल्कम हेली के ६ अगस्त के तार से और गुजरात के सम्बन्ध में सर अर्नेस्ट हॉटसन के प्राइवेट-सेक्रेटरी के १० अगस्त के पत्र पैरा ४ से दूर हो गया होगा। मैं आपका ध्यान अपने ३१ जुलाई के पत्र की ओर आकर्षित करता हूँ, जिसमें मैंने आपको यह पूर्ण विश्वास दिलाया है कि समझौते-सम्बन्धी हरेक मामले में मैं खुद दिलचस्पी रखता हूँ। और मैंने आशा की थी कि आप इन विस्तार की बातों से उत्पन्न विवादों के

कारण अपनेको भारत की उस सेवा से वंचित नहीं करेंगे, जो आप उस महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद में भाग लेकर कर सकते हैं, जो आपके और मेरे समय के भी आगे के लिए देश के भाग्य का निपटारा कर देनेवाला है। यदि आपका निश्चय अन्तिम है तो मैं फौरन ही प्रधान-मन्त्री को आपके लन्दन न जाने की सूचना दे दूंगा।"

गांधीजी का अन्तिम इन्कार—१३ अगस्त १६३१

"आपके आश्वासन के तार के लिए धन्यवाद! आपके आश्वासन को मुझे वर्तमान घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए देखना चाहिए। यदि आप उन घटनाओं पर विचार करने पर समझौते की शर्तों के बाहर कोई बात नहीं पाते, तो इससे प्रतीत होता है कि हमारे और आपके समझौते-सम्बन्धी दृष्टिकोण में सैद्धान्तिक मतभेद है। वर्तमान परिस्थिति में मुझे खेद के साथ सूचित करना पड़ता है कि मेरे लिए अपने पूर्व-निश्चय पर मुहर लगा देने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मैंने लन्दन जाने का हर प्रकार से प्रयत्न किया पर असफल रहा। कृपया आप प्रधान-मंत्री को इसकी सूचना दे दें। मैं समझता हूँ यह पत्र-व्यवहार और तार प्रकाशित करने में आपको आपत्ति न होगी।"

वाइसराय का उत्तर—१४ अगस्त १६३१

"आपके निश्चय की सूचना मैंने प्रधान-मन्त्री को दे दी है। मैं आज संध्या-समय ४ बजे सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूँ। आप भी ऐसा कर सकते हैं।"

यद्यपि जून के महीने से यह अन्देशा किया जा रहा था कि कांग्रेस के गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के रास्ते में दिक्कतें आवेंगी, लेकिन फिर भी हरेक शख्स अन्तिम क्षण तक यह उम्मीद कर रहा था कि किसी तरह परिस्थिति अपने-आप सुलझ जायगी। यह कहना गलत न होगा कि लोग जहां आशा न थी वहां भी आशा लगा रहे थे। लेकिन कांग्रेस संधि-चर्चा के बीच-बीच में टूटते जाने पर चुपचाप नहीं बैठ सकती थी। खुद समझौते पर पूरा अमल करते हुए भी कांग्रेस को प्रत्येक किस्म की सम्भावना के लिए पूरी तैयारी करनी थी। इस तरह जबकि गांधीजी वाइसराय और बम्बई व युक्तप्रान्त की सरकारों से पत्र-व्यवहार करने में लगे हुए थे, कांग्रेस की कार्य-समिति बदस्तूर अपना कार्य करने में संलग्न थी। हम भी पाठकों को उसी ओर ले जाते हैं।

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की एक बैठक २० जुलाई को हुई। उसने 'ब्रिटेन व भारत के लेन-देन' पर तैयार की हुई रिपोर्ट को छापने की स्वीकृति दे दी। मौलिक-अधिकार-समिति ने अपनी बैठकें मछलीपट्टम में करके रिपोर्ट तैयार की थीं। कार्य-समिति ने इस रिपोर्ट को महा-समिति के सामने पेश करने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानी-सेवादल का कांग्रेस से सम्बन्ध के बारे में कई गलत-फहमियां फैली हुई थीं, इसलिए दल को कांग्रेस का केन्द्रीय स्वयंसेवक-संगठन मान लिया गया और यह निश्चय किया गया कि इसका नियन्त्रण कार्य-समिति प्रत्यक्षरूप से स्वयं करेगी या वह करेगा, जिसे वह अपनी ओर से नियुक्त करे। इसके काम भी बता दिये गये। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को यह अधिकार और आदेश दिया गया कि वे भी बाकायदा स्वयंसेवक-दल बनावें। इस दल के सदस्यों के लिए कांग्रेस का सदस्य होना और केन्द्रीय स्वयंसेवक-दल के नियन्त्रण को मानना जरूरी रक्खा गया। सेवादल जिसकी अ० भा० परिषद् कोकनडा में हुई थी और जो शुरू से ही डाक्टर हार्डीकर के नेतृत्व और संचालन में शानदार काम कर रहा था, कांग्रेस से सम्बद्ध कर लिया गया और सेवादल ने भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए शान्तिमय और उचित उपायों से कांग्रेस के ध्येय की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

साम्प्रदायिक प्रश्न पर नई योजना

इसके बाद कांग्रेस का एक बहुत बड़ा काम आता है; यह था साम्प्रदायिक प्रश्न पर समझौते की एक योजना, जिसे हम विस्तार से नीचे देते हैं। इस सिलसिले में कार्य-समिति ने निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित किया:—

"चाहे इसमें कांग्रेस को कितनी भी असफलता क्यों न हुई हो, उसने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावों को हटाने में सदा प्रयत्नशील रही है। कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता की चरमसीमा है—

'चूंकि नेहरू-रिपोर्ट खतम हो चुकी है, साम्प्रदायिक प्रश्नों के बारे में कांग्रेस की नीति की घोषणा करना आवश्यक है। कांग्रेस का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिक प्रश्नों का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूंकि खासकर सिक्खों ने और साधारणतया मुसलमानों तथा दूसरी अल्प-संख्यक जातियों ने नेहरू-रिपोर्ट में प्रस्तावित साम्प्रदायिक प्रश्नों के हल के प्रति असंतोष

जाहिर किया है, यह कांग्रेस सिक्खों, मुसलमानों और दूसरी अल्पसंख्यक जातियों को विश्वास दिलाती है कि भावी शासन-विधान में साम्प्रदायिक समस्या का ऐसा कोई हल कांग्रेस को मंजूर न होगा, जिससे सम्वन्धित दलों को पूरा संतोष न होता हो।

"इसी कारण साम्प्रदायिक प्रश्न का साम्प्रदायिक हल पेश करने की जिम्मेवारी से कांग्रेस मुक्त हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक मौके पर यह महसूस करती है कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए जो देखने में साम्प्रदायिक होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर सव सम्वन्वित जातियों को मंजूर हो। इसलिए पूरी-पूरी और आजादी के साथ वहस के वाद कार्य-समिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१. (क) शासन-विधान की मौलिक अधिकार से सम्वन्वित धारा में जातियों को यह आश्वासन भी दिया जाय कि उनकी संस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा धर्मादा की रक्षा की जायगी।

(ख) विधान में खास धारायें रखकर जातियों के निजी कानूनों की रक्षा की जायगी।

(ग) विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना संघ-सरकार के जिम्मे होगा और ये काम उसके अधिकार-क्षेत्र की सीमा में होंगे।

२. तमाम वालिग स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—करांची-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति वालिग-मताधिकार के लिए वंध चुकी है, अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को मंजूर नहीं कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो गलतफहमी फैली हुई है, उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि किसी भी हालत में मताधिकार एक-समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक जाति की आवादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पड़े।

३. (क) भारत के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार सम्मिलित निर्वाचन होगा।

(ख) सिन्ध के हिन्दुओं, आसाम के मुसलमानों और पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त तथा पंजाव के सिक्खों और किसी भी ऐसे प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों

के लिए, जहां उनकी संख्या आवादी के २५ फी सदी से भी कम हो, संघीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं में आवादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे और उनके अलावा अधिक स्थानों के लिए भी उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार होगा।

४. पदों पर नियुक्तियां निष्पक्ष सर्विस-कमीशनों के द्वारा होंगी। नौकरियों के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता का भी निर्णय ये कमीशन करेंगे और कार्य के सुचारु-रूप से चलने का तथा नौकरियों के लिए तमाम जातियों को समान अवसर मिले इस सिद्धान्त का और वे बहुत-कुछ योग उसमें दे सकें इस बात का वे पूरा खयाल रक्खेंगे।

५. संघीय और प्रान्तीय मंत्रि-मण्डल के निर्माण में अल्पसंख्यक जातियों के हित एक निश्चित प्रथा के अनुसार मान्य होंगे।

६. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान में उसी प्रकार की शासन-व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तों में है।

७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जायगा, बशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक् प्रान्त का आर्थिक भार सहन करने को तैयार हों।

८. देश का भावी शासन-विधान संघीय होगा। अवशिष्ट अधिकार संघ की इकाइयों के पास रहेंगे, बशर्ते कि और छानबीन करने पर यह भारत के आत्यन्तिक हित के विरुद्ध साबित न हो।

"कार्य-समिति ने उक्त योजना को विशुद्ध साम्प्रदायिकता और विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जहां एक ओर कार्य-समिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, वहां दूसरी ओर उग्र विचार के लोगों को, जो इसे स्वीकार नहीं करते, यह विश्वास दिलाती है कि समिति दूसरी किसी ऐसी योजना को बिना हिचक के स्वीकार करेगी, जो सब सम्बन्धित दलों को मंजूर हो, जैसे कि वह लाहौर के प्रस्ताव से बंधी हुई है।"

विदेशी कपड़े और सूत के बहिष्कार की नीचे लिखी प्रतिज्ञा की रूपरेखा भी कार्य-समिति में तैयार की गई और यह निश्चय किया गया कि विदेशी कपड़े व सूत के बहिष्कार के सिलसिले में की गई कोई भी ऐसी प्रतिज्ञा, जो इससे मेल न खाती हो, रद मानी जायगी:—

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि तबतक हम निम्नलिखित शर्तों का पालन करते रहेंगे, जबतक कि कांग्रेस की कार्य-समिति किसी प्रस्ताव-द्वारा और कुछ करने को नहीं कहती:—

१. हम रुई, ऊन या रेशम से कता हुआ कोई विदेशी सूत या उससे वुना हुआ कपड़ा न खरीदने और न वेचने का वादा करते हैं।

२. हम किसी ऐसी मिल का सूत या कपड़ा भी न खरीदने और न वेचने का वादा करते हैं, जिसने कांग्रेस की शर्तों को न माना हो।

३. हम अपने पास मौजूद कपास, ऊन या रेशम से वने हुए विदेशी सूत या उससे वने कपड़े को भारत में न वेचने का वचन देते हैं।"

इसके वाद यह फैसला किया गया कि अस्पृश्यता-निवारिणी समिति को, जो गत वर्ष सविनय अवज्ञा के संग्राम में लुप्त हो गई थी, पुनर्जीवित किया जाय। श्री जमनालाल वजाज को इस उद्देश-पूर्ति के लिए यथायोग्य काम करने को कहा गया। इस समिति को अन्य सदस्य शामिल करने का तथा अन्य आवश्यक अधिकार भीं दिये गये।

मिल-समिति (Textile Mills Exemption Committee) की तथा मजदूरों की हालत के सवाल पर कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि जहां संभव और आवश्यक प्रतीत हो, उक्त समिति आपसी तजवीजों के द्वारा ऐसी मिलों में जिन्होंने कांग्रेस की घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये हों, मजदूरों को दण्ड दिये जाने या निकाले जाने को रोकने और मजदूरों की स्थिति को अधिक अच्छी करने की कोशिश करे।

महासमिति की वैठक ६, ७ और ८ अगस्त १९३१ को फिर हुई और उसने वहुत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव वम्वई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न और वंगाल में जज गार्लिक की हत्या के सम्वन्ध में था। इन आक्रमणों पर खेद और निन्दा प्रकट करते हुए गवर्नर के जीवन पर आक्रमण के प्रयत्न को उस स्थिति में तो वहुत वुरा वताया, जवकि फर्ग्यूसन कालेज ने सम्मानित अतिथि के तौर पर उन्हें निमंत्रित किया था।

राष्ट्रीय-झण्डा-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और यह निश्चय किया गया कि "राष्ट्रीय झण्डा तीन रंग का और पहले की तरह लम्वाई-चौड़ाई में समानान्तर होगा। लेकिन उसके रंग क्रमशः ऊपर से नीचे केसरिया, सफेद और हरा होंगे। सफेद पट्टे के केन्द्र में गहरे नीले रंग का चरखा होगा। रंग गुणों के न कि जातियों के सूचक हैं। केसरिया रंग साहस और वलिदान का, सफेद रंग शान्ति और सत्य का, हरा रंग श्रद्धा तथा वीरता का एवं चर्खा जनता की आशा का प्रतिनिधि होगा। झंडे की लम्वाई-चौड़ाई का अनुपात ३:२ होगा।" ३० अगस्त रविवार को नया राष्ट्रीय

झंडा फहराने का निश्चय किया गया। इसीके अनुसार फिर आगे प्रति मास हर रविवार को झंडा फहराया जाने लगा। मौलिक-अधिकार-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और ऊपर लिखे अधिकार व कर्त्तव्य स्वीकृत हुए। मौलिक अधिकारवाला प्रस्ताव, जैसा अन्तिम रूप में था, इस बैठक में पास कर दिया गया।

अफगान जिरगा

उन्हीं दिनों बम्बई में कार्य-समिति ने सरदार भगतसिंह के दाह-संस्कार के प्रश्न पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँची, जैसा कि हम पहले भी जिक्र कर चुके हैं, कि जो भीषण अभियोग लगाये गये हैं उनका कोई आधार नहीं है। सीमा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी, अफगान जिरगा व खुदाई खिदमतगारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निश्चय किया गया:—

सीमाप्रान्त की कांग्रेस-कमिटी के प्रतिनिधियों से परामर्श करने के बाद समिति ने सीमा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के पुनः संगठन तथा उसमें अफगान जिरगे को सम्मिलित करने का निश्चय किया। यह भी निश्चय किया गया कि खुदाई खिदमतगार भी कांग्रेस-स्वयंसेवक-संगठन के एक अंग हो जाने चाहिएँ।

कार्य-समिति की प्रार्थना पर सीमाप्रान्तीय नेता खान अब्दुलगफ्फारखां ने उस प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन के संचालन का भार अपने कंधों पर ले लिया है।"

कार्य-समिति की निराशा

कार्य-समिति ने इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया कि वह अनिच्छा-पूर्वक इस परिणाम पर पहुँची है कि समझौते की शर्तों और राष्ट्रीय हितों को देखते हुए कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में न भाग ले सकती है और न उसे लेना ही चाहिए। लेकिन समिति ने यह भी घोषणा की कि दिल्ली-समझौता अब भी कायम है, जैसा कि निम्नलिखित प्रस्ताव से मालूम होगा :—

"कार्य-समिति ने १३ अगस्त को गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के भाग न लेने के बारे में प्रस्ताव पास किया था। उसे मद्दे-नजर रखते हुए यह समिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्ताव को दिल्ली-समझौते का समाप्ति-कारक न समझा जाय। इसलिए समिति सब कांग्रेस-संस्थाओं व कांग्रेसियों को तबतक समझौते की कांग्रेस पर लागू होनेवाली शर्तों पर अमल करने की सलाह देती है, जबतक कि कोई दूसरी हिदायत न दी जाय।"

असाधारण परिस्थिति उत्पन्न होने की अवस्थाओं के लिए जब कार्य-समिति न बुलाई जा सके, राष्ट्रपति को विशेष अधिकार भी दे दिये गये, कि "इस प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति की ओर से उसके नाम पर राष्ट्रपति को काम करने का अधिकार दिया जाता है।"

मणि-भवन (बम्बई) में सारे दिन आशाओं व उम्मीदों से भरी ये अफवाहें गरम हो रही थीं कि सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के आखिरी समय किये गये शान्ति के प्रयत्नों के कारण गांधीजी का लन्दन जाना सम्भव हो जायगा। लेकिन सूर्यास्त के वक्त बड़े-बड़े नेता मणि-भवन से बाहर निकले और अत्यन्त उत्सुक व प्रतीक्षा में खड़े हुए प्रेस-प्रतिनिधियों को बताने लगे कि आखिरी समय की गई सन्धि-चर्चाओं के सफल होने और गांधीजी के अपने निश्चय को बदलने की कोई सम्भावना नहीं है। फिर भी कुछ आशावादी अबतक यह आशा लगाये बैठे थे कि अन्त में कोई-न-कोई सूरत निकल ही जायगी। लेकिन जब गांधीजी रात के ८।।। बजे मणि-भवन छोड़कर बम्बई-सेण्ट्रल स्टेशन पर गुजरात-मेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार हो गये, तब सब सन्देह बिलकुल खतम हो गये।

सर प्रभाशंकर पट्टनी ने दोपहर को आध घण्टे तक गांधीजी से मुलाकात की। असोशियेटेड प्रेस के भेंट करने पर सर प्रभाशंकर पट्टनी ने (जिन्होंने 'एस० एस० मुलतान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी) इससे अधिक कुछ भी बताने में अनिच्छा प्रकट की कि अनेक कारणों से उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी है।

इस तरह गोलमेज-परिषद् के अभिनय में पहला दृश्य समाप्त हुआ। १५ अगस्त को डॉ० सप्रू, श्री जयकर और श्री रंगास्वामी आयंगर गांधीजी से दो-एक बार मिलकर बम्बई से रवाना हो गये। इस विषय पर प्रकाशित हुए पत्र-व्यवहार के अध्ययन से सरकारी अधिकारियों की मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। सेक्रेटेरियट ने समझौते को समुद्र में फेंक दिया था।

न जाने के कारण

इसमें सन्देह नहीं कि समझौते के उल्लंघन, गांधीजी के गोलमेज-परिषद् में उपस्थित होने से इन्कार करने और १३ अगस्त को वाइसराय को तार-द्वारा अपने निश्चय से (जिसका समर्थन कार्य-समिति ने भी किया) सूचित करने का, एक कारण थे। वस्तुतः यह इमर्सन सा० का ३० जुलाई का पत्र था, जो पहले आ चुका है, जिसने स्थिति को निर्णीत-रूप दे दिया था। बम्बई के गवर्नर का १० अगस्त का पत्र भी कम

निर्णायक न था। सर माल्कम हेली का तार भी, यद्यपि उसमें सौम्य शिष्ट और संयत-भाषा का प्रयोग था, यह निश्चय करने में कम कारण न था। लेकिन इनमें सबसे बड़ा कारण था बारडोली में लगान-वसूली के लिए दमनकारी उपायों का अवलम्बन। २२ लाख रुपये में से २१ लाख दिया जा चुका था। कांग्रेस का मन्तव्य था कि अब लगान न चुकानेवाले आपत्ति में ग्रस्त हैं और समय चाहते हैं। पिछले सालों का बकाया करीब दो लाख रुपया लेना था, जिसका अधिकांश भाग गुजरात के दुर्भिक्ष के कारण सरकार ने मुल्तवी भी कर दिया था। सरकार ने पुलिस-द्वारा धमकियां देना व पुलिस के 'जुल्म' के जोर पर उस साल का तथा पिछले सालों का बकाया वसूल करना शुरू किया। सरकार का कहना था कि कांग्रेस कौन होती है जिसके कहने पर सरकारी मालगुजारी दी जाय या रोकी जाय? सरकार ने अपने पत्र-व्यवहार में यह स्पष्ट लिख दिया था कि समझौते का न तो ऐसा आशय ही है और न सरकार इसे सहन ही कर सकती है। कांग्रेस यह साबित करने को तैयार थी कि लोगों को भयभीत करने और कुछ मामलों में तो अतिरिक्त मालगुजारी वसूल करने के लिए अनुचित प्रभाव डालने के लिए पुलिस का इस्तेमाल किया गया है। और फिर इस प्रकार एकत्र की हुई अतिरिक्त-मालगुजारी एक लाख रुपया भी नहीं होती थी। सरकार का कहना था कि लगान की वसूली में अन्तिम निर्णय कांग्रेस का नहीं बल्कि सरकार और उसके कर्मचारियों का होना चाहिए। ब्रिटिश-शान्ति और ब्रिटिश-शासन अभी वहां कायम है। सरकार इसे जताना और साबित करना चाहती थी। सरकार को मालगुजारी की इतनी परवाह न थी, जितनी अपने रोब की—उसी रोब की जिसकी इतनी तारीफ माण्टेगु साहब ने की थी—चिन्ता थी!

एक दूसरा और महत्त्वपूर्ण कारण भी था, जिससे गांधीजी इंग्लैण्ड नहीं जाना चाहते थे। भारत-सरकार ने डॉक्टर अंसारी को गोलमेज-परिषद् का प्रतिनिध मनोनीत नहीं किया था। स्वभावतः कांग्रेस उन्हें ले जाना चाहती थी। कांग्रेसी होने के अलावा वह भारत की एक बड़ी पार्टी—राष्ट्रीय मुस्लिम दल—का प्रतिनिधित्व करते थे। सभी मुसलमान उन्नति-विरोधी नहीं हैं। उनमें भी एक ऐसा साफ गिरोह था, जो दिल से राष्ट्रीय या और पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आजादी के लिए उत्सुक था। लेकिन इस रहस्य को सभी जानते हैं कि लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी के कहने से पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर अंसारी को मनोनीत करने का वचन लॉर्ड अर्विन ने दिया था, जब कि पहले दो व्यक्ति मनोनीत कर लिये गये और डॉक्टर अंसारी छोड़ दिये गये। यह बात नहीं थी कि लॉर्ड विलिंगडन जानते

ही न थे कि लॉर्ड अर्विन ने क्या वचन दिया था। लेकिन गोलमेज-परिषद् में यह प्रदर्शन भी ब्रिटिश-हितों के लिए अच्छा था कि मुस्लिम-भारत स्वराज्य के विरुद्ध है। लॉर्ड अर्विन के वचन का पालन करने की मांग के उत्तर में लॉर्ड विलिंगडन ने यह दलील दी कि मुसलमान प्रतिनिधि डॉक्टर अंसारी के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध हैं। वे तो उसके विरुद्ध होते ही। यदि वे विरोध न करते, तो वह मुसलमान प्रतिनिधि न होते; बल्कि भारत के प्रतिनिधि होते। देश में डॉक्टर अंसारी की स्थिति असाधारण थी, उनके अनुयायी भी बहुत थे, उनके विचार भी राष्ट्रीय थे। वह साम्प्रदायिकता के प्रबल और निर्भीक विरोधी थे। ऐसे डॉक्टर अंसारी के चुनाव को वे मुसलमान प्रतिनिधि, कैसे सहन करते? कांग्रेस ने साम्प्रदायकि प्रश्न पर एक हल तैयार कर लिया था जिसका समर्थन गोलमेज-परिषद् में एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रतिनिधि करते। सरकार यह जानती थी और साफ तौर पर मुसलमान अंग को काटकर कांग्रेस को बेकार बना देना चाहती थी। इन परिस्थितियों में कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय-सम्मान की रक्षा करते हुए केवल एक ही मार्ग खुला था। गांधीजी ने उसे ही पकड़ा और गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन जाने से इन्कार कर दिया।

आशा के पहले

एक बार फिर लड़ाई की तैयारियां होने लगीं। १५ अगस्त को लड़ाई की हवा की ही सब जगह चर्चा थी। इसमें सन्देह नहीं कि लॉर्ड विलिंगडन का रुख पूर्ण शिष्टता का था। उन्होंने गांधीजी से कहा कि आप मामले को तोड़ें नहीं। जब कभी कोई दिक्कत हो, मुझसे मिल लें। लेकिन गांधीजी जब कोई बात पेश करते थे तो उसका कोई असर न होता था। सारा देश एक निराशा में डूबा हुआ था। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी नायडू ने 'मुलतान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी, जिससे श्री सप्रू, जयकर और आयंगर रवाना हुए थे। गांधीजी ने अपनी स्थिति निम्नलिखित सरल शब्दों में रख दी :—

"यदि सरकार और कांग्रेस में कोई समझौता हुआ था और यदि उसके आशय के बारे में कोई विवाद उठ खड़ा हुआ या किसी पक्ष की ओर से उसका उल्लंघन किया गया, तो मेरी सम्मति में सब समझौतों के साथ लागू होनेवाले नियम इस समझौते पर भी लागू होने चाहिएँ। इस समझौते पर तो वे और भी ज्यादा इसलिए लागू होने चाहिए, क्योंकि यह समझौता एक महान् सरकार और सारे देश के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाली महान् संस्था के बीच हुआ है। यह बात सही है कि इस समझौते

पर कानून से अमल नहीं कराया जा सकता, पर इसीलिए सरकार पर यह दोहरी जिम्मेवारी आ जाती है कि समझौता करनेवाले दो समुदाय जिन प्रश्नों पर एक नहीं हो सकते उन्हें एक निष्पक्ष न्यायालय के सामने पेश करे। कांग्रेस की एक बहुत सरल और स्वाभाविक इस सलाह को सरकार ने ठुकरा देने लायक समझा है कि झगड़े के ऐसे मामले निष्पक्ष न्यायालय को सौंप देने चाहिएँ।"

गांधीजी ने शान्ति के लिए कभी दरवाजा बन्द नहीं किया। वह तो कहते थे कि ज्यों ही रास्ता साफ हुआ, यदि प्रान्तीय सरकारें समझौते की शर्तों की पूर्ति करती रहें, मैं लन्दन की ओर दौड़ पड़ूंगा। जो बात प्रत्येक राजनैतिक विचारक के दिमाग में घूम रही थी, उसे उन्होंने खुले तौर पर कह दिया—"यहां के बड़े सिविलियन नहीं चाहते कि मैं परिषद् में जा सकूं। और यदि वे चाहते भी हैं, तो ऐसी परिस्थितियों में, जिन्हें कांग्रेस-जैसी कोई राष्ट्रीय-संस्था बरदाश्त नहीं कर सकती।" देश के सिविलियन बड़े जोरों से यह बात फैला रहे थे कि कांग्रेस के रूप में गांधीजी एक मुकाबले की सरकार कायम करना चाहते हैं और ऐसी विध्वंसक संस्था कभी गवारा नहीं की जा सकती। गांधीजी ने बम्बई से अहमदाबाद के लिए रवाना होते समय लॉर्ड विलिंगडन को एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्व में मुकाबले की सरकार खड़ी करने का मेरा इरादा कभी नहीं रहा और न मैंने कभी पंच नियत करने पर जिद की; हां, उसके इस अधिकार का दावा मैंने अवश्य किया है। मैं तो केवल न्याय चाहता हूँ। पूरा पत्र इस तरह है :—

"इतनी शीघ्रता से घटनायें घटित होती रही हैं कि मैं आपके ३१ जुलाई के कृपापत्र का उत्तर भी न दे सका। इस पत्र-व्यवहार में जो सच्चाई की भावना भरी हुई है उसका मैं कायल हूँ। पर पिछली घटनाओं ने उसे भूतकाल का इतिहास बना दिया है और जैसा कि मैंने १३ अगस्त के तार में कहा है कि ये समस्त परिस्थितियां बतलाती हैं कि आपके और हमारे दृष्टिकोण में ही मौलिक अन्तर है।

"मैं तो आपको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि मैंने बहुत गौर के साथ विचार करने के बाद ही यह निश्चय किया है कि मेरा जो यहां पर उत्तरदायित्व है उसे तथा आप के निश्चय को देखते हुए मुझे गोलमेज-परिषद् में उपस्थित नहीं होना चाहिए। मुझे यह सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ कि आपको यह सुझाया गया है कि मैंने पंच की स्थापना पर अधिक जोर दिया और मैं अपनेको प्रतिद्वंद्वी सरकार का मुखिया बनाना चाहता हूँ। और आपका निर्णय तो इन्हीं सुझाई बातों के आधार पर बना है। हां, यह तो सच है कि पंच के सम्बन्ध में मैंने अधिकार के रूप में इसकी मांग की थी; पर यदि आपको

मेरी बातचीत याद होगी, तो आप जान लेंगे कि मैंने कभी इसपर जोर नहीं दिया। इसके विपरीत मैंने आपसे यह भी कह दिया था कि यदि मुझे न्याय मिल जायगा—जिसका मैं अधिकारी भी हूँ—तो मुझे संतोष हो जायगा। आप इससे सहमत होंगे कि पंच की स्थापना पर जोर देना बिलकुल दूसरी बात है।

"प्रतिद्वन्द्वी सरकार के सम्बन्ध में मुझे खयाल है कि मैंने आपका भ्रम उसी समय दूर कर दिया था जब आपके विनोदपूर्ण उद्‌गार के उत्तर में मैंने कहा था कि मैं अपनेको जिला-अफसर नहीं समझता और मैंने तथा मेरे साथियों ने स्वेच्छा से बने पटेल या गांव के मुखिया का जो कार्य किया है, वह भी जिला-अधिकारियों की जानकारी में और अनुमति से। इसलिए यदि उपर्युक्त दो गलत बातों ने आपके विचारों पर असर डाला हो तो मुझे खेद होगा।

"इस पत्र के लिखने का मेरा अभिप्राय यह दरयाफ़्त करना है कि क्या आप अब दिल्ली-समझौते को खतम समझते हैं या गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के भाग न लेने पर उसे कायम मानते हैं? कांग्रेस-कार्य-समिति ने आज प्रातःकाल निम्नलिखित निश्चय किया है—'१३ अगस्तवाले कार्य-समिति के गोलमेज-परिषद् में भाग न लेने के प्रस्ताव को दृष्टि में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्ताव से दिल्ली-समझौते का अन्त नहीं समझना चाहिए। अतः सभी कांग्रेसियों और कांग्रेस-संस्थाओं को सलाह देती है कि जबतक और कोई आदेश न दिया जाय, दिल्ली समझौते की कांग्रेस पर लागू होनेवाली शर्तों का पालन किया जाय।'

"इससे आप देखेंगे कि कार्य-समिति इस समय सरकार को परेशान नहीं करना चाहती और वह सच्चाई से दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है। लेकिन यह सब प्रान्तीय सरकारों की परस्पर सम्बन्ध रखने की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

"जैसा कि पत्रों में तथा बातचीत में भी पहले मैं आपको बतला चुका हूँ, प्रान्तीय सरकार की यह पारस्परिकता की वृत्ति दिन-दिन, कम-ही-कम दिखाई पड़ी है। कार्य-समिति के दफ्तर में बराबर सरकार के ऐसे कार्यों की इत्तलायें आ रही हैं जिनका एक ही अर्थ हो सकता है कि सरकार कार्यकर्ताओं और कांग्रेस-आन्दोलन को कुचलना चाहती है।"

गांधीजी ने अपना पत्र इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि इसका उत्तर जल्दी मिले और यदि दिल्ली-समझौते का पालन मंजूर है, तो मैं कहूँगा कि जो शिकायतें आपके सामने पेश की गई हैं उनपर शीघ्र ही विचार किया जाय; क्योंकि मेरे साथी-कार्यकर्त्ता इसपर जोर दे रहे हैं कि यदि शिकायतें दूर नहीं होतीं, तो कम-से-कम

आत्म-रक्षा के लिए हमें भी रक्षात्मक उपाय हाथ में लेने की आज्ञा दी जाय। गांधीजी को इसकी कोई चिन्ता न थी कि सरकार कांग्रेस को अपने और जनता के बीच मध्यस्थ स्वीकार नहीं करती। वह सरकार को परेशानी में डालने या उसे अपमानित करना नहीं चाहते थे। लेकिन दरअसल स्थिति यह थी कि सरकार सिविल-सर्विसवालों के निश्चित विरोध के कारण अस्थायी संधि को तोड़ रही थी, न कि कांग्रेस। गांधीजी आवश्यक और अनावश्यक का भेद जानते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सिविल-सर्विस के कर्मचारी भारत के पूरी स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे। "इसलिए", गांधीजी कहते थे, "जबतक इस सर्विस के सब कर्मचारियों के खयालात न बदल जायँ, पूर्ण स्वाधीनता के लिए कांग्रेस के संधि-चर्चा करने की कोई सूरत नहीं है। कांग्रेस को अभी और कष्ट-सहन व बलिदान में से गुजरना होगा, चाहे इस तरीके का कितना ही अधिक मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। इसलिए मैं तो अपने लिए बारडोली को ही खरी कसौटी मानता हूँ। सिविलियनों की नब्ज देखने के लिए ही इसकी योजना की गई थी। इस दृष्टि से देखने पर यह कोई छोटी बात न थी।"

आशा हुई

गांधीजी ने शिमला से प्राप्त १४ अगस्त के तार से अधिकार पाकर सरकार के विरुद्ध आरोप-सूची को प्रकाशित कर दिया था। कुछ लोगों ने समझा कि गांधीजी ने इसे प्रकाशित कर सरकार को चुनौती दी है। डॉ० सप्रू और श्री जयकर ने 'मुलतान' जहाज से इसी आशय का बेतार का तार दिया और उसमें बताया कि आरोप-सूची के प्रकाशन ने वाइसराय व भारत-मंत्री के साथ संधि-चर्चा में उन्हें परेशानी में डाल दिया है। गांधीजी तो यहां तक तैयार थे कि कांग्रेस के विरुद्ध लगाये गये आरोपों की इकतरफा जांच किसी निष्पक्ष पंच-द्वारा करा ली जाय। गांधीजी के पत्र का वाइसराय ने जो जवाब दिया, वह भी सन्तोष-जनक न था। वाइसराय ने गत पांच मास की कांग्रेस की कार्रवाइयों का निर्देश करते हुए लिखा था कि वे दिल्ली-समझौते के भाव और अर्थों के प्रतिकूल थीं और शान्ति-स्थापन के लिए, विशेषतः युक्त-प्रान्त व सीमा-प्रान्त में, बाधक थीं। वाइसराय ने उसमें यह भी लिखा था कि गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस का सम्मिलित न होना समझौते के प्रधान उद्देश को असफल करना है, लेकिन सरकार विशेष उपायों को तबतक काम में न लायेगी जबतक कि वह ऐसा करने को बाध्य न हो जाय। गांधीजी ने समझौता-पालन की वाइसराय की इच्छा का हृदय से स्वागत किया और सब कांग्रेसियों को हिदायत दी कि वे सावधानी से समझौते

का पालन करें। उन्होंने इस विषय पर वाइसराय से वातचीत करने के लिए तार-द्वारा मुलाकात की अनुमति भी मांगी। मुलाकात की अनुमति मिल गई। इसपर गांधीजी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलालजी और गांधीजी के एकाकी मित्र सर प्रभाशंकर पट्टनी वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कार्यकारिणी की बैठक की। आखिर बहुत-सी वाधाओं के वाद मामले किसी तरह सुलझाये गये और गांधीजी शिमला से स्पेशल ट्रेन-द्वारा उस गाड़ी को पकड़ने के लिए रवाना हुए, जो उन्हें २९ अगस्त को रवाना होनेवाले जहाज पर सवार करा सके।

इस तरह गांधीजी और भारत-सरकार के प्रतिनिधियों की वातचीत के परिणाम-स्वरूप यह फैसला हुआ कि कांग्रेस की ओर से गांधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग लें और इसके अनुसार वह वम्बई से २९ अगस्त को जहाज पर रवाना हो गये।

भारत-सरकार ने एक सरकारी विज्ञप्ति में यह समझौता प्रकाशित कर दिया। इसके साथ ही गांधीजी का भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह भी प्रकाशित कर दिया। क्योंकि पत्र भी समझौते के मूल-भूत अंग थे। सरकार की विज्ञप्ति और वे पत्र नीचे दिये जाते हैं :—

सरकारी विज्ञप्ति

"१. वाइसराय महोदय और गांधीजी की वातचीत के परिणाम-स्वरूप गोलमेज-परिषद् में गांधीजी कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।

२. ५ मार्च १९३१ का समझौता चालू है। यदि यह साबित हो गया कि कुछ मामलों में उसका उल्लंघन किया गया है, तो भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें उन मामलों में समझौते की खास धाराओं का पालन करावेंगी और यदि उस सम्बन्ध में उनके सामने कोई वात रक्खी जायगी तो उसपर भी अच्छी तरह विचार करेंगी। समझौते के अनुसार कांग्रेस भी अपनी जिम्मेवारी को पूरा करेगी।

३. सूरत-जिले में लगान-वसूली के वारे में विचारणीय वात यह है कि क्या वारडोली-ताल्लुका और वालोड़ महाल के जिन गांवों में पुलिस-पार्टी के साथ माल-अफसर जुलाई १९३१ में गये थे, उनमें लगान देनेवालों की आर्थिक स्थिति को देखते हुए उनसे पुलिस-द्वारा जवरदस्ती करके वारडोली-ताल्लुके के अन्य गांवों की अपेक्षा अधिक लगान मांगा गया था या उनकी अपेक्षा उनसे अधिक वसूल किया गया? वम्बई-सरकार से परामर्श करने के वाद और उससे पूर्ण सहमत होते हुए, भारत-सरकार

ने यह निश्चय किया है कि इस प्रश्न की जांच की जायगी। जांच का क्षेत्र यह होगा कि :—

विचाराधीन गांवों में पुलिस-द्वारा जबरदस्ती और दमन करके खातेदारों को उन गांवों की अपेक्षा जहां ५ मार्च १९३१ के बाद पुलिस की सहायता के बिना वसूली हुई है, बारडोली के दूसरे गांवों में जो अंदाज रक्खा गया था उससे अधिक लगान देने के लिए बाधित किया गया, इस आरोप की जांच करना; और यदि कहीं ऐसा हुआ है, तो ठीक रकम का निर्धारण करना। इन बातों के अन्तर्गत उठनेवाले किसी भी विवाद पर गवाहियां दी जा सकती हैं।

बम्बई-सरकार ने जांच करने के लिए नासिक के कलक्टर मि० आर० सी० गॉर्डन को नियुक्त किया है।

४. कांग्रेस-द्वारा उठाये गये अन्य प्रश्नों के बारे में भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें जांच की आज्ञा देने को तैयार नहीं हैं।

५. यदि समझौते के क्षेत्र से बाहर कांग्रेस किसी मामले में नई शिकायतें करे, तो उन शिकायतों पर साधारण शासन-प्रबन्ध के कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार सरकार विचार करेगी और यदि जांच का कोई सवाल उठे तो, जांच करनी है या नहीं, और यदि जांच करनी है तो किस तरह से, इन सब बातों का फैसला प्रान्तीय-सरकारें प्रचलित कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार करेंगी।"

पत्र-व्यवहार

इमर्सन सा० के नाम गांधीजी का पत्र—शिमला २७ अगस्त १९३१

"आपके इसी तारीख के पत्र और एक नया मसविदा भेजने के लिए धन्यवाद। सर कावसजी ने भी आपके बताये संशोधन भेजने की कृपा की है। मेरे सहकारियों ने व मैंने संशोधित मसविदे पर खूब गौर किया है। नीचे लिखे स्पष्टीकरण के साथ हम आपके संशोधित मसविदे को स्वीकृत करने के लिए तैयार हैं—

चौथे पैरेग्राफ में सरकार ने जो स्थिति अख्तियार की है, उसे कांग्रेस की ओर से स्वीकार करना मेरे लिए असम्भव है। क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि जहां कांग्रेस की सम्मति में समझौते के व्यवहार में पैदा हुई शिकायत दूर नहीं की जाती वहां जांच करना जरूरी हो जाता है। क्योंकि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन उसी समय के लिए स्थगित किया गया है, जबतक दिल्ली का समझौता जारी है। लेकिन यदि भारत-सरकार व अन्य प्रान्तीय सरकारें जांच कराने के लिए उद्यत नहीं हैं, तो मेरे

सहकारी व मैं इस धारा के रहने देने पर कोई ऐतराज नहीं करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कांग्रेस अवसे उठाये गये अन्य मामलों के बारे में जांच के लिए जोर नहीं देगी, लेकिन यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जांच के अभाव में उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप में किसी उपाय को ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के स्थगित रहते हुए भी उसे करने के लिए स्वतंत्र होगी।

मैं सरकार को यह आश्वासन दिलाने की जरूरत नहीं समझता कि कांग्रेस का निरन्तर प्रयत्न यह रहेगा कि सीधे वार से वचें और विचार-विनिमय, समझाना-वुझाना आदि उपायों से शिकायत दूर करायें। कांग्रेस की स्थिति का उल्लेख यहां इसलिए आवश्यक हो गया है कि भविष्य में कोई संभावित गलतफहमी या कांग्रेस पर समझौता-उल्लंघन का आरोप न हो सके। वर्तमान वातचीत के सफल होने की हालत में मेरा खयाल है कि यह विज्ञप्ति, यह पत्र और आपका उत्तर एकसाथ प्रकाशित कर दिये जायेंगे।"

इमर्सन सा० का उत्तर—२७ अगस्त १९३१

"आज की तारीख के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमें आपने अपने पत्र में लिखे स्पष्टीकरण के साथ विज्ञप्ति के मसविदे को स्वीकार कर लिया है। कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने इस वात को ध्यान में ले लिया है कि अव आगे से उठाये गये मामलों में जांच पर जोर देने का इरादा कांग्रेस का नहीं है। लेकिन जहां आप यह आश्वासन देते हैं कि कांग्रेस हमेशा सीधे वार से वचने और आपसी वातचीत, समझाना-वुझाना आदि तरीकों से ही अपनी शिकायत दूर कराने का सतत प्रयत्न करेगी, वहां आप भविष्य में यदि कांग्रेस कोई कार्रवाई करने का निश्चय करे तो उसकी स्थिति भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। मुझे यह कहना है कि कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल आपके साथ इस आशा में सम्मिलित होते हैं कि सीधे वार के लिए कोई मौका नहीं आयेगा। जहां-तक सरकार के सामान्य रुख की वात है, मैं वाइसराय के ९ अगस्त को लिखे हुए पत्र का निर्देश करता हूँ। सरकारी विज्ञप्ति, आपका आज की तारीख का पत्र और यह उत्तर सरकार एकसाथ प्रकाशित कर देगी।"

इससे पाठक जान गये होंगे कि वारडोली की जांच का निश्चय हो गया तथा अन्य ऐसी विद्यमान शिकायतों के वारे में, जिनकी सरकार कोई सुनाई न करे, दिल्ली-समझौते के जारी रहते हुए भी कांग्रेस ने रक्षणात्मक प्रहार करने के अपने अधिकार

को बहाल रक्खा। आगे पैदा होनेवाली दिक्कतों का कोई निश्चित हल नहीं सोचा गया, उनकी जांच हो भी सकती थी और नहीं भी। जहां जांच न हो और दिक्कत भी दूर न की जाय, वहां यदि कांग्रेस चाहे तो जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए कोई सीधा वार भी कर सकती थी। साथ ही कांग्रेस-संस्थाओं और कांग्रेसियों को यह ध्यान में रखना था कि दिल्ली-समझौता जारी है और राष्ट्रपति को सूचित किये बिना वे अपनी ओर से समझौते का कोई भी उल्लंघन न करेंगे। जहां सरकार या उसके अधिकारियों के प्रति कोई शिकायत हो, शान्ति के साथ समझा-बुझाकर उसे दूर करने की हर तरह कोशिश की जाय। जहां इस प्रकार की कोशिशों में सफलता न मिले, वहां राष्ट्रपति को उसकी सूचना दी जाय और उनसे सलाह मांगी जाय।

गांधीजी ने जिस आरोप-सूची में सरकार के विरुद्ध कुछ मौजूदा शिकायतों का उल्लेख किया था और सरकार ने जिसका जवाब दिया था, उन मामलों से सम्बन्ध रखनेवाली सब कांग्रेस-कमिटियों से कहा गया कि वे सरकार के उत्तर पर अच्छी तरह विचार करें और अपना उत्तर महासमिति के पास अहमदाबाद भेजें। समझौते के और जो उल्लंघन हों या और कोई नई शिकायत पेश हो, तो वह भी जल्दी ही राष्ट्रपति के पास भेजी जाय।

लन्दन को रवाना

गांधीजी लन्दन को चल पड़े, लेकिन असाधारण आशावादी होते हुए भी उन्हें सफलता की उम्मीद न थी। फिर भी उन्होंने उम्मीद की थी कि प्रान्तीय सरकारें, सिविल-सर्विसवाले और अंग्रेज व्यापारिक कम्पनियां कांग्रेस की उद्देश-पूर्ति में सहायक होंगे। कार्य-समिति ने ११ सितम्बर १९३१ को अहमदाबाद में गांधीजी व राष्ट्रपति के शिमला में सरकार के साथ किये गये नये समझौते में पड़ने की कार्रवाई का समर्थन किया। कार्य-समिति ने इस बैठक में एक और महत्त्वपूर्ण निर्णय किया। सभी उद्योग-धन्धों से और विशेषकर कपड़े के कारखानों से कोयले की उन भारतीय खानों का कोयला बर्तने की सिफारिश की गई, जो इस आशय की प्रतिज्ञा करें कि वे जनता की भावनाओं से सहानुभूति रक्खेंगी; पूंजी व डाइरेक्टरों में ७५ फी सदी भारतीयता होगी; मैनेजिंग एजेण्ट के कारोबार में विदेशी स्वार्थ न होंगे; अपने दाम और माल की जात का ठीक इन्तजाम रखकर स्वदेशी के प्रचार में सहायता देंगी; उसके अधिकारी राष्ट्रीय-आन्दोलन के विरोधी प्रचार में न लगेंगे; विशेष कारणों के बिना केवल भारतीय ही नियुक्त किये जायेंगे; बीमा, बैंकिंग और जहाजी काम-काज भारतीय

कम्पनियों में ही करेंगी और इसी तरह आय-व्यय-परीक्षक, सॉलिसिटर, जहाजी एजेण्ट तथा ठेकेदार सब भारतीय ही रक्खे जायंगे; यथा संभव भारत में बनी चीजें ही व्यापार के लिए खरीदी जायंगी; प्रबन्ध-कर्त्ता लोग स्वदेशी कपड़ा ही पहनेंगे; खानों के मजदूरों को सन्तोष-जनक मजदूरी दी जायगी और उनके काम व रहन-सहन की दशा भी ठीक की जायगी तथा खानों के परीक्षित बैलेन्सशीट प्रति वर्ष कांग्रेस को भेजे जायँगे।

अक्तूबर व नवम्बर में भारत और इंगलैण्ड में होनेवाली सनसनीखेज घटनाओं की ओर बढ़ने से पहले हमें गांधीजी और उनकी यात्रा का हाल भी जान लेना चाहिए। गांधीजी के साथ श्री महादेव देसाई, देवदास गांधी, प्यारेलाल और श्रीमती मीराबहन थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उनके साथ थीं। जो सामान अपने साथ ले जाने की उन्हें अनुमति मिली थी, उसका वर्णन करने की कोई आवश्यकता न थी। सूचना का समय थोड़ा होने और यात्रा के अनिश्चित होने के कारण वह काफी थोड़ा था, लेकिन गांधीजी की सतर्क व कठोर दृष्टि ने उसे और भी थोड़ा कर दिया। अदन में उनका हार्दिक स्वागत हुआ, जहां अरबों व भारतीयों ने कुछ दिक्कत के बाद उन्हें एकसाथ अभिनन्दन-पत्र तथा ३२८ गिन्नी की थैली दी।

जहाज पर भी गांधीजी उसी तरह अपनी प्रार्थना, अपना चरखा और बालकों के साथ अपना मनोरंजन आदि साधारण जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे आश्रम में करते थे। गांधीजी को श्रीमती जगलूलपाशा और वफ्दपार्टी के अध्यक्ष नहसपाशा ने बधाई भेजी। पहले का संदेश तो स्वभावतः हृदयस्पर्शी था, और दूसरे का हार्दिक उत्साह इस उद्धरण से ज्ञात हो जायगा—

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिश्र के नाम पर मैं उसी स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले भारत के सर्व-प्रधान नेता का स्वागत करता हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नता-पूर्वक लौटें। मैं ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूँ कि आप जब वहां से लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलने की खुशी हासिल होगी। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नों में आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे।"

मिस्री शिष्ट-मण्डल को पोर्टसईद पर गांधीजी से मिलने की आज्ञा नहीं दी गई, लेकिन कैरो पर भारतीयों के शिष्ट-मण्डल को उनसे मिलने दिया गया। बहुत दिक्कत के बाद नहसपाशा का एक प्रतिनिधि गांधीजी से मिल सका।

जब गांधीजी मार्सेलीज पहुँचे, श्री रोम्यां रोलां की बहन मैडलीन रोलां उनका

उत्साह-पूर्वक स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थीं। रोम्यां रोलां अस्वस्थ होने के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके थे। मैडलीन रोलां के साथ मोशियर प्रिवे व उनकी सुपत्नी भी थीं। मो० प्रिवे स्विजरलैण्ड के एक अध्यापक हैं, जिन्हें भारत-सरकार ने पीछे १९३२–३३ के आन्दोलन में मामूली तथा संदिग्ध अध्यापक कहकर प्रसिद्ध कर दिया था। कितने ही फ्रांसीसी विद्यार्थियों ने भी गांधीजी का अभिनन्दन किया। गांधीजी लन्दन के ईस्ट-एण्डवाले सार्वजनिक गृहों तथा गरीबों के मैले घरों के बीच मिस म्यूरियल लिस्टर के यहां किंग्स्ले-हाल में ठहरे। लन्दन में उन्हें ठहरने के लिए बहुतसे निमंत्रण मिले और इससे भी ज्यादा निमंत्रण गांवों में उन्हें सप्ताह का अन्तिम भाग शान्ति से बिताने के लिए मिले। एक मित्र ने एक दिन यूस्टन-रोड पर स्थित मित्रसभा-भवन (Friends' Meeting House) में दिये गांधीजी के भाषण व किंग्सले-हाल से न्यूयार्क को ब्रॉडकास्ट-द्वारा भेजे गये संदेश की रिपोर्ट 'टाइम्स' में पढ़कर ५० पौण्ड का चेक ही भेज दिया था।

परिषद् में

गांधीजी ने लन्दन में वेस्ट-एण्ड की अपेक्षा ईस्ट-एण्ड को, ब्रिटिश सरकार के आतिथ्य की अपेक्षा मिस म्यूरियल लिस्टर के आतिथ्य को, और धनी लोगों की संगति की अपेक्षा दरिद्रों की संगति को, अधिक पसन्द किया था। 'चचा गांधी'—हिन्दुस्तानी चप्पल के सिवा नंगे पैर, कमीज भी नदारद, सिर्फ चादर ओढे हुए—ईस्ट-एण्ड के बालकों में इतने प्रिय हो गये थे कि वे प्रति दिन प्रातःकाल आकर उनको घेर लेते थे। गांधीजी और उनकी शाम की प्रार्थनायें, लंकाशायर के मजदूरों के एक समान अतिथि के रूप में गांधीजी, गांधीजी और उनकी ब्रिटिश-सम्राट् से अपनी मामूली पोशाक में भेंट—ये सब ऐसी बातें हैं जिनका कांग्रेस के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जो भारतीयों के लिए बहुत दिलचस्पी की हैं, जो जीवन को अविभाज्य मानते हैं कि जीवन विभिन्न विभागों में—जैसा कि आजकल समझने की प्रथा चल पड़ी है—नहीं बांटा जा सकता है।

गोलमेज-परिषद् में गांधीजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रह सकता। फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी में दिये गये उनके भाषण को लन्दन में दिये गये उनके अन्य भाषणों की उत्तम भूमिका कह सकते हैं। उन्होंने कांग्रेस, उसका इतिहास, उसकी रचना, उसके साधन, उसके उद्देश्य आदि सबका संक्षिप्त परिचय नपे-तुले शब्दों में दिया। कोई बात छूटने न पाई। उनके इसी परिचय को हमने वस्तुतः

इस पुस्तक की भूमिका बनाया है। उन्होंने कांग्रेस के जन्मकालीन सहायक और पालन-पोषणकर्त्ता मि० ए० ओ० ह्यूम के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उन्होंने कांग्रेस व सरकार तथा कांग्रेस तथा अन्य दलों के आधार-भूत भेदों का निर्देश किया। उन्होंने करांची का प्रस्ताव पढ़कर उसकी व्याख्या की। उन्होंने यह भी बताया कि प्रधान-मंत्री का वक्तव्य केन्द्रीय उत्तरदायित्व, संघ तथा भारतीय हितों की दृष्टि से संरक्षण, इन तीन किरणों से चित्रित भारतीय ध्येय से बहुत कम है। उन्होंने वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता पर भी—जो केवल राजनैतिक विधान नहीं है, परन्तु दो समान राष्ट्रों की भागीदारी की योजना है—विचार प्रकट किये। उन्होंने 'ब्रिटिश प्रजाजन' की अपनी पहली स्थिति और 'बागी' की आधुनिक स्थिति में, साम्राज्य के और राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के आदर्शों में कितना भेद है, यह बताया। उन्होंने किसी दूकान की व्यवस्था बदलने के समय का उदाहरण दिया और उस समय दूकान के लेन-देन आदि का हिसाब समझने-समझाने के तरीके का जिक्र किया और अन्त में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि हम इंग्लैण्ड के घरेलू संकट में दस्तन्दाजी करनेवाले नहीं हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है जब कि इंग्लैण्ड भारत को शक्ति-बल से नहीं, बल्कि प्रेम-रूपी डोरी से बांधा हुआ रक्खे। ऐसा भारत इंग्लैण्ड के एक साल के बजट को ही नहीं, कई सालों के बजट को ठीक करने में सहायक सिद्ध होगा।

अल्पसंख्यक-समिति में भाषण देते हुए गांधीजी ने कई खरी बातें पेश कीं। उन्होंने असंदिग्ध भाषा में यह कहते हुए स्थिति को बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी मांग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि यही प्रश्न आधार-रूप नहीं है, हमारे समाने मुख्य प्रश्न तो शासन-विधान का निर्माण है। उन्होंने पूछा कि क्या प्रतिनिधियों को अपने घरों से ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिए ही बुलाया गया है? हमें लन्दन में इसलिए निमंत्रित किया गया है कि हमें जाने से पहले यह संतोष हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान-युक्त व असली ढांचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल पार्लमेण्ट की स्वीकृति लेनी रह गई है। उन्होंने सर ह्यूबर्ट कार की अल्पसंख्यक जातियों की योजना की चुटकी लेते हुए कहा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियों को इससे जो संतोष हुआ है वह मैं उनसे न छीनूंगा, लेकिन मेरे विचार में उन्होंने जो-कुछ किया है वह मुर्दे की चीर-फाड़ जैसा ही है। सरकार की यह योजना उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नहीं किन्तु नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए ही बनाई गई है। "मैं उनकी

सफलता चाहता हूँ", उन्होंने कहा—"लेकिन कांग्रेस इससे बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा में पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा कांग्रेस चाहे कितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।" अन्त में उन्होंने उस कठिन प्रतिज्ञा के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिसपर कुछ समय बाद उन्होंने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। उन्होंने कहा—"अस्पृश्य कहे जाने-वालों के प्रति एक शब्द और। अन्य अल्पसंख्यक जातियों के भावों को मैं समझ सकता हूँ, लेकिन अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक निरंतर रहेगा।......... हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक् जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और ईसाई हमेशा के लिए ईसाई रह सकते हैं। लेकिन क्या अछूत भी सदा के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं जानते, और हिन्दू-समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते। इस-लिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहता हूँ कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊँ तो भी, अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी, मैं इसका विरोध करूँगा।"

गांधीजी प्रधान-मन्त्री को पंच बनाने के विरोध नहीं थे, बशर्ते कि उनका निर्णय केवल मुसलमानों और सिक्खों तक सीमित हो। अन्य जातियों के पृथक् प्रति-निधित्व से वह सहमत न थे। प्रधान-मन्त्री ने इस विषय पर एक सीधा-सादा सवाल किया—"क्या आप, आपमें से प्रत्येक—कमिटी का प्रत्येक सदस्य—साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने और उससे अपनेको बाधित मानने के लिए मेरे पास प्रार्थना-पत्र भेजेंगे? मेरा खयाल है कि यह बहुत अच्छा प्रस्ताव है।" पाठक यह न भूले होंगे कि प्रधान-मन्त्री का यह निर्णय जब अगस्त १९३२ में प्रकाशित हुआ था, तब यह सवाल भी हुआ था कि क्या व्हाइट-पेपर के अन्य प्रस्तावों के साथ यह भी सरकार का प्रस्ताव है, या यह प्रधान-मन्त्री का निर्णय (Award) है? गोलमेज-परिषद् के सब सदस्यों ने इस किस्म के प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये थे, इसलिए पंच की हैसियत से निर्णय दिया ही नहीं जा सकता था और इसलिए यह निश्चय भी एक प्रस्ताव-मात्र था और इसे ब्रह्मवाक्य नहीं माना जा सकता।

गांधीजी का रुख

१८ नवम्बर १९३१ तक मंत्रि-मण्डल गोलमेज-परिषद् से ऊब चुका था। इस दिन लॉर्ड सैंकी ने प्रधान-मंत्री का यह इरादा सुनाकर सबको चकित कर दिया कि भाषणों के बाद कमिटी को विसर्जन कर दिया जाय और आगामी सप्ताह खुली बैठक की जाय। विरोधी-दल की ओर से बोलते हुए मि० बेन ने इसका यह कहकर विरोध किया कि सरकार परिषद् की हत्या कर रही है। सर सेम्युअल होर ने कहा कि हमें वस्तुस्थिति का ध्यान रखना चाहिए और यह अनुभव करना चाहिए कि इन परिस्थितियों में यह मामला यहीं बन्द कर भावी कार्य-विधि के सिलसिले में प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य की प्रतीक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है। सेना के सवाल पर बहस हुई और गांधीजी ने इस विषय पर भी कुछ और स्पष्ट बातें कहीं। लेकिन उससे पहले उन्होंने यह भी कहा कि जरूरत हुई तो मैं इंग्लैण्ड में अधिक समय तक ठहरने का भी विचार रखता हूँ, क्योंकि मैं तो लन्दन आया ही इसलिए हूँ कि सम्मान-युक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। उन्होंने जोर के साथ यह कहा कि कांग्रेस उत्तरदायी-शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेवारियों को—रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक—आवश्यक हेर-फेर और व्यवस्था के साथ अपने कन्धों पर उठाने के योग्य है। उन्होंने इसका भी निर्देश किया कि भारत की सेना वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। उसके सैनिक चाहे किसी जाति के हों, मेरे लिए सब विदेशी हैं; क्योंकि मैं उनसे बोल नहीं सकता, वे खुले तौर पर मेरे पास आ नहीं सकते, और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे कांग्रेसियों को अपना देश-भाई न समझें। "इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।" "अंग्रेजी सेना वहां पर अंग्रेजों के स्वार्थों की रक्षा के लिए, विदेशियों के हमलों को रोकने के व आन्तरिक विद्रोह के दमन के लिए रक्खी गई है।" वस्तुतः केवल अंग्रेजी फौज के ही नहीं, सम्पूर्ण सेना (भारतीय सेना) रखने के भी यही हेतु हैं। लेकिन अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तान में रखने का उद्देश इन विभिन्न भारतीय सैनिकों में सन्तुलन रखना है। सम्पूर्ण सेना पर पूरा-पूरा भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वह सेना मेरा आदेश नहीं मानेगी, न प्रधान-सेनापति और न सिक्ख या राजपूत ही मेरी आज्ञा मानेंगे, "किन्तु फिर भी मैं आशा करता हूँ कि ब्रिटिश-जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश और आज्ञा का पालन उनसे करा सकूंगा। अंग्रेजी फौजों को भी यह कहा जा सकेगा कि अब तुम यहां अंग्रेजों के स्वार्थों की रक्षा के लिए नहीं, लेकिन भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए हो।" यह

सब मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूँ कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों या जनता से इस स्वप्न को पूर्ण न करा सकूंगा; लेकिन जबतक मेरा यह स्वप्न पूरा न होगा, फौज पर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी-भर इसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करूँगा। भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सकते हैं। राजपूत तो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मापोली नहीं, हजारों थर्मापोलियों के जन्मदाता कहे जाते हैं।

सच बात तो यह है कि किसी दिन गांधीजी अंग्रेजों और उनकी कर्तव्य-बुद्धि पर विश्वास करते थे। उन्होंने कहा—"हमें अंग्रेजों के हृदय में भारत के प्रति उस प्रेम-भाव का संचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके। यदि अंग्रेज लोगों का यह खयाल है कि ऐसा होने के लिए अभी एक सदी दरकार है, तो इस सदी-भर कांग्रेस बयावान में भटकती रहेगी, उसे भयंकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा, आपदाओं के तूफान और गलतफहमियों के बवण्डर का मुकाबला करना होगा, और यदि परमात्मा की इच्छा हुई तो गोलियों की बौछार भी सहनी पड़ेगी।" संरक्षणों पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि "यद्यपि उनके भारत के हित में होने की बात लिखी गई है, फिर भी मैं लॉर्ड अर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हूँ कि 'गांधी ने भी यह मान लिया है कि संरक्षण भारत और इंग्लैण्ड दोनों के हितों की रक्षा के लिए हों।' मैं फिर कहता हूँ कि मैं एक भी ऐसे संरक्षण की कल्पना नहीं करता, जो केवल भारत के हित में होगा। कोई भी ऐसा संरक्षण नहीं है, जो साथ-साथ ब्रिटिश स्वार्थों की भी रक्षा न करे, बशर्ते कि हम साझेदारी—इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी—की कल्पना करें।" गोलमेज-परिषद् के खुले अधिवेशन में बोलते हुए उन्होंने उपस्थित लोगों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं इस भ्रम में नहीं हूँ कि आजादी बहस-मुबाहसे एवं सन्धि-चर्चा से मिल सकती है। लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि जब यह घोषणा हो चुकी है कि परिषदों या कमिटियों में फैसले की कसौटी बहुमत नहीं रक्खी जायगी, तब परिषद् के संयोजक ऐसी कमिटियों की एक के बाद दूसरी रिपोर्ट पर 'बहुमत की सम्मति' कैसे लिखते हैं और मतभेद रखनेवाले 'एक' के नाम तक का उल्लेख नहीं करते? वह 'एक' कौन है? क्या यहां उपस्थित दलों में से कांग्रेस भी एक दल है? मैं पहले भी यह दावा कर चुका हूँ कि कांग्रेस ८५ फी सदी जनता की प्रतिनिधि है। अब मैं यह दावा करता हूँ कि अपनी सेवा के अधिकार से कांग्रेस राजाओं, जमींदारों और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं;

कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो साम्प्रदायिकता से दूर है। इसका मंच सबके लिए—जाति, वर्ण और धर्म के भेदभाव-खयाल किये विना—एकसा खुला है। इसका ध्येय बहुत ऊँचा है, इसलिए यह सम्भव है कि कुछ लोग इसके पास न आते हों; लेकिन कांग्रेस उन्नतिशील संस्था है; दूर-दूर गांवों में इसका प्रचार हो रहा है। फिर भी इसे अनेक दलों में से एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिससे किया फैसला कारआदम हो सकता है। क्योंकि यह साम्प्रदायिक पक्षपात से ऊपर उठी हुई संस्था है। कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस मुकाबले की सरकार चलाने की कोशिश कर रही है। अच्छा। यदि कांग्रेस हत्यारे के छुरे, जहरीले प्याले, गोलियों और भालों के मार्ग को छोड़कर अहिंसा-पूर्वक मुकाबले की सरकार चला सकती है, तो इसमें बुरा ही क्या है? यह ठीक है कि कलकत्ता-कारपोरेशन पर एक लाञ्छन लगाया गया था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ज्योंही उस बात के सम्बन्ध में मेयर का ध्यान आकर्षित किया गया, उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उस सम्बन्ध में यथोचित परिमार्जन भी किया था। कांग्रेस हिंसा नहीं, अहिंसा को मानती है; इसलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकार ने बरदाश्त नहीं किया। परन्तु उसका मुकाबला भी नहीं किया जा सकता था—स्वयं जनरल स्मट्स भी नहीं कर सके। १९०८ में जो भारतीयों को देने से इन्कार किया जाता था, १९१४ में वही दे देना पड़ा। बोरसद व बारडोली में सत्याग्रह सफल हुआ है। लॉर्ड चेम्सफोर्ड भी इसे स्वीकार कर चुके हैं। इंग्लैण्ड में प्रोफेसर गिलबर्ट मरे जैसे कुछ आदमी भी हैं, जो मुझे कहते हैं कि आप यह खयाल न करें कि जब भारतीयों को कष्ट-सहन करना पड़ता है तब अंग्रेज लोग दुःखी नहीं होते। लॉर्ड अर्विन ने आर्डिनेन्सों के द्वारा देश को खूब तपाया है, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। "समय रहते हुए, मैं चाहता हूँ, आप समझें कि कांग्रेस का ध्येय क्या है। स्वतंत्रता इसका ध्येय है, चाहे फिर आप इसको कोई भी नाम दें।" दिक्कत तो यही है कि यहां कोई एक मत नहीं और न परिषद् ने शब्दों और भावों की निश्चित व्याख्या कर रक्खी है। जब शब्द विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने लगते हैं तब किसी एक बात पर आकर टिकना असम्भव हो जाता है। एक मित्र ने वेस्टमिनिस्टर के विधान की ओर ध्यान खींचते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैंने उपनिवेश शब्द की परिभाषा पर गौर किया है? हां, मैंने किया है। उपनिवेश गिना दिये हैं, लेकिन उस शब्द की परिभाषा नहीं की गई। भारत के सम्बन्ध में तो वे १९२६ की निम्नलिखित आशय की परिभाषा को भी स्वीकार नहीं करना चाहते—

"उपनिवेश वे स्वतन्त्र देश हैं, जो ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत हों, उनका दर्जा एक समान हो, घरेलू व बाहरी किसी भी पहलू से वे एक-दूसरे के आधीन न हों, यद्यपि सम्राट् के प्रति एक-समान राजभक्ति के सूत्र से परस्पर बंधे हों और स्वतंत्रता-पूर्वक ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के सदस्यों में सम्मिलित हुए हों।"

मिश्र इनमें नहीं है। भारत भी उसकी परिधि में न था। अतः गांधीजी को चिन्ता न थी। वह तो पूर्ण-स्वतन्त्रता चाहते थे। एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने उनसे कहा था कि आपकी पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ क्या है—क्या इंग्लैण्ड से साझेदारी ? हां, दोनों के पारस्परिक हितों के लिए साझेदारी। गांधीजी तो केवल मित्रता चाहते थे। ३५ करोड़ जनता के राष्ट्र को हत्यारे के छुरों, जहरीले प्यालों, तलवारों, भालों या गोलियों की आवश्यकता नहीं है। उसे तो अपने संकल्प की जरूरत है; 'नहीं' कहने की शक्ति की आवश्यकता है। और वह आज 'नहीं' कहना सीख रहा है। संरक्षणों का जिक्र करते हुए गांधीजी ने कहा कि "मुझे तीन विशेषज्ञों ने बताया है कि जहां देश की ८० फी-सदी आय इस तरह गिरवी रख दी गई है, जिसके कि वापस आने की कोई संभावना नहीं, वहां किन्हीं उत्तरदायी मंत्रियों के लिए शासन-तंत्र चलाना असम्भव है। मैं भारत के अनुचित कानूनी हितों की रक्षा नहीं चाहता। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ब्रिटिश हितों के लिए हानिकारक संरक्षण भी मैं नहीं चाहता। जैसे सर सेम्युअल होर और मैं संरक्षणों पर सहमत नहीं हो सकते, वैसे ही श्री जयकर और मैं भी इस पर सहमत नहीं हुए। भारत अनेक समस्याओं को—प्लेग, मलेरिया, सांप, बिच्छू और शेरों की समस्याओं को—पार कर गया है। वह घबरा नहीं जायगा। परमात्मा के नाम पर मुझ ६२ साल के दुबले-पतले आदमी को थोड़ा-सा तो मौका दो। मुझे और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधि हूं उसके लिए, अपने हृदय के कोने में थोड़ा स्थान तो बनाओ। यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते हैं, तथापि कांग्रेस पर अविश्वास करते हैं। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस महान् संस्था से भिन्न न समझिए जिसमें कि मैं तो समुद्र की एक बूंद के समान हूँ। मैं कांग्रेस से बहुत छोटा हूँ। और यदि आप मुझपर विश्वास कर मुझे कोई जगह दें, तो मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ कि आप कांग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं; क्योंकि कांग्रेस से जो अधिकार मुझे मिला है उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नहीं। यदि आप कांग्रेस की प्रतिष्ठा के अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतंकवाद को नमस्कार कर लेंगे। तब आपको उसे दबाने के लिए अपने आतंकवाद की कोई जरूरत न रहेगी। आज तो आपको अपने व्यवस्थित और संगठित

आतंकवाद के द्वारा वहां पर विद्यमान आतंकवाद से लड़ना है; क्योंकि आप वास्तविकता से अथवा ईश्वरी संकेत से अपरिचित हैं। क्या आप उस संकेत को नहीं देखते, जो ये क्रान्तिकारी अपने रक्त से लिख रहे हैं? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम आज गेहूँ की बनी हुई रोटी नहीं बल्कि आजादी की रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नहीं मिल जाती, ऐसे हजारों लोग मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञा बद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही चैन से बैठने देंगे?"

बारडोली की जांच

जब १ दिसम्बर को परिषद् विसर्जित हुई, तो गांधीजी ने सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि अब हमें अलग-अलग रास्तों पर जाना होगा। और हमारे रास्ते विभिन्न दिशाओं में जाते हैं। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन में आनेवाली आंधियों से टक्कर लें। "मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा, लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। यदि मुझे आपसे बिलकुल विभिन्न दिशा में भी जाना पड़े, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी तो हैं ही।" इन भावीसूचक शब्दों के साथ गांधीजी गोलमेज-परिषद् से विदा हुए। उस समय स्थिति यह थी कि जिन शर्तों पर कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुई थी, उनमें से एक—घोर-दमन रोक दिया जायगा—पूरी तरह टूट चुकी थी। गांधीजी बंगाल व युक्तप्रान्त की बढ़ती हुई बुरी स्थिति से बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि उनका खयाल था कि भारत में दमन-नीति को जारी रखना लन्दन में प्रदर्शित सहयोग और भारत को स्वतन्त्रता देने की इच्छा से बिलकुल मेल नहीं खाता।

जब गांधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे, तब यह आश्वासन दिया गया था कि बारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले में पुलिस की ज्यादतियों के आरोपों की जांच होगी। मि० गॉर्डन को सूरत जिले के मालगुजारी-कानून के अनुसार अधिकार देकर जांच के लिए खास अफसर नियत किया गया। जांच ५ अक्तूबर १९३१ को शुरू हुई। श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल उपस्थित थे। दोनों पक्ष इसपर सहमत हो गये कि किसानों को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक-से-अधिक लगान देना चाहिए और यदि किसान उन सत्याग्रहियों में से नहीं हैं, जिन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, तो उन्हें कर्ज लेकर भी लगान देना चाहिए। श्री देसाई ने बहुत से पत्र, तार व लेख सुनाये। उनमें बारडोली का एक तार यह भी था कि रायम गांव पर कलक्टर ने पुलिस के १५ सिपाहियों के साथ धावा बोला। टिम्बर्वा, राजपुरा, लाम्भा,

माणकपुर, वलोडगढ़, अलगोधा और जामणिया पर भी धावा बोला गया। जांच एक अरसे तक चलती रही। भारत-सरकार व बम्बई-सरकार ने ५ मार्च से २८ अगस्त तक जितनी आज्ञायें प्रचारित की थीं, कांग्रेस ने उन्हें पेश करने के लिए कहा, क्योंकि उनसे समझौते में निर्दिष्ट स्टैण्डर्ड के प्रश्न पर काफी प्रकाश पड़ सकता था। मि० गॉर्डन यह बात समझ न सके कि सरकार को कांग्रेस की बात सिद्ध करने के लिए गवाह के रूप में क्यों बुलाया जाय? उन्होंने कहा कि "यह अनुमान करना चाहिए कि कांग्रेस ने अभियोग लगाने से पूर्व वह सब मसाला एकत्र कर लिया होगा, जिसके आधार पर उसने अभियोग लगाया, और उस मामले को पेश करना तथा अपने मामले को पुष्ट करना कांग्रेस का फर्ज है। कांग्रेस सरकार के किसी खास हुक्म की ओर निर्देश करना चाहे, तो और बात है।" तब कांग्रेस ने अभिलषित कागजों को मांगने के कारण बताये और यह भी बताया कि किस किस्म के कागज विरोधी-पक्ष के अधिकार में हैं। मि० गॉर्डन ने १२ नवम्बर १९३१ को यह हुक्म दिया कि "विचाराधीन प्रश्न के सिलसिले में अनिश्चित और अयुक्ति-युक्त मांगों से सहमत होना असम्भव है।" श्री देसाई ने इस हुक्म पर ऐतराज उठाते हुए कहा कि इसमें यह मान लिया गया है कि मानों अपनी गवाही की खामी को पूरा करने के लिए कांग्रेस ने सरकारी कागजों को इतनी देर बाद पेश करने की माँग की है। महत्वपूर्ण वास्तविक घटनाओं के सत्यासत्य के निर्णय के लिए की गई जांच में विरोधी-पक्ष जिस भावना से सहयोग करना चाहता है, उसका ज्ञान भी मि० गॉर्डन के इस हुक्म से हो जायगा। 'सार्वजनिक-हित' करने की उनकी इच्छा भी इस निर्णय से मालूम हो जायगी। उस स्पिरिट का खयाल करते हुए मैं जिन परिणामों पर दुःख-पूर्वक पहुँचा हूँ, वे और भी पुष्ट हो गये हैं। वल्लभभाई पटेल ने किसानों के नाम एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए लिखा कि "जांच का रुख विरोधी और इकतरफा दीखता है। लेकिन मैं उस वक्त तक न हटूंगा, जबतक कि हमारे प्रतिनिधि वकील को यह यकीन न हो जाय कि आगे कार्रवाई करना निरुपयोगी है।" दरअसल सरकार के हाथ में मौजूद कागजों को पेश करने से इन्कार कर देने का अर्थ सरकारी गवाहों पर से जिरह की एक उपयोगी कैद को हटा देना था और यह भी महसूस किया गया कि इस तरह अवकचरी जाँच निरुपयोगी से भी अधिक बुरी है। इस कारण सरदार वल्लभभाई पटेल ने जाँच से हाथ खींच लिया और १३ नवम्बर १९३१ को गांधीजी को लन्दन निम्नलिखित तार भेजा :—

"जिन ग्यारह गांवों की इजाजत दी गई थी, उनमें से सात गांवों के ९२ खातेदारों और ७१ गवाहों की गवाहियां ली गई हैं। जांच के क्षेत्र में नहीं आते, यह

कहकर पांच गांवों की जांच करने की इजाजत ही नहीं मिली। सरकार के पहले गवाह मामलतदार की आंशिक जिरह में महत्त्वपूर्ण इकवाल के वाद जांच-अफसर ने यह फैसला किया है कि जांच-विपयक प्रश्नों से सम्बन्ध रखनेवाले सरकारी कागजों को पेश कराने या उनके देखने का हमें अधिकार नहीं है। जांच का रुख स्पष्टतः विरोधी और इकतरफा है। श्री भूलाभाई की सहमति से आज जांच से अलग हो गया हूं।"

युक्तप्रान्त में विकट स्थिति

युक्तप्रान्त में विकट परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। यह भी कहा जा सकता है कि उसने भविष्य के कई सालों की भारतीय राजनीति की दिशा निश्चित कर दी। युक्तप्रान्त में किसानों की—अधिकांशतः ताल्लुकेदारों व जमींदारों के अधीनस्थ किसानों की—आर्थिक दशा वहुत खराव हो रही थी। उनकी विपत्ति वढ़ रही थी। लगान-वसूली के तरीकों में नरमी का नाम-निशान न था।

दिल्ली-समझौते के वाद के महीनों में युक्तप्रान्त के किसानों की हालत निरन्तर खराव होती गई। दाम वहुत गिर जाने पर भी लगान में छूट काफी न होने से वहुत वड़ी आपत्ति आ गई। वेदखलियों तथा दवाव की ज्यादती से यह आपत्ति और भी अधिक गंभीर हो गई। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानों पर आतंक का राज्य छा गया और उनके साथ क्रूरता-पर-क्रूरता होने लगी। जिन जिलों में किसानों के साथ सख्तियां की गईं, उन्हें देखने तथा किसानों की स्थिति और विपत्तियों पर अपनी रिपोर्ट देने के लिए युक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने कई-जांच-कमिटियां विठाईं। ली गई गवाहियों से समर्थित इन रिपोर्टों पर विशेप प्रान्तीय कृपक-जांच कमिटी ने विचार किया। पन्त-कमिटी के नाम से मशहूर, इस विशेप कमिटी की रिपोर्ट सितम्वर १९३१ में प्रकाशित की गई।

इस अरसे में दुःखी और त्रस्त किसानों के दुःख दूर करने के लिए गांधीजी व युक्तप्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के प्रयत्न जारी रहे। अगस्त १९३१ में भारत-सरकार व गांधीजी की शिमला की मुलाकात में युक्तप्रान्त के किसानों के आर्थिक संकट पर विशेप-रूप से विचार हुआ और गांधीजी ने इसका भी निर्देश कर दिया कि यदि किसानों के दुःख दूर न हो सकें, तो उन्हें सत्याग्रह करने का अधिकार होगा। २७ अगस्त १९३१ को गांधीजी ने भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन को जो पत्र लिखा और जो शिमला-समझौते का एक अभिन्न भाग वन गया था उसमें यह स्पप्ट लिखा था, "यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जांच न

होने पर उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप में कोई उपाय ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा के स्थगित रहते हुए भी ऐसा कदम उठाने में स्वतन्त्र होगी।" २७ अगस्त को गांधीजी के लिखे मि० इमर्सन के जवाब में कांग्रेस की स्थिति-सम्बन्धी इस वक्तव्य का उल्लेख किया गया है। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी युक्तप्रान्तीय किसान-संकट के बारे में भारत-सरकार को कई बार लिखा था।

इस तरह यह स्पष्ट है कि युक्त-प्रान्त में कांग्रेस ने किसान-समस्या का हल निकालने के लिए सरकार के साथ सहयोग करने का प्रत्येक प्रयत्न, जो उसके बस में था, किया। शिमला-समझौते के बाद फिर बार-बार पत्र लिखे गये, लेकिन बेदख़ल व अन्य किसानों का कोई दुःख दूर न हुआ और वसूली की साधारण मियाद के बाद भी बहुत समय तक अत्याचार व शारीरिक यातना दे-देकर जबरदस्ती वसूलियां जारी रहीं। पिछली फसल की कठिनाइयों और बेदख़लियों का कोई सन्तोषजनक हल निकले, इससे पहले नये फसली साल १३३९ के प्रारम्भ के साथ एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई, जबकि नई वसूली का सवाल भी आ खड़ा हुआ। भारी आफतों से निरन्तर संघर्ष के कारण किसान पहले ही जीर्ण-शीर्ण हो गये थे, अब उन्हें इस नई आफत का सामना करना पड़ा। प्रान्तीय सरकार ने लगान में जिस छूट की घोषणा की, वह बिलकुल नाकाफी थी। बेदख़ल किसानों की बकाया या स्थानीय विपत्तियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई। इन सबके ऊपर कई जिलों में सरकार ने यह घोषणा कर दी कि यदि मांगा हुआ पूरा लगान एक मास के अन्दर न दे दिया गया, तो जो छूट मिली है वह भी वापस ले ली जायगी। घोषणा में आगे यह बताया गया था कि मांगा हुआ पूरा लगान चुका देने के बाद ही किसान कोई ऐतराज उठा सकते हैं। इन घोषणाओं ने विकट स्थिति उत्पन्न कर दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि छूट नियत करते हुए न तो कांग्रेस से सलाह ली गई थी और न किसानों के अन्य प्रतिनिधियों से।

सरकारी घोषणाओं के प्रकाशित होने के बाद जल्दी ही इलाहाबाद-जिला-कांग्रेस-कमिटी ने इस प्रश्न को उठाया और बताया कि किसानों के लिए मांगी गई रकम को चुकाना सम्भव नहीं है। और भी अधिकांश जिले इसी या इससे भी बुरी हालत में थे। प्रान्तीय-सरकार से फिर मिला गया और उसे बताया गया कि छूट, बेदख़ली, बकाया तथा स्थानीय विपत्तियों के सम्बन्ध में किसानों के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है। युक्तप्रान्त के अधिकांश जिलों के लिए उदाहरण-रूप इलाहाबाद-जिले के मामले पर विचार करने के लिए एक तरफ कुछ स्थानीय

अधिकारियों और बन्दोबस्त-कमिश्नर तथा दूसरी तरफ कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच एक सम्मेलन की योजना की गई। वह सम्मेलन असफल सिद्ध हुआ, क्योंकि सरकार की ओर से यह कहा गया कि वह इस प्रश्न के महत्त्वपूर्ण अंगों पर बहस करने के लिए तैयार नहीं है। वह केवल उन्हीं नियमों के प्रयोग पर बहस कर सकती है, जो उसने (सरकार ने) निर्धारित किये हैं। इस तरह समस्या के मूल प्रश्न पर कोई विचार ही नहीं हुआ।

पिछले महीनों में युक्तप्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी की ओर से प्रान्तीय-सरकार के ऐसे प्रतिनिधियों के साथ सम्मेलन करने के बार-बार प्रयत्न किये गये, जो समस्या के सभी पहलुओं पर विचार कर सकने में समर्थ हों। युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने सरकार से सन्धि-चर्चा के लिए सब अधिकार देकर एक विशेष समिति भी नियुक्त कर दी। पर इन प्रयत्नों में भी कोई सफलता न हुई।

पत्र-व्यवहार के सिलसिले में कांग्रेस की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया था कि वह किसी भी किस्म का हल, चाहे किसी तरह से निश्चित किया गया हो, स्वीकार करने को तैयार है, बशर्ते कि उससे किसानों को काफी राहत मिलती हो। जब वसूली का समय आया, किसान बार-बार पूछने लगे कि हमें क्या करना चाहिए? युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ऐसा कोई कदम उठाना नहीं चाहती थी, जिससे समझौते तक पहुँचने की बातचीत ही टूट जाय। लेकिन उसी समय किसानों के लगातार सलाह मांगने पर वह चुप भी न रह सकती थी और न यही सलाह दे सकती थी कि वे मांगी हुई रकम दे दें, क्योंकि उसे विश्वास था कि यह रकम बहुत अनुचित है और उन किसानों को तबाह कर देगी, जिनकी वह प्रतिनिधि है। तब कांग्रेस ने महा-समिति के अध्यक्ष से आज्ञा लेने के बाद किसानों को यह सलाह दी कि वे लगान और मालगुजारी का चुकाना सन्धि-चर्चा के समय तक के लिए मुल्तवी कर दें। फिर भी कांग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सन्धि-चर्चा के लिए इच्छुक और उद्यत है और ज्योंही किसानों की शिकायत दूर हुई वह अपनी सलाह को वापस ले लेगी। कांग्रेस ने सरकार को यह भी सुझाया कि यदि वह सन्धि-चर्चा के समय तक वसूली स्थगित कर दे, तो वह (कांग्रेस) भी लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह वापस ले लेगी। सरकार चाहती थी कि पहले कांग्रेस अपनी सलाह वापस ले। उसने कांग्रेस का परामर्श नहीं माना। अब युक्त-प्रान्त की कांग्रेस-कमिटी के पास सिवा इसके कोई चारा न था कि लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को दोहराये। स्थिति यहांतक पहुँच जाने पर भी कांग्रेस बराबर यह कहती रही कि वह सन्धि-चर्चा के लिए प्रत्येक प्रकार का रास्ता ढूंढ़ने और ज्योंही

किसानों को काफी छूट मिलती नजर आवे या वसूली स्थगित कर दी जाय, लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को वापस लेने के लिए हमेशा तैयार हैं। सरकार का दृष्टिकोण यह था कि वह केवल उसी स्थिति में जनता के प्रतिनिधियों से वातचीत कर सकती है, जबकि यह सलाह, जिसे वह लगानबन्दी-आन्दोलन कहती थी, वापस ले ली जाय। लेकिन सरकार ने अपने लिए खुद दूसरी नीति अख्तियार की। उसने सैंकड़ों कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। ये गिरफ्तारियां इतनी तड़ाक-फड़ाक हुईं कि सभी प्रमुख और सच्चे कार्यकर्त्ता जेलों में पहुँच गये। इन गिरफ्तारियों का अन्त गांधीजी के इंग्लैण्ड से भारत पहुँचने के पांच दिन पहले सर्व श्री जवाहरलाल, पुरुषोत्तमदास टण्डन और शेरवानी साहब की गिरफ्तारियों के साथ हुआ। दरअसल पं० जवाहरलाल और श्री शेरवानी को अपने स्थान न छोड़ने का नोटिस दिया गया था। इस पावन्दी के बाद जल्दी ही गांधीजी के बम्बई पहुँचने से पहले होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में जवाहरलाल जी शामिल हुए। सम्भवत: उनके लिए इस आज्ञा का पालन करना मुमकिन न था। क्योंकि जगह-जगह जोर की बुलाहट होती थी। और वहां जाना पड़ता था और अनेक महत्त्वपूर्ण बैठकों में खुद भी उपस्थित रहने की आवश्यकता थी। अत: जब उन्होंने इस आज्ञा का उल्लंघन किया, वह गिरफ्तार कर लिये गये। इसी तरह श्री शेरवानी भी गिरफ्तार हो गये। दोनों को सजा दे दी गई।

बंगाल में अत्याचार

संघर्ष का तीसरा केन्द्र बंगाल था। अस्थायी संधि के समय वहां अत्याचारों के अनेक दृश्य देखने में आये। शायद इनका उद्देश्य था चटगांव जिले में हुए उत्पातों का बदला लेना। चटगांव शहर और जिले में ३१ अगस्त और पिछले तीन दिनों में हुई घटनाओं की जांच करने के लिए एक गैर-सरकारी जांच-कमिटी नियुक्त की गई। कुछ गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे बड़े हथौड़े और लोहे की सलाखें लेकर रात को एक प्रेस में घुस आये और उन्होंनों मशीनों को तोड़ दिया तथा प्रेस-मैनेजर व अन्य कर्मचारियों को भी मारा-पीटा। दिल्ली में २७, २८ और २९ नवम्बर को कार्य-समिति ने इस घटना की रिपोर्ट पर विचार किया और "आतंकवाद की नीति का अनुसरण करते हुए कुछ गैर-सरकारी यूरोपियनों व गुण्डों के साथ निरपराध जनता की वेइज्जती करने व उसे भीषण क्षति पहुँचाने के लिए स्थानीय पुलिस व मजिस्ट्रेटों की तीव्र निन्दा की। समिति ने इसपर संतोष प्रकट किया कि जिन गुण्डों को साम्प्रदायिक दंगा कराने के लिए ही तजवीज किया गया था और जिनके प्रयत्न इस घटना को साम्प्रदायिक

रंग देने के इरादे से थे, उनके जान-बूझ कर किये गये प्रयत्नों के बावजूद वहां कोई साम्प्रदायिक दंगा नहीं हुआ। समिति की सम्मति में बंगाल-सरकार को कम-से-कम इतना तो करना चाहिए कि जिनकी क्षति हुई है उन्हें मुआवजा दे और इन दुर्घटनाओं के लिए जिनकी जिम्मेवारी सावित हो उन्हें दण्ड दे।"

जेलों से वाहर लोगों के साथ जव इस प्रकार आयर्लैण्ड-के-से दमन के तौर-तरीके काम में लाये जा रहे थे, जेलों और नजरवन्दों के कैम्पों में उनके साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार किया जा रहा था। हिजली के नजरवन्द-कैम्प में जो दुःखान्त नाटक खेला गया, उसके फल-स्वरूप २ नजरवन्द मर गये और २० घायल हो गये। कार्य-समिति ने "सरकार-द्वारा नियुक्त जांच-कमीशन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते हुए भी यह अनुभव किया कि विना कोई मुकदमा चलाये सरकार ने जिन निहत्थों को राष्ट्र के तीव्र विरोध करने पर भी नजरवन्द कर दिया है, उनके जीवन और हित-साधना की रक्षा की वह जिम्मेवार है। इस प्राथमिक कर्तव्य के प्रति घोर उपेक्षा के अपराधियों को अवश्य सजा देनी चाहिए।"

इसी वैठक में युक्तप्रान्त की स्थिति पर भी विचार हुआ। इलाहावाद कांग्रेस-कमिटी ने युक्तप्रान्त की सरकार की वर्तमान किसान-नीति के विरुद्ध और खासकर उस स्थिति में लगान और मालगुजारी की अत्याचारपूर्ण वसूली के विरुद्ध, जवकि किसान तीव्र आर्थिक संकट के कारण देने में असमर्थ थे, सत्याग्रह करने की अनुमति मांगी थी। कार्य-समिति ने यह सम्मति प्रकट की कि अनुमति देने से पूर्व इस पर युक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी विचार करले। समिति ने इलाहावाद-कांग्रेस-कमिटी का पत्र प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी से पास भेज दिया और यदि उसकी सम्मति में २७ अगस्त के शिमला-समझौते के अनुसार किसानों को रक्षणात्मक सत्याग्रह करने का अधिकार हो, तो समिति ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह इस पर विचार कर जैसा आवश्यक समझें निर्णय दें।

प्रसंगवश हम यहां यह भी कह दें कि इसी वैठक में कार्य-समिति ने नमक पर अतिरिक्त कर लगाने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया था कि दिल्ली-समझौते को खयाल में रखते हुए यह भारत-सरकार का विश्वासघात है। मुद्रा और विनिमय की नीति के सम्वन्ध में भी इस समिति ने एक प्रस्ताव पास किया था। पाठकों को स्मरण रहे कि २१ सितम्वर को सोने की मात्रा कम रह जाने के कारण वैंक ऑफ इंग्लैण्ड ने तीन दिन की छुट्टी कर दी थी और इंग्लैण्ड ने स्वर्णमान छोड़ दिया था। प्रश्न यह था कि क्या भारत के रुपये को पौण्ड स्टर्लिंग की दुम के साथ वांधा जाय, या

सोने के बाजार में उसे अपने-आप अपना मूल्य निर्धारण करने दें ? पहला रास्ता, जिसे भारत-सरकार ने स्वीकार किया, समिति की सम्मति में केवल इंग्लैण्ड के स्वार्थों को पूर्ण करता था। क्योंकि इसका मतलब था भारत में आयात के लिए ब्रिटिश माल को परोक्ष रूप में तरजीह देना और भारत का सोना बाहर भेजने को उत्तेजन देना।

सीमाप्रान्त में आग

भारत के उत्तरी-द्वार में सरकार ने चौथी अग्नि प्रज्वलित कर रक्खी थी। भारत के इतिहास और इन पृष्ठों में खुदाई खिदमतगारों ने एक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। वे सीमान्त के उन बहादुर लोगों में से हैं, जो अनुशासन व संगठन के साथ असहयोग के लिए तैयार किये गये थे। खान अब्दुलगफ्फारखां के नेतृत्व और प्रेरणा में काम करनेवाले ऐसे आदमी एक लाख से ऊपर थे। अगस्त के महीने तक इन खुदाई खिदमतगारों का कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं था। अस्थायी संधि के समय से ही गांधीजी सीमाप्रान्त जाने और उस संगठन का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्ति करने का प्रयत्न कर रहे थे, जिसने इतना चमत्कारी कार्य कर दिखाया था। लॉर्ड अर्विन से उन्होंने इजाजत मांगी, लेकिन उन्होंने कहा—अभी नहीं। सारे साल-भर उन्हें यही जवाब मिलता रहा और इसलिए उन्होंने सीमाप्रान्त में श्री देवदास गांधी को भेजा। उन्होंने एक आश्चर्यकारक रिपोर्ट पेश की। उसपर कार्य-समिति ने विचार किया तथा खुदाई-खिदमतगारों को कांग्रेस-संगठन का अंग बनाकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया। इसके बाद यह संगठन सब प्रकार के सन्देहों से ऊपर हो जाना चाहिए था, लेकिन सरकार ऊपर से अर्ध-सैनिक दीखनेवाले संगठन को—चाहे वह कांग्रेस के स्वयंसेवकों का संगठन ही क्यों न हो—रहने देना नहीं चाहती थी। बैण्ड और बिगुल, सिर से पैर तक लाल पोशाक और एक ऐसे ऊँचे व्यक्तित्व में श्रद्धा और विश्वास—जो अपने चरित्र, मनुष्यता, बलिदान व सेवा से 'सीमान्त-गांधी' का पद पा चुका था और बहुत जल्दी सब आंखों का एक लक्ष्य, एक केन्द्र हो रहा था—ये सब बातें उस संगठन को अर्ध-सैनिक सिद्ध करने के लिए काफी थीं। कौन जानता है कि उसके विनम्र और सत्याग्रही चेहरे के पीछे सीमाप्रान्त पर एक 'बफर-स्टेट' (लड़ने वाले दो राज्यों के बीच का तटस्थ-राज्य) बनाने, अमीर से संधि करने, सीमाप्रान्त के जिरगों को दोस्त बनाने तथा भारत पर आक्रमण करने की तजवीज न छिपी हों ? लाल पोशाक में एक लाख सेना—सब पठान, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता ! सरकार को एक बहाना भी मिल गया कि खान अब्दुलगफ्फारखां सरकार से सहयोग नहीं करते,

क्योंकि वह सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमिश्नर के दरवार में सम्मिलित नहीं हुए। वह पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करते हैं। बस, निरपराध खानसाहव और उनके भक्त तथा उन्हीं की तरह निरपराध भाई डॉ० खानसाहव गांधीजी के भारत पहुँचने से कुछ ही दिन पहले जेल में डाल दिये गये।

इस तरह जव गांधीजी भारत पहुँचे, ये सव वखेड़े उत्पन्न हो चुके थे। गुजरात में ज्यादतियों की जांच, जिसका गांधीजी को वचन दिया गया था और जिस वचन पर ही वह लन्दन जाने को तैयार हुए थे, १३ नवम्बर को अधूरी ही खतम हो चुकी थी। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि तेजतर्रार और एकदम भड़क जानेवाले वल्लभभाई पटेल नहीं थे जो उकताकर जांच से अलग हो गये थे, लेकिन गंभीर और धैर्यशील भूलाभाई देसाई थे जो वहुत विचार के वाद जांच को निरर्थक समझकर अलग हुए थे। युक्तप्रान्त में सरकार के प्रभाव व दस्तन्दाजी के कारण जमींदारों ने किसानों को जो थोड़ी छूट दी थी, वह विलकुल नाकाफी और असन्तोषप्रद थी और सरकार भी तवतक लोक-प्रतिनिधियों से मिलने को तैयार न थी, जवतक वे मुंह में तिनका न रख लें और लगान स्थगित करने की आज्ञा वापस न ले लें। इस प्रकार उत्पन्न हुई परिस्थिति में पं० जवाहरलाल और शेरवानी साहव गांधीजी के लौटने के ५ दिन पहले गिरफ्तार कर लिये गये, जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है। यद्यपि यह खवर वेतार के तार से जिस जहाज पर गांधीजी आ रहे थे उसपर भी भेज दी गई, तथापि उनतक यह खवर नहीं पहुँचने दी गई। सीमाप्रान्त से खान अब्दुलगफ्फारखां, उनके भाई और पुत्र शाही कैदी वनाकर नजरवन्द कर दिये गये। वंगाल की स्थिति किसी एक या इक्की-दुक्की घटना से वनी हुई नहीं थी, हालांकि चटगांव और हिजली की घटनायें उसका कारण थीं। वह अर्से से एक वहता हुआ घाव वन गई है और पता नहीं कवतक यह घाव इसी तरह गहरा वना और वहता रहेगा।

गांधीजी जव २८ दिसम्वर को वम्वई उतरे तव परिस्थिति इस प्रकार वन चुकी थी।

[छठा भाग : १९३२-१९३५]

: १ :

बयाबान की ओर

गांधीजी बम्बई में

देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि जनता के उस त्राता का स्वागत करने के लिए बम्बई में एकत्र हुए थे। चुंगी-दफ्तर के एक भवन में विधिवत् स्वागत किया गया। फिर एक जुलूस निकला—वह जुलूस जिसके लिए बादशाह भी अपने मुल्क में तरसें। पर राजनैतिक नेता और महात्वाकांक्षी राजपुरुषों का तो गुण-ग्राहक जनता ऐसे ही जुलूसों-द्वारा स्वागत किया करती है। गांधीजी का स्वागत देशवासियों ने किस उत्साह से किया होगा, पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं। वे किसी ऐसे साहसी का स्वागत नहीं कर रहे थे, जो किसी बादशाहत की स्थापना करने जा रहा हो। न वे किसी ऐसे राजपुरुष का आदर करने जा रहे थे जो किसी कंजूस बादशाह के हाथों से जनता के लिए कोई रिआयतें छीनने गया हो। लड़ाई के मैदान में बताई बहादुरी के लिए किसी वीर योद्धा का सन्मान करने भी वे जमा नहीं हुए थे। बल्कि वे तो इकट्ठे हुए थे एक सन्त और सत्याग्रही का स्वागत करने के लिए, जो संसार को छोड़ देने पर भी संसारी की भांति ही संसार में रहता था और जिसने अपने स्वार्थ को तिलांजलि दे दी थी। उस दिन बम्बई के तमाम पुरुष सड़कों पर इकट्ठे हो रहे थे और स्त्रियां आसमान से बातें करनेवाली बम्बई की ऊँची अट्टालिकाओं पर। हिन्दुस्तान में आते ही गांधीजी ने सबसे पहले बम्बई की जनता को अपना भाषण सुनाया। आजाद मैदान में सचमुच उस दिन जबरदस्त भीड़ इकट्ठी हुई थी, और गांधीजी ने उसके सामने गम्भीर आवाज में यह कहते हुए अपने हृदय को खोलकर रख दिया कि मैं शान्ति के लिए अपने बस-भर कोशिश करूँगा और अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खूंगा। इस भाषण में भी उन्होंने अपनी वह भयंकर प्रतिज्ञा दोहराई और कहा कि "हिन्दू-जाति से अछूतों को जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूँगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान तक लड़ा दूंगा।" सच तो यह है कि न तो इस मौके

पर और न अल्पसंख्यक जातियों की कमिटी की बैठक में ही किसीको यह खयाल आया कि गांधीजी इस मुद्दे पर आमरण उपवास की घोषणा कर देंगे। या तो इस बात की तरफ किसीका ध्यान ही नहीं गया या सुननेवालों और पढ़नेवालों के दिल पर इसका असर एक सामान्य भाषालंकार की अपेक्षा अधिक नहीं पड़ा। पर हरेक आदमी जानता है कि गांधीजी कभी अत्युक्ति-पूर्ण बात नहीं करते और न कभी कोई बात गैर-जिम्मेवारी के साथ कहते हैं। उनकी 'हां' केवल 'हां' है और 'ना' निरी 'ना'। उनकी बात ज्यों-की-त्यों होती है। उसके दो मानी नहीं निकाले जा सकते।

तीन दिन तक गांधीजी जुदा-जुदा प्रान्तों से आये प्रतिनिधियों से मिलते रहे और उनकी दुःख-कथायें सुनते रहे। वह क्या कर सकते थे? सुभाष बाबू बंगाल से अपने चार साथियों को लेकर आये थे। हालांकि उन चारों ने गांधीजी से अलग-अलग बातचीत की, पर चारों ने बंगाल-आर्डिनेन्सों के कारण किये गये दमन का वर्णन वही सुनाया। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में भी आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरजी सुलह के दिनों में राज का गाड़ा इन आर्डिनेन्सों से ही हांका जा रहा था। गांधीजी मजाक में कहा करते थे कि यह तो लॉर्ड विलिंगडन का दिया नये साल का तोहफा है। पर वह एक सत्याग्रही की भांति शान्ति के लिए अपनी पूरी कोशिश किये बगैर ही देश को नई मुसीबतों में डालनेवाले पुरुष न थे। सुबह से लेकर शाम तक गांधीजी का सारा समय तमाम प्रान्तों से आये हुए शिष्ट-मण्डलों से मिलने में ही बीतता था, जो सरकारी अफसरों-द्वारा हर प्रान्त में किये गये अत्याचारों की कथायें सुनाते थे। देश में भयंकर मन्दी और घोर संकट था। फिर भी कर्नाटक को इतने लम्बे समय तक युद्ध में लगे रहने पर भी कोई रिआयत नहीं दी गई। आन्ध्र में लगान बढ़ाया जानेवाला था, और मदरास के गवर्नर ने तो यहां तक धमकी दे रक्खी थी कि अगर लोग लगान रोकने की बात करेंगे तो आर्डिनेन्स जारी कर दिये जायँगे। इस तरह की दुःख-गाथायें गांधीजी को सुनाई जा रही थीं। उन्हें भी अपने दुखड़ों की कहानी लोगों को सुनानी थी, जो उनपर लन्दन में बीते थे। वह गोलमेज-परिषद् में जाना ही नहीं चाहते थे। जो बातें इस परिषद् में होने वाली थीं उनकी छाया जुलाई और अगस्त में ही नजर आने लग गई थी। पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए। समझौते का भंग होने पर भी बाद में उन्हें परिषद् में जाने से इन्कार करने का मौका मिल गया था। पर मजदूर-सरकार चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाज पर चढ़ा के लन्दन रवाना कर ही दिया जाय।

सबसे पहली बात जो उन्होंने अपने साथियों से कही वह यही थी कि किसी

चीज की कल्पना की अपेक्षा उसका प्रत्यक्ष अनुभव एक दूसरी ही चीज है। वह नरम-दल के नेताओं की मनोदशा से परिचित थे, पर वह उस नजारे के लिए तैयार न थे जो उन्होंने लन्दन में देखा। मुसलमानों के स्वभाव को भी वह जानते थे और उनकी प्रतिगामी-मनोवृत्ति से भी नावाकिफ नहीं थे। पर गोलमेज-परिषद् में राष्ट्र-शरीर की जो चीरा-फाड़ी हुई और जिस तरह टुकड़े-टुकड़े किये गये उसके लिए वह हर्गिज तैयार न थे। उन्होंने इस बात का भी निश्चय कर लिया कि आइन्दा कांग्रेस किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता का समर्थन नहीं करेगी। उसका धर्म शुद्ध और विशुद्ध राष्ट्र-धर्म होगा। उन्होंने यह भी कहा कि अगर यह देश साम्प्रदायिक प्रश्न के साथ इसी तरह पहले की भांति खिलवाड़ करता रहेगा तो इसके लिए कोई आशा नहीं है। अपने मुसलमान और सिक्ख मित्रों से उन्होंने यह आश्वासन चाहा कि अगर भारत के लिए कोई ऐसा विधान बने जिसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता की बू न हो और जो विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया जाय तो उसे वे स्वीकार कर लेंगे। इन सारे विचारों और अनुभवों के कारण उनके चित्त को बड़ा क्लेश हो रहा था; पर उपस्थित परिस्थिति का उन्होंने बड़ी शान्ति और स्थिर-चित्तता से सामना किया, जैसा कि वह हमेशा किया करते हैं। अपने ऊपर तथा अपने देश-भाइयों पर भी उन्हें खूब विश्वास था। देश ने उनपर विश्वास किया और उन्होंने उसको बराबर निभाया। अब आज उन्हें अपने सामने एक जबरदस्त खाई नजर आ रही थी। सवाल यह था कि इसपर पुल बनाया जा सकता है या इसे जिन्दा और मरे हुए आदमियों से पाटकर पार करना होगा? जब वह अपने काम में भिड़े, उनके हृदय में ये विचार उमड़ रहे थे—यह मनोमन्थन चल रहा था। कार्य-समिति उनके साथ थी। पर उन चौदह सदस्यों वाली कार्य-समिति की ही नहीं, उन्हें तो सारे देश की हिम्मत थी। कार्य-समिति के आदेशानुसार उन्होंने लॉर्ड विलिंगडन को एक तार दिया और उसका जवाब भी आया। जवाब लम्बा और तफसीलवार था। उसमें धमकी भी थी। गांधीजी ने फिर तार दिया। मगर कोई नतीजा न निकला।

वाइसराय से तार-व्यवहार

वाइसराय से गांधीजी का जो तार-व्यवहार हुआ वह निम्न प्रकार है:—

(१) वाइसराय को गांधीजी का तार (२९ दिसम्बर १९३१)

"कल जहाज से उतरने पर मुझे मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्त

आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये हैं। सीमाप्रान्त में गोलियां चलाई गई हैं। मेरे गोल साथी गिरफ्तार कर लिये गये हैं। और सबसे बढ़कर बंगाल का आर्डिनेन्स राह देख रहा है। मैं इसके लिए तैयार न था। मेरी समझ में नहीं आता कि आया नसे यह समझूं कि हमारी पारस्परिक मित्रता का खात्मा हो चुका, या आप अब भी से यह उम्मीद करते हैं कि मैं आपसे मिलूं और इस परिस्थिति में मैं कांग्रेस को क्या ह दूं इस विषय में आपसे परामर्श और रहनुमाई चाहूँ? जवाब तार से देने की करेंगे।"

) गांधीजी के नाम वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी का तार (३१ दिसम्बर १९३१)

"वाइसराय महोदय चाहते हैं कि मैं आपको आपके तार के लिए धन्यवाद दूं, में आपने बंगाल, युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त के आर्डिनेन्सों का जिक्र किया है। ल की बात तो यह है कि अपने अफसरों और नागरिकों की कायरता-पूर्ण हत्यायें ने के लिए सरकार के लिए यह जरूरी हो गया और है कि वह तमाम उपाय में लावे।

वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मैं आपसे यह कहूँ कि वह तथा उनकी ार चाहते हैं कि उनका देश के तामाम राजनैतिक दलों तथा जनता के सभी हिस्सों मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध रहे। खास तौर पर शासन-सम्बन्धी सुधारों के मामलों में, कि वह बिना किसी देरी के जारी करना चाहते हैं, वह सबका सहयोग चाहते हैं। यह सहयोग पारस्परिक हो। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में कांग्रेस जिस तरह की लें चला रही है, सरकार उनका उस मित्रता-युक्त सहयोग के साथ मेल नहीं देख है जो हिन्दुस्तान के भले के लिए जरूरी है।

युक्तप्रान्त के बारे में तो आप जरूर जानते ही हैं कि जहां एक ओर प्रान्तीय ार वर्तमान परिस्थिति में हर तरह की रिआयत देने के बारे में उपायों की योजना रही थी, तहां उधर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू करने आज्ञा जारी कर दी। उस प्रान्त में आजकल यह आन्दोलन जोरों पर है। कांग्रेस स कार्य से, अगर यह बेरोक इसी तरह जारी रहा तो, जरूर ही देश में भारी े पर अव्यवस्था, वर्ग-विद्वेष तथा जातीय-विद्वेष फैल जायगा; इसीलिए सरकार आवश्यक उपायों का अवलम्बन करने पर मजबूर होना पड़ा।

पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त में अब्दुलगफ्फारखां तथा उनकी मातहत संस्थायें तार ऐसी हलचलों में भाग लेते रहे हैं जो सरकार के खिलाफ हैं और जिनसे

जातीय-विद्वेष बढ़ता है। अबतक वहां के चीफ-कमिश्नर ने उनके सहयोग के लिए जितनी बार भी कोशिश की उसका उन्होंने कोई खयाल नहीं किया और प्रधानमंत्री की घोषणा को अस्वीकार कर वह यह एलान कर रहे हैं कि वह तो पूरी आजादी चाहनेवालों में हैं। अब्दुलगफ्फारखां ने ऐसे बहुत-से भाषण दिये हैं जिनसे जनता को क्रान्ति के लिए उभारने के सिवा और कोई मानी नहीं निकल सकते। उनके अनुयायियों ने भी सीमान्त जातियों में उपद्रव खड़े करने की कोशिशें की हैं। उस प्रान्त के चीफ-कमिश्नर ने वाइसराय की सरकार की इजाजत से हद दर्जे की सहन-शीलता दिखाई है और आखिर तक इस बात की कोशिश की है कि जैसी कि सम्राट् की सरकार की मन्शा है, सीमान्त-प्रदेश में बिना देरी के सुधार जारी करें और उसमें अब्दुलगफ्फारखां की सहायता प्राप्त करें। सरकार ने तबतक कोई खास कार्रवाई नहीं की जबतक कि अब्दुलगफ्फारखां तथा उनके साथियों की हलचलें और खास तौर पर सरकार से जल्दी-से-जल्दी लड़ाई शुरू करने की उनकी तैयारियों ने प्रान्त की तथा सीमान्त जातियों के प्रदेश में शान्ति को खतरे में नहीं डाल दिया। अब ठहरे रहना असम्भव था। वाइसराय महोदय को यह मालूम हुआ है कि पिछले अगस्त में सीमाप्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन का मार्ग-दर्शन करने का काम अब्दुलगफ्फारखां के सुपुर्द कर दिया गया है। उनके द्वारा संगठित किये गये स्वयंसेवक-दलों को भी महासमिति ने कांग्रेस के अधीन मान लिया है। वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मैं आपसे यह साफ कह दूं कि देश म शान्ति और व्यवस्था की रक्षा करने की जिम्मेवारी उनके सिर पर है और इसलिए वह उन आदमियों या संस्थाओं से कोई सरोकार नहीं रख सकते जो ऊपर बताये कामों और हलचलों के लिए जिम्मेदार हैं। खुद आप तो गोलमेज परिषद् के काम से बाहर गये हुए थे और आपने गोलमेज-परिषद् में जो रुख अख्तियार किया था उसे देखते हुए वाइसराय महोदय यह विश्वास नहीं करना चाहते कि खुद आपका इसमें कोई हाथ रहा हो या आप इसमें जिम्मेवार हों या इधर सीमा-प्रान्त में और युक्त-प्रान्त में कांग्रेस ने जो जो आन्दोलन जारी कर रक्खे हैं उन्हें आप पसन्द भी करते हों। अगर यह ठीक हो तब तो वह आप से कह सकते हैं, और गोलमेज-परिषद् में जिस सहयोग की भावना से सब काम हुआ था उसी भावना की रक्षा करने के लिए आप किस प्रकार अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं, इस विषय में वाइसराय महोदय अपने विचार आपके सामने रख सकते हैं। पर एक बात वह साफ कर देना चाहते हैं। सम्राट् की सरकार की पूरी इजाजत से जो आर्डिनेन्स बंगाल, युक्तप्रान्त और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में जारी करना जरूरी समझा गया है, उनके बारे में किसी प्रकार की बहस करने के लिए वह

तैयार नहीं हैं। जिस उद्देश से, अर्थात् कानून और व्यवस्था की रक्षा जो सुशासन के लिए जरूरी चीजें हैं, ये आर्डिनेन्स जारी किये हैं, वह जवतक पूर्ण नहीं हो जाता, तवतक हर हालत में वे जारी रहने ही चाहिएँ। आपका जवाव मिल जाने पर वाइसराय महोदय इन तारों को प्रकाशित कर देना चाहते हैं।"

(३) वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम गांधीजी का तार (१ जनवरी १९३२)

"मेरे २९ दिसम्बर के तार के जवाव में, वाइसराय महोदय का, जो तार आया उसके लिए उन्हें धन्यवाद। उसे पढ़कर दुःख हुआ। मैंने अत्यन्त मित्र-भाव से जो प्रस्ताव रक्खा था, उसे जिस तरह वाइसराय महोदय ने अस्वीकार किया वह उनके जैसे उच्च पदाधिकारी को शोभा नहीं देता। मैंने एक ऐसे आदमी की हैसियत से उनका दरवाजा खटखटाया था, जिसको कुछ प्रश्नों पर प्रकाश की जरूरत थी। मैं कुछ अत्यंत गम्भीर और असाधारण मामलों में, जिनका कि उल्लेख मैंने किया था, सरकार का पक्ष समझना चाहता था। मेरे सद्भाव का स्वागत करने के वजाय, वाइसराय महोदय ने उसे अस्वीकार किया और मुझसे चाहा कि मैं अपने अनमोल साथियों के कार्यों का पहले ही से खण्डन करूँ। फिर ऐसे अपमानजनक आचरण का अपराधी वनकर मैं मिलना चाहूँ तो उस समय भी मुझसे कहा जाता है कि राष्ट्र के लिए इतना भारी महत्त्व रखनेवाली इन वातों पर उनसे वातचीत तक नहीं कर सकता।

मेरा तो खयाल है कि इन आर्डिनेन्सों और कानूनों के रहते हुए, जिनका कि अगर दृढ़ता के साथ प्रतिकार नहीं किया गया तो देश का भारी पतन होगा, यह विधान-सम्वन्धी वात न-कुछ-सी हो जाती है। मैं आशा करता हूँ कि कोई भी स्वाभिमानी भारतीय एक संदेहास्पद विधान-सम्वन्धी सुधार को हासिल करने के लिए राष्ट्रीय भावना की हत्या करने का खतरा अपने सिर पर नहीं उठावेगा। क्योंकि तव तो इन विधानों को अमल में लाने जितना प्राण ही राष्ट्र में नहीं रह जायगा।

अव सीमा-प्रान्त की वात लीजिए। आपके तार में जो वातें हैं उनको देखते हुए यह साफ नजर आता है कि प्रान्त के लोकप्रिय नेताओं को गिरफ्तार करने, अतिरिक्त कानून जारी करने, जिससे कि लोगों की जानो-माल की रक्षा का कोई ठिकाना नहीं रह गया, और अपने विश्वासपात्र नेताओं की गिरफ्तारी पर प्रदर्शन करनेवाले निहत्थे लोगों पर गोलियां चलाने का कोई सवल कारण नहीं था। अगर खानसाहव अब्दुल-गफ्फारखां ने पूरी आजादी का दावा किया तो वह स्वाभाविक ही था। स्वयं कांग्रेस ने

सन् १९२९ में, लाहौर में, यही दावा किया था और उसे कोई सजा नहीं दी गई। मैंने भी लन्दन में ब्रिटिश-सरकार के सामने इस दावे को जोर के साथ पेश किया था। इसके अलावा वाइसराय महोदय को मैं यह भी याद दिला दूं कि कांग्रेस ने मुझे जो आज्ञा दी थी उसमें भी यह दवा था और सरकार इस बात को जानती थी, फिर भी लन्दन की परिषद् में मुझे कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से निमन्त्रित किया गया था। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि महज एक दरबार में हाजिर रहने से इन्कार कर देना ऐसा कौन अपराध हो गया, जिससे वह एकाएक गिरफ्तार होने के पात्र समझे गये? अगर खानसाहब जातीय-विद्वेष की आग को बढ़ा रहे थे, तो सचमुच दुःखदाई बात है। पर मेरे पास तो उनके ऐसे वचन हैं जो इस आरोप के खिलाफ पड़ते हैं। फिर भी थोड़ी देर के लिए मान लें कि उन्होंने जातीय-विद्वेष की आग भड़काई, तो उस हालत में उनकी खुली जांच होनी चाहिए, जिससे कि इस आरोप के प्रतिवाद का उन्हें मौका मिलता।

युक्तप्रान्त के बारे में वाइसराय महोदय को मिली हुई खबर गलत है। क्योंकि कांग्रेस ने वहां पर लगान-बन्दी की आज्ञा ही जारी नहीं की, बल्कि सरकार और कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच इस सम्बन्ध की बातचीत चल रही थी कि लगान वसूल करने का समय आ गया और लगान तलब किया जाने लगा; इसलिए कांग्रेसवालों को लोगों से यह कहना पड़ा कि जबतक सरकार से इस सम्बन्ध में जो बातचीत चल रही है उसका कोई नतीजा नहीं निकल जाता तबतक वे अपने लगानों को रोक रक्खें। श्री शेरवानी ने तो यह भी कहा था कि अगर इस बातचीत का नतीजा निकलने तक सरकारी अफसर लगान-वसूली मुल्तवी रक्खें, तो वह भी जनता को दी गई सलाह वापस लेने को तैयार हैं। मैं तो यह कहूंगा कि यह ऐसी बात नहीं थी जिसको यों ही उड़ा दिया जाय, जैसा कि वाइसराय महोदय ने अपने तार में किया है। युक्त-प्रान्त की यह शिकायत बहुत अर्से से चली आ रही है और उसमें ऐसे लाखों किसानों के हित का सवाल है जिनकी माली हालत बहुत ही खराब है। कोई भी सरकार, जिसे अपने द्वारा शासित जनता के कल्याण की परवाह है, कांग्रेस-जैसी संस्था-द्वारा दिये गये स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग का स्वागत ही करती, जिसका कि जनता पर बहुत भारी प्रभाव है और जिसकी एकमात्र महत्त्वाकांक्षा ईमानदारी के साथ जनता की सेवा करना है। और मुझे यह भी कहने दीजिए कि जिस प्रजा ने अपने ऊपर डाले गये असहनीय आर्थिक बोझे को दूर करने के लिए और तमाम उपायों को आजमा लिया है, और उन्हें निष्फल पाया हो, तो उसका यह सनातन और स्वाभाविक हक है कि वह अपने लगान को मौका पड़ने पर

रोक लें। आपके तार में जो यह बात है कि कांग्रेस किसी भी रूप में जरा भी अव्यवस्था फैलाना चाहती है, उसका मैं प्रतिवाद करता हूँ।

बंगाल के विषय में, जहां तक हत्याओं की निन्दा से सम्बन्ध है, कांग्रेस सरकार के साथ है। और ऐसे जुर्मों को बिलकुल रोक देने के लिए जिन उपायों का अवलम्बन जरूरी समझा जाय, कांग्रेस उनमें भी हृदय से सहयोग देना पसन्द करेगी। परन्तु जहां कांग्रेस आतंकवाद की सम्पूर्ण निन्दा करती है, वहां किसी भी हालत में सरकारी आतंकवाद का साथ नहीं दे सकती, जैसा कि बंगाल-आर्डिनेन्स और उसके सिलसिले में किये गये दूसरे कार्यों से प्रकट होता है। बल्कि कांग्रेस तो अपनी अहिंसा की मर्यादा के अन्दर रहते हुए सरकारी आतंकवाद के ऐसे कार्यों का प्रतिकार भी करेगी। आपके तार में लिखा है कि सहयोग दोनों तरफ से हो। मैं इस प्रस्ताव को हृदय से मानता हूँ। पर तार में लिखी दूसरी बातें तो मुझे इसी नतीजे पर बरबस ले जाती हैं कि वाइसराय महोदय कांग्रेस से तो सहयोग चाहते हैं पर उसके बदले में सरकार की तरफ से कोई सहयोग देना नहीं चाहते। आपने जो इन बातों पर बातचीत करने से ही इन्कार कर दिया, इसका मैं दूसरा अर्थ लगा ही नहीं सकता। क्योंकि जैसा कि मैंने बताने की कोशिश की है, इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के कम-से-कम दो पहलू तो हैं ही। लोकपक्ष, जैसा मैं समझता हूँ; मैंने पेश किया है, परन्तु किसी भी पक्ष में अपनी राय कायम करने से पहले मैं दूसरे अर्थात् सरकारी पक्ष को समझ लेना चाहता था और उसके बाद कांग्रेस को अपनी सलाह देने की इच्छा थी।

तार के आखिरी पैराग्राफ का जवाब यह है कि अपने साथियों के, चाहे सीमा-प्रान्त के हों या युक्त-प्रान्त के, कार्यों की नैतिक जिम्मेवारी से मैं अपने-आपको बरी नहीं समझता। पर मैं यह कबूल करता हूँ कि मेरे साथियों के कार्यों की और हलचलों की तफसीलवार जानकारी मुझे नहीं है; क्योंकि मैं भारत में नहीं था। और चूंकि कांग्रेस की कार्य-समिति को अपनी राय देकर मार्ग-प्रदर्शन करना मेरे लिए जरूरी था, मैंने निष्पक्ष भाव से और बहुत सद्भाव के साथ वाइसराय महोदय से मिलना और मार्ग-दर्शन चाहा। मैं वाइसराय महोदय से अपनी यह राय नहीं छिपा सकता कि उन्होंने जो जवाब भेजने की कृपा की है वह मेरे सद्भाव और मित्रता-पूर्ण प्रस्ताव का पर्याप्त उत्तर नहीं है। अगर अब भी वाइसराय महोदय चाहें तो मैं उनसे कहूँगा कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और हमारी बातचीत पर, उसके विषय-क्षेत्र पर, बगैर कोई शर्तें लगाये मुझसे मिलना स्वीकार करें। अपनी तरफ से मैं यह वचन दे सकता हूँ कि वह जो भी बातें मेरे सामने रक्खेंगे उनपर मैं निष्पक्ष होकर विचार करूँगा। बगैर किसी

हिचकिचाहट के और खुशी के साथ मैं उन-उन प्रान्तों में जाऊँगा और अधिकारियों की सहायता से प्रश्न के दोनों पहलुओं का अध्ययन करूँगा; और अगर पूरे अध्ययन के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि लोग गलती पर हैं और कार्य-समिति तथा मैं भी गुमराह हो गये हैं, और सरकार का ही पक्ष ठीक है, तो इस बात को स्वीकार करने में और तदनुसार कांग्रेस को रास्ता बताने में मुझे कोई हिचकिचाहट न होगी। सरकार के साथ सहयोग करने की मेरी इच्छा और खुशी के साथ ही वाइसराय महोदय के सामने मैं अपनी मर्यादा भी रख दूं। अहिंसा मेरा पहला आचार-धर्म है। मेरा विश्वास है कि सविनय-अवज्ञा जनता का केवल जन्म-सिद्ध अधिकार ही नहीं है—और खासकर उस हालत में जब अपने शासन में उसका कोई हाथ न हो—बल्कि वह हत्या और सशस्त्र बगावत का सफलता-पूर्वक स्थान भी ले सकती है। इसलिए मैं कभी आचार-धर्म को अलग नहीं रख सकता। उसके पालन के लिए, और कुछ ऐसी खबरें मिली हैं जिनका अभीतक कोई खण्डन नहीं हुआ है, बल्कि भारत-सरकार की हलचलें जिनका समर्थन करती हैं और शायद जिनके परिणाम-स्वरूप जनता का मार्ग-दर्शन करने का मुझे आगे कोई मौका न मिले, कार्य-समिति ने मेरी सलाह से सविनय-अवज्ञा-सम्बन्धी एक तात्कालिक प्रस्ताव स्वीकार किया है, उसकी नकल मैं भेजता हूँ। अगर वाइसराय महोदय समझें कि मुझसे मिलने में कुछ उपयोगिता है तो हमारी बातचीत खतम होने तक, इस आशा से कि आगे चलकर, यह रद कर दिया जायगा, यह प्रस्ताव मुल्तवी रहेगा। मैं मानता हूँ कि हमारे बीच का यह तार-व्यवहार सचमुच इतना महत्त्वपूर्ण है जिसके प्रकाशन में जरा भी देरी न होनी चाहिए। इसलिए मैं अपना तार, आपका जवाब, यह प्रत्युत्तर और कार्य-समिति का प्रस्ताव सब प्रकाशन के लिए भेज रहा हूँ।"

कार्य-समिति का प्रस्ताव

"कार्य-समिति ने महात्मा गांधी की यूरोप-यात्रा का हाल सुना और बंगाल, युक्तप्रान्त तथा सीमाप्रान्त में जारी किये गये असाधारण आर्डिनेन्सों के कारण देश में पैदा हुई परिस्थिति पर विचार किया। साथ ही सरकारी अधिकारियों-द्वारा जो खान अब्दुलगफ्फारखां, शेरवानी साहब, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे अनेक लोगों की गिरफ्तारियों, और सीमा-प्रान्त में जो निर्दोष लोगों पर गोलियां चलाई गई और जिनकी वजह से कितने ही लोग जान से मारे गये तथा घायल हुए, इन सबके कारण पैदा हुई परिस्थिति पर भी विचार किया। कार्य-समिति ने

महात्मा गांधी के तार के जवाब में वाइसराय-द्वारा भेजे गये तार को भी देख लिया।

कार्य-समिति का यह मत है कि ये तमाम घटनायें और दूसरे प्रान्तों में घटी हुई अन्य छोटी-मोटी घटनायें तथा वाइसराय साहब का तार ये सब सरकार के साथ कांग्रेस का सहयोग तबतक के लिए बिलकुल असम्भव बना रहे हैं जबतक कि सरकार की नीति में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता। ये कार्य और वाइसराय का तार स्पष्ट-रूप से प्रकट करते हैं कि नौकरशाही हिन्दुस्तान की जनता के हाथों में यहां की हुकूमत सौंपना नहीं चाहती बल्कि उनके द्वारा वह उलटे राष्ट्र की तेजस्विता को मिटा देना चाहती है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार एक ओर जहां कांग्रेस से सहयोग की उम्मीद करती है, वहां दूसरी ओर वह उसपर विश्वास भी नहीं करना चाहती।

बंगाल में हाल ही में आतंकवादी घटनायें हुई हैं, उनकी निन्दा करने में कांग्रेस किसीसे पीछे नहीं है। पर साथ ही वह सरकार के द्वारा किये गये आतंकवाद की निन्दा भी उतने ही जोर के साथ करती है। सरकार की यह हिंसा हाल ही जारी किये गये आर्डिनेन्सों और कानूनों से प्रकट है। हाल ही कुमिल्ला में दो लड़कियों-द्वारा जो हत्या हुई है उससे राष्ट्र को नीचे देखना पड़ा है, ऐसी कांग्रेस की राय है। ये कार्य ऐसे समय खास तौर पर और भी हानि-कारक हैं, जब कि देश कांग्रेस के जरिये, जोकि उसकी सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था है, स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा से काम लेने को वचन-बद्ध हो चुकी है। पर कांग्रेस की कार्य-समिति कोई कारण नहीं देखती कि महज इतनी-सी बात पर, सिर्फ कुछ लोगों के अपराध पर, बंगाल-आर्डिनेन्स जैसे अतिरिक्त कानून जारी करके तमाम लोगों को दण्डित किया जाय। इसका असली इलाज तो है इन अपराधों के प्रेरक कारणों का ही, जो कि प्रकट हैं, इलाज करना।

यदि बंगाल-आर्डिनेन्स के अस्तित्व का कोई कारण नहीं है, तो युक्त-प्रान्त और सीमा-प्रान्त के आर्डिनेन्सों के लिए तो उससे भी कम कारण हैं।

कार्य-समिति की राय है कि युक्तप्रान्त में किसानों को छूट दिलाने के लिए कांग्रेस-द्वारा अवलम्बित उपाय उचित हैं और उचित प्रमाणित किये जा सकते हैं। कार्य-समिति का यह निश्चित मत है कि गम्भीर आर्थिक संकटों से पीड़ित लोग, जैसा कि स्वीकार किया जा चुका है कि युक्तप्रान्त के किसान पीड़ित हैं, यदि अन्य वैध साधनों से राहत पाने में असफल हों, जैसे कि वे युक्तप्रान्त में असफल हुए हैं, तो उन सबका यह निर्विवाद अधिकार है कि वे लगान देना बन्द कर दें। महात्मा गांधी से बातचीत

करने और कार्य-समिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिए बम्बई आते हुए युक्त-प्रान्त की प्रान्तीय समिति के सभापति श्री शेरवानी तथा महासभा के प्रधान-मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार करके तो सरकार अपने आर्डिनेन्स-द्वारा कल्पित सीमा से भी आगे बढ़ गई है, क्योंकि इन सज्जनों के बम्बई में युक्तप्रान्त के करबन्दी के आन्दोलन में भाग लेने का तो किसी प्रकार कोई प्रश्न था ही नहीं।

सीमा-प्रान्त के सम्बन्ध में स्वयं सरकार की बताई बातों से भी न तो आर्डिनेन्स जारी करने और न खान अब्दुलगफ्फारखां और उनके साथियों को गिरफ्तार करने तथा बिना मुकदमा चलाये जेल में रखने का कोई आधार दिखाई देता है। कार्य-समिति इस प्रान्त में निरपराध और निःशस्त्र लोगों पर की गई गोला-बारी को निष्ठुर और अमानुष समझती है और वहां की जनता को उसके साहस और सहन-शक्ति के लिए, बधाई देती है। कार्य-समिति को जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि सीमाप्रान्त की जनता भारी-से-भारी उत्तेजन दिये जाने पर भी अपनी अहिंसा-वृत्ति को कायम रख सकेगी तो उसके रक्त और उसके कष्ट भारत की स्वतन्त्रता के कार्य को प्रगति पर पहुँचावेंगे।

कार्य-समिति भारत-सरकार से मांग करती है कि जिन बातों के कारण ये आर्डिनेन्स पास करने पड़े हैं, और सामान्य अदालतों और व्यवस्थातंत्र को एक ओर रख देने की और इन आर्डिनेन्सों के अन्तर्गत और बाहर जो कारंवाइयां हुईं, उनके औचित्य के सम्बन्ध में एक खुली और निष्पक्ष जांच करावे। यदि उचित जांच-समिति नियत की जाय, और कार्यसिमिति को गवाह पेश करने की सब सुविधायें दी जायँ, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिए तैयार रहेगी।

गोलमेज-परिषद् में प्रधानमन्त्री-द्वारा की गई घोषणा और उसपर पार्लमेण्ट की कामन-सभा तथा लॉर्ड-सभा में हुए वाद-विवाद पर कार्य-समिति ने विचार किया, और वह उसे महासभा के दावे की दृष्टि से सर्वथा असन्तोषजनक और अपूर्ण मानती है, और अपना यह मत प्रकट करती है कि पूर्ण स्वाधीनता से, जिसमें राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक सिद्ध होनेवाले संरक्षणों के साथ सेना, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आर्थिक मामलों पर पूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं, जरा भी कम को कांग्रेस सन्तोष-जनक नहीं मान सकती।

कार्य-समिति देखती है कि गोलमेज-परिषद् में महासभा को राष्ट्र की एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था मानने और उसके किसी जाति, धर्म अथवा रंग-भेद बिना समस्त राष्ट्र की ओर से बोलने के अधिकार को स्वीकार करने के लिए ब्रिटिश-सरकार तैयार

न थी। साथ ही यह समिति इस बात को दुःख के साथ स्वीकार करती है कि उक्त परिषद् में साम्प्रदायिक एकता प्राप्त न की जा सकी।

इसलिए कार्य-समिति राष्ट्र को आवाहन करती है कि कांग्रेस वास्तव में सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने की अधिकारिणी है, यह दिखा देने के लिए तथा देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिए वह अविराम प्रयत्न करे, जिससे कि शुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर रचित विधान राष्ट्र की अंगभूत विविध जातियों को स्वीकार्य हो सके।

इस बीच यदि वाइसराय अपने तार पर पुनर्विचार करें, आर्डिनेन्सों तथा हाल के कृत्यों के सम्बन्ध में काफी राहत दी जाय, और भावी विचारों और परामर्श में कांग्रेस के लिए अपनी पूर्ण-स्वतन्त्रता का दावा पेश करने की आजादी रहे, और ऐसी स्वतन्त्रता मिलने तक देश का शासन लोक-प्रतिनिधियों की सलाह से चलाया जाय, तो कार्य-समिति सरकार को सहयोग देने के लिए तैयार है।

पूर्वोक्त पैरा में दी गई शर्तों के आधार पर यदि सरकार की ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिले, तो कार्य-समिति इसे सरकार की ओर से दिल्ली के समझौते के रद किये जाने की सूचना समझेगी। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने की दशा में कार्य-समिति राष्ट्र को निम्नलिखित शर्तों पर फिर सविनय-अवज्ञा, जिसमें लगान-बन्दी भी सम्मिलित है, आरम्भ करने के लिए आवाहन करती है—

(१) कोई भी प्रान्त, जिला, तहसील अथवा गांव तबतक सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए बाध्य नहीं है, जबतक कि वहां के लोग संग्राम का अहिंसक रूप, उसके सब फलितार्थों-सहित, न समझ लें और कष्ट-सहन तथा जान-माल तक गंवाने के लिए तैयार न हों।

(२) यह समझकर कि यह संग्राम आततायी से बदला लेने अथवा उसपर आघात करने के लिए नहीं वरन् अपने कष्ट-सहन और आत्मशुद्धि-द्वारा हृदय-परिवर्तन के लिए है, भयंकर-से-भयंकर उत्तेजना मिलने पर भी मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन अवश्य होना चाहिए।

(३) सरकारी अधिकारियों, पुलिस अथवा राष्ट्र-विरोधियों को हानि पहुँचाने की दृष्टि से किसी भी दशा में सामाजिक बहिष्कार नहीं किया जाना चाहिए। अहिंसा-वृत्ति के यह सर्वथा विरुद्ध है।

(४) यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अहिंसात्मक संग्राम में आर्थिक सहायता की अपेक्षा नहीं हुआ करती, इसलिए उसमें वेतन पर रक्खे गये स्वयंसेवक

न होने चाहिएँ; किन्तु केवल उनके निर्वाह-मात्र के और जहां सम्भव हों वहां संग्राम में जेल जानेवाले अथवा मारे गये गरीब स्त्री-पुरुषों के आश्रितों के गुजारे-लायक खर्च दिया जा सकता है।

(५) सब स्थिति में, ब्रिटिश अथवा अन्य देश के, सब प्रकार के विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आवश्यक है।

(६) सब कांग्रेसवादी स्त्री-पुरुषों से, देशी मिलों तक का कपड़ा न पहनकर, हाथ की कती-बुनी खादी के ही व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

(७) शराब और विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर मुख्यतः स्त्रियों को ही जोरों से, किन्तु सदैव अहिंसा का पालन करते हुए, पिकेटिंग करना चाहिए।

(८) गैर-कानूनी नमक बनाने और बटोरने का काम फिर जारी करना चाहिए।

(९) यदि जुलूस और प्रदर्शनों की व्यवस्था की जाय, तो उनमें केवल वही लोग शरीक हों, जो अपनी-अपनी जगहों से जरा भी हिले बिना लाठी-प्रहार और गोलियां सहन कर सकें।

(१०) अहिंसात्मक संग्राम में भी उत्पीड़क-द्वारा तैयार माल का बहिष्कार करना सर्वथा विहित है, क्योंकि अत्याचार के शिकार व्यक्तियों का यह कभी धर्म नहीं है कि वे आततायी के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ावें अथवा कायम रक्खें। इसलिए ब्रिटिश माल और ब्रिटिश कम्पनियों का बहिष्कार पुनः आरम्भ किया जाय और जोरों से चलाया जाय।

(११) जहां-जहां सम्भव और उचित समझा जाय, अनैतिक कानूनों और जनता को हानि पहुँचानेवाली आज्ञाओं का सविनय भंग किया जाय।

(१२) आर्डिनेन्सों के अन्तर्गत जारी हुई प्रत्येक अनुचित आज्ञाओं का सविनय भंग किया।"

(४) गांधीजी के दूसरे तार के उत्तर में, २ जनवरी की शाम को, वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने नीचे लिखा तार भेजा—

"वाइसराय ने मुझे आपके १ जनवरी के तार की स्वीकृति भेजने के लिए कहा है, जिसपर उन्होंने तथा उनकी सरकार ने विचार कर लिया है। उन्हें इस बात का अत्यन्त खेद है कि आपकी सलाह से कांग्रेस-कार्य-समिति ने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जिसमें यदि आपके तार और उक्त प्रस्ताव में बताई गई शर्तें पूरी न की गईं तो सविनय अवज्ञा के पुनः पूरी तौर पर जारी कर दिये जाने की बात है।

प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य के अनुसार वैध शासन-सुधार की नीति को शीघ्र आरम्भ करने की सम्राट्-सरकार तथा भारत-सरकार की घोषित इच्छा के होते हुए हम इस व्यवहार को विशेष खेदजनक समझते हैं।

अपने उत्तरदायित्व का खयाल रखनेवाली कोई भी सरकार किसी भी राजनैतिक संस्था की गैर-कानूनी कार्रवाई की धमकी-युक्त शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकती, न भारत-सरकार आपके तार में गर्भित इस स्थिति को ही स्वीकार कर सकती है कि, दिल्ली के समझौते पर पूरी सावधानी और पूरे ध्यान से विचार करने और अन्य सब सम्भव उपायों के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार ने जिन उपायों का अवलम्बन किया है उनके औचित्य का आधार आपके निर्णय पर होना चाहिए।

वाइसराय महोदय और उनकी सरकार इस बात पर मुश्किल से ही विश्वास कर सकते हैं, कि आप अथवा कार्य-समिति समझती है कि सविनय-अवज्ञा के पुनरारम्भ की धमकी पर वाइसराय महोदय किसी लाभ की आशा से आपको मुलाकात के लिए बुला सकते हैं।

कांग्रेस ने जिन उपायों के अवलम्बन का इरादा जाहिर किया है, उसके सब परिणामों के लिए हम आपको और कांग्रेस को उत्तरदायी समझेंगे और उनको दबाने के लिए सरकार सब आवश्यक अस्त्रों का अवलम्बन करेगी।"

(५) वाइसराय के उक्त तार के उत्तर में गांधीजी ने, ३ जनवरी १९३२ को निम्न तार भेजा—

"आपके तार के लिए धन्यवाद। मैं आपके और आपकी सरकार के निर्णय के प्रति हार्दिक खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझ लेना अवश्य ही भूल है। क्या मैं सरकार को याद दिलाऊँ कि सत्याग्रह के जारी रहते हुए ही दिल्ली की सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई और चलती रही थी, और जिस समय समझौता हुआ उस समय सत्याग्रह बन्द नहीं कर दिया गया था वरन् स्थगित किया गया था? मेरे लन्दन जाने के पहले, गत सितम्बर में, शिमला में इस बात पर दुबारा जोर दिया गया था और आपने तथा आपकी सरकार ने इसे स्वीकार किया था। यद्यपि मैंने उस समय यह बात स्पष्ट कर दी थी, कि सम्भव है कुछ हालतों में कांग्रेस को सत्याग्रह जारी करना पड़े, तो भी सरकार ने बातचीत बन्द न की थी। सरकार ने उस समय बताया था कि सत्याग्रह के साथ कानून-भंग के लिए सजा भी लगी रहती है; इस बात से यही सिद्ध होता था कि सत्याग्रहियों ने यह सौदा किस लिए किया है, किन्तु इससे मेरी दलील पर कुछ असर नहीं होता।

यदि सरकार इस रवैये के विरुद्ध थी, तो उसके लिए यह खुला था कि वह मुझे लन्दन न भेजती। किन्तु इसके विपरीत मेरी विदाई पर आपने शुभकामना प्रदर्शित की थी।

न यही कहना न्याय्य और सही है कि मैंने कभी इस बात का दावा किया है कि सरकार की कोई भी नीति मेरे निर्णय पर निर्भर रहनी चाहिए।

लेकिन मैं यह बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि कोई भी लोकप्रिय वैध-सरकार अपने उन कृत्यों और आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में, जिन्हें कि लोकमत पसन्द नहीं करता, सार्वजनिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों की सूचनाओं का सदैव स्वागत करती, उनपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करती तथा अपने पास की सब सूचनाओं अथवा जानकारी से उनकी सहायता करती।

मैं यह दावा करता हूँ कि मेरे सन्देश का मैंने पिछले पैरे में जो अर्थ बताया है उसके सिवा और कोई अर्थ नहीं है। समय ही बतलायेगा कि किसने सच्ची स्थिति ग्रहण की थी। इस बीच मैं सरकार को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कांग्रेस की ओर से संग्राम को सर्वदा द्वेष-रहित तथा सर्वथा अहिंसापूर्ण तरीके से चलाने का पूरा प्रयत्न किया जायगा।

आपको मुझे यह याद दिलाने की कोई आवश्यकता न थी कि अपने कार्यों के लिए कांग्रेस और उसका एक विनम्र प्रतिनिधि, मैं, जिम्मेवार होंगे।"

बेन्थल का गश्ती-पत्र

सुविधा के लिहाज से हमने इन सब तारों को एक-साथ दे दिया है, वैसे ये सब हैं छः दिन की घटनायें। ३० दिसम्बर को मि० बेन्थल गांधीजी से मिले और काफी देर तक बातचीत की। यह गोलमेज-परिषद् में हिन्दुस्तान के व्यापारिक प्रतिनिधि के रूप में शरीक हुए थे। और इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि व्यापारी-समुदाय के लिए गांधीजी की हलचल भयोत्पादक थी और बाद की घटनाओं एवं अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के हाथों में बहिष्कार एक बड़ा हथियार है। इन मि० बेन्थल तथा इनके राज-भक्त साथियों ने ऐसी भाषा में अपने विचार प्रकट किये जिनकी तीक्ष्णता, इतने समय के बाद भी, बिलकुल कम नहीं हुई है। इन लोगों ने जो 'गुप्त' गश्ती-पत्र प्रचारित किया, उसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं:—

"अगर सम्भव हो तो कोई समझौता करने के इरादे के साथ हम लन्दन गये थे, लेकिन इसके साथ ही इस बात के लिए भी हम दृढ़-निश्चय थे कि आर्थिक और

व्यापारिक संरक्षणों के वारे में (यूरोपियन) असोशिएटेड चैम्वर्स ऑफ कॉमर्स ने जो नीति निश्चित की है और यूरोपियन-असोसिएशन ने जो सामान्य-नीति तय की है उसके किसी मूलभूत अंश को नहीं छोड़ेंगे। यह हम अच्छी तरह जानते थे, और परिषद् के समय भी हमेशा हमारे दिमाग में यह वात रही है, कि जो संरक्षण पेश किये जा चुके हैं उनकी काट-छांट करने का कांग्रेस, हिन्दू-सभा और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्वर्स ऑफ कॉमर्स की सम्मिलित शक्ति के साथ प्रयत्न किया जायगा........।

"इस पिछले अधिवेशन के परिणामों पर अगर आप नजर डालें तो, आप देखेंगे कि गांधीजी और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्वर्स एक भी ऐसी वात नहीं वतला सकते जो गोलमेज-परिषद् में उनके जाने के फल-स्वरूप ब्रिटिश-सरकार की ओर से वतौर रिआयत उनके साथ की गई हो। वह तो खाली हाथ ही हिन्दुस्तान लौटे हैं।

"एक और भी घटना ऐसी हुई है जो उनके लिए अच्छी सावित नहीं हुई। साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का उन्होंने जिम्मा लिया, लेकिन सारी दुनिया के सामने उन्हें असफल होना पड़ा......।

"मुसलमानों का दल वहुत ठोस और मजवूत रहा। यहां तक कि राष्ट्रीय मुसलमान कहे जानेवाले अलीइमाम भी उससे वाहर नहीं गये। शुरू से आखीर तक वड़ी होशियारी के साथ मुसलमानों ने खेल खेला। हमारा समर्थन करने का उन्होंने वादा किया था, जिसे उन्होंने पूरी तरह निभाया। वदले में उन्होंने हमसे कहा कि आर्थिक दृष्टि से वंगाल में उनकी जो वुरी हालत है उसपर हम ध्यान दें। उनकी 'ज्यादा लल्लो-चप्पो करने की तो जरूरत नहीं', पर अंग्रेजी फर्मों में हमें उनको जगह देने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे अपनी माली हालत और अपनी जाति की सामान्य स्थिति को ठीक कर सकें।

"ब्रिटिश-राष्ट्र और हिन्दुस्तान में रहनेवाले अंग्रेजों की, कुल मिलाकर, एक ही नीति है; और वह यह कि सोच-समझकर हम एक राष्ट्रीय नीति निश्चित करें और फिर उसपर जमे रहें। लेकिन (पार्लमेण्ट के) आम चुनाव के वाद सरकारी नरम-दल ने (गोलमेज) परिषद् को असफल करने और उसका तथा कांग्रेस का विरोध करने का निश्चय कर लिया। मुसलमान लोग, जो कि केन्द्र में उत्तरदायित्व नहीं चाहते, इस वात से खुश हुए। सरकार ने तो निश्चित-रूप से अपनी नीति वदल ली और केन्द्रीय सुधारों के आश्वासन के साथ प्रान्तीय-स्वराज्य पर ही मामला टालने की कोशिश की। हमें यह भी निश्चय हो गया था कि कांग्रेस के साथ लड़ाई अनिवार्य है; तव हमने महसूस किया और कहा कि जितनी जल्दी वह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है।

लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया कि इसमें पूरी सफलता तभी मिल सकती है जबकि जितने हो सकें उन सब मित्रों को अपने पक्ष में कर लें। मुसलमान तो हमारे साथ थे ही, जैसा कि अल्पसंख्यक-समझौते और मुसलमानों के प्रति सरकार के सामान्य रुख से स्पष्ट था। यही हाल राजाओं और दूसरी अल्पसंख्यक जातियों का था।

"हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सर सप्रू, जयकर, पैटरो आदि के समान सर्व-साधारण हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाया जाय। अगर हम उन्हें कांग्रेस के खिलाफ खड़ा न कर सकें तो कम-से-कम ऐसा तो कर ही सकते हैं कि जिससे वे कांग्रेस का साथ भी न दें। और यह कोई मुश्किल बात भी नहीं है; इसके लिए उन्हें सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि संघ-योजना को नहीं छोड़ा जायगा, जिसे कि मोटे तौर पर अंग्रेज भी स्वीकार कर चुके थे। अस्तु; इसीके अनुसार हमने काम किया। हमने सरकार से आग्रह किया कि वह प्रान्तीय और केन्द्रीय-विधानों को एक-साथ उपस्थित करे, जिसे ये लोग सरकार की ईमानदारी और सद्भाव का ठोस नमूना समझेंगे और इनका सन्तोष हो जायगा। जहांतक प्रान्तीय-स्वराज्य का सम्बन्ध है, वह हिन्दुस्तान पर जबरदस्ती नहीं लादा जा सकता; क्योंकि अकेले मुसलमान उसे नहीं चला सकते। कांग्रेसी प्रान्तों और दृढ़ भारत-सरकार का मुकाबला बड़ी भारी राजनैतिक कठिनाइयां उत्पन्न करेगा; क्योंकि हरेक प्रान्त एक-एक कलकत्ता-कारपोरेशन बन जायगा। अतः (इस स्थिति को बचाने के लिए) हमने अजीब नये-नये साथी जोड़े। फलतः बजाय इसके कि परिषद् व वाद-विवाद बीच में ही भंग हो जाते और राजनैतिक विचारों के १०० फी सदी हिन्दू हमारे विरोधी बनते, परिषद् में आये ९९ फी सदी व्यक्तियों के, जिनमें मालवीयजी जैसे लोग भी शामिल हैं, सहयोग के आश्वासन के साथ वे समाप्त हुए; अलबत्ता गांधीजी स्टैण्डिंग कमिटी में शामिल होने के लिए रजामन्द नहीं हुए............।

"मुसलमान तो अंग्रेजों के पक्के दोस्त ही हो गये हैं। अपनी परिस्थिति से उन्हें पूरा सन्तोष है और वे हमारे साथ काम करने के लिए तैयार हैं।

"लेकिन यह हरगिज न समझ लेना चाहिए कि जब हम यह कहते हैं कि सुधारों का होना जरूरी है तो हम हरेक प्रान्त में जन-तन्त्रीय सुधारों का ही प्रतिपादन करते हैं। हम जो-कुछ कहते हैं उसका अर्थ शासन-पद्धति में ऐसे हेर-फेर करना भर है, जिससे कि उसकी सुचारुता बढ़ जाय।"

मजदूर सरकार ने अपनी घोषणा में भारत को जो-कुछ देने का वचन दिया था उसके उद्देश को नष्ट करने की टोरी (कंजरवेटिव) सरकार और उसके साथियों

ने कैसी चेष्टा की, यह इन उद्धरणों से भलीभांति मालूम हो जाता है, लेकिन यह विश्वास करना गलत होगा कि उन्नति-विरोधी मुसलमानों के, जोकि अपने थोड़े-से स्वार्थों के लिए[1] अपने देश को वेचने के लिए तैयार थे, और हिन्दुस्तानियों को हमेशा गुलाम बनाये रखने के इच्छुक उन्नति-विरोधी व्रिटिशों के वीच जो समझौता हुआ, वह एकाएक ही हो गया। उसकी नींव तो गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन से कहीं पहले हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड दोनों जगह रक्खी जा चुकी थी। सच तो यह है कि जब गांधीजी और लॉर्ड अर्विन के बीच समझौता हुआ तो उसके बाद ही भारत में उन सब उन्नति-विरोधी लोगों ने, जो समझौते को पसन्द नहीं करते थे, शीघ्रता के साथ अपनी शक्तियों को संगठित किया और भारतीय राष्ट्रवादियों को शिकस्त देने के लिए अपना सम्मिलित गुट वना लिया था। इस षड्यंत्र की आंशिक रचना तो शिमला में ही हुई थी, जोकि भारत-सरकार का सदर-मुकाम है।

गांधीजी पकड़े गये

मि० इमर्सन और लॉर्ड विलिंगडन ने जो चुनौती दी थी उसे कार्य-समिति ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद कार्य-समिति के सदस्य अपने-अपने स्थानों को लौट गये। लेकिन उन्होंने अपनेको ऐसी परिस्थिति में पाया कि कुछ कर नहीं सकते थे। वस्तुतः सरकार ने वहीं से लड़ाई को फिर से ग्रहण किया जहां पर कि ४ मार्च १९३१ को उसे छोड़ा गया था। अस्थायी-संधि के दर्मियान उसने हजारों लाठियां और एकत्र क़रली थीं। सच तो यह है कि अस्थायी-संधि का अवसर सरकार के लिए नये सिरे से लड़ाई लड़ने की तैयारी करने का समय था, जिसका कि अस्थायी-संधि के दर्मियान प्रायः किसी भी महीने नहीं तो गांधीजी की वापसी पर तो टूटना निश्चित ही था। तीन आर्डिनेन्स तो जारी कर ही दिये गये थे, और कई जब भी जरूरत हो तुरन्त जारी कर देने के लिए वाइसराय की जेब में रक्खे हुए थे। ४ जनवरी १९३२ को सरकारी प्रहार शुरू हो गया। कांग्रेस की तथा उससे सम्बन्वित हरेक संस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और कांग्रेसी लोग, कानून या आर्डिनेन्सों के, जोकि गैर-[illegible]

[1] गोलमेज-परिषद् के समय की गई सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप अपनेको भारत के किसी प्रदेश का राजा बनाने की सर आगाखां की मांग से, जिसका कि हाल ही में असेम्वली में रहस्योद्घाटन हुआ, इस सौदे का नग्न-स्वरूप बड़े वीभत्स रूप में सामने आया है।

कानून कहलाने लगे थे, खिलाफ कोई प्रत्यक्ष कार्य करें या नहीं, उन्हें गिरफ्तार कर-कर के जेलों में भेजा जाने लगा। कांग्रेस को सब-कुछ नये सिरे से शुरू करना पड़ा। सरकारी लाठी-प्रहार पहले आन्दोलन (१९३०) के समय शुरू में नहीं बल्कि बाद में जारी हुआ था, लेकिन १९३२ में सत्याग्रहियों को सबसे पहले उसीका मुकाबला करना पड़ा। चारों तरफ यह बात फैल रही थी कि लॉर्ड विलिंगडन सारे उत्पात को छः सप्ताह में ही खतम कर देने की आशा रखते हैं। लेकिन छः सप्ताह का समय इतना कम था और सत्याग्रह ऐसी लम्बी लड़ाई है कि उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई।

गांधीजी गुजरात के उन ताल्लुकों में जाने का इरादा कर रहे थे, जिन्हें १९३० की लड़ाई में बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। लेकिन पेश्तर इसके कि वह वहां जायँ, उन्हें और उनके विश्वस्त सहायक वल्लभभाई को ४ जनवरी १९३२ के बड़े सवेरे गिरफ्तार करके शाही कैदी बना दिया गया। खानसाहब और जवाहरलालजी पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। अब जो भारतीय-राजनीतिज्ञ बाकी बचे थे उन्हींको लड़ाई का संचालन करना पड़ा। हजारों की तादाद में सत्याग्रही मैदान में आये। १९२१ में उनकी संख्या तीस हजार थी, जो एक बड़ी तादाद मानी गई थी। १९३०–३१ में, दस महीनों के थोड़े-से समय में ही, नब्बे हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे दोषी करार देकर जेलों में ठूंस दिये गये। यह कोई नहीं जानता कि मार कितनों पर पड़ी, लेकिन जितनों को कैद की सजा हुई थी पिटनेवालों की संख्या उनसे ३ या ४ गुनी ज्यादा तो होगी ही। लोगों को या तो पीटते-पीटते किसी काम के लायक ही न रहने दिया गया, या छिपने और धर दबोचने की नीति से उन्हें थका दिया गया। जेलों में कैदियों की पिटाई फिर शुरू हो गई। कांग्रेस के दफ्तर की जो गुप्त या खानगी बातें थीं उनका रहस्योद्घाटन करने के लिए कहा गया। "तुम्हारे (कांग्रेस के) कागज-पत्र, रजिस्टर और चन्दे व स्वयंसेवकों की फेहरिस्तें कहां हैं?" यह सरकार की मांग थी। नौजवानों को तरह-तरह तंग किया गया, न कहने-योग्य बातें (अपशब्द) उन्हें कही गईं, और अकथनीय सजाओं के आयोजन करके उनको अमली रूप दिया गया। हाईकोर्ट के एक एडवोकेट को सताने के लिए एक-एक करके उसके बाल उखाड़े गये, और यह सिर्फ इसलिए कि उसने पुलिस को अपना नाम और पता नहीं बताया था!

आर्डिनेन्सों का राज

जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती गई, उसके अनुसार, नये-नये आर्डिनेन्स निकलते गये। हालांकि वे एकसाथ नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न समय जारी हुए, मगर उनपर एकसाथ

विचार करना ही ठीक होगा। इनमें से एक आर्डिनेन्स का जिक्र तो पहले ही हो चुका है, जो कि उस समय बंगाल में जारी किया गया था जब कि गांधीजी अभी लन्दन ही में थे। कहा यह गया था कि यह बंगाल में आतंकवादी-आन्दोलन का प्रसार रोकने और उसके सम्बन्ध में चलनेवाले मुकदमों को जल्दी निपटाने के लिए है। प्रान्तीय-सरकार से अधिकार-प्राप्त किसी भी सरकारी अफसर को इससे यह सत्ता प्राप्त हो गई कि जिस किसी भी व्यक्ति पर कोई भी सन्देह हो उससे उसका परिचय और हलचल मालूम करे और उसकी बताई हुई बातें ठीक हैं या नहीं इसकी तहकीकात करने के लिए उसे गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में ले ले। ऐसी गिरफ्तारी के लिए जिस किसी भी साधन की आवश्यकता हो, उसको वह अमल में ला सकता था। प्रान्तीय-सरकार को यह अधिकार मिला कि अगर जरूरत हो तो वह किसी भी मकान या इमारत को, मय उसके सामान के, उसके मालिक या उसमें रहनेवाले से खाली कराके चाहें जितने समय के लिए अपने कब्जे में करले, और चाहे तो उसका मुआवजा दे और चाहे तो न भी दे। इसी प्रकार जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी चीज या सामान के मालिक या इस्तेमाल करनेवाले से, मुआवजे के साथ या बिना मुआवजे के ही, उसका सामान ले सकता था। वह किसी जगह या इमारत को, जिसमें रेलवे इत्यादि भी शामिल हैं, सरकारी कब्जे में ले सकता था अथवा वहां जाने पर बन्दिश लगा सकता था। यातायात पर बन्दिश लगाने और सवारियों के मालिक या रखनेवालों को उन्हें सरकार के सुपुर्द करने का भी वह हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र की बिक्री बन्द करने या नियंत्रित करने और उन्हें अपने कब्जे में कर लेने का उसे अधिकार था। किसी भी जमींदार या अध्यापक अथवा और किसी व्यक्ति से वह कानून और व्यवस्था की स्थापना के काम में मदद करने के लिए कह सकता था। तलाशी के वारंट निकाल सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी खास इलाके के निवासियों पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, किसी खास व्यक्ति या श्रेणी को किसी भी लेने-पावने से मुक्त कर सकती थी, और किसी भी व्यक्ति के हिस्से का बकाया जुर्माना सरकारी मालगुजारी के बतौर वसूल किय जा सकता था। जरा भी अवज्ञा होने पर ६ महीने कैद या जुर्माने अथवा दोनों की सजा मिल सकती थी। प्रान्तिक सरकार को यह अधिकार दे दिया गया था कि फरार लोगों से पत्र-व्यवहार रोकने के लिए और उनकी हलचलों की जानकारी रखने तथा उनकी हलचलों की बातें मालूम करने के लिए, सम्राट् के प्रजाजनों के जान-माल पर होनेवाले आक्रमणों से रक्षा करने, सम्राट् की फौज व पुलिस को सुरक्षित रखने तथा कैदियों को जेल में निर्बाध रूप से रखने की दृष्टि से नियमोपनियम बनाये। आर्डिनेन्स

के मातहत कैसी भी कार्रवाई क्यों न करें, फौजदारी-अदालत में उसका विरोध नहीं किया जा सकता था। जिन मुकदमों को सरकार विशेष अदालत-द्वारा निपटाना चाहे उनकी तहकीकात के लिए फौजदारी मामलों के नये अर्थात् स्पेशल-ट्रिब्यूनल या स्पेशल-मजिस्ट्रेट बनाने को कहा गया। स्पेशल-ट्रिब्युनलों के लिए नियमोपनियम भी विशेष तौर पर ही बनाये गये। विशेष-न्यायालयों को अधिकार दिया गया कि चन्द परिस्थितियों में वे अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी मामला चला सकते हैं।

युक्त-प्रान्तीय इमर्जेन्सी-आर्डिनेन्स १४ दिसम्बर १९३१ को जारी हुआ। इसके द्वारा प्रान्तीय-सरकार को अधिकार दिया गया कि वह सरकार, स्थानीय अधिकारी या जमींदार को दी जानेवाली किसी रकम को (बकाया रकम को) सरकारी पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप में वसूल करे। प्रान्तीय-सरकार जिस किसी व्यक्ति के लिए यह समझे कि वह सार्वजनिक सुरक्षा के विरुद्ध काम कर रहा है उसे किसी खास इलाके में ही रहने, किसी खास इलाके में से हट जाने या किसी खास तरीके पर रहने का हुक्म दे सकती थी। एक महीने तक उसका वह हुक्म कायम रहता। किसी खास जमीन या इमारत के मालिक को सारी जमीन या इमारत, मय फर्नीचर तथा दूसरे सामान के, मुआवजे के साथ या बगैर मुआवजे ही, सरकार के सुपुर्द करने का प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट चाहे जिस इमारत या स्थान का प्रवेश निषिद्ध या मर्यादित कर सकता था और किसी भी आदमी को यह हुक्म दे सकता था कि उसके पास कोई सवारी या यातायात के जो भी साधन हों उनके बारे में जब जैसा हुक्म मिले तब वैसा ही किया जाय। सरकार से अधिकार-प्राप्त कोई भी अफसर किसी भी जमींदार, स्थानीय अधिकारी या अध्यापक को कानून और शान्ति कायम रखने के काम में मदद करने के लिए तलब कर सकता था। जिस किसी व्यक्ति पर यह शक हो कि वह सरकारी लेने को न अदा करने की प्रेरणा कर रहा है उसे दो साल की कैद, जुर्माने या दोनों सजायें दी जा सकती थीं। जो कोई व्यक्ति किसी सरकारी नौकर को अपने फर्जों को भली-भांति अदा न करने अथवा किसी व्यक्ति को पुलिस या सेना में भर्ती होने से रोकने की चेष्टा करे उसे एक साल कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। किसी खास हल्के के निवासियों पर प्रान्तीय-सरकार सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, और उसकी वसूली उसी तरह हो सकती थी जैसे कि मालगुजारी वसूल की जाती है। किसी जब्त साहित्य के अंश दोहरानेवाले को ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। १६ साल तक के व्यक्तियों पर होनेवाला जुर्माना उनके मां-बाप या संरक्षक से वसूल किया जा सकता था और उसके

वसूल न हो सकने की दशा में उन्हें उसी प्रकार कैद की सजा दी जा सकती थी, मानो स्वयं उन्होंने वह अपराध किया है। ऐसे हुक्म के खिलाफ दीवानी अदालत में कानूनी कार्रवाई भी नहीं की जा सकती थी।

सीमाप्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स २४ दिसम्बर १९३१ को जारी किये गये। उनमें से एक तो युक्तप्रान्त-सम्बन्धी आर्डिनेन्स की ही तरह था और सरकारी लेने की वसूली के लिए निकाला गया था। बाकी दो में से एक का नाम सीमाप्रान्तीय 'इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स' था और दूसरे का 'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स'। इनमें से पहले के मातहत कोई भी अधिकार-प्राप्त व्यक्ति किसी भी सन्दिग्ध-व्यक्ति को बिना कारण गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में रख सकता था और प्रान्तीय सरकार-द्वारा वह मियाद दो महीने तक बढ़ाई जा सकती थी। प्रान्तीय-सरकार किसी व्यक्ति को एक महीने के लिए किसी खास तरीके से रहने का हुक्म दे सकती थी। ऐसे हुक्म पर अमल न कर सकने की हालत में दो साल तक कैद की सजा दी जा सकती थी। किसी भी निजी इमारत को प्रान्तीय-सरकार अपने कब्जे में ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी इमारत और किसी सड़क या जल-मार्ग के यातायात को निषिद्ध, नियंत्रित या मर्यादित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी भी माल की खपत व बिक्री को नियंत्रित करने के लिए उसे तैयार करनेवालों व व्यापारियों को उस माल की खरीद-फरोख्त के नक्शे पेश करने या अपना सारा माल या उसका अंश सरकार को सौंप देने के लिए कह सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट सवारी या यातायात के अन्य सब साधनों के तफसीलवार ब्योरे पेश करने या उन्हें (सवारी आदि को) ही सरकार के सुपुर्द करने का हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र और गोला-बारूद की बिक्री को जिला-मजिस्ट्रेट नियंत्रित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार चाहे जिसको स्पेशल पुलिस-अफसर मुकर्रर कर सकती थी, अथवा किसी भी जमींदार, अध्यापक या स्थानीय अधिकारी को कानून और व्यवस्था के रक्षार्थ मदद करने का हुक्म दे सकती थी। लोकोपयोगी कार्य (Utility Service) के संचालकों को उस संस्था या मण्डल के द्वारा अपने इच्छानुसार कोई भी काम कराने के लिए प्रान्तीय-सरकार कह सकती थी, और अगर वह उसके अनुसार न कर सकता तो उस संस्था का अधिकार वह अपने हाथ में ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट डाक, तार, टेलीफोन और वायर-लेस (बेतार के तार) को नियंत्रित करके उनके द्वारा जानेवाली चीजों या चिट्ठी-पत्रियों को रोक सकता था, किसी भी रेलगाड़ी या नौका में जगह ले सकता था, किसी खास व्यक्ति या माल को किसी भी मुकाम पर ले जाने की मनाही कर सकता था,

रेलगाड़ी में से किसी भी यात्री को उतरवा सकता था, किसी भी गाड़ी को किसी खास मक़ाम पर रोककर पुलिस व सेना के विशेष तौर पर ले जाये जाने की व्यवस्था कर सकता था। किसी भी सार्वजनिक सभा में, फिर वह चाहे निजी स्थान में ही हो और उसमें प्रवेश टिकटों-द्वारा ही क्यों न हो, पुलिस-अफसर को भेज सकता था। तलाशियों के लिए खास अधिकार दिये गये थे। कोई भी व्यक्ति जो किसी सरकारी नौकर को अपने काम की उपेक्षा करने या किसी को पुलिस या सेना में भर्ती होने से रोकने या ऐसी कोई अफ़वाह या चर्चा फैलाने की चेष्टा करे कि जिससे सरकारी नौकरों के प्रति घृणा या अपमान का भाव उत्पन्न होता हो, या सर्व-साधारण में भय-संचार होता हो, उसे एक साल कैद या जुर्माने की अथवा दोनों सजायें दी जा सकती थीं। प्रान्तीय-सरकार किसी हल्के के निवासियों पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, जो उसी तरह वसूल होता जैसे कि मालगुजारी होती है। जो कोई व्यक्ति किसी गुप्त (सरकारी) दस्तावेज की बातों को दोहराये उसे ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी। १६ साल तक के नवयुवकों पर हुआ जुर्माना उनके अभिभावक या संरक्षक से वसूल किया जा सकता था, और वसूल न होने की दशा में उन्हें कैद की सजा दी जा सकती थी। स्पेशल जजों व मजिस्ट्रेटों के साथ स्पेशल और सरसरी अदालतें बनाई गईं और उनके कार्य-क्षेत्र की व्याख्या करके मुकदमों व अपीलों के लिए खास तौर की कार्य-प्रणाली तैयार की गई।

अन्य आर्डिनेन्सों के मातहत प्रान्तीय-सरकार किसी स्थान को गैर-कानूनी करार दे सकती थी और मजिस्ट्रेट उस स्थान को सरकारी कब्जे में लेकर जो भी व्यक्ति वहां हो उसे निकाल सकता था। मजिस्ट्रेट चल-सम्पत्ति पर भी कब्जा कर सकता था और प्रान्तीय-सरकार उसे जब्त करार दे सकती थी। निषिद्ध (गैर-कानूनी) करार दिये गये स्थान पर जाने या वहां रहनेवाला कोई भी व्यक्ति फौजदारी अपराध का मुजरिम होता था। प्रान्तीय-सरकार गैर-कानूनी करार दी गई संस्था का रुपया-पैसा आदि सामान जब्त कर सकती थी और किसी भी ऐसे व्यक्ति पर, जिसके पास किसी गैर-कानूनी संस्था का रुपया होने का शुबहा हो, उस रुपये को सरकारी हुक्म के बगैर खर्च न करने की पाबन्दी लगा सकती थी। ऐसे व्यक्तियों के बहीखातों की जांच-पड़ताल करने या ऐसी रकम के मूल व इस्तेमाल का पता लगाने का भी प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी।

४ जनवरी को चार नये आर्डिनेन्स और जारी हुए—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स, और (४) प्रिवेन्शन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इनमें

से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगों को गिरफ्तार करने, वन्द रखने या उनकी हलचलों को नियंत्रित करने, इमारतों को मांग लेने, इमारतों या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियंत्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे में करने या उसकी खपत व विक्री पर नियंत्रण करने, यातायात के साधनों पर नियंत्रण करने, शस्त्रास्त्र की विक्री पर नियंत्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमींदारों व अध्यापकों आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने में मदद करने के लिए वाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामों पर नियंत्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजों व चिट्ठी-पत्रियों को रोकने और वीच में गायव कर लेने, रेलों और नौकाओं में जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियंत्रण करने, सभाओं में पुलिस-अफसरों को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार लिये गये थे जैसों का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार जैसा कि सीमाप्रान्तीय रेग्यूलेशन में रक्खा गया है, विशेष अदालतों, उनमें खास तौर की कार्रवाई, नये-नये जुर्म और उनके लिए खास तौर की सजाओं का भी विधान किया गया। इण्डियन प्रेस इमर्जेन्सी एक्ट को, आर्डिनेन्स की एक विशेष धाराके द्वारा, और कड़ा कर दिया गया था।

'अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स' के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी में वाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की भी सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे वतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे मालगुजारी के वकाया के रूप में वसूल करवा सकता था।

'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत, जैसा कि पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेन्स के सिलसिले में ऊपर वताया जा चुका है, प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई संस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति व रुपये-पैसे को अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये पैसे को प्रान्तीय-सरकार जब्त भी कर सकती थी। जिस किसीके पास ऐसा रुपया-पैसा हो उसे उस सम्वन्धी हिसाव-किताव की जांच कराने और सरकार की स्वीकृति वगैर उसको खर्च न करने का हुक्म दे सकती थी। ऐसी हरेक संस्था को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता था, जो कौंसिल-सहित गवर्नरजनरल की राय में कानून और व्यवस्था के अमल में वाधक होती हो तथा सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरनाक हो।

'प्रिवेन्शन् ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स' के मातहत उन सबको ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तंग करते और उसका वहिष्कार करते या उसे तंग करने और उसका वहिष्कार कराने में सहायक होते, कोई आदमी दूसरे को सताने या तंग करने का अपराधी उस हालत में माना जाता था जबकि वह उसके या उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य किसी व्यक्ति के कार्य में रुकावट डालता या उसके विरुद्ध हिंसा का व्यवहार करता या उसे किसी प्रकार की कोई धमकी देता या उसके मकान के आस-पास घूमता रहता या उसके माल-मते में खलल डालता या किसी व्यक्ति को उसके यहां न जाने और उससे सम्बन्ध न रखने के लिए अथवा ऐसा कोई काम करने के लिए वाध्य करता कि जिससे उसका नुकसान हो। वहिष्कार की परिभाषा यह की गई थी कि किसी व्यक्ति या उससे सम्बन्ध रखनेवाले के साथ व्यापार का या और कोई सम्बन्ध न रखना, उन्हें कोई माल न देना, जमीन या मकान न देना, सामाजिक सेवायें (अर्थात् नाई, भंगी, धोवी आदि के काम) बन्द कर देना, इनमें से कोई या सब बातें मामूली रूप में न करना, या उनके साथ व्यापारिक या काम-काज का सम्बन्ध बन्द कर देना। किसी आदमी को चिढ़ाने की गरज से उसका स्यापा करना, या उसका पुतला या मुर्दा बनाकर निकालना, ऐसा अपराध घोषित किया गया जिसके लिए ६ महीने कैद या कैद और जुर्माने दोनों की सजायें हो सकती थीं।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सों के द्वारा सरकार ने बहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ में ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश में लागू कर दिये गये थे।

आर्डिनेन्स-कानून

जब आर्डिनेन्सों की अवधि समाप्त हुई तो उन्हें अगली अवधि के लिए नये सिरे से एक इकट्ठे आर्डिनेन्स के रूप में जारी किया और नवम्बर १९३२ में बाकायदा कानून का रूप दे दिया गया। भारत-मंत्री सर सेम्युअल होर ने तो बहुत पहले, २९ मार्च १९३२ को ही, कामन-सभा में यह बात स्वीकार कर ली थी कि "आर्डिनेन्स बहुत व्यापक, तीव्र और कठोर हैं। भारतीय जीवन की लगभग हरेक बात उनकी चपेट में आ जाती है। उन्हें इतने व्यापक और तीव्र इसलिए बनाया गया है कि सरकार को हर तरह की जो जानकारी उपलब्ध है उसपर से सचमुच उसका यह विश्वास है कि सरकार की जड़-मूल पर ही कुठाराघात होने का खतरा उपस्थित है, इसलिए यदि हिन्दुस्तान को अराजकता से बचाना हो तो ये आर्डिनेन्स आवश्यक हैं।"

यह स्मरण रहे कि प्रेस-कानून (१९३१ का २३ वां एक्ट), जो अस्थायी-सन्धि

से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगों को गिरफ्तार करने, बन्द रखने या उनकी हलचलों को नियंत्रित करने, इमारतों को मांग लेने, इमारतों या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियंत्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे में करने या उसकी खपत व बिक्री पर नियंत्रण करने, यातायात के साधनों पर नियंत्रण करने, शस्त्रास्त्र की बिक्री पर नियंत्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमींदारों व अध्यापकों आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने में मदद करने के लिए बाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामों पर नियंत्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजों व चिट्ठी-पत्रियों को रोकने और बीच में गायब कर लेने, रेलों और नौकाओं में जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियंत्रण करने, सभाओं में पुलिस-अफसरों को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार लिये गये थे जैसों का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार जैसा कि सीमाप्रान्तीय रेग्यूलेशन में रक्खा गया है, विशेष अदालतों, उनमें खास तौर की कार्रवाई, नये-नये जुर्म और उनके लिए खास तौर की सजाओं का भी विधान किया गया। इण्डियन प्रेस इमर्जेन्सी एक्ट को, आर्डिनेन्स की एक विशेष धाराके द्वारा, और कड़ा कर दिया गया था।

'अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स' के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी में बाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की भी सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे बतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल करवा सकता था।

'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत, जैसा कि पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेन्स के सिलसिले में ऊपर बताया जा चुका है, प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई संस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति व रुपये-पैसे को अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये पैसे को प्रान्तीय-सरकार जब्त भी कर सकती थी। जिस किसीके पास ऐसा रुपया-पैसा हो उसे उस सम्बन्धी हिसाब-किताब की जांच कराने और सरकार की स्वीकृति बगैर उसको खर्च न करने का हुक्म दे सकती थी। ऐसी हरेक संस्था को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता था, जो कौंसिल-सहित गवर्नरजनरल की राय में कानून और व्यवस्था के अमल में बाधक होती हो तथा सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरनाक हो।

'प्रिवेन्शन् ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स' के मातहत उन सबको ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तंग करते और उसका बहिष्कार करते या उसे तंग करने और उसका बहिष्कार कराने में सहायक होते, कोई आदमी दूसरे को सताने या तंग करने का अपराधी उस हालत में माना जाता था जबकि वह उसके या उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य किसी व्यक्ति के कार्य में रुकावट डालता या उसके विरुद्ध हिंसा का व्यवहार करता या उसे किसी प्रकार की कोई धमकी देता या उसके मकान के आस-पास घूमता रहता या उसके माल-मते में खलल डालता या किसी व्यक्ति को उसके यहां न जाने और उससे सम्बन्ध न रखने के लिए अथवा ऐसा कोई काम करने के लिए बाध्य करता कि जिससे उसका नुकसान हो। बहिष्कार की परिभाषा यह की गई थी कि किसी व्यक्ति या उससे सम्बन्ध रखनेवाले के साथ व्यापार का या और कोई सम्बन्ध न रखना, उन्हें कोई माल न देना, जमीन या मकान न देना, सामाजिक सेवायें (अर्थात् नाई, भंगी, धोबी आदि के काम) बन्द कर देना, इनमें से कोई या सब बातें मामूली रूप में न करना, या उनके साथ व्यापारिक या काम-काज का सम्बन्ध बन्द कर देना। किसी आदमी को चिढ़ाने की गरज से उसका स्यापा करना, या उसका पुतला या मुर्दा बनाकर निकालना, ऐसा अपराध घोषित किया गया जिसके लिए ६ महीने कैद या कैद और जुर्माने दोनों की सजायें हो सकती थीं।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सों के द्वारा सरकार ने बहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ में ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश में लागू कर दिये गये थे।

आर्डिनेन्स-कानून

जब आर्डिनेन्सों की अवधि समाप्त हुई तो उन्हें अगली अवधि के लिए नये सिरे से एक इकट्ठे आर्डिनेन्स के रूप में जारी किया और नवम्बर १९३२ में बाकायदा कानून का रूप दे दिया गया। भारत-मंत्री सर सेम्युअल होर ने तो बहुत पहले, २९ मार्च १९३२ को ही, कामन-सभा में यह बात स्वीकार कर ली थी कि "आर्डिनेन्स बहुत व्यापक, तीव्र और कठोर हैं। भारतीय जीवन की लगभग हरेक बात उनकी चपेट में आ जाती है। उन्हें इतने व्यापक और तीव्र इसलिए बनाया गया है कि सरकार को हर तरह की जो जानकारी उपलब्ध है उसपर से सचमुच उसका यह विश्वास है कि सरकार की जड़-मूल पर ही कुठाराघात होने का खतरा उपस्थित है, इसलिए यदि हिन्दुस्तान को अराजकता से बचाना हो तो ये आर्डिनेन्स आवश्यक हैं।"

यह स्मरण रहे कि प्रेस-कानून (१९३१ का २३ वां एक्ट), जो अस्थायी-सन्धि

के समय बना था, ६ अक्तूबर १६३१ को समाप्त हो गया। १६३२ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-बिल में उसे (प्रेस-लॉ को) स्थायी रूप से कानून का रूप मिल गया। प्रेस-कानून की धारायें करीब-करीब १६१० के एक्ट जैसी ही थीं। भारत-सरकार के आर्डिनेन्सों, बिलों या कानूनों के अलावा, नवम्बर १६३२ में बम्बई-सरकार ने एक प्रान्तीय आर्डिनेन्स-बिल पेश किया, जिसमें करबन्दी-आन्दोलन के मुकाबले की भी काफी गुंजाइश रक्खी गई थी। सच तो यह है कि ये सब आर्डिनेन्स और दमनकारी शस्त्र तैयार करने का विचार तो अस्थायी-सन्धि के साल (१६३१ में) ही हो रहा था। वस्तुस्थिति तो यह है कि १५ अक्तूबर १६३१ को पूना के अंग्रेजों ने भारत-सरकार के गृह-विभाग के मंत्री को मान-पत्र प्रदान किया और इसके बाद, १६३१ में ही, यूरोपियन-असोसियेशन की बम्बई-शाखा के मंत्री ने उन्हें एक पत्र भेजा। उन्होंने सरकार को सुझाया था कि यदि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन फिर से शुरू हो तो उसे तुरन्त और दृढ़ता के साथ कुचल देना चाहिए—और यह सब उस समय जबकि लन्दन में गोलमेज-परिषद् हो रही थी, जिसका प्रत्यक्ष उद्देश कांग्रेसियों को सन्तुष्ट करना था। उन्होंने खास तौर से यह सुझाया कि कांग्रेसी झण्डे की मनाही कर दी जाय, इसी प्रकार स्वयं-सेवकों की कवायद-परेड भी रोक दी जाय, जिन लोगों ने सविनय-अवज्ञा में भाग लिया था उन सबपर पाबन्दियां लगा दी जायँ, उनके साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा लड़ाई के समय शत्रु-देश की प्रजा के साथ होता है और उन्हें नजरबन्द कर दिया जाय, कांग्रेस-कोप के मूल का पता लगाया जाय और उसको वहीं एक विशेप आर्डिनेन्स के द्वारा खत्म कर दिया जाय; जिन मिलों ने कांग्रेस की शर्तें मान ली हों उन्हें कहा जाय कि अगर वे उन्हें रद न कर देंगे तो रेलगाड़ियों-द्वारा उनका माल ले जाना बन्द कर दिया जायगा, और राजनैतिक परिस्थिति व बहिष्कार से किसीको अधिक लाभ न उठने देना चाहिए।

१६३२–३३ की घटनायें भी प्रायः १६३०–३१ की ही तरह रहीं, अलबत्ता लड़ाई इस बार और भी जोरदार एवं निश्चयात्मक थी। दमन और भी अन्धाधुन्धी के साथ चला और लोगों को पहले से भी कहीं ज्यादा कष्ट-सहन करना पड़ा।

कार्य-समिति की तत्परता

सरकारी आक्रमण ४ जनवरी के बड़े सवेरे म० गांधी और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी के साथ आरम्भ हुआ। १६३२ के उपर्युक्त आर्डिनेन्स उसी दिन सवेरे जारी हुए और कई प्रान्तों पर लागू कर दिये गये। पश्चात् कुछ

ही दिनों में, अमली तौर पर, सारे देश में लागू हो गये। अनेक प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-कमिटियों, आश्रमों, राष्ट्रीय स्कूलों तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं को गैरकानूनी करार दे दिया गया और उनकी इमारतों, फर्नीचर, रुपये-पैसे तथा अन्य चल-सम्पत्ति को सरकारी कब्जे में ले लिया गया। देश के खास-खास कांग्रेसियों में से अधिकांश को एकदम जेलों में ठूंस दिया गया। इस प्रकार देखते-ही-देखते कांग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया-पैसा, न निवास-स्थान। लेकिन इस आकस्मिक और दृढ़ झपट्टे के बावजूद जो कांग्रेसी बच रहे थे वे भी साधन-हीन नहीं हो गये थे। जो जहां था वहीं उसने काम शुरू कर दिया। कार्य-समिति ने तय कर लिया कि १९३० की तरह इस बार खाली होनेवाले स्थानों की पूर्ति न की जाय और सरदार वल्लभभाई पटेल ने, अपनी खुद की गिरफ्तारी का खयाल करके, अपने बाद क्रमशः कार्य करनेवाले व्यक्तियों की एक सूची बनाई। कार्य-समिति ने अपने सारे अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द कर दिये और अध्यक्ष ने उन्हें अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दिया, जो क्रमशः अपने उत्तराधिकारियों को नामजद करके वे अधिकार दे सकते थे। प्रान्तों में भी, जहां कहीं सम्भव हुआ, कांग्रेस-संगठन की सारी सत्ता एक ही व्यक्ति को दे दी गई। इसी प्रकार जिलों, थानों, ताल्लुकों और गांवों तक की कांग्रेस-कमिटियों में भी हुआ। यही व्यक्ति आम तौर पर डिक्टेटर या सर्वेसर्वा के रूप में प्रसिद्ध हुए। एक बड़ी कठिनाई सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के संचालकों के सामने यह थी कि अवज्ञा अर्थात् आज्ञा-भंग के लिए किन कानूनों को चुना जाय ? यह तो स्पष्ट ही है कि हरेक या चाहे जिस कानून का भंग नहीं किया जा सकता। कांग्रेस की इस कठिनाई को व्यापक आर्डिनेन्सों ने हल कर दिया। अस्तु, भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न विषय चुने गये, जब कि कुछ विषयों का समय-समय पर कार्यवाहक-राष्ट्रपति की ओर से आदेश मिलता रहा। शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों तथा ब्रिटिश माल की पिकेटिंग सब प्रान्तों में समान-रूप से लागू हुई। लगानबन्दी युक्तप्रान्त में काफी बड़ी हदतक और बंगाल में आंशिक रूप से एक महत्त्व का विषय रहा। बिहार व बंगाल के कुछ स्थानों में चौकीदारी-टैक्स देना बन्द कर दिया गया। मध्यप्रान्त व बरार, कर्नाटक, युक्तप्रान्त, मदरास प्रेसीडेन्सी तथा बिहार के कुछ स्थानों में जंगलात के कानूनों का भंग किया गया। गैरकानूनी नमक बनाने, एकत्र करने और बेचने के रूप में नमक-कानून का भंग तो अनेक स्थानों में किया गया। सभाओं और जुलूसों की तो जरूर ही मनाही की गई, लेकिन निषेधाज्ञाओं के होते हुए भी सभायें हुईं और जुलूस भी निकाले गये। लड़ाई की शुरुआत में खास-खास दिनों का मनाया जाना बहुत लोकप्रिय रहा, जोकि बाद में

विशेष उत्सव के दिन ही वन गये। ये किन्हीं खास घटनाओं या व्यक्तियों अथवा कार्यों को लेकर मनाये जाते थे; जैसे गांधी-दिवस, मोतीलाल-दिवस, सीमाप्रान्तीय-दिवस, शहीद-दिवस, झण्डा-दिवस इत्यादि। जैसा कि अभी कह चुके हैं, कांग्रेस के दफ्तरों व आश्रमों को सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया था। अतः अनेक स्थानों में उन्हें सरकारी कब्जे से वापस अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया गया, जिसका प्रयोजन उस आर्डिनेन्स का भंग करना था जिसके अनुसार इन स्थानों में जाना निषिद्ध और गैरकानूनी करार दे दिया गया था। ये प्रयत्न 'धावों' के नाम से मशहूर हैं। आर्डिनेन्सों के कारण कोई प्रेस कांग्रेस का काम नहीं कर सकता था। इस अभाव की पूर्त्ति के लिए वेजाब्ता हस्त-पत्रक, परचे, संवाद-पत्र, रिपोर्टें आदि निकाले गये, जो या तो टाइप किये हुए होते थे या साइक्लोस्टाइल अथवा डुप्लीकेटर से निकले हुए और कभी-कभी छपे हुए भी—लेकिन, जैसा कि कानूनन होना चाहिए, उनपर प्रेस या मुद्रक का नाम नहीं होता था। और कभी-कभी ऐसे नाम दे दिये जाते थे जिनका अस्तित्व ही कहीं नहीं होता था। यह मार्के की वात है कि पुलिस के सतर्क रहने पर भी ये संवाद-पत्र और हस्तपत्रक नियमित रूप से प्रकाशित होकर, जो-कुछ हो रहा था उसकी, सारे देश को खबरें पहुँचाते रहे। डाक और तार विभाग के दरवाजे कांग्रेस के लिए वन्द हो गये थे, इसलिए कांग्रेस ने अपनी डाक को खुद ही पहुँचाने की व्यवस्था की—और वह प्रान्त के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ही नहीं वल्कि महासमिति के कार्यालय से विभिन्न प्रान्तों तक को। कभी-कभी यह डाक ले जानेवाले स्वयंसेवक पकड़े भी गये और तव स्वभावतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, या कोई कार्रवाई की गई। १९३० के आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में वस्तुतः यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी और १९३२ में जाकर यह लगभग पूर्णता को पहुँच गई। और तो और पर महासमिति या प्रान्तीय कमिटियों के दफ्तरों का भी सरकार पता नहीं लगा सकी, जहां से न केवल हस्तपत्रक ही निकलते थे वल्कि आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध में हिदायतें भी जारी होती रहती थीं; और जब कभी ऐसा काम करनेवाले किसी दफ्तर या व्यक्ति का पता लगाकर काम में रुकावट डाली गई कि तुरन्त ही उसकी जगह दूसरा तैयार हो गया और काम चलाने लगा। दूसरी वात जिससे कि लोगों में वड़ा उत्साह पैदा हुआ और जिससे पुलिस को भी कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी, कांग्रेस के अधिवेशन का किया जाना था, जिसके वाद प्रान्तों व जिलों की परिषदों के रूप में देशभर में कांग्रेसी सम्मेलनों की लड़ी लग गई। कई जगह स्वयंसेवकों ने, जंजीर खींचकर चलती रेलगाड़ियों को रोकने के रूप में, रेलों के नियमित काम-काज में खलल डालने की कोशिश की। एक वार तो रेलों को

नुकसान पहुँचाने की दृष्टि से बहुत बड़ी तादाद में बिना टिकट रेल में जाने का भी प्रयत्न किया गया, लेकिन जिम्मेवार हलकों से इस चेष्टा को प्रोत्साहन नहीं मिला इसलिए बाद में यह बन्द कर दी गई।

हां, बहिष्कार ने बहुत जोर पकड़ा। इसके एक-एक अंग को चुनकर उसपर शक्तियां केन्द्रित की गईं। कई स्थानों में विदेशी कपड़े, ब्रिटिश दवाइयों, ब्रिटिश बैंकों, बीमा-कम्पनियों, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।

सरकार का दमन चक्र

यह तो खयाल ही नहीं करना चाहिए कि नेताओं को गिरफ्तार कर लेने के बाद सरकार खामोश या नरम पड़ गई। आर्डिनेन्सों में उल्लिखित सब अधिकारों का उसने उपयोग किया। यहां तक कि दमन के कुछ ऐसे तरीके भी अख्तियार किये गये जिनकी उन आर्डिनेन्सों तक में इजाजत नहीं थी, जो अपनी भयंकरता के लिए बदनाम हैं। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि गिरफ्तारियां बहुत बड़ी तादाद में हुई, लेकिन वे की गई चुन-चुन कर। सजा पानेवालों की कुल संख्या एक लाख से कम न होगी। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गई कि कैम्प तथा अस्थायी जेलों के बनाये जाने पर भी जेल जानेवाले सब सत्याग्रहियों को कैद में रखने की जगह नहीं थी। इसलिए कैदियों का चुनाव करना जरूरी हो गया और साधारणतः उन्हींको जेलों में भेजा गया जिनके लिए यह समझा गया कि उनमें संगठन का कुछ माद्दा है या कांग्रेस-क्षेत्र में उनका विशेष महत्त्व है। जेलों में उन सबकी व्यवस्था करना भी कुछ आसान न था। अतः ९५ फीसदी से ज्यादा व्यक्तियों को 'सी' क्लास में रक्खा गया। 'बी' क्लास में बहुत कम लोग रक्खे गये। और 'ए' क्लास तो कई स्थानों में बराय-नाम ही रहा, बाकी जगह भी बहुत कम को ही वह मिला। ऐसी दशा में इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि जो स्त्री-पुरुष अपने देश को स्वतन्त्र करने की श्रेष्ठ भावना से प्रेरित होकर ही जेलों में गये थे, उनके लिए खास तौर पर कतार में खड़े होने, बैठने या हाथ उठाने जैसी अपमानपूर्ण बातें सहन करना सम्भव नहीं था। इन कारणों से जेल-अधिकारियों के साथ अक्सर उनका संघर्ष हो जाता था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐसी सजायें उन्हें दी जाती रहीं जिनकी जेल के नियमों में स्वीकृति थी; और बहुत बार पिटाई व दूसरे ऐसे जुल्म भी किये गये जो जेल की चहार-दीवारी के भीतर किसीको

पता लगाने के भय से मुक्त हो कर आसानी से किये जा सकते हैं। एक खास तरह की अपमानप्रद स्थिति में वैठने से इन्कार करने पर मार-पीट और हमला करने के अत्याचार का एक मामला तो अदालत में भी पहुँचा, जिसके परिणम-स्वरूप नासिक-जेल के जेलर, उसके सहायक तथा कई अन्य व्यक्तियों को सजा भी हुई; परन्तु सत्याग्रही कैदियों के लाठी से पीटे जाने की घटनायें तो अक्सर ही होती रहीं। अस्थायी जेलों में रहना तो विलकुल ही नाकाविल वर्दाश्त था; क्योंकि उनमें टीन के जो छप्पर पड़े हुए थे उनसे न तो मई-जून की गर्मी का वचाव होता था, न दिसम्वर-जनवरी की ठण्ड का ही वचाव होता था। इससे वहां तन्दुरुस्ती अच्छी रह नहीं सकती थी। इसमें शक नहीं कि कुछ जेलें ऐसी भी थीं जहां का व्यवहार किसी हदतक वर्दाश्त किया जा सकता था; लेकिन वह तो नियम नहीं वलिक किसी कदर अपवाद-स्वरूप ही था। हालत तो कुछ स्थायी जेलों की भी कोई वहुत अच्छी न थी। अनेक जेलों में, खासकर कैम्प-जेलों में, कैदियों का स्वास्थ्य वहुत विगड़ रहा था। पेचिश का तो सभी समय जोर था, वर्षा और ठण्ड के साथ निमोनिया व फेफड़े की नाजुक वीमारियों ने भी वहुतों को आ दवोचा। फलतः अनेक तो जेलों में ही मर गये। जेलों में जिन जेल-कर्मचारियों से कैदियों का सावका पड़ता उनके शील-स्वभाव पर ही वहुत-कुछ जेलों में उनके साथ होनेवाला वर्ताव निर्भर था; और वे, कुछ खास अपवादों को छोड़कर, आम तौर पर न तो विवेकशील थे और न उनमें कोई लिहाज-मुलाहिजा ही था।

लाठी मार-मारकर लोगों की भीड़ और जुलूसों को भंग करने का तरीका तो पुलिस ने शुरुआत में ही अख्त्यार कर लिया था। किसी भी प्रान्त में मुश्किल से ही कोई खास जगह ऐसी रही होगी जहां आन्दोलन में जीवन के चिन्ह दिखाई दिये हों और फिर भी लाठी-प्रहार न हुआ हो। चोट खानेवालों की संख्या भी कुछ कम न थी। अनेक स्थानों में तो लोगों के गहरी चोटें लगीं। लोगों को यह आदत थी कि जहां सत्याग्रहियों का कोई जुलूस निकल रहा हो, कोई सभा हो रही हो, या वे किसी धावे पर जा रहे हों, अथवा कहीं धरना दे रहे हों, तो वे यह जानने के लिए जुट जाते थे कि देखें क्या होता है; लेकिन जव लाठी-प्रहार होता तो इस वात का कोई भेद-भाव नहीं किया जाता था कि इनमें कौन तो कानून-भंग के लिए एकत्र हुए हैं और कौन सिर्फ तमाशवीन हैं। यह आम चर्चा थी कि अनेक स्थानों में तो इतने जोरो-जुल्म हुए कि जिनका वयान नहीं किया जा सकता। और तो और पर स्त्रियों, लड़कों और छोटे-छोटे वच्चों तक को नहीं वख्शा गया। आखिर एक नया उपाय सरकार के हाथ लगा। जेलों व मार-पिटाई की सख्तियों के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे, और अनेक तो

गोली खाकर मर जाने को भी तैयार थे—लेकिन, सरकार ने सोचा, अगर इनकी सम्पत्ति पर आक्रमण किया जाय तो इनमें से बहुत-से उसे बरदाश्त न कर सकेंगे। अतएव सजा देते वक्त उनपर भारी-भारी जुर्माने किये गये। कभी-कभी तो जुर्मानों की रकम दस हजार या इससे भी अधिक तक चली जाती थी। जहां मालगुजारी, लगान या अन्य करों का देना बन्द किया गया वहां तो ऐसी बकाया रकमों और करों की तथा जुर्मानों की वसूली के लिए न केवल उन्हीं लोगों की मिल्कियत पर धावा बोला गया जिनसे कि उन्हें वसूल करना वाजिब था, बल्कि साथ में संयुक्त-परिवारों की और कभी-कभी तो नाते-रिश्तेदारों की मिल्कियत भी कुर्क करके बेच डाली गई। कुर्की और बिक्री तक ही बात रहती तो भी गनीमत थी, लेकिन यहां तो कुर्की के बाद बड़ी-बड़ी कीमत की मिल्कियतों को बिलकुल कौड़ी के ही मोल बेच डाला गया। और कुर्की व बिक्री की कानूनी कार्रवाई से भी बढ़कर जो दुःखदायी बात हुई वह तो है कानून से बाहर जाकर गैर-कानूनी तरीकों से सताया जाना और नुकसान पहुँचाना, जिसे हृदय-हीन लूट और बरबादी ही कह सकते हैं। न केवल फर्नीचर, बर्तन-भाण्डे, गहने, मवेशी और खड़ी फसल जैसी चल-सम्पत्ति ही कुर्क करके बेच या कभी-कभी नष्ट करदी गई, बल्कि जमीन और घर-बार भी नहीं छोड़ा गया। गुजरात, युक्त-प्रान्त और कर्नाटक में बहुत लोग ऐसे हैं जो आज भी जमीनों से हाथ धोये बैठे हैं, हालांकि उनका कष्ट-सहन बिलकुल स्वेच्छा-पूर्ण था; क्योंकि जिस रकम को चुकाने से उन्होंने इन्कार किया, अगर अपने को और अपने माल-असबाब को बचाना ही उनका उद्देग होता तो किसी-न-किसी तरह उसे वह चुका ही देते। सच तो यह है कि ये आफतें उनपर लादी ही गई थीं। क्योंकि अगर बकाया की वसूली ही प्रयोजन होता तो उन्हें इस तरह नष्ट न किया जाता। गुजरात के किसानों ने, और जिन्होंने लगान-माल-गुजारी न देने के आन्दोलन में भाग लिया उन्हें, ऐसे कष्ट-सहन की अग्नि में से गुजरना पड़ा जिसका वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी वे हिम्मत न हारे। अनेक स्थानों में अतिरिक्त ताजीरी-पुलिस तैनात की गई और उसका खर्चा वहां के निवासियों से वसूल किया गया। बिहार-प्रान्त के कुल चार-पांच स्थानों में, जहां ऐसी अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई थी, कम-से-कम ४ लाख ७० हजार रुपया वहां के निवासियों से ताजीरी करके रूप में वसूल किया गाय। मिदनापुर जिले (बंगाल) के कुछ हिस्सों में ताजीरी फौज की तैनाती से ऐसा सर्वनाश और आतंक फैला कि जिले के दो थानों में रहनेवाले हिन्दुओं में से अधिकांश तो सचमुच ही अपने घर-बार छोड़कर आस-पास के स्थानों में चले गये। उन्हें इतने अवर्णनीय कष्टों का सामना करना पड़ा कि उनकी

स्त्रियों की मृत्यु तक हो गई। अनेक स्थानों में सामूहिक जुर्माने भी किये गये, जिनकी वसूली वहां रहनेवाले लोगों से की गई। देश के कई स्थानों में गोली-वार भी हुए, जिनमें अनेक व्यक्ति मरे और मरनेवालों से भी ज्यादा घायल हुए। इस में सीमाप्रान्त का नम्वर सवसे आगे रहा।

इस विषय की तफसील में उतरकर इस वर्णन को भारभूत करना अनावश्यक है। सब स्थानों या व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करने से कोई फायदा नहीं। सरकार व उसके कर्मचारियों ने जो कानूनी, गैर-कानूनी तथा कानून-वाह्य उपाय ग्रहण किये और उनके परिणाम-स्वरूप सर्वसाधारण को जो कष्ट-सहन करना पड़ा, उन सब का पर्याप्त वर्णन करने का अगर हम थोड़ा भी प्रयत्न करें तो उसीका एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह आन्दोलन तो देशव्यापी था और हरेक प्रान्त ने इसमें अपनी पूरी शक्ति लगाने की एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा की थी। यह वात भी नहीं कि अकेले ब्रिटिश-भारत तक ही यह महदूद रहा हो। (वघेलखण्ड-जैसी कुछ-रियासतों ने भी इसमें अपनी शक्ति लगाई) और अनेक रियासतों के कार्यकर्त्ताओं ने भी लड़ाई में भाग लेकर तकलीफें उठाईं।

जिन आश्रमों और कांग्रेस-कार्यालयों को सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया था उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, यहां तक कि कहीं-कहीं तो उनमें आग भी लगा दी गई।

अखवारों को वड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। वहुत-से अखवारों से जमानतें मांगी गईं, वहुतों की जमानतें जप्त की गईं, और वहुत-से अखवारों को जमानत जमा न कर सकने या प्रेस जव्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही वन्द कर देना पड़ा।

इस आतंक और सर्वनाश के वीच भी एक वात विलकुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगों ने किसी गम्भीर हिंसात्मक कार्य का अवलम्वन नहीं लिया। अहिंसा की शिक्षा उनमें जड़ पकड़ चुकी थी, जिसके कारण महीनों तक आन्दोलन जारी रहा, जव कि सरकार ने तो चन्द हफ्तों में ही उसे खतम कर देने की आशा की थी। यह कहें तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि आन्दोलन को कुचलने के लिए कानून के अलावा जिन साधनों तथा आर्डिनेन्सों का सहारा लिया गया, जो कि समस्त कानून और सभ्य-शासन के मूलभूत सिद्धान्तों के ही प्रतिकूल थे, उन्हें अगर न अपनाया गया होता तो आन्दोलन को दवाने में सरकार को और भी कठिनाई होती। इधर कांग्रेसवालों को भी, उनके लिए आवागमन के सव खुले साधन वन्द कर दिये जाने के कारण, स्वभावतः गुप्त उपायों

की ओर झुकना पड़ा। लेकिन इसमें भी साधारण, खुफिया और विशेष सब तरह की पुलिस के विस्तृत जाल से बचकर काम करने की शक्ति में उन्होंने अपनेको पूरा पटु साबित किया। कांग्रेस-कार्यालयों के बने रहने और हस्तपत्रकों के नियमित प्रकाशन-द्वारा जनता व कांग्रेसियों को नये-नये कार्यक्रमों की हिदायतें पहुँचाते रहने का उल्लेख हम कर ही चुके हैं। सत्याग्रह के लिए यद्यपि बहुत बड़ी रकम की जरूरत नहीं, लेकिन इतने विस्तृत पैमाने पर होनेवाली लड़ाई के लिए तो वह भी चाहिए ही। यह सौभाग्य की बात है कि धनाभाव के कारण काम में रुकावट पड़ने का मौका कभी उपस्थित नहीं हुआ। धन तो कहीं-न-कहीं से आता ही रहा। गुमनाम दानियों तक ने सहायता दी—और, कभी-कभी तो यह भी नहीं देखा कि किसे वह दान दे रहे हैं। यह मार्के की बात है कि ऐसी परिस्थिति में भी, जबकि सारा दफ्तर लोगों की जेबों में ही रहता था, हिसाब-किताब बड़ी कड़ाई के साथ रक्खा गया और प्राप्त-सहायता का उपयोग सावधानी के साथ लड़ाई के लिए ही किया गया।

दिल्ली-अधिवेशन

इस वर्णन को खतम करने से पहले कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन का भी वर्णन कर देना चाहिए जो कि १९३२ के अप्रैल महीने में दिल्ली में हुआ था। वह पुलिस की बड़ी भारी सतर्कता के बावजूद किया गया था, जिसने कि दिल्ली के रास्ते में ही बहुत से प्रतिनिधियों का पता लगाकर उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया था।

चांदनीचौक के घंटाघर पर यह अधिवेशन हुआ और पुलिस की सतर्कता के बावजूद लगभग ५०० प्रतिनिधि जैसे-तैसे सभा-स्थान पर जा पहुँचे थे। पुलिस इस सन्देह में कि अधिवेशन के जगह का जो ऐलान किया गया है वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियों को नई दिल्ली में कहीं तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियों के जुलूस से निबटती रही। पेश्तर इसके कि वह घण्टाघर पर आये, काफी तादाद में प्रतिनिधि एकत्र हुए और उन्होंने कार्रवाई भी शुरू कर दी। अहमदाबाद के सेठ रणछोड़दास अमृतलाल, कहते हैं, उसके सभापति थे। उसमें कांग्रेस की सालाना रिपोर्ट पेश हुई और चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण स्वाधीनता ही कांग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे में सविनय-अवज्ञा के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे में गांधीजी के आवाहन पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उसे बधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया, तथा चौथे में अहिंसा में अपने विश्वास को फिर से

[illegible]

[illegible]

: २ :

संग्राम फिर स्थगित

गांधीजी का आमरण उपवास

पाठकों को याद होगा कि दूसरी-गोलमेज-परिषद् में गांधीजी ने अपना यह निश्चय सुनाया था कि अस्पृश्यों को यदि हिन्दू-जाति से अलग करने की चेष्टा की गई तो मैं उस चेष्टा का अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी मुकावला करूँगा। अव गांधीजी के उस भीषण व्रत की परीक्षा का अवसर आ पहुँचा था। मताधिकार और निर्वाचन की सीटों का निर्णय करने के लिए, लोथियन-कमिटी, १७ जनवरी को भारत में आ पहुँची थी। समय वीतता चला जा रहा था, रिपोर्ट तैयार हो जायगी। सरकार झटपट काम खतम करने में दक्ष है ही, और हम लोग इसी तरह जवानी जमा-खर्च करते रहेंगे। इसलिए वहुत सोचने-समझने के वाद, गांधीजी ने भारत-मंत्री सर सेम्युअल होर को ११ मार्च को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने यह निश्चय प्रकट किया कि यदि सरकार ने अस्पृश्यों या दलित-जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन रक्खा तो मैं आमरण उपवास करूँगा। सर सेम्युअल होर ने अपना उत्तर १३ अप्रेल १९३२ को भेजा। यह उत्तर वही पुरानी पत्थर की लकीर का उदाहरण था; लोथियन-कमिटी की प्रतीक्षा की जा रही है; हां, उचित समय पर गांधीजी के विचारों पर भी ध्यान दिया जायगा। १७ अगस्त को मि० मैकडानल्ड का निश्चय, जिसे भूल से 'निर्णय' के नाम से पुकारा जाता है, सुनाया गया। (देखो परिशिष्ट ७) दलित-जातियों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार तो मिला ही, साथ ही आम निर्वाचन में भी उम्मीदवारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का भी अधिकार दिया गया। दोनों हाथों से उदारता-पूर्वक दान दिया गया था। १८ अगस्त को गांधीजी ने अपना निश्चय किया और उस निश्चय से प्रधान-मंत्री को सूचित कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि व्रत यानी उपवास २० सितम्बर (१९३२) को तीसरे पहर से शुरू होगा। मि० मैकडानल्ड ने आराम के साथ ८ सितम्बर को उत्तर दिया और १२ सितम्बर को सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। प्रधान-मंत्री ने गांधीजी को दलित-जातियों के प्रति शत्रुता के भाव रखनेवाला व्यक्ति वताना उचित समझा। व्रत २० सितम्बर १९३२ को आरम्भ

होनेवाला था। पत्र-व्यवहार के प्रकाशन और व्रत आरम्भ होने में एक सप्ताह का अन्तर था। यह सप्ताह देश ही क्या, संसार-भर के लिए क्षोभ, चिन्ता और हलचल का सप्ताह था। यह सप्ताह बड़े अवसाद का सप्ताह था, जिसमें व्यक्तियों और संस्थाओं ने, उस क्षण जो ठीक समझा किया। गांधीजी से भेंट करने की अनुमति मांगी गई, पर न मिली। संसार के कोने-कोने से पूना को तार भेजे गये। गांधीजी का संकल्प छुड़ाने के लिए तरह-तरह की सलाहों और तर्कों से काम लिया गया। मित्र उनके प्राण बचाने के लिए चिन्तित थे और शत्रु उपहास-पूर्ण कुतूहल के साथ सारा व्यापार देख रहे थे। जब रूस के महान् गिर्जे में आग लगी तो लोग टूटते और जलते हुए खम्भों और शहतीरों की तड़तड़ आवाज को सुनने के लिए दौड़े गये थे। अबसे आठ साल पहले इसी जेल में गांधीजी अकस्मात् 'अपेण्डिसाइटिस' से बीमार पड़े थे। पर इस बार उन्होंने अकस्मात् नहीं, स्वेच्छा से मृत्यु-शय्या का आलिंगन किया था और स्वेच्छा से ही व्रत आरम्भ किया था। इसलिए देश का स्तब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। प्रधान-मंत्री का निश्चय तो रद होना ही चाहिए। वह स्वयं तो ऐसा करेंगे नहीं। इसलिए हिन्दुओं के आपसी समझौते के द्वारा उसका अन्त होना चाहिए। इसके लिए एक परिषद् करना आवश्यक है। परिषद् १९ को हो या २० को? यही प्रश्न था। गांधीजी के जीवन की रक्षा करनी ही चाहिए। यह बड़ी अच्छी बात हुई कि दलित-जातियों के ही एक नेता ने इस दिशा में पैर बढ़ाया। रावबहादुर एम० सी० राजा ने पृथक् निर्वाचन को धिक्कारा। सर सप्रू ने गांधीजी की रिहाई की मांग पेश की। कांग्रेस-वादियों ने भी स्वभावतः देश-भर में संगठन करके समझौता कराने की चेष्टा की। पर मालवीयजी समय के अनुसार चला करते हैं। उन्होंने तत्काल नेताओं की एक परिषद् बुलाने की बात सोची। इंग्लैण्ड में दीनबन्धु एण्डरूज, मि० पोलक और मि० लेन्सबरी ने स्थिति की गम्भीरता की ओर अंग्रेज-जनता का ध्यान आकर्षित कराना आरम्भ किया। एक अपील पर प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्ताक्षर हुए, जिसके द्वारा इंग्लैण्ड-भर में खास तौर से प्रार्थना करने को कहा गया। भारतवर्ष में २० सितम्बर को उपवास और प्रार्थनायें की गईं। इसमें शान्ति-निकेतन ने भी भाग लिया। वैसे इस आन्दोलन का आरम्भ प्रधान-मंत्री के निश्चय में संशोधन कराने के लिए किया गया था, पर इस आन्दोलन को अस्पृश्यता-निवारण के अधिक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण करते देर न लगी। कलकत्ता, दिल्ली और अन्य स्थानों में अस्पृश्यों के लिए मन्दिर खोले जाने लगे। यह आशा की जाती थी कि गांधीजी उपवास के आरम्भ होते ही छोड़ दिये जायँगे। पर पता चला कि उनकी रिहाई तो क्या होगी उन्हें, किसी

ख़ास स्थान पर नजरबन्द कर दिया जायगा और उनकी गति-विधि पर भी रुकावट लगा दी जायगी। गांधीजी ने सरकार को लिखा कि "इस प्रकार स्थान-परिवर्तन करके व्यर्थ खर्च और कष्ट क्यों उठाया जाय? मुझसे किसी शर्त का पालन न हो सकेगा।" सरकार भी राजी हो गई और उसने गांधीजी को ऐसी व्यवस्था स्वीकार करने को मजबूर न किया जो उन्हें अरुचिकर लगती हो।

पूना-पैक्ट

पूना-पैक्ट जिन-जिन बातों का परिणाम है, उनके क्रम-विकास में पाठकों को ले जाना हमारे लिए सम्भव नहीं है। परिषद् बम्बई में आरम्भ हुई, पर शीघ्र ही पूना में ले जाई गई। (जो लोग इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण जानना चाहें उन्हें गांधीजी के प्राइवेट-सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल की सुन्दर पुस्तक 'एपिक फास्ट' (Epic Fast) और सस्ता साहित्य मण्डल-द्वारा प्रकाशित 'हमारा कलंक' पढ़ना चाहिए।) डा० अम्बेडकर शीघ्र ही बातचीत में शामिल हो गये और श्री अमृतलाल ठक्कर, श्री राजगोपालाचार्य, सर चुन्नीलाल मेहता, पण्डित मालवीय, बिड़लाजी, सरदार पटेल, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री जयकर, डा० अम्बेडकर, रावबहादुर एम० सी० राजा, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, पण्डित हृदयनाथ कुंजरू और अन्य सज्जनों की सहायता से एक योजना तैयार की गई, जिसे उपवास के पांचवें दिन सारे दलों ने स्वीकार कर लिया। दलित जातियों ने पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू-निर्वाचनों से ही सन्तोष कर लिया। (वैसे आम हिन्दू-निर्वाचनों में वे सरकारी निर्णय के अनुसार भी शामिल थे।) उच्च जातियों के हिन्दुओं ने महत्त्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किये। उनमें से एक संरक्षण यह है कि सरकारी निर्णय के अनुसार आम निर्वाचनों में जितनी जगहें दी गई हैं उनमें से १४८ दलित-जातियों को दी जायँ। दूसरा यह है कि हरेक की सुरक्षित जगह के लिए दलित-जातियां चार उम्मीदवार चुनें और आम निर्वाचन में उनमें से एक को चुन लिया जाय। पूरा समझौता उस समय तक कायम रहे जबतक सबकी सलाह से उसमें परिवर्तन न किया जाय। दलित-जातियों का प्रारम्भिक निर्वाचन दस साल तक जारी रहे। ब्रिटिश-सरकार ने पूना-पैक्ट को उस अंश तक स्वीकार कर लिया जिस अंश तक उसका प्रधान-मन्त्री के निश्चय से सम्बन्ध था। जो-जो बातें साम्प्रदायिक निर्णय के बाहर जाती थीं, उनपर निश्चय रोक रक्खा गया। दलित-जातियों के नेताओं को कृतज्ञ होना ही चाहिए था, क्योंकि प्रधान-मन्त्री के निश्चय के अनुसार उन्हें जितनी जगहें मिलनेवाली थीं, अब उन्हें उनसे दुगुनी मिल गईं

और उन्हें अपनी जन-संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। दस वर्ष वाद जनमत स्थिर करने के प्रश्न पर अन्तिम समय फिर विवाद उठ खड़ा हुआ, पर गांधीजी ने अवधि घटाकर ५ वर्ष कर दी, क्योंकि दस साल के लिए स्थगित करने से कहीं जनता यह न समझे कि डॉ० अम्वेडकर सवर्ण-जातियों की नेक-नीयती की आजमाइश करना नहीं चाहते, वल्कि विरुद्ध जनमत देने के लिए दलित-जातियों को तैयार करने के लिए अवकाश चाहते हैं। गांधीजी ने अन्त में उत्तर दिया—"मेरा जीवन या पांच वर्ष"। अन्त में यह निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को भविष्य में आपस के समझौते के द्वारा तय किया जाय। इसका नुस्खा श्री राजगोपालाचार्य ने सोच निकाला और गांधीजी ने कहा—"क्या खूव !" २६ तारीख को, ठीक जिस समय ब्रिटिश-मंत्रि-मण्डल-द्वारा समझौते के स्वीकृत होने की खवर मिली, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गांधीजी से भेंट की। २६ तारीख की सुवह को इंग्लैण्ड और भारत में एक-साथ घोपणा की गई कि पूना का समझौता स्वीकार कर लिया गया। मि० हेग ने वड़ी कौंसिल में वक्तव्य दिया, जिसमें निम्नलिखित वातें कही गईं:—

(१) प्रधान-मन्त्री के उस निश्चय के स्थान पर, जिसके द्वारा दलित-जातियों को प्रान्तीय कौंसिलों में पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया था, पार्लमेण्ट से सिफारिश करने के लिए उस व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है जो यरवडा-समझौते के मातहत स्थिर हुई है।

(२) यरवडा-समझौते के द्वारा प्रान्तीय-कौंसिलों में दलित-जातियों को जितनी जगहें देना निश्चित हुआ है, उन्हें स्वीकार किया जाता है।

(३) यरवडा के समझौते में दलित-जातियों के हित की गारण्टी के सम्वन्ध में जो-कुछ कहा गया है वह सवर्ण हिन्दुओं-द्वारा दलित-जातियों को दिये गये निश्चित वचन के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(४) वड़ी कौंसिल के लिए दलित-जातियों के प्रतिनिधियों को चुनने की प्रणाली और मताधिकार की सीमा के सम्वन्ध में यह कहना है कि अभी सरकार यरवडा-समझौते की शर्तों को निश्चित रूप में मान्य नहीं कर सकती, क्योंकि अभी वड़ी कौंसिल के प्रतिनिधित्व और मताधिकार का प्रश्न विचाराधीन है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सरकार समझौते के विरुद्ध नहीं है।

(५) वड़ी कौंसिल में आम निर्वाचन के लिए खुली जगहों में से १८ जगहें दलित-जातियों के लिए सुरक्षित रक्खी जायँ, इस वात को सरकार दलित-जातियों और अन्य हिन्दुओं के पारस्परिक समझौते के रूप में स्वीकार करती है।

गांधीजी को यह व्यवस्था स्वीकार करने में कुछ पशोपेश हुआ। वह चाहते थे कि दलित-जातियों के नेता भी सन्तुष्ट हो जायँ। उन्हें अपने भौतिक प्राण बचाने की चिन्ता न थी, बल्कि उन लाखों प्राणियों के नैतिक प्राण बचाने की चिन्ता थी, जिनके लिए वह उपवास कर रहे थे। परन्तु अन्त में पं० हृदयनाथ कुंजरू और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने गांधीजी का सन्तोष करा दिया। इसपर गांधीजी ने २६ तारीख को शाम के सवा पांच बजे उपवास छोड़ने का निश्चय किया। भजन और धार्मिक श्लोक-पाठ के बाद उन्होंने पारणा की। यह ठीक था कि गांधीजी के प्राण बच गये, परन्तु जिस श्वास में वह अपना उपवास भंग करने को राजी हुए उसीमें उन्होंने यह भी कह दिया कि यदि उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न किया गया तो मुझे निश्चय ही नये सिरे से उपवास करना पड़ेगा। गांधीजी ने कहा—"स्वतंत्रता का सन्देश हरेक हरिजन के घर में पहुँचना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब सुधार हरेक गांव में किया जाय"। जनता ने उपवास की उपयोगिता या औचित्य के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया था। गांधीजी को इस सम्बन्ध में कुछ कहना था। इसलिए उन्होंने १५ और २० सितम्बर को वक्तव्य दिये। उन्होंने अपनी स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की :—

"ज्ञान और तप के लिए उपवास करने की प्रथा सनातन काल से चली आती है। ईसाई-धर्म में और इस्लाम में इसका साधारणतया पालन किया जाता है, और हिन्दू-धर्म तो आत्म-शुद्धि और तपस्या के लिए किये गये उपवासों के उदाहरणों से भरा पड़ा है। मैंने आत्म-शुद्धि करने की बड़ी चेष्टा की है और उसका फल यह हुआ है कि मुझे 'अन्तर्नाद' ठीक-ठीक और साफ-साफ सुनने की कुछ क्षमता प्राप्त हो गई है। मैंने यह प्रायश्चित्त उस अन्तर्नाद की आज्ञा के अनुसार आरम्भ किया है।" यदि लोग यह कहें कि उपवास तो दूसरों को धमकाना है, तो गांधीजी का उत्तर है कि "प्रेम विवश करता है, धमकाता नहीं है," ठीक जिस प्रकार सत्य और न्याय विवश करते हैं। मैं अपने उपवास को न्याय के पलड़े में रखना चाहता हूँ। ऊपर से देखनेवालों को मेरा यह कार्य बच्चों का सा खेल प्रतीत हो सकता है, पर मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता। यदि मेरे पास कुछ और होता तो इस अभिशाप को मिटाने के लिए मैं उसे भी झोंक देता। पर मेरे पास प्राणों से अधिक और कुछ हई नहीं।"......"यह आगामी उपवास उनके विरुद्ध है जिनकी मुझमें आस्था है। चाहे वे भारतीय हों चाहे विदेशी। यह उपवास उनके विरुद्ध नहीं है जिनको मुझमें आस्था नहीं।" इस प्रकार उन्होंने यह बता दिया कि यह उपवास न अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध है, न भारत में उनके विरोधियों—चाहे

वे हिन्दू हों या मुसलमान—के विरुद्ध है, वल्कि उन असंख्य भारतीयों के विरुद्ध है जिनका विश्वास है कि वह न्यायपूर्ण वात के लिए किया गया है। गांवीजी ने कहा—"इस उपवास का प्रधान उद्देश तो हिन्दू अन्तःकरण में ठीक-ठीक धार्मिक कार्य-शीलता उत्पन्न करना है।"

वम्वई का प्रस्ताव

प्रधान-मंत्री-द्वारा पैक्ट स्वीकार होने और गांवीजी के उपवास छोड़ने के वाद ही परिषद् ने वम्वई में सभा की। एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा प्रतिज्ञा की गई कि हिन्दू अस्पृश्यता का निवारण करेंगे। जो संस्था वाद को हरिजन-सेवक-संघ के रूप में विकसित हो गई उसकी स्थापना इसी प्रस्ताव के फल-स्वरूप हुई। इसके सभापति सेठ घनश्यामदास विड़ला और मंत्री भारत-सेवक-समिति के श्री अमृतलाल ठक्कर हुए।

यहां हम वह प्रस्ताव देते हैं, जो २५ सितम्वर १६३२ को वम्वई की सभा ने सर्व-सम्मति से पास किया था। इस सभा के सभापति पण्डित मदनमोहन मालवीय थे।

"यह परिषद् निश्चय करती है कि अव भविष्य में हिन्दू जाति में किसीको जन्म से अस्पृश्य न समझा जायगा और जिन्हें अवतक अस्पृश्य समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओं की भांति ही कुओं, पाठशालाओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करने का अधिकार रहेगा। मौका मिलते ही इस अधिकार को कानूनी स्वरूप दे दिया जायगा और यदि इस प्रकार का रूप उसे स्वराज्य-पार्लमेण्ट स्थापित होने से पहले तक प्राप्त न हुआ तो स्वराज्य-पार्लमेण्ट का पहला कानून इस सम्वन्ध में होगा।

"यह भी निश्चित किया जाता है कि सारे हिन्दू नेताओं का यह कर्तव्य होगा कि पुराने रिवाजों के कारण अस्पृश्य कहलानेवाले हिन्दुओं पर मन्दिर-प्रवेश आदि के सम्वन्व में जो सामाजिक वंवन लगा दिया गया है उसे वे सारे वैध और शान्तिपूर्ण उपायों के द्वारा दूर कराने की चेष्टा करें।"

ऐसे पवित्र तप का स्वभावतः ही पूरा परिणाम निकला। अस्पृश्यता-निवारण के लिए सारा देश तैयार हो गया। खतरा इसी वात का था कि कहीं युवक जल्दवाजी से काम न लें। इसलिए गांवीजी को लगाम खींचनी पड़ी। अस्पृश्यों या हरिजनों—जैसा कि अव वे कहलाने लगे थे—के लिए मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कराने के निमित्त देश में कई व्यक्तियों ने सत्याग्रह किया। जिस प्रकार

असहयोग-आन्दोलन के जमाने में लोग झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे, उसी प्रकार हरिजन-आन्दोलन के अवसर पर भी उत्साही युवक परिस्थिति पर, या सत्याग्रह जैसा कठोर तप करने के अपने सामर्थ्य पर, विना विचार किये ही झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे। गांधीजी के नियंत्रण और प्रभाव ने १९२१–२२ में अनेक वार परिस्थितियों को वचाया था, वही प्रभाव अब फिर काम कर रहा था। हरिजन-आन्दोलन में रस लेने के गांधीजी के आवाहन का धन और जन दोनों रूप में ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला कि हालत में हर घण्टे और हर मिनट अन्तर पड़ता दिखाई दिया। भोपाल के नवाव ने इस हिन्दू-धार्मिक आन्दोलन के लिए ५०००) दिये। फादर विन्स्लो ने अपने अन्य सहधर्मियों के हस्ताक्षर के साथ एक अपील छपवाकर ईसाइयों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को धिक्कारा। उधर मौलाना शौकतअली गांधीजी की रिहाई का आग्रह कर रहे थे और इस वात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का भी निपटारा हो जाय। इस प्रकार वातावरण में एकता की भावना और एकता की पुकार छाई हुई थी, और यदि सरकार अकस्मात् २९ सितम्बर को अपनी नीति में परिवर्तन करके गांधीजी से मुलाकात आदि करने की वे सुविधायें जो उन्हें उपवास के समय दी गई थीं, न छीन लेती तो साम्प्रदायिक समझौता अवश्य हो जाता। श्री जयकर उनसे भेंट करना चाहते थे, पर उन्हें इजाजत न मिली। श्रीमती सरोजिनी देवी को स्त्रियों की जेल में वापस भेज दिया गया। श्रीमती कस्तूरवा गांधी को गांधीजी के पास से हटा दिया गया। मुलाकातें वन्द कर दी गई। गांधीजी अव वैसे ही कैदी हो गये जैसे १२ सितम्वर से पहले थे। परन्तु सरकार की एक वात की तारीफ करनी पड़ेगी कि श्रीमती कस्तूरवा को समय के पहले छोड़ दिया गया और उन्हें दूसरे दिन से गांधीजी के पास रहने दिया गया। गांधीजी ने इस प्रकार हरिजन-कार्य करने की सुविधाओं से वंचित होने पर विरोध प्रदर्शित किया, क्योंकि सरकार की यह कार्रवाई पूना-पैक्ट की शर्तों ही के विरुद्ध थी।

लम्वे-लम्वे पत्र-व्यवहार के वाद अन्त में सरकार ने गांधीजी को अपना अस्पृश्यता-निवारण-कार्य जारी रखने की अनुमति दे दी। हाल ही मुलाकातियों के, पत्र-व्यवहार के और समाचारपत्रों में लेख छपाने के सम्वन्ध में जो रुकावट डाल दी गई थी, उसे भी हटा लिया गया, और ७ नवम्वर को होम-मेम्वर मि० हेग ने वड़ी कौंसिल में निम्नलिखित वक्तव्य दिया :—

"हाल ही में गांधीजी ने यह कहा था कि उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के सम्वन्ध में जो कार्यक्रम निश्चय किया है, उसे पूरा करने के लिए मुलाकातों के, पत्र-व्यवहार

के और केवल इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य वातों के सम्बन्ध में उन्हें अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। सरकार गांधीजी की अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी चेष्टाओं में वाधा नहीं डालना चाहती, क्योंकि गांधीजी ने वताया है कि अस्पृश्यता-निवारण एक नैतिक और धार्मिक सुधार है, जिसका सत्याग्रह-आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव सरकार ने अस्पृश्यता-निवारण से सम्बन्ध रखनेवाली मुलाकातों के तथा पत्र-व्यवहार और लेख-प्रकाशन के सम्बन्ध में रुकावट हटा ली है; पर जिन मुलाकातों का सम्बन्ध विशेष रूप से राजनैतिक वातों से है, उनके प्रति सरकार की स्थिति पहले ही जैसी है, जैसा कि वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी-द्वारा मौलाना शौकतअली को दिये गये उत्तर से प्रकट है।" (पूना-पैक्ट और तत्सम्बन्धी सरकार से हुआ पत्र-व्यवहार परिशिष्ट ८ में देखिए।)

गुरुवयूर-सत्याग्रह

इस प्रथम महान् व्रत के और पूना-पैक्ट के विषय का अन्त करने से पहले हम इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना की ओर चर्चा करना चाहते हैं, जिसकी ओर जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्री केलप्पन मलावार में खास तौर से हरिजन-उत्थान-सम्वन्धी कार्य कर रहे थे। उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें आमरण उपवास करने को प्रेरित किया। उन्होंने इस उपवास का संकल्प गांधीजी के महान् व्रत के लगभग साथ-ही-साथ किया। श्री केलप्पन का उद्देश था कि गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को अस्पृश्यों के लिए मन्दिर-प्रवेश की अनुमति देने को राजी किया जाय। गांधीजी ने इस मामले की सारी वातों का अध्ययन करने के वाद स्थिर किया कि ट्रस्टियों को काफी नोटिस नहीं दिया गया। उन्हें वताया गया कि सफलता प्राप्त हुई रक्खी है—पर गांधीजी ने कहा कि तात्कालिक सफलता प्राप्त होने-न-होने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कार्य के नैतिक औचित्य का।

इसलिए गांधीजी ने श्री केलप्पन को तार दिया कि उपवास स्थगित करदो और ट्रस्टियों को पहले नोटिस देने के वाद ही फिर उचित अवसर पर उपवास करना ठीक होगा। साथ ही उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि यदि आवश्यक हुआ तो मैं भी श्री केलप्पन के साथ उपवास करूँगा। उसके वाद श्री केलप्पन ने भी उपवास करना त्याग दिया।

यहां गांधीजी के उस उपवास का भी जिक्र कर देना अनुचित न होगा जोकि २ दिसम्बर १९३२ को उन्होंने श्री अप्पासाहेब पटवर्धन की सहानुभूति में शुरू किया

था। श्री पटवर्धन ने जेल में भंगी का काम मांगा था, लेकिन अधिकारियों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। गांधीजी ने इस बारे में बम्बई-सरकार को लिखा, लेकिन उसका भी कोई असर न हुआ। इसपर श्री पटवर्धन ने अपना खाना क्रमशः कम करते हुए मृत्यु तक पहुँचानेवाला उपवास आरम्भ किया। अस्थायी-सन्धि के समय गांधीजी ने अप्पासाहब पटवर्धन से कहा था कि अगर तुम्हारी मांग स्वीकृत न हुई तो मैं भी तुम्हारे साथ उपवास करूँगा, अतः उनकी सहानुभूति में गांधीजी ने भी उपवास शुरू कर दिया। लेकिन दो ही दिनों में अधिकारियों ने यह आश्वासन दे दिया कि अगर उपवास छोड़ दिया जाय तो वे उनकी मांग पर विचार करेंगे। उसके फलस्वरूप उपवास तोड़ दिया गया। और एक सप्ताह के अन्दर ही भारत-मंत्री ने जेल के नियमों में ऐसा संशोधन कर दिया कि जिससे सवर्ण हिन्दुओं को भंगी का काम देने की रुकावट उठ गई। इस प्रकार यह सत्याग्रह सफल हुआ।

गिरफ्तारियाँ

हमने १९३२ के सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति का वर्णन कर ही दिया है। हमने पूना-पैक्ट का भी जिक्र कर दिया है। जनता ने गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण के आवाहन का जो उत्तर दिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति को निस्सन्देह क्षति पहुँची।

इतने पर भी कांग्रेस का कार्यक्रम चलाया जाता रहा। सत्याग्रह-आन्दोलन के शिथिल होने का एक कारण और भी था। जैसी परिस्थिति थी, और जैसा कि बयान किया जा चुका है, सत्याग्रह-आन्दोलन केवल लुक-छिपकर ही चलाया जा सकता था। और यह तरीका सत्याग्रह के सिद्धान्तों से असंगत और विरुद्ध ही नहीं बल्कि विपरीत भी है। पूना में गांधीजी के उपवास के सिलसिले में मित्रों के एकत्र होने से उस अवसर पर उन प्रमुख कांग्रेसी नेताओं में, जो रिहा हो चुके थे, विचार-विनिमय करने का खासा मौका मिल गया। उसीके फल-स्वरूप दो गश्ती-पत्र निकाले गये। एक में यह स्पष्ट किया गया कि कांग्रेसवादियों का मुख्य काम सत्याग्रह-आन्दोलन जारी रखना है, और अस्पृश्यता-निवारण का काम राष्ट्रीय विचारवाले गैर-कांग्रेसियों को और उन लोगों को दिया गया है जो किसी-न-किसी कारणवश जेल जाना नहीं चाहते। दूसरे पत्र में उस लुका-छिपी की नीति का, जो सत्याग्रह-आन्दोलन में आ चुकी थी, अन्त करने पर जोर दिया गया था।

सरकार ने अपना आक्रमण ४ जनवरी १९३२ को आरम्भ किया था।

इसलिए बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जो चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के वाद स्थानापन्न-सभापति हुए थे, सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को हिदायतें भेज दीं कि १९३३ के इस दिन एक खास वक्तव्य पढ़ा जाय। यह वक्तव्य भी, जिसमें संक्षेप में आन्दोलन की प्रगति और उन सारी समस्याओं का पर्यालोचन दिया गया था जो उस समय जनता के दिमाग में सबसे ऊपरी थीं, जगह-जगह भेज दिया गया। जगह-जगह सभायें हुईं, जिनमें यह वक्तव्य गिरफ्तारियों के और लाठी-वर्षा के वीच में पढ़ा गया। ६ जनवरी १९३३ को कांग्रेस-सभापति भी गिरफ्तार हो गये और उनका स्थान श्री अणे ने ग्रहण किया।

जब १९३२ की जनवरी में युद्ध आरम्भ हुआ तो सरदार वल्लभभाई पटेल कांग्रेस के सभापति थे। कार्य-समिति ने यह निश्चय किया कि १९३० के विपरीत इस वार कार्य-समिति के रिक्त स्थान पूरे न किये जायँ। सरदार वल्लभभाई ने उन सज्जनों की सूची तैयार की जो उनके वाद एक-एक करके उनका स्थान ग्रहण करेंगे। जनवरी १९३२ और जुलाई १९३३ के वीच में, जव कांग्रेस-संस्था का अस्तित्व लोप हो गया था, वावू राजेन्द्रप्रसाद, डॉ० अन्सारी, सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर, श्री गंगाधरराव देशपाण्डे, डॉ० किचलू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और वावू राजेन्द्रप्रसाद ने सभापति का भार ग्रहण किया। इस वीच में जिन-जिन सज्जनों ने मंत्री का काम किया और जिन-जिनपर अनेक कठिनाइयों के मध्य में कार्य चलाने का भार आकर पड़ा उनमें श्री जयप्रकाशनारायण, लालजी मेहरोत्रा, गिरधारी कृपलानी, आनन्द चौधरी, और आचार्य जुगलकिशोर का नाम उल्लेखनीय है।

१९३३ की घटनायें तो संक्षेप में ही वताई जा सकती हैं। कलकत्ते का अधिवेशन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रहा।

कलकत्ता-कांग्रेस

अप्रैल १९३२ के दिल्ली के अधिवेशन की भांति कलकत्ता का अधिवेशन भी निषेधाज्ञा के होते हुए करना पड़ा। यद्यपि इसका आयोजन उस समय किया गया था जव सत्याग्रह-आन्दोलन शिथिल पड़ गया था, फिर भी जो उत्साह और प्रतिरोध की भावना यहां दिखाई पड़ी वह दिल्ली में भी दिखाई न पड़ी थी। कुछ प्रान्तों ने तो अपने पूरे प्रतिनिधि भेजे। कुल मिलाकर कोई २२०० प्रतिनिधि सारे प्रान्तों से चुने गये। इस वात से कि पं० मदनमोहन मालवीय ने अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर लिया है, राष्ट्र का उत्साह और भी वढ़ गया। श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने

वृद्धावस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन में भाग लेने का जो निश्चय किया उससे आनेवाले प्रतिनिधियों को वड़ी स्फूर्ति मिली। अधिवेशन कलकत्ते में ३१ मार्च को वड़े सनसनीपूर्ण वातावरण में हुआ। डॉ० प्रफुल्ल घोष स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। सरकार ने अधिवेशन न होने देने के लिए कुछ उठा न रक्खा। पण्डित मदनमोहन मालवीय को कलकत्ते नहीं पहुँचने दिया गया। उन्हें वीच ही में आसनसोल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही श्रीमती मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद-महमूद और अन्य सारे व्यक्ति, जो सभापति के साथ थे गिरफ्तार कर लिये गये और सबको आसनसोल की जेल में ले जाया गया। कांग्रेस के कार्य-वाहक-सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल में भेज दिया गया। कलकत्ते में स्वागत-समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया और कई कांग्रेस-नेताओं पर प्रतिवन्ध लगा दिया गया। श्रीमती नेली सेनगुप्त और डॉ० मुहम्मद आलम इनमें प्रमुख थे। लगभग १००० प्रतिनिधि रवाना होने से पहले ही, या कलकत्ते के मार्ग में, गिरफ्तार कर लिये गये। वाकी प्रतिनिधि नगर में पहुँचने में सफल हुए। निषेधाज्ञा होते हुए भी लगभग ११०० प्रतिनिधि अधिवेशन के लिए नियत स्थान पर एकत्र हो गये। शीघ्र ही उनपर पुलिस आ टूटी और कांग्रेस-वादियों के शान्ति-पूर्ण समुदाय पर लाठियां वरसने लगीं। वहुत-से प्रतिनिधि वुरी तरह घायल हुए और श्रीमती नेली सेनगुप्त और अन्य प्रमुख कांग्रेसवादी गिरफ्तार किये गये। पुलिस ने अधिवेशन को वल-प्रयोग-द्वारा होने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही, क्योंकि लाठियों की वर्षा होते रहने पर भी प्रतिनिधियों का भीतरी समूह अपनी-अपनी जगहों पर जमा रहा, और वे सातों प्रस्ताव, जिन्हें पास करने के लिए पेश किया जानेवाला था, पढ़कर सुनाये गये और पास हुए। कलकत्ता-अधिवेशन के सिलसिले में गिरफ्तार हुए अधिकांश व्यक्तियों को कांग्रेस समाप्त होते ही छोड़ दिया गया। अन्य व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया और सजायें दी गई। श्रीमती सेनगुप्त को भी छः मास का दण्ड मिला। जेल से रिहा होते ही पण्डित मदनमोहन मालवीय सीधे कलकत्ता पहुँचे और शीघ्र ही देश के सामने इस वात का कि पुलिस ने किस अमानुषिकता के साथ कांग्रेस भंग करने की चेष्टा की थी, प्रमाण पेश किया। उन्होंने सरकार को जांच करने की चुनौती दी, पर यह चुनौती कभी स्वीकार न की गई। नीचे हम ३१ मार्च १९३३ को हुए कलकत्ता-अधिवेशन के प्रस्ताव देते हैं:—

१. स्वाधीनता का लक्ष्य—यह कांग्रेस उस प्रस्ताव को दोहराती है जो

लाहौर में १९२९ में पास किया गया था और जिसके द्वारा पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था।

२. सत्याग्रह वैध-अस्त्र है—यह कांग्रेस सत्याग्रह को जनता के अधिकारों की रक्षा करने, राष्ट्रीय मर्यादा को कायम रखने और राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूर्ण वैध उपाय समझती है।

३. सत्याग्रह कार्यक्रम का पालन—यह कांग्रेस कार्य-समिति के १ जनवरी १९३२ के निश्चय की पुष्टि करती है। पिछले १५ महीनों में जो-कुछ हुआ है उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के वाद कांग्रेस का यह दृढ़ निश्चय है कि देश इस समय जिस परिस्थिति में है, उसको देखते हुए सत्याग्रह-आन्दोलन को दृढ़ और व्यापक बनाया जाय, और इसलिए यह कांग्रेस जनता को आवाहन करती है कि इस आन्दोलन को कार्य-समिति के उपयुक्त प्रस्ताव के अनुरूप अधिक शक्ति के साथ चलाया जाय।

४. बहिष्कार—यह कांग्रेस जनता की सारी श्रेणियों और वर्गों को आवाहन करती है कि वे विदेशी कपड़ा विलकुल त्याग दें, खद्दर का व्यवहार करें और अंग्रेजी माल का वहिष्कार करें।

५. व्हाइट-पेपर—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जबतक ब्रिटिश-सरकार ऐसे निर्दयता-पूर्ण दमन-कार्य में लगी हुई है, जिसके द्वारा देश के परम-विश्वसनीय नेता और उनके हजारों अनुयायी जेलों में पड़े हैं या नजरवन्द हैं, बोलने और एकत्र होने के अधिकारों का हनन हो रहा है, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता पर कड़ा प्रतिवन्ध लग रहा है, और साधारण नागरिक-व्यवस्था के स्थान पर मार्शल-लॉ का दौर-दौरा है, और जिसका आरम्भ जान-बूझकर महात्मा गांधी के विलायत से लौटने पर, राष्ट्रीय-भावना को कुचलने के लिए किया गया था, तवतक उसके द्वारा तैयार की गई किसी भी शासन-व्यवस्था पर भारतीय जनता न विचार कर सकती है, न उसे स्वीकार कर सकती है।

कांग्रेस का विश्वास है कि हाल ही में प्रकाशित हुए व्हाइट-पेपर की योजना से जनता धोखे में न पड़ेगी, क्योंकि वह भारत के हितों की विरोधिनी है और इस देश में विदेशी प्रभुत्व स्थायी बनाने के लिए तैयार की गई है।

६. गांधीजी का उपवास—यह कांग्रेस देश को, २० सितम्बर को गांधीजी के उपवास की सकुशल समाप्ति पर, बधाई देती है और आशा करती है कि अस्पृश्यता शीघ्र ही अतीत की वस्तु हो जायगी।

७. मौलिक अधिकार—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जनता को यह समझाने

के लिए कि 'स्वराज्य' उनके लिए क्या महत्त्व रखता है, इस सम्बन्ध में कांग्रेस की स्थिति को साफ कर दिया जाय, और ऐसे रूप में साफ किया जाय कि उसे जन-साधारण समझ सकें। इस लक्ष्य को सामने रखकर यह कांग्रेस अपने १६३१ के करांची-अधिवेशन के मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रस्ताव नं० १४ को दुहराती है।

गांधीजी का उपवास

कलकत्ता-कांग्रेस के बाद शीघ्र ही देश में एक घटना हुई जो बिलकुल आकस्मिक थी। हरिजन-आन्दोलन में काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। इन कार्यकर्त्ताओं को अपना काम पवित्रता, सेवाभाव और अधिक नेकनीयती के साथ करने में सहायता देने के लिए गांधीजी ने ८ मई १६३३ को आत्म-शुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। उनके शब्दों में "यह अपनी और अपने साथियों की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य में अधिक सतर्कता और सावधानी के साथ काम कर सकें, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मैं अपने भारतीय तथा संसार-भर के मित्रों से अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मैं इस अग्निपरीक्षा में सकुशल पूरा उतरूँ, और चाहे मैं मरूँ या जिऊँ, मैंने जिस उद्देश से उपवास किया है वह पूरा हो। मैं अपने सनातनी भाइयों से अनुरोध करता हूँ कि वे प्रार्थना करें कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम-से-कम वह सुनहरी ढकना, जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय।" उन्होंने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा—"किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजकों की बौद्धिक या भौतिक शक्तियों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि आत्मिक शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक जाना-बूझा उपाय है।"

उसी दिन सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें कहा गया कि उपवास जिस उद्देश से किया गया है उसको सामने रखकर और उसके द्वारा प्रकट होनेवाली मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, भारत-सरकार ने निश्चय किया है कि वह (गांधीजी) रिहा कर दिये जायँ। तदनुसार गांधीजी ८ मई को छोड़ दिये गये। रिहा होते ही गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसके द्वारा उन्होंने छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन मौकूफ रखने की सिफारिश की।

गांधीजी ने कहा—"मैं इस रिहाई से प्रसन्न नहीं हूँ, और, जैसा कि कल मुझसे सरदार वल्लभभाई ने कहा और ठीक ही कहा, मैं इस रिहाई से लाभ उठाकर सत्याग्रह-आन्दोलन का संचालन या पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकता हूँ?

"इसलिए यह रिहाई मुझे सत्य का अन्वेषण करने को प्रेरित करती है और सम्मानशील व्यक्ति की हैसियत से मुझपर एक वहुत वड़ा भार रखती है और मुझे असमंजस में डालती है। मैंने आशा की थी और मैं अव भी आशा करता हूँ कि मैं न तो किसी वात को लेकर उत्तेजित होऊँगा, और न किसी प्रकार के वाद-विवाद में ही भाग लूंगा। यदि मैं अपने दिमाग में हरिजन-कार्य के अतिरिक्त और किसी वाहरी वात को जगह दूंगा तो इस उपवास का उद्देश ही नष्ट हो जायगा।

"पर साथ ही, रिहाई होने पर अव मैं अपनी थोड़ी-वहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलन का अध्ययन करने में भी लगाने को वाध्य हूँ।

"इसमें सन्देह नहीं कि इस समय मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि सत्याग्रह के सम्वन्ध में मेरे विचारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा है। असंख्य सत्याग्रहियों की वीरता और आत्मत्याग के लिए मेरे पास साधुवाद के सिवा और कुछ नहीं है। इतना कहने के वाद मैं यह कहे विना भी नहीं रह सकता कि इस आन्दोलन में जिस लुका-छिपी से काम लिया गया है वह उसकी सफलता के लिए घातक है। यदि आन्दोलन को जारी रखना है, तो जो लोग इस आन्दोलन का संचालन देश के विभिन्न स्थानों में कर रहे हैं उनसे मेरा कहना है कि लुका-छिपी छोड़ दो। यदि इससे एक भी सत्याग्रही का मिलना कठिन हो जाय तो मुझे परवाह नहीं है।

"इसमें सन्देह नहीं कि जन-साधारण को आर्डिनेन्सों ने भयभीत वना दिया है, और मेरी धारणा है कि लुका-छिपी के तरीकों का भी यह दव्बूपन उत्पन्न करने में इनका हाथ है।

"सत्याग्रह-आन्दोलन उसमें भाग लेनेवाले स्त्री-पुरुषों की संख्या पर नहीं, उनके गुण और योग्यता पर निर्भर करता है; और यदि मैं आन्दोलन का संचालन करूँ तो मैं योग्यता पर जोर दूंगा। यदि ऐसा हो सके तो आन्दोलन की सतह वहुत ऊँची हो जाय। किसी और रूप में जनता को हिदायत करना असम्भव है। वास्तविक युद्ध के सम्वन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। ये विचार जो मैंने प्रकट किये हैं, पिछले कई महीनों से मैंने अपने भीतर वन्द कर रक्खे थे; और मैंने जो-कुछ कहा है उसमें सरदार वल्लभभाई भी मुझसे सहमत हैं।

"मैं एक वात और कहूँगा, चाहे वह मुझे रुचिकर हो या न हो—इन तीन सप्ताहों में सारे सत्याग्रही भीषण दुविधा में रहेंगे। यदि कांग्रेस के सभापति श्री माधवराव अणे वाकायदा छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह मौकूफ रखने की घोषणा कर दें तो अधिक उत्तम हो।

"अब मैं सरकार से एक अपील करूँगा। यदि सरकार देश में वास्तविक शान्ति चाहती है और समझती है कि वास्तविक शान्ति मौजूद नहीं है, यदि वह समझती है कि आर्डिनेन्स का शासन सभ्य-शासन नहीं है, तो उसे इस आन्दोलन-बन्दी से लाभ उठाकर सारे सत्याग्रहियों को बिना किसी शर्त के छोड़ देना चाहिए।

"यदि मैं इस अग्नि-परीक्षा से बच गया तो इससे मुझे सारी अवस्था पर विचार करने का अवसर मिलेगा और मैं कांग्रेसी नेताओं को और यदि मैं कहने का साहस करूँ तो, सरकार को सलाह दे सकूंगा। मैं उस स्थान से बातचीत आरम्भ करना चाहूँगा जहां वह मेरे इंग्लैण्ड से वापस आने पर रह गई थी।

"यदि मेरी चेष्टाओं के फल-स्वरूप सरकार और कांग्रेस में समझौता न हो सका और सत्याग्रह-आन्दोलन फिर आरम्भ किया गया तो सरकार, यदि चाहे तो, फिर आर्डिनेन्स का शासन आरम्भ कर सकती है। यदि सरकार इच्छुक हुई तो कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयेगा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, इस बात का मुझे पूरा यकीन है।

"सत्याग्रह उस समय तक नहीं उठाया जा सकता जबतक इतनी अधिक संख्या में सत्याग्रही जेलों में हैं; और जबतक सरकार वल्लभभाई पटेल, खानसाहब अब्दुल-गफ्फारखां और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ हैं, तबतक कोई समझौता नहीं हो सकता।

"वास्तव में सत्याग्रह उठाना जेल से बाहर किसी आदमी के सामर्थ्य में नहीं है। यह केवल उस समय की कार्य-समिति ही कर सकती है। मेरा मतलब उस कार्य-समिति से है जो मेरी गिरफ्तारी के समय मौजूद थी। मैं अब सत्याग्रह के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूँगा। शायद मैंने सम्प्रति आवश्यकता से अधिक कह दिया है, परन्तु मुझे जो-कुछ कहना था वह मैंने कहने की शक्ति रहते कह दिया।

"मैं पत्र-प्रतिनिधियों से कहूँगा कि वे मुझे परेशान न करें। भविष्य में मुलाकात के लिए आनेवालों से भी मैं कहूँगा कि वे संयम से काम लें। वे मुझे अब भी जेल ही में समझें। मैं कोई राजनैतिक चर्चा या अन्य किसी प्रकार की चर्चा करने में असमर्थ हूँ।

"मैं शान्ति चाहता हूँ और सरकार को बता देना चाहता हूँ कि मैं इस रिहाई का दुरुपयोग न करूँगा, और यदि मैं इस अग्नि-परीक्षा में से निकल आया और मुझे उस समय भी राजनैतिक वातावरण ऐसा ही अन्धकारमय दिखाई पड़ा तो मैं सविनय-अवज्ञा को बढ़ाने की लुक-छिपकर या खुल्लम-खुल्ला कोई भी कार्रवाई किये बिना ही

सरकार से कहूँगा कि मुझे अपने साथियों के पास, जिन्हें मैं इस समय त्याग-सा आया हूँ, यरवडा पहुँचा दिया जाय।

"सरदार वल्लभभाई के साथ रहना वड़े सौभाग्य की वात हुई। मैं उनकी अद्वितीय वीरता और उनके प्रज्वलित स्वदेश-प्रेम से अच्छी तरह परिचित था, पर मुझे इस प्रकार १६ महीने तक उनके साथ रहने का सौभाग्य कभी प्राप्त न हुआ था। वह मुझे जिस स्नेह के साथ ढके रहते हैं उससे मुझे अपनी प्यारी माता के स्नेह की याद आ जाती है। मैंने पहले नहीं जाना था कि उनमें मातृ-सुलभ गुण मौजूद हैं। मुझे कुछ हो जाता तो वह तत्काल अपना विछौना छोड़ देते। वह मेरे आराम से सम्वन्ध रखनेवाली जरा-जरा-सी वातों की निगरानी रखते। उन्होंने और मेरे अन्य सहयोगियों ने मानों मुझे कुछ न करने देने का षड्यंत्र रच लिया था, और मुझे आशा है कि जब मैं यह कहूँगा, कि जब कभी हमने किसी राजनैतिक समस्या की चर्चा की, तभी उन्होंने सरकार की कठिनाइयों को वड़े अच्छे ढंग से समझा, तो सरकार मेरी वात पर विश्वास करेगी। उन्होंने वारडोली और खेड़ा के किसानों के सम्वन्ध में जो हितचिन्तना प्रकट की, उसे मैं कभी न भूलूंगा।"

गांधीजी की घोषणा के वाद ही कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष ने भी अपनी घोषणा प्रकाशित करके सत्याग्रह आन्दोलन छः सप्ताह के लिए मौकूफ कर दिया। सरकार ने भी उत्तर प्रकाशित कराने में विलम्व से काम नहीं लिया।

९ मई को एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि केवल सत्याग्रह के मौकूफ रखने से वे शर्तें पूरी नहीं होतीं जो कैदियों की रिहाई के लिए रक्खी गई हैं। सरकार कांग्रेस से इस मामले में सौदा करने को तैयार नहीं है।

भारत-मंत्री के शब्दों में सरकार ने कहा था—"हमारे पास यह विश्वास करने के प्रवल कारण होने चाहिएँ कि उनकी रिहाई से सत्याग्रह दुवारा शुरू न हो जायगा। सत्याग्रह-आन्दोलन को अस्थायी रूप से वंद करने से, जिससे कांग्रेसी-नेताओं के साथ समझौते की वातचीत शुरू हो जाय, वे शर्तें पूरी नहीं होतीं जिनके द्वारा सरकार को संतोष हो जाय कि सत्याग्रह सचमुच हमेशा के लिए त्याग दिया गया है। सत्याग्रह की वापसी के लिए कांग्रेस के साथ वातचीत करने का, इन गैरकानूनी कार्रवाइयों के सम्वन्ध में या उसके साथ समझौता करने के उद्देश से कैदियों को छोड़ने का कोई इरादा नहीं है।"

इधर शिमला से यह नकारात्मक उत्तर आया, उधर वियेना से एक वक्तव्य

आया जिसपर श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री सुभाष वसु के हस्ताक्षर थे। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

"सत्याग्रह बंद करने की गांधीजी की ताजा कार्रवाई असफलता की स्वीकारोक्ति है।"

वक्तव्य में यह भी कहा गया कि "हमारी यह स्पष्ट सम्मति है कि गांधीजी राजनैतिक नेता की हैसियत से असफल रहे। इसलिए अब समय आ गया है कि हम नये सिद्धान्तों के ऊपर नये उपाय को लेकर कांग्रेस की कायापलट करें, और इसके लिए एक नये नेता की आवश्यकता है, क्योंकि गांधीजी से यह आशा करना अनुचित है कि वह ऐसे कार्य-क्रम को हाथ में लेंगे जो उनके जीवन-भर के सिद्धान्तों के साथ मेल न खाता हो।"

वक्तव्य में आगे कहा गया—"यदि कांग्रेस में स्वयं ही इस प्रकार का आमूल परिवर्तन हो सके तो अच्छा ही है, नहीं तो कांग्रेस के भीतर ही उग्र मतवाले लोगों की एक नई पार्टी बनानी पड़ेगी।"

यह पहला ही अवसर न था जब गांधीजी को इन दोनों सम्भ्रान्त व्यक्तियों की, जिन्हें युद्ध के समय बीमारी के कारण विदेश में रहना पड़ा था, विरुद्ध आलोचना का शिकार बनना पड़ा। गांधीजी जिस प्रकार अपना कष्ट सन्तोष, आस्था और धैर्य के साथ सह रहे थे, उसी प्रकार उन्होंने संसार की आलोचना भी सह ली। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और २९ मई १९३३ को उन्होंने अपने उपवास का अन्त किया।

इस बीच में कांग्रेसवादियों में यह तय हुआ कि गांधीजी की रिहाई से जो अवसर मिला है उसका उपयोग करके देश की अवस्था पर आपस म चर्चा की जाय। सोचा गया कि इस प्रकार की बैठक तभी की जाय जब गांधीजी उसमें भाग लेने योग्य हों। इसलिए सत्याग्रह-बन्दी की अवधि को कार्य-वाहक-सभापति ने छः सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया।

पूना-परिषद्

१२ जुलाई १९३३ को देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना में कांग्रेसवादियों की अनियमित बैठक हुई। श्री अणे ने भूमिका-स्वरूप भाषण के साथ इस परिषद् का श्रीगणेश किया। गांधीजी ने राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार परिषद् के सन्मुख संक्षेप में रख दिये। इसपर आम चर्चा आरम्भ हुई और अन्त में परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन

की कार्रवाई का आरम्भ गांधीजी ने एक लम्बे-चौड़े वक्तव्य के द्वारा किया, जिसमें उन्होंने उन प्रश्नों का उत्तर दिया, जो परिषद् के सदस्यों ने उठाये थे, और साथ ही अपनी सूचनायें भी उनके सामने रक्खीं। इसके बाद परिषद् ने अपनी सिफारिशें पेश कीं। उसने सत्याग्रह को बिना किसी शर्त के वापस लेने के प्रस्ताव को रद कर दिया; पर साथ ही व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रस्ताव को भी अस्वीकार किया। अन्त में परिषद् ने गांधीजी को सरकार से समझौता करने के लिए वाइसराय से मिलने का अधिकार दिया। इस निश्चय के अनुसार गांधीजी ने वाइसराय को तार देकर शान्ति की सम्भावना को खोज निकालने के उद्देश से उनसे मिलने की अनुमति चाही। पर वाइसराय ने उत्तर में पूना-परिषद् की चर्चा के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों की भ्रमात्मक रिपोर्ट का विस्तृत हवाला दिया और उन रिपोर्टों पर विश्वास करके उस समय तक मुलाकात करने से इन्कार कर दिया जबतक कांग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलन वापस न ले ले। गांधीजी ने उत्तर दिया कि सरकार ने अपना रुख एक निजी परिषद् की गोपनीय कार्रवाई के सम्बन्ध में छपे हुए अनधिकार-पूर्ण समाचारों के आधार पर निश्चित किया है, और यदि उन्हें मुलाकात करने की इजाजत मिले तो वह यह दिखा देंगे कि कुल मिलाकर कार्रवाई सम्मानप्रद समझौता करने के पक्ष में हुई थी। पर गांधीजी की शान्ति-स्थापना की चेष्टा का कोई उत्तर न मिला और राष्ट्र को अपना सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए युद्ध जारी करने को बाध्य होना पड़ा। पर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कार्य-वाहक-सभापति के आज्ञानुसार सारी कांग्रेस-संस्थायें और युद्ध-समितियां उठा दी गईं।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ अपने पास की मूल्यवान् से मूल्यवान् वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान में हजारों ग्रामीणों ने सहा था। उन्होंने साबरमती-आश्रम तोड़ दिया और आश्रम के निवासियों को और सारे काम छोड़कर युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जंगम सम्पत्ति को कुछ संस्थाओं को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया। वह किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे, इसलिए वह जमीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुँच में एक पंक्ति भेजी गई।

साबरमती-आश्रम का दान

जब सरकार ने गांधीजी का दान स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने आश्रम को हरिजन-आन्दोलन के अर्पण कर दिया। इस सम्बन्ध में गांधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होंने १९३० में दाण्डी-यात्रा करने के अवसर पर दिया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक स्वराज्य न मिल जायगा, वह आश्रम को वापस न आयेंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और एकबार को छोड़कर, जब वह अपने एक बीमार मित्र को देखने गये थे, १२ मार्च १९३० के बाद आश्रम में फिर कदम न रक्खा। इस प्रकार आश्रम को हरिजन-संघ के अर्पण करके उन्होंने पार्थिव जगत् से बांध रखने-वाली इस अन्तिम वस्तु का, जिसके प्रति सम्भव था उनके हृदय में मोह बना रहता, अंत कर दिया।

१ अगस्त १९३३ को गांधीजी रास नामक गांव की, जो १९३० की फरवरी में वल्लभभाई की गिरफ्तारी के बाद से प्रसिद्धि पा चुका था, यात्रा करनेवाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गांधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी ४ अगस्त की सुबह छोड़ दिये गये और उन्हें यरवडा गांव की सीमा छोड़कर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई, और रिहाई के आधे घण्टे के भीतर गांधीजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये और साल-भर की सजा दी गई।

उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही व्यक्तिगत सत्याग्रह सारे प्रान्तों में आरम्भ हो गया और पहले ही हफ्ते में सैकड़ों कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो गये। कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियों के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होंने गिरफ्तारी से पहले आज्ञा जारी की कि कार्य-वाहक-अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरों की नियुक्ति का सिलसिला तोड़ दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप धारण करले। गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उसपर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देशभर में कांग्रेस-कार्यकर्त्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट तांते ने युद्ध को जारी रक्खा। जबतक प्रान्तीय केन्द्रों से पूरी सामग्री न मिले तबतक इस युद्ध का ठीक-ठीक वर्णन सारे प्रान्तों के साथ न्याय करते हुए नहीं किया जा सकता। आन्दोलन के अंतिम युग में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिये, इसका पूरा ब्योरा मौजूद नहीं है। केवल इतना ही कहना काफी है कि हजारों ने आवाहन का उत्तर दिया और, जैसी परिस्थिति थी

उसको देखते हुए, हरेक प्रान्त ने स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था किया।

गांधीजी की रिहाई

सरकार ने गांधीजी को वे सुविधायें देने से इन्कार कर दिया जो मई में उनकी रिहाई से पहले दी गई थीं। इसलिए अव दुवारा गिरफ्तारी के थोड़े दिनों वाद ही गांधीजी को फिर अनशन आरम्भ करना पड़ा। सरकार अड़ी रही। पर गांधीजी की अवस्या वड़ी शीघ्रता के साथ शोचनीय होने लगी और उन्हें २० अगस्त को, अर्थात् अनशन के पांचवें दिन, पूना के सैसून अस्पताल में कैदी की हैसियत से पहुँचाया गया। पर २३ अगस्त तक सरकार को यह शक हो गया कि उनके प्राण संकट में हैं। इसलिए उस दिन उन्हें विना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। इस अनपेक्षित परिस्थिति ने गांधीजी को असमंजस में डाल दिया। पर अपनी रिहाई की अवस्था को ध्यान में रखकर और गिरफ्तारी, अनशन व रिहाई के चूहे और विल्ली वाले खेल को जान-बूझकर आरम्भ न करने की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें अपने-आपको रिहा न समझना चाहिएं और अपनी सजा की अवधि की समाप्ति तक, अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक, मर्यादित आत्म-संयम से काम लेना चाहिए, और सत्याग्रह के द्वारा गिरफ्तारी को निमंत्रण न देना चाहिए। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह स्वयं तो सत्याग्रह न करेंगे, पर जो लोग उनसे सलाह मांगेंगे उन्हें अवश्य ठीक मार्ग दिखायेंगे और राष्ट्रीय-आन्दोलन को गलत रास्ता पकड़ने से रोकेंगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि इस अवधि के अधिकांश भाग को वह हरिजन-आन्दोलन की उन्नति में लगायेंगे।

जवाहरलालजी की रिहाई

इधर श्रीमती मोतीलाल नेहरू का स्वास्थ्य कुछ दिनों से विगड़ता जा रहा था और इस अवसर पर उनकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई। इसलिए युक्तप्रान्त की सरकार ने पं० जवाहरलाल को उनकी अवधि से कुछ दिन पहले रिहा करने का निश्चय किया जिससे वह अपनी माता की घोर रुग्णावस्था में उनके पास रह सकें। ३० अगस्त को जवाहरलाल जी छोड़ दिये गये। अपनी माता के स्वास्थ्य में सुधार होते ही वह सीधे पूना पहुँचे जहां गांधीजी अपना स्वास्थ्य ठीक कर रहे थे। गांधीजी १९३१ में गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे तवसे इन दोनों की यह पहली भेंट थी। अतः स्वभावतः

देश की अवस्था और प्रस्तुत कार्यक्रम के सम्बन्ध में भी उनमें आपसी बातचीत हुई। इस बातचीत के परिणाम-स्वरूप दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ जिससे जनता के आगे मौजूद कार्यक्रम के सम्बन्ध में दोनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण प्रकट किये। कांग्रेसवादियों तथा सर्वसाधारण की सूचना और पथ-प्रदर्शन के लिए बाद में यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित भी कर दिया गया।

हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में यात्रा

गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में निष्क्रिय रहने के लिए विवश होने पर उस अवधि को हरिजन-कार्य में लगाने का निश्चय किया था। इस निश्चय के अनुसार उन्होंने हरिजन-आन्दोलन करने के लिए १९३३ के नवम्बर से देश में दौरा करना शुरू किया। उन्होंने दस महीनों के भीतर भारत के हरेक प्रान्त का दौरा किया, और इन दस महीनों का प्रत्येक दिन अस्पृश्यता की समस्या के अध्ययन और उस समस्या को हल करने के उपाय सोचने में बीता। इस दौरे से बहुत बड़ा प्रचार-कार्य हुआ। उपस्थिति समुदाय का उत्साह और संख्या १९३० के जमाने से ही टक्कर ले सकता था। गांधीजी ने अपने दौरे में अस्पृश्यता-निवारण के लिए लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया। व्यापारिक मन्दी के जमाने में और विशेषकर ऐसी अवस्था में, जब इससे पहले भी जनता पर आर्थिक बोझ पड़ चुका था, गांधीजी की अपील का उतना उदारतापूर्ण उत्तर मिलना असाधारण बात थी। यह दौरा पूर्ण सफल रहा। दो शोचनीय दुर्घटनायें भी हुईं। २५ जून १९३४ को गांधीजी बाल-बाल बच गये नहीं तो देश के लिए बड़ा भारी संकट उपस्थित हो गया होता। वह पूना म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र ग्रहण करनेवाले थे, कि इस अवसर पर एक व्यक्ति ने, जिसका पता अभी तक नहीं लगा है, उनपर बम फेंका। इस असफल अपराध के अपराधी ने एक दूसरी मोटर-कार को गांधीजी की मोटरकार समझा। गांधीजी की मोटरकार अभी सभा-स्थान में न आई थी। अनुमान किया जाता है कि यह अपराधी गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन से चिढ़ गया था। फिर भी उसके बम ने सात निर्दोष व्यक्तियों को घायल किया। सौभाग्य से किसी को गहरी चोट न आई। दूसरी घटना १४ दिन बाद ही अजमेर में हुई। यहां किसी तेज मिजाज सुधारक ने आपेसे बाहर होकर बनारस के पंडित लालनाथ का, जो हरिजन-आन्दोलन के कट्टर विरोधी थे, सिर फोड़ दिया। इस दूसरी घटना को लेकर गांधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। सार्वजनिक मामलों में एक-दूसरे से मत-भेद रखनेवालों ने जिस असहिष्णुता का परिचय दिया था, यह प्रायश्चित उसीके विरुद्ध किया गया था।

गांधीजी ने हरिजनोत्थान कार्य के सम्वन्ध में सारे भारत का दौरा करने का निश्चय किया था, पर दिसम्वर का महीना उनके लिए एक कसौटी ही सिद्ध हुआ। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को तीन महीने का नोटिस दिया था और अब १ जनवरी १९३४ को अन्तिम निश्चय करना जरूरी था। इस निश्चय का अर्थ केलप्पन और गांधीजी दोनों का आमरण उपवास भी हो सकता था। इसलिए यह तय किया गया कि गुरुवयूर-मन्दिर के उपासकों की राय ली जाय। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ वह शिक्षाप्रद भी था और सफल भी। इस वीच में डॉ० सुब्वारायन ने मदरास-प्रान्त के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश के सम्वन्ध में विल भी पेश कर दिया था और सरकार के निश्चय की प्रतीक्षा की जा रही थी। गुरुवयूर के मतों में ७७ प्रतिशत उपासक अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के हक में थे। जिन लोगों ने राय देने से इन्कार कर दिया था उन्हें निकाल कर, २०,१६३ रायें आईं जिनमें से मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में १५,५६३ या ७७ प्रतिशत थीं; मन्दिर-प्रवेश के विरुद्ध २,५७९ या १३ प्रतिशत थीं, और तटस्थ २,०१६ या १० प्रतिशत थीं। इन मतों में विलक्षणता यह थी कि ८,००० से भी अधिक स्त्रियों ने हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में रायें दीं।

नये वर्ष का आरम्भ शुभ हुआ, क्योंकि गांधीजी का आमरण उपवास टल गया। पर सत्याग्रह के सम्वन्ध में प्रगति इतनी संतोषजनक न थी। जो कैदी जेल से छूटे वे भग्नोत्साह हो गये थे। जिन प्रान्तीय नेताओं ने पूना में वचन दिया था कि यदि सामूहिक सत्याग्रह त्याग दिया गया और व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया गया तो वे अपने-अपने प्रान्तों का नेतृत्व करेंगे, उनमें से कुछ को छोड़कर वाकी सवने अपने वचन को भुला दिया। जो जेलों से छूटे वे दूसरी वार सजा काटने में या तो असमर्थ थे, या तैयार न थे। जो तैयार थे उन्हें सरकार पकड़ती न थी। सरकार ने यह तरकीव सोच निकाली थी कि वह लाठियों की वर्षा करती, और छोटी जेलों में रखकर कैदियों के साथ बुरा व्यवहार करती। वह कैदियों को रिहा करती, फिर गिरफ्तार करती और कुछ समय वाद फिर छोड़ देती। यह कार्रवाई थकानेवाली थी। इससे सजा के द्वारा सत्याग्रहियों को जो विश्राम मिलता उससे वे वंचित हो गये। ऐसा हो रहा था मानों विल्ली चूहे को मुंह में पकड़ कर झंझोड़ दे, छोड़ दे और फिर पकड़ ले। इस प्रकार न तो वह उस चूहे को मारती ही, न छोड़ती ही।

विहार-भूकम्प और जवाहरलालजी की गिरफ्तारी

१६ जनवरी को सारा भारत हकवका कर रह गया। जव सुवह के

समाचारपत्रों ने गत तीसरे पहर के विहार के भूकम्प की अभूतपूर्व विपत्ति के समाचार घर-घर पहुँचाये तो सब लड़खड़ा कर रह गये। कुछ ही मिनटों के भीतर प्रान्त की शक्ल ऐसी वदल गई कि उसका पहचानना तक असम्भव हो गया। हजारों इमारतें धूल में मिल गईं और पृथिवी के गर्भ में समा गईं। जमीन के भीतर से रेते ने निकलकर हरीभरी खेती के प्रशस्त मैदानों को नष्ट कर दिया। ११० डिग्री के तापमान का जल १५०० फीट पृथिवी के नीचे से निकला। जहां प्राणदायी जल की नदियां वहकर पृथिवी की सिंचाई करती थीं, या जहां मुस्कराती हुई खेतियां अपने वक्षःस्थल पर वे भार ग्रहण किये हुए थीं जिनके द्वारा लाखों के प्राणों की रक्षा होती थी, वहीं रेत का मैदान छा गया। पलक मारते हजारों परिवार अनाथ और हजारों स्त्रियां विधवा हो गईं और उनके निर्दोष बच्चे गिरते हुए मकानों के बीच में दवकर मर गये। प्रकृति ने विहार में कुछ मिनटों के भीतर जो गजब ढाया उसका वास्तविक-चित्र निष्प्राण आंकड़े क्या दे सकेंगे। फिर भी कुछ आंकड़े दिये जाते हैं। भूकम्प का प्रभाव ३०,००० वर्गमील की लगभग डेढ़ करोड़ जनता पर पड़ा। २०,००० मनुष्यों के प्राण गँवाने की वात कही जाती है। लगभग दस लाख घर नष्ट हो गये, या टूट-फूट गये। ६५,००० कुएँ और तालाव या तो निकम्मे हो गये या टूट-फूट गये। लगभग १० लाख वीघा खेती पर रेत छा गया और वह निकम्मी हो गई।

इस भयंकर संकट का सामना करने के लिए विहार और भारत दोनों पीछे न रहे। चन्दों के द्वारा लगभग एक करोड़ रुपया एकत्र हुआ, विहार केन्द्रीय रिलीफ फण्ड में जून के अन्त तक २७ लाख से अधिक एकत्र हो गया। अधिकांश नेता और कार्यकर्त्ता भारत के भिन्न-भिन्न भागों से पीड़ितों के कष्ट-निवारण का कार्य करने को दौड़ पड़े। विहार-रिलीफ-कमिटी की ओर से एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे पता चलता है कि कितनी अधिक हानि हुई थी और २५८ केन्द्रों में २,००० से ऊपर कार्यकर्त्ताओं ने किस लगन के साथ काम किया था।

विहार के विध्वस्त प्रदेश में वाहर से आये नेताओं में पण्डित जवाहरलाल भी थे। उनका आगमन समवेदना का परिचायक मात्र हो, सो वात न थी। उनका आगमन सेवा-कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था। जव समाचार मिले कि गिरे हुए घरों के भीतर जीवित मनुष्य दवे पड़े हैं, तो उन्होंने स्वयंसेवक का विल्ला लगाया, कंधे पर फावड़ा रक्खा और उस स्थान को रवाना हो गये। उनके साथ-साथ स्वयंसेवक हाथों में फावड़े लिये मौजूद थे। उन्होंने और अन्य कार्यकर्त्ताओं ने फावड़े चलाये और मिट्टी की टोकरियां अपने सिरों पर ढोईं। विहार के भूकम्प ने गांधीजी के कार्यक्रम में भी

विघ्न डाला। विहार और विहार के कार्यकर्त्ताओं को इस समय भूकम्प और वाढ़ के द्वारा उत्पन्न हुई जटिल परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। गांधीजी ने एक मास तक उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें परामर्श दिया। फल यह हुआ कि देशभर के प्रतिनिधियों की एक परिषद् हुई जिसमें कष्ट-निवारण-कार्य के संचालन के लिए विहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी को जन्म दिया गया, जोकि एक गैर-सरकारी आयोजन था और जिसमें कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं की प्रधानता थी। जवतक गांधीजी विहार में रहे, उन्होंने पीड़ित नगरों और गांवों का दौरा किया, इस महान् संकट की शिकार जनता की दयनीय दशा को स्वयं देखा और नई वनी कमिटी को अपना कार्यक्रम स्थिर करने में सहायता की। उन्होंने अपने दक्ष कार्यकर्त्ताओं को भी घटनास्थल पर भेजा और उनकी सेवायें विहार के अर्पण कर दीं। अव भी इस प्रान्त को ऐसी जटिल और महान् समस्याओं का सामना करना है जिसका वाहर वालों को काफी ज्ञान नहीं है।

अपना विहार का दौरा समाप्त करने पर पं० जवाहरलाल एक वार फिर सरकार के कैदी वने। जव वह कलकत्ता गये थे, तो उन्होंने वंगाल की अवस्था और मिदनापुर जिले की हलचल के सम्वन्ध में दो भापण दिये थे। वंगाल-सरकार आतंकवादियों का जिक्र, उनकी खुल्लम-खुल्ला निन्दा को छोड़कर, और किसी रूप में, सुनने को तैयार न थी। पण्डित जवाहरलाल ने अपने स्पष्ट भापणों में आतंकवाद की मनोवृत्ति और उसका सामना करने के लिए अधिकारियों ने जो तरीका अपनाया था उसकी चर्चा की थी। वंगाल की नौकरशाही को यह सहन न हुआ। जवतक वह विहार में मानवता के मिशन को पूरा करने में लगे रहे तवतक वंगाल-सरकार के औचित्य ने उसे उनपर हाथ डालने से रोक रक्खा; पर अभी वह अपने घर कठिनता से पहुँचे होंगे कि उनके लिए जेल का दरवाजा फिर खोल दिया गया। उनपर कलकत्ते के दो भापणों के लिए मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष सादी कैद की सजा दी गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के वाद से ऐसे कांग्रेसवादियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी जिनका यह विचार हो रहा था कि आर्डिनेन्स के शासन के कारण देश में जो अवस्था उत्पन्न हो गई है उसको ध्यान में रखकर इस 'निश्चेष्टा' से उद्धार पाने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपनाना आवश्यक है। इस विचार ने संगठित रूप

धारण किया और इस प्रकार के विचार रखनेवाले कांग्रेसी-नेताओं की एक परिषद् बुलाकर, एक नये कार्यक्रम को अपनाने की इच्छा को ठोसरूप देने का निश्चय किया गया। यह परिषद् दिल्ली में ३१ मार्च १९३३ को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि जो स्वराज्य-पार्टी भंग कर दी गई है उसे दुबारा जीवित किया जाय, जिससे उन कांग्रेसवादियों को जो व्यक्तिगत सत्याग्रह नहीं कर रहे हैं, मत-दाताओं को अच्छी तरह संगठित करने और गांधीजी के जुलाई १९३३ वाले पूना के वक्तव्य के अनुसार कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर दिया जाय। इस परिषद् ने यह विचार भी प्रकट किया कि पार्टी के लिए बड़ी कौंसिल के आगामी निर्वाचनों में भाग लेना आवश्यक है। इस उद्देश-सिद्धि के लिए परिषद् ने निश्चित किया कि निर्वाचन दो लक्ष्यों को लेकर लड़े जायँ—(१) सारे दमनकारी कानूनों को रद कराना और (२) ह्वाइट-पेपर की योजनाओं को रद कराके उनका स्थान उन राष्ट्रीय मांगों को दिलाना जिनका जिक्र गांधीजी ने गोलमेज-परिषद् में किया था। परिषद् ने यह निश्चय करने के बाद गांधीजी के पास डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई देसाई और डॉ० विधानचन्द्र राय का एक शिष्ट-मण्डल भेजा कि वह इन प्रस्तावों के विषय में उनसे बातचीत करे और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने से पहले उनके विचार जान ले।

इस अवसर पर गांधीजी बिहार के भूकम्प-पीड़ित स्थानों का दौरा कर रहे थे और संयोग-वश अपना मौन-दिवस (२ अप्रैल, १९३४) सहरसा नामक एक एकान्त स्थान पर बिता रहे थे। यहीं पर उन्होंने दिल्ली के हाल-चाल जाने बिना ही एक वक्तव्य तैयार किया जिसे वह प्रेस में देना ही चाहते थे कि उनके पास डॉ० अन्सारी का सन्देशा आया कि कल दिल्ली-परिषद् ने एक शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया है जो आपसे मिलने पटना आ रहा है। गांधीजी ने उस शिष्ट-मण्डल से बातचीत होने तक वह वक्तव्य रोक रखा और अंत में अच्छी तरह बातचीत होने के बाद ७ तारीख को वह प्रकाशित किया गया। वक्तव्य से पहले डॉ० अन्सारी के नाम लिखा गया पत्र प्रकाशित हुआ। हम वक्तव्य और पत्र—दोनों को नीचे देते हैं:—

गांधीजी का पत्र (५ अप्रैल १९३४)

"कुछ कांग्रेसवादियों की निजी बैठक में जो प्रस्ताव निश्चित हुए थे, उनपर चर्चा करने और मेरी राय लेने के लिए आपने, भूलाभाई ने और डॉ विधान ने पटना तक आकर अच्छा ही किया। आप मुझसे कहते हैं कि बड़ी कौंसिल शीघ्र ही भंग होनेवाली

है। अतएव उसके आगामी निर्वाचन में भाग लेने और स्वराज्य-पार्टी को पुनरुज्जीवित करने के इस बैठक के निश्चय का मैं निस्संकोच भाव से स्वागत करता हूँ।

"वर्तमान अवस्था में कौंसिलों की उपयोगिता के सम्बन्ध में मेरे जो-कुछ विचार हैं वे जाने-बूझे हैं। वे अब भी लगभग वैसे ही हैं, जैसे १९२० में थे। पर मैं यह अनुभव करता हूँ कि जो कांग्रेसवादी किसी कारणवश सत्याग्रह में भाग नहीं लेना चाहता या नहीं ले सकता, और जिसकी कौंसिल-प्रवेश में आस्था है, उसके लिए न केवल यह उचित ही है, बल्कि कर्त्तव्य-रूप है कि वह उनमें प्रवेश करने की चेष्टा करे, और जिस कार्य-क्रम की पूर्ति को वह देश के हितों के लिए आवश्यक समझता है उसे अमल में लाने के उद्देश से दल बनाये। अपने इन विचारों के अनुसार मैं पार्टी की सहायता के लिए जो-कुछ मेरी शक्ति में है वह करने के लिए मैं हमेशा तैयार हूँ।"

गांधीजी का वक्तव्य (७ अप्रैल १९३४)

"मैंने इस वक्तव्य का मसविदा अपने मौन-दिवस में सहरसा नामक स्थान पर २ अप्रैल को ईस्टर सोमवार के दिन तैयार किया था। मैंने इस मसविदे को बाबू राजेन्द्रप्रसाद को दे दिया और इसके बाद यह उपस्थित मित्रों को दिखाया जाता रहा। मूल में अब काफी परिवर्तन हो गया है और अब यह पहले की अपेक्षा संक्षिप्त भी है। परन्तु सार-रूप में यह वैसा ही है जैसा कि सोमवार के दिन था। मुझे खेद है कि मैं इसे अपने सारे मित्रों और सहयोगियों को न दिखा सका; उनकी सलाह मिल जाने से मुझे बड़ा हर्ष होता। परन्तु मुझे अपने निश्चय के ठीक होने के सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं था और मैं यह भी जानता था कि मेरे कुछ मित्र शीघ्र ही सत्याग्रह करना चाहते थे, इसलिए मैं अपने मित्रों की सलाह के लिए प्रतीक्षा करके इस वक्तव्य के प्रकाशन में विलम्ब करने को तैयार नहीं था। मेरा निश्चय और मेरे वक्तव्य का एक-एक शब्द गहन आत्म-चिन्तन, हृदय की टटोल और ईश्वर-प्रार्थना का परिणाम है। इस निश्चय का भाव किसी व्यक्ति-विशेष पर छींटे फेंकना नहीं है। यह तो मेरी मर्यादाओं की और उस महान् उत्तरदायित्व के बोध की, जिसे मैं इधर कई वर्षों से वहन करता आ रहा हूँ, विनम्रता-पूर्ण स्वीकारोक्ति-मात्र है।

"इस वक्तव्य की प्रेरणा सत्याग्रह-आश्रम के उन निवासियों के साथ की गई आपसी बातचीत से प्राप्त हुई, जो हाल ही में जेल से छूटे थे और जिन्हें राजेन्द्र बाबू के कहने से मैंने बिहार भेज दिया था। इस वक्तव्य का प्रधान कारण एक खबर थी, जो मुझे अपने एक बहुमूल्य साथी के सम्बन्ध में प्राप्त हुई और जिससे मेरी आंखें खुल

गई। वह जेल का काम पूरा करने के इच्छुक न थे और मिले हुए काम की अपेक्षा पुस्तकें पढ़ना अच्छा समझते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमों के सर्वथा विरुद्ध था। इन्हें तो मैं पहले से भी अधिक स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। पर इस बात से इनकी दुर्बलताओं से अधिक मुझे अपनी दुर्बलताओं का बोध हुआ। मित्र ने कहा कि उनकी यह धारणा थी कि मैं उनकी दुर्बलता को जानता हूँ। पर मैं अन्धा था। नेता में अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मैं फौरन जान गया कि फिलहाल मैं अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूँगा।

"गत जुलाई में पूना की एक सप्ताह की निजी बातचीत के दौरान में मैंने कहा था कि वैसे बहुत-से व्यक्तिगत सत्याग्रही आगे बढ़ें तो अच्छी ही बात है, पर सत्याग्रह के संदेश को जागृत रखने के लिए एक सत्याग्रही भी काफी है। अब अच्छी तरह हृदय टटोलने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यदि सत्याग्रह को पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के साधन-स्वरूप सफल होना है, तो फिलहाल अकेले मुझे ही, वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए, सत्याग्रह का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए।

"मैं अनुभव करता हूँ कि जनता को सत्याग्रह का पूरा संदेश नहीं मिला है; क्योंकि सन्देश उसतक पहुँचते-पहुँचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह प्रतीत हो गया है कि आध्यात्मिक संदेश पार्थिव माध्यम के द्वारा पहुँचाने से उसकी शक्ति कम हो जाती है। आध्यात्मिक संदेश तो स्वयं ही अपना प्रचार कर लेते हैं। मेरे कहने का जो तात्पर्य है, उसका जनता की प्रतिक्रिया के रूप में ज्वलन्त उदाहरण हरिजन-आन्दोलन-सम्बन्धी दौरे में अच्छी तरह मिला। जनता ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह आत्म-प्रेरित था। स्वयं कार्यकर्ताओं को उस असंख्य जनता की, जिस तक वे पहुँचे तक न थे, उपस्थिति और उत्साह पर आश्चर्य हुआ।

"सत्याग्रह सोलह आने आध्यात्मिक अस्त्र है। इसका उपयोग पार्थिव दिखाई पड़नेवाले उद्देश के लिए भी हो सकता है, और इसका उपयोग उन स्त्री-पुरुषों के द्वारा भी हो सकता है जो इसकी आध्यात्मिक महत्ता को नहीं समझते, बशर्ते कि उन्हें बताने-वाला जानता हो कि अस्त्र आध्यात्मिक है। शल्य-चिकित्सा के हथियारों को चलाना सभी नहीं जानते, पर यदि कोई निपुण आदमी उनका उपयोग बताता रहे तो बहुत-से आदमी उनका उपयोग कर सकते हैं। मैं अपने-तई सत्याग्रह का विशेषज्ञ होने का दावा करता हूँ। मुझे उस दक्ष सर्जन की अपेक्षा जो अपने हुनर का उस्ताद है, कहीं अधिक सावधानी से चलना है। मैं तो अभी एक विनम्र शोधक-मात्र हूँ। सत्याग्रह का विज्ञान

ही ऐसा है कि उसका विद्यार्थी अपने सामने के एक पग से अधिक नहीं देख सकता।

"आश्रम-निवासियों के साथ वार्त्तालाप करने के वाद मैंने अपने हृदय को टटोला और इसके वाद में इस नतीजे पर पहुँचा कि मुझे सारे कांग्रेसवादियों को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करना वन्द करने की सलाह देनी चाहिए। हां, किन्हीं खास शिकायतों के लिए सत्याग्रह किया जाय तो वात दूसरी है। उन्हें इस प्रकार का सत्याग्रह मेरे ऊपर छोड़ देना चाहिए। जवतक कोई ऐसा व्यक्ति आगे न वढ़े जो इस विज्ञान को मुझसे भी अधिक अच्छी तरह जानता हो और जिसपर जनता विश्वास करती हो, तवतक दूसरों को इस सत्याग्रह को मेरे जीवन-काल में केवल मेरी ही देख-रेख में आरम्भ करना चाहिए। मैं यह सम्मति सत्याग्रह के प्रणेता और आरम्भ-कर्त्ता की हैसियत से देता हूँ। इसलिए आयन्दा से वे सव लोग जो मेरे प्रत्यक्ष दिये गये या अप्रत्यक्ष रूप से समझे गये परामर्श के अनुसार स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करने को प्रेरित हुए हों, कृपा करके सत्याग्रह करने से रुकें। इस वात का मुझे पूरा विश्वास है कि भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए यही सवसे अच्छा मार्ग है।

"मेरा सच्चे दिल से यह विश्वास है कि मानव-जाति के पास, अपने कष्ट-निवारण के लिए, यह सवसे वड़ा हथियार है। सत्याग्रह के सम्वन्ध में मेरा यह दावा है कि यह हिंसा या युद्ध का पूर्ण स्थान ले सकता है। इसलिए यह 'आतंकवादी' कहलानेवाले व्यक्तियों के, और उस सरकार के जो देश को पौरुष-हीन करके 'आतंकवादियों' का वीज-नाश करना चाहती है, हृदयों तक पहुँच सकता है। परन्तु अनेक व्यक्तियों के जैसे-तैसे किये सत्याग्रह का परिणाम चाहे कितना ही वड़ा रहा हो, पर वह न 'आतंकवादियों' के ही हृदयों तक पहुँच सका, न शासकवर्ग के ही हृदयों तक। शुद्ध सत्याग्रह का दोनों के हृदयों तक पहुँचना अनिवार्य है। इस तथ्य की सत्यता की जांच करने के लिए सत्याग्रह एक समय में एक ही आदमी तक सीमित रहना चाहिए। यह आजमाइश पहले कभी नहीं की गई थी, अव करनी चाहिए।

"मैं पाठकों को सावधान करना चाहता हूँ कि वे सत्याग्रह को निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र न समझ लें। सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध की अपेक्षा कहीं व्यापक चीज है। सत्याग्रह सत्य की अथक खोज है, और इस खोज के द्वारा जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग पूर्ण अहिंसात्मक साधनों के द्वारा ही हो सकता है।

"पर इससे मुक्त होने के बाद सत्याग्रही क्या करें? यदि उन्हें फिर कभी आवाहन होते ही आगे बढ़ने के लिए तैयार होना है, तो उन्हें आत्म-त्याग और स्वेच्छा-पूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा। उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगना चाहिए। उन्हें स्वयं हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके लोगों के हृदयों में साम्प्रदायिक ऐक्य का बीज बो देना चाहिए। स्वयं अपने उदाहरण के द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप में निवारण करना चाहिए और नशेबाजों के साथ सम्पर्क स्थापित करके और अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक-द्रव्य के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवायें हैं जिनके द्वारा गरीबों की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग दरिद्र आदमी की भांति न रह सकते हों, उन्हें किसी छोटे राष्ट्रीय धंधे में पड़ जाना चाहिए, जिससे वेतन मिल जाय। यह बात समझ लेनी चाहिए कि सत्याग्रह उन्हींके लिए है जो स्वेच्छा से कानून और अधिकार के आगे सिर झुकाना जानते हों, और झुकाते हों।

"यह कहना आवश्यक है कि इस वक्तव्य को प्रकाशित कराके किसी प्रकार मैं कांग्रेस के अधिकार में दस्तन्दाजी नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल उन लोगों को परामर्श-मात्र दे रहा हूँ जो सत्याग्रह के मामले में मेरा पथ-प्रदर्शन चाहते हों।"

डॉ० अन्सारी ने भी इसी अवसर पर एक वक्तव्य प्रकाशित करके यह स्पष्ट कर दिया कि गांधीजी ने अपनी हार्दिक और स्वतः दी हुई सहायता के द्वारा कांग्रेस में विरोध और भेद-भाव की आशंका को दूर कर दिया है। अब कौंसिलों के भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जायगा, जिससे शिक्षित-समाज और जनता की राजनैतिक निष्क्रियता और अन्तःकुपित असंतोष दूर हो जाय।

स्वराज्य पार्टी

१९३४ की २ और ३ मई को रांची में एक बैठक स्वराज्य-पार्टी को शक्तिशाली और सजीव संस्था का रूप देने के मुख्य उद्देश से की गई। इसका एक हेतु यह भी था कि गांधीजी उसपर अपनी मुहर लगा दें। इस बैठक का पहला प्रस्ताव दिल्ली-परिषद् के उन प्रस्तावों का अनुमोदन था, जिनके द्वारा स्वराज्य-पार्टी को जन्म दिया गया था और ह्वाइट-पेपर अस्वीकार करने और राष्ट्रीय मांग तैयार करने के निमित्त विधान-कारिणी सभा (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली) बुलाने और दमनकारी

कानूनों को रद कराने के उद्देश से वड़ी कौंसिल के आगामी निर्वाचन में अपने उम्मीदवार खड़े करने का निश्चय किया गया था। इसके वाद स्वराज्य-पार्टी की संशोधित नियमावली को अपनाया गया। इस निश्चय के अनुसार अव स्वराज्य-पार्टी अपनी आन्तरिक व्यवस्था और आय-व्यय के मामले में कांग्रेस की सलाह लेने को वाध्य न थी। किन्तु यह वात स्पष्ट रूप से तय हुई कि तमाम नीति-सम्वन्धी व्यापक प्रश्नों पर उसे कांग्रेस के वताये पथ पर चलना चाहिए।

३ मई १९३४ को रांची-परिषद् ने स्वराज्य-पार्टी का जो कार्यक्रम निश्चित किया उसमें उन सारे कानूनों और विशेष विधानों को, जो राष्ट्र की समुन्नति और पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में वाधक हों, रद कराने की वात रक्खी गई। इस कार्यक्रम के अनुसार सारे राजनैतिक कैदियों की रिहाई कराना, उन सारे कानूनों और प्रस्तावों का मुकावला करना जो देश का शोषण करनेवाले हों, ग्राम-संगठन करना, मजदूर-सम्वन्धी, मुद्रा-व्यवस्था, विनिमय, कृषि आदि के मामलों में सुधार करवाना और अन्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करना कर्तव्य माना गया।

सत्याग्रह स्थगित

इन सव विषयों पर १८ और १९ मई १९३४ को पटना में महासमिति की वैठक में चर्चा हुई। यहां यह वात भी कह देना जरूरी है कि कांग्रेस की महासमिति ही एकमात्र ऐसी संस्था थी, जो सरकार-द्वारा गैरकानूनी करार नहीं दी गई थी। गांधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह वन्द कर दिया गया और स्वराज्य-पार्टी के सम्वन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :—

चूंकि कांग्रेस में ऐसे सदस्यों की संख्या वहुत काफी है जो देश की लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग में कौंसिल-प्रवेश को आवश्यक समझते हैं, इसलिए महासमिति पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉ० अन्सारी को एक वोर्ड वनाने के लिए नियुक्त करती है। इस वोर्ड का नाम होगा पार्लमेण्टरी-वोर्ड, और इसके प्रधान होंगे डॉ० अन्सारी। इसमें २५ से अधिक कांग्रेस-वादी न रहेंगे।

"यह वोर्ड कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खड़ा करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चन्दा एकत्र करने, रखने और खर्च करने का अधिकार रहेगा।

"यह वोर्ड महासमिति के शासन के अधीन रहेगा। इसे अपना विधान तैयार करने और अपना काम-काज दुरुस्त रखने के लिए नियम-उपनियम तैयार करने का

अधिकार रहेगा। यह विधान और नियम-उपनियम कार्य-समिति के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे जायँगे, लेकिन कार्य-समिति की स्वीकृति मिल जाने की आशा पर काम में ले लिये जायँगे। बोर्ड केवल उन्हीं उम्मीदवारों को चुनेगा जो कौंसिलों में कांग्रेस की नीति का, जिसे समय-समय पर निश्चित किया जायगा, पालन करने की प्रतिज्ञा लेंगे।"

: ३ :

अवसर की खोज में

सबकी इच्छा कांग्रेस का अधिवेशन जल्दी ही कर डालने की थी, इसलिए निश्चित हुआ कि कांग्रेस का आगामी साधारण अधिवेशन बम्बई में अक्तूबर १९३४ के अन्तिम सप्ताह में हो।

महासमिति की बैठक के आगे-पीछे कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक भी १८, १९ और २० मई को पटना में हुई थी। उसने सत्याग्रह की मौकूफी और कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में सिफारिशें कीं, जिन्हें, जैसा कि कहा जा चुका है, महासमिति ने स्वीकार कर लिया। कार्य-समिति ने, महासमिति के सत्याग्रह-बन्दी के निश्चय के अनुसार, सारे कांग्रेसवादियों को उसका पालन करने का आदेश दिया। देश-भर के कांग्रेसवादियों ने इस निश्चय का पालन किया और २० मई १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। साथ ही कार्य-समिति ने जुलाई १९३३ (पूना) में कार्यवाहक-अध्यक्ष-द्वारा दिये आदेश का संशोधन करते हुए, सारे कांग्रेस-वादियों को आदेश दिया कि कांग्रेस का काम चालू करने के लिए कांग्रेस-कमिटियों का संगठन किया जाय। कार्य-समिति ने प्रमुख कांग्रेसवादियों को अपनी ओर से पूर्ण अधिकार देकर विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेस के पुनस्संगठन के काम में मदद देने के लिए नियुक्त किया। सत्याग्रह-बन्दी के साथ ही कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद स्वभावतः ही उठा दिया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेल में थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में सेठ जमनालाल बजाज कार्य-समिति के सभापति बनाये गये, और कांग्रेस के नये अधिवेशन तक उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से सारा काम चलाने का अधिकार दिया गया।

पटना में इन निश्चयों तक आसानी से पहुँचा गया हो सो बात नहीं। एक ओर ऐसे बहुसंख्यक कांग्रेस-वादी थे जो अब भी पुराने कार्यक्रम पर अड़े हुए थे और जो कौंसिल के कार्य के प्रति अपनी अरुचि छिपाने की चेष्टा न करते थे। दूसरी ओर समाजवादी-दल था जिसकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थी। यह दल गांधीजी के आदर्शों को स्वीकार करने में तो कांग्रेस के साथ न था, किन्तु कौंसिल-प्रवेश के सर्वथा विरुद्ध था।

पर गांधीजी उठे, या यों कहना चाहिए कि बैठे और बोले, तो सारा विरोध बात-की-बात में काफूर हो गया।

गांधीजी हरिजन-आन्दोलन के बारे में उड़ीसा का भ्रमण पैदल कर रहे थे। वह पैदल चलने का नया प्रयोग कर रहे थे। वह पटना गये तो, पर उनका हृदय हरिजन-कार्य में ही रम रहा था। इसलिए उन्हें अपने-आपको उस कार्य से चेष्टा करके अलग करना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि दौरा करने के इस नये तरीके ने उनके सफर का क्षेत्र बहुत कम कर दिया, और संयोगवश उससे चन्दे की रकम में भी कमी हुई। पर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था कि रेल और मोटर से सफर के अर्थ ये होंगे कि वह चन्दा इकट्ठा करने का मंत्र-मात्र रह जायें। यहां तक मन्सूबा बांधा जा रहा था कि उन्हें युक्तप्रान्त का दौरा हवाई जहाज-द्वारा कराया जाय। यह सब उनकी रुचि के विपरीत था। उन्होंने पैदल चलने का नया प्रयोग आरम्भ कर दिया था और इसे जारी रखना था। पर पटना ने खलल डाल दिया। किन्तु उन्हें इसपर कोई रोष न था। अपने ७ अप्रैल १९३४ वाले वक्तव्य के द्वारा उन्होंने इस खलल को निमंत्रण दिया था। अब उन्हें इसकी पूर्ति करनी थी। उन्हें सत्याग्रह बन्द करके तत्सम्बन्धी सारे अधिकार अपने पास रखने पड़े। उन्होंने १९३० की फरवरी में भी इसी प्रकार, कार्य-समिति के प्रस्ताव के अन्तर्गत, जिसके द्वारा उन्हें नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार मिला था, सत्याग्रह आरम्भ किया था। जिस प्रकार आन्दोलन का आरम्भ हुआ था, उसी प्रकार उसका अन्त भी हो गया। गांधीजी ने एकबार फिर पटना में महासमिति के सामने दो भाषणों में अपनी आत्मा खोलकर रख दी थी।

समाजवादी दल

मई १९३४ में भारत में समाजवादी दल का जन्म हुआ। १७ मई १९३४ को इसका पहला अखिल-भारतीय अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में कौंसिल-प्रवेश और सूती मिलों की हड़ताल के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के बाद यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस के भीतर एक अखिल-भारतीय समाजवादी-संस्था कायम करने का समय आ गया है। एक मसविदा-कमिटी नियुक्त की गई, जिसके जिम्मे उक्त संस्था के योग्य कार्यक्रम और विधान तैयार करके बम्बई-अधिवेशन के सामने पेश करने का काम किया गया। पटना की बैठक के बाद से समाजवादी-दल की शाखायें अनेक प्रान्तों में कायम हो गई हैं।

पटना के निश्चय के बाद ही कांग्रेस के कार्य का क्षेत्र बदल गया। सत्याग्रह-

आन्दोलन वन्द हुआ और कौंसिल-प्रवेश का आर्यक्रम आरम्भ हुआ। १९३२ के आरम्भ में महासमिति को छोड़कर कांग्रेस की और उससे सम्बद्ध लगभग सारी संस्थाओं को गैरकानूनी करार दे दिया गया था। सरकार ने कांग्रेस की संस्थाओं पर से प्रतिवन्ध उठाने की कार्रवाई शीघ्र की, और १९३४ की १२ जून को अधिकांश पर से प्रतिवन्ध उठ गया। हां, सीमान्त-प्रदेश और वंगाल की कांग्रेस-संस्थायें और उनसे संलग्न अन्य संस्थायें—जैसे हिन्दुस्तानी सेवादल—उसी प्रकार गैरकानूनी रहीं। कुछ प्रान्तों में सरकार ने उन इमारतों पर अपना कब्जा वनाये रक्खा जिनका संवंध, उसकी राय में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सत्याग्रह से था। इनमें से कुछ इमारतें तो १९३५ के मध्य तक वापस नहीं दी गईं। सरकार ने यह भी घोषणा की कि उसकी नीति सत्याग्रही कैदियों को शीघ्र छोड़ने की है, पर तो भी अनेक कैदी, विशेषकर गुजरात के कैदी, जेलों में ही रहे। कई कांग्रेसवादी, यद्यपि वे अपनी सारी आयु-भर ब्रिटिश-भारत में ही रहे तो भी, ब्रिटिश-भारत में वापस नहीं आ सके, और अव देशी-राज्यों में एक प्रकार से नजरवन्द पड़े हैं। देश के विभिन्न स्थानों में उन अनेक व्यक्तियों को जिनका सम्वन्ध सत्याग्रह से रह चुका था और जो विदेशों में अपने वैध काम-काज के सम्वन्ध में जाना चाहते थे, पासपोर्ट नहीं दिया गया। अस्तु।

फिर संगठन

पटना के निश्चय के वाद ही से देश-भर के कांग्रेसवादियों ने कांग्रेस-कमिटियों का पुनस्संगठन आरम्भ कर दिया था, और जून लगते-लगते प्रान्तों में कांग्रेस-कमिटियां १९३२ के पहले की भांति काम करने लगीं। तदनुसार कार्य-समिति की बैठक १२–१३ जून को वर्धा में और १७–१८ जून को वम्बई में हुई। इन बैठकों में नव-संगठित कांग्रेस कमिटियों के लिए एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसकी मुख्य-मुख्य वातें इस प्रकार हैं:—

हाथ से कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करनेवाले इलाके में उसका प्रसार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक द्रव्य-सेवन के त्याग और नशीली वस्तुओं से दूर रहने का प्रचार करना, राष्ट्रीय ढंग की शिक्षा की वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धंधों की वृद्धि, ग्राम्य-जीवन का आर्थिक, शिक्षण, सामाजिक और आरोग्य-सम्वन्धी दृष्टि से पुनस्संगठन करना, व्यस्त गांववालों में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना, और मजदूरों का संगठन आदि ऐसे कार्य करना जो कांग्रेस के उद्देशों या सामान्य नीति के विरुद्ध न हों, और जो किसी प्रकार के सत्याग्रह

का रूप भी धारण न करते हों। कार्य-समिति ने सरकार का ध्यान उसकी उस विज्ञप्ति की असंगति की ओर दिलाया, जिसके अनुसार कांग्रेस-संस्थाओं पर से प्रतिबंध उठा लिया गया था; और कहा कि यद्यपि कांग्रेस की अन्य संस्थाओं को कानूनी मान लिया गया है, पर खुदाई-खिदमतगारों पर, जो १९३१ से कांग्रेस के ही अंग हैं उसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा हुआ है। सरकार ने इस असंगति से तो नहीं पर खुदाई-खिदमतगारों और अफगान जिरगे के विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञा को वापस लेने से इन्कार कर दिया।

ह्वाइट पेपर और सांप्रदायिक निर्णय

कार्य-समिति की बम्बईवाली बैठक के सामने एक और भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न आया। वह यह था कि ह्वाइट-पेपर की योजना और साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति होनी चाहिए? कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने कार्य-समिति से इस मामले में अपनी नीति स्पष्ट करने का अनुरोध किया था, इसलिए उसने इस विषय पर प्रस्ताव पास किया, जिसे सब जानते हैं। इस प्रस्ताव के पास होने के पहले सदस्यों में वाद-विवाद हुआ, जिसके दौरान में स्पष्ट हो गया कि एक ओर पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के दृष्टिकोण में और दूसरी ओर कार्य-समिति के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्री अणे ने अनुभव किया है कि यह मतभेद होते हुए वे न पार्लमेण्टरी-बोर्ड से और न कार्य-समिति से ही अपना सम्बन्ध बनाये रख सकते हैं, इसलिए उन्होंने अपने इस्तीफे दाखिल कर दिये। पर आशा की गई कि अच्छी तरह बातचीत करने के बाद सम्भव है यह नौबत न आवे, इसलिए उनके सहयोगियों ने उन्हें इस्तीफे वापस लेने को राजी कर लिया।

ह्वाइट-पेपर के सम्बन्ध में कार्य-समिति का प्रस्ताव इस प्रकार था:—

"ह्वाइट-पेपर से भारतीय लोकमत बिलकुल प्रकट नहीं होता और भारत के राजनैतिक-दलों ने इसकी कमोबेश निन्दा की है, और यदि यह कांग्रेस को अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटाता है तो उससे कोसों दूर अवश्य है। ह्वाइट-पेपर के स्थान पर एकमात्र सन्तोषजनक वस्तु वह शासन-व्यवस्था हो सकती है जिसे वयस्क-मताधिकार या उससे मिलते-जुलते साधन-द्वारा निर्वाचित विधान-कारिणी सभा बनाये। हां, यदि आवश्यक हो तो महत्त्वपूर्ण अल्प-संख्यक जातियों को अपने प्रतिनिधि खास तौर से चुनकर भेजने का अधिकार रहेगा।

"ह्वाइट-पेपर खारिज होने पर साम्प्रदायिक निर्णय भी स्वतः ही खारिज

हो जायगा। अन्य बातों के साथ-ही-साथ, विधानकारिणी सभा का यह भी कर्त्तव्य होगा कि वह महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का उपाय स्थिर करे और आमतौर से उनके हितों की रक्षा का प्रबन्ध करे।

"पर चूंकि साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर देश की विभिन्न जातियों में गहरा मतभेद है, इसलिए इस सम्बन्ध में कांग्रेस का रुख प्रकट करना आवश्यक है। कांग्रेस का दावा है कि वह भारतीय राष्ट्र की सारी जातियों की प्रतिनिधि संस्था है, इसलिए वर्तमान मतभेद के रहते हुए उस समय तक साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार कर सकती है न अस्वीकार, जबतक कि यह मतभेद मौजूद है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि साम्प्रदायिक प्रश्न पर कांग्रेस की नीति फिर से घोषित कर दी जाय।

"साम्प्रदायिक समस्या का कोई भी हल, जबतक वह पूर्णतया राष्ट्रीय न हो, कांग्रेस-द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर कांग्रेस वचन दे चुकी है कि वह ऐसा कोई भी हल जो राष्ट्रीयता की तराजू पर पूरा न उतरता हो पर जिसपर सारे सम्बन्धित दल सहमत हो गये हों, स्वीकार कर लेगी, और इसके विपरीत उस हल को अस्वीकार कर देगी जिसपर उनमें से दलविशेष सहमत न हुआ हो।

"राष्ट्रीय तराजू पर तौलने पर साम्प्रदायिक निश्चय बिलकुल असंतोषजनक पाया गया है, और उसमें इसके अलावा अन्य दृष्टिकोण से भी घोर आपत्तिजनक बातें मौजूद हैं।

"परन्तु यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक निश्चय के बुरे परिणाम को रोकने का एकमात्र मार्ग आपस में समझौता करने के उपाय खोज निकालना है, न कि इस घरेलू मामले में ब्रिटिश-सरकार या किसी और बाहरी शक्ति से अपील करना।"

सरदार पटेल रिहा

सत्याग्रह की बन्दी के कारण सरकार ने सत्याग्रहियों को गिला-गुजारी करते हुए धीरे-धीरे छोड़ना आरम्भ कर तो दिया था, पर यह स्पष्ट था कि सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल और खान अब्दुलगफ्फारखां को रिहा न करने का उसने निश्चय कर लिया था। इनमें दो को, सरदार पटेल और खान अब्दुलगफ्फारखां को, जेल में अनिश्चित समय के लिए बन्द कर रक्खा था। उन्हें १९३२ की शुरूआत में ही विशेष कानून के उपयोग के द्वारा पकड़ लिया गया था, और सरकार जबतक चाहती उन्हें शाही कैदी की हैसियत से जेल में रख सकती थी। पर ऐसी परिस्थिति आ पड़ी कि सरकार को विवश होना पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल को नाक का पुराना रोग था,

जो इधर बहुत बढ़ गया और जुलाई लगते-लगते रोग ने बड़ी भयंकर अवस्था धारण कर ली। सरकार-द्वारा नियुक्त गये मेडिकल बोर्ड ने बताया कि आपरेशन होना जरूरी है और आपरेशन तभी अच्छी तरह हो सकेगा जब वह स्वतंत्र होंगे। फलतः सरकार ने उन्हें १४ जुलाई १९३४ को छोड़ दिया।

मालवीयजी का इस्तीफा

२७ से ३० जुलाई तक बनारस में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई, जिसके दौरान में पं० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के साथ बातचीत फिर आरम्भ हुई। कार्य-समिति मालवीयजी और श्री अणे का सहयोग प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार और न अस्वीकार करने की मौलिक नीति को नहीं छोड़ सकती थी। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सभापति-पद से इस्तीफा दे दिया और श्री अणे ने पार्लमेण्टरी-बोर्ड और कार्य-समिति की सदस्यता को त्याग दिया। बंगाल को भी शिकायत थी कि हरिजनों को अतिरिक्त जगहें क्यों दी गई? इस प्रकार बंगाल का रुख कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णयवाले मामले के विरुद्ध ही नहीं था, बल्कि पूना-पैक्ट के विरुद्ध भी था।

स्वदेशी पर प्रस्ताव

स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की जो नीति थी, उसपर लोगों में संशय उत्पन्न हो रहा था। कार्य-समिति ने अपनी इसी बैठक में कांग्रेस की स्वदेशी-सम्बन्धी स्थिति को भी पुष्ट कर दिया और निम्नलिखित असन्दिग्ध शब्दों में उसकी नीति निर्धारित कर दी :—

"स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति है, इस सम्बन्ध में संशय उत्पन्न हो गया है, इसलिए इस विषय में कांग्रेस की स्थिति को असन्दिग्ध शब्दों में प्रकट करना आवश्यक है।

"सत्याग्रह के दिनों में जो हुआ सो हुआ, पर वैसे कांग्रेस-मंच पर और कांग्रेस-प्रदर्शनियों में मिल के कपड़े और खद्दर के बीच में प्रतिद्वन्द्विता की गुंजाइश नहीं है। कांग्रेस-वादियों को केवल हाथ से कते और हाथ से बुने खद्दर को ही प्रोत्साहन देना चाहिए।

"कपड़े के अलावा अन्य पदार्थों के सम्बन्ध में कार्य-समिति कांग्रेस-संस्थाओं के पथ-प्रदर्शन के लिए निम्न-लिखित तजवीज को मंजूर करती है—

'कार्य-समिति की सम्मति में कांग्रेस के स्वदेशी-सम्बन्धी कार्य उन्हीं उपयोगी चीजों तक सीमित रहेंगे जो भारत में घरेलू और अन्य धंधों द्वारा तैयार की जाती हों, जिन्हें अपनी सहायता के लिए लोक-शिक्षा की आवश्यकता हो, और जो मूल्य स्थिर करने, वेतन और मजदूरों की भलाई के मामले में कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन स्वीकार करने को तैयार हों।'

"इस योजना का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि देश में स्वदेशी-वस्तुओं के प्रति प्रेम और केवल स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने का भाव उत्पन्न करने की कांग्रेस की अबाध नीति में किसी प्रकार का अन्तर आ गया है? यह तजवीज तो इस बात को प्रकट करती है कि बड़े और संगठित धंधों को, जिन्हें सरकारी सहायता प्राप्त है या हो सकती है, न किसी कांग्रेस-संस्था की सहायता की और न कांग्रेस की ओर से किसी और ही प्रयत्न की दरकार है।"

कांग्रेस के पदाधिकारियों में अनुशासन की आवश्यकता के प्रश्न पर कार्य-समिति की यह राय हुई कि "सारे कांग्रेसवादियों से, चाहे वे कांग्रेस के कार्यक्रम और नीति में विश्वास रखते हों या न रखते हों, आशा की जाती है और सारे पदाधिकारियों और कार्यकारिणियों के सदस्यों का कर्त्तव्य हो जाता है कि उक्त कार्यक्रम और नीति पर अमल करें और कार्य-कारिणी के जो पदाधिकारी और सदस्य कांग्रेस के कार्यक्रम या नीति के विरुद्ध प्रचार करेंगे या उनके विरुद्ध आचरण करेंगे, वे २४ मई १९२९ को बनाये गये महासमिति के नियमों के अनुसार कांग्रेस-व्यवस्था की ३१वीं धारा के अन्तर्गत अनुशासन का भंग करने के अपराधी माने जायँगे और इसके लिए उनके खिलाफ जाब्ता कार्रवाई की जायगी।"

राष्ट्रीय दल

अपने-अपने त्यागपत्र देने के बाद मालवीयजी और श्री अणे ने १८ और १९ अगस्त को कलकत्ते में कांग्रेसियों और अन्य सज्जनों की एक परिषद् की। इस परिषद् के सभापति मालवीयजी थे। इस परिषद् ने निश्चय किया कि कौंसिलों के भीतर और बाहर साम्प्रदायिक 'निर्णय' और व्हाइट-पेपर के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए पार्टी बनाई जाय, जिसकी ओर से इस उद्देश की पूर्ति के लिए बड़ी कौंसिल के उम्मीदवार खड़े किये जायँ। परिषद् ने वे सिद्धान्त स्थिर किये जिनके अनुरूप पार्टी के उम्मीदवार चुने जायँ, और व्हाइट-पेपर और साम्प्रदायिक 'निर्णय' की निन्दा के बाद कार्य-समिति से अनुरोध किया कि वह

साम्प्रदायिक 'निर्णय' सम्बन्धी अपने प्रस्ताव के संशोधन के लिए महासमिति की बैठक बुलाये।

अब्दुलगफ्फारखां रिहा

सत्याग्रह-बन्दी के बाद भी सरकार ने दमन-नीति जारी रक्खी थी। खान अब्दुलगफ्फारखां को जेल में बन्द रखने से लोकमत बहुत रुष्ट हो गया था। सीमान्त-प्रदेश उन प्रान्तों में से था जिन्होंने १९३० के और १९३२-३४ के युद्ध में पूरा मोर्चा लिया था। युद्धप्रिय पठानों के अहिंसाव्रत की बड़ी परीक्षा हुई, पर उन्होंने सन्तोषपूर्वक कष्ट सहे। सीमान्त-प्रदेश के प्रतिनिधि गर्व के साथ यह दावा करते हैं कि यद्यपि उन्हें ऐसे उत्तेजन दिये गये जो उस प्रान्त की मध्यकालीन और निरंकुश प्रणाली के द्वारा ही सम्भव हो सकते थे, पर उन्होंने अहिंसा का मार्ग कभी न छोड़ा। इसलिए देश में यहां से वहां तक लोगों का दिल यही कहता था कि उस प्रान्त के नेता को जेल में बन्द रखना अन्यायपूर्ण है। सीमान्त-प्रदेश के प्रश्न पर गांधीजी बड़े चिन्तित थे और वह यही विचार करने में लगे हुए थे कि उस प्रान्त के सम्बन्ध में सारी बातें स्वयं जानने की समस्या को कैसे सुलझायें? इसलिए जब अगस्त के अन्तिम सप्ताह में अचानक खान अब्दुलगफ्फारखां और उनके भाई डॉ० खानसाहब को छोड़ दिया गया तो जनता को बड़ी तसल्ली हुई। पर मुक्त होने पर भी उन्हें अपने प्रान्त और अपने घर जाने की इजाजत न थी। सरकार ने उन्हें छोड़ तो दिया, पर सीमान्त-प्रदेश में उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया, यद्यपि सीमान्त-प्रदेश ने भी सत्याग्रह-बन्दी के आदेश का यथावत् पालन किया था।

नये चुनावों पर कार्यसमिति

कार्य-समिति की बैठक २५ सितम्बर को वर्धा में हुई। इस अवसर पर लक्ष्य और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति को दोहराया गया। बात यह थी कि कुछ कांग्रेसवादियों और अन्य सज्जनों को संशय होने लगा था कि पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य को अब भुलाया जा रहा है। इसलिए एक प्रकार से करांची-कांग्रेस की स्थिति को दोहराया गया। 'आगामी निर्वाचनों' के सम्बन्ध में कार्य-समिति ने सारी प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा दी कि वे निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य में पार्लमेण्टरी-बोर्ड को सहायता देना अपना कर्त्तव्य समझें। कार्य-समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो दल या व्यक्ति कांग्रेस की नीति

के विरुद्ध हो उसे सहायता न दी जाय, और जिसकी आत्मा गवाही न देती हो उसे छोड़कर हरेक कांग्रेसवादी से आशा की कि वह आगामी निर्वाचनों में कांग्रेसी उम्मीदवारों की सहायता करेगा। एक दूसरे प्रस्ताव में जंजीवार के भारतीयों का और उन्हें उनके न्याय्य भू-स्वत्व से वंचित किये जाने की कार्रवाई-सम्वन्धी कष्टों का जिक्र किया गया। श्री अणे के नये दल के कारण विकट अवस्था उत्पन्न हो गई। इस दल ने एक प्रस्ताव पास करके कार्य-समिति से यह अनुरोध किया था कि महासमिति की बैठक बुलाई जाय, जिसमें कार्य-समिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय' वाले प्रस्ताव पर विचार किया जाय। सभापति ने पण्डित मालवीय और श्री अणे को स्वयं आकर अपने विचार पेश करने के लिए आमंत्रित किया। कार्य-समिति ने महासमिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर कई घण्टे तक विचार किया और अन्त में इस नतीजे पर पहुँची कि चूंकि कार्य-समिति को अपने निश्चय के औचित्य के सम्वन्ध में कोई सन्देह नहीं है, और चूंकि महासमिति के नये चुनाव अभी हो रहे हैं, इसलिए कार्य-समिति महासमिति की बैठक बुलाने का जिम्मा नहीं ले सकती। बैठक में यह भी कहा गया कि यदि महासमिति के कुछ सदस्यों को कार्य-समिति के प्रस्ताव के खिलाफ कोई शिकायत है तो महासमिति के ३० सदस्य महासमिति की बैठक करने की मांग पेश कर सकते हैं, जिसपर कार्य-समिति को वाध्य होकर बैठक बुलानी पड़ेगी।

कार्य-समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि चुनाव के उम्मीदवारों को कार्य-समिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय' सम्वन्धी निश्चय का, अन्तःकरण के विरुद्ध होने के आधार पर, पालन न करने के लिए मुक्त कर दिया जाय; पर वह इस नतीजे पर पहुँची कि चूंकि कार्य-समिति ने इस वन्धन-मुक्ति के सम्वन्ध में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया है, इसलिए वन्धन-मुक्ति स्वीकार न की जाय। मालवीयजी ने श्री अणे के द्वारा एक संदेश भेजा था, जिसके उत्तर में गांधीजी ने यह तजवीज पेश की थी कि व्यर्थ के पारस्परिक तनाव और संघर्ष को बचाने के लिए यह अच्छा होगा कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारों की सफलता की सम्भावना पर विचार करके उन उम्मीदवारों को हटा लिया जाय जिनके सफल होने की सम्भावना कम हो। इसपर कोई समझौता न हो सका। पर पार्लमेण्टरी-वोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिन जगहों के लिए मालवीयजी और श्री अणे खड़े हों उनके लिए उम्मीदवार खड़े न किये जायें। वोर्ड ने यह भी निश्चय किया कि सिन्ध में और कलकत्ता शहर में उम्मीदवार खड़े न किये जायँ।

गांधीजी के कांग्रेस से हटने की बात

इन्हीं दिनों में कांग्रेस के इतिहास में एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। यह चर्चा आमतौर से की जा रही थी कि गांधीजी कांग्रेस त्याग देंगे। यह कोरी किम्वदन्ती ही न थी, क्योंकि उनके जुलाई के मध्यवाले ७ दिन के उपवास के दौरान में जो मित्र उनसे मिलने गये, और इसके बाद बंगाल व आन्ध्र से जो लोग किसी-न-किसी कार्य-वश उनके पास वर्धा पहुँचे, उनसे वह इसकी चर्चा बराबर कर रहे थे। गांधीजी ने १७ सितम्बर १९३४ को वर्धा से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया :—

"यह अफवाह सच थी कि मैं कांग्रेस से अपना स्थूल सम्बन्ध-विच्छेद करने की बात सोच रहा हूँ। वर्धा में अभी हाल में कार्य-समिति और पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बैठकों में भाग लेने के लिए जो मित्र यहां आये थे उनसे मैंने इस सम्बन्ध में विचार करने का अनुरोध किया और उनकी इस बात से बाद में सहमत हो गया कि अगर मुझे कांग्रेस से अलग ही होना हो तो वह सम्बन्ध-विच्छेद कांग्रेस के अधिवेशन के बाद होना ही अच्छा होगा। पण्डित गोविन्दवल्लभ पंत और श्री रफीअहमद किदवाई ने मुझे एक बीच का रास्ता भी सुझाया था। आप लोगों ने यह सलाह दी थी कि मैं कांग्रेस में तो बना रहूँ, पर उसके सक्रिय प्रबन्ध से अलग रहूँ। मगर सरदार वल्लभभाई पटेल और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने इस राय का जोरों से विरोध किया। सरदार वल्लभभाई पटेल तो मेरी इस बात से सहमत हैं कि अब वह समय आ गया है जब मुझे कांग्रेस से अलग हो जाना चाहिए। परन्तु बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो इस राय से सहमत नहीं हैं। प्रश्न के तमाम पहलुओं पर गहराई से विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि समझदारी का मार्ग तो यही है कि अपना अन्तिम निश्चय कम-से-कम अक्तूबर में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन तक स्थगित रक्खूं। अन्तिम निश्चय को स्थगित कर देने की बात इस दृष्टि से पसन्द आई कि इस बीच में मुझे अपनी इस धारणा की जांच कर लेने का मौका मिल जायगा कि कांग्रेस के बहुत-से बुद्धिशाली लोग मेरे विचारों, मेरे कार्यक्रम और मेरी प्रणाली से उकता गये हैं और वे यह सोचते हैं कि कांग्रेस की स्वाभाविक प्रगति में मैं बजाय साधक के एक बाधक बनता जा रहा हूँ। वह यह भी सोचने लगे हैं कि कांग्रेस देश की एक सर्वमान्य लोकतन्त्रात्मक और प्रतिनिधिमूलक संस्था होने के बजाय मेरे प्रभाव में आकर मेरे ही हाथों की कठपुतली बनती जा रही है और उसमें अब बुद्धि तथा दलील के लिए कोई स्थान बाकी नहीं रहा।

"अगर मुझे अपनी धारणा की सच्चाई की जांच करनी हो तो यह जरूरी है कि मैं सर्व-साधारण के सामने उन वजूहात को रख दूं जिनके आधार पर मेरी यह धारणा

वनी है; साथ ही अपने उन प्रस्तावों को भी रख दूं, जो उन कारणों पर निर्भर करते हैं, ताकि कांग्रेसवादी उन प्रस्तावों पर अपना वोट देकर अपनी साफ-साफ राय जाहिर कर सकें।

"इसको यथा सम्भव संक्षेप में रखने की कोशिश करूँगा। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वहुत-से कांग्रेसवालों और मेरी विचार-दृष्टि के वीच एक वढ़ता हुआ और गहरा अन्तर मौजूद है। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि वहुत-से वुद्धिशाली कांग्रेसवाले यदि मेरे प्रति अनुपम भक्ति के वन्धन में न पड़े रहें तो प्रसन्नता के साथ उस दिशा की ओर जायँगे जो मेरी दिशा के विलकुल विपरीत है। कोई भी नेता उस वफादारी और भक्ति की आशा नहीं कर सकता जो मुझे वुद्धिशाली कांग्रेसवादियों-द्वारा प्राप्त हो चुकी है—वह भी ऐसी अवस्था में जव उनमें से वहुतों ने मेरे द्वारा कांग्रेस के सामने रक्खी गई नीति का स्पष्ट रूप से विरोध व्यक्त किया है। मेरे लिए उनकी भक्ति तथा श्रद्धा से अव और लाभ उठाना उनपर वेजा दवाव डालना है। उनकी यह वफादारी इस वात के देखने से मेरी आंख को वन्द नहीं कर सकती कि कांग्रेस के वुद्धिशाली लोगों और मेरे वीच मौलिक मतभेद मौजूद हैं।

"अव मेरे उन मौलिक मतभेदों को लीजिए। चर्खा और खादी को मैंने सवसे पहला स्थान दिया है। कांग्रेस के वुद्धिशाली लोगों द्वारा चर्खा कातना लुप्तप्राय हो गया है। साधारणतः उन लोगों का इसमें कोई विश्वास नहीं रह गया है। फिर भी अगर मैं उनके विचारों को अपने साथ रख सकता, तो मैं ।) आने के वजाय नित्य चर्खा कातना कांग्रेस में मताधिकार के लिए अनिवार्य कर देता। कांग्रेस-विधान में खादी के सम्वन्ध में जो धारा है वह शुरू से ही निर्जीव रही है और कांग्रेसवाले खुद मुझे यह चेतावनी देते रहे कि खादी की धारा के सम्वन्ध में जो पाखण्ड और टालमटोल चल रही है उसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूँ। मुझे यह समझना चाहिए था कि यह खादीवाली शर्त सच्चे विश्वास के कारण नहीं, वल्कि ज्यादातर मेरे प्रति उनकी वफादारी के ही कारण स्वीकृत की गई थी। मुझे यह वात मान लेनी चाहिए कि उन लोगों की इस दलील में काफी सच्चाई है। तथापि मेरा यह विश्वास वढ़ता ही रहा है कि अगर भारत को अपने लाखों गरीवों के लिए पूर्ण-स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, और वह भी विशुद्ध अहिंसा-द्वारा, तो चर्खा और खादी शिक्षितों के लिए भी वैसे ही स्वाभाविक होने चाहिएँ जैसे कि अर्द्ध-वेकारों तथा लाखों की संख्या में अवपेट रहनेवालों के लिए हैं, जो भगवान् के दिये हाथों को काम में नहीं लाते और प्रायः पशुओं की तरह पृथिवी पर भार रूप हो गये हैं। इस प्रकार चर्खा सच्चे अर्थ में मानव-गौरव तथा समानता का शुद्ध चिन्ह

है। वह खेती का एक सहायक-धन्धा है। वह राष्ट्र का दूसरा फेफड़ा है जिसे काम में न लाने से हम नष्ट हो रहे हैं। फिर भी ऐसे कांग्रेसवादी बहुत ही थोड़े हैं कि जिनको चर्खे के भारत-व्यापी सामर्थ्य में विश्वास है। कांग्रेस-विधान में से खादी की धारा को हटा देने का अर्थ यह है कि कांग्रेस और देश के करोड़ों गरीबों के बीच की कड़ी टूट गई। इस गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न कांग्रेस अपने जन्मकाल से ही करती आ रही है। यदि उक्त सम्बन्ध कायम रखने के लिए वह धारा बनी रहेगी तो उसका सख्ती से पालन कराना पड़ेगा। पर यह भी अशक्य होगा, यदि कांग्रेसवालों का खासा बहुमत उसमें जीवित विश्वास न रखता हो।

"इसी प्रकार पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बात लीजिए। यद्यपि मैं असहयोग का प्रणेता हूँ, तो भी मेरा विश्वास है कि देश की मौजूदा अवस्था में जब उसके सामने किसी सामूहिक सत्याग्रह की कोई योजना नहीं है, कांग्रेस के नियंत्रण में एक पार्लमेण्टरी-पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। यहां भी हम लोगों के बीच गहरा मत-भेद है। पटना की महासमिति की बैठक में जिस जोर से मैंने इस कार्यक्रम को पेश किया था उसने हमारे बहुत-से अच्छे-अच्छे साथियों को व्यथित किया, और उसपर चलने में वे हिचकिचाये। किसी हदतक अपने मत को दूसरे ऐसे व्यक्ति के मत के आगे जो बुद्धि या अनुभव में बड़ा समझा जाता है दबा देना एक संस्था की निर्विकार उन्नति के लिए हितकर और वाञ्छनीय है। किन्तु यह तो एक भयंकर अत्याचार होगा, यदि अपना मत इस प्रकार बार-बार दबाना पड़े। यद्यपि मैंने कभी यह नहीं चाहा था कि यह अवाञ्छनीय परिणाम उत्पन्न हो, किन्तु फिर भी मैं इस बात को साधारण जनता और अपनी अन्तरात्मा से छिपा नहीं सकता कि वास्तव में बराबर यही दुःखद स्थिति चली आ रही थी। बहुत-से मेरे मित्र मेरा विरोध करने के विषय में हताश हो गये हैं। मेरे जैसे जन्मना लोकतन्त्रवादी के लिए इस भेद का खुल जाना लज्जा की बात है। मैंने गरीब-से-गरीब मनुष्य के साथ अपनेको मिला देने और उससे अच्छी दशा में न रहने की तीव्र अभिलाषा अपने हृदय में रक्खी है, और उस सतह तक पहुँचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया है। और इन कारणों से अगर कोई लोकतंत्रवादी होने का दावा कर सकता है, तो वह दावा मैं करता हूँ।

"मैंने समाजवादी-दल का स्वागत किया है, जिसमें मेरे बहुत से आदरणीय और आत्मत्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है उससे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु मैं उनके साहित्यों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का फैलना अपने नैतिक दबाव से नहीं रोकना चाहता। मैं उन सिद्धान्तों को स्वतंत्रता

के साथ प्रकट करने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, चाहे उनमें से कुछ सिद्धान्त मुझे कितने ही नापसन्द क्यों न हों। यदि उन सिद्धान्तों को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया, जैसा कि बहुत सम्भव है, तो मैं कांग्रेस में नहीं रह सकता; कांग्रेस में रहकर सक्रिय विरोध करते रहने की बात तो मेरी कल्पना ही में नहीं आती। यद्यपि अपने सार्वजनिक जीवन की लम्बी अवधि में मेरा बहुत-सी संस्थाओं से सम्बन्ध रहा है, किन्तु मैंने कभी अपने लिए यह सक्रिय विरोध की स्थिति स्वीकार नहीं की है।

"इसके बाद देशी रियासतों के सम्बन्ध में कुछ लोग उस नीति का समर्थन कर रहे हैं जो मेरी सलाह और मत के सर्वथा विरुद्ध हैं। मैंने चिन्ता के साथ घण्टों उसपर विचार किया है; किन्तु मैं अपना मत बदलने में सफल न हो सका।

"अस्पृश्यता के बारे में भी मेरी दृष्टि अधिकांश नहीं तो बहुत-से कांग्रेसजनों से कदाचित् भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतों का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैंने हाथ में लिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की गति में बाधा डालकर मैंने भारी भूल की। पर मैं अनुभव करता हूँ कि अगर मैंने दूसरा मार्ग पकड़ा होता तो मैं अपने-तईं सच्चा न रहा होता।

"अन्त में अब अहिंसा को लीजिए। १४ वर्ष के प्रयोग के बाद भी वह अबतक अधिकांश कांग्रेसियों के लिए नीतिमात्र ही है, जबकि मेरे लिये वह एक मूल सिद्धान्त है। कांग्रेसवाले अबतक अहिंसा को जो सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं करते इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उसके प्रतिपादन और उसे कार्य में परिणत करने का मेरा दोषपूर्ण ढंग ही निस्सन्देह इसके लिए जिम्मेदार है। मुझे नहीं लगता, कि मैंने उसके दोषपूर्ण प्रतिपादन और उसे कार्य में परिणत करने में कोई भूल की है। पर अबतक जो कांग्रेसवालों के जीवन का वह अभिन्न अंग नहीं बन सकी इससे यही एक अनुमान निकाला जा सकता है।

"और यदि अहिंसा के सम्बन्ध में अनिश्चितता है, तो फिर सत्याग्रह के सम्बन्ध में तो वह और भी अधिक होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के २७ वर्ष के अध्ययन और व्यवहार के बाद भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं उसके सम्बन्ध में सब कुछ जानता हूँ। अनुसन्धान का क्षेत्र अवश्य ही परिमित है। मनुष्य के जीवन में सत्याग्रह करने के अवसर निरन्तर नहीं आते रहते। माता, पिता, शिक्षक अथवा धार्मिक या लौकिक गुरुजनों की आज्ञा स्वेच्छा से पालन करने के बाद ही ऐसा अवसर आ सकता है। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए कि एकमात्र विशेषज्ञ होने के कारण, चाहे मैं कितना ही अपूर्ण होऊँ, मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कुछ समय के लिए सत्याग्रह मुझतक ही

सीमित रहना चाहिए। अनेक व्यक्तियों के प्रयोग से होनेवाली भूलों और हानि को रोकने के लिए तथा एक ही व्यक्ति के द्वारा किये जानेवाले सत्याग्रह की गूढ़ सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए मेरा यह निश्चय आवश्यक था। परन्तु यहां भी कांग्रेसियों का दोष नहीं है। पर इस विषय में हाल में स्वीकार किये गये प्रस्तावों के सम्बन्ध में अपने साथी कांग्रेसजनों से, जिन्होंने उदारतापूर्वक इन प्रस्तावों के पक्ष में अपना मत दिया, अपने विचार स्वीकार कराने में मुझे अधिकाधिक कठिनाई मालूम हुई है।

"इन प्रस्तावों पर अपने बौद्धिक विश्वास को दबाकर मत देते समय जिस कष्ट का अनुभव उन्हें हुआ होगा उसके स्मरणमात्र से मुझे उनसे कम पीड़ा नहीं होती। जो हम सबका लक्ष्य है उसकी ओर बढ़ने के लिए आवश्यक है कि मैं और वे इस प्रकार के दबाव से मुक्त रहें। इसलिए यह भी आवश्यक है कि सबको अपनी धारणा के अनुसार निर्भीकता से कार्य करने की स्वतंत्रता रहे।

"सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करने के बारे में पटना से मैंने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था उसमें मैंने लोगों का ध्यान सत्याग्रह की विफलता की ओर दिलाया था। अगर हममें पूर्ण अहिंसा का भाव होता तो वह स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता और सरकार से छिपा न रहता। निस्सन्देह सरकार के आर्डिनेन्स हमारे किसी कार्य या हमारी किसी गलती के कारण नहीं बने थे। वे तो चाहे जिस प्रकार हमारी हिम्मत तोड़ने को बनाये गये थे। पर यह कहना गलत है कि सत्याग्रही दोष से परे थे। यदि बराबर हम पूर्ण अहिंसा का पालन करते तो वह छिपी न रहती। हम आतंकवादियों को भी यह नहीं दिखला सके कि हमें अहिंसा में उससे अधिक विश्वास है जितना उन्हें हिंसा में है। बल्कि हममें से बहुतेरों ने उनमें यह भावना उत्पन्न कराई कि हमारे मन में भी उन्हींकी तरह हिंसा का भाव भरा है, अन्तर इतना ही है कि हम हिंसामय कार्यों में विश्वास नहीं करते। आतंकवादियों की यह दलील युक्तिसंगत है कि जब दोनों के मन में हिंसा का भाव है तब हिंसा करना चाहिए या नहीं यह केवल मत का प्रश्न रह जाता है। यह तो मैं बार-बार कह ही चुका हूं कि देश अहिंसा के मार्ग पर बहुत अग्रसर हुआ है, और यह भी कि बहुतेरों ने बेहद साहस और अपूर्व त्याग दिखाया है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हम मन, वचन और कर्म से विशुद्ध अहिंसक नहीं रहे हैं। अब मेरा यह परम-धर्म हो गया है कि मैं सरकार और आतंकवादियों दोनों को ही यह दर्पणवत् दिखला देने का उपाय ढूंढ़ निकालूं कि अहिंसा में सही लक्ष्य को, जिसमें पूर्ण-स्वतन्त्रता भी शामिल है, प्राप्त कराने की पूर्ण सामर्थ्य है। अहिंसात्मक साधन का अर्थ है हृदय-परिवर्तन, न कि बलात्कार।

"इस प्रयोग के लिए, जिसके लिए मेरा जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्संग और स्वतन्त्र रहने की आवश्यकता है। सविनय-अवज्ञा जिस सत्याग्रह का एक अंशमात्र, है, वह मेरे लिए जीवन का एक व्यापक नियम है। सत्य ही मेरा नारायण है। अहिंसा के द्वारा ही मैं उसकी खोज कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं। मेरे देश की ही नहीं, सारी दुनिया की स्वतंत्रता सत्य के अनुसन्धान में ही सन्निहित है। सत्य की इस खोज को मैं न तो इस लोक के लिए स्थगित कर सकता हूँ, न परलोक के लिए। इसी अनुसन्धान के उद्देश्य से मैंने राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया है और अगर मेरी यह बात बुद्धिशाली कांग्रेसियों की बुद्धि और हृदय स्वीकार नहीं करता कि सत्य के इसी अनुसन्धान के द्वारा पूर्ण स्वाधीनता और ऐसी बहुत-सी वस्तुयें जो सत्य का अंश हों, प्राप्त हो सकती हैं तो यह स्पष्ट है कि अब मैं अकेला ही काम करूँ और यह दृढ़ विश्वास रक्खूं, कि जिस बात को आज मैं अपने देशवासियों को नहीं समझा सकता वह एक दिन आप-से-आप उनकी समझ में आजायगी या कदाचित् अपनी किसी ईश्वर-प्रेरित वाणी या कृत्य से मैं लोगों को समझा सकूं। ऐसे बड़े महत्त्व के विषय में यन्त्र की तरह वोट देना अथवा आधे मन से अनुमति देना उद्देश सिद्धि के लिए हानिकारक नहीं तो सर्वथा अपर्याप्त तो है ही।

"मैंने सामान्य लक्ष्य की बात कही है, पर मुझे अब इस बात में सन्देह होने लगा है कि आया सभी कांग्रेसवादी पूर्ण-स्वाधीनता शब्द से एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं। मैं भारत के लिए पूर्ण-स्वाधीनता उसके मूल अंग्रेजी शब्द "कम्प्लीट इंडिपेंडेंस" के पूरे अंग्रेजी अर्थ में ही चाहता हूँ। खुद मेरे लिये तो पूर्ण-स्वराज्य का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता से भी कहीं अधिक व्यापक है। पर पूर्ण-स्वराज्य भी अपना अर्थ स्वतः व्यक्त नहीं करता। कोई अकेला या संयुक्त शब्द हमें ऐसा अर्थ नहीं दे सकता जिसे सब लोग समझ लें, इसलिए अनेक अवसरों पर मैंने स्वराज्य की अनेक व्याख्यायें की हैं। मैं मानता हूँ कि वे सभी ठीक हैं और कदापि परस्पर विरोधी नहीं हैं। पर सबको एकसाथ मिला देने पर भी वे सर्वथा अपूर्ण रह जाती हैं। किन्तु इस बात को अधिक विस्तार नहीं देना चाहता।

"मैंने जो कहा है कि पूर्ण-स्वराज्य की परिभाषा करना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है; उससे कितने ही कांग्रेस-वादियों के और मेरे बीच मत-भेद की एक और बात मेरे ध्यान में आती है। १६०८ से मैं बराबर कहता आया हूँ कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द हैं। इसलिए जहां साधन अनेक और परस्पर-विरोधी भी हैं वहां साध्य अवश्य भिन्न और साधन के प्रतिकूल होगा। साधनों पर सदा हमारा अधिकार और नियंत्रण रहता है, पर साध्य पर कभी नहीं होता। पर यदि हम समान

अर्थ तथा ध्वनिवाले साधनों का उपयोग करते हों तो हमें साध्य के विश्लेषण में माथापच्ची करने की जरूरत न होगी। इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि बहुतेरे कांग्रेसवादी (मेरे विचार से) इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार नहीं करते; उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे काम में लाये जा सकते हैं।

"इन सब मतभेदों ने ही कांग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम को विफल बना दिया है। कारण, जो कांग्रेस-सदस्य हृदय से उसमें विश्वास किये बिना मुंह से उसकी हामी भरते हैं वे स्वभावतः उसे कार्य में परिणत नहीं कर पाते, और मेरे पास उस कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नहीं, जो इस समय देश के सामने है—अर्थात् अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, चर्खा और खादी तथा ग्राम्य-उद्योगों को पुनर्जीवित करने के रूप में सौ फी सदी स्वदेशी का प्रचार और भारत के ७ लाख गांवों का संगठन। यह कार्यक्रम प्रत्येक देशभक्त की देशभक्ति को तृप्त करने के लिए काफी होना चाहिए।

"मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि भारत के किसी गांव में, विशेषतः सीमा-प्रान्त के किसी गांव में, अपना डेरा जमा लूं। खुदाई खिदमतगार सचमुच अहिंसावादी होंगे तो अहिंसा-भाव की वृद्धि और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना में वे सबसे अधिक सहायक हो सकते हैं। अगर वे मन, वचन, कर्म से अहिंसाव्रती और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रेमी हैं तो निश्चय ही उनके द्वारा हम इन दोनों कार्यों की सिद्धि देख सकते हैं जो इस समय हमारे देश में सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। जिस अफगानी होआ से हम इतना डरा करते हैं वह तब अतीत काल की वस्तु हो जायगा। अतः मैं इस दावे की स्वयं परीक्षा करने का अवसर पाने के लिए उत्सुक हूं कि उन्होंने (खुदाई खिदमतगारों ने) अहिंसा-भाव को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लिया है और हिन्दू-मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायों की सच्ची आन्तरिक एकता में वे विश्वास रखते हैं। मैं स्वयं उन्हें चर्खे का सन्देश भी जाकर सुनाना चाहता हूं। मेरी अभिलाषा यही होगी कि इन तथा ऐसे अन्य प्रकारों से जो थोड़ी-बहुत सेवा कांग्रेस की मुझसे बन सके करता रहूं, चाहे मैं कांग्रेस के अन्दर होऊं या बाहर।

"अपने कार्यकर्त्ताओं में बढ़ते हुए दूषण की चर्चा मैंने अन्त के लिए रख छोड़ी है। इसके विषय में अपने लेखों और भाषणों में मैं काफी कह चुका हूं। पर यह सब होते हुए आज भी मेरे विचार से कांग्रेस देश की सबसे अधिक शक्ति-शालिनी और प्रातिनिधिक संस्था है। उसका जीवन उच्चकोटि की अटूट सेवा और त्याग का इतिहास है। अपने जन्मकाल से ही उसने जितने तूफानों का सफलता के साथ सामना किया

उतना किसी और संस्था को नहीं करना पड़ा। उसके आदेश से लोगों ने इतना अधिक त्याग किया है, जिसपर देश गर्व कर सकता है। सच्चे देशभक्त और उज्ज्वल-चरित्रवाले स्त्री-पुरुषों की सबसे बड़ी संख्या आज कांग्रेस के अनुयायियों में है। अतः यदि ऐसी संस्था से मुझे अलग होना ही पड़े तो यह नहीं हो सकता कि ऐसा करने में मुझे दिल कचोटने का भारी कष्ट, विछोह की असहनीय पीड़ा न सहन करनी पड़े। और मैं तभी ऐसा करूँगा जब मुझे निश्चय हो जायगा कि कांग्रेस के अन्दर रहने की अपेक्षा उसके बाहर मैं देश की अधिक सेवा कर सकूंगा।

कुछ संशोधन

"मैं चाहता हूँ कि मैंने जिन सब विषयों की चर्चा की है उनको कार्य-रूप में परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति में पेश करके कांग्रेस के भाव की परीक्षा करूँ। पहला संशोधन जो मैं पेश करूँगा वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दों के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसात्मक' शब्द रक्खे जायँ। मैं ऐसा न करता, अगर उचित और शान्तिमय के बदले इन दो विशेषणों का सरल-भाव से मेरे प्रयोग करने पर उनके विरुद्ध तूफान न खड़ा कर दिया गया होता। अगर कांग्रेसी वस्तुतः हमारे ध्येय की प्राप्ति के लिए सच्चाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते हैं तो उन्हें इन स्पष्ट विशेषणों को स्वीकार करने में हिचक न होनी चाहिए।

दूसरा संशोधन यह होगा कि कांग्रेस की मताधिकार-योग्यता चार आने के बदले हर महीने कम-से-कम १५ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार =४ फुट) सूत हर महीने देने की रक्खी जाय और वह सूत मतदाता खुद चर्खे या तकली पर कातकर दें। अगर किसी मेम्बर की गरीबी साबित हो तो उसको कातने के लिए काफी रुई दी जाय ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। इसके पक्ष और विपक्ष की दलीलें यहां दोहराने की जरूरत नहीं है। अगर हमको सचमुच लोकतंत्रात्मक संस्था बनना है, और गरीब-से-गरीब मजदूर का प्रतिनिधित्व करना है, तो हमें कांग्रेस के लिए कम-से-कम परिश्रम का मताधिकार बनाना ही होगा। यह सब लोग स्वीकार करते हैं कि चर्खा चलाना कम-से-कम परिश्रम के साथ-साथ सबसे अधिक आदरणीय कार्य है। यह बालिग-मताधिकार के अत्यन्त निकट पहुँचाता है और उन सबके बूते की बात है जो अपने देश के नाम पर आध घंटे प्रतिदिन परिश्रम करना स्वीकार करते हैं। क्या पढ़े-लिखों और सम्पत्तिवानों से यह आशा करना बहुत है कि वे श्रम के गौरव को स्वीकार करेंगे और इस बात का खयाल न करेंगे कि उससे स्थूल लाभ कितना होता है?

क्या परिश्रम विद्याध्ययन की भांति स्वतः अपना ही पारितोषिक नहीं है ? अगर हम लोग वास्तव में लोकसेवक हैं, तो हम उनके लिए चर्खा चलाने में गौरव का अनुभव करेंगे। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली की उस बात का मैं स्मरण दिलाता हूँ जो वह प्रायः अनेक सभामंचों से कहा करते थे, अर्थात् तलवार जिस प्रकार पाशविक शक्ति और बलात्कार का प्रतीक है उसी प्रकार चर्खा या तकली अहिंसा, सेवा तथा विनम्रता का प्रतीक है। जब चर्खा राष्ट्रीय-पताका का एक अंग बना दिया गया तो अवश्य ही उसका यह अर्थ था कि प्रत्येक घर में चर्खे की आवाज गूंजेगी। वास्तव में अगर कांग्रेसवाले चर्खे के सन्देश में विश्वास नहीं करते, तो उन्हें उसे राष्ट्रीय झंडे से हटा देना चाहिए। और कांग्रेस के विधान से खादी की धारा निकाल देनी चाहिए। यह असह्य बात है कि खादी की शर्त का पालन करने में निर्लज्जपन से धोखा दिया जाय।

"तीसरा संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हूँ वह यह होगा कि किसी ऐसे कांग्रेसी को कांग्रेस के निर्वाचन में मत देने का अधिकार न होगा जिसका कि नाम ६ महीने तक बराबर कांग्रेस-रजिस्टर पर न रहा हो और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो। खादी की धारा को कार्यान्वित कराने में भारी कठिनाइयों का सामना पड़ा है। यह मामला आसानी से इस प्रकार तय किया जा सकता है, कि कांग्रेस के सभापति के पास अपील करने का अधिकार देते हुए भिन्न-भिन्न कमिटियों के सभापतियों पर इस बात का फैसला करने का भार छोड़ दिया जाय कि वे यह देखें कि मतदाता आदतन खादी पहननेवाला है या नहीं। नियम के अर्थ में वह आदमी खादी का आदतन पहननेवाला न समझा जाय, जो वोट देने के समय प्रत्यक्ष रूप से पूर्णतः खादी-वस्त्रों में न हो। किन्तु फिर भी किसी नियम से वह सन्तोषजनक फल प्राप्त नहीं हो सकता जिसका पालन अधिकतर लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, चाहे उसके पालन कराने के लिए कितनी ही सावधानी और कड़ाई से काम क्यों न लिया जाय।

"अनुभव ने यह दिखला दिया है, कि केवल ६००० प्रतिनिधि होते हुए भी कांग्रेस इतनी बड़ी हो जाती है कि भलीभांति कार्य-संचालन करना कठिन हो जाता है। व्यवहारतः कभी पूरे प्रतिनिधि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शरीक नहीं होते। और फिर जबकि कांग्रेस के सदस्यों की सूचियां कहीं भी असली नहीं होतीं, तब ये ६००० प्रतिनिधि कैसे सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं ? इसलिए मैं यह संशोधन चाहूँगा कि प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर ऐसी कर दी जाय जो १००० से अधिक न हो, और प्रति एक हजार वोटरों के पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक न चुना जाय।

इस प्रकार पूरे प्रतिनिधियों की संख्या का अर्थ यह हुआ कि पूरे १० लाख मतदाता हों। यह कोई ऐसी आकांक्षा नहीं है जो पूरी न हो। ३५ करोड़ की जन-संख्यावाले देश के लिए यह अधिक नहीं है। इस संशोधन के द्वारा कांग्रेस को जो वास्तविक लाभ होगा, उससे संख्या-बल की क्षति-पूर्ति अच्छी तरह हो जायगी। अधिवेशन के ऊपरी ठाट-बाट की रक्षा दर्शकों के लिए उचित प्रबन्ध कर केकी जायगी, और स्वागत-समिति को अत्यधिक संख्यक प्रतिनिधियों के रहने आदि की व्यवस्था करने में जिस व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पड़ता है उससे छुटकारा मिल जायगा। यह बात स्वीकार करनी चाहिए, कि कांग्रेस की प्रतिष्ठा तथा उसका लोकतन्त्रात्मक रूप और उसका प्रभाव इस कारण नहीं है कि उसके वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधियों और दर्शकों की अत्यधिक संख्या होती है, बल्कि इस कारण है कि कांग्रेस ने देश की सतत वर्द्धमान सेवा की है। पश्चिम का लोकतंत्र अगर सर्वथा निष्फल नहीं हो गया है, तो अग्नि-परीक्षा से तो वह गुजर ही रहा है। क्यों न भारत लोकतंत्र के सच्चे रूप को विकसित करने का श्रेय प्राप्त करे और उसकी सफलता को प्रत्यक्ष प्रकट कर दे? भ्रष्टता तथा दंभ लोकतंत्र के अनिवार्य परिणाम नहीं होने चाहिएँ, यद्यपि आज यही बात देखने में आ रही है, न बहुसंख्यक का होना ही लोकतंत्र की सच्ची कसौटी है। थोड़े आदमियों द्वारा उन सब लोगों की आशा, महत्त्वाकांक्षा तथा भावनाओं का प्रकट करना, जिनका कि प्रतिनिधित्व करने का वे दावा करते हैं, सच्चे लोकतंत्र के विपरीत नहीं है। मेरा विश्वास है कि लोकतंत्र का विकास बल-प्रयोग से नहीं हो सकता। लोकतंत्र का सच्चा भाव बाहर से नहीं, किन्तु भीतर से उत्पन्न होता है।

"मैंने यहां विधान में करने योग्य संशोधन पेश किये हैं। ऐसे और भी प्रस्ताव होंगे जो उन बातों का, जिनकी चर्चा मैंने की है, स्पष्टीकरण करेंगे। मैं अपने इस वक्तव्य को उन प्रस्तावों की चर्चा करके बढ़ाना नहीं चाहता।

"मुझे आशंका है कि जिन संशोधनों का मैंने उल्लेख किया है वे भी बम्बई-कांग्रेस में शामिल होनेवाले कांग्रेसजनों में से अधिकतर को शायद ही पसन्द आवें। परन्तु यदि कांग्रेस की नीति का संचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मैं इन संशोधनों को और अन्य ऐसे प्रस्तावों को, जो मेरे इस वक्तव्य के भाव के अनुकूल हों, देश के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक समझता हूँ। जिस किसी संस्था की सदस्यता भी स्वेच्छा पर निर्भर करती है उसके प्रस्तावों और नीति को जबतक उसके सदस्य तन-मन से कार्यान्वित नहीं करते तबतक उसका उद्देश सिद्ध नहीं हो सकता और जिस नेता

का अनुसरण उसके अनुयायी शुद्ध भाव से, पूरे मन से और बुद्धिपूर्वक नहीं करते वह अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर सकता। और जिस नेता के पास अहिंसा और सत्य के सिवा और कोई साधन नहीं उसके लिए तो यह बात और भी सच्ची है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मैंने जो कार्यक्रम उपस्थित किया है उसमें समझौते की गुंजाइश नहीं। कांग्रेसजनों को चाहिए कि शान्त भाव से उसके गुण-दोष पर विचार कर लें। वे मेरा कोई लिहाज न करें और अपनी विवेकबुद्धि के अनुसार ही कार्य करें।"

बम्बई-कांग्रेस

२६ से २८ अक्तूबर (१९३४) तक बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के पहले से ही कांग्रेस-विधान में होनेवाले क्रान्तिकारी सुधारों की चर्चा चल रही थी।

अधिवेशन के शुरू होते ही गांधीजी ने अपने संशोधनों को दो विभागों में बांट दिया, अर्थात् कांग्रेस-विधान-सम्बन्धी और सत्याग्रह-सम्बन्धी। सत्याग्रह-सम्बन्धी संशोधनों को तो आपने कार्य-समिति के फैसले के लिए छोड़ दिया और विधान-सम्बन्धी संशोधनों के बारे में यह कह दिया कि उनका पास होना न होना ही इस बात की परख होगी कि कांग्रेस उसके नये सभापति व उनके साथियों में विश्वास रखती है या नहीं। पर आश्चर्य की बात है कि कार्य-समिति ने उपयुक्त परिवर्तनों-सहित दोनों प्रकार के संशोधन स्वीकार कर लिये और स्वयं कांग्रेस ने भी उन्हें मुख्यत: स्वीकार कर लिया, जिससे गांधीजी संतुष्ट हो गये। गांधीजी के मूल-मसविदे में कांग्रेस ने जो-जो परिवर्तन किये उनकी तफसील देने की यहां जरूरत नहीं। इतना कह देना पर्याप्त है कि ध्येय-परिवर्तन के प्रस्ताव के बारे में यह निश्चय हुआ कि उसे प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों के पास सम्मति के लिए भेजा जाय। 'शारीरिकश्रम' की शर्त केवल उन्हीं कांग्रेस-सदस्यों तक सीमित रक्खी गई जो कांग्रेस के किसी चुनाव में खड़े हों। आदतन खादी पहनने की धारा ज्यों-की-त्यों मान ली गई। कांग्रेस-प्रतिनिधियों की संख्या २००० से अधिक न होना तय हुआ, जिसमें १४८९ प्रतिनिधि ग्राम्य-क्षेत्रों के और ५११ शहर-क्षेत्रों के रक्खे गये। महासमिति के सदस्यों की संख्या आधी कर दी गई। प्रतिनिधियों का चुनाव '५०० सदस्यों पर एक प्रतिनिधि' के हिसाब से रक्खा गया, न कि १००० सदस्यों पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से, जैसा कि गांधीजी का प्रस्ताव था। इस प्रकार गांधीजी के मूल-मसविदे का यह सिद्धान्त कि प्रतिनिधियों की संख्या ठीक कांग्रेस-सदस्यों की संख्या के हिसाब से हो, कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। इसका यह तात्पर्य हुआ कि प्रतिनिधियों

की हैसियत अब एक धूम-धड़ाके से होनेवाले सम्मेलन के दर्शकों की-सी न रहकर राष्ट्र के प्रतिनिधियों की-सी हो गई, जिनका कर्तव्य था कि कांग्रेस की कार्य-कारिणी अर्थात् महासमिति व प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों का चुनाव करें। गांधीजी के मसविदे का शेष भाग लगभग ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया।

लेकिन कांग्रेस का नया विधान या पार्लमेण्टरी बोर्ड, रचनात्मक कार्यक्रम एवं साम्प्रदायिक-निर्णय-सम्बन्धी पुराने प्रस्तावों की स्वीकृति में प्रस्तावों का पास होना, अधिवेशन के मार्के के निर्णयों में से नहीं थे, हालांकि ये स्वयं कुछ कम महत्त्व के निर्णय न थे। तथापि अधिवेशन की मुख्य घटना, यद्यपि उसकी ओर लोगों का ध्यान कुछ कम आकर्षित हुआ, अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग संघ की स्थापना थी, जिसके बारे में यह निश्चित हुआ कि वह गांधीजी की सलाह व देख-रेख में काम करेगा और राजनैतिक कहलाई जानेवाली हलचलों से अलग रहेगा। खद्दर के कार्यक्रम की पूर्ति का यह युक्ति-युक्त परिणाम ही था। गांव व देश को सुसम्पन्न बनाने के लिए जिन ग्राम्य-उद्योगों की आवश्यकता होती है खद्दर तो उनका अगुवा-मात्र ही है। किसी राष्ट्र की सभ्यता का ठीक-ठीक पता-ठिकाना उसके हुनर व कारीगरी से ही होता है।

वैज्ञानिक आविष्कारों पर तो सारे संसार का एकसा अधिकार होता है। ज्ञान भी किसी एक राष्ट्र व व्यक्ति की बपौती नहीं, लेकिन किसी देश की हुनर व कारीगरी में तो हमें उस राष्ट्र की आत्मा ही बोलती दिखाई देती है। जिस राष्ट्र का कला-कौशल व कारीगरी नष्ट हो चुकी उस राष्ट्र का तो व्यक्तित्व ही मानों जाता रहा। वह राष्ट्र पशुओं की भांति जीता रहे यह बात दूसरी है, लेकिन उसकी सृजनात्मक-प्रतिभा तो सदा के लिए विदा ले चुकी, जिसके वापस आने की कोई सम्भावना ही नहीं। इसलिए जब गांधीजी ने भारत के गांवों के लुप्त व लुप्तप्राय उद्योगों को पुनर्जीवन देने का बीड़ा उठाया तो मानों उन्होंने भारतीय सभ्यता के पुनरुद्धार, भारत की आर्थिक समृद्धि के पुनरागमन और भारत की राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना का ही बीड़ा उठाया।

गांधी जी अलग होगये

अब हम आखिर में उस घटना का उल्लेख करते हैं जो सम्भवतः बम्बई-अधिवेशन की सबसे मार्के की घटना है; अर्थात् गांधीजी का कांग्रेस से अलग होना। हालांकि इस सम्बन्ध में गांधीजी ने जो निश्चित घोषणा की थी उसको पहले लोगों

ने अधिक मूल्य नहीं दिया था, लेकिन उन्हें शीघ्र ही पता भी चल गया कि गांधीजी जो-कुछ भी कहते हैं वह सदा ठीक ही कहते हैं और जो-कुछ भी कहते हैं उसे सदा करते हैं।

वास्तव में यह खबर तो भारत की जनता तथा समाचार-पत्रों को एकदम सन्नाटे में ही डालनेवाली थी कि गांधीजी कांग्रेस के मामूली सदस्य तक न रहेंगे। तिसपर भी गांधीजी ने कांग्रेस के विश्वास-प्रस्ताव के साथ ही कांग्रेस को छोड़ा है और उसमें वापस आने के लिए कांग्रेस का दर्वाजा उनके लिए सदा खुला हुआ है। यह तभी हो सकता है जबकि पहले कांग्रेस स्वयं अपनेको इस योग्य बना ले। पहले उसे अपने में से सब गन्दगी निकाल देनी होगी और अपनेको इस प्रकार ढालना होगा कि कांग्रेस व खद्दर, शुद्धता, सच्चाई व ईमानदारी के ही परिचायक समझे जाने लगें। इसलिए कांग्रेस के बुद्धिशाली लोगों को अपने नेताओं को यह जता देना होगा कि उनका उद्देश स्वार्थ नहीं बल्कि सेवा व त्याग के आदर्श की प्राप्ति है—ऐसा आदर्श जिस तक पहुँचने के लिए हमें प्रति दिन कम-से-कम ८ घंटे मासिक के हिसाब से शारीरिक श्रम करना आवश्यक है और जिसका फल हमें कांग्रेस को अर्पित करना है। इस धारा के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह गलत धारणा-सी बन गई है कि यह धारा कांग्रेस को समाजवादियों के आक्रमण व प्रभाव से बचाने के लिए रक्खी गई है। बात ऐसी नहीं है। शारीरिक-श्रम तथा गरीब मजदूर व किसानों की सेवा के लिए कांग्रेस गत १४ वर्षों से ही वचन-बद्ध है। कांग्रेस का दृष्टिकोण तो वास्तव में समाजवादी ही है। यदि समाजवादी सिर्फ खद्दर व ग्राम-उद्योगों में, सत्य व अहिंसा में, तथा देश के सामने रक्खे गये उच्च-आदर्श की प्राप्ति के लिए निर्धारित दैनिक-कार्यक्रम में अपनी आस्था रखने की घोषणा कर दें तो कांग्रेसियों और समाजवादियों में कोई अन्तर ही न रहे। और फिर गांधीजी से बढ़कर समाजवादी और कौन हो सकता है, जो सिर्फ नाम के ही समाजवादी नहीं बल्कि वास्तविक समाजवादी हैं—जिन्होंने अपनी सारी धन-सम्पत्ति छोड़ दी और घर-बार नाते-रिश्तेदारों तक से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया? इसलिए कहना होगा कि श्रम-मताधिकार कोई दिखावटी चीज नहीं बल्कि कांग्रेसियों के दैनिक-जीवन में समाजवादी आदर्श को चरितार्थ करने का एक सच्चा प्रयत्न है।

गांधीजी यह महसूस करने लगे थे कि वह एक बड़े बोझ के समान हैं जिससे कांग्रेस दबी जा रही है, और जितना ही अधिक वह उस बोझ को कम करने का प्रयत्न करते हैं उतना ही वह बढ़ता जाता है। यदि सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करें तो वह करें, बन्द करें तो वह करें, और उसका संचालन करें तो वह करें। युद्ध छोड़ें तो वह छोड़ें,

सुलह करें तो वह करें। हाल्ट करने के लिए, मार्च करने के लिए, आगे बढ़ने के लिए, पीछे हटने के लिए अगर कांग्रेस को कोई आर्डर दे तो गांधीजी। सच तो यह है कि इतने भारी बोझ के हटने से वह वस्तु, जिसपर वह बोझ लदा हुआ था, मजबूत ही बनेगी, जैसे कि एक परिवार से पिता के हटने से पुत्र की शक्ति बढ़ती ही है; उसके स्वयं काम करने से हिम्मत भी बढ़ती है, उसकी जिम्मेवारी की भावना भी बढ़ती है, उसमें आशा और उत्साह का संचार भी होता है, और ऐसी हालत में तो और भी अधिक जबकि वह वृद्ध पुरुष अपने परिवार को अथवा राष्ट्र को आवश्यकतानुसार अपनी सलाह-मशवरा देने और उसका पथ-प्रदर्शन करने को तैयार हो। गांधीजी इसके लिए तैयार हैं। वह इसका आश्वासन दे ही चुके हैं। उनका उद्देश तो कांग्रेस को देश में एक शक्ति बनाना है। किसी संस्था की शक्ति उसके सदस्यों की संख्या से नहीं बल्कि उन सदस्यों के पीछे जो नैतिक शक्ति होती है उसमें निहित रहती है; और जैसे-जैसे उसके नेताओं में जिम्मेदारी की भावना बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही, अर्थात् उसी अनुपात में, वह नैतिक शक्ति भी बढ़ती जाती है।

राजेन्द्र बाबू का भाषण

बम्बई-कांग्रेस की सफलता का श्रेय उसके सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के चातुर्य्य, कार्य-शक्ति व असाधारण दक्षता को कुछ कम नहीं है। कांग्रेस-अधिवेशन में पढ़ा गया उनका अभिभाषण उन गिने-चुने नमूनेदार अभिभाषणों में से कहा जा सकता है जो राजनैतिक-स्थिति पर स्थायी प्रभाव छोड़ देते हैं। आपने श्वेत-पत्र (ह्वाइट-पेपर) की तफसीलवार बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की। कांग्रेस-कार्यक्रम के सम्बन्ध में आपके विचार बड़े लाभदायक थे।

राजेन्द्र बाबू ने अपना छोटा किन्तु भावपूर्ण भाषण इस प्रकार समाप्त किया —"भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध का जो लक्ष्य रहा है उसका स्वाभाविक परिणाम स्वाधीनता ही है। इसका मतलब यह नहीं कि हम दूसरों से सम्बन्ध-विच्छेद करके अलग पड़े रहेंगे। स्वाधीनता से यह अभिप्राय तो हो ही नहीं सकता, खासकर जबकि हमें उसे अहिंसा-द्वारा प्राप्त करना है। स्वाधीनता का मतलब तो उस शोषण का अन्त करना है जो एक देश दूसरे देश का और देश का एक भाग दूसरे भाग का करता है। स्वाधीनता में तो यह बात है कि हम पारस्परिक-लाभ के लिए दूसरे राष्ट्रों से अपनी मर्जी के अनुसार मित्रतापूर्ण व्यवहार रख सकते हैं। स्वाधीनता से किसीकी बुराई नहीं हो सकती, यहांतक कि हमारा शोषण करनेवालों की भी बुराई नहीं हो सकती।

हां, अगर सद्भावों के वजाय हमारे शोपक शोषण की नीति पर ही निर्भर रहें तव तो वात ही दूसरी है। इस स्वाधीनता-आन्दोलन की शक्ति अहिंसा है, जिसका सजीव व सक्रिय रूप सवका सद्भाव होना और सवके लिए सद्भाव का होना है। हम यह देख ही चुके हैं कि कुछ हद तक समस्त संसार का लोकमत अहिंसा को मान चुका है। लेकिन उसे अभी और भी व्यापक रूप में इसे अपनाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जवकि संसार के राष्ट्रों की सन्देह व अविश्वास की भावनायें, जिनका जन्म भय से होता है, दूर हो जायँ और उनका स्थान सुरक्षितता की भावना ले ले, जो भारत की सदिच्छा में विश्वास उत्पन्न होने पर ही सम्भव है। फिर भारत अन्य देशों-पर कोई मनसूवे नहीं वांध रहा है। उसे विदेशियों से अपनी रक्षा करने के लिए और आन्तरिक शान्ति तक के लिए किसी वड़ी सेना की आवश्यकता न होगी। आन्तरिक शान्ति तो उसके निवासियों की सदिच्छा के कारण वनी ही रहेगी; और चूंकि दूसरे देशों पर उसकी कोई वुरी नीयत नहीं है, वह इस वात की आशा तथा मांग तक कर सकेगा कि उसके प्रति भी कोई वुरी नीयत न रक्खे। और फिर उसकी रक्षा तो सारे विश्व की सदिच्छा के कारण आप ही हो जायगी। इस दृष्टि से देखते हुए तो व्रिटेनवासियों तक को, यदि उनका उद्देश भारत को वर्तमान अस्वाभाविक हालत में पटके रखना नहीं है, हमारी स्वाधीनता से डरने का कोई कारण नहीं। हमारा मार्ग भी स्फटिक की भांति साफ व स्वच्छ है। यह मार्ग सक्रिय, सजीव, अहिंसात्मक सामूहिक प्रतिकार का है। हम एकवार असफल हो जायँ, दो वार हो जायँ, लेकनि एक दिन हम अवश्य सफल होंगे।

कइयों ने तो इस मार्ग पर चलकर अपना जीवन और अपना सर्वस्व तक निछावर कर दिया है। और भी ज्यादा व्यक्तियों ने अपने-आपको स्वतन्त्रता के युद्ध में कुर्वान कर दिया है। लेकिन यदि हमारे मार्ग में कोई कठिनाइयां आवें तो हमें उनसे घवराना नहीं चाहिए और न हमें डर से या लालच से अपने सीधे मार्ग को छोड़ना ही चाहिए। हमारे शस्त्र वेजोड़ हैं; संसार हमारे इस वृहद्-प्रयोग की प्रगति को वड़े चाव और आशा के साथ देख रहा है। हमें अपने ध्येय पर अचल और अपने निश्चय पर अटल रहना चाहिए। सत्याग्रह सक्रिय रूप में कुछ काल के लिए पछाड़ खा जाय यह वात दूसरी है, लेकिन सत्याग्रह में पराजय को तो कोई स्थान ही नहीं है। सत्याग्रह तो स्वयं ही एक भारी विजय है, जैसा कि जेम्स लॉवेल ने कहा था :—

"Truth for ever on the scaffold,
Wrong for ever on the throne,

Yet that scaffold sways the future,
And behind the dim unknown
Standeth God within the shadow,
Keeping watch above his own."

"सत्य भले ही जगतीतल में दिखे लटकता सूली पर,
और दिखे अन्याय शान से डटा हुआ सिंहासन पर,
सूली का प्रिय सखा सत्य वह तो भी इस भावी का—
पथ पलटा देखा क्षण भर में, होगा पूजित घर-घर।
सदा खड़े भगवान् रहेंगे तिमिराच्छन्न गगन में,
अपने प्यारों को वल देने जन में और विजन में॥"

अब हम उन प्रस्तावों की ओर आते हैं जो बम्बई-कांग्रेस ने २६, २७ व २८ अक्तूबर को अपने अधिवेशन में, जिसके राजेन्द्र बाबू सभापति और श्री के० एफ० नरीमैन स्वागताध्यक्ष थे, पास किये।

कांग्रेस के पहले प्रस्ताव-द्वारा उन प्रस्तावों को मंजूर किया गया जो कार्य-समिति व महासमिति ने मई १९३४ में व उसके बाद अपनी बैठकों में पास किये थे और जिनके विषय खास तौर पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड, उसकी नीति व कार्य-क्रम, रचनात्मक कार्य-क्रम, प्रवासी भारतीयों की स्थिति, शोक-प्रकाश व स्वदेशी थे।

इसके पश्चात् राष्ट्र के त्याग व सविनय-अवज्ञा में राष्ट्र की आस्था विषयक एक प्रस्ताव पास हुआ, जो इस प्रकार था:—

यह कांग्रेस राष्ट्र को उसके हजारों स्त्री-पुरुष, बूढ़े और जवान, गांवों व शहरों के सत्याग्रहियों के वीरतापूर्ण त्याग व कष्ट-सहन के लिए बधाई देती है और अपने इस विश्वास को प्रकट करती है कि अहिंसात्मक असहयोग व सविनय-अवज्ञा के बिना देश में इतने मार्के की सामूहिक जाग्रति का होना असम्भव था। इसलिए जहां वह इस बात की आवश्यकता महसूस करती है कि सिवाय गांधीजी के औरों के लिए सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन मौकूफ कर दिया जाय, वह इस बात में भी अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करती है कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा, जिनके बारे में अनुभव अच्छी तरह बता चुका है कि उनका परिणाम जालिम व मजलूम दोनों के द्वारा आतंक-प्रयोग में ही होकर रहता है, अहिंसात्मक असहयोग और सविनय-अवज्ञा अधिक अच्छे साधन हैं।"

इसके पश्चात् एक प्रस्तव-द्वारा पं० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी श्रीमती

कमला नेहरू की बीमारी पर कांग्रेस की चिन्ता प्रकट की गई और इस बात की उम्मीद की गई कि पहाड़ी स्थान पर जाने से उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा।

अ० भा० ग्रामोद्योग संघ

अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग संघ के विषय पर खासी बहस और चहल-पहल रही और इस सम्बन्ध में निम्न लम्बा प्रस्ताव पास किया गया:—

"चूंकि देश-भर में कांग्रेसियों के सहयोग से अथवा उनके सहयोग के बिना स्वदेशी के प्रचार का दावा करनेवाली बहुत-सी संस्थायें खुल गई हैं, जिससे लोगों के दिलों में इस बारे में बहुत भ्रम फैल गया है कि 'स्वदेशी' का स्वरूप क्या है, और चूंकि अपने आरम्भ से ही कांग्रेस का ध्येय सर्व-साधारण की प्रगतिशील भावनाओं के साथ रहता रहा है, और चूंकि गांवों का पुनस्संगठन और पुर्ननिर्माण कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक अंग है, और चूंकि ऐसे पुर्ननिर्माण के लिए हाथ की कताई के मुख्य धन्धे के अलावा गांवों के लुप्त या लुप्तप्राय उद्योग-धन्धों का पुनरुद्धार करना अथवा उन्हें प्रोत्साहन देना जरूरी है, और चूंकि हाथ की कताई के पुनस्संगठन जैसा काम तभी सम्भव है जबकि उसके लिए जुटकर शक्ति लगाई जाय और ऐसे विशेष प्रयत्न किये जायँ जो कांग्रेस की राजनैतिक हलचलों से पृथक् और स्वतन्त्र हों, इसलिए श्री जे० सी० कुमारप्पा को अधिकार दिया जाता है कि वह गांधीजी की सलाह और देख-रेख में कांग्रेस के कार्य के एक अंग के रूप में 'अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' नाम की संस्था का निर्माण करें। उक्त संघ उक्त उद्योग-धन्धों के पुनरुद्धार व प्रोत्साहन के लिए और गांवों की नैतिक और शारीरिक उन्नति के लिए कार्य करेगा और उसे अपना विधान बनाने, धन-संग्रह करने तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्य करने का अधिकार होगा।"

इस प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप ही नुमाइशों तथा प्रदर्शनों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था:—

"चूंकि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों पर होनेवाली नुमाइशों तथा धूम-धड़ाके के प्रदर्शनों के प्रबन्ध-भार व व्यय से स्वागत-समिति को मुक्त करना वाञ्छनीय है और चूंकि इन नुमाइशों व प्रदर्शनों के कारण छोटे स्थानों के लिए यह असम्भव हो जाता है कि वे कांग्रेस को आमन्त्रित कर सकें, भविष्य में स्वागत-समिति नुमाइशों तथा धूम-धड़ाके के प्रदर्शनों के भार से बरी की जाती है। लेकिन चूंकि नुमाइशें व धूम-धड़ाके के प्रदर्शन वार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन के आवश्यक अंग हैं, इनके प्रबन्ध का कार्य अखिल-

भारतीय चर्खा-संघ व ग्राम-उद्योग-संघ के सुपुर्द किया जाता है। ये संस्थायें इन प्रदर्शनों का संगठन इस प्रकार करेंगी कि शिक्षा के साथ-साथ आम जनता का और खासकर गांववालों का मनोरंजन भी हो। ऐसा करने में उनका एकमात्र उद्देश होगा अपनी हलचलों का दिग्दर्शन कराना और उन्हें लोक-प्रिय बनाना, और आम तौर पर ग्राम्य-जीवन की छिपी शक्तियों को प्रदर्शित करना।"

अन्य प्रस्ताव

कांग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड पर भी कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। स्वयं बोर्ड ने ही एक प्रस्ताव-द्वारा अपनी यह सम्मति प्रकट की थी कि चूंकि बोर्ड का निर्माण एक असाधारण स्थिति में हुआ था, यह वाञ्छनीय है कि उसका जीवन-काल एक साल तक सीमित रहे और उसके सदस्य नामजद होने के बजाय निर्वाचित किये जाया करें और उसके बाद वह चुनाव के आधार पर बने। उसकी अवधि और शर्तें, जैसी उचित समझी जायँ, उस समय तय कर ली जायँ। बोर्ड ने अपना यह प्रस्ताव कार्य-समिति के पास सिफारिश के रूप में भेजा। कांग्रेस ने बोर्ड की सिफारिश स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि मौजूदा पार्लमेण्टरी-बोर्ड १ मई १९३५ को भंग हो जाय और महासमिति उस तारीख तक या उससे पहले २५ सदस्यों के एक नये बोर्ड का चुनाव करे। निर्वाचित बोर्ड को ५ सदस्यों को अपने में और सम्मिलित करने का अधिकार भी दिया गया। कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि हर साल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पार्लमेण्टरी बोर्ड का नया चुनाव हुआ करे और इस बोर्ड को भी ५ अतिरिक्त सदस्यों के सम्मिलित करने का अधिकार रहे। निर्वाचित पार्लमेण्टरी बोर्ड को भी वही अधिकार दिये गये जो मौजूदा बोर्ड को थे। कांग्रेस के नये विधान पर हम पहले ही काफी विवेचन कर चुके हैं।

खद्दर-मताधिकार के सम्बन्ध में एक पृथक् प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था:—

"कांग्रेस का कोई भी सदस्य किसी पद या किसी भी कांग्रेस-कमिटी के चुनाव के लिए खड़ा न हो सकेगा, यदि वह पूरे तौर से हाथ की कती-बुनी खादी आदतन न पहनता हो।"

बम्बई-कांग्रेस में सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था:—

"कोई भी व्यक्ति किसी भी कांग्रेस-कमिटी की सदस्यता के लिए उम्मीदवार

खड़ा होने का हकदार न होगा, यदि उसने चुनाव की नामजदगी की तारीख को समाप्त होनेवाले ६ महीनों में कांग्रेस की ओर से या कांग्रेस के लिए लगातार कोई ऐसा शारीरिक-श्रम न किया होगा जो प्रति मास मूल्य में अच्छे कते हुए १० नम्वर के ५०० गज सूत के वरावर हो, या जो प्रति मास समय में ८ घंटे के वरावर हो। कार्य-समिति समय-समय पर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों तथा अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ से सलाह लेकर यह निर्वारित करेगी कि कताई के वजाय दूसरा कौनसा श्रम स्वीकार किया जायगा।"

गांवीजी की अलहदगी ने इस वात का तकाजा किया कि गांवीजी में विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया जाय। तत्सम्वन्वी प्रस्ताव इस प्रकार थाः—

"यह कांग्रेस महात्मा गांवी के नेतृत्व में अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढ़ मत है कि कांग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हें विचार करना चाहिए। लेकिन चूंकि उन्हें इस वात के लिए राजी करने के सव प्रयत्न विफल हुए हैं, यह कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी वेजोड़ सेवाओं के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है और उनके इस आश्वासन पर संतोष प्रकट करती है कि उनका सलाह-मशवरा और पथ-दर्शन आवश्यकतानुसार कांग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिए युक्त-प्रान्त से निमन्त्रण मिला और वह स्वीकार किया गया।

असेम्वली का चुनाव

वम्वई का अविवेशन खतम भी न हो पाया था कि देश असेम्वली के चुनावों में जी-जान से कूद पड़ा। इससे लोगों ने फिर महसूस किया कि कुछ जीवन का संचार हुआ और मानों कुछ काल के लिए उन्हें अपनी मनचाही चीज मिल गई। देश का जिला-जिला और देश की तहसील-तहसील छान डाली गई। देश-भर में प्रचार-आन्दोलन जारी कर दिया गया। कांग्रेस ने लगभग हरेक 'सावारण' क्षेत्र की जगह के लिए अपना उम्मीदवार खड़ा किया। राष्ट्रवादियों ने पण्डित मालवीय और श्री अणे के नेतृत्व में कांग्रेस से अलग कांग्रेस नेशनलिस्टों के नाम से खड़ा होने का निश्चय किया। जिस क्षेत्र के चुनाव पर देश का सवसे अविक ध्यान गया वह था दक्षिण-भारत का व्यापार-क्षेत्र, जिसके लिए सर षण्मुखम् चेट्टी खड़े हुए थे। स्मरण रहे कि सर चेट्टी को भारत-सरकार ने एक व्यापार-सन्वि की शर्तें तय करने के लिए ओटावा भेजा था।

साम्राज्य के माल को तरजीह देने के सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने व्यापार-सन्धि की शर्तें तय कर डालीं। ओटावा से लौटकर वह असेम्वली के अध्यक्ष भी चुन लिये गये थे। उनको एक प्रकार से मदरास-सरकार व भारत-सरकार का समर्थन तक प्राप्त था। मदरास-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य सर मुहम्मद उस्मान तथा चीफ मिनिस्टर बॉविली के राजा उनके पक्ष में निकाले गये घोषणा-पत्र पर दस्तखत करनेवालों में मुख्य थे। उनके पक्ष में इंग्लैण्ड के इस रिवाज तक को पेश किया गया कि पार्लमेण्ट अर्थात् असेम्वली के अध्यक्ष के विरुद्ध किसीको चुनाव न लड़ना चाहिए। सरकारी अफसरों तक ने खुलकर चुनाव में भाग लिया। कांग्रेस सर चेट्टी के विरोधी सामी वेंकटाचलम चेट्टी की ओर थी। सामी वेंकटाचलम ने सर षण्मुखम् के ऊपर जो विजय प्राप्त की, उसकी गणना साधारण विजयों में नहीं की जा सकती। वास्तव में वह सरकार के ऊपर कांग्रेस की, धनसत्ता के ऊपर नैतिक-वल की, और ओटावा और ब्रिटेन दोनों के ऊपर भारत की विजय थी। दक्षिण-भारत में कांग्रेस ने और सब जगहों पर भी कब्जा कर लिया। मदरास-अहाते में ११ प्रादेशिक जगहें थीं; हरेक के चुनाव में कांग्रेस को ढेर-की-ढेर रायें मिलीं। वंगाल में कांग्रेस-नेशनलिस्टों ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया। युक्त-प्रान्त में भी कांग्रेस ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया, जैसा कि वह सन् १९२६ में भी नहीं कर सकी थी। युक्त-प्रान्त में कांग्रेस को मुसलमानों की भी एक जगह मिल गई। विहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक व आसाम में सब जगह कांग्रेस ने वाजी मारी। केवल पंजाव में ही कांग्रेस पिछड़ गई। वहां उसे केवल एक ही जगह मिली। कुल मिलाकर कांग्रेस ने ४४ जगहों पर कब्जा कर लिया, जिनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे शुद्ध-कांग्रेसी जगहें हैं। इन जगहों के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्टों की जगहें भी उसे प्राप्त हुईं। साम्प्रदायिक 'निर्णय' के प्रश्न के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्ट हरेक वात में कांग्रेस के साथ थे।

असेम्वली में कांग्रेस-पार्टी ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी को असेम्वली की अध्यक्षता के लिए खड़ा किया, लेकिन वह हार गये। अपने तीन विजयी उम्मीदवार श्री अभ्यंकर, शेरवानी व शशमल को खोकर कांग्रेस को वड़ी क्षति उठानी पड़ी। देश को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सेवा अर्पित करके ये तीनों वीर अपने जीवनके यौवन-काल में इस संसार से कूच कर गये। श्री शशमल कांग्रेस-नेशनलिस्ट पार्टी के थे।

असेम्वली में कांग्रेस-पार्टी का कार्य

कांग्रेस-पार्टी ने फौरन असेम्वली में, जिसका अधिवेशन २१ जनवरी को शुरू

हुआ, अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ के बारे में जो गश्ती-पत्र निकाला था उसपर विवाद उठाने के लिए कांग्रेस ने कार्य रोक रखने का प्रस्ताव पेश किया, लेकिन वह खटाई में पड़ गया। श्री शरतचन्द्र वसु को नजरवन्द रखने के विरोध में पेश किया गया ऐसा ही प्रस्ताव ५४ के विरुद्ध ५८ रायों से पास हो गया। स्मरण रहे कि श्री शरतचन्द्र वसु जब नजरवन्द थे तब भी वह असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गये। असेम्बली के सदस्य होते हुए भी असेम्बली की बैठकों में भाग लेने की सरकार ने उन्हें इजाजत न दी। कांग्रेस-पार्टी का ध्यान सबसे पहले इस बात की ओर ही गया और उसने श्री भूलाभाई देसाई के योग्य नेतृत्व में अपनी मोर्चेबन्दी की। श्री देसाई के बारे में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उन्होंने असेम्बली को वही गौरव और वही प्रतिष्ठा प्राप्त करा दी जो पण्डित मोतीलालजी ने कराई थी। आप कुछ काल तक बम्बई के एडवोकेट-जनरल रहे थे, लेकिन आपने उन कई ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों तक की तनिक भी परवाह न की जो स्वभावतः इस पद को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अक्सर मिला ही करते हैं। कांग्रेस ने अपना दूसरा वार ब्रिटेन व भारत में हुए तिजारती समझौते पर किया। ५८ के विरुद्ध ६६ रायों से असेम्बली ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि समझौता खतम कर दिया जाय। (सरकारी) पद का दुरुपयोग करके अपने स्वार्थों के लिए जो लज्जा-जनक-से-लज्जाजनक कार्य किया जा सकता है उसका यह समझौता एक ज्वलन्त उदाहरण था, जिसे भारत-मंत्री व ब्रिटेन के व्यापार-मण्डल के प्रधान ने आपस में किया था। समझौता तो किया था ब्रिटिश-मंत्रि-मण्डल के दो सदस्यों ने भारत के व्यापार की लूट को बांटने के लिए, पर उसको दे दिया गया बड़ा ऊँचा नाम 'ब्रिटेन-भारत का व्यापारिक समझौता'। वास्तव में यह बात थी कि नये सुधारों में व्यापारिक संरक्षणों के बारे में ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट में जो सिफारिशें की जानेवाली थीं, उनको अमल में लाने के लिए ही पहले से यह समझौता कर डाला गया था। समझौते में यह बात खुलासा तौर पर रक्खी गई कि "भारतीय-व्यवसायों को केवल इतना ही संरक्षण दिया जायगा, अधिक नहीं, जिससे कि बाहर से आनेवाला माल भारत में लगभग उसी कीमत पर बिक सके जिस कीमत पर उसी प्रकार का भारत का बना माल यहां बिकेगा; और जहांतक सम्भव होगा ब्रिटेन के बने माल पर कम महसूल लगाया जायगा। इंग्लैण्ड के तथा अन्य विदेशी माल पर जो भिन्न-भिन्न भेद-भावपूर्ण महसूल लगाये गये हैं या लगाये जायँगे, उन्हें इस प्रकार न बदला जायगा कि ब्रिटेन के माल को नुकसान पहुँचे। जब कभी किसी भारतीय-व्यवसाय को संरक्षण देने का

प्रश्न टैरिफ-बोर्ड के सुपुर्द किया जायगा तो भारत-सरकार उस व्यवसाय से सम्बन्ध रखनेवाले ब्रिटेन के हर व्यवसाय को यह अवसर देगी कि वह अपना पक्ष पेश कर सके और अन्य फरीकों की दलीलों का जवाब दे सके।

ब्रिटेन में भारत का कच्चा लोहा तभी तक बिना चुंगी के जाता रहेगा जबतक भारत में आनेवाले फौलाद और लोहे पर चुंगी का कानून वर्तमान समय की भांति ही ब्रिटेन के अनुकूल रहेगा। इस विलक्षण समझौते पर १० जनवरी १९३५ को हस्ताक्षर हुए और बड़ी कौंसिल में इसकी चारों ओर से निन्दा की गई। खुदाई खिदमतगारों पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के पक्ष में ७४ और विपक्ष में ४६ रायें आईं। सरकार की कर-सम्बन्धी नीति के ऊपर भी लोकमत की ही विजय हुई। इसके बाद स्याम के चावल और २५ या ३० अन्य विषयों पर विजय प्राप्त हुई।

हमने ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट की चर्चा जान-बूझकर अन्त में करने के लिए रख छोड़ी थी। निर्वाचन के समय जो ह्वाइट-पेपर था उसने अब ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट का रूप धारण कर लिया था। यह रिपोर्ट पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं-द्वारा पास की जा चुकी थी और अब यह कानून बन गया था। इस रिपोर्ट की सिफारिशों का खुलासा और उन्हें रद कराने के कारणों पर बड़ी कौंसिल ने जो प्रस्ताव पास किया था, और इस सम्बन्ध में जो कार्रवाई की गई थी, उसे हम नीचे देते हैं।

इस रिपोर्ट की बहस के सम्बन्ध में सरकार ने बड़ी कौंसिल में जो ढंग अख्तियार किया वह प्रान्तीय-कौंसिलों में अख्तियार किये गये ढंग से भिन्न था। प्रान्तीय-कौंसिलों में सरकारी सदस्यों ने मत देने में भाग नहीं लिया, जो ठीक ही था, जिससे रिपोर्ट के सम्बन्ध में कौंसिलों का भारतीय लोकमत ही प्रकट हो सके। पर बड़ी कौंसिल में सरकार ने बहस में भाग लेने का, और रिपोर्ट पर विचार करने के प्रस्ताव के विरोध में पेश किये गये संशोधनों के विरुद्ध सारी प्राप्त रायें एकत्र करने का निश्चय किया। यदि सरकार इस प्रकार हस्तक्षेप न करती तो कांग्रेस ने इस योजना के आधार पर किसी प्रकार का कानून न बनाने के लिए सरकार से सिफारिश करने का जो असंदिग्ध प्रस्ताव पेश किया था, वह पास हो जाता। पर बड़ी कौंसिल ने जिन्नाह साहब के संशोधन को पास कर दिया। मत लेने के लिए इस संशोधन को दो खण्डों में बांटा गया। इनमें से पहला खण्ड साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में था। श्री जिन्नाह के संशोधन-स्वरूप कांग्रेस-पार्टी ने तटस्थ रहने का प्रस्ताव पेश किया, जो नामंजूर हुआ। इस संशोधन के पक्ष में कांग्रेस-पार्टी की ४४ रायें आईं। अपना संशोधन नामंजूर

होने के वाद कांग्रेस-पार्टी तटस्थ रही और श्री जिन्नाह के संशोवन का पहला अंश मुसलमानों और सरकारी सदस्यों की सम्मिलित रायों से पास हो गया।

श्री जिन्नाह के संशोवन के दूसरे और तीसरे भागों को एकसाथ रक्खा गया और बड़ी कौंसिल ने उन्हें सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर ७४ वोटों से अपनाया। सरकार के पक्ष में ५८ वोट आये। कांग्रेस-पार्टी ने संशोधन के पक्ष में राय दी और नामजद सदस्यों ने खिलाफ राय दी।

श्री जिन्नाह का संशोवन इस प्रकार था:—

"यह कौंसिल साम्प्रदायिक 'निर्णय' को, जैसा कुछ भी है, उस समय तक के लिए स्वीकार करती है जवतक विभिन्न जातियों का आपस में समझौता तैयार न होजाय।

"प्रान्तीय-सरकारों की योजना के सम्वन्ध में इस कौंसिल की यह राय है कि वह अत्यन्त असन्तोपजनक और निराशा-पूर्ण है, क्योंकि उसमें अनेक आपत्तिजनक वातें रक्खी गई हैं—जैसे खासकर दुहरी कौंसिलों का कायम करना, गवर्नर को असाधारण और विशेप अविकार प्रदान करना, पुलिस के नियमों, गुप्तचर-विभाग और खुफिया-पुलिस-सम्वन्धी कलमें हैं, जिनके द्वारा कार्यकारिणी और कौंसिलों का नियंत्रण और उत्तरदायित्व वास्तविक न रहेगा। जवतक इन आपत्तिजनक वातों को न हटाया जायगा, भारतीय लोकमत का कोई अंग सन्तुप्ट न होगा।

"अखिल-भारतीय संघ कहलानेवाली केन्द्रीय सरकार की योजना के सम्वन्ध में कौंसिल की यह स्पप्ट राय है कि यह योजना जड़ से ही दोपपूर्ण है और ब्रिटिश-भारत की जनता के लिए अस्वीकार्य है; इसलिए यह कौंसिल भारत-सरकार से सिफारिश करती है कि वह सम्राट् की सरकार को सलाह दे कि इस योजना के आधार पर कोई कानून न वनावे। यह कौंसिल इस वात पर जोर देती है कि यह स्थिर करने के लिए कि सिर्फ ब्रिटिश-भारत में वास्तविक और पूर्ण उत्तरदायी सरकार किस प्रकार स्थापित की जाय, तत्काल ही चेप्टा की जाय, और इस उद्देश को सामने रखकर विना विलम्व भारतीय लोकमत से परामर्श करके स्थिति में परिवर्त्तन करे।"

श्री जिन्नाह के संशोवन के दूसरे और तीसरे भाग को एकसाथ सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर एक पूर्ण योजना के रूप में पेश किया गया था। सरकार ने, लॉ-मेम्वर के द्वारा, इस संशोवन को भी ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट को वैसा ही रद करने वाला समझा जैसा कांग्रेसपार्टी द्वारा पेश किया गया खुल्लम-खुल्ला

रद करने का प्रस्ताव था। लॉ-मेम्बर ने श्री जिन्नाह के संशोधन का वर्णन करते हुए कहा :—

"महोदय, मैं यह कहनेवाला था कि अपने मित्र श्री देसाई के सीधे, सच्चे और खुले आक्रमण के स्थान पर अब हमारे सामने अपने माननीय मित्र मुहम्मदअली जिन्नाह साहब का अप्रत्यक्ष और कौशलपूर्ण आक्रमण मौजूद है, यद्यपि इसका उद्देश भी वही है।

"मेरे माननीय मित्र अच्छी तरह जानते हैं कि वैसे देखने में तो यह आधे भाग पर आक्रमण है, पर असलियत में मेरे माननीय मित्र श्री जिन्नाह के संशोधन में और कांग्रेस-नेता के संशोधन में मूलतः कोई अन्तर नहीं है।"

जब रेलवे-बजट पर विचार हुआ तो सरकार को अनेक बार हार खानी पड़ी थी। अनेक सदस्यों ने विविध पहलुओं से रेलवे के प्रबन्ध में सरकारी नीति के खूब धुर्रे उड़ाये। विरोधी दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने रेलवे-ग्रान्ट को घटाकर १) कर देने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने अपने भाषण के दौरान में प्रसंगवश सरकार की वर्तमान नीति के धुर्रे उड़ाये और कहा कि यह नीति १६३० के खरीते के अनुसार बरती जा रही है। इस प्रकार नीति बरतने के कारण हैं (अ) राजनैतिक हलचल के समय सैनिक अधिकारियों को तुरन्त और पर्याप्त सहायता देना; (आ) भारतीय रेलवे में लगी गई विशाल पूंजी की रक्षा करना; (इ) भारतमंत्री-द्वारा नियुक्त किये गये उच्च पदस्थ रेलवे-अधिकारियों के पदों की रक्षा की जिम्मेवारी लेना; (ई) सैनिक और अन्य कार्यों की बिना पर भविष्य में यूरोपियनों की भर्ती की व्यवस्था; (उ) रेलवे की नौकरियों में अधगोरों के हित बनाये रखना। इस नीति को ध्यान में रखकर ही प्रस्तावित भारतीय बिल में रेलवे को गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्व की सूची में रक्खा गया है।

श्री देसाई का प्रस्ताव, जैसा कि उन्होंने बहस के दौरान में स्पष्ट कर दिया था, 'विरोधसूचक' प्रस्ताव न था, बल्कि शासन-खर्च देने से इन्कारी थी। उनका प्रस्ताव ७५ रायों से पास हुआ। विपक्ष में केवल ४७ रायें आईं। किसी स्वतन्त्र देश में शासन-खर्च देने की इन्कारी-सूचक प्रस्ताव पास होने का सरकार पर अनिवार्य प्रभाव पड़ता। रेलवे-बजट के सिलसिले में, अन्य विरोधात्मक प्रस्तावों में से, एक प्रस्ताव रेलवे की नौकरियों में भारतीयों को स्थान देने के सम्बन्ध में था, जो ८१ रायों से पास हुआ; विपक्ष में ४४ रायें आईं। एक प्रस्ताव तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के सम्बन्ध में था, एक रेलवे की नीति के सम्बन्ध में था, और एक प्रस्ताव खाद्य-पदार्थों पर रेलवे का महसूल

घटाने के और मजदूरी के सम्वन्ध में ह्विटले-कमीशन की सिफारिशों के सम्वन्ध में था।

नयी योजना पर कार्य-समिति

नई कार्य-समिति की पहली वैठक पटना में ५, ६ और ७ दिसम्वर १६३४ को हुई। समिति ने श्री वी० एन० शशमल की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। वह वड़ी कौंसिल के लिए निर्वाचन का फल प्रकट होने के दिन ही परलोक सिवारे थे। कार्य-समिति ने ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के सम्वन्ध में अपने विचार प्रकट किये और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया:—

"चूंकि कांग्रेस ने पूरी तरह और ध्यानपूर्वक विचार करने के वाद यह निश्चय किया था कि ह्वाइटपेपर में आयोजित भारत की शासन-व्यवस्था को रद कर दिया जाय और केवल विवान-कारिणी-सभा-द्वारा तैयार की गई शासन-व्यवस्था ही सन्तोष-जनक हो सकती है;

"और चूंकि इस नामंजूरी और विवान-कारिंणी सभा की मांग को देश ने वड़ी कौंसिल के आम निर्वाचन के अवसर पर स्पष्ट-रूप से पुष्ट कर दिया है;

"और चूंकि ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के प्रस्ताव कई वातों में ह्वाइटपेपर की तजवीजों से भी गये वीते हैं और भारत के लगभग पूरे लोकमत ने प्रतिगामी और असन्तोषजनक कहकर उनकी निन्दा की है;

"और चूंकि ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की योजना में, जो इस देश पर विदेशियों के प्रभुत्व और रक्त-शोषण को एक महँगे चोगे में सुविधा-पूर्ण और स्थायी रूप देने के लिए तैयार की गई है, वर्तमान शासन-प्रणाली की अपेक्षा अधिक खरावी और खतरा है;

"इसलिए इस समिति की राय है कि इस योजना को रद कर दिया जाय। यद्यपि वह भलीभांति जानती है कि उसे रद कर देने का अर्थ है जवतक कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार विवान-कारिणी-सभा-द्वारा तैयार की गई योजना को स्थान न मिल जाय तव तक वर्तमान शासन-प्रणाली के, जो असहनीय और अपमानकारी है, अन्दर लड़ाई जारी रखना। यह समिति वड़ी कौंसिल के सदस्यों से अनुरोध करती है कि वे इस सरकारी योजना को, जिसे सुवारों के नाम पर भारत पर लादा जा रहा है, रद कर दें। यह समिति राष्ट्र से अपील करती है कि पूर्ण स्वराज्य की राष्ट्रीय लक्ष्य-सिद्धि के लिए कांग्रेस जो उपाय स्थिर करे, वह उसका समर्थन करे।

"यह कार्य-समिति जनता को, बड़ी कौंसिल के निर्वाचन के अवसर पर कांग्रेस के नेतृत्व के प्रति उसके विश्वास और आस्था के प्रदर्शन पर, बधाई देती है और कांग्रेस-संस्थाओं और कांग्रेस-वादियों से अनुरोध करती है कि वे अगले तीन महीनों में अपना ध्यान निम्न कार्यक्रम को पूरा करने की ओर दें:—

(१) कांग्रेस के नये विधान के अनुसार कांग्रेस के सदस्य बनाना और कांग्रेस-कमिटियों का संगठन करना; (२) ग्राम-उद्योगों के निमित्त उपयोगी सामग्री एकत्र करना; और (३) जनता को उसके अधिकारों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में और करांची-कांग्रेस के द्वारा पास किये गये आर्थिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में जानकारी कराना।"

श्री सुभाषचन्द्र वसु की स्वतन्त्रता और गति-विधि पर, जब वह अपने पिता की मृत्यु पर थोड़े समय के लिए भारत आये थे, जो अपमान और सन्ताप-जनक सरकारी बन्दिशें लगाई गईं थीं, उनपर कार्य-समिति ने क्षोभ प्रकट किया। समिति ने यह सम्मति प्रकट की कि कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सदस्यों को सदा खद्दर पहनना चाहिए और उनसे अनुरोध किया कि वे इस नियम का पालन कड़ाई के साथ करें। कार्य-समिति से बंगाल के राष्ट्रीय-दल ने जो आग्रह किया था कि गत-निर्वाचन के अवसर पर दिये गये बंगाल के हिन्दुओं के कांग्रेस-विरोधी मत को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस के रुख पर दुबारा विचार हो, उसके सम्बन्ध में समिति ने यह सम्मति स्थिर की कि कांग्रेस की नीति बम्बई-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा निर्धारित हुई थी, और समिति के अधिकांश सदस्यों ने उस नीति का समर्थन किया था, इसलिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कांग्रेस का पचासवां वर्ष

अब हमें कांग्रेस से सम्बन्धित उन घटनाओं को संक्षेप में देना है जो १९३५ में घटित हुईं। इस वर्ष कांग्रेस को पचास वर्ष होते हैं और इसी वर्ष का वर्णन इस पुस्तक का यह अन्तिम अंश है।

कार्य-समिति की बैठक १६ से १८ जनवरी तक फिर हुई। इस बैठक में नागपुर के श्री अभ्यंकर और गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य गिडवानी के परलोक-वास पर शोक-प्रकाश किया गया। इन दोनों सज्जनों ने बड़े कष्ट उठाये थे और देश की सेवा बड़ी लगन के साथ की थी। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाया गया और इस अवसर के लिए सारे भारत के पालनार्थ एक खास प्रस्ताव बनाया गया। वह इस प्रकार है:—

"इस महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय-दिवस पर हम स्मरण करते हैं कि पूर्ण-स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और जबतक हम उसे प्राप्त न कर लेंगे चैन से न बैठेंगे।

"इस उद्देश की सिद्धि में हम मन, वचन, कर्म से यथाशक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे और किसी भी त्याग या कष्ट के लिए कटिबद्ध रहेंगे।

"सत्य और अहिंसा के दो आवश्यक गुणों को व्यक्त करने के लिए हम

(१) विभिन्न जातियों में हार्दिक ऐक्य की वृद्धि करेंगे और बिना जाति, वर्ण या सम्प्रदाय का भेद किये सबसे बराबरी का रिश्ता कायम करेंगे।

(२) हम स्वयं भी मादक द्रव्यों के सेवन से बचेंगे और दूसरों को भी बचायेंगे।

(३) हम हाथ से कातने की कला को और अन्य ग्राम्य-उद्योगों को प्रोत्साहन देंगे और अपने व्यवहार में खद्दर और ग्राम्य-उद्योग की अन्य वस्तुयें लायेंगे और दूसरी सारी चीजों को छोड़ देंगे।

(४) अस्पृश्यता का निवारण करेंगे।

(५) जिस तरह होगा, लाखों भूखों मरते हुए भारतवासियों की सेवा करेंगे।

(६) अन्य राष्ट्रीय और रचनात्मक कार्यों में भाग लेंगे।"

कार्य-समिति ने यह सिफारिश की कि राष्ट्रीय-दिवस में जहांतक सम्भव हो कोई खास रचनात्मक कार्य किया जाय, और इस दिन पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया जाय। हड़तालें न की जायँ। उसने यह भी हिदायत दी कि किसी आर्डिनेन्स या स्थानिक अधिकारी के हुक्म की अवहेलना न की जाय और न सभा में भाषण किये जायँ। राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और खड़े होकर पूर्वोक्त प्रस्ताव पास किया जाय।

सम्राट् जार्ज के शासन की रजत-जयन्ती की ओर स्वभावतः ही कार्य-समिति का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ:—

"सरकारी ऐलान प्रकाशित हुआ है कि भारत में सम्राट् की रजत-जयन्ती मनाई जायगी। इस अवसर पर जनता को कैसा रुख अख्तियार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कार्य-समिति पथ-प्रदर्शन करना आवश्यक समझती है।

"कांग्रेस के मन में खुद सम्राट् के प्रति तो मंगल-कामना के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता, न है ही; पर साथ ही कांग्रेस इस बात को नहीं भूल सकती कि

भारत का शासन, जिसके साथ सम्राट् का स्वभावतः ही अविच्छिन्न सम्बन्ध है, राष्ट्र की राजनैतिक, नैतिक, और आर्थिक उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ा रोड़ा रहा है। अब इस शासन की चरमसीमा एक ऐसी शासन-व्यवस्था के रूप में होनेवाली है, जो यदि जारी कर दी गई तो देश का रक्त-शोषण करने में, देश में जो-कुछ धन बचा है उसे खींच ले जाने में, और देश को पहले की अपेक्षा कहीं अधिक राजनैतिक दासत्व की अवस्था में पटकने में सफल होगी।

"अतएव कार्य-समिति के लिए जनता को आगामी जयन्ती में भाग लेने की सलाह देना असम्भव है। पर साथ ही यह कार्य-समिति जनता-द्वारा किसी प्रकार के विरोधी-प्रदर्शन के द्वारा अंग्रेजों के या उन लोगों के दिलों को, जो जयन्ती में भाग लेना चाहते हैं, चोट पहुँचाने का निषेध करती है। इसलिए यह समिति जनता को, और कांग्रेसियों को, जिनमें वे कांग्रेसी भी शामिल हैं जो निर्वाचित संस्थाओं के सदस्य हों, सलाह देती है कि वे जयन्ती के उत्सवों में भाग न लेकर ही सन्तुष्ट हो जायँ।"

सूती मिलों के प्रश्न पर स्थिति इन शब्दों में साफ की गई—"चूंकि अधिकांश सूती-मिलों के मालिकों ने कांग्रेस को दिये वचनों को तोड़ दिया है, इसलिए कार्य-समिति की सम्मति है कि कांग्रेस या उससे सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने का सिलसिला कायम रखना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में पुराने प्रमाण-पत्र अब रद समझे जायँ।

"कार्य-समिति की यह भी राय है कि सारे कांग्रेसियों का और कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवालों का यह कर्तव्य है कि वे केवल हाथ से कते और हाथ से बुने कपड़े की ओर ही ध्यान दें और उसीकी उन्नति में सहायता करें।"

कार्य-समिति ने संशोधित-विधान की धारा १२ (ई–३) के अनुसार अनुशासन-भंग-सम्बन्धी नियम पास किये।

कांग्रेस के विधान में रक्खी गई 'निवास-सम्बन्धी योग्यताओं' के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया था। कार्य-समिति ने उसको एक प्रस्ताव-द्वारा स्पष्ट कर दिया।

इसके बाद कार्य-समिति ने बर्मा की समस्या पर, ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की सुधार-योजना की दृष्टि से, और कांग्रेस के एक केन्द्र की दृष्टि से, विचार किया, और निश्चय किया कि बर्मा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी पहले की भांति ही काम करती रहे।

ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की नई सुधार-योजना के अन्तर्गत बर्मा-प्रवासी भारतवासियों की स्थिति के सम्बन्ध में समिति ने सम्मति दी कि चूंकि सारी योजना ही अस्वीकार्य है, इसलिए कांग्रेस उसमें कोई संशोधन नहीं पेश कर सकती। पर इस योजना के जो अंश बर्मा-प्रवासी भारतवासियों की स्थिति और दर्जे को खतरे में डालते हों, उनकी आलोचना करने में कोई रुकावट नहीं है।

अध्यक्ष को अधिकार दिया गया कि वह आंध्र के रायालसीमी के प्रदेश की बाढ़-पीड़ित जनता के कष्ट-निवारण के लिए धन की अपील करें।

७ फरवरी १९३५ को ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के विरुद्ध दिवस मनाया गया और इसके द्वारा एकबार फिर आदर्श और कार्य का पारस्परिक सहयोग प्रदर्शित कर दिया गया। इस सम्बन्ध में जो अपील प्रकाशित की गई उसके उत्तर में बड़े-बड़े नगरों में ही सभायें की गई हों सो बात नहीं, अनेक प्रान्तों के कोने-कोने में सभायें की गईं। इन सारी सभाओं में वह प्रस्ताव पास किया गया जो कांग्रेस के अध्यक्ष ने बताया था।

रंगून में बर्मा-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी-द्वारा आयोजित प्रदर्शन भी अपने ढंग का निराला था, क्योंकि रिपोर्ट को रद करने की मांग पेश करने में बर्मा और भारत दोनों आपस में मिल गये थे।

सांप्रदायिक समझौते की चर्चा

अब हमें उस मेल-सम्बन्धी बातचीत की चर्चा करनी है जो १९३५ की जनवरी और फरवरी में हुई थी। एक ऐसे साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत, जो साम्प्रदायिक 'निर्णय' का स्थान ले सके और जिसके द्वारा जातिगत वैमनस्य और कटुता दूर हो और देश सम्मिलित रूप से मुकाबला कर सके, कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मुस्लिम-लीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्नाह में, एक महीने से भी अधिक दिनों तक चलती रही। बातचीत २३ जनवरी को आरम्भ हुई और बीच में कुछ दिनों के लिए बन्द रहकर फिर १ मार्च १९३५ तक जारी रही। पर इस बातचीत का कोई परिणाम न हुआ और देश को बड़ी निराशा हुई।

दमन जारी

१९३५ में भी सरकारी रुख या नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कांग्रेस को शक्तिशाली शत्रु समझकर उसपर सन्देह की निगाह रक्खी जा रही है और जरा-

जरा-सी वात पर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने के अवसर से लाभ उठाया जाता है। जिनपर आतंककारी कामों का सन्देह किया जाता है, उन्हें अव भी विना मुकदमा चलाये जेलों में या घरों में नजरवन्द रक्खा जा रहा है और अकेले वंगाल में ही उनकी संख्या २७०० है। अनेक स्थानों पर यदा-कदा मकानों की तलाशियां होती रहती हैं और महासमिति के तथा विहार आदि प्रान्तों की कांग्रेस कमिटियों के दफ्तरों पर भी निगाह पड़ चुकी है। खान अव्दुलगफ्फारखां को वम्वई में भाषण देने के अपराध में दो वर्ष की सजा दी गई और डॉक्टर सत्यपाल को निर्वाचन-सम्वन्धी भाषण देने के सिलसिले में एक साल का दण्ड दिया गया।

वंगाल के नजरवन्दों की संख्या हजारों में है। उनके परिवार असहाय अवस्था में हैं। सरकार ने इन परिवारों से उनका निर्वाह करने में समर्थ युवकों को छीन लिया है। ये युवक कई वर्षों से विना मुकदमा चलाये नजरवन्द रक्खे गये हैं या निर्वासित हैं। २४ और २५ अप्रैल को जवलपुर में महासमिति की वैठक हुई, जिसमें उनसे सहानुभूति प्रकट की गई और नजरवन्दों के परिवारों और आश्रितों के कष्ट-निवारण के लिए चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। १६ मई का दिन हजारों आदमियों को विना मुकदमा चलाये नजरवन्द रखने के विरुद्ध दिवस मनाने और चन्दा इकट्ठा करने के लिए निश्चित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष ने इस सम्वन्ध में देश के नाम एक अपील प्रकाशित की। वंगाल की सरकार ने कांग्रेस की इस कार्रवाई का मुकावला करने के लिए इंडियन प्रेस (इमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट की धारा २ ए के अन्तर्गत आदेश जारी कर दिया कि कांग्रेस के अध्यक्ष के आज्ञानुसार देश भर में मनाये जानेवाले नजरवन्द दिवस की देश के किसी स्थान की कोई सूचना पत्रों में प्रकाशित न की जाय। वंगाल के पत्रकारों ने इसका विरोध किया और इस सम्वन्ध में एक दिन के लिए पत्र प्रकाशन वन्द रक्खा।

महासमिति ने अपनी २४ और २५ अप्रैल की जवलपुर की वैठक में कांग्रेस पार्लमेण्टरी-वोर्ड और निर्वाचन-सम्वन्धी झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक समिति निर्वाचित की और हिसाव-किताव की जांच के लिए आडीटर नियुक्त किये। महासमिति ने श्री तसद्दुकअहमदखां शेरवानी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया, वड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी के काम पर संतोष प्रकट किया, देश का ध्यान सीमान्त-प्रदेश में कांग्रेस-संस्था के वदस्तूर गैर-कानूनी रहने, वंगाल के मिदनापुर जिले की कांग्रेस-कमिटियों के निषिद्ध रहने, और वंगाल, गुजरात व अन्य स्थानों पर खुदाई-खिदमतगार और हिन्दुस्तानी सेवादल आदि कांग्रेस से सम्वन्ध रखनेवाले दलों के गैर-कानूनी

बने रहने, और बंगाल, बम्बई, पंजाब और अन्य स्थानों में मजदूर और युवक-संघ की संस्थाओं के, केवल इस आधार पर कि उनकी प्रवृत्ति हिंसात्मक कार्यों की ओर है, कुचले जाने की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया, और जनता से अपील की कि कांग्रेस की शक्ति में इस तरह वृद्धि करे जिससे वह देश का उद्धार करने के योग्य बन जाय।

महासमिति ने "विदेशी कानून" (Foreigners' Act) नामक पुराने कानून के दुरुपयोग का उल्लेख किया, जिसके द्वारा ब्रिटिश-भारत के कांग्रेस-वादियों को निर्वासित करके उन्हें ब्रिटिश-भारत में आकर निवास करने और कामकाज करने के कानूनी अधिकार का उपयोग करने से वंचित किया गया है।

महासमिति ने बंगाल में प्रचलित सरकारी दमन-नीति की, अनेकानेक युवकों को नजरबन्द रखने की नीति की, जिसके कारण उनके परिवार अवलम्बन-हीन हो गये हैं, और स्वयं उन परिवारों के निर्वाह का प्रबन्ध न करने की निन्दा की। महासमिति ने सम्मति प्रकट की कि बंगाल की सरकार को या तो इन नजरबन्दों को छोड़ देना चाहिए, या उनपर अच्छी तरह मुकदमा चलाना चाहिए। बंगाल की जनता और उसके नजरबन्दों को आश्वासन दिया कि उनके कष्टों के साथ उसकी पूरी समवेदना है। समिति ने बंगाल-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी को आज्ञा दी कि वह नजरबन्दों की पूरी सूची तैयार करे और उनके नजरबन्द रहने की अवधि और उनके परिवारों की आर्थिक अवस्था से उसे सूचित करे। नजरबन्दों के परिवारों का कष्ट-निवारण करने के उद्देश्य से कार्य-समिति की अधीनता में भारतवर्ष-भर में चन्दा एकत्र करने का निश्चय किया। फीरोजाबाद के सामूहिक हिंसात्मक कार्यों के ऊपर खेद प्रकट किया, जिनके फल-स्वरूप डॉ० जीवाराम का पूरा परिवार, बच्चों और कई रोगियों सहित, जीवित जला दिया गया था, और नेताओं का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि उन्माद-पूर्ण साम्प्रदायिकता के फल-स्वरूप कैसी शोकजनक घटनायें हो सकती हैं। नेताओं से अपील की कि जनता को यह सुझाने के लिए, कि एक-दूसरे के प्रति मेल और आदर के भावों के साथ शान्ति और मैत्री-पूर्वक रहना कितना आवश्यक है, प्रबल चेष्टा की जाय।

महासमिति ने यह स्पष्ट कर दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस के लिए देशी रियासतों की प्रजा के हित भी उतने ही प्रिय हैं, जितने ब्रिटिश-भारत की प्रजा के हित, और रियासतों की प्रजा को आश्वासन दिया कि उनके स्वतन्त्रता के युद्ध में कांग्रेस उनकी पीठ पर है।

इसी अवसर पर जबलपुर में कार्य-समिति की भी बैठक हुई, जिसमें कांग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की गई और महासमिति के सदस्यों और आगामी कांग्रेस के प्रतिनिधियों के निर्वाचन के सम्बन्ध में विभिन्न कांग्रेस-कमिटियों के पालन के लिए समय-तालिका बनाई गई। कार्य-समिति में कई प्रान्तों के निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा किया गया और कांग्रेस और महासमिति में बंगाल के मिदनापुर जिले के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया, क्योंकि इन दोनों स्थानों पर कांग्रेस-संस्थाओं के गैर-कानूनी होने के कारण निर्वाचन नहीं हो सकता था।

क्वेटा का भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ को बिहार के भूकम्प ने देश को हिला दिया था। अभी मुश्किल से १८ महीने बीते होंगे कि ३१ मई १९३५ को क्वेटा के भूकम्प ने देश-भर में शोक के बादल फैला दिये। यह शहर सैनिक-केन्द्र था, इसलिए कष्ट-निवारण का काम सरकार ने स्वयं अपने हाथ में लिया। यह स्वाभाविक ही था; पर कष्ट-निवारण और संगठित सहायता के उद्देश से बाहर से आनेवालों के प्रवेश के विरुद्ध आज्ञा क्यों दी गई, यह समझ में न आया। इस स्थान पर जाने की अनुमति न कांग्रेस के सभापति को मिली, न गांधीजी को। इस परिस्थिति में केवल निषिद्ध-प्रदेश के आसपास के स्थानों पर ही संगठित सहायता की जा सकती थी। कांग्रेस के सभापति ने क्वेटा-कष्ट-निवारक-समिति का संगठन किया, जिसकी शाखायें सिंध, पंजाब और सीमान्त-प्रदेश में स्थापित की गईं। यह समिति क्वेटा से भेजे हुए कष्ट-पीड़ितों की सहायता कर रही है। ३० जून का दिन भूकम्प-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने और भूकम्प में मरे हुओं के निमित्त प्रार्थना करने के लिए नियत हुआ। इस सम्बन्ध में सरकार ने जिस नीति का परिचय दिया वह उसकी अविश्वास और सन्देह की नीति की चरमसीमा थी। इस नीति ने कार्य-समिति को क्वेटा-कष्ट-निवारण के सम्बन्ध में १ अगस्त को निम्नलिखित प्रस्ताव पास करने पर बाध्य किया :—

"हाल ही में भूकम्प के कारण क्वेटा और बलूचिस्तान के अन्य स्थानों में हजारों आदमियों को जन-धन की जो क्षति उठानी पड़ी है, उसपर यह कार्य-समिति घोर शोक प्रकट करती है और कष्ट-पीड़ित और शोकाकुल व्यक्तियों के साथ समवेदना प्रकट करती है।

"यह कार्य-समिति चन्दा एकत्र करने और कष्ट-निवारण की व्यवस्था करने के लिए समिति बनाने के कांग्रेस के अध्यक्ष के कार्य की पुष्टि करती है। यह समिति

क्वेटा के भूकम्प के घायल अथवा पीड़ित होनेवालों की बड़ी विकट परिस्थिति में सहायता करनेवाले कार्यकर्त्ताओं को धन्यवाद देती है, और जनता ने चन्दे की अपील का जो उत्तर दिया है उसकी पहुँच स्वीकार करती है।

"क्वेटा के अधिकारियों ने अपने सीमित सामर्थ्य के द्वारा परिस्थिति का सामना करने की जो चेष्टा की उसकी पुष्टि करते हुए कार्य-समिति सरकारी और गैर-सरकारी प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के वक्तव्यों के आधार पर यह सम्मति प्रकट करती है कि यदि खुदाई का काम दो दिन वाद वन्द न करा दिया जाता और जनता-द्वारा सहायता को अस्वीकार न कर दिया जाता तो वहुत-से आदमियों को गिरे हुए मकानों के नीचे से निकाला जा सकता था।

"कार्य-समिति की राय है कि जनता-द्वारा लगाये गये निम्नलिखित आरोपों के सम्बन्ध में, जिनकी पुष्टि आंशिक रूप से सरकारी अविकारियों के वक्तव्य से होती है, जांच करने के लिए सरकार की ओर से सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों का एक कमीशन नियत किया जाय—

(१) जनता-द्वारा सहायता देने के समय सरकार ने जो यह वक्तव्य दिया था कि परिस्थिति का सामना करने योग्य उसके पास पर्याप्त साधन हैं, वह वस्तु-स्थिति-द्वारा ठीक प्रमाणित नहीं होता दिखाई देता।

(२) इस सहायता को अस्वीकार कर देने के लिए सरकार के पास कोई कारण न था।

(३) सरकार को परिस्थिति का अच्छी तरह सामना करने के लिए आस-पास के इलाकों से प्राप्त सहायता एकत्र करनी चाहिए थी।

(४) जवकि भूकम्प-पीड़ित प्रदेश के प्रत्येक यूरोपियन-निवासी पर पूरा ध्यान दिया गया, भारतीय-निवासियों के सम्वन्व में समुचित प्रवन्व नहीं किया गया और वचाव, कष्ट-निवारण और वची हुई चीजों को निकालने के मामले में भी यूरोपियनों और भारतीयों में इसी प्रकार का भेद-भाव किया गया।"

पद-ग्रहण का प्रश्न

१९३५ के मध्य में कांग्रेसवादियों को, विशेपकर उनको जो कौंसिल-प्रवेश पर अड़े हुए थे, एक और प्रश्न ने उद्विग्न कर रक्खा था; और वह था नये शासन-विधान के अन्तर्गत पद ग्रहण करने के सम्वन्व में। यह दुर्भाग्य की वात हुई कि इस अवसर पर, जवकि विल अभी पार्लमेण्ट के सामने पेश ही था, यह प्रसंग छेड़ा गया।

यह वात भी भुलाने-योग्य नहीं है कि कांग्रेस-वादियों के इस वर्ग ने अपना जो रुख दिखाया उसका उन लोगों ने जिनके हाथ में विल था, पार्लमेण्ट को यह आश्वासन दिलाने में कि ऐसे आदमी मौजूद हैं जो सुधारों को अमल में लायेंगे, पूरा उपयोग किया। वम्बई-कांग्रेस का प्रस्ताव इस मामले में विलकुल स्पष्ट था कि कांग्रेस का क्या रुख है, और आगामी-अधिवेशन तक इसके निर्णय करने का किसीको अधिकार न था। फलतः जुलाई के अन्त में वर्धा में कार्य-समिति की वैठक हुई, जिसमें तय हुआ कि इसका निर्णय कांग्रेस का खुला अधिवेशन ही कर सकता है। उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ :—

"भावी शासन-विधान के अन्तर्गत पद ग्रहण करने या न करने के सम्बन्ध में अनेक कांग्रेस-कमिटियों के प्रस्ताव पढ़ने के वाद यह कार्य-समिति यह निश्चय प्रकट करती है कि इस प्रश्न को आगामी कांग्रेस-अधिवेशन तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए। यह कार्य-समिति घोपणा करती है कि इस सम्वन्ध में किसी कांग्रेस-वादी का निजी विचार कांग्रेस का विचार न समझा जाना चाहिए।"

रियासतें और कांग्रेस

अभी विल कामन-सभा के सामने ही था कि पार्लमेण्टरी-वोर्ड नेता श्री भूला-भाई देसाई ने वकील की हैसियत से देशी-नरेशों को भावी भारत-सरकार के अन्तर्गत संघ-शासन के प्रश्न पर सलाह दी और फिर मैसोर में इस विपय पर भापण भी दिया। इन वातों को लेकर इस वर्ष के आरम्भ में देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् में हलचल मच गई। जुलाई में देशी-रियासतों की प्रजा के प्रति कांग्रेस के रुख पर विचार करने के लिए महासमिति की वैठक की मांग हुई। देशी-रियासतों की प्रजा ने अपनी मांग गांधीजी के उस भाषण के आधार पर कायम कर रक्खी थी, जो उन्होंने दूसरी गोलमेज-परिपद् के अवसर पर दिया था—"कांग्रेस ऐसे किसी शासन-विधान से सन्तुष्ट न होगी, जिसके द्वारा देशी-राज्यों की प्रजा को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न हों और वे संघ व्यवस्था-मण्डल में प्रतिनिधि न भेज सकें।"

२९, ३० और ३१ जुलाई १९३५ को वर्धा में होनेवाली कार्य-समिति की वैठक में इस विषय पर प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें निम्नलिखित निश्चित सम्मति प्रकट की गई :—

"यद्यपि भारतीय रियासतों के सम्वन्ध में कांग्रेस की नीति को प्रस्तावों-द्वारा प्रकट कर दिया गया है, फिर भी रियासतों की प्रजा-द्वारा या उसकी ओर से कांग्रेस-

नीति की अधिक स्पष्ट घोषणा की मांग आग्रह-पूर्वक पेश की जा रही है। इसलिए कार्य-समिति देशी-नरेशों और देशी-राज्यों की प्रजा के प्रति कांग्रेस की नीति के सम्बन्ध में निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित करती है—

कांग्रेस स्वीकार करती है कि भारतीय रियासतों की प्रजा को भी स्वराज्य का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश-भारत की प्रजा को है। तदनुसार कांग्रेस ने देशी-राज्यों में प्रतिनिधित्व-पूर्ण उत्तरदायी-शासन की स्थापना के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है, और न केवल देशी-नरेशों से ही अपने-अपने राज्यों में इस प्रकार की उत्तरदायी-शासन-व्यवस्था स्थापित करने और अपनी प्रजा को व्यक्तिगत, सभा आदि करने के, भाषण देने के और लेखों-द्वारा विचार प्रकट करने के नागरिकता के अधिकार देने की अपील की है, बल्कि देशी-राज्यों की प्रजा से प्रतिज्ञा की है कि पूर्ण उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति के लिए उचित और शान्तिपूर्ण साधनों से किये गये संघर्ष में उसकी सहानुभूति है। कांग्रेस अपनी उसी घोषणा और उसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। कांग्रेस समझती है कि यह स्वयं देशी-नरेशों के ही भले के लिए है, यदि वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी-शासन-प्रणाली कायम कर दें, जिससे उनकी प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों।

पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का संघर्ष जारी रखने का बोझ स्वयं देशी-राज्यों की प्रजा पर है। कांग्रेस रियासतों पर नैतिक और मैत्री-पूर्ण प्रभाव डाल सकती है और, जहां भी हो, डालने पर बाध्य है। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य कांग्रेस को प्राप्त नहीं है, यद्यपि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सारे भारतवासी, चाहे वे अंग्रेजों के अधीन हों चाहे देशी-राजाओं के और चाहे किसी और सत्ता के, एक हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

यह कहना होगा कि वाद-विवाद की गर्मागर्मी में कांग्रेस के सीमित सामर्थ्य की बात भुला दी जाती है। हमारी समझ में और किसी प्रकार की नीति अंगीकार करने से दोनों का उद्देश ही विफल हो जायगा।

आगामी शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी परिवर्तनों के विषय में सुझाया गया है कि कांग्रेस भारत-शासन-विधान के उस अंश में, जिसमें देशी रियासतों के और भारतीय-संघ के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की गई है, संशोधन कराने पर जोर दे। कांग्रेस ने एक से अधिक बार शासन-सुधार-सम्बन्धी सारी योजना को, इस व्यापक आधार पर कि यह भारतीय-जनता की इच्छा का फल-रूप नहीं है, रद कर दिया है और प्रतिपादन किया है कि शासन-व्यवस्था का निर्माण विधान-कारिणी सभा के द्वारा

हो। ऐसी दशा में कांग्रेस अब इस योजना के किसी विशेष अंश के संशोधन के लिए नहीं कह सकती। यदि वह ऐसा करेगी तो यह कांग्रेस-नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा।

साथ ही रियासतों की प्रजा को यह आश्वासन देना अनावश्यक है कि भारतीय नरेशों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस देशी रियासतों की प्रजा के हितों का बलिदान करने का अपराध कभी न करेगी। अपने जन्म से ही कांग्रेस सदा जनता के और उच्च-वर्ग के हितों में विरोध होने की अवस्था में जनता के हितों के लिए असन्दिग्ध रूप से लड़ती रही है।"

अन्त में यह निश्चय किया गया कि चूंकि १८८५ में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ था, इसलिए उसका पचासवां वर्ष उचित ढंग से मनाया जाय। इस उद्देश से कार्य-समिति ने इस अवसर के लिए कार्यक्रम तैयार करने को एक उप-समिति नियुक्त की। वर्धा की बैठक और वर्ष की समाप्ति के बीच में जो थोड़ा-सा समय रहा उसमें तीन घटनाओं को छोड़कर कोई विशेष बात न हुई। उनमें से एक घटना पण्डित जवाहरलाल की आकस्मिक रिहाई थी। वह अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक अवस्था के कारण ३ सितम्बर को अलमोड़ा-जेल से छोड़ दिये गये। उनको फौरन यूरोप को रवाना होना था और यदि वह अपनी सजा की मियाद खतम होने से पहले लौट आये तो, जैसा कि आज्ञा में कहा गया था, उन्हें फिर जेल वापस जाना पड़ेगा। दूसरी घटना गवर्नर-जनरल-द्वारा सितम्बर में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट पर सही होना था, यद्यपि बड़ी कौंसिल ने उसे स्पष्ट बहुमत-द्वारा रद कर दिया था। तीसरी महत्त्वपूर्ण या स्थान देने योग्य घटना १७ और १८ अक्तूबर १९३५ की महासमिति की बैठक थी, जो मदरास में हुई। आशंका थी कि 'पद स्वीकार करने' और 'कांग्रेस और देशी-राज्यों के प्रश्न' पर दूने वेग से आक्रमण किया जायगा। यदि हम कांग्रेस-अधिवेशन के साथ हुई बैठक को छोड़ दें, तो मदरास में महासमिति की यह पहली बैठक थी। मदरास में देशी-राज्यों के प्रश्न पर कार्य-समिति के वक्तव्य के साथ सहमति प्रकट की गई और पद स्वीकार करने के प्रश्न पर महासमिति ने यह विचार प्रकट किया कि अभी नये शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय कौंसिलों का निर्वाचन आरम्भ होने में बहुत देर है, और साथ ही इधर राजनैतिक वातावरण भी अनिश्चित है, इसलिए इस विषय पर कांग्रेस के लिए कोई निश्चय करना समयानुकूल भी नहीं होगा और राजनैतिक दृष्टि से अविवेक-पूर्ण भी होगा।

मदरास की महासमिति की बैठक के सिलसिले में एक साधारण घटना का

जिक्र करना आवश्यक है। महासमिति के बंगाल-प्रान्त के सदस्यों को सूचना दी गई कि उन्हें बैठक में भाग लेने की अनुमति न मिलेगी, क्योंकि बंगाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने अपना ५००) का चन्दा पूरा अदा नहीं किया है। कार्य-समिति ने बंगाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी की कार्य-कारिणी को एक यह भी नोटिस दिया कि कार्य-समिति ने कलकत्ता केन्द्रीय जिला-कांग्रेस-कमिटी को मानने के सम्बन्ध में जो हिदायत दी थी उसका जान-बूझकर उल्लंघन करने के लिए उसके विरुद्ध जाब्ते की कार्रवाई क्यों न की जाय, इसका वह कारण बताये।

नया शासन विधान

अब अन्त में हम इस बात का भी उल्लेख कर दें कि पार्लमेण्ट ने भारत-शासन-विधान पास कर दिया और २ जुलाई को उसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस विषय की आलोचना करके हम पुस्तक को मोटी नहीं बनाना चाहते। हां, हम कामन-सभा के एक सदस्य के भाषण का, जिसके बाद बहस लगभग समाप्त ही हो गई, उद्धरण देने के प्रलोभन को नहीं रोक सकते। ५ जून १९३५ को मेजर मिलनर ने इण्डिया-बिल पर बोलते हुए मि० चर्चिल और सर सेम्युअल होर की तुलना नाटक के नायक और उपनायक से की। उन्होंने कहा—"नायक (सर सेम्युअल होर) ने शठ उप-नायक को हरा दिया है। आज (५-६-३५) वह बिना रक्त-पात किये ही उसका काम तमाम कर देगा।" इसके बाद मेजर मिलनर ने कहा—"और तब दोनों प्रति-पक्षी बांह-में-बांह डाले रंगमंच का द्वार छोड़ते दिखाई देंगे।" वास्तव में यह नाटक १९३५ में ही नहीं, १९२० में भी रचा गया था। वैसे आम तौर से यह बात ठीक है कि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में एक ऐसा दल है, जो अनुदार-दल के नाम से पुकारा जाता है। पर असली बात यह है कि सारे दलों का लक्ष्य एक ही है; और वह यह कि एक ऐसा 'चित्र तैयार करें जो, "मैन्चेस्टर-गार्जियन' के शब्दों में, भारत को स्वराज्य प्रतीत हो और इंगलैण्ड को ब्रिटिश-राज्य। इस उद्देश्य से विभिन्न दल पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं में लड़ाई का स्वांग रचते हैं, उनमें से कुछ देने का ढोंग दिखाते हैं और बाकी प्रतिरोध करने का। इनमें से पहले प्रकार का दल भारत के नरम-दलवालों को यह कहकर राजी करता है कि परिस्थिति ऐसी ही है, जो मिले ले लो, क्योंकि दूसरा तो इतना भी नहीं देना चाहता। अधिकार-सम्पन्न दल नायक का पार्ट खेलता है, और विरोधी दल उप-नायक का। दोनों वेस्ट-मिनिस्टर की चहार-दीवारी में लड़ाई का स्वांग रचते हैं, और ज्योंही वे बाड़ा छोड़कर बाहर आते हैं, इस कृत्रिम-युद्ध को

या प्रकृत रूप देने की सफलता पर एक दूसरे को वधाई देते हैं। इन दोनों के वीच
ारत को वुद्धू वनाया जाता है।

कांग्रेस-सभापति का वढ़ता हुआ उत्तरदायित्व

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम उस उत्तरदायित्व के दिन-पर-
वढ़ते हुए भाव का जिक्र करना आवश्यक समझते हैं जिसका परिचय कांग्रेस के
ाक्ष हर साल देते आ रहे हैं। श्रीमती वेसेण्ट ने सालभर तक अपने सभानेत्री वने
की सूझ पर जोर दिया था। तवसे इस वात पर उनके उत्तराधिकारी अमल करते
रहे हैं। दो-एक अध्यक्षों को छोड़कर, जो कांग्रेस की शानदार वैठक की समाप्ति
ाद ही सार्वजनिक क्षेत्र से गायव हो गये, वाकी सवने अपना कर्तव्य वड़ी लगन और
रदायित्व के पूरे वोध के साथ पूरा किया है। इस परिपाटी के अनुरूप ही वावू
न्द्रप्रसाद ने, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता पर जिनकी कार्य-शक्ति और
-सहिष्णुता ठीक उतने ही विपरीत ढंग से काम करती है, देश का दौरा कर डाला
इस प्रकार उन्होंने देश की जनता और आन्दोलन से परिचित होने के लिए एक
मार्ग दिखाया। विहार-भूकम्प-कष्ट-निवारण के सम्वन्ध में उन्हें वहुत काम
ा है। इसके अलावा कांग्रेस के सभापति की हैसियत से उन्हें कर्त्तव्य-पालन करना
ा है। और फिर क्वेटा के भूकम्प के काम ने उनके कामों में और भी वृद्धि कर
इतने पर भी उन्होंने महाराष्ट्र, कर्नाटक, वरार, पंजाव, मध्यप्रान्त के एक भाग,
नलनाड, आंध्र और केरल का दौरा कर डाला। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ से
उनका सम्वन्ध है, और अपरिवर्तनवादी होते हुए भी निर्वाचन-सम्वन्धी हलचल में
ोंने अपनी दिलचस्पी कम नहीं होने दी है। गांधीजी राजनैतिक क्षेत्र से क्या गये,
न्द्र वावू के कन्धों पर रक्खा वोझ और भी वढ़ गया— क्योंकि, यह वात छिपाई
जा सकती कि जव तक गांधी जी मौजूद रहे कांग्रेस का भार उनके सहयोगियों
लिए हलका था। इसका यह मतलव नहीं कि उनके सहयोगियों ने कभी अपने
व्य की अवहेलना की हो; पर असली वात यह थी कि गांधीजी-जैसे व्यक्ति सार्व-
क जीवन के भारी कार्यों का वोझ अपने सहयोगियों के लिए वहुत कम छोड़ते हैं।
प्रकार कांग्रेस की अध्यक्षता ऐसी शक्ति का आसन है जिसपर घोर चिन्ताओं और
रदायित्वों का भार आ पड़ा है। हम एक कदम और भी आगे वढ़ेंगे और कहेंगे
कांग्रेस देश में सरकार के मुकावले ऐसी संस्था वन गई है जिसका अपना एक आदर्श

सरकारी योजनाओं ने होड़ लगा रक्खी है, जिसके सत्य और अहिंसा के उसूलों की सरकार की ओर से, जो भौतिक वल पर निर्भर करती है, बुराई और वदनामी की जाती है।

कांग्रेस ५० वर्षों से काम करती आ रही है और इसकी सफलता की सराहना की गई है। कुछ लोग इसे असफल वताते हैं। सफल हो या असफल, सत्याग्रह एक नई शक्ति है जो कांग्रेस की राजनीति में प्रविष्ट हो गई है। अभी इसकी परीक्षा ही ली जा रही है। पर इसे इतने दिन काम करते हो गये कि जनता का ध्यान इसकी ओर काफी आर्कापित हो चुका है। इन आदर्शों में परिवर्त्तन और साधनों में संशोधन करने का श्रेय एक व्यक्ति को है, जो यद्यपि भारत में उत्पन्न हुआ था पर अपनी आयु के रचनात्मक-भाग में देश से वाहर दक्षिण-अफ्रीका में रहता था और एक अपरिचित देश में सत्य के प्रयोग कर रहा था। लोग पूछते हैं—क्या कांग्रेस असफल सिद्ध नहीं हुई, क्या सत्याग्रह को आंका गया और वह अधूरा नहीं उतरा, और क्या गांधीजी की शक्ति समाप्त नहीं हो गई? इन सव प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर देने के वाद ही हम इस पुस्तक को समाप्त करेंगे।

: ४ :

उपसंहार

१

अन्तर्राष्ट्रीय संस्था

कांग्रेस ने पिछले ५० वर्षों में जो कुछ किया उसका संक्षिप्त विवेचन हम कर चुके। इस काल के दूसरे अर्धांश की चर्चा पहले अर्धांश की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार के साथ की गई है। इस दीर्घकाल में, विभिन्न प्रमुख व्यक्तियों ने हमारे राष्ट्र का नेतृत्व किया है। दादाभाई नौरोजी ने तीन वार कांग्रेस का सभापतित्व किया, और कांग्रेस के शव्द-कोष में 'स्वराज्य' शव्द का प्रवेश किया। प्रथम राष्ट्रपति उमेशचन्द्र वनर्जी एक वार फिर सभापति हुए। वंगाल के शेर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी को दो वार यह सम्मान प्राप्त हुआ। यही हाल धवल-वस्त्र-धारी पं० मदनमोहन मालवीय और पं० मोतीलाल नेहरू तथा सर विलियम वेडरवर्न का हुआ। वदरुद्दीन तैयवजी, रहीमतुल्ला सयानी, नवाव सैय्यद मुहम्मद वहादुर, हसन इमाम, अवुलकलाम आजाद, हकीम अजमलखां, मौ० मुहम्मदअली और डॉ० अन्सारी—कुल ५१ में ये ८ मुसलमान सभापति हुए। दादाभाई नौरोजी और फीरोजशाह मेहता उस श्रेष्ठ जाति—पारसियों—के प्रतिनिधि-स्वरूप हुए जिसने भारत की वैदिक और इस्लामिक संस्कृति में अपनी—ज़रतुश्त—संस्कृति मिलाकर उसे समृद्ध किया है। उमेशचन्द्र वनर्जी, आनन्दमोहन वसु, रमेशचन्द्र दत्त, लालमोहन घोष, भूपेन्द्रनाथ वसु, सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, अम्बिकाचरण मुजुमदार, चित्तरञ्जन दास और सुभाषचन्द्र जैसे व्यक्ति प्रदान करने के कारण वंगाल तो इस दिशा में सवसे आगे है। युक्तप्रान्त ने विशन-नारायण दर, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू और उनके सुपुत्र जवाहरलाल को दिया। राजेन्द्रवावू विहार के हैं, जहां के हसनइमाम पहले सभापतित्व कर चुके हैं। पंजाव को लाला लाजपतराय के सभापति वनने का गौरव प्राप्त है और मध्य-प्रान्त को श्री मुधोलकर के सभापतित्व का। गुजरात के गांधीजी और वल्लभभाई पटेल सभापति हुए हैं। वम्वई तो मानों इसका भण्डार ही रहा है—तैयवजी और सयानी ही नहीं, फीरोजशाह मेहता भी यहीं के थे। वाचा, गोखले और चन्दावरकर

(वम्बई के) पश्चिमी प्रान्त के थे। मदरास ने आन्ध्र के आनन्द चार्लू को और केरल-पुत्र सर शंकरन नायर को दिया और अन्त में दक्षिण के पितामह विजयराघवाचार्य तथा श्रीनिवास आयंगर को प्रदान किया जो दोनों तामिलनाड के हैं। श्रीमती वेसेण्ट और सरोजिनी नायडू ये दो स्त्रियां भी सभापति-पद को सुशोभित कर चुकी हैं। और श्री यूल, वेव, वेडरवर्न व हेनरी काटन के रूप में अंग्रेजों ने भी अपना हिस्सा बटाया है। इस विविध सूची से जाहिर है कि कांग्रेस न केवल राष्ट्रीय वल्कि सचमुच एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है।

कांग्रेस की सफलता

अब प्रश्न यह है कि क्या कांग्रेस असफल रही? इस बात से शायद ही कोई इन्कार करें कि पिछले दस वर्षों में पुरातन राजनैतिक और सांस्कृतिक विचारों के क्षेत्र में नित्य नये विचारों का जन्म होता रहा है। राजनीति सच पूछिए तो मानव-कल्याण का विज्ञान ही है। उसने केवल भारत में ही नहीं, वल्कि सारे संसार में इतना व्यापक रूप धारण कर लिया है कि उसमें सामाजिक और आर्थिक जैसी वृहत्तर समस्याओं के अध्ययन तथा हल का भी समावेश हो गया है। और यदि हम इनमें सांस्कृतिक और नैतिक विचारों को भी मिला दें तो फिर राजनीति उन्नीसवीं शताब्दी के गर्हित पद पर न रह कर उस शुद्ध और नैतिक पद पर जा पहुंचती है जिसे पहले १५ या १६ वर्षों में भारत ने प्राप्त किया है, और उसका श्रेय श्री मोहनदास करमचन्द गांधी जैसे विश्व-वन्द्य व्यक्ति को है जिसकी अभेद्यता का वर्णन प्रोफेसर गिलवर्ट मरे ने निम्नलिखित उचित और नपे-तुले शब्दों में किया है :—

"ऐसे आदमी के साथ सावधानी से पेश आओ, जिसे न तो सांसारिक वासनाओं की रत्ती-भर चिन्ता है, न आराम या प्रशंसा या पद-वृद्धि की, वल्कि जो उस काम को करने का निश्चय कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। ऐसा आदमी भयंकर और दुःखदायी शत्रु है, क्योंकि उसके शरीर पर तो तुम आसानी के साथ विजय प्राप्त कर सकते हो पर उसकी आत्मा पर इससे तुम्हारा जरा भी कब्जा नहीं होसकता।"

ऐसे ही आचार्य के नेतृत्व में कांग्रेस ने राजनीति पर सेवा-धर्म की छाप लगाने की चेष्टा की है, उच्च श्रेणियों में अधिक व्यापक संस्कृति और अधिक ऊँची देश-भक्ति की आवश्यकता पर जोर दिया है, और ग्राम-नेतृत्व स्थापित करने के लिए उद्योग किया है। वस्तुतः कांग्रेस ने एक नये धर्म को जन्म दिया है। वह है राजनीति का धर्म। यदि हम अपने धर्म से च्युत न होना चाहें तो हम किसी भी मानवी प्रश्न को धर्म की

परिधि के बाहर नहीं मान सकते। क्योंकि धर्म किसी खास सिद्धान्त या उपासना के ढंग का नाम नहीं है; बल्कि उच्चतर जीवन, बलिदान की भावना और आत्म-समर्पण की एक योजना है। और जब हम राजनीति-धर्म की बात कहते हैं तो हम वर्तमान गर्हित राजनीति को पवित्र बना देते हैं, संकुचित और भेद-पूर्ण राजनीति को व्यापक बना देते हैं, और प्रतिद्वंद्वितापूर्ण राजनीति को सहयोग-पूर्ण बना देते हैं।

इस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर हमने भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में सत्य और औचित्य का पक्ष-समर्थन किया है। जीवन में असत्य सदा से शीघ्र और सस्ती विजय प्राप्त करता आया है और पाखण्ड और छल ने विवेक और सत्य के ऊपर अक्सर विजय प्राप्त की है। यही क्यों, इतिहास में कानून और तर्क ने स्वयं जीवन तक पर विजयें प्राप्त की हैं। पर ये विजयें आंशिक और क्षणभंगुर हैं और इन्होंने विजेताओं को हमेशा करुणाजनक अवस्था में ला पटका है। बड़े पैमाने पर देखा जाय तो गत महायुद्ध के फल-स्वरूप विजेता विजितों के ऊपर अपना प्रभुत्व न जमा सके। छोटे पैमाने पर देखा जाय तो भारत पर इंग्लैण्ड की 'विजय' ने इंग्लैण्ड को स्थायी सुख प्रदान नहीं किया। विभिन्न गोलमेज-परिषदों का आयोजन करने में राजनीति-विशारदों ने जिस नीति से काम लिया उसके फल-स्वरूप वे भारत को इंग्लैण्ड-रूपी प्रासाद का झोंपड़ा बनाने के उद्देश्य में सफल न हो सके। दमन की प्रत्येक लहर ने स्वयं दमन करने-वालों के हितों को खतरे में डाला और जनता में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न कर दी। यह प्रतिरोध की भावना कभी सत्याग्रह—सविनय-अवज्ञा—के रूप में प्रकट होती है, कभी उगती और उठती हुई पीढ़ी के हाथों में अधिक कठोर और भीषण रूप धारण कर लेती है। जो यह कहते हैं कि असहयोग का कार्यक्रम असफल रहा वे अपनी इच्छा को निश्चित निर्णय के रूप में पेश करते हैं; क्योंकि दूर तक दृष्टि दौड़ाकर देखा जाय तो प्रत्येक असफलता केवल देखने में असफलता होती है, वास्तव में तो वह सफलता की दिशा में एक आगे का कदम ही है। और वास्तव में सफलता अनेक असफलताओं का अन्तिम पटाक्षेप है।

हम कांग्रेस के कार्यक्रम को इसी कसौटी पर कसते हैं। कांग्रेस के कार्यक्रम के दो पहलू हैं। उसके आक्रमणकारी पहलू को लीजिए, तो कांग्रेस ने सरकार के साथ युद्ध करने में जो ढंग अपनाया उसे कोई सभ्य सरकार बुरा नहीं कह सकती। इस युद्ध का मूलमन्त्र मन, वचन, कर्म से अहिंसाव्रत का पालन रहा है और गांधीजी को भारत का 'चीफ-कान्सटेबल' माना गया है। सरकार ने गांधीजी के सत्याग्रह को बदनाम करने की चेष्टा भले ही की हो, पर जनता के सत्य और अहिंसा-प्रेम की निन्दा

कौन कर सकता है ? यह वह युग है जिसमें राजवंश नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं, सिंहासन उलट दिये गये, और प्रतिनिधि शासन-व्यवस्थाओं को भंग होना पड़ा है। यह वह युग है जिसमें दो दलों और तीन दलोंवाली पुरानी प्रणाली राजनैतिक क्षेत्र से विदा हो गई और विरोधी-दल को निर्वाचनों के द्वारा नहीं दवाया जाता वल्कि सचमुच उसका विनाश किया जाता है। इस युग में अहिंसा की वात कहना दिल्लगी-सा प्रतीत होगा। रक्तपात-द्वारा प्राप्त की गई विजय केवल रक्तपात-द्वारा ही स्थायी रक्खी जा सकती है और उसी के द्वारा छिन भी जाती है; और जव दो देशों के वीच में हिंसा निर्णायक का स्थान ग्रहण कर लेती है, तो फिर वह दो जातियों या दो व्यक्तियों के वीच में भी अवसर मिलते ही घुस वैठती है।

रचनात्मक पहलू

अव कांग्रेस-कार्यक्रम के रचनात्मक पहलू को लीजिए। वह सरल रहा है, इतना सरल कि विश्वास न हो। हम यह वात स्वीकार करते हैं कि यह कार्यक्रम देश की उन अ-सरल श्रेणियों को पसन्द न हुआ होगा जो कस्वों और शहरों में रहती हैं, विदेशी कपड़ा पहनती हैं, विदेशी भाषायें वोलती हैं और विदेशी मालिक की चाकरी करती हैं। हमारे नगरों की मर्दुमशुमारी की जाय तो जो भेद खुलेंगे, उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। तव यह पता चलेगा कि हर तीसरा आदमी अपनी आजीविका, अपनी समृद्धि और अपनी प्रसिद्धि के लिए विदेशी शासकों की सदिच्छा पर निर्भर करता है। ये वातें तत्काल ही दिखाई नहीं पड़तीं, क्योंकि हम यह नहीं जानते कि वास्तव में हमारे मालिक कौन हैं। हम तो यही जानते हैं कि पुलिस के सिपाही से लगाकर आवकारी के दरोगा तक और वैंक के एजेण्ट से लगाकर अंग्रेज दर्जी तक, सभी हमारे मालिक हैं। पी० डब्लू० डी० का कर्मचारी, अमीन, मजिस्ट्रेट और विल वनानेवाला—ये सव ब्रिटिश-एम्पायर-लिमिटेड के अवैतनिक कर्मचारी-मात्र हैं। इस कम्पनी का स्थानिक संचालक-मण्डल भारत-सरकार है, जिसके मातहत-दफ्तर अनेक प्रान्तों में हैं। अंग्रेज सरकार सेना, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों, अदालतों, कौंसिलों, कॉलेजों, स्थानिक संस्थाओं और उपाधिधारियों के सात परिवेष्टनों से घिरी हुई है। देश की अस्सी प्रतिशत ग्रामीण आवादी अमीनों और पटवारियों के भय से सशंक रहती है, और वाकी शहरी आवादी म्युनिसिपैलिटियों, स्थानिक वोर्डों, इन्कमटैक्स-अफसरों और आवकारी-विभाग के अधिकारियों से भयभीत रहती है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक

हो गया है कि भौतिक वल के बोध से उत्पन्न हुए भय को निकाल फेंका जाय और उसका स्थान उस आशा और साहस को दिया जाय जो वास्तविक अहिंसा-प्रेम से उत्पन्न होता है। इसलिए कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम ने ऐसे-ऐसे कार्यों का रूप धारण कर लिया है जिन्हें ऐसी तीन श्रेणियों में वांटा जा सकता है जिनके द्वारा कांग्रेस-वादी जनसाधारण के सम्पर्क में आते हैं। फलतः जव हम खद्दर का जिक्र करते हैं तो हम न केवल निर्धन आदमियों के लिए सहायक-धंधा ही उत्पन्न कर देते हैं, या उनके जीवन-निर्वाह-योग्य मजदूरी की ही व्यवस्था कर देते हैं, वल्कि उन्हें अपने शरीर पर से गुलामी का चिह्न उतार फेंककर अपने भीतर आत्म-सम्मान उत्पन्न करने का अवसर देते हैं। हम गृहस्थ की पवित्रता को अक्षुण्ण रखते हैं और कारीगर को उसकी कला से प्राप्त होनेवाले उस सृजनात्मक आनन्द की अनुभूति करने का अवसर देते हैं जो सभ्यता का वास्तविक परिचायक है। जव हम लोगों से खद्दर के लिए कुछ अधिक मूल्य देने को कहते हैं, तो हम उन्हें एक राष्ट्रीय वंधे की स्वतः ही वह सहायता करने की शिक्षा देते हैं जो सरकार को प्रदान करनी चाहिए थी पर जिसे वह नहीं करती। सवसे वड़ी वात यह है कि हम अपने देशवासियों को सादगी सिखाते हैं। और रहन-सहन की सादगी के साथ ही विचारों की उच्चता, दिव्यता और आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भयता, आत्म-वोध के भाव उत्पन्न होते हैं। हमने आर्थिक क्षेत्र में खद्दर के द्वारा जो वस्तु प्राप्त करने की चेष्टा की है वही हम लोक-क्षेत्र में मद्यपान-निषेध के द्वारा और सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। जो सरकार अपने नागरिकों में मद्यपान-निषेध-विषयक संगठन पर आपत्ति करे, उसे यदि और कुछ नहीं तो वहुत क्षुद्र तो अवश्य कहना पड़ेगा। यह समस्या इतनी सरल है कि किसी प्रकार की चर्चा की आवश्यकता ही नहीं है। हमारे राष्ट्र में मुख्यतः दो महान् जातियां रहती हैं—हिन्दू और मुसलमान। इन दोनों जातियों के धर्म का आधार मदिरा-पान-निषेध पर अवस्थित है। देश में मादक-द्रव्य-निवारण-सम्वन्धी आन्दोलन इसी आधार पर चलता रहा है। पर जव कभी राष्ट्र गम्भीरता-पूर्वक इस नैतिक आन्दोलन को अपने राजनैतिक रंगमंच पर वैठा देता है और इस आन्दोलन के संगठन के लिए पिकेटिंग की ओर झुकता है, तो सरकार कांग्रेस पर इस प्रकार आ टूटती है जिस प्रकार भेड़ों पर भेड़िया आ टूटता है।

और, जव हम अस्पृश्यता-निवारण के रूप में इस मंच पर एक सामाजिक विषय का समावेश करते हैं, तव भी हमारी यही दशा होती है। प्रधान-मंत्री के निश्चय ने हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था करके 'उन्हें अलग्-अलग कर दिया,

जिन्हें भगवान् ने एकत्र किया था।' जब भारत के महान् नेता ने आमरण अनशन किया तब कहीं जाकर उस गर्हित-व्यवस्था में संशोधन हो सका और हिन्दू-जाति में व्यापक एकता स्थापित हुई।

देश को जिस समस्या का सामना करना है वह बड़ी ही जटिल है। सरकार ऐसी है जो फूट डालकर शासन करने पर तुली हुई है। नगर और देहात गांवों के विरुद्ध संगठित हैं, उच्च श्रेणियों के हित जनसाधारण के हितों से टक्कर खाते हैं, जन्म-सिद्ध सुधारों के विरुद्ध अपवित्र विरोध संगठित है, खद्दर पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है, साम्प्रदायिक समता कायम करने के मार्ग में रुकावटें मौजूद हैं, और नैतिक आचरण ऊँचा करने की चेष्टा का प्रतिरोध किया जा रहा है। इन सब बातों के द्वारा यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि स्वराज्य यदि प्राप्त होना है तो केवल अंग्रेजी शिक्षा के दीवानों, शिक्षितों के पेशे अपनानेवाले व्यक्तियों और व्यापार और उद्योग-धन्धों के नेताओं के द्वारा ही प्राप्त न होगा। हमें अपना अन्दाज और कीमत लगाने की दृष्टि में परिवर्तन करना होगा। इसके लिए गांवों में रहनेवाली जनता में आत्म-चेतनता का विकास करना पड़ेगा और उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। और यह विश्वास पत्रों में लेख देने या एक-आध व्याख्यान झाड़ देने से प्राप्त न होगा बल्कि उनकी नित्य सेवा करने से प्राप्त होगा। जहां यह विश्वास प्राप्त हुआ कि बस कांग्रेस-द्वारा आयोजित राष्ट्रोद्धार का कार्यक्रम चलने लग जायगा। उसके फलस्वरूप स्वराज्य पके हुए सेब की भांति तत्काल ही चाहे न टपक पड़े तो भी यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा कि जनता की सेवा के लिए किया गया प्रत्येक कार्य मानों स्वराज्य की नींव में अच्छी तरह और सचमुच रक्खा गया एक पत्थर है, और समाज की सामाजिक-आर्थिक रचना में से निकली यह एक-एक कमी स्वराज्य के प्रासाद की एक-एक मंजिल ऊँची करने के समतुल्य होगी। यह तरीका निस्सन्देह धीमा है, पर परिणाम निश्चित और स्थायी होगा। इस प्रकार कांग्रेस ने गांवों में अपना सन्देश ले जाकर ग्राम-नेतृत्व कायम कर दिया है।

२

कांग्रेस की नवीन नीति

कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जिस नवीन कार्य-विधि को अपनाया गया है, अब हमें उसके सम्बन्ध में कुछ कहना है। अभी इस प्रणाली का विकास हो ही रहा है, इसलिए किसी आन्दोलन का उसकी अपूर्ण और अनिश्चित दशा में अध्ययन

करना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन है—और खासकर उस व्यक्ति के लिए तो यह और भी कठिन है जो स्वयं उसकी शक्ति में असीम विश्वास रखता है और इसलिए अपने विरोधियों के उपहास का पात्र और शत्रुओं की घृणा का भाजन वन गया है। सभी महान् आन्दोलनों को इन अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ा है। जान-वूझकर हो या अविवेक के कारण हो, पर सभी महान् आन्दोलनों को शुरुआत में कृत्रिम आन्दोलनों के समान समझा जाता रहा है, जिस प्रकार कि हीरे को कारवन समझा जाता है, जिसके साथ उसकी समता रहती है। सत्याग्रह को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध समझा जाता है; पर सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध से उतना ही भिन्न है, जितनी हीरे की चमक रसायनशाला के उस काले पदार्थ से भिन्न है। नहीं, निष्क्रिय-प्रतिरोध और सत्याग्रह परस्पर-विरुद्ध गुण प्रकट करते हैं। यद्यपि सत्याग्रह का आरम्भ उसके जन्मदाता ने जान-वूझकर निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में नहीं किया था, पर गांधीजी के आन्दोलन में कूद पड़ने से पहले भी इसी प्रकार एक आन्दोलन हो चुका था, इसलिए जनता ने इस आन्दोलन को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र समझा।

हाल की राजनैतिक घटनाओं ने अव अन्त में एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दे दिया है जिसने समय-समय पर भिन्न-भिन्न नामों के साथ भिन्न-भिन्न रूप धारण किया है। निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में इस आन्दोलन में कटुता और अभिमान भरा हुआ था। इस कटुता और गर्व में शायद घृणा और हिंसा का चिह्न भी दिखाई देता था। असहयोग के रूप में यह आन्दोलन उस कुढी हुई जनता का आन्दोलन था जो अपने शासक से क्रुद्ध थी, और यद्यपि घायल करने को इच्छुक थी, पर आक्रमण करने को तैयार न थी। जव इसने सविनय-अवज्ञा का रूप धारण किया तो इसे विशेषण पर विशेष्य के समान ही जोर देने में समय लगा। 'सविनय' वाली वात को शुरू में वहुत कम समझा गया, पर धीरे-धीरे लोग इसको समझने लगे और इस प्रकार इस 'सविनय'-सम्वन्धी विचार का दूसरा कदम सत्याग्रह पर जा पहुँचा। कुछ ही दिनों वाद हमने देखा कि सत्याग्रह का आधार प्रेम और अहिंसा है। अहिंसा केवल अभावात्मक शक्ति न रही, वल्कि एक प्रवल शक्ति हो गई और उसने उस प्रेम का रूप धारण कर लिया 'जो दूसरों को तो नहीं जलाता, पर स्वयं जलकर भस्म हो जाता है।' १६२२ की फरवरी में वारडोली में गांधीजी ने पैर पीछे हटाया, और यदि हम उपरोक्त परिभाषा और आदर्श की दृष्टि से वारडोली के निश्चय को देखें तो पता लगेगा कि एक चौरी-चौरा, युक्त-प्रान्त के एक गोरखपुर नामक जिले को ही नहीं सारे देश को सजा देने के लिए पर्याप्त है। हम यह भी जान लेंगे कि सत्याग्रह भौतिक-शक्ति मात्र

न होकर ऐसी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति है जो अपनी मांगों को पूरी कराये विना नहीं मानती और जो वड़ी क्रियाशील, अग्रसर और तेजस्विनी है। लोगों को स्थिति का यह सहीपन समझने में काफी अरसा लगा कि यदि सरकार-द्वारा किया गया जालियांवाला-वाग-हत्याकाण्ड सत्याग्रह जैसे देश-व्यापी आन्दोलन उत्पन्न कर सकता है, तो जनता-द्वारा किया गया चौरी-चौरा-हत्याकाण्ड इस सत्याग्रह को रोक भी सकता है। वास्तव में सत्याग्रह मनुष्य को अवतक ज्ञात सारे सद्गुणों का समुदाय है, क्योंकि सत्य इन सद्गुणों का मुख्य स्रोत है और अहिंसा या प्रेम उसका संरक्षक-आच्छादन है। इस प्रकार देश विलकुल ही नये दृष्टि-विन्दुओं के संसार में जा कूदा जिसमें घृणा और कुत्सा, भय और कायरता, क्रोध और प्रतिहिंसा का स्थान प्रेम, साहस, धैर्य, आत्म-पीड़न और आत्म-शुद्धि ने ले लिया था; जिसमें सम्पदा सेवा के आगे सिर झुकाती है; और जिसमें शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं की जाती, वल्कि उसके विचार और भाव को अपने अनुकूल वनाया जाता है।

हमें शिक्षा दी जाती है कि भय-केन्द्र स्वयं हमी हैं और भय हमारे आस-पास घूमता रहता है। यदि हम एकवार भय और स्वार्थपरता को छोड़ दें तो हम स्वयं मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो जायें। हरेक सत्याग्रही सत्य की खोज करनेवाला है, इसलिए उसे मनुष्य का, सरकार का, समाज का, दरिद्रता का और मृत्यु का भय छोड़ देना चाहिए। असहयोग उद्देश-सिद्धि के निमित्त आत्म-नियंत्रण है, साधना है; इसलिए यह आत्म-त्याग की दीक्षा देने का साधन वन गया है। इस साधन का उपयोग उस विनम्रता की भावना के साथ, जिससे साहस प्राप्त होता है, करना होगा; न कि गर्व की भावना के साथ, जिससे भय उत्पन्न होता है। इस प्रकार आन्दोलन के कर्त्ता ने आजकल की गर्हित राजनीति को एक ही छलांग में दिव्य और आध्यात्मिक वना दिया।

हमें आन्दोलन के इन फलितार्थों पर जरा और भी अच्छी तरह विचार करना होगा। इसके द्वारा भारतीय समाज की भित्ति समझने में वड़ी आसानी होगी। वह भित्ति, जिसे एक सरल सूत्र 'अहिंसा परमो धर्मः' में और एक सीधी-सादी प्रार्थना 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' में व्यक्त किया गया है, एक ऐसी प्रवल शक्ति है जो न केवल अपने-आपको मिटा देने की क्षमता ही रखती है वल्कि हरेक को वाइवल के प्रसिद्ध उपदेश के अनुसार उनसे भी प्रेम करने को कहती है जो घृणा करते हों। 'जो तुम्हारे साथ भलाई करे, तुम उसके साथ भलाई करो', एक व्यवहारू सिद्धान्त है। जो व्यक्ति प्रेम करता हो और दयालु-हृदय हो उसके प्रति अहिंसा का आचरण करना केवल

पाशविक या नारकीय प्रवृत्तिवाला व्यक्ति न होने का दावा करना है। सत्याग्रह वशिष्ठ या जनक को पराजित करने के लिए नहीं बनाया गया है। जब लोग निराशा से विह्वल होकर पूछते हैं कि अंग्रेजों के पाशविक बल का मुकाबला अहिंसा कैसे कर सकेगी, तो हम पूछते हैं कि यदि हमारे प्रतिपक्षी पाशविक न होंगे तो क्या सत्याग्रह करना व्यर्थ और युद्ध के काम के लिए निकम्मा साबित न होगा? हमारे भीतर पहले से ही जो धारणायें घुस गई हैं उन्हींके कारण हमें इस प्रकार हताश और विफल होना पड़ता है। पश्चिम की इस शिक्षा ने कि इस जीवन-संघर्ष में जो अधिक बलशाली होता है वही जीवित रहता है और दुर्बल का विनाश अनिवार्य है, हमपर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि इसके कारण हमारी कुत्सित वासनायें उत्तेजित हो उठी हैं और हममें गर्व और उसके संगी-साथी वे दुर्गुण उत्पन्न हो गये हैं जिनसे कायरता और हिंसा की उत्पत्ति होती है।

भारतीय समाज सत्याग्रह की उस भित्ति पर खड़ा है, जो हमसे संसार त्यागने को तो नहीं कहती पर साथ ही हममें आत्म-त्याग की प्रवृत्ति जागृत करती है। जहां हमने एकबार सत्य का पीछा पकड़ा और वासनाओं को कुचला और आत्म-शुद्धि की, कि सेवा-भाव और विनम्रता की भावना अवश्यमेव उत्पन्न होगी। जहां हमने क्रोध पर विजय पाई और क्षमाशीलता से काम लिया, कि मानवी सम्बन्धों के निर्णायक का आसन अहिंसा स्वयं ही ग्रहण कर लेगी।

सब-कुछ कह चुकने के बाद भी अहिंसा के सम्बन्ध में यह संशय बाकी रह जाता है कि राजनैतिक झगड़ों का फैसला करने में इसकी कितनी उपयुक्तता या कितनी शक्ति है? इस प्रकार का संदेह करनेवालों के विरुद्ध एक तर्क यह है कि जैसी हमारी परिस्थिति है उसको देखते हुए जहां अहिंसा जीवन के सिद्धान्त-रूप से अकाट्य है तहां नीति-रूप में भी अशंकेय और असंदिग्ध है। यदि अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करने की शपथ न ली जाय और उसका यथावत् पालन न किया जाय तो भारतवासियों-जैसे विशाल विजित जन-समूह में जीवन उत्पन्न करना असम्भव हो जाय। ऐसे लोग मौजूद हैं जो यह कहेंगे कि अहिंसात्मक असहयोग असफल हुआ, पर एक ही छलांग में सफलता प्राप्त करने का, विशेषकर उस अवस्था में जब इस नवीन आन्दोलन को अपनाने में जन-समूह ने विलम्ब दिखाया है, किसीने बीड़ा भी तो नहीं उठाया। अहिंसा ही एकमात्र ऐसी स्थायी शक्ति है जो दोनों प्रतिद्वंद्वियों को शान्ति और सन्तोष प्रदान करती है, क्योंकि जहां हमने हिंसा को एकबार निर्णायक के आसन पर बैठा दिया, कि फिर इस अस्त्र का उपयोग, जैसा कि कहा जा चुका है, विजित और विजेता दोनों के द्वारा

किया जा सकता है। बस, इसके बाद हिंसा और प्रतिहिंसा का नाशक चक्र चलता ही रहता है।

३

राष्ट्र का पुरुषत्व

लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बालकों पर गांधीजी के इस स्थायी प्रभाव का क्या कारण है? उनका जन्म ऐसे युग में हुआ जिसमें राजनैतिक हलचल का ही नहीं, राजनैतिक अव्यवस्था और गोलमाल का दौरदौरा है। जैसा कि लॉवेल ने कहा है—"ऐसा प्रतीत होता है मानों ईश्वर की यही इच्छा हो कि समय-समय पर व्यक्तियों के पुरुषत्व की भांति ही राष्ट्रों के पुरुषत्व की भी परीक्षा भारी संकटों या भारी अवसरों द्वारा होती रहे। यदि पुरुषत्व मौजूद हो तो वह भारी संकट को भारी अवसर बना लेता है; और यदि पुरुषत्व मौजूद न हुआ तो भारी अवसर भारी संकट में परिवर्तित हो जाता है।" गांधीजी ने भी भारी संकट को भारी अवसर बना डाला और ऐसी नई क्रांति का श्रीगणेश कर दिया जो रक्तरंजित नहीं है, जो दूसरों को पीड़ा देने के बजाय स्वयं पीड़ा का आवाहन करती है, जो शत्रु पर विजय प्राप्त करने के स्थान पर उसका मत-परिवर्तन करने की इच्छा रखती है। गांधीजी ने बुलन्द आवाज में घोषित कर दिया है कि जनता को सविनय विद्रोह करने का अधिकार ही नहीं, यह उसका कर्तव्य भी है; पर साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि सरकार को भी इस विद्रोहाचरण के लिए लोगों को फांसी पर चढ़ाने का अधिकार है। उन्होंने केवल भारत के दासत्व को मिटा देने का बीड़ा उठाया हो, सो बात नहीं है; वास्तव में उन्होंने सारे संसार से उन सारी व्यवस्थाओं को मिटा देने का बीड़ा उठाया है, जो दासत्व का प्रतिपादन किसी भी रूप में—चाहे वह भौतिक हो, चाहे राजनैतिक या आर्थिक—करनेवाली हों। उन्होंने यह दिखा दिया है कि दूसरों को अपनी प्रजा और दास बनाना नैतिक अन्याय है, राजनैतिक भूल है, और व्यावहारिक दुर्भाग्य है। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने हमेशा जनता की शुद्ध बुद्धि को उद्बोधित किया, न कि उसके राग-द्वेषों को; उसके सद्‌असद् विवेक को उद्बोधित किया, न कि उसकी स्वार्थपरता या अज्ञान को। उनकी दृष्टि में किसी भी नैतिक बुराई का प्रभाव स्थानिक नहीं रह सकता। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा के विरोधी सिद्धान्त देश में शान्ति और समृद्धि उत्पन्न नहीं कर सकते।

अव हमें यह देखना है कि यहां पर जिन लम्बे-चौड़े सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है उनका प्रयोग हमारी दैनिक राजनीति में कैसा रहा? इन सिद्धान्तों का प्रयोग पहली बार १९१९ में अमृतसर-कांग्रेस में हुआ, जवकि गांधीजी ने आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन किया कि जनता ने चार अंग्रेजों की हत्या करके और नैशनल वैंक की इमारत को और अन्य इमारतों को जलाकर जिस हिंसात्मक मनोवृत्ति का परिचय दिया उसकी अवश्य निन्दा होनी चाहिए। कांग्रेस की विषय-समिति ने इस प्रस्ताव को रात के समय रद कर दिया और गांधीजीने घोषणा की कि मुझे कांग्रेस छोड़ने के लिए वाध्य होना पड़ेगा। साधारणत: धमकी जिस भाव में समझी जाती है उस भाव में यह धमकी न थी, वल्कि गांधीजी के उस रुख का परिचय देती थी जो उनके सिद्धान्तों के अनुसार अनिवार्य था। दूसरे दिन विषय-समिति ने प्रस्ताव स्वीकार कर तो लिया, पर संकोच-पूर्वक। वस, उसी दिन से गांधीजी ने जनता के कानों में यह डालना शुरू किया कि वास्तव में अहिंसा क्या है। कांग्रेस के नजदीक स्वराज्य का अर्थ यह था कि अंग्रेजों को देश से निकाल वाहर कर दिया जाय; पर गांधीजी ने उसे वताया कि नागरिक की हैसियत से अंग्रेज भारत में शौक से आ सकते हैं, और रह सकते है, और विदेशियों का वाल भी वांका न होना चाहिए। अव राष्ट्र को कसौटी पर कसा गया, और चौरी-चौरा में राष्ट्र पूरा न उतरा। पर तो भी कांग्रेस हताश न हुई। जव आन्दोलन वंद किया गया तो प्रभावशाली व्यक्तियों ने उच्च स्वर से विरोध किया। पर गांधीजी अचल थे। सत्याग्रही को न शत्रु का भय है, न मित्र का, न सहयोगी का ही भय है। उसे तो केवल सत्य का भय है। फलत: गांधीजी ने मानों आन्दोलन को लगभग छ: वर्ष के लिए स्थगित कर दिया। वाद को जो घटनायें हुईं वे जानी-बूझी हैं और उनसे सत्याग्रह की शक्ति अच्छी तरह प्रकट होती है। वैसे वे घटानायें पुराने कथानक की भांति या दिन के स्वप्न के जल्दी-जल्दी वदलते हुए दृष्यों की भांति प्रतीत होंगी, पर वास्तव में हैं वे सत्याग्रह की दिव्य शिक्षाओं का प्रकृत रूप मात्र।

पिछले पचास वर्षों में हमारी जो प्रगति हुई है उसका नकशा अपने उतार-चढ़ाव को स्वयं प्रकट करता है। इस प्रगति को चक्करदार रास्ते की प्रगति कहना ठीक होगा। हम घूम-फिरकर वरावर उसी कार्यक्रम पर आजाते हैं—अर्थात् १९०६ का स्वदेशी, वहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा और स्वराज्य का कार्यक्रम। इस कार्यक्रम को १९१७ में दुहराया गया, किन्तु ऊँचे अर्थात् निष्क्रिय-प्रतिरोध के दर्जे पर। १९१९–२१ में इसे फिर दुहराया गया। इस वार यह और भी ऊँचे दर्जे पर—सविनय-अवज्ञा के दर्जे पर—जा पहुँचा था। इसके वाद १९३०–३४ का आन्दोलन आया। इस वार

यह और भी ऊँचे—सत्याग्रह के—दर्जे पर आ पहुँचा। हमारी चढ़ाई एक ऐसी पहाड़ी रेल की चढ़ाई की तरह है जो तोड़-मरोड़ को तय करती हुई, कभी नीचे जाती और कभी ऊँची उठती हुई, अन्त में पूरी ऊँचाई पर जा पहुँचती है। इस चढ़ाई में कभी प्रयत्न-पूर्वक ऊपर चढ़ना पड़ता है, और कभी आसानी के साथ नीचे को जाना पड़ता है। इसी प्रकार सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान में कभी जोर-शोर से युद्ध हुआ, और बीच-बीच में कौंसिल का काम भी हाथ में लिया गया—कौंसिल का काम भी एक युद्ध ही है, पर उतना कठोर नहीं। अभी हमें अपनी चढ़ाई के अन्तिम शिखर 'स्वराज्य' तक पहुँचना है।

पर यदि लॉर्ड अर्विन की भाषा को, जो उन्होंने १९३१ में संधि से पहले इस्तेमाल की थी, व्यवहार में लाकर कहा जाय कि स्वराज्य परिणाम नहीं उपाय-मात्र है, फल नहीं प्रयत्न-मात्र है, गन्तव्य स्थान नहीं दिशा मात्र है, तो उस कारीगर से, जो अभी नींव ही को ठोक-पीटकर ठीक कर रहा है, यह पूछने का किसी को अधिकार नहीं है कि प्रासाद बनकर अभीतक तैयार क्यों नहीं हुआ ? मामूली ईंट-चूने की नींव को भी बनाकर तैयार, पक्का और ठोस होने के लिए एक या दो वर्षों के लिए छोड़ दिया जाता है; फिर स्वराज्य की नींव को तो पोख्ता होने के लिए न जाने कितने दिनों तक छोड़ देना होगा, जिससे वह अपने ऊपर बननेवाली इमारत के बोझ को सहन कर सके।

इन अनेक वर्षों में जिस प्रकार संघर्ष जारी रहा उसका वर्णन हमने कर दिया है। पर हमारा मार्ग सामने स्पष्ट है। हमें घर को हुनर और कारीगरी का केन्द्र, और ग्राम को भारत की राष्ट्रीयता का केन्द्र बना देना होगा, और इन दोनों को यथासंभव आत्म-सन्तुष्ट और आत्म-परिपूर्ण बनाना होगा। हमें अपने राष्ट्र के निर्माण में समानता को नींव बनाना होगा, स्वतन्त्रता को शिखर बनाना होगा और भ्रातृभाव को पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करनेवाले सीमेंट का रूप देना होगा। यह समानता न वह समानता होगी जिसमें भेद-भाव और फूट दिखाई पड़ती हो, और न वह समानता होगी जिसमें चारों ओर लम्बी-लम्बी घास-फूस उगी हुई होगी और छोटे-छोटे शाहबलूद के दरख्त दिखाई देते होंगे, जिसमें एक-दूसरे को दुर्बल करनेवाला द्वेष दिखाई देता होगा। पर वह समानता ऐसी होगी जिसमें नागरिकता की दृष्टि से सारी रुचियों को विकास का एकसमान अवसर दिया जायगा, जिसमें राजनैतिक दृष्टि से सारी रायों का समान-मूल्य होगा, जिसमें धार्मिक दृष्टि से सारे धार्मिक विश्वासों को समान अधिकार मिलेगा। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र मौजूद

है और 'चाहिए' और 'है' में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सामूहिक शक्ति लगी हुई है, जिससे प्रयत्न और आनन्द में और आवश्यकता और पूर्त्ति में समानता स्थापित की जा सके। संक्षेप में, हमें इस पुरातन सामाजिक ढांचे में से, उन लोगों के लाभ के लिए जो कष्ट पा रहे हैं और उनके लिए जो अज्ञानी हैं, अपने घरों के लिए अधिक प्रकाश और उन घरों में रहनेवालों के लिए अधिक आराम प्राप्त करना होगा। कांग्रेस ने सारे मानवी कर्तव्यों में से इसे प्रमुख स्थान दिया है और सारी राजनैतिक आवश्यकताओं में इसे सबसे अधिक आवश्यक माना है। इसलिए कांग्रेस ने सब उपयोग के हेतु इन दो सम्पत्तियों की गारण्टी दी है, जिनका उत्तराधिकार प्रत्येक युवक को अपने जीवन में प्राप्त होता है—अर्थात् वह परिश्रम जो उसे स्वतन्त्र बनाता है, और वह विचार जो उसे चरित्रवान् बनाता है।

इस प्रकार कांग्रेस-स्रोत, जिसका साधारण आरम्भ १८८५ में बम्बई में हुआ था, आधी शताब्दी से बहता आ रहा है। कभी यह संकीर्ण-स्रोत का रूप धारण कर लेता है, कभी विशाल नदी का। यह स्रोत कहीं जंगलों को पार करता है, कहीं पहाड़ियों और घाटियों में से होकर गुजरता है। कहीं यह एक स्थान पर एकत्र होकर शान्त और निश्चल रूप धारण कर लेता है, और कभी जोर-शोर से प्रबल वेग के साथ वह निकलता है। पर इसका आकार बढ़ता जा रहा है, और प्रतिवर्ष नित्य नये विचारों और नये आदेशों के द्वारा इसके जल में बराबर वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार यह स्रोत पूर्ण आस्था के साथ अपने उस अन्तिम लक्ष्य की प्रतीक्षा कर रहा है जब इसकी पवित्र राष्ट्रीय संस्कृति अन्त में अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व की विस्तृत और विशाल संस्कृति में जा मिलेगी।

परिशिष्ट १

'१९' का आवेदन-पत्र

[महायुद्ध के बाद के सुधारों के सम्बन्ध में शाही कौंसिल के १९ अतिरिक्त सदस्यों ने वाइसराय को जो आवेदनपत्र दिया था उसे हम नीचे देते हैं। उक्त कौंसिल के २७ गैर-सरकारी सदस्यों में से २ अवगोरों की रायें नहीं ली गई थीं, जिसके कारण सबको मालूम हैं; ३ मौजूद नहीं थे; और ३ हिन्दुस्तानियों ने उसपर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। उनके नाम नवाब सैयद नवाबअली चौधरी, मि० अब्दुर्रहीम और सरदार ब० सुन्दरसिंह मजीठिया हैं।]

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महायुद्ध के अन्त में सारे सभ्य संसार में, मुख्यतः ब्रिटिश-साम्राज्य में, जो दुनिया के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय और मनुष्यता की रक्षा के लिए कमजोर और छोटे राष्ट्रों के बचाव के इस संघर्ष में पड़ा है और अपना कीमती धन-जन लगा रहा है, शासन-सम्बन्धी आदर्श बहुत आगे बढ़ जायँगे। भारतवर्ष ने भी इस संघर्ष में भाग लिया है; इसलिए वह भी स्थितियों के सुधार के लिए जो परिवर्तन की नई भावना जागृत होगी उससे प्रभावित हुए बिना न रहेगा। इस देश में यह आशा की जा रही है कि युद्ध के बाद भारतीय शासन की समस्या को नये दृष्टिकोण से देखा जायगा। हिन्दुस्तान के लोग इंग्लैण्ड के इसलिए कृतज्ञ हैं कि हिन्दुस्तान ने अंग्रेजी शासन-काल में भौतिक साधनों में बड़ी उन्नति की है और अपने बौद्धिक और राजनैतिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया है। उसने अपने राष्ट्रीय जीवन में, जिसकी शुरुआत १८३३ के भारतीय-चार्टर-एक्ट से होती है, लगातार (हालांकि वह धीमा है) विकास किया है। १९०९ तक भारतवर्ष का शासन एक नौकरशाही-वर्ग-द्वारा चलाया जाता था जिसमें करीब-करीब सभी गैर-हिन्दुस्तानी थे और जन-साधारण के प्रति जवाबदेह न थे। १९०९ के सुधारों से प्रथम बार भारतवर्ष के राजकाजी मामलों में भारतवासियों को कुछ स्थान मिला; किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। तब भी भारतवासियों ने, उन्हें सरकार की भारतवासियों को भारतीय साम्राज्य के अन्दरूनी सलाहकारों में प्रविष्ट करने की इच्छा का सूचक समझकर, स्वीकार कर लिया था। कौंसिलों में बहस और सवाल-जवाब की अधिक सुविधायें

देकर गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या-भर बढ़ा दी गई थी। बड़ी कौंसिल में पूर्णतः सरकारी बहुमत रहा और प्रान्तीय कौंसिलों में, जिनमें गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत होने दिया गया था, बहुमत में सरकार-द्वारा नामजद सदस्य और यूरोपियन सदस्य भी शामिल थे। जिन कार्रवाइयों का अधिकतर लोगों पर असर होता, चाहे वे कानून बनाने के सम्बन्ध में होतीं चाहे कर लगाने के सम्बन्ध में, यूरोपियनों पर उनका सीधा कोई असर न होने से, उनमें यूरोपियन सदस्य स्वभावतः सरकार का ही समर्थन करते और नामजद-सदस्य भी सरकार-द्वारा नियुक्त किये जाने के कारण वही पक्ष लेने की ओर झुकते थे। पिछला अनुभव बतलाता है कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर वास्तव में यही घटित हुआ है। इसलिए प्रान्तीय-कौंसिलों के गैर-सरकारी बहुमत बहुत ही धोखे-भरे साबित हुए हैं। उनसे जन-पक्ष के प्रतिनिधियों के हाथ में कोई वास्तविक शक्ति नहीं आई है। वर्तमान समय में बड़ी कौंसिल और प्रान्तीय-कौंसिलें केवल सलाह देनेवाले मण्डलों के सिवा और कुछ नहीं है। उन्हें ऐसा कोई हक हासिल नहीं है जिससे केन्द्रीय और प्रान्तीय-शासन पर उनका कोई वास्तविक नियंत्रण हो। जनता और जनता के प्रतिनिधि व्यावहारिक रूप में देश के शासन से इतने कम सम्बन्धित हैं जितने वे सुधारों से पहले थे। केवल कार्य-कारिणी में कुछ हिन्दुस्तानी सदस्य रक्खे जाते हैं; किन्तु वे भी पूर्णतः सरकार-द्वारा ही नामजद किये जाते हैं। जनता का उनके चुनाव में कोई मत नहीं होता।

१९०९ के सुधारों को देने में सरकार की दृष्टि में जो उद्देश था वह (१–४–१९०९ के) 'इण्डियन कौंसिल्स बिल' के दूसरे वाचन के समय कामन-सभा में प्रधान-मंत्री द्वारा दी हुई वक्तृता से व्यक्त होता है। उन्होंने कहा था कि वर्तमान स्थितियों में हिन्दुस्तानियों को यह महसूस होने देना अत्यन्त वाञ्छनीय है कि ये कौंसिलें महज ऐसे यंत्र नहीं हैं जिनके तार अप्रकट रूप से सरकारी शासकों-द्वारा खींचे जाते हों। परन्तु हम विनम्र भाव से कहते हैं कि यह उद्देश पूरा नहीं हुआ है। कौंसिलों और कार्य-कारिणी की रचना के इस प्रश्न के अलावा भी लोगों को खास-खास भारी कानूनी बाधायें भुगतनी पड़ रही हैं जो उनकी शक्तियों को सार्थक बनाने के बजाय व्यर्थ कर देती हैं और उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान को निश्चत रूप से आघात पहुँचाती हैं। शस्त्र-कानून जो यूरोपियनों और अधगोरों पर लागू नहीं होता, केवल इस देश के निवासियों पर ही लागू होता है। वे स्वयंसेवक-दलों का संगठन नहीं कर सकते, स्वयंसेवक-दलों में शामिल नहीं हो सकते, और वे फौज के कमीशन-प्राप्त पदों पर भी नहीं जा सकते। ये कानूनी बाधायें हिन्दुस्तानियों के लिए हैं जो दुःखदाई और भेदभाव-पूर्ण हैं। यदि

वे केवल रुकावट ही होतीं तो भी कम बुराई न थी। शस्त्र रखने और उन्हें प्रयोग में लाने की इन रुकावटों और मनाइयों ने तो हिन्दुस्तान के लोगों को नामर्द बना दिया है। उनपर कभी भी भारी खतरा आ सकता है। हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों की स्थिति वास्तव में यह है कि देश के शासन में उनका कोई असली भाग नहीं है। उन्हें ऐसी भारी-भारी और दुखदायी कानूनी-बाधाओं के नीचे रक्खा गया है जिनसे साम्राज्य के दूसरे सदस्य बरी हैं। उन्होंने हमें बिलकुल बेबसी की हालत में ला खड़ा किया है। इसके सिवा शर्तबन्दी-कुली-प्रथा से दूसरे अंग्रेजी उपनिवेशों और बाहरी देशों का यह खयाल होता है कि सारे भारतवासी शर्त-बन्द-कुलियों जैसे ही हैं। वे गुलामों की तरह हिकारत की नजर से देखे जाते हैं। मौजूदा हालतें हिन्दुस्तानियों को अनुभव कराती हैं कि यद्यपि वे कहने भर को बादशाह की समान-प्रजा हैं, किन्तु वास्तव में साम्राज्य में उनका रुतबा बहुत छोटा है। दूसरी एशियाई जातियां भी अधिक बुरा नहीं तो ऐसा ही खयाल भारतवर्ष के और साम्राज्य में उसके दर्जे के सम्बन्ध में रखती हैं। भारतवासियों की यह हीन स्थिति यों भी उनको जलील करनेवाली है; परन्तु यह भारतीय युवकों को तो असह्य है जिनकी दृष्टि शिक्षा और विदेश-भ्रमण से जहां, वे स्वतन्त्र जाति से मिले हैं, विशाल हो गई है। इन कष्टों और बाधाओं के होते हुए लोगों को जिस चीज ने अबतक सम्हाल रक्खा है वह है वह आशा और वह विश्वास, जिसका संचार हमारे सम्राटों और ऊँचे दर्जे के अंग्रेज राजनीतिज्ञों-द्वारा समय-समय पर दिये गये न्यायपूर्ण और समान-व्यवहार के वादों और आश्वासनों से हुआ है। इस नाजुक हालत में, जिसमें हम अब गुजर रहे हैं, हिन्दुस्तानी लोगों ने अपने और सरकार के बीच के घरेलू मतभेदों को भुला दिया है और वफादारी के साथ साम्राज्य का साथ दिया। हिन्दुस्तानी सिपाही यूरोप के रण-क्षेत्रों में जाने को उत्सुक थे—किराये की फौजों की तरह से नहीं बल्कि अंग्रेजी साम्राज्य के, जिसे उनकी सेवाओं की आवश्यकता थी, स्वतंत्र-नागरिकों की हैसियत से। भारतीयों का शिक्षित-समुदाय भी चाहता था कि इस जरूरत के वक्त में इंग्लैण्ड का साथ दिया जाय। हिन्दुस्तान में, अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी फौजों के करीब-करीब खाली हो जाने की हालत में भी शान्ति बनी रही। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री ने, हिन्दुस्तानियों ने महायुद्ध में जो भाग लिया उसके सम्बन्ध में इंग्लैण्ड-वासियों के विचार प्रकट करते हुए, कहा था कि 'हिन्दुस्तानी एक संयुक्त स्वार्थ और भविष्य के संयुक्त और समान रक्षक हैं।' हिन्दुस्तान अपनी वफादारी के लिए कोई पुरस्कार नहीं मांगता, किन्तु यह आशा करने का हक रखता है कि सरकार में हमारे प्रति जो विश्वास

की कमी है, जिसके कारण हम वर्तमान स्थिति में हैं, वह भूतकाल की चीज हो जाय और हिन्दुस्तान की स्थिति एक मातहत की-सी न रहे वल्कि मित्र की-सी हो जाय। इससे हिन्दुस्तानी लोगों को विश्वास हो जायगा कि इंग्लैण्ड ब्रिटिश-छत्र-छाया में स्वराज्य प्राप्त करने में हमारा सहायक होने के लिए तैयार और इच्छुक है। वह इस प्रकार अपने उस उदार-कार्य को पूरा करना चाहता है, जिसका जिम्मा उसने अपने ऊपर ले लिया है और जिसका इजहार वह अपने शासकों और राजनीतिज्ञों-द्वारा इतनी वार कर चुका है। हम जो-कुछ चाहते हैं वह केवल अच्छा शासन, योग्यतापूर्ण प्रवन्ध ही नहीं है; हम तो ऐसी सरकार चाहते हैं जो लोगों के प्रति उत्तरदायी होने के कारण उन्हें स्वीकार भी हो सके। इतना होने पर ही हिन्दुस्तान समझ सकता है कि अंग्रेजों का दृष्टिकोण वदला है।

यदि युद्ध के वाद भी हिन्दुस्तान की स्थिति वास्तव में वही रहे जो पहले थी, उसमें ठोस परिवर्तन कुछ भी न हो, तो उससे देश में निस्सन्देह वड़ी निराशा और वेइतमिनानी पैदा होगी; और दोनों के इस सम्मिलित संकट में भाग लेने से जो लाभ-दायक असर हुआ है वह तुरन्त गायव हो जायगा। उसके पीछे निराशा में परिणत आशाओं की दुःखद स्मृति-भर रह जायगी। हमें विश्वास है कि सरकार भी इस स्थिति को अनुभव कर रही है और देश के शासन में सुवार करने के उपाय सोच रही है। हम अनुभव करते हैं कि हम इस अवसर पर आदर-पूर्वक सरकार को यह सुझावें कि ये सुधार किन दिशाओं में हों। हमारी राय में उन्हें इस विषय की तह तक जाना चाहिए और उनसे देश के शासन में लोगों को सच्चा और वास्तविक हिस्सा मिलना चाहिए। शस्त्र रखने और फौज में कमीशन मिलने के सम्वन्ध में उनके सामने जो सन्तापदायी कानूनी वाधायें हैं वे भी हटा लेनी चाहिएँ, क्योंकि उनसे तो लोगों में अविश्वास प्रकट होता है और वे उन्हें हीन और असहाय अवस्था में भी वना रखती हैं। इस खयाल से हम नीचे लिखी तजवीजों को गौर करने और मंजूर करने के लिए पेश करते हैं:—

१. प्रान्तीय और केन्द्रीय सभी कार्यकारिणियों में आधे सदस्य हिन्दुस्तानी हों; कार्यकारिणी में जो यूरोपियन हों वे जहांतक हो वहांतक इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन की शिक्षा पाये हुए लोगों में से नामजद किये जायँ, ताकि हिंदुस्तान को वाहरी दुनिया के विशाल दृष्टिकोण और अनुभव का लाभ मिल सके। यह विलकुल आवश्यक नहीं है कि कार्य-कारिणी के सदस्य, चाहे वे हिन्दुस्तानी हों या अंग्रेज, अमली शासन का अनुभव रक्खें; क्योंकि, जैसा कि इंग्लैण्ड के मंत्रियों के सम्वन्ध में होता है, उन्हें

सभी विभागों के स्थायी अफसरों की सहायता सदा प्राप्त हो सकेगी। हिन्दुस्तानियों के विषय में तो हम साहस-पूर्वक कह सकते हैं कि उनमें से ऐसे योग्य आदमी काफी संख्या में और हर वक्त मिल सकते हैं जोकि कार्यकारिणी के सदस्यों के पद बड़ी अच्छी तरह ले सकते हैं। इस दिशा में हमने देखा है कि सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, सर अलीइमाम, स्व० कुंवर कृष्णस्वामी ऐयर, सर शम्सुल्हुदा और सर शंकरन् नायर जैसे लोगों ने अपने कार्यों का सम्पादन करने में अपनी शासन-सम्बन्धी उच्च योग्यता का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त सभी लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि भिन्न-भिन्न देशी राज्यों के वर्तमान शासकों के अतिरिक्त भी, देशी राज्यों ने, जिनमें हिन्दुस्तानियों को अवसर मिला है, सर सालार जंग, सर टी० माधवराव, सर शेषाद्रि ऐयर और दी० व० रघुनाथराव जैसे प्रख्यात शासक उत्पन्न किये हैं। उच्च कार्यकारिणी के ३ सदस्यों के सरकारी नौकरों में से चुने जाने के वर्तमान नियम को, तथा प्रान्तीय कौंसिल-सम्बन्धी ऐसे दूसरे नियमों को तोड़ देना चाहिए। कार्यकारिणी के हिन्दुस्तानी सदस्यों के चुनाव में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के मत भी लेने चाहिएँ और उसके लिए निर्वाचन का कोई सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिए।

२. सभी भारतीय कौंसिलों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का सच्चा बहुमत होना चाहिए। हमें विश्वास है कि ये प्रतिनिधि भारतीय जन-साधारण और किसानों के हितों की रक्षा करेंगे, क्योंकि वे किसी भी यूरोपियन अफसर की अपेक्षा, जो उनसे कितनी ही सहानुभूति रखता हो, उनके अधिक सम्पर्क में आते हैं। भिन्न-भिन्न कौंसिलों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम-लीग की कार्रवाइयां इस बात का काफी सबूत देती हैं कि हिन्दुस्तान का शिक्षित-वर्ग हिन्दुस्तानी जन-साधारण की भलाई का इच्छुक है और वही उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं से परिचित है। मत देने का अधिकार सीधा लोगों को मिल जाना चाहिए। मुसलमान या हिन्दू जहां अल्पसंख्यक हों वहां उन्हें उनकी संख्या-शक्ति और स्थिति का खयाल करके उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना चाहिए।

३. बड़ी कौंसिल के सदस्यों की पूर्ण संख्या १५० से कम, प्रान्तीय कौंसिलों में बड़े प्रान्तों की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या १०० से कम और छोटे प्रान्तों की कौंसिलों के सदस्यों की ६० से ७५ तक से कम न होनी चाहिए।

४. भारतवर्ष को आर्थिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए और बजट कानून के रूप में पास होना चाहिए।

५. शाही कौंसिल को भारतीय-शासन-सम्बन्धी सभी मामलों में कानून बनाने,

विचार करने और प्रस्ताव पास करने का अधिकार होना चाहिए। प्रान्तीय-शासन के लिए प्रान्तीय-कौंसिलों को भी वैसे ही अधिकार होने चाहिएँ। केवल सेना-सम्बन्धी मामलों, वैदेशिक सम्बन्धों के, युद्ध की घोषणा करने के, समझौता करने के और व्यापारिक सन्धियों के सिवा अन्य सन्धियां करने के अधिकार भारतीय सरकार को न दिये जायँ। संरक्षण के तौर पर कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल को और कौंसिल-सहित गवर्नरों को 'वीटो' करने का अधिकार हो, किन्तु उसका उपयोग निश्चित शर्तों और हदों के भीतर ही किया जाय।

६. भारत-मंत्री की कौंसिल तोड़ दी जाय। भारत-मंत्री की स्थिति भारत-सरकार से सम्बन्ध रखने में, जहांतक हो, वैसी ही हो जैसी उपनिवेशों के सम्बन्ध में उपनिवेशों के मंत्री की होती है। भारत-मंत्री के सहायक दो स्थायी उपमंत्री हों, जिनमें से एक हिन्दुस्तानी हो। मंत्री और दोनों उप-मंत्रियों के वेतन इंग्लैण्ड के खजाने से दिये जायँ।

७. *साम्राज्य-संघ की जो भी कोई योजना बनाई जाय, उसमें भारतवर्ष* को वही स्थान प्राप्त हो जो अपना शासन स्वयं करनेवाले दूसरे उपनिवेशों को प्राप्त है; और वह उसके लिए अपने प्रतिनिधि भी स्वयं चुन सके।

८. प्रान्तीय सरकारों को, जैसी २५ अगस्त १९११ के भारत-सरकार के खरीते में वर्णित है वैसी स्वतन्त्रता प्रान्तीय प्रबन्ध में दे दी जाय।

९. संयुक्त-प्रान्त तथा इतने बड़े-बड़े अन्य प्रान्तों के गवर्नर ब्रिटेन से लाये जायँ और उनकी कार्यकारिणी कौंसिलें हों।

१०. स्थानीय स्वराज्य तो पूरा अभी दे देना चाहिए।

११. शस्त्र रखने का अधिकार हिन्दुस्तानियों को उन्हीं शर्तों पर दे देना चाहिए जिन शर्तों पर यूरोपियनों को दिया हुआ है।

१२. हिन्दुस्तान में जो संगठित प्रादेशिक सेना (Territorial Army) है उसमें स्वयंसेवकों और सिपाहियों के रूप में भर्ती होने की हिन्दुस्तानियों को छूट होनी चाहिए।

१३. जिन शर्तों पर फौज में यूरोपियनों को कमीशन (ऊँची अफसरी) मिलती है उन्हीं पर हिन्दुस्तानी नौजवानों को भी मिलनी चाहिए।

मणिचन्द्र नन्दी, कासिमबाजार	इब्राहीम रहीमतुल्ला
डी० ई० वाचा	वी० नरसिंहेश्वर शर्म्मा
भूपेन्द्रनाथ वसु	मीर असदअली

विष्णुदत्त शुक्ल
मदनमोहन मालवीय
के० वी० रंगस्वामी आयंगर
मजहरुल हक
वी० एस० श्रीनिवासन्
तेजवहादुर सप्रू
कामिनीकुमारी चन्दा
कृष्णसहाय
आर० एन० भंजदेव, कनिक्का
एम० वी० दादाभाई
सीतानाथ राय
मुहम्मद अली मुहम्मद
एम० ए० जिन्नाह

परिशिष्ट २

कांग्रेस-लीग-योजना

प्रस्ताव

"(क) इस वात का ध्यान रखते हुए कि भारतवर्ष की वड़ी-वड़ी जातियां प्राचीन सभ्यता की उत्तराधिकारिणी हैं, वे शासन के काम में वड़ी योग्यता प्रकट कर चुकी हैं, और अंग्रेजी शासन की एक शताब्दी के भीतर उन्होंने शिक्षा में उन्नति और सार्वजनिक कामों में रुचि प्रकट की है, और साथ ही इस वात का ध्यान रखते हुए कि वर्तमान शासन-पद्धति प्रजा की उचित आकांक्षाओं को सन्तुष्ट नहीं करती और वर्तमान अवस्था और आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नहीं है, कांग्रेस की राय है कि अव वह समय आ गया है जवकि श्रीमान् सम्राट् इस प्रकार का घोषणा-पत्र निकालने की कृपा करें कि अंग्रेजी-शासन-नीति का यह उद्देश और लक्ष्य है कि वह शीघ्र ही हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्रदान करे।

(ख) यह कांग्रेस (सरकार से) मतालवा करती है कि महासमिति ने भारतीय मुस्लिम-लीग-द्वारा नियुक्त सुधार-समिति की सहयोगिता से शासन-सुधार की जो योजना तैयार की है (जोकि नीचे दी जाती है) उसको मंजूर कर स्वराज्य की ओर एक दृढ़ कदम वढ़ाया जाय।

(ग) साम्राज्य के पुनस्संगठन में भारतवर्ष पराधीनता की अवस्था से ऊपर उठाया जाकर आत्म-शासित उपनिवेशों की भांति साम्राज्य के कामों में वरावर का हिस्सेदार वनाया जाय।"

सुधार-योजना

१—प्रान्तीय कौंसिलें

१. प्रान्तीय कौंसिलों में चार-पंचमांश निर्वाचित और एक-पंचमांश नामजद-सदस्य रहेंगे।

२. उनके सदस्यों की संख्या वड़े प्रान्तों में १२५ और छोटे प्रान्तों में ५० से ५७ तक से कम न होगी।

३. कौंसिलों के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से लोगों के द्वारा ही चुने जावें और मताधिकार जहांतक हो सके विस्तृत हो।

४. महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का, निर्वाचन के द्वारा, यथेष्ट प्रवन्ध होना चाहिए और प्रान्तीय कौंसिलों के लिए मुसलमानों का प्रतिनिधित्व विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा नीचे लिखे अनुपात में होना चाहिए :—

पंजाव	निर्वाचित	भारतीय	सदस्यों के	५०	प्रतिशत
संयुक्तप्रान्त	,,	,,	,,	३०	,,
वंगाल	,,	,,	,,	४०	,,
विहार	,,	,,	,,	२५	,,
मध्यप्रदेश	,,	,,	,,	१५	,,
मदरास	,,	,,	,,	१५	,,
वम्वई	,,	,,	,,	एक-तृतीयांश	

किन्तु शर्त यह है कि सिवा उन निर्वाचन-क्षेत्रों के जो विशेष स्वार्थों के प्रतिनिधित्व के लिए वनाये गये हों, कोई भी मुसलमान, भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के लिए, किसी अन्य निर्वाचन में शरीक न हो सकेगा।

यह भी शर्त है कि किसी गैर-सरकारी सदस्य के द्वारा पेश किये गये किसी ऐसे विल या उसकी किसी धारा या प्रस्ताव के सम्वन्ध में, जिसका एक या दूसरी जाति से सम्वन्ध हो, कोई कार्रवाई न की जायगी, यदि उस जाति के उस विशेष भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के तीन-चतुर्थांश सदस्य उस विल या उसकी धारा या प्रस्ताव का विरोध करते हों। वह विल या उसकी धारा, या (वह) प्रस्ताव किसी विशेष जाति

से सम्बन्ध रखता है या नहीं—इसका निर्णय उस कौंसिल के उसी जाति वाले सदस्य करेंगे।

५. प्रान्त का मुख्य शासक प्रान्तीय कौंसिल का सभापति न हुआ करे, किन्तु कौंसिल को ही अपना सभापति चुनने का अधिकार होना चाहिए।

६. अतिरिक्त प्रश्न (किसी मूल प्रश्न के उत्तर से उत्पन्न होनेवाले तात्कालिक प्रश्न) पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्य को ही न होना चाहिए। किसी भी सदस्य को यह (अतिरिक्त प्रश्न पूछने का) अधिकार होना चाहिए।

७. (क) तटकर, डाक, तार, टकसाल, नमक, अफीम, रेल, स्थल और जल-सेना तथा देशी रियासतों से सरकार को मिलनेवाले करके अतिरिक्त अन्य सब करों की आय प्रान्त की होनी चाहिए।

(ख) (भारतीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच) कर की मदों का बटवारा न होना चाहिए। प्रान्तीय-सरकारों से भारत-सरकार को एक निश्चित रकम मिलनी चाहिए। हां, विशेष और अनपेक्षित परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर, यदि आवश्यकता हो तो इस रकम में कमी-बेशी की जा सकेगी।

(ग) प्रान्त की भीतरी व्यवस्था के सम्बन्ध में—जिसमें ऋण लेना, कर लगाना या उसमें कमी-बेशी करना और आय-व्यय के चिट्ठे (बजट) पर मत देना शामिल है—कार्रवाई करने का पूरा अधिकार प्रान्तीय कौंसिल को होना चाहिए। खर्च की सब मदों का ब्योरा और कर उगाने के लिए सोचे गये उपाय बिलों में लिख दिये जाने चाहिएँ और इन बिलों को स्वीकृति के लिए प्रान्तीय कौंसिल में पेश करना चाहिए।

(घ) प्रान्तीय-सरकारों के अधिकार-क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव आवें उनपर इस सम्बन्ध में प्रान्तीय कौंसिल ने ही जो नियम बनाये हों उनके अनुसार बहस होने की इजाजत होनी चाहिए।

(ङ) प्रान्तीय-कौंसिल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-द्वारा रद कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य न होगा। लेकिन (कौंसिल-सहित गवर्नर-द्वारा) रद किया गया

प्रस्ताव भी यदि कम-से-कम एक वर्ष के वाद फिर (प्रान्तीय) कौंसिल में स्वीकृत हो जाय तो उसे (सरकार के लिए) कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

(च) कौंसिल के उपस्थित सदस्यों का कम-से-कम आठवां हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए कौंसिल की वैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

८. कौंसिल के कुल सदस्यों के कम-से-कम आठवें भाग के प्रार्थना करने पर कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

९. धन-सम्वन्धी विल को छोड़कर अन्य विल कौंसिल के द्वारा ही वनाये गये नियमों के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

१०. प्रान्तीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत विलों के कानून होने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक होगी, पर गवर्नर-जनरल (उन्हें) रद कर सकेगा।

११. सदस्यों का कार्य-काल पांच वर्षों का होगा।

२—प्रान्तीय सरकार

१. प्रत्येक प्रान्त का मुख्य शासक एक गवर्नर होगा और वह साधारण तथा इंडियन सिविल सर्विस या अन्य स्थायी नौकरियों में से न लिया जायगा।

२. प्रत्येक प्रांत में एक कार्य-कारिणी होगी जो गवर्नर के साथ, उस प्रान्त का शासक-मण्डल होगी।

३. साधारण तथा 'सिविल सर्विस' के लोग कार्यकारिणी में नियुक्त न किये जायँगे।

४. कार्यकारिणी के कम-से-कम आधे सदस्य हिन्दुस्तानी होंगे और उनका निर्वाचन प्रान्तीय-कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होगा।

५. सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्षों का होगा।

३—भारतीय (वड़ी) कौंसिल

१. भारतीय कौंसिल के सदस्यों की संख्या १५० होगी।

२. उसके चार-पंचमांश सदस्य निर्वाचित होंगे।

३. प्रान्तीय कौंसिलों के लिए मुसलमानों के निर्वाचन-संघ जिस क्रम से बने हैं उसीके अनुसार भारतीय कौंसिल के लिए मताधिकार का क्षेत्र जहांतक हो विस्तृत कर दिया जाय, और भारतीय कौंसिल के लिए सदस्य चुनने का अधिकार प्रान्तीय कौंसिलों के निर्वाचित सदस्यों को भी होना चाहिए।

४. निर्वाचित भारतीय सदस्यों में से एक-तृतीयांश मुसलमान हों और उनका निर्वाचन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा हो। उनकी संख्या का अनुपात (यथासंभव) वही हो जो प्रान्तीय कौंसिलों में अलग मुस्लिम-निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा रक्खा गया है (भाग १ धारा ४ की व्यवस्था देखिए)।

५. कौंसिल का सभापति कौंसिल-द्वारा ही चुना जायगा।

६. अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्यों को ही नहीं रहेगा, बल्कि किसी भी सदस्य को उसे पूछने का अधिकार होगा।

७. सदस्यों के कम-से-कम आठवें हिस्से के कहने से कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

८. धन-सम्बन्धी बिलों को छोड़ कर अन्य बिल कौंसिल-द्वारा ही बनाये गये नियमों के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

९. (भारतीय) कौंसिल द्वारा स्वीकृत बिलों के कानून बनने के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक होगी।

१०. आमदनी के जरिये और खर्च की मदों से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त आर्थिक प्रस्तावों का समावेश बिलों के भीतर हो जाना चाहिए और इस प्रकार का प्रत्येक बिल और सारा बजट भारतीय कौंसिल की मंजूरी के लिए उसके सामने पेश किया जाना चाहिए।

११. सदस्यों का कार्य-काल पांच वर्षों का होगा।

१२. नीचे लिखे विषयों पर एकमात्र भारतीय कौंसिल का अधिकार होगा :—

(क) जिन विषयों के सम्बन्ध में समूचे भारतवर्ष के लिए एक ही प्रकार का कानून बनाना आवश्यक हो।

(ख) ऐसे प्रान्तीय कानून जिनका सम्बन्ध प्रान्तों के पारस्परिक आर्थिक व्यवहार से हो।

(ग) देशी-राज्यों से मिलनेवाले कर को छोड़कर वे सब विषय जो केवल (अखिल) भारतीय कर से सम्बन्ध रखते हैं।

(घ) वे प्रश्न जो केवल समस्त देश-सम्बन्धी व्यय से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु देश के लिए सैनिक व्यय के सम्बन्ध में कौंसिल-द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल पर बाध्य न होंगे।

(ङ) 'टैरिफ' और तटकर में परिवर्तन करने, किसी भी प्रकार का 'सेस' लगाने, उसमें परिवर्तन करने या उसे उठा देने, चलन और बैंकों की प्रचलित प्रणाली में परिवर्तन करने और देश के किसी या सब सहायता पाने योग्य और नये उद्योग धन्धों को (राजकीय) सहायता अथवा 'बाउण्टी' देने का अधिकार।

(च) देश-भर के शासन से सम्बन्ध रखनेवाले सब विषयों पर प्रस्ताव।

१३. (भारतीय) कौंसिल-द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद न कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य होगा; लेकिन यदि वह (कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद किया हुआ) प्रस्ताव कम-से-कम एक वर्ष के बाद फिर कौंसिल-द्वारा स्वीकृत हो जाय तो (सरकार के लिए) उसे कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

१४. उपस्थित सदस्यों का कम-से-कम आठवां हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए (भारतीय कौंसिल की) बैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

१५. यदि सम्राट्, प्रान्तीय अथवा भारतीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत बिल को रद करने के सम्बन्ध में अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहें तो (उन्हें) उस बिल के पास होने की तारीख से बारह महीनों के भीतर ही उस (अधिकार) का प्रयोग करना चाहिए, और जिस दिन उस बिल के इस प्रकार रद किये जाने की सूचना उससे सम्बन्ध रखनेवाली कौंसिल को दी जायगी उस दिन से वह बिल रद हो जायगा।

१६. भारतीय कौंसिल को भारत-सरकार के सेना-सम्बन्धी विषयों और भारतवर्ष के वैदेशिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में—जिसमें युद्ध छेड़ना, संधि करना और (किसी देश के साथ) सुलह करना शामिल है—हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहेगा।

४—भारत सरकार

१. भारतीय शासन का मुख्याधिष्ठाता भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल होगा।

२. उसकी एक कार्य-कारिणी होगी, जिसके आधे सदस्य भारतीय होंगे।

३. (कार्यकारिणी के) भारतीय सदस्य भारतीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जायँगे।

४. 'इण्डियन सिविल सर्विस' के लोग आम तौर पर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य नहीं बनाये जायँगे।

५. 'इम्पीरियल सिविल सर्विस' में कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार इस (नई) व्यवस्था के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार को होगा। इसमें वर्तमान कर्मचारियों के हित का यथेष्ट ध्यान रक्खा जायगा और भारतीय कौंसिलों-द्वारा बनाये गये नियमों की पूरी पाबन्दी की जायगी।

६. भारत-सरकार साधारणतया किसी प्रान्त के स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप न करेगी, और जो अधिकार स्पष्ट रूप से प्रान्तीय-सरकार को न दिये गये होंगे वे भारत सरकार के समझे जायँगे। प्रान्तीय-सरकारों पर भारत-सरकार का अधिकार साधारणतया निरीक्षण आदि के कार्यों तक सीमित रहेगा।

७. कानून और शासन-सम्बन्धी विषयों में इस (नई) योजना के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार, भारत-मंत्री से, यथा-सम्भव स्वतन्त्र रहेगी।

८. भारत-सरकार के हिसाब की स्वतंत्र जांच की प्रणाली चलाई जानी चाहिए।

५—कौंसिल-सहित भारत-मंत्री

१. भारत-मंत्री की कौंसिल तोड़ दी जानी चाहिए।

२. भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश-कोष से दिया जाना चाहिए।

३. भारतीय-शासन के सम्बन्ध में भारत-मंत्री की स्थिति यथासम्भव वही होनी चाहिए जो स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों के शासन के सम्बन्ध में उपनिवेश-मंत्री की है।

४. भारत-मंत्री की सहायता के लिए दो स्थायी 'अण्डर-सेक्रेटरी' होने चाहिएँ, जिनमें से एक हमेशा हिन्दुस्तानी ही होना चाहिए।

६—भारतवर्ष और साम्राज्य

१. साम्राज्य-सम्बन्धी मामलों का फैसला करने या उनपर नियन्त्रण रखने के

लिए जो कौंसिल या दूसरी संस्था वनाई या संयोजित की जाय उसमें उपनिवेशों के ही समान भारतवर्ष के भी पर्याप्त प्रतिनिधि होने चाहिएँ और इन (भारतीय प्रतिनिधियों) के अधिकार भी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के वरावर ही होने चाहिएँ।

२. नागरिकता के पद और अधिकारों के सम्बन्ध में समस्त साम्राज्य में भारतीयों का दर्जा सम्राट् की अन्य प्रजा की वरावरी का होना चाहिए।

७---सेना-सम्बन्धी तथा अन्य विषय

१. स्थल और जल-सेना की 'कमीशण्ड' और 'नॉन-कमीशण्ड' दोनों ही प्रकार की नौकरियां भारतवासियों के लिए खुली रहनी चाहिएँ और उनके लिए चुनाव करने व शिक्षा देने का यथेष्ट प्रवन्ध भारतवर्ष में कर दिया जाना चाहिए।

२. भारतवासियों को (सैनिक) स्वयंसेवक वनाने का अधिकार मिलना चाहिए।

३. भारतवर्ष में शासन-सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए कर्मचारियों को न्याय-सम्वन्धी अधिकार नहीं दिये जायँगे; और प्रत्येक प्रान्त के समस्त न्यायालय उस प्रान्त के सबसे वड़े न्यायालय के अधीन रक्खे जायँगे।

परिशिष्ट ३

फरीदपुर के प्रस्ताव

१. भारत के भावी शासन-विवान में प्रतिनिधित्व का आधार वालिग-मताधिकार के साथ संयुक्त-निर्वाचन होना चाहिए।

२. (अ) वालिग-मताधिकार के साथ, संघीय (वड़ी) तथा प्रान्तीय कौंसिलों में उन्हीं अल्प-संख्यक जातियों के लिए स्थान सुरक्षित होने चाहिएँ जिनकी संख्या २५% से कम हो। ये स्थान जन-संख्या के आधार पर निश्चित होने चाहिएं और (अल्पसंख्यक जाति-वालों को अपनी निश्चित जगहों के) अतिरिक्त जगहों के लिए खड़े होने का अविकार भी रहे।

(व) जिन प्रान्तों में मुसलमानों की संख्या २५% से कम हो वहां उनके लिए

जन-संख्या के आधार पर स्थान रक्षित किये जायँगे और उनसे अतिरिक्त स्थानों के लिए उम्मीदवार होने का भी उन्हें हक रहेगा; लेकिन अगर अन्य जातियों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिये गये तो मुसलमानों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा और, उस हालत में, जो रिआयत उन्हें इस समय मिली हुई है वह कायम रहेगी।

(स) अगर बालिग-मताधिकार न हुआ, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया गया जिससे जन-संख्या के अनुपात का चुनाव पर असर पड़ सके, तो पंजाब व बंगाल में मुसलमानों के लिए स्थान रक्षित किये जायँगे। और यह क्रम उस वक्त तक जारी रहेगा जबतक कि बालिग-मताधिकार न हो, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया जाय कि उससे चुनाव में जन-संख्या के अनुपात का असर पड़ने लगे, बशर्ते कि किसी भी दशा में बहुमत अल्पमत या समान-मत में परिवर्तित न हो जाय।

३. संघीय धारा-सभा की छोटी-बड़ी हरेक कौंसिल में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व उन सभाओं के सदस्यों की कुल-संख्या का एक-तिहाई रहेगा।

४. सरकारी नौकरियों पर नियुक्ति सरकारी नौकरी-कमीशन के द्वारा होगी, जो उपयुक्तता की कम-से-कम माप की कसौटी पर चुनाव करेगा; लेकिन साथ ही इस बात का भी खयाल रक्खा जायगा कि नौकरियों में हरेक जाति को पर्याप्त हिस्सा मिले, और छोटे-ओहदों पर किसीका एकाधिकार नहीं रहेगा।

५. संघीय तथा प्रान्तीय मंत्रि-मण्डलों में मुसलमानों के हितों को काफी प्रतिनिधित्व मिले, इसके लिए भिन्न-भिन्न कौंसिलों में सब दल-वालों के सहयोग से कोई ऐसा क्रम निश्चत किया जायगा जो फिर प्रथा का रूप धारण कर ले।

६. सिन्ध को एक स्वतंत्र प्रान्त बनाया जायगा।

७. सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान में भी ठीक उसी तरह का शासन-प्रबन्ध रहेगा जैसा कि ब्रिटिश-भारत के अन्य प्रान्तों में है या होगा।

८. भारत का भावी शासन-विधान संघात्मक होगा, जिसमें अवशिष्ट अधिकार संघ में शामिल होनेवाले प्रान्तों को रहेंगे।

९. (अ) विधान में मौलिक अधिकारों की भी एक धारा रहेगी, जिनके अनुसार समस्त नागरिकों को उनकी संस्कृति, भाषा, लिपि, शिक्षा, धर्म-विश्वास, धर्माचार तथा आर्थिक हितों के संरक्षण का आश्वासन रहेगा।

(ब) विधान में एक स्पष्ट धारा का समावेश करके (नागरिकों के) मौलिक अधिकारों और वैयक्तिक कानूनों का वास्तविक रूप से संरक्षण किया जायगा।

(स) जहांतक मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध है, जबतक संघीय धारा-सभा की हरेक कौंसिल में तीन-चौथाई सदस्यों के बहुमत की स्वीकृति न मिल जाय, विधान में कोई परिवर्त्तन नहीं किया जायगा।

वैकल्पिक प्रस्ताव और हल (बिलकुल गुप्त)

भोपाल का हल

१—सर्व-दल-सम्मेलन का हल

(अ) दस वर्ष की समाप्ति पर बालिग-मताधिकार के साथ संयुक्त-निर्वाचन जारी हो, लेकिन इन दस वर्षों से पहले ही किसी समय यदि किसी संघीय या प्रान्तीय कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों का बहुमत संयुक्त-निर्वाचन स्वीकार करने को रजामन्द हो जाय तो उस कौंसिल के लिए पृथक् निर्वाचन की पद्धति रद कर दी जायगी। या

(ब) नये विधान का पहला चुनाव पृथक् निर्वाचन के आधार पर हो और प्रथम धारा-सभाओं के पांचवें साल की शुरुआत में संयुक्त बनाम पृथक् निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-संग्रह (रेफरेण्डम) किया जाय।

२—राष्ट्रीय-दल की वैकल्पिक योजना

(अ) प्रथम दस वर्ष संयुक्त निर्वाचन रहे और दस वर्षों की समाप्ति पर निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-संग्रह किया जाय। या

(ब) कौंसिलों में पहली बार मुसलमान-सदस्यों में से आधे संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा चुने जायँ और आधे पृथक् निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार दो-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा चुने जायँ, और एक-तिहाई पृथक्-निर्वाचन द्वारा। इसके बाद संयुक्त-निर्वाचन और बालिग-मताधिकार हो।

३—उपर्युक्त प्रस्ताव में कुछ मित्रों के संशोधन

कौंसिलों में पहली बार दो-तिहाई सदस्य (मुसलमान) पृथक् निर्वाचन-द्वारा चुने जायँ और एक-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार आधे-आधे। इसके बाद, संयुक्त-निर्वाचन हो और बालिग-मताधिकार। या

प्रथम पांच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, पश्चात् पांच वर्ष संयुक्त-निर्वाचन; इसके वाद, नवें वर्ष, दोनों तरह के निर्वाचनों के वारे में देश का निर्णय जानने के लिए जन-मत-संग्रह किया जाय। या

दो-तिहाई प्रतिनिधि पृथक्-निर्वाचन-द्वारा चुने जायँ और एक-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। इसके वाद, पांचवें वर्ष की शुरुआत में, जन-मत संग्रह किया जाय।

४—मौ० शौकतअली का प्रस्ताव

जव संयुक्त-निर्वाचन प्रारम्भ हो, चाहे वह सम्पूर्ण रूप में हो या आंशिक रूप में, तो पहले वीस साल के लिए मौ० मुहम्मदअली का हल स्वीकार किया जाय।

५—भोपाल की दूसरी वैठक का प्रस्ताव

प्रथम पांच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, उसके वाद मौ० मुहम्मदअली के हल के साथ संयुक्त-निर्वाचन हो। मगर किसी भी कौंसिल के मुसलमान सदस्य चाहें तो अपने ६० फीसदी वहुमत से उसे रद कर सकेंगे।

६—शिमला का आखिरी हल

प्रथम दस वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे और उसके वाद संयुक्त-निर्वाचन, वशर्ते कि किसी कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों का दो-तिहाई वहुमत उसकी शुरुआत का विरोध न करे।

परिशिष्ट ४

कैदियों के वर्गीकरण पर सरकारी आज्ञा-पत्र

जेल-नियमों के सम्वन्ध में भारत-सरकार ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय किये हैं, जो निम्नलिखित वक्तव्य के रूप में प्रकट किये गये हैं :—

"कुछ समय से कुछ वातों में जेल-नियमों में सुधार करने का मामला भारत-सरकार के विचाराधीन रहा है। इस मामले पर प्रान्तीय सरकारों से भी राय ली गई थी। उन्होंने वहुतसे गैर-सरकारी लोगों से परामर्श करके अपने विचार वनाये हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर सरकार ने जो निर्णय किये हैं उनसे सिद्धान्ततः भारतवर्ष-भर में लगभग एक-सी स्थिति हो जायगी। वे निर्णय ये हैं :—

सजा पाए हुए कैदियों के तीन वर्ग होंगे—ए, वी, सी। 'ए' वर्ग में वे कैदी लिये जायँगे जो (१) पहली बार ही जेल में आये हों और जिनका चाल-चलन अच्छा हो, (२) जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा और जीवन-क्रम के कारण ऊँचे दरजे के रहन-सहन के अभ्यस्त हों और (३) जिनको (क) निर्दयता, अनैतिकता या व्यक्तिगत लोभ के किसी अपराध पर, (ख) राजद्रोहात्मक अथवा पूर्व-निश्चित हिंसा में, (ग) सम्पत्ति-सम्बन्धी राजद्रोहात्मक अपराधों पर, (घ) किसी अपराध करने या उसमें सहायता देने की गरज से विस्फोटक पदार्थ, हथियार अथवा अन्य भयंकर अस्त्र रखने के अपराध में अथवा (ङ) इन उपधाराओं में समावेश होनेवाले अपराधों को उत्तेजन या सहायता देने में सजा न मिली हो।

'वी' वर्ग उन कैदियों को दिया जायगा जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा या जीवन-क्रम के कारण उच्च रहन-सहन के अभ्यस्त हों। वार-बार जेल में आनेवाले लोग इससे अपने-आप वंचित नहीं रक्खे जायँगे। वर्गीकरण करनेवाले अधिकारियों को ऐसे लोगों को भी इस वर्ग में रखने का अधिकार होगा। वे उनके चरित्र और पूर्व-इतिहास का खयाल करके निर्णय करेंगे। यह निर्णय प्रान्तीय-सरकार से मान्य कराना होगा, जो उसे बदल भी सकती है।

जो लोग 'ए' और 'वी' वर्गों में नहीं रक्खे जायँगे उन्हें 'सी' वर्ग मिलेगा।

हाईकोर्ट, दौरा-जज, जिला-मजिस्ट्रेट, वेतन-भोगी प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सव-डिवीजनल मजिस्ट्रेट और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट जिन मुकदमों का फैसला करेंगे उनमें उन्हें वर्गीकरण करने का अधिकार होगा। सव-डिवीजनल मजिस्ट्रेटों और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों का किया हुआ वर्गीकरण जिला-मजिस्ट्रेट के मार्फत होगा। 'ए' और 'वी' वर्ग के लिए जिला-मजिस्ट्रेट प्रान्तीय-सरकार से प्रारम्भिक सिफारिश करेगा और प्रान्तीय-सरकार उसका समर्थन या संशोधन करेगी।

भारत-सरकार ने किस प्रकार ये तीन वर्ग मुकर्रर किये हैं और इनका कैदियों के वर्तमान वर्गों पर क्या असर होगा, इसके विषय में कई अन्दाज लगाये हैं और तरह-तरह की आशंकायें प्रकट की गई हैं। यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए कि 'ए' वर्ग के तमाम कैदियों को उस वर्ग की सारी रिआयतें मिलेंगी। जाति के लिहाज से किसी वर्ग के कैदियों को कोई अधिक रिआयत नहीं दी जायगी। विशेष वर्ग के कैदियों को जो रिआयतें इस समय दी जा रही हैं वे सव 'ए' वर्ग के कैदियों को दी जाती रहेंगी।

अर्थात् उनके लिए अलग स्थान, आवश्यक फर्नीचर, मिलने-जुलने और व्यायाम की आवश्यक सुविधायें और सफाई, स्नान आदि की अनुकूल व्यवस्था रहेगी।

दूसरी बातों पर नीचे लिखे निश्चय किये गये हैं :—

'ए' और 'बी' वर्ग के लिए 'सी' वर्ग के कैदियों को मिलनेवाली साधारण खूराक से बढ़िया खूराक दी जायगी। इसका प्रति कैदी मूल्य मुकर्रर कर दिया जायगा और उस मूल्य की सीमा के भीतर खूराक बदलती रह सकेगी। 'ए' और 'बी' वर्ग की इस बढ़िया खूराक का मूल्य सरकार देगी। वर्तमान नियमों के अनुसार विशेष वर्ग के कैदियों को अपने खर्च से जेल की खूराक के अलावा भी और मंगा लेने की इजाजत दी जाती है। यह रिआयत 'ए' वर्ग के कैदियों के लिए भी कायम रहेगी।

विशेष वर्ग के कैदियों को अपने कपड़े पहनने की जो रिआयतें मौजूदा नियमों में हैं वे जारी रहेंगी। यदि 'ए' वर्ग के कैदी सरकार के खर्च से कपड़ा लेना चाहेंगे तो उन्हें 'बी' वर्ग के कैदियों के लिए नियत कपड़े दिये जायँगे। 'बी' वर्ग के कैदी जेल के कपड़े पहनेंगे, परन्तु वह कपड़ा कुछ बातों में 'सी' वर्ग के कैदियों से अधिक और अच्छा होगा।

'ए' और 'बी' वर्ग के लिए प्रत्येक प्रान्त में अलग जेल का होना वाञ्छनीय है।

यह सिद्धान्त तो पहले से ही व्यवहार में लाया जा रहा है और उसका महत्त्व अब फिर दोहरा दिया जाता है कि 'ए' और 'बी' वर्ग के कैदियों का काम मुकर्रर करने से पहले उनके स्वास्थ्य, शक्ति, चरित्र, पूर्व-जीवन और इतिहास पर सावधानी से विचार कर लिया जाय।

भारत-सरकार को यह सिद्धान्त स्वीकार है कि शिक्षित और साक्षर कैदियों की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ उचित सुविधायें दी जानी चाहिएँ। प्रान्तीय-सरकारों से अनुरोध किया जायगा कि जेल के पुस्तकालयों की हालत की जांच करें और जहां पुस्तकालय नहीं हैं अथवा अच्छे नहीं हैं वहां शीघ्र स्थापित करें या उन्नत करें। जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट की मंजूरी से पढ़े-लिखे कैदी पुस्तकें और मासिक-पत्र बाहर से मँगाकर पढ़ सकेंगे

अखबार 'ए' वर्ग के कैदियों को उन्हीं शर्तों पर दिये जायंगे जिनपर वर्तमान विषयों के अनुसार विशेष वर्ग के कैदियों को दिये जाते हैं। अर्थात् विशेष परिस्थिति में और प्रान्तीय-सरकार की मंजूरी से दिये जायंगे। साधारणतः सभी साक्षर कैदियों को प्रान्तीय-सरकार-द्वारा प्रकाशित जेल-अखबार प्रति सप्ताह मिला करेगा। जहां प्रान्तीय सरकार साप्ताहिक पत्र प्रकाशित नहीं कर सकेगी वहांके लिए भारत-सरकार

ने यह निश्चय किया है कि 'ए' और 'वी' श्रेणी के कैदियों को प्रान्तीय-सरकार की पसन्द के किसी साप्ताहिक पत्र की कुछ प्रतियां सरकार के खर्च से दी जायँ।

'ए' श्रेणी के कैदियों को अवकी भांति एक महीने के वजाय पन्द्रह दिन में एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने की इजाजत होगी। 'वी' वर्ग के कैदियों के लिए भिन्न-भिन्न जेलों के नियमानुसार अभी तो वड़ी लम्वी-लम्वी अवधियां मुकर्रर हैं, परन्तु अव उन्हें प्रति मास एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने दी जायगी। यदि कैदियों की मुलाकातों और चिट्ठियों के हालात अखवारों में छपेंगे तो यह रिआयत छीनी भी जा सकेगी या कम की जा सकेगी।

परिशिष्ट ५

हिन्दुस्तानी मिलों के घोषणा-पत्रक

हम घोषणा करते हैं कि :—

१. हम जनता की राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं।

२. कम्पनी की पूंजी के कम-से-कम ७५ प्रतिशत हिस्से हिन्दुस्तानियों के हैं। (इसकी वावत कांग्रेस के अध्यक्ष-द्वारा नामजद की हुई विशेष कमिटी घोषणा-पत्रक के इस अंश के विषय में विशेष-रूप से छूट दे सकती है।)

३. पुराने पदेन (ex-officio) डाइरेक्टरों के सिवा कम-से-कम ६६ प्रतिशत डाइरेक्टर हिन्दुस्तानी हैं और रहेंगे। (पुराने पदेन डाइरेक्टर अहिन्दुस्तानी होने की दशा में वोर्ड में हिन्दुस्तानी डाइरेक्टरों का वहुमत होना चाहिए।)

४. प्रवन्धक एजेण्टों (मैनेजिंग-एजेण्ट्स) की फर्म में कोई विदेशी स्वार्थ नहीं है।

५. एजेण्टों की फर्म के हिस्सेदार या फर्म किसी विदेशी वीमा-कम्पनी की मदद नहीं करते और न विदेशी सूत या थान मँगाते हैं।

६. हम खादी से मिल के कपड़े की होड़ न करके और आन्दोलन से उत्पन्न

स्थिति से, कपड़े की कीमत बढ़ाकर या उसे घटिया बनाकर, अपने स्वार्थ के लिए अनुचित लाभ न उठाकर स्वदेशी की उन्नति में सहायक होंगे।

७. मिलों के मालिक और प्रबन्धक हिन्दुस्तानी हैं और प्रबन्ध-विभाग के कर्मचारियों की दृष्टि और 'स्पिरिट' हिन्दुस्तानी है। वे हिन्दुस्तानी हितों की रक्षा के लिए बंधे हुए हैं।

उक्त घोषणा-पत्रक के पालन के लिए हम यह करने का जिम्मा लेते हैं :—

१. मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध किसी भी प्रकार के प्रचार में नहीं लगेगा और न स्वेच्छा से, ब्रिटिश-सरकार के कहने से या ब्रिटिश-सरकार की ओर से संगठित ऐसे किसी आन्दोलन में भाग ही लेगा।

२. विशेष कारणों के अतिरिक्त कर्मचारियों की भर्ती केवल हिन्दुस्तानियों में से की जायगी।

३. हम अपनी कम्पनी का बीमे का काम जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी बीमा-कम्पनियों को देंगे।

४. हम अपना बैंकों का काम तथा जहाजों से माल लाने या ले जाने का काम भी जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी जहाजी-कम्पनियों को देंगे।

५. अबसे हम जहांतक सम्भव होगा वहांतक आडिटर, वकील, जहाजों पर माल चढ़वाने तथा जहाजों से माल उतरवानेवाले कारिन्दे, खरीदने और बेचनेवाले दलाल, ठेकेदार और अपनी मिलों के लिए आवश्यक सामान देनेवाले हिन्दुस्तानी ही रक्खेंगे।

६. हम जहांतक सम्भव होगा वहांतक स्टोर की चीजें देशी खरीदेंगे। केवल वही चीजें विदेशी खरीदेंगे जिनके बिना काम नहीं चल सकता और जिनके बजाय देशी नहीं काम आ सकतीं या मिल सकतीं। (ऐसी विदेशी चीजों की सूची, जो अनिवार्य है, साथ है।)

७. हम किसी भी प्रकार का विदेशी सूत या विदेशी रेशम, या नकली रेशम या ऐसा सूत जो बहिष्कृत मिलों में काता जाता है, काम में नहीं लायेंगे।

८. हम उस सूत या कपड़े को न धोयेंगे और रंगेंगे जो विदेशी होगा, या बहिष्कृत मिलों में तैयार किया गया होगा।

९. हम अपनी मिलों में तैयार किये हुए हरेक थान के दोनों सिरों पर अपनी छाप साफ-साफ लगायेंगे और बिना उचित छाप के कोई कपड़ा बाहर न भेजेंगे।

१०. हम अपने किसी भी कपड़े को खादी न कहेंगे, न उसपर खादी छापेंगे और न उसे खादी-जैसा वनायँगे।

११. हम नीचे लिखे प्रकारों के कपड़े न वनायँगे :—

कोई कपड़ा जो विना धुला हो या धुला हो, ताने और वाने में एक इंच में जिसमें एक ऊपर और एक नीचे, इकहरे या दुहरे, सादा वुनावट के १८ से अधिक तार हों। वाने में चेकों की सादा वुनावट भी है। जो वून्ददार या गोल वक्स पर वने हों और दरियां। (१८ तारों में इकहरे या दुहरे सूत शामिल हैं। उनका नम्वर १८ या कम होता है।)

किन्तु मिलें, ड्रिल, साटनें, टसरें, जैक्वार्ड मशीन पर वनी टूलें, डौवी नमूने, रंगीन रुई से वना कपड़ा, कम्वल और मलीदा वनाने के लिए स्वतंत्र हैं।

१२. हम अवसे यथाशक्ति अपना खरीद-फरोख्त का काम हिन्दुस्तानी दूकानदारों के साथ करेंगे और उन्हीं के द्वारा करायेंगे।

१३. हमारी मिलों के प्रवन्ध से सम्वन्ध रखनेवाले लोग स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे।

कम्पनी का नाम.......................
पता...........................
एजेण्टों या मालिकों के नाम................

गैर हिन्दुस्तानी मिलों का घोपणापत्र भी इसी आशय का था। सिर्फ घोपणा का चतुर्थ अंश उसमें सम्मिलित न था।

वम्वई-कांग्रेस-कमिटी ने भी इसी आशय का घोपणा-पत्र प्रचलित किया था। इसमें विना वम्वई-कांग्रेस-कमिटी से सलाह लिये १० नम्वर से नीचे का कपड़ा न वुनने, ३१ दिसम्वर १९३० के वाद विदेशी सूत, नकली रेशम या रेशमनुमा सूत का प्रयोग न करने की शर्तों के अलावा निम्नलिखित शर्तें भी थीं :—

मिलें राष्ट्रीय-आन्दोलन से प्रोत्साहन पाई हुई स्वदेशी की भावना से अपना अनुचित स्वार्थ-साधन न करेंगी और अधिक मुनाफा उठानेवाले दलालों से भी इसकी रक्षा करेंगी। वे स्वदेशी माल खरीदनेवाली जनता को उचित दामों में वेचेंगी।

वे ३१ दिसम्वर १९३० से पहले तक मिलों में जो चीजें इस समय वन रही हैं उन्हें वर्तमान दामों पर या १२ मार्च १९३० को जो दाम थे उनपर—इनमें से जो भी कम हो उनपर—वेचेंगी।

वे खरीदारों को सूचना देने के लिए प्रचलित किस्मों की बिक्री के दाम, जो समय-समय पर होंगे, छपवाकर बँटवाती रहेंगी।

वे समय-समय पर बम्बई प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के प्रतिनिधियों से मिलेंगी और ऐसे तरीके इस्तेमाल करेंगी जिनपर अधिक मुनाफा खानेवालों को रोकने के लिए और खरीदारों को वाजिब दामों पर लगातार स्वदेशी कपड़ा दिलाने के लिए दोनों पक्ष राज़ी होंगे।

परिशिष्ट ६

जुलाई-अगस्त १९३० के सन्धि-प्रस्ताव

पत्र-व्यवहार

डेली हैरल्ड के संवाददाता स्लोकोम्ब ने पं० मोतीलाल नेहरू से मिलकर सरकार व कांग्रेस में संधि कराने की चर्चा की थी। इस बातचीत के परिणामस्वरूप सर सप्रू व मि० जयकर ने जुलाई १९३० में वाइसराय से परामर्श किया और बातचीत आगे बढ़ाने के लिए गांधीजी, पं० मोतीलाल नेहरू व पं० जवाहरलाल नेहरू आदि से जेल में मिलने की आज्ञा मांगी। वायसराय ने १६ जुलाई के पत्र में उन्हें उक्त व्यक्तियों से जेल में मिलने की आज्ञा दे दी। इसके बाद सर सप्रू व मि० जयकर म० गांधी से जेल में मिले और उन्हें अबतक की सारी बातचीत से परिचित किया। महात्माजी ने संधि-चर्चा और गोलमेज कान्फ्रेंस में कांग्रेस के भाग ले सकने का आधार क्या होना चाहिये, इस संबंध में अपने विचार प्रकट किये और पं० मोतीलाल नेहरू व पं० जवाहरलाल को पत्र लिखा। गांधीजी की शर्तों से दोनों नेहरुओं ने अपना थोड़ा बहुत मतभेद तो प्रकट किया, लेकिन उसपर बहुत बल नहीं दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने तो सरकार की उदासीनता देखकर यह भी लिखा कि सरकार संधि-चर्चा के लिए बिलकुल उत्सुक नहीं दीखती। कहीं ऐसा न हो कि हम धोखा खावें। श्री जयकर ३१ जुलाई को फिर गांधीजी से मिले। सब नेता परस्पर विचार कर सकें, इसलिए यरवडा जेल में १४-१५ अगस्त को निम्न व्यक्ति इकट्ठे हुए—म० गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू,

पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। सर सप्रू व मि० जयकर भी उपस्थित थे। वातचीत के वाद नेताओं ने उक्त दोनों सज्जनों को निम्न पत्र लिखा :—

यरवडा सेण्ट्रल जेल
१५—८—३०

प्रिय मित्रगण,

आप लोगों ने ब्रिटिश-सरकार और कांग्रेस में शान्तिपूर्ण समझौता कराने का जो भार अपने ऊपर लिया है, उसके लिए हम लोग आपके वहुत अधिक कृतज्ञ हैं। आपका वाइसराय के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ है, और आपके साथ हम लोगों की जो वहुत अधिक वातें हुई हैं, तथा हम लोगों में आपस में जो कुछ परामर्श हुआ है, उस सवका ध्यान रखते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अभी ऐसे समझौते का समय नहीं आया है जो हमारे देश के लिए सम्मानपूर्ण हो। पिछले पांच महीनों में देश में जो अद्भुत जागृति हुई है और भिन्न-भिन्न सिद्धान्त तथा मत रखनेवाले लोगों में से छोटे-वड़े सभी प्रकार और वर्ग के लोगों ने जो वहुत अधिक कष्ट-सहन किया है, उसे देखते हुए हम लोग यह अनुभव करते हैं कि न तो वह कष्ट-सहन पर्याप्त ही हुआ है और न वह इतना वड़ा ही हुआ है कि उससे तुरन्त ही हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाय।

कदाचित् यहां यह वतलाने की कोई आवश्यकता न होगी कि हम आपके अथवा वाइसराय के इस मत से सहमत नहीं हैं कि सत्याग्रह-आन्दोलन से देश को हानि पहुँची है, अथवा वह आन्दोलन कुसमय में खड़ा किया गया है, अथवा अवैध है। अंग्रेजों का इतिहास ऐसी-ऐसी रक्तपूर्ण क्रान्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनकी प्रशंसा के राग गाते हुए अंग्रेज लोग कभी नहीं थकते; और उन्होंने हम लोगों को भी ऐसा ही करने की शिक्षा दी है। इसलिए जो क्रान्ति विचार की दृष्टि से विलकुल शान्तिपूर्ण है और जो कार्य-रूप में भी वहुत अधिक मान में और अद्भुत रूप से शान्तिपूर्ण ही है, उनकी निन्दा करना वाइसराय अथवा किसी और समझदार अंग्रेज को शोभा नहीं देता।

परन्तु जो सरकारी या गैर-सरकारी आदमी वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन की निन्दा करते हैं, उनके साथ झगड़ा करने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। हम लोगों का तो यही मत है कि सर्व-साधारण जिस आश्चर्य-जनक रूप से इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं, वही इस वात का यथेष्ट प्रमाण है कि यह उचित और न्यायपूर्ण है। यहां

कहने की बात यही है कि हम लोग भी प्रसन्नता-पूर्वक आपके साथ मिलकर इस बात की कामना करते हैं कि यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो यह सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जाय अथवा स्थगित कर दिया जाय। अपने देश के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों तक को अनावश्यक रूप से ऐसी परिस्थिति में रखना कि उन्हें जेल जाना पड़े, लाठियां खानी पड़ें और इनसे भी बढ़-चढ़कर दुर्दशायें भोगनी पड़ें, हम लोगों के लिए कभी आनन्ददायक नहीं हो सकता। इसलिए जब हम आपको और आप के द्वारा वाइसराय को यह विश्वास दिलाते हैं कि सम्मानपूर्ण शान्ति और समझौते के लिए जितने मार्ग हो सकते हैं उन सबको ढूंढकर उनका अवलम्बन करने के लिए हम अपनी ओर से कोई बात न उठा रखेंगे, तो आशा है कि आप हम लोगों की इस बात पर विश्वास करेंगे।

परन्तु फिर भी हम यह मानते हैं कि अभीतक हमें क्षितिज पर ऐसी शान्ति का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। हमें अभीतक इस बात का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता कि अंग्रेज सरकारी जगत् का अब यह विचार हो गया है कि स्वयं भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि भारत के लिए सबसे अच्छा काम या मार्ग कौन-सा है? सरकारी कर्मचारियों ने अपने शुभ विचारों की जो निष्ठापूर्ण घोषणायें की हैं और जिनमें से बहुत-सी घोषणायें प्रायः अच्छे उद्देश से की गई हैं, उनपर हम विश्वास नहीं करते। इधर मुद्दतों से अंग्रेज इस प्राचीन देश के निवासियों की धन-सम्पत्ति का जो बराबर अपहरण करते आये हैं, उसके कारण उन अंग्रेजों में अब इतनी शक्ति और योग्यता ही नहीं रह गई है कि वे यह बात देख सकें कि उनके इस अपहरण के कारण हमारे देश का कितना अधिक नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक ह्रास हुआ है। वे अपने-आपको यह देखने के लिए उद्यत ही नहीं कर सकते कि उनके करने का इस समय सबसे बड़ा एक काम यही है कि वे जो हमारी पीठ पर चढ़े बैठे हैं, उसपर से वे उतर जायें; और प्रायः सौ वर्षों तक भारत पर राज्य रहने के कारण सब प्रकार से हम लोगों का नाश और ह्रास करनेवाली जो प्रणाली चल रही है, उससे वे बाहर निकलकर विकसित होने में हमारी सहायता करें; और अबतक उन्होंने हमारे साथ जो अन्याय किये हैं, उनका इस रूप में प्रायश्चित्त कर डालें।

परन्तु हम यह बात जानते हैं कि आपके तथा हमारे देश के कुछ और विज्ञ लोगों के विचार हमारे इन विचारों से भिन्न हैं। आप यह विश्वास करते हैं कि शासकों के भावों में परिवर्तन हो गया है; और अधिक नहीं तो कम-से-कम इतना परिवर्तन अवश्य हो गया है कि जिससे हम लोगों को प्रस्तावित परिषद् में जाकर सम्मिलित

होना चाहिए। इसलिए यद्यपि हम इस समय एक विशेष प्रकार के वन्धन में पड़े हुए हैं, तो भी जहांतक हमारे अन्दर शक्ति है वहांतक हम इस काम में प्रसन्नतापूर्वक आप लोगों का साथ देंगे। हम जिस परिस्थिति में पड़े हुए हैं, उसे देखते हुए, आपके मित्रता-पूर्ण प्रयत्न में हम अधिक-से-अधिक जिस रूप में और जिस सीमा तक सहायता दे सकते हैं, वह इस प्रकार है—

हम यह समझते हैं कि वाइसराय ने आपके पत्र का जो उत्तर दिया है, उसमें प्रस्तावित परिषद् के सम्वन्ध में जिस भापा का प्रयोग किया गया है, वह भापा ऐसी अनिश्चित है कि गत वर्ष लाहौर में जो राष्ट्रीय मांग प्रस्तुत की गई थी, उसका ध्यान रखते हुए हम वाइसराय के उस कथन का कोई मूल्य या महत्त्व ही निर्धारित नहीं कर सकते; और न हमारी स्थिति ही ऐसी है कि कांग्रेस की कार्य-समिति, और आवश्यकता हो तो महासमिति के नियमित रूप से अधिवेशन में विना विचार किये हम लोग अधिकारपूर्ण-रूप से कोई वात कह सकें। परन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि व्यक्तिशः हम लोगों के लिए इस समस्या का कोई ऐसा निराकरण तवतक संतोष-जनक न होगा जवतक (१) (क) पूरे और स्पष्ट शव्दों में यह वात न मान ली जाय कि भारत को इस वात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह जव चाहे तव ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग हो जाय। (ख) उससे भारत में ऐसी पूर्ण राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जो उसके निवासियों के प्रति उत्तरदायी हो। उसे देश की रक्षक शक्तियों (सेना आदि) पर तथा समस्त आर्थिक विपयों पर पूर्ण अधिकार और नियन्त्रण प्राप्त हो और जिसमें उन ११ वातों का भी समावेश हो जाय जो गांधीजी ने वाइसराय को अपने पत्र में लिखकर भेजी थीं। (ग) उससे भारतवर्प को इस वात का अधिकार प्राप्त हो जाय कि यदि आवश्यकता हो तो वह एक ऐसी स्वतन्त्र पंचायत बैठाकर इस वात का निर्णय करा सके कि अंग्रेजों को जो विशेप पावने और रिआयतें आदि प्राप्त हैं, जिसमें भारत का सार्वजनिक ऋण भी सम्मिलित होगा, और जिनके सम्वन्ध में राष्ट्रीय सरकार का यह मत होगा कि ये न्याय-पूर्ण नहीं हैं अथवा भारत की जनता के लिए हितकर नहीं हैं, वे सव अधिकार, रिआयतें और ऋण आदि उचित, न्यायपूर्ण और मान्य हैं या नहीं।

सूचना—अधिकार हस्तान्तरित होने के समय में भारत के हित के विचार से इस प्रकार के जिस लेने-देने आदि की आवश्यकता होगी, उसका निर्णय भारत के चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे।

(२) यदि ऊपर वतलाई हुई वातें ब्रिटिश-सरकार को ठीक जँचें और वह

इस सम्बन्ध में सन्तोष-जनक घोषणा कर दे तो हम कांग्रेस की कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश करेंगे कि सत्याग्रह-आन्दोलन या सविनय-अवज्ञा का आन्दोलन बन्द कर दिया जाय; अर्थात् केवल आज्ञा-भंग करने के लिए ही कुछ विशिष्ट कानूनों का भंग न किया जाय। परन्तु विलायती कपड़े और शराब, ताड़ी आदि की दुकानों पर तबतक शान्तिपूर्ण पिकेटिंग जारी रहेगी, जबतक सरकार स्वयं कानून बनाकर शराब, ताड़ी आदि और विलायती कपड़े की बिक्री बन्द न कर देगी। सब लोग अपने घरों में बराबर नमक बनाते रहेंगे और नमक-कानून की दंड-सम्बन्धी धारायें काम में नहीं लाई जायँगी। नमक के सरकारी या लोगों के निजी गोदामों पर धावा नहीं किया जायगा।

(३) (क) ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन रोक दिया जायगा, त्योंही उसके साथ वे सब सत्याग्रही कैदी और राजनैतिक कैदी, जो सजा पा चुके हैं परन्तु जो हिंसा के अपराधी नहीं हैं या जिन्होंने लोगों को हिंसा करने के लिए उत्तेजित नहीं किया है, सरकार-द्वारा छोड़ दिये जायँगे। (ख) नमक-कानून, प्रेस-कानून, लगान-कानून तथा इसी प्रकार के और कानूनों के अनुसार जो सम्पत्तियां जब्त की गई हैं, वे सब लोगों को वापस कर दी जायँगी। (ग) दंडित सत्याग्रहियों से जो जुर्माने वसूल किये गये हैं या जो जमानतें ली गई हैं, उन सबकी रकमें लौटा दी जायँगी। (घ) वे सब राज-कर्मचारी, जिनमें गांवों के कर्मचारी भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है अथवा जो आन्दोलन के समय नौकरी से छुड़ा दिये गये हैं, यदि फिर से सरकारी नौकरी करना चाहें तो अपने पद पर नियुक्त कर दिये जायँगे।

सूचना—ऊपर जो उप-धारायें दी गई हैं, उनका व्यवहार असहयोग-काल के दंडित लोगों के लिए भी होगा।

(ङ) वाइसराय ने अबतक जितने आर्डिनेन्स प्रचलित किये हैं, वे सब रद कर दिये जायँगे।

(च) प्रस्तावित परिषद् में कौन-कौन लोग सम्मिलित किये जायँगे और उसमें कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किस प्रकार का होगा, इसका निर्णय उसी समय होगा जब पहले ऊपर बतलाई हुई आरम्भिक बातों का सन्तोषजनक निपटारा हो जायगा।

भवदीय—

मो० क० गांधी	जयरामदास दौलतराम
मोतीलाल नेहरू	सैयद महमूद
वल्लभभाई पटेल	जवाहरलाल नेहरू

कांग्रेस के नेताओं के नाम मध्यस्थों का पत्र

सर सप्रू व श्री जयकर ने १६ अगस्त को विन्टर-रोड (मलावार-हिल, वम्बई) से इस आशय का पत्र कांग्रेस-नेताओं को भेजा—

प्रिय मित्रगण,

जिन अनेक अवसरों पर हमने पूना या प्रयाग में आपसे मिलकर वातें की हैं, उन अवसरों पर आप लोगों ने हमारी वातों को जिस सुजनता और धैर्य के साथ सुना है, उसके लिए हम आप सवको धन्यवाद देना चाहते हैं। हमें इस वात का दुःख है कि हमने वहुत अधिक समय तक वातें करके आपको कष्ट दिया है; और विशेषतः इस वात का हमें और भी अधिक दुःख है कि पं० मोतीलाल नेहरू को ऐसे समय में पूना तक आने का कष्ट उठाना पड़ा है जवकि उनका स्वास्थ्य इतना खराव है। हम नियमित-रूप से उस पत्र की प्राप्ति स्वीकार करते हैं जो आप लोगों ने हमें दिया था और जिसमें आप लोगों ने वे शर्तें लिखी हैं, जिनके अनुसार आप कांग्रेस से इस वात की सिफारिश करने के लिए तैयार हैं कि वह सत्याग्रह-आन्दोलन वन्द कर दे और गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हो।

जैसा कि आप लोगों को हम सूचित कर चुके हैं, हमने यह मध्यस्थता का काम इन आधारों पर अपने ऊपर लिया था—(१) २० जून १६३० को वम्वई में कांग्रेस के तत्कालीन कार्यवाहक-सभापति पं० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्व के साथ वातचीत करके उन्हें जो शर्तें वतलाई थीं, एक तो उनके आधार पर; और विशेषतः (२) २५ जून १६३० को वम्वई में पं० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्व को अपने वक्तव्य में लिखकर जो शर्तें दी थीं और जिनके सम्वन्ध में उन्होंने (पं० मोतीलाल ने) यह मंजूर किया था कि इनके आधार पर हम लोग निजी और गैर-सरकारी तौर पर वाइसराय से मिलकर समझौते की वातचीत कर सकते हैं। मि० स्लोकोम्व ने वे दोनों लेख हम लोगों के पास भेज दिये थे और तव हम लोगों ने वाइसराय से मिलकर यह प्रार्थना की थी कि हम लोगों को यह इजाजत दी जाय कि हम गांधीजी और पंडित मोतीलाल तथा पंडित जवाहरलाल से वातचीत करें और यह समझ लें कि किस प्रकार समझौता होना सम्भव है। ऊपर जिस दूसरे पत्र का हमने उल्लेख किया है, उसकी एक प्रतिलिपि आपने हमसे ले ली है। अव हम यह देखते हैं कि १४ ता० को आप लोगों ने जो पत्र हमें दिया है, उसमें ऐसी शर्तें दी हैं जो हम लोगों की पारस्परिक स्वीकृति और निश्चय के अनुसार वाइसराय के पास विचारार्थ भेजी जानी चाहिएँ; और तव हम लोगों को उनके निर्णय की प्रतीक्षा करनी

पड़ेगी। आपने यह इच्छा प्रकट की थी कि समझौते की बातचीत के सम्बन्ध के जितने मुख्य-पत्र और लेख आदि हैं, और जिनमें आप लोगों का वह पत्र भी सम्मिलित है जो आपने हमें दिया है, वे सब प्रकाशित कर दिये जायँ। आपकी यह इच्छा हमारे ध्यान में है और ज्योंही वाइसराय महोदय आपके पत्र पर विचार कर चुकेंगे त्योंही हम सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर देंगे।

यह पत्र समाप्त करने से पहले हम यह कहने की आज्ञा मांगते हैं कि, जैसा कि हमने आप से कहा था, हमारे पास यह विश्वास करने का कारण था कि ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा त्योंही परिस्थिति बहुत-कुछ सुधर जायगी अहिंसात्मक राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँगे, उन आर्डिनेन्सों को छोड़कर जिनका सम्बन्ध चटगांव और लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमों से है, बाकी सब आर्डिनेन्स रद कर दिये जायँगे; और गोलमेज-परिषद् में किसी एक राजनैतिक दल के जितने प्रतिनिधि होंगे, उनकी अपेक्षा कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होगी। यहां कदाचित् हमें फिर से यह कहने की आवश्यकता न होगी कि हम लोगों ने इस बात पर भी जोर दिया था कि हमारी सम्मति में पं० मोतीलाल नेहरू ने अपनी मि० स्लोकोम्बवाली भेंट में जो दृष्टिकोण प्रकट किया था और पं० मोतीलालजी की स्वीकृति से मि० स्लोकोम्ब ने जो वक्तव्य हम लोगों के पास भेजा था, उसमें और उस पत्र में तत्त्वत: कोई अन्तर नहीं है जो वाइसराय महोदय ने हम लोगों के नाम भेजा है।

भवदीय—
मुकुन्दराव जयकर
तेजबहादुर सप्रू

वाइसराय का पत्र

इसके उपरान्त कांग्रेस के नेताओं का पत्र लेकर २१ अगस्त को श्री जयकर अकेले शिमला गये और वहां उन्होंने वाइसराय से बातें कीं। २५ ता० को सर तेज-बहादुर सप्रू भी जाकर उनके साथ सम्मिलित हो गये। उस समय २५ और २७ अगस्त के बीच में इन लोगों ने कई बार वाइसराय और उनकी कौंसिल के कुछ सदस्यों के साथ मिलकर बातें कीं। उसके परिणाम-स्वरूप वाइसराय ने यह पत्र लिखकर कांग्रेस के नेताओं को प्रयाग और पूना में दिखलाने के लिए दिया :—

वाइसराय-भवन, शिमला
२८ अगस्त, १९३०

प्रिय सर तेजबहादुर,

कांग्रेस के जो नेता इस समय जेल में हैं, उनके साथ श्री जयकर और आपने मिलकर जो बातें कीं, उनके परिणाम की जो सूचना आपने मुझे दी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। साथ ही उन लोगों ने मिलकर १५ तारीख को आप लोगों को जो पत्र भेजा था और आप लोगों ने उनको जो उत्तर भेजा था, उनकी जो प्रतिलिपियां आपने मुझे भेजी हैं, उनके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं आपको और श्री जयकर को बतला देना चहता हूँ कि आप लोगों ने सार्वजनिक हित और भारत में फिर से शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से अपने ऊपर जो यह काम लिया है, उसकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूँ। यहां मैं आपको उन परिस्थितियों का भी स्मरण करा देना चाहता हूँ, जिनके कारण आपने अपने ऊपर यह काम लिया था।

अपने १६ जुलाईवाले पत्र में मैंने आपको यह विश्वास दिलाया था कि मेरी तथा मेरी सरकार की यह हार्दिक इच्छा है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही इच्छा है, कि जहां तक हो सके, हम लोग इस बात का प्रयत्न करें कि भारतवासी जितनी अधिक मात्रा में अपने देश का प्रबन्ध अपने हाथ में ले सकें उतनी अधिक मात्रा में ले लें। हां, वे विषय अभी उनके हाथ में नहीं दिये जायँगे जिनके सम्बन्ध में वे अभी अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकते। जितनी सामग्री प्राप्त होगी, उसको देखते हुए परिषद् इस बात का विचार करेगी कि वे सब विषय कौन-कौन-से हैं और उनके लिए सबसे अच्छी व्यवस्था कौनसी की जा सकती है।

असेम्बली में ६ जुलाईवाले अपने भाषण में मैंने दो बातें भी स्पष्ट कर दी थीं। एक तो यह कि जो लोग परिषद् में जायँगे, वे बिलकुल स्वतंत्र रूप से विधान-सम्बन्धी सब विषयों पर, उनका ऊँच-नीच देखते हुए, विचार कर सकेंगे; और दूसरी यह कि परिषद् जो-कुछ निर्णय कर सकेगी उसीके आधार पर श्रीमान् सम्राट् की सरकार अपने प्रस्ताव तैयार करके पार्लमेण्ट के सामने उपस्थित करेगी।

मैं समझता हूँ और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि आप भी यह मानते होंगे कि आप लोगों ने स्वेच्छा से अपने ऊपर जो काम लिया है, उसमें उस पत्र से कोई सहायता नहीं मिली है जो आप लोगों को कांग्रेस के नेताओं से मिला है। वह पत्र जिस ढंग से लिखा गया है और उसमें जो-जो बातें हैं, उन दोनों को देखते हुए, और साथ ही साथ उसमें इस बात से जो साफ इन्कार किया गया है कि कांग्रेस की नीति

से आर्थिक क्षेत्र में भी तथा और-और क्षेत्रों में भी देश को भारी हानि पहुँची है, उसका ध्यान रखते हुए, मैं नहीं समझता कि उसमें जो सूचनायें उपस्थित की गई हैं उनपर व्योरेवार विचार करने से कोई लाभ हो सकता है; और मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि उन प्रस्तावों के आधार पर कोई बात-चीत करना असम्भव है। मैं आशा करता हूँ कि यदि आप कांग्रेस के नेताओं से फिर मिलेंगे, तो यह बात स्पष्टरूप से उन्हें बतला देंगे।

१६ अगस्त को आपने उन लोगों को जो उत्तर भेजा था, उसके अंतिम अंश के सम्बन्ध में भी मैं एक बात कह देना चाहता हूँ। जब मैंने और आप लोगों ने इस विषय पर विचार किया था, तब मैंने कहा था कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा, तब वर्तमान परिस्थिति के कारण जो आर्डिनेन्स बनाये गये हैं (उन आर्डिनेन्सों को छोड़कर जो लाहौर और चटगांव के षड्यंत्र वाले मुकदमों के लिए बनाये गये हैं), उनकी कोई आवश्यकता न रह जायगी और मैं उन्हें रद कर दूंगा। पर मैंने यह बात भी स्पष्ट कर दी थी कि मैं इस बात का कोई वचन नहीं दे सकता कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा तब प्रान्तीय सरकारों के लिए यह संभव होगा कि वे उन सब लोगों को छोड़ दें जो इस आन्दोलन के सम्बन्ध में हिंसा को छोड़कर और अपराधों में जेल भेजे गये हैं या जिनपर मुकदमे चल रहे हैं। पर हां, मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा कि इस सम्बन्ध में उदार नीति का अमल किया जाय; और अधिक-से-अधिक मैं यही वचन दे सकता हूँ कि मैं प्रान्तीय-सरकारों से कहूँगा कि वे प्रत्येक अभियुक्त के सम्बन्ध में उसके अपराध और परिस्थिति आदि का विचार करते हुए सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

एक बात यह भी विचारणीय थी कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द हो जायगा और कांग्रेस के नेता परिषद् में सम्मिलित होना चाहेंगे, तब उनके कितने प्रतिनिधि उसमें लिए जायँगे। मुझे स्मरण है कि आपने इस सम्बन्ध में कहा था कि कांग्रेस यह नहीं चाहती कि हमारी ही पूर्ण प्रधानता या बहुमत रहे; और मैंने यह विचार प्रकट किया था कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार से यह सिफारिश करने में कोई कठिनाई न होगी कि परिषद् में कांग्रेस के यथेष्ट प्रतिनिधि रहें। मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि यदि कांग्रेस उसमें सम्मिलित होना चाहे, तो वह अपने नेताओं की एक ऐसी सूची मेरे पास भेज सकती है जिन्हें वह अपना उपयुक्त प्रतिनिधि समझती हो; और उस सूची में से मैं उसके प्रतिनिधि चुन लूंगा।

यह उचित जान पड़ता है कि यह सारा पत्र-व्यवहार शीघ्र ही सर्व-साधारण में प्रकाशित कर दिया जाय, जिसमें सब लोगों को यह मालूम हो जाय कि किन परि-

स्थितियों में आप लोगों को अपने प्रयत्न में विफलता हुई है; और जिन परिणामों की आप लोग आशा करते थे, वे क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसलिए मैं आपको तथा श्री जयकर को स्पष्ट वतला देना चाहता हूँ कि इस सम्वन्ध में मेरी तथा मेरी सरकार की क्या स्थिति है (अर्थात् हम लोग अधिक से अधिक क्या कर सकते हैं)।

भवदीय—
अर्विन

वाइसराय को वातचीत

मध्यस्थों ने उसे किस रूप में उपस्थित किया

कांग्रेस के नेताओं के पत्र में जिन विशेष विचारणीय विषयों का उल्लेख था, उनके सम्वन्ध में वाइसराय के साथ सर सप्रू व जयकर की जो वातें हुई थीं, उनके वारे में उन्होंने यह वक्तव्य दिया:—हम शिमला से २८ अगस्त को चले और ३० तथा ३१ अगस्त को प्रयाग के नैनी-जेल में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० महमूद से मिले। हमने उन्हें वाइसराय का उक्त पत्र दिखलाया और हम लोगों में जो वातचीत हुई थी उसका परिणाम भी उनके सामने उपस्थित किया। उन लोगों के १५ अगस्तवाले पत्र में जिन कई विचारणीय वातों का उल्लेख था और जिनका उल्लेख वाइसराय के २८ अगस्त वाले पत्र में नहीं था, उनके सम्वन्ध में हम लोगों ने उनसे यह कहा कि वाइसराय के साथ हमारी जो वातें हुई हैं उन्हें देखते हुए हमारा यह विश्वास है कि इन शर्तों पर समझौता हो सकता है—

(क) शासन-विधान के सम्वन्ध में वही स्थिति रहेगी जिसका उल्लेख उस पत्र में है जो वाइसराय ने २८ अगस्त को हम लोगों को भेजा था। इस सम्वन्ध की वातों का उल्लेख उसके दूसरे पैराग्राफ में है, जहां इस विषय की चार मुख्य वातें कही गई हैं।

(ख) एक प्रश्न यह भी है कि गोलमेज-परिषद् में गांधीजी यह प्रश्न उठा सकेंगे या नहीं कि भारत जव चाहे तव साम्राज्य से अलग हो जाय। इस सम्वन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि परिषद् सव वातों में विलकुल स्वतन्त्र होगी; और यही वात उन्होंने उस पत्र में लिखी थी जो हम लोगों को भेजा था। इसलिए वहां प्रत्येक व्यक्ति जो विषय चाहे विचारार्थ उपस्थित कर सकता है। परन्तु वाइसराय का यह विचार है कि इस अवसर पर गांधीजी का यह प्रश्न उठाना वहुत ही नासमझी का काम होगा। परन्तु यदि गांधीजी यह विषय भारत-सरकार के सामने उपस्थित करेंगे, तो

वाइसराय का यह कहना है कि सरकार इस प्रश्न को विचारणीय मानने के लिए तैयार नहीं है। यदि इतने पर भी गांधीजी यह प्रश्न उठाना चाहेंगे, तो सरकार भारत-मंत्री को यह सूचित कर देगी कि गोलमेज-परिषद् में गांधीजी का यह प्रश्न उठाने का विचार है।

(ग) एक प्रश्न यह है कि गोलमेज-परिषद् में यह विषय विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है या नहीं कि भारत पर जो कई आर्थिक भार हैं, उनकी जांच एक स्वतंत्र पंचायत से कराई जाय। इस सम्बन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि वह किसी ऐसे प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं जिससे कि भारत पर जितने ऋण हैं वे सब रद समझे जायें और उनके चुकाने से इन्कार किया जाय। पर हां, जो चाहे वह परिषद् में यह कह सकता है कि भारत का अमुक आर्थिक ऋण या देना ठीक नहीं है और इसकी जांच की जाय।

(घ) नमक-कानून की दंड-सम्बन्धी धाराओं को काम में न लाने के सम्बन्ध में वाइसराय का कहना है कि (१) यदि नमक-कानून के सम्बन्ध में साइमन-कमीशन की सिफारिश मान ली गई, तो यह विषय प्रान्तीय सरकारों के हाथ में चला जायगा; और (२) सरकार की आय में बहुत बड़ी कमी हो चुकी है, इसलिए सरकार यह नहीं चाहेगी कि उसकी आय का यह मार्ग बन्द हो जाय। परन्तु यदि कौंसिलों से नमक-कानून रद करा लिय जायगा और सरकारी आय का घाटा पूरा करने के लिए कोई और नया मार्ग बतलाया जायगा, तो वाइसराय और उनकी सरकार इस प्रश्न के ऊँच-नीच पर विचार करेगी। परन्तु जबतक नमक-कानून एक कानून के रूप में बना रहेगा, तबतक यदि लोग उसे खुले-आम तोड़ेंगे तो सरकार उसे सहन नहीं कर सकेगी। जब सद्भाव और शान्ति स्थापित हो जायगी, तब यदि भारतीय नेता वाइसराय और उनकी सरकार से बातचीत करेंगे कि इस सम्बन्ध में गरीबों का आर्थिक कष्ट किस प्रकार दूर किया जा सकता है, तो वाइसराय प्रसन्नता से इसके लिए भारतीय नेताओं की एक छोटी परिषद् कर सकेंगे।

(ङ) पिकेटिंग के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यदि पिकेटिंग से किसी वर्ग को कष्ट होगा या उसमें लोगों को तंग किया जायगा, धमकाया जायगा या बल-प्रयोग किया जायगा, तो सरकार को इस बात का अधिकार प्राप्त रहेगा कि वह आवश्यकता पड़ने पर इसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई कर सकेगी। इसके सिवा जब शान्ति स्थापित हो जायगी, तब पिकेटिंग-सम्बन्धी आर्डिनेन्स उठा लिया जायगा।

(च) जिन कर्मचारियों ने सत्याग्रह-आन्दोलन के समय इस्तीफा दिया है

या जो अपने पद से हटा दिये गये हैं, उन्हें फिर से नियुक्त करने के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यह विषय मुख्यतः प्रान्तीय सरकारों की इच्छा से सम्बन्ध रखता है। तो भी यदि उनके स्थान खाली होंगे और उनकी जगह ऐसे नये आदमी न नियुक्त कर लिये गये होंगे जो राजनिष्ठ प्रमाणित हो चुके हों, तो प्रान्तीय सरकारों से यह आशा की जा सकती है कि वे उन लोगों को फिर से उनके स्थान पर नियुक्त कर देंगी जिन्होंने आवेश में आकर अपना पद त्याग दिया होगा अथवा लोगों ने विवश करके जिनसे इस्तीफे दिलवाये होंगे।

(छ) प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार जो छापेखाने जब्त कर लिये गये होंगे, उन्हें लौटा देने में कोई कठिनाई न होगी।

(ज) लगान-कानून के सम्बन्ध में जो जुर्माने हुए हैं या जो सम्पत्तियां जब्त हुई हैं, उन्हें लौटाने के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म विचार करने की आवश्यकता है। ऐसे कानून के अनुसार जो सम्पत्तियां जब्त हुई हैं, और वेची गई हैं, वे तीसरे आदमी के हाथ में चली गई हैं। जुर्माने लौटाने के सम्बन्ध में भी कठिनाइयां होंगी। इस सम्बन्ध में वाइसराय केवल यही कह सकते हैं कि प्रान्तीय-सरकारें इसपर न्यायपूर्वक विचार करेंगी और सब परिस्थितियों का ध्यान रक्खेंगी; और जहांतक हो सकेगा, जुर्माने लौटाने का प्रयत्न करेंगी।

(झ) कैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में वाइसराय अपने विचार उस पत्र में प्रकट कर ही चुके हैं जो उन्होंने २८ जुलाई को हमें भेजा था।

गांधीजी के नाम नेहरुओं का आखिरी सूचना-पत्र

पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० महमूद को पहली दोनों मुलाकातों में सर सप्रू व मि० जयकर ने यह स्पष्ट वतला दिया था कि यद्यपि समय वहुत कम है, तो भी ऊपर वतलाये हुए ढंग से आगे समझौते की और वात-चीत हो सकती है; परन्तु वे लोग इस आधार पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं हुए और उन्होंने गांधीजी को देने के लिए एक सूचनापत्र लिखकर दिया, जो इस प्रकार है—

नैनी सेण्ट्रल जेल
३१—८—३०

"कल और आज फिर श्रीयुत जयकर तथा डॉ०सप्रू के साथ हम लोगों की भेंट हुई और वहुत देर तक वातें होती रहीं। उन्होंने उस पत्र की एक नकल हमें

दी है जो लॉर्ड अर्विन ने उन्हें २३ अगस्त को दिया था। उस पत्र में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि लॉर्ड अर्विन उन शर्तों पर समझौते की बात करना असम्भव समझते हैं जो शर्तें हम सब लोगों ने अपने १५ अगस्तवाले उस पत्र में लिखी थीं जो सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीयुत जयकर के नाम लिखा था; और ऐसी स्थिति में लॉर्ड अर्विन का यह कहना ठीक है कि सर सप्रू और श्रीयुत जयकर के प्रयत्न विफल हुए हैं। जैसा कि आप जानते हैं, हम सब लोगों ने यह पत्र सब बातों का बहुत अच्छी तरह विचार करके लिखा था, और हम अपनी व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए जहां तक दब सकते थे, वहां तक दबे थे। उस पत्र में हमने यह बतला दिया था कि जबतक कई परम आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की जायँगी और उनके सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार सन्तोष-जनक घोषणा न कर देगी, तब-तक कोई निराकरण मान्य नहीं होगा। यदि ऐसी घोषणा कर दी जाती तो हम कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश कर सकते थे कि उस दशा में सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, जबकि सरकार उसके साथ ही वे कई काम करे जिनका उल्लेख हम लोगों ने अपने पत्र में किया था। इन प्रारम्भिक बातों का सन्तोषजनक निर्णय हो जाने पर ही यह निश्चय किया जा सकता था कि लन्दनवाली प्रस्तावित परिषद् में कौन-कौन से लोग सम्मिलित होंगे और उसमें कांग्रेस के कितने और कैसे प्रतिनिधि होंगे। अपने पत्र में लॉर्ड अर्विन यहां तक कहते हैं कि इन प्रस्तावों के आधार पर समझौते की बातचीत करना ही असम्भव है। ऐसी परि-स्थितियों में हम लोगों में न तो समझौता होने की कोई गुंजाइश है और न हो सकती है।

वाइसराय ने अपने पत्र में जो बातें लिखी हैं और जिस ढंग से लिखी हैं, उसे छोड़कर यदि देखा जाय तो भी इधर हाल में भारत में ब्रिटिश-सरकार ने जो-कुछ कार्य किये हैं, उनसे यह सूचित होता है कि सरकार शान्ति स्थापित करना नहीं चाहती। ज्योंही इस बात की सूचना प्रकाशित की गई कि दिल्ली में कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक होगी, त्योंही तुरन्त सरकार ने उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया और उसके उपरान्त उसके अधिकांश सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। इस घटना का केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह शान्ति नहीं चाहती। इन या और दूसरी गिरफ्तारियों के लिए, अथवा सरकार की इसी प्रकार की और दूसरी कारंवाइयों के लिए—जिन्हें हम लोग असभ्यता और बर्बरता-पूर्ण समझते हैं—हम लोग सरकार की कोई शिकायत नहीं करते। हम उन सब का स्वागत करते हैं। परन्तु हम लोग यह बतला देना उचित और न्यायपूर्ण समझते हैं कि एक ओर तो शान्ति स्थापित करने की इच्छा रखना

और दूसरी ओर स्वयं उस संस्था पर आक्रमण करना जो शान्ति प्रदान कर सकती है और जिसके साथ सरकार वातचीत करना चाहती है, इन दोनों वातों का ठीक मेल नहीं वैठता। प्रायः सारे भारत में कार्य-समिति गैर-कानूनी ठहरा दी गई है और उसके अधिवेशनों को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसका आवश्यक रूप से यही अर्थ होता है कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, यह राष्ट्रीय युद्ध वरावर जारी रहना चाहिए और तव शान्ति की कोई सम्भावना न रह जायगी; क्योंकि जो लोग भारत-वासियों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं, वे सारे भारत में अंग्रेजी जेलखानों में भर और फैल जायँगे।

लॉर्ड अर्विन ने जो पत्र भेजा है और व्रिटिश-सरकार ने जो-कुछ काम किया है, उससे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि डॉ० सप्रू और श्रीयुत् जयकर का यह प्रयत्न व्यर्थ है। वास्तव में जो पत्र हमें दिया गया है और जो कैफियतें हमें दी गई हैं, उनसे तो कुछ वातों में हम लोग उस स्थिति से और भी पीछे हट जाते हैं जो पहले ग्रहण की गई थी। हमारी स्थिति या वातों और लॉर्ड अर्विन की स्थिति या वातों में जो वहुत वड़ा अन्तर है, उसे देखते हुए कदाचित् व्योरे की वातों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती............।

इस प्रकार हम लोगों ने जितने प्रमुख प्रस्ताव किये थे, उनसे लॉर्ड अर्विन सहमत नहीं हो रहे हैं; और न उन छोटे प्रस्तावों को ही वह मानते हैं, जिनका हम लोगों ने अपने सम्मिलित पत्र में उल्लेख किया था। उनके और हम लोगों के दृष्टिकोण में वहुत वड़ा अन्तर है और वास्तव में तत्त्व या सिद्धान्त का अन्तर है। हम लोग आशा करते हैं कि आप यह सूचना-पत्र श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीयुत् जयरामदास दौलतराम को दिखला देंगे और उन लोगों से परामर्श करके श्रीयुत जयकर और सर तेजवहादुर सप्रू को अपना उत्तर दे देंगे।

मोतीलाल
सैयद महमूद
जवाहरलाल

नेताओं का सम्मिलित उत्तर

इसके अनुसार ३, ४ और ५ सितम्वर को सर सप्रू व मि० जयकर ने पूना के यरवडा-जेल में महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के दूसरे नेताओं के साथ भेंट की, उन्हें उक्त पत्र दिया और सहमत प्रश्नों पर उनके साथ मिलकर विचार और वाद-विवाद

किया। इस बातचीत के अन्त में उन लोगों ने इन्हें जो वक्तव्य दिया, वह यहां दिया जाता है—

यरवडा सेण्ट्रल जेल
५–९–३०

प्रिय मित्रगण,

श्रीमान् वाइसराय ने २८–८–३० को आप लोगों को जो पत्र लिखा था, उसे हम लोगों ने ध्यान-पूर्वक पढ़ा है। उस पत्र की बातों के सम्बन्ध में वाइसराय से आप लोगों की जो बातें हुई हैं, उन्हें भी आपने कृपाकर उस पत्र में परिशिष्ट-रूप में सम्मिलित कर दिया है। हम लोगों ने उतने ही ध्यान से वे सूचनायें भी पढ़ी हैं, जिनपर पण्डित मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और पं० जवाहरलाल नेहरू के हस्ताक्षर हैं और जो उन लोगों ने आपके द्वारा भेजी हैं। उक्त पत्र तथा बातचीत पर उस सूचना-पत्र में उनकी विचारपूर्ण सम्मति भी सम्मिलित है। इन पत्रों पर हम लोगों ने बराबर दो रातों तक विचार किया है और इन कागजों के सम्बन्ध में जितनी विचारणीय बातें हैं उन सबपर आपके साथ पूरा और स्वतंत्र विचार भी हो चुका है। और जैसा कि हमने आप लोगों से कहा था, हम निश्चित रूप से इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि सरकार और कांग्रेस के बीच हमें मेल की कोई गुंजाइश दिखाई नहीं पड़ती। हमारा इस समय बाहरी संसार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; इसलिए कांग्रेस की ओर से हम लोग अधिक-से-अधिक जो-कुछ कह सकते हैं, वह यही है।

नैनी सेण्ट्रल जेल से हमारे माननीय मित्रों ने अपने सूचना-पत्र में जो सम्मति भेजी है, उससे हम लोग पूर्ण रूप से सहमत हैं, परन्तु हमारे उन मित्रों की इच्छा है कि इधर दो महीनों से आप लोग देश-हित के उद्देश्य से अपने समय का बहुत-कुछ व्यय करके और बहुत सी कठिनाइयां उठाकर शान्ति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके सम्बन्ध में हम अपने शब्दों में यह बतला दें कि हम लोगों की स्थिति और वक्तव्य क्या है। इसलिए जहांतक संक्षेप में हो सकता है, हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि शान्ति स्थापित होने में कौन-सी मुख्य-मुख्य कठिनाइयां हैं।

वाइसराय का १६–७–३० वाला जो पत्र है, उसके सम्बन्ध में हमारा यह मत है कि उसमें उन शर्तों को पूरा करने का विचार किया गया है जो पं० मोतीलाल ने गत २० जून को मि० स्लोकोम्ब को बतलाई थीं और २५ जून को अपनी स्वीकृति से उन्होंने मि० स्लोकोम्ब को अपना जो वक्तव्य दिया था, उसमें जो शर्तें कही गई

थीं। परन्तु वाइसराय के १६ जुलाई वाले पत्र की भाषा में हमें कोई ऐसी बात नहीं दिखलाई पड़ती जिससे यह समझा जाय कि पं० मोतीलालजी के उक्त वार्तालाप या वक्तव्य में बतलाई हुई शर्तें पूरी होती हैं। उक्त वार्तालाप और वक्तव्य में जो मूल्य और काम के अंश हैं, वे इस प्रकार हैं:—

वार्त्तालाप में—"यदि यह निश्चय नहीं किया जायगा कि गोलमेज-परिषद् में किन-किन बातों पर विचार किया जायगा और हम लोगों से यह आशा की जायगी कि हम लोग लन्दन में जाकर बहस करके लोगों को इस विषय का सन्तोष करायेंगे कि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य चाहिए, तो मैं इसे मंजूर नहीं कर सकता। परन्तु यदि यह बात स्पष्ट कर दी जायगी कि भारत की विशेष आवश्यकताओं और परिस्थितियों तथा अंग्रेजों के साथ के पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए पारस्परिक सम्बन्ध ठीक करने के लिए जिन बातों को बचाने की आवश्यकता होगी, उन्हें छोड़ कर बाकी और बातों में परिषद् के अधिवेशन में यह निश्चय किया जायगा कि स्वतन्त्र भारत का विधान किस प्रकार बनाया जाय, तो कम-से-कम मैं कांग्रेस से इस बात की सिफारिश करूँगा कि वह परिषद् में सम्मिलित होने का निमन्त्रण स्वीकृत कर ले। हम लोग अपने घर के आप मालिक बनना चाहते हैं; परन्तु हम इस बात के लिए तैयार हैं कि जितने समय में अंग्रेजों के हाथ से निकाल कर एक उत्तरदायी भारतीय सरकार के हाथ में भारत का शासनाधिकार आयगा, उतने समय तक के लिए कुछ खास शर्तें हो जायँ। इन शर्तों पर अंग्रेजों के साथ विचार करने के लिए समानता के नाते हम उसी प्रकार मिल सकते हैं, जिस प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ मिलकर बातचीत करता है।"

वक्तव्य में—"सरकार निजी रूप से इस बात का वचन देने के लिए तैयार हो जाय कि भारतवर्ष की विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों का विचार करते हुए और ग्रेट ब्रिटेन के साथ पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए आपस में जैसी व्यवस्था करना निश्चित कर लिया जायगा और अधिकार हस्तान्तरित होने तक के समय के लिए जो शर्तें तय हो जायँगी, और जिनका निर्णय गोलमेज-परिषद् में हो जायगा, उन बातों को छोड़कर भारत की पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली की माँग का वह समर्थन करेगी।"

इस सम्बन्ध में वाइसराय के उत्तर में जो कुछ कहा गया है, वह इस प्रकार है—

"मेरी और मेरी सरकार की यह हार्दिक कामना है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही कामना है कि जहां तक

हो, हम सब अपने-अपने क्षेत्रों में इस बात का पूरा प्रयत्न करें कि जिन बातों में भारत-वासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नहीं हैं, उन बातों को छोड़कर बाकी और सब बातों में अपने देश के और कामों का जितना अधिक प्रबन्ध वे स्वयं कर सकते हों उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हें सहायता दी जाय। भारत-वासी किन-किन विषयों में अभी अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकते हैं और उनके सम्बन्ध में क्या-क्या शर्तें और व्यवस्थायें की जानी चाहिएँ, इसपर परिषद् में विचार होगा। परन्तु मेरा कभी यह विश्वास नहीं रहा है कि यदि आपस में एक-दूसरे पर विश्वास रक्खा जाय तो समझौता करना असम्भव होगा।"

हम लोग समझते हैं कि इन दोनों बातों में बहुत बड़ा अन्तर है। पं० मोती-लालजी तो भारत को एक ऐसे स्वतन्त्र रूप में देखना चाहते हैं जिसमें प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् के विचारों के परिणाम-स्वरूप उसकी स्थिति वर्तमान स्थिति से बिलकुल बदल जाय (वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाय); पर वाइसराय अपने पत्र में केवल यही कहते हैं कि मेरी, हमारी सरकार की और ब्रिटिश सरकार की यह हार्दिक कामना है कि जिन बातों में भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नहीं हैं, उन्हें छोड़कर बाकी और बातों में वे अपने देश के और कामों का जितना अधिक प्रबन्ध स्वयं कर सकते हों उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हें सहायता दी जाय। दूसरे शब्दों में वाइसराय के पत्र में केवल यही आशा दिलाई जाती है कि हमें उसी ढंग के कुछ और सुधार मिल जायँगे जिस ढंग के सुधारों का आरम्भ लैन्सडाउन-सुधारों से हुआ था। हम लोग यह समझते थे कि इसका हमने जो यह अर्थ लगाया है, वही ठीक है; इसलिए अपने १५-८-३० वाले पत्र में, जिसपर पं० मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और पं० जवाहरलाल नेहरू ने हस्ताक्षर किये थे, हम लोगों ने अपना कथन नकारात्मक रक्खा था और कहा था कि हमारी सम्मति में कांग्रेस इससे सन्तुष्ट नहीं होगी। अब आप लोग वाइसराय का जो पत्र लाये हैं, उसमें भी वही पहले पत्रवाली बात दुहराई गई है; और हमें दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि हमारे पत्र का अनादर करके उसके सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि वह विचार करने के योग्य ही नहीं है; और हम लोगों ने उसमें जो प्रस्ताव किए थे, उनके आधार पर बातचीत चलना असम्भव है। आप लोगों ने यह कहकर इस विषय पर और भी प्रकाश डाल दिया है कि यदि गांधीजी भारत-सरकार के सामने निश्चित रूप से इस प्रकार का कोई प्रश्न उपस्थित करेंगे (अर्थात् भारत जब चाहे तब साम्राज्य से पृथक् हो सकता है), तो वाइसराय यही कहेंगे कि यह प्रश्न विचारार्थ उठ ही नहीं सकता। इसके विप-

रीत हम लोग यह समझते हैं कि भारत में चाहे जिस प्रकार की स्वतन्त्र शासन-प्रणाली स्थापित हो, परन्तु यह सब दशा में सर्व-प्रधान प्रश्न है और इसके सम्बन्ध में किसी वहस-मुवाहसे की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए। यदि भारत को पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली या पूर्ण-स्वराज्य अथवा इसी प्रकार की और कोई शासन-प्रणाली प्राप्त होने को हो, तो उसका आधार शुद्ध स्वेच्छा पर होना चाहिए और प्रत्येक दल को इस बात का अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह जब चाहे तब आपस की हिस्से-दारी का साथ छोड़ सकता है। यदि भारत को साम्राज्य का अंग बनाकर न रखना हो, बल्कि उसे ब्रिटिश राष्ट्र-समूह का एक बराबरी का और स्वतन्त्र हिस्सेदार बनना हो, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि उस संगित तथा सहयोग के लिए भारत अपनी आवश्यकता समझे; और उसके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार होना चाहिए कि वह उसमें मिला रहने के लिए सदा तैयार रहे। इसके सिवा और किसी दशा में यह बात नहीं हो सकती। आप लोग देखेंगे कि जिस वार्त्तालाप का हम लोगों ने अभी उल्लेख किया है, उसमें यह बात स्पष्ट रूप से कह दी गई है। इसलिए जबतक ब्रिटिश-सरकार या ब्रिटिश जनता यह समझती हो कि भारत के लिए यह स्थिति प्राप्त होना असम्भव है या ऐसी स्थिति नहीं चल सकती, तब तक हम लोगों की सम्मति में कांग्रेस को स्वतन्त्रता का युद्ध बराबर जारी रखना चाहिए।

नमक-कर के सम्बन्ध में हम लोगों का जो एक छोटा और साधारण प्रस्ताव था, उसके विषय में वाइसराय का जो रुख है, उससे सरकार के मनोभावों का एक बहुत ही दु:खद स्वरूप प्रकट होता है। हम लोगों को यह बात दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट जान पड़ती है कि शिमला की ऊँचाई पर से भारत के शासक यह समझने में अस-मर्थ हैं कि नीचे मैदानों में रहनेवाले जिन लाखों-करोड़ों आदमियों के परिश्रम से सरकार का इतनी ऊंचाई पर जाकर रहना सम्भव होता है, उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ क्या हैं। नमक एक ऐसी प्राकृतिक देन है जो गरीब आदमियों के लिए वायु और जल को छोड़ कर बाकी और चीजों से बढ़ कर महत्त्व की है। उस नमक पर सरकार ने अपना जो एकाधिकार कर रक्खा है, उसके विरुद्ध गत पांच महीनों में निर्दोष आदमियों ने अपना जो खून बहाया है, उससे यदि सरकार की समझ में यह बात नहीं आई कि इसमें उसकी कितनी अनीति है, तो फिर वाइसराय कि बतलाई हुई भारतीय नेताओं की कोई परिषद् कुछ भी नहीं कर सकती। वाइसराय ने यह भी कहा है कि जो लोग यह कानून रद कराना चाहते हों, उन्हें एक ऐसा साधन भी बतलाना चाहिए जिससे सरकार की उतनी ही आय बढ़ जाय जितनी उसे नमक से होती है। यह कह कर उन्होंने

मानों हानि पहुँचाने के उपरान्त ऊपर से देश का अपमान भी किया है। उनके इस रुख से यही सूचित होता है कि यदि सरकार का वश चलेगा, तो वह भारत में अनन्त काल तक अपनी वह परम व्यय-साध्य शासन-प्रणाली प्रचलित रक्खेगी जिससे भारत अब तक बराबर कुचला जाता रहा है। हम लोग यह भी बतला देना चाहते हैं कि केवल यहीं की सरकार नहीं, बल्कि समस्त संसार की सरकारें जनता-द्वारा उन कानूनों के भंग किये जाने को खुले-आम उपेक्षा की दृष्टि से देखती हैं, जिन कानूनों को जनता अच्छा नहीं समझती परन्तु जो कानूनी हेर-फेर के कारण अथवा और कारणों से तुरन्त ही रद नहीं किये जा सकते।

इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसी महत्व की बातें हैं जिनके सम्बन्ध में हमने जनता के विचार और माँगें उपस्थित की थीं, पर उनके सम्बन्ध में भी वाइसराय कुछ भी अग्रसर नहीं हुए हैं। परन्तु यहाँ हम उन बातों पर विचार नहीं करना चाहते। हम लोग आशा करते हैं कि हमने ऐसी महत्त्वपूर्ण यथेष्ट बातें बतला दी हैं जिनके सम्बन्ध में कम-से-कम इस समय ब्रिटिश-सरकार और कांग्रेस के बीच बहुत बड़ा अन्तर है, जो जल्दी दूर नहीं किया जा सकता। तो भी शान्ति के उद्योग में इस समय जो विफलता होती हुई दिखाई देती है, उसके लिए निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस इस समय स्वतन्त्रता के लिए विकट युद्ध में लगी हुई है। इसमें राष्ट्र ने जो अस्त्र ग्रहण किया है, हमारे शासक उसके अभ्यस्त नहीं हैं, इसलिए उन्हें उस अस्त्र का भाव और महत्त्व समझने में विलम्ब होगा। इधर कई महीनों में भारतवासियों ने जो विपत्तियाँ सही हैं, उनसे यदि शासकों के मन का भाव नहीं बदला है, तो इससे हम लोगों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। किसी ने उचित रूप से जो स्वार्थ इस देश में स्थापित किए हों अथवा जो अधिकार प्राप्त किये हों, उनमें से एक को भी कांग्रेस हानि नहीं पहुँचाना चाहती। अंग्रेजों के साथ उसका कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु देश पर ब्रिटिश-जाति का जो असह्य प्रभुत्व है, उसका वह अपने पूर्ण नैतिक बल से विरोध करती है और उसपर अपना असन्तोष प्रकट करती है और बराबर ऐसा करती रहेगी। हम लोगों का अन्त तक अहिंसात्मक रहना निश्चित है, इसलिए यह भी निश्चित ही है कि राष्ट्र की कामनायें भी शीघ्र ही पूरी होंगी। यद्यपि अधिकारी लोग सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत ही कटु और प्रायः अपमानकारी भाषा का व्यवहार करते है, तो भी हमारा यही कथन है।

अन्त में हम लोग फिर एक बार आप लोगों को उस कष्ट के लिए धन्यवाद देते हैं जो आपने शान्ति स्थापित करने के लिए उठाया है; परन्तु हम यह सूचित कर

देना चाहते हैं कि अभी ऐसा उपयुक्त समय नहीं आया है जबकि समझौते की बात-चीत और आगे चल सके। कांग्रेस-संगठन के प्रधान अधिकारी और कार्यकर्त्ता इस समय जेलों में बन्द हैं; इसलिए स्पष्टतः हम लोग बहुत विवश हैं। हम लोग दूसरों से सुनी हुई बातों के आधार पर ही सब मागें उपस्थित करते रहे हैं और अपने विचार बतलाते रहे हैं, इसलिए सम्भव है कि उनमें कुछ दोष या त्रुटियाँ हों। इसलिए इस समय जिन लोगों के हाथ में संगठन का काम है, वे स्वभावतः हम लोगों में से किसी के साथ भेंट करना चाहेंगे। उस दशा में, और जब कि स्वयं सरकार भी शान्ति स्थापित करने के लिए उतनी ही उत्सुक होगी, उन्हें हम लोगों के पास तक पहुँचने में कोई कठिनाई न होगी।

मो० क० गांधी, सरोजिनी नायडू, वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम।"

परिशिष्ट ७

साम्प्रदायिक 'निर्णय'

साम्प्रदायिक निर्णय का सम्राट् की सरकार ने जो ऐलान किया था वह, अविकल रूप में, नीचे लिखे अनुसार है :—

१. सम्राट-सरकार की ओर से, गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन के अन्त में, १ दिसम्बर को, प्रधानमंत्री ने जो घोषणा की थी, और जिसकी ताईद उसके बाद ही पार्लमेण्ट के दोनों हाउसों ने भी कर दी थी, उसमें यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि भारतवर्ष में रहने वाली विविध जातियाँ साम्प्रदायिक प्रश्नों पर किसी ऐसे समझौते पर न पहुँच सकीं जो सब दलों को मान्य हो, जिसे कि हल करने में परिषद् असफल रही है, तो सम्राट्-सरकार का यह दृढ़ निश्चय है कि इस वजह से भारत की वैधानिक प्रगति नहीं रुकनी चाहिए और इस बाधा को दूर करने के लिए वह स्वयं एक आरजी योजना तैयार करके उसे लागू करेगी।

२. गत १९ मार्च को, यह सूचना मिलने पर कि किसी समझौते पर पहुँचने में विविध जातियाँ लगातार असफल हो रही हैं, जिससे नया शासन-विधान

बनने की योजना आगे नहीं बढ़ सकती, सम्राट्-सरकार ने कहा था कि इस सम्बन्ध में उठने वाली कठिनाइयों और विवादास्पद बातों पर वह फिर से सावधानी के साथ विचार करेगी। अब उसे इस बात का यकीन हो गया है कि जब तक नये शासन-विधान के अन्तर्गत अल्प-संख्यक जातियों की स्थिति-सम्बन्धी समस्याओं के कम-से-कम कुछ पहलुओं का निर्णय न हो जायगा तब तक विधान बनाने की दिशा में आगे कोई प्रगति नहीं हो सकती।

३. इसलिए सम्राट्-सरकार ने यह निश्चय किया है कि भारतीय शासन-विधान-सम्बन्धी प्रस्तावों में, जोकि यथासमय पार्लमेण्ट के सामने पेश किये जायंगे, वह ऐसी धारायें रक्खेगी, जिससे नीचे लिखी योजना पर अमल हो सके। इस योजना का कार्य-क्षेत्र जान-बूझकर प्रान्तीय-कौन्सिलों में ब्रिटिश-भारत की विभिन्न जातियों के प्रतिनिधित्व तक ही सीमित रक्खा गया है, केन्द्रीय धारा-सभा में प्रतिनिधित्व का विचार फिलहाल नीचे दिये हुए २०वें पैराग्राफ में उल्लिखित कारणों से नहीं किया गया है। लेकिन योजना के कार्य-क्षेत्र को सीमित रखने के निश्चय का आशय इस बात को महसूस न कर सकना नहीं है, कि विधान बनाने में ऐसी अनेक अन्य समस्याओं का भी निर्णय करना होगा जिनका अल्प-संख्यक जातियों के हक में बड़ा महत्त्व है; बल्कि इस आशा से यह निश्चय किया गया है कि प्रतिनिधित्व के तरीके और अनुपात के मूल प्रश्न पर जब एक बार घोषणा कर दी गई तो फिर उन दूसरे साम्प्रदायिक प्रश्नों पर, कि जिनके बारे में अभी आवश्यक विचार नहीं किया जा सका है, सम्भवतः जातियां स्वयं ही कोई मार्ग ढूंढ़ निकालेंगी।

४. सम्राट्-सरकार चाहती है कि इस बात को बिलकुल स्पष्ट-रूप से समझ लिया जाय कि इस निर्णय में रद्दोबदल करने के लिए जो भी कोई बात-चीत होगी उसमें वह भाग नहीं लेगी और न इसमें संशोधन कराने के ऐसे किसी आवेदन-पत्र पर विचार करने को ही वह तैयार होगी, जो इससे सम्बन्धित सभी दलों-द्वारा समर्थित न हो। लेकिन सद्भाग्य से अगर कोई सर्व-सम्मत समझौता हो जाय, तो वह उसके लिए दरवाजा बन्द नहीं करना चाहती। इसलिए, नया भारत-शासन-विधान कानून बनने से पहले, अगर उसे इस बात का सन्तोष हो जाय कि इससे सम्बन्धित जातियां किसी दूसरी व्यावहारिक योजना पर, किसी एक या अधिक प्रान्तों या समस्त ब्रिटिश-भारत के लिए, परस्पर एक-मत हैं, तो वह पार्लमेंट से इस बात की सिफारिश करने को तैयार रहेगी कि प्रस्तुत योजना की जगह उस योजना को रख दिया जाय।

५. गवर्नर-वाले प्रान्तों की कौन्सिलों या लोअर हाउस में, बशर्ते कि वहाँ

अपर चेम्वर हो, सदस्यों के स्थान नीचे २४वें पैराग्राफ में वतलाये हुए हिसाव के अनुसार रहेंगे।

६. मुसलमान, यूरोपियन और सिक्ख सदस्यों का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचनों के द्वारा होगा, जिन्हें (सिवा उन भागों के कि जिन्हें खास-खास सूरतों में 'पिछड़ा हुआ' होने के कारण निर्वाचन-क्षेत्र से वाहर रक्खा जाय) तमाम प्रान्त में अलग रखने की व्यवस्था की जायगी।

पृथक् निर्वाचन

इस वात की स्वयं विधान में गुंजाइश रक्खी जायगी कि जिससे दस वर्ष के वाद निर्वाचन-व्यवस्था का (और ऐसी ही दूसरी व्यवस्थाओं का, जो नीचे दी हुई हैं) इससे सम्वन्धित जातियों की स्वीकृति से, जिसे जानने के लिए उपयुक्त तरीके सोचे जायँगे, पुनरावलोकन कर दिया जायगा।

७. वे सव जायज मतदाता, जो किसी मुसलमान, सिक्ख, ईसाई (पैराग्राफ १० देखिए), एंग्लो-इंडियन (पैराग्राफ ११ देखिए) या यूरोपियन निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता नहीं हैं, आम निर्वाचन-क्षेत्र में मत दे सकेंगे।

८. वम्वई में कुछ चुने हुए वहुसंख्यक सदस्यों के आम निर्वाचन-क्षेत्रों में ७ स्थान मराठों के लिए सुरक्षित रहेंगे।

दलित-जातियाँ

९. 'दलित-जातियों' में जिन्हें मत देने का अधिकार होगा, वे आम निर्वाचन-क्षेत्र में मत देंगे। इस वात को मद्देनजर रखते हुए कि अकेले इस उपाय से इन जातियों के लिए किसी कौन्सिल में अपना काफी प्रतिनिधित्व प्राप्त करना फिलहाल वहुत समय तक सम्भव नहीं है, उनके लिए कुछ विशेष स्थान रक्खे जायँगे, जैसा कि २४वें पैराग्राफ में वताया है। इन जगहों का चुनाव विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा, जिनमें दलित-वर्ग वाले वही लोग मत देंगे जिन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त होगा। ऐसे खास निर्वाचन-क्षेत्र में मत देने वाला कोई भी व्यक्ति, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी आम निर्वाचन-क्षेत्र में भी मत दे सकेगा। ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र उन खास-खास इलाकों में वनाने की मंशा है जहाँ दलित-वर्गवालों की काफी आवादी है; और मदरास अहाते के अलावा और कहीं ऐसा न होना चाहिए कि प्रान्त का सारा इलाका उन्हीं से घिर जाय।

बंगाल में, ऐसा मालूम पड़ता है कि, कुछ आम निर्वाचन-क्षेत्रों में अधिकांश मतदाता दलित-वर्गों के व्यक्ति होंगे। इसलिए, जब तक इस बारे में और अधिक पूछताछ न हो जाय, तब तक, उस प्रान्त में दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या अभी निश्चित नहीं की गई है। सरकार चाहती यह है कि बंगाल-कौन्सिल में दलित-जातियों के कम-से-कम १० सदस्य तो पहुँच ही जायें।

जो लोग (अगर उन्हें मत देने का अधिकार है) दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से मत दे सकेंगे उनकी हरेक प्रान्त में क्या व्यवस्था की जायगी, यह अभी अन्तिम रूप से तय नहीं हुआ है। सामान्यतः इसका आधार वे साधारण सिद्धान्त होंगे, जिनका कि मताधिकार-समिति की रिपोर्ट में प्रतिपादन किया गया है। मगर उत्तर-भारत के कुछ प्रान्तों में, जहाँ अस्पृश्यता की आम कसौटी को लागू करना सम्भवतः कुछ बातों में वहाँ की विशेष परिस्थिति के अनुपयुक्त होगा, इस सम्बन्ध में थोड़ा रद्दोबदल करना आवश्यक होगा।

सम्राट्-सरकार का खयाल है कि दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों की आवश्यकता एक सीमित समय के लिए ही होगी। इसलिए विधान में वह ऐसी बात रखना चाहती है कि बीस साल के आखिर में, अगर उससे पहले ही छठे पैराग्राफ में उल्लिखित निर्वाचन का संशोधन करने के आम अधिकार के द्वारा यह रद न हो गया होगा तो, ये नहीं रहेंगे।

भारतीय ईसाई

(१०) भारतीय ईसाइयों के लिए रक्खी जाने वाली जगहों का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। यह करीब-करीब निश्चित सा मालूम पड़ता है कि किसी प्रान्त के पूरे इलाके में भारतीय ईसाइयों के निर्वाचन-क्षेत्र बनाना अव्यावहारिक होगा, इसलिए प्रान्त के किसी एक या दो चुने हुए इलाकों में ही भारतीय ईसाइयों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्र रक्खे जायँगे। इन निर्वाचन-क्षेत्रों के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन-क्षेत्रों में मत नहीं देंगे; लेकिन इन इलाकों से बाहर के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन-क्षेत्रों में ही अपने मत देंगे। बिहार और उड़ीसा में विशेष व्यवस्था करनी पड़ेगी, क्योंकि वहाँ भारतीय ईसाइयों का काफी बड़ा भाग आदिम जातियों के अन्दर शुमार होता है।

एंग्लो-इंडियन

(११) एंग्लो-इंडियन सदस्यों का निर्वाचन पृथक्-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। फिलहाल, अगर कोई व्यावहारिक कठिनाइयां उत्पन्न हों तो उनकी तहकीकात करने की गुंजाइश रखते हुए, यह सोचा गया है कि एंग्लो-इंडियन-निर्वाचन-क्षेत्र हरेक प्रान्त के सारे इलाके के लिए होंगे, जिनमें मत-गणना डाक से भेजी जाने वाली पर्चियों के द्वारा होगी; लेकिन इस बारे में अभी कोई अन्तिम फैसला नहीं हुआ है।

(१२) पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधियों के लिए जो स्थान रक्खे गये हैं उनकी पूर्त्ति का उपाय अभी विचाराधीन है, और ऐसे सदस्यों की जो संख्या रक्खी गई है उसे अभी, जब तक कि ऐसे इलाकों के बारे में की जानेवाली वैधानिक व्यवस्था का कोई अन्तिम निश्चय न हो जाय, आरजी समझना चाहिए।

स्त्रियां

(१३) सम्राट् की सरकार इस बात को बहुत महत्त्व देती है कि नई कौन्सिलों में स्त्री-सदस्यायें भी रहें, चाहे उन की संख्या थोड़ी ही हो। उसका ख्याल है कि प्रारम्भ में, यह ध्येय तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि कुछ स्थान खास तौर पर स्त्रियों के लिए सुरक्षित न कर दिये जायें। साथ ही उसका यह भी खयाल है कि स्त्री-सदस्यायें किसी एक ही जाति की नहीं होनी चाहिएँ और सो भी बिना किसी अनुपात के। इसलिए खास तौर पर स्त्रियों के लिए रक्खी जाने वाली हरेक 'सीट' का चुनाव एक ही जाति के मत-दाताओं तक मर्यादित करने के सिवा, जिसमें कि नीचे २४वें पैराग्राफ में स्पष्ट किया हुआ अपवाद रहेगा, और कोई ऐसी पद्धति ढूंढ़ निकालने में वह असमर्थ रही है, जिससे कि यह खतरा रोका जा सके और जो प्रतिनिधित्व की उस शेप योजना के अनुरूप हो कि जिसे ग्रहण करना आवश्यक समझा गया है। अतएव, इसके अनुसार, जैसा कि नीचे २४वें पैराग्राफ में स्पष्ट किया गया है, विभिन्न जातियों में स्त्रियों की विशेप जगहों को खास तौर पर विभाजित कर दिया गया है। इन विशेप निर्वाचन-क्षेत्रों में किस खास ढंग से निर्वाचन होगा, यह अभी विचाराधीन है।

विशेप वर्ग

(१४) 'मजदूरों' के लिए रक्खी गई सीटों का चुनाव अ-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। निर्वाचन-व्यवस्था का अभी निश्चय करना है; लेकिन

बहुत सम्भव है कि अधिकांश प्रान्तों में, जैसा कि मताधिकार-समिति ने सिफारिश की है, मजदूर-निर्वाचन-क्षेत्र कुछ तो मजदूर-संघ होंगे और कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्र।

(१५) उद्योग-व्यवसाय, खानों और खेतिहरों के सदस्यों का चुनाव व्यवसाय-संघ (चेम्बर आफ कामर्स) और दूसरे विविध-संघों के द्वारा होगा। इन स्थानों की निर्वाचन-व्यवस्था की तफसील के लिए अभी और छान-बीन होना आवश्यक है।

(१६) जमींदारों के लिए रक्खे गये विशेष स्थानों का चुनाव जमींदारों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा।

(१७) विश्व-विद्यालय के लिए रक्खे गये स्थानों का चुनाव किस तरह किया जाय, यह अभी विचाराधीन है।

(१८) प्रान्तीय कौन्सिलों में प्रतिनिधित्व के इन प्रश्नों का निर्णय करने में सम्राट-सरकार को काफी तफसील में जाना पड़ा है, इतने पर भी निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी तो अभी बाकी ही रह गई है। सरकार का इरादा है, कि जितनी जल्दी हो सके हिन्दुस्तान में इस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिया जाय।

कुछ जगह तो, सदस्यों की जो संख्या इस समय रक्खी गई है सम्भवतः उसमें थोड़ा फर्क कर देने से, निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी मुकम्मिल तौर पर ठीक हो जायगी। अतएव सम्राट्-सरकार इस प्रयोजन के लिए मामूली हेर-फेर करने का अधिकार अपने लिए रक्षित रखती है, बशर्ते कि उस हेर-फेर से विभिन्न जातियों के अनुपात में कोई असली अन्तर न पड़े। लेकिन बंगाल और पंजाब के मामले में ऐसा कोई हेर-फेर नहीं किया जायगा।

द्वितीय चेम्बर

(१९) विधान-सम्बन्धी विचार-विनिमय में अभी तक तुलनात्मक रूप में, प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने के प्रश्न पर कम ध्यान दिया गया है; अतः इस सम्बन्ध की कोई योजना बनाने या इस बात का निर्णय करने से पहले कि किन-किन प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने चाहिएँ, और विचार होने की आवश्यकता है।

सम्राट्-सरकार का विचार है कि प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर का निर्माण इस तरह होना चाहिए जिससे, छोटी कौन्सिल बनाने के परिणाम-स्वरूप, भिन्न-भिन्न जातियों के बीच रक्खे गये अनुपात में कोई खास फर्क न पड़े।

(२०) केन्द्रीय धारासभा (बड़ी कौंसिल) के आकार और निर्माण के

प्रश्न में फिलहाल सम्राट्-सरकार नहीं पड़ना चाहती, क्योंकि इसमें अन्य प्रश्नों के साथ देशी-राज्यों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी उपस्थित होता है, जिस पर अभी और विचार होना है। उसके सम्बन्ध में विचार करते समय, तमाम जातियों के उसमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व के दावों पर वह निस्सन्देह पूरा ध्यान देगी।

सिन्ध का पृथक्करण

(२१) सम्राट्-सरकार ने इस सिफारिश को मंजूर कर लिया है, कि सिन्ध एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय, यदि उसका व्यवस्था-खर्च निकलने-लायक सन्तोष-जनक उपाय निकल आयें। क्योंकि संघीय-राजस्व की अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में उठने वाली आर्थिक समस्याओं पर अभी और विचार होना है, सम्राट्-सरकार ने यह ठीक समझा है कि बम्बई-प्रान्त और सिन्ध की पृथक् कौंसिलों की संख्यायें तो दी ही जायँ पर उस के साथ ही मौजूदा बम्बई-प्रान्त की दृष्टि से भी (अर्थात्, सिन्ध-सहित बम्बई-प्रान्त की) कौन्सिल की संख्यायें भी दे दी जायँ।

(२२) बिहार-उड़ीसा के जो अंक दिये गये हैं वे मौजूदा प्रान्त के लिहाज से हैं; क्योंकि उड़ीसा को पृथक् प्रान्त बनाने के बारे में अभी भी तहकीकात हो रही है।

(२३) नीचे दिये हुए २४वें पैराग्राफ में बरार-सहित मध्यप्रान्त की कौंसिल के सदस्यों की जो संख्यायें दी हैं उससे यह न समझना चाहिए कि बरार की भावी वैधानिक स्थिति के बारे में कोई निर्णय किया जा चुका है। अभी तक ऐसा कोई निर्णय नहीं हुआ है।

(२४) विभिन्न प्रान्तों की कौंसिलों (सिर्फ छोटी कौंसिलों) में सदस्यों की संख्यायें नीचे लिखे अनुसार रहेंगी :—

१. मदरास

आम (६ स्त्रियां)	..	१३४
दलित-जाति वाले	..	१८
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि		१
मुसलमान (१ स्त्री)	..	२९
भारतीय ईसाई (१ स्त्री)	..	९
एंग्लो-इंडियन	..	२
यूरोपियन	..	३
उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहर		६
जमींदार	..	६
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर	..	६
कुल	..	२१०

२. बम्बई
(सिन्ध-सहित)

आम (५ स्त्रियां)	..	९७
दलित जाति वाले	..	१०

पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि	..	१
मुसलमान (१ स्त्री)	..	६३
भारतीय ईसाई	..	३
एंग्लो-इण्डियन	..	२
यूरोपियन	..	४
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	८
जमींदार ...	..	३
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर ..	..	८
कुल	..	२००

३. बंगाल

आम (२ स्त्रियां)	..	८०
दलित-जाति वाले	..	०
मुसलमान (२ स्त्रियां)	..	११९
भारतीय ईसाई	..	२
एंग्लो-इण्डियन (१ स्त्री)	..	४
यूरोपियन ...	..	११
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	१९
जमींदार	..	५
विश्व-विद्यालय	..	२
मजदूर	..	८
कुल	..	२५०

४. संयुक्तप्रान्त

ाम (४ स्त्रियां)	..	१३२
लित-जाति वाले	..	१२
सलमान (२ स्त्रियां)	..	६६
रतीय ईसाई	..	२
लो-इण्डियन	..	१
यूरोपियन	..	
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	
जमींदार	..	
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर	..	३
कुल	..	२२८

५. पंजाब

आम (१ स्त्री)	..	४३
सिक्ख (१ स्त्री)	..	३२
मुसलमान (२ स्त्रियां)	..	८६
भारतीय ईसाई	..	२
एंग्लो-इण्डियन	..	१
यूरोपियन	..	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	१
जमींदार	..	५
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर	..	३
कुल	..	१७५

६. बिहार-उड़ीसा

आम (३ स्त्रियां)	..	९९
दलित-जाति वाले	..	७
पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधि		८
मुसलमान (१ स्त्री)	..	४२
भारतीय ईसाई	..	२
एंग्लो-इण्डियन	..	१
यूरोपियन ...	..	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	४
जमींदार ...	..	५

विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर ...	..	४
कुल	..	१७५

७. मध्यप्रान्त
(वरार-सहित)

आम (३ स्त्रियां)	..	७७
दलित-जातिवाले	..	१०
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि	..	१
मुसलमान ...	..	१४
एंग्लो-इण्डियन	..	१
यूरोपियन ...	..	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	२
जमींदार ...	..	३
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर ...	..	२
कुल	..	११२

८. आसाम

आम (१ स्त्री)	..	४४
दलित-जातिवाले	..	४
पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधि	..	६
मुसलमान	..	३४
भारतीय ईसाई	..	१
यूरोपियन ...	..	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	११
मजदूर ...	..	४
कुल	..	१०८

९. पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रान्त

आम	..	९
सिक्ख	..	३
मुसलमान	..	३६
जमींदार	..	२
कुल	..	५०

सिन्ध-रहित वम्वई और सिन्ध के स्वतन्त्र प्रान्त के लिए भी सदस्यों का संख्या-विभाग किया गया है, जो इस प्रकार है—

१०. वम्बई (सिन्ध निकल जाने पर)

आम (५ स्त्रियां)	..	१०९
दलित-जातिवाले	..	१०
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि		१
मुसलमान (१ स्त्री)	..	३०
भारतीय ईसाई	..	३
एंग्लो-इण्डियन	..	२
यूरोपियन	..	३
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	७
जमींदार	..	२
विश्व-विद्यालय	..	१
मजदूर	..	७
कुल	..	१७५

११. सिन्ध

आम (१ स्त्री)	..	१९
मुसलमान (१ स्त्री)	..	३४
यूरोपियन	..	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	..	२
जमींदार	..	२
मजदूर	..	१
कुल	..	६०

विशेष निर्वाचन-क्षेत्र

उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहरों के प्रतिनिधियों का चुनाव जिन संस्थाओं के द्वारा होगा वे कुछ प्रान्तों में मुख्यतः यूरोपियनों की होंगी और कुछ प्रान्तों में मुख्यतः हिन्दुस्तानियों की; लेकिन उनकी रचना विधान-द्वारा नियंत्रित नहीं की जायगी। अतएव निश्चित रूप से यह बताना सम्भव नहीं है कि हरेक प्रान्त में ऐसे कितने सदस्य यूरोपियन होंगे और कितने हिन्दुस्तानी होंगे। मगर सम्भावना यह है कि प्रारम्भ में उनकी संख्यायें लगभग इस प्रकार होंगी :—

मदरास—४ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।

बम्बई (सिन्ध-सहित)—५ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

बंगाल—१४ यूरोपियन और ५ हिन्दुस्तानी।

संयुक्तप्रान्त—२ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

पंजाब—१ हिन्दुस्तानी।

बिहार-उड़ीसा—२ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।

मध्यप्रान्त (बरार-सहित)—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

आसाम—८ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

बम्बई (सिन्ध को अलग करके)—४ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।

सिन्ध—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

बम्बई में, चाहे सिन्ध उसमें शामिल रहे या नहीं, आम सीटों में से ७ मराठों के लिए सुरक्षित रहेंगी।

बंगाल में दलित-जाति के सदस्यों की संख्या का अभी निश्चय नहीं हुआ, गर वह १० से अधिक नहीं होगी। आम निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवालों की संख्या ३० होगी, जिसमें दलित-जातिवालों के लिए जो संख्या निश्चित हो वह भी शामिल है।

पंजाब में जमींदार-सदस्यों में एक 'जमींदार' रहेगा। चार ऐसे स्थानों का चुनाव संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से होगा। निर्वाचनों का विभाजन इस प्रकार रक्खा जायगा जिससे चुने जानेवाले सदस्यों में संभवतः १ हिन्दू, १ सिक्ख और २ मुसलमान होंगे।

आसाम के आम निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यों में एक स्त्री के चुने जाने का जो विधान रक्खा गया है उसकी पूर्ति शिलांग के एक असाम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र से की जायगी।

प्रधान-मन्त्री का स्पष्टीकरण

नवीन भारतीय शासन-विधान के निर्माण से सम्वन्धित कुछ साम्प्रदायिक समस्याओं के वारे में सम्राट्-सरकार ने जो निश्चय किया है, उसका मसविदा अव हिन्दुस्तान में पहुँच गया है और दोनों देशों में एक ही साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

उसके प्रकाशित होने पर, प्रधान-मंत्री ने निम्न-लिखित वक्तव्य निकाला है :—

"न केवल प्रधान-मंत्री के रूप में, वल्कि भारत के एक ऐसे मित्र की हैसियत से जिसने पिछले दो साल से अल्प-संख्यक जातियों के प्रश्न में दिलचस्पी ली है, मुझे लगता है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पर सरकार आज जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय की घोषणा कर रही है उसे समझाने के लिए एक-दो शब्द मुझे भी जोड़ने चाहिएँ।

भारत के साम्प्रदायिक विवादास्पद मामलों में हस्तक्षेप करने का हमने कभी इरादा नहीं किया। गोलमेज-परिषद् के दोनों अधिवेशनों में हमने इस वात को विलकुल स्पष्ट कर दिया था, जवकि हमने इस वात की वहुत कोशिश की कि हिन्दुस्तानी लोग खुद ही इस मामले को तय कर लें। क्योंकि शुरू से ही हम यह महसूस करते आए हैं कि हम जो भी निश्चय करें वह कैसा ही क्यों न हो, सम्भवतः हरेक जाति अपनी महत्त्वपूर्ण मांगों के आधार पर उसकी टीका-टिप्पणी करेगी; लेकिन हमें विश्वास है कि अन्त में जाकर भारतीय आवश्यकताओं पर ध्यान रखने की भावना पैदा होगी और सव जातियां देखेंगी कि नये शासन-विधान को अमल में लाने में, जोकि हिन्दुस्तान को ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह में एक नया पद देनेवाला है, सहयोग करना ही उनका फर्ज है।

आपसी राजीनामे से निर्णय में संशोधन हो सकता है

हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट था। चूंकि विभिन्न जातियों के आपस में किसी वात पर सहमत न हो सकने के कारण किसी भी तरह की वैधानिक प्रगति के रास्ते में ऐसी वाधा उपस्थित हो रही थी जिसका दूर होना प्रायः असम्भव था, अतः सरकार के लिए यह लाजिमी हो गया कि वह इस सम्वन्ध में कुछ करे। अतएव, भारतीय प्रतिनिधियों की लगातार प्रार्थनाओं के जवाव में सरकार की ओर से गोलमेज-परिषद् में मैंने जो वादे किये थे उनके अनुसार, और उस वक्तव्य के अनुसार जो मैंने ब्रिटिश-पार्लमेंट में दिया था और जिसपर उसने अपनी सहमति दरसाई थी, सरकार आज प्रान्तीय-

कौंसिलों के प्रतिनिधित्व की एक योजना प्रकाशित कर रही है। यह योजना यथासमय पार्लमेण्ट में पेश की जायगी, यदि उस समय तक विभिन्न जातियाँ अपने-आप इससे अच्छी और किसी योजना पर सहमत न हो जायँ।

शासन-सुधारों का प्रस्तावित बिल कानून बने उससे पहले, किसी भी समय, यदि विभिन्न जातियां अपने-आप किसी निर्णय पर पहुँच सकें, तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन पुराने अनुभव के आधार पर सरकार को यह विश्वास हो गया है कि इस सम्बन्ध में अब और बातचीत चलाना व्यर्थ है, इसलिए वह उसमें शामिल नहीं हो सकती। फिर भी अगर किसी प्रान्त या प्रान्तों अथवा सारे ब्रिटिश-भारत के लिए कोई ऐसी योजना तैयार हो जो सामान्यतः उससे सम्बन्धित सब दलों के लिए सन्तोष-प्रद और स्वीकार्य हो, तो सरकार अपनी योजना की जगह उसे रखने के लिए रजामन्द और तैयार रहेगी।

पृथक् निर्वाचन का मामला

सरकार के निर्णय की दाद देने के लिए उन वास्तविक परिस्थितियों पर ध्यान रखना आवश्यक है जिनमें कि वह किया गया है। गत अनेक वर्षों से अल्पसंख्यक जातियां पृथक् निर्वाचन को, अर्थात् एक खास तरह के मत-दाताओं का अपने तई प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में बँट जाना, अपने अधिकारों का बड़ा भारी संरक्षण समझती आ रही हैं। पिछले दिनों हुई वैधानिक प्रगति की प्रत्येक अवस्था में पृथक्-निर्वाचन को स्थान मिला है। सरकार चाहे जितना संयुक्त-निर्वाचन की किसी एक-सी प्रथा को अधिक पसन्द करती हो, जिन संरक्षणों को अल्प-संख्यक जातियां अभी भी बहुत महत्त्वपूर्ण समझती हैं उन्हें खतम करना उसे सम्भव नहीं जान पड़ा। भूतकाल में ऐसा किस प्रकार हुआ, इसकी छान-बीन में पड़ना व्यर्थ है। मैं तो किसी कदर भविष्य का ही विचार कर रहा हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि बड़ी और छोटी सब जातियाँ मेल-जोल और शान्ति के साथ संयुक्त-रूप से काम करें, ताकि संरक्षण के विशेष प्रकार की आगे कोई जरूरत न पड़े। मगर जबतक ऐसा न हो, तबतक सरकार को तो वस्तु-स्थिति का ध्यान रख कर प्रतिनिधित्व का यह असाधारण रूप कायम रखना ही पड़ेगा।

दलित-जातियों की स्थिति

इस निर्णय की दो विशेषतायें हैं, जिनका उल्लेख करना मेरे लिए आवश्यक है। इनमें से एक का सम्बन्ध तो दलित-जातियों से है और दूसरी का स्त्रियों के प्रति-

निधित्व से। सरकार ऐसी किसी योजना का समर्थन नहीं कर सकती, जिसमें इनमें से किसी एक की भी अनिवार्यता का खयाल न किया गया हो।

दलित-जातियों के मामले में हमारा उद्देश्य यह रहा है कि प्रान्तों में जहां उनकी संख्या अधिक है, प्रान्तीय कौंसिलों में उनकी पसन्द के प्रतिनिधि जाने की व्यवस्था हो, लेकिन उसके साथ पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था न रहे, जिससे कि उनका अलगपन स्थायी हो जायगा। अतएव, दलित-वर्गों के मत-दाता आम हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रों में ही अपने मत देंगे और ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र में चुना हुआ सदस्य इस वर्ग के प्रति जो उत्तर-दायित्व है उससे प्रभावित होगा; लेकिन अगले २० साल तक कुछ ऐसे विशेष स्थान भी रहेंगे, जिनका चुनाव ऐसे इलाकों में, जहां कि खास तौर पर ऐसे दलित मतदाता होंगे, विशेष निर्वाचन-मण्डलों द्वारा होगा। इस प्रकार दलित-वर्गों के कुछ व्यक्तियों को मत देने का अधिकार मिल जाता है, पर इस विधि-विरोध की न्याय्यता का समर्थन इस बात से होता है कि उनकी मांगों के प्रभाव-कारक रूप से प्रकट किये जाने और उनकी वास्तविक स्थिति में सुधार होने का अवसर प्रदान करने के लिए इसकी ज्यादा जरूरत है।

स्त्रियों के अधिकार

स्त्री-मतदाताओं के बारे में, हाल के वर्षों में यह अच्छी तरह जाना जा चुका है कि उन्नति की एक कुंजी भारत के महिला-आन्दोलन के ही हाथ में है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जबतक भारत की स्त्रियां शिक्षित और प्रभावशाली नागरिकों के रूप में उपयुक्त भाग न लें तबतक भारत उस स्थिति को नहीं पहुँच सकता जो वह संसार में प्राप्त करना चाहता है। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों के प्रतिनिधित्व को साम्प्रदायिक ढंग देने में बहुत बड़ी आपत्तियां हैं, लेकिन अगर स्त्रियों के ही लिए सदस्य-स्थान सुरक्षित रखना है और विभिन्न जातियों में स्त्री-सदस्यों की संख्या का उपयुक्त विभाजन करना है तो, मौजूदा परिस्थिति में, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इस स्पष्टीकरण के साथ, हिन्दुस्तान की विभिन्न जातियों के सम्मुख में यह योजना पेश करता हूँ, जो भारत की मौजूदा परिस्थिति में परस्पर-विरोधी दावों के बीच समतौलता बनाये रखने का एक उपयुक्त और ईमानदारी के साथ किया हुआ प्रयत्न है। उन्हें चाहिए कि वे इसे ग्रहण कर लें, हालांकि सहसा किसी भी जाति को यह सन्तोष नहीं होगा कि भारत की वैधानिक प्रगति की अगली किस्त में प्रतिनिधित्व

के लिए यह ऐसी अमली योजना है जिस से उसकी सब मांगों की पूर्त्ति हो जाती हो। योजना की छान-बीन करते समय उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए कि ऐसी कोई योजना पेश करने के लिए, कि जिसपर सबको सन्तोष हो जाय, बार-बार जोर दिये जाने पर भी वे स्वयं असफल रहे हैं।

साम्प्रदायिक सहयोग, उन्नति की शर्त्त

अन्त में, मैं यह कहूँगा कि यह ऐसा मामला है जिसका फैसला खुद हिन्दुस्तानी ही कर सकते हैं। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा जो आशा कर सकती है वह यही है कि उसके निश्चय से वह रुकावट दूर हो जायगी जो विधान-सम्बन्धी प्रगति में बाधक हो रही है, और हिन्दुस्तानी उन अनेक प्रश्नों को हल करने में अपना ध्यान लगा सकेंगे जिनका विधान-सम्बन्धी प्रगति की दिशा में अभी भी हल होना बाकी है। हिन्दुस्तान की समस्त जातियों के नेताओं को चाहिए कि भारतीय वैधानिक प्रगति के इस नाजुक अवसर पर वे इस बात की कद्र करें कि साम्प्रदायिक सहयोग उनकी प्रगति की शर्त्त है और उनका यह खास फर्ज है कि वे नये शासन-विधान को अमली रूप देने की जिम्मे-वारी अपने ऊपर लें।

२

गोलमेज़-परिषद् का अल्पसंख्यक समझौता और साम्प्रदायिक निर्णय

(तुलनात्मक अध्ययन)

नीचे हम गोलमेज-परिषद् के अल्पसंख्यक समझौते और ब्रिटिश-सरकार के एतत्सम्बन्धी निर्णय की सिफारिशें साथ-साथ देते हैं, जिससे यह पता चल जाय कि लन्दन में भिन्न-भिन्न अल्प-संख्यक जातियों की ओर से जो मांगें रक्खी गई थीं उनसे सरकार का निर्णय कितना भिन्न है।

अल्प-संख्यक-समझौते में विभिन्न वर्गों को प्राप्त होनेवाली सीटों को मद्देनजर रखते हुए हरेक जाति के कुल सदस्यों की संख्यायें निश्चित कर दी गई हैं।

सरकारी निर्णय में विशेष वर्गों को अलग किया गया है, जिससे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियों की तुलनात्मक रूप में मिली हुई संख्या में और वृद्धि भी हो सकती है।

लेकिन ऐसे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियों की सदस्य-संख्या न भी

बढ़े तो भी सरकारी निर्णय में दी गई और अल्पसंख्यक समझौते में मांगी गई संख्याओं पर एक तुलनात्मक नजर डालना अरोचक न होगा।

प्रान्त		कौंसिल के सदस्यों की संख्या	हिन्दू			मुसलमान	ईसाई	एंग्लोइण्डियन	यूरोपियन	सरहदी	सिक्ख
			सवर्ण	दलित	कुल						
आसाम	अ० स०	१००	३८	१३	५१	३५	३	१	१०	०	
	सा० नि०	१०८	४४	४	४८	३४	१	०	७	९	
बंगाल	अ० स०	२००	३८	३५	७३	१०२	२	३	२०	०	
	सा० नि०	२५०	७०	१०	८०	११९	२	४	११	०	
विहार-उड़ीसा	अ० स०	१००	५१	१४	६५	२५	१	१	५	३	
	सा० नि०	१७५	९९	७	१०६	४२	२	१	२	८	
बम्बई	अ० स०	२००	८८	२८	११६	६६	२	३	१३	०	
	सा० नि०	२००	८७	१०	९७	६३	३	२	४	०	
मदरास	अ० स०	२००	१०२	४०	१४२	३०	१४	४	८	२	
	सा० नि०	२१५	१३४	१८	१५२	२९	९	२	३	१	
पंजाब	अ० स०	१००	१४	१०	२४	५१	१·५	१·५	२	०	२०
	सा० नि०	१७५	०	०	४३	८६	२	१	१	०	३२
संयुक्तप्रान्त	अ० स०	१००	४४	२०	६४	३०	१	२	३	०	
	सा० नि०	२२८	१३२	१२	१४४	६६	२	१	२	०	
मध्यप्रान्त	अ० स०	१००	५८	२०	७८	१५	१	२	२	२	
	सा० नि०	११२	७७	१०	८७	१४	१	१	१	२	

परिशिष्ट ८

गांधीजी के अनशन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा पूना-पैक्ट

१

पत्र-व्यवहार का आधार

गोलमेज-परिषद् की अल्प-संख्यक समिति की अन्तिम बैठक में (१३-११-३१) गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने कहा :—

"अन्य अल्प-संख्यक जातियों के दावे को तो मैं समझ सकता हूँ; किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए कायम रहे।

"भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूंगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहां मैं केवल कांग्रेस की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत् स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ, कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। और मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक-मण्डल अथवा कौंसिलों में विशेष रक्षित स्थान नहीं है।

"इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू-समाज में सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो अस्पृश्यता के इस कलंक को, जो उनका नहीं प्रत्युत् कट्टर एवं रूढ़िवादी हिन्दुओं का कलंक है, धोने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदा जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं; किन्तु क्या अछूत भी, सदैव के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-धर्म डूब जाय।

"इसलिए डॉ० अम्बेडकर के अछूतों को ऊँचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहूँगा, कि उन्होंने जो-कुछ किया है वह अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश में होकर

किया है, और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर परदा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो अछूतों के हित के प्रति, जो मेरे लिए प्राणों के समान है, मैं सच्चा न होऊँगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूंगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मैं कहता हूँ कि डॉ० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है; इससे हिन्दू-धर्म में जो विभाग हो जायँगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता।

"अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायँ तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूंगा; किन्तु प्रत्येक गांव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायँ, तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी, वह मुझसे सही न जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते, और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँगा कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि मैं अकेला होऊँ तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा।"

२

पत्र-व्यवहार

१. गांधीजी ने ११ मार्च १९३२ को यरवडा-जेल से निम्नलिखित पत्र सर सेम्युअल होर के पास भेजा :—

प्रिय सर सेम्युअल होर,

आपको कदाचित् स्मरण होगा कि गोलमेज-परिषद् में अल्प-संख्यकों का दावा उपस्थित होने पर मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मैं दलित-जातियों को पृथक्-निर्वाचन का अधिकार दिये जाने का प्राण देकर भी विरोध करूँगा। यह बात जोश में आकर या अलंकार के लिए नहीं कही गई थी। वह एक गम्भीर वक्तव्य था। उस वक्तव्य के अनुसार मैंने भारत लौटने पर पृथक्-निर्वाचन के, कम-से-कम दलित वर्गों के लिए, विरुद्ध लोकमत तैयार करने की आशा की थी। पर यह होनहार न था।

दलित-वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार देने के सम्बन्ध में मुझे कौन-सी

आपत्तियां हैं, उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैं अनुभव करता हूं कि मैं उन्हींमें से एक हूं। उनका मामला दूसरों से बिलकुल भिन्न है। कौंसिलों में उन्हें प्रतिनिधित्व मिलने के विरुद्ध मैं नहीं हूं। मैं तो इसे पसन्द करूंगा कि उनमें से प्रत्येक बालिग—स्त्री-पुरुष दोनों—को शिक्षा या सम्पत्ति किसीका भी विचार न कर मतदाता बनाया जाय, यद्यपि दूसरों के लिए मताधिकार की योग्यता इससे अधिक हो। पर मेरा मत है कि पृथक्-निर्वाचन उनके लिए और हिन्दू-धर्म के लिए हानिकर है, चाहे केवल राजनैतिक दृष्टि से यह कैसा ही क्यों न हो। पृथक्-निर्वाचन से उन्हें जो हानि होगी उसे समझने के लिए यह जानने की जरूरत है कि वे किस प्रकार उच्च वर्ग के हिन्दुओं के बीच बसे हुए हैं और उनके आश्रित हैं। जहांतक हिन्दू-धर्म का सम्बन्ध है वह तो पृथक्-निर्वाचन से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

मेरे लिए इन वर्गों का प्रश्न मुख्यतः नैतिक और धार्मिक है। राजनैतिक दृष्टि, यद्यपि वह महत्त्वपूर्ण है, नैतिक और धार्मिक दृष्टि के सामने नगण्य हो जाती है।

इस सम्बन्ध में मेरे भाव आपको यह स्मरण करके समझने होंगे कि इन वर्गों की स्थिति के सम्बन्ध में मुझे बचपन से दिलचस्पी है, और इनके लिए मैं अनेक बार अपना सब-कुछ खोने के लिए तैयार हो चुका हूं, मैं यह आत्म-प्रशंसा के लिए नहीं कह रहा हूं, क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि उच्च श्रेणी के हिन्दुओं का कोई भी प्रायश्चित्त उस क्षति की किसी भी अंश में पूर्ति नहीं कर सकता जो उन्होंने दलित-वर्गों को सदियों से जान-बूझकर गिरा रखकर की है। पर मैं जानता हूं कि पृथक्-निर्वाचन न प्रायश्चित्त है और न उस गहरे पतन की औषधि, जिससे दलित-वर्ग कष्ट पा रहे हैं। इसलिए मैं सम्राट्-सरकार को सविनय सूचित करता हूं कि यदि आपके निश्चय से दलित-वर्गों को पृथक्-निर्वाचनाधिकार मिलेगा तो मुझे आमरण अनशन करना होगा।

मैं जानता हूं—और मुझे दुःख है—कि कैदी की दशा में मेरे ऐसा करने से सम्राट्-सरकार को बड़ी परेशानी होगी और बहुत-से लोग इसे बहुत अनुचित समझेंगे कि मेरे दर्जे का मनुष्य राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी-कार्यप्रणाली प्रचलित करे जिसे वे अधिक नहीं तो पागलपन कहेंगे। अपने पक्ष-समर्थन के लिए मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मेरे लिए वह कार्य, जिसे करने का मैंने विचार किया है, उद्देश्य-साधन की कोई प्रणाली नहीं वरन् मेरे अस्तित्व का एक अंग है। यह मेरी आत्मा की पुकार है जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता चाहे, इससे मेरे समझदार होने की ख्याति नष्ट ही क्यों न हो जाय। इस समय जहांतक मैं देखता हूं, मेरा जेल से छूट जाना भी मेरे

अनशन के कर्तव्य को किसी प्रकार कम आवश्यक न बना सकेगा। इतने पर भी मैं आशा कर रहा हूँ कि मेरी सारी आशंका बिलकुल निराधार होगी और ब्रिटिश-सरकार दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था करने का बिलकुल विचार नहीं कर रही है।

शायद मेरे लिए उस दूसरे विषय का भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा, जो मुझे व्याकुल कर रहा है और मुझे इसी प्रकार अनशन करने के लिए बाध्य कर सकता है। वह है दमन का प्रकार। मैं नहीं कह सकता कि कब मुझे ऐसा धक्का लगे जो इस त्याग के लिए मुझे बाध्य कर दे। दमन कानून की उचित सीमा को भी पार करता हुआ दिखाई दे रहा है। देश में सरकारी आतंक फैल रहा है। अंग्रेज और भारतीय अधिकारी पाशविक बनाये जा रहे हैं। छोटे-बड़े भारतीय अधिकारियों का नैतिक पतन हो रहा है, क्योंकि जनता के प्रति विश्वास-घात और अपने ही भाइयों के साथ अमानुष व्यवहार को प्रशंसनीय कहकर सरकार उसके लिए उन्हें पुरस्कृत करती है। देशवासी भयभीत किये जा रहे हैं। भाषण-स्वातंत्र्य नष्ट कर दिया गया है। अमन-कानून के नाम पर गुण्डाशाही चल रही है। सार्वजनिक सेवा के लिए घर से निकली हुई महिलाओं की आबरू जाने का भय है।

मेरी राय में, यह सब इसलिए किया जा रहा है, कि कांग्रेस स्वतन्त्रता के जिस भाव का समर्थन कर रही है वह कुचल डाला जाय। साधारण कानून की सविनय-अवज्ञा करनेवालों को दण्ड देकर ही दमन का अन्त नहीं हो रहा है। अनियंत्रित शासन के नये हुक्मों को, जिनका मुख्य उद्देश लोगों को नीचा दिखाना है, तोड़ने के लिए यह दमन लोगों को उत्तेजित और बाध्य कर रहा है।

इन कार्यों में मुझे तो लोकतंत्र का भाव बिलकुल नहीं दिखाई दे रहा है। सच तो यह है कि हाल में मैंने इंग्लैण्ड में जो-कुछ देखा उससे मेरी यह राय कायम हो गई कि आपका लोकतंत्र सिर्फ ऊपरी और दिखाऊ है। अधिक-से-अधिक महत्त्व की बातों में व्यक्तियों और समूहों ने पार्लमेण्ट की राय लिये बिना ही निर्णय कर डाले हैं और इन निर्णयों का समर्थन ऐसे सदस्यों ने किया है जो शायद ही जानते हों कि हम क्या कर रहे हैं। मिस्र देश के सम्बन्ध में यही हुआ, १९१४ के युद्ध के सम्बन्ध में यही हुआ, और भारत के सम्बन्ध में यही हो रहा है। लोकतंत्र नामक पद्धति में एक आदमी को इतना बड़ा और अनियंत्रित अधिकार हो कि ३० करोड़ से भी अधिक लोगों के एक प्राचीन राष्ट्र के सम्बन्ध में वह चाहे जैसी आज्ञा दे, तथा उस आज्ञा को काम में लाने के लिए विनाश के सबसे भयंकर यंत्र को मैदान में ले आवे, इस

कल्पना के ही विरुद्ध मेरी आत्मा विद्रोह करती है। मुझे तो यह लोकतंत्र का अभाव मालूम होता है।

यह दमन उन दो जातियों के सम्बन्ध को, जो पहले ही खराब हो चुका है, और खराब किये बिना नहीं रह सकता। मैं इस प्रवाह को कैसे रोक सकता हूं? सविनय-अवज्ञा को मैं इसके लिए रोक नहीं सकता। मेरा उसपर धर्म के जैसा विश्वास है। मैं अपने-आपको स्वभावतः लोकतंत्रवादी समझता हूं। मेरे लोकतंत्र में, बल-प्रयोग-द्वारा अपनी इच्छा को औरों पर लादना सम्भव नहीं है। अतः जहां-जहां बल-प्रयोग आवश्यक या उचित समझा जाता है वैसे अवसरों पर उपयोग करने के लिए ही सविनय-अवज्ञा की कल्पना की गई है। यह कष्ट उठाने की क्रिया है; और यदि आवश्यक हो तो सविनय-अवज्ञा करनेवाले को मृत्यु तक अनशन करना चाहिए। वह समय मेरे लिए अभी नहीं आया है। मेरी अन्तरात्मा मुझे इसके लिए स्पष्ट शब्दों में आदेश नहीं दे रही है। पर बाहर की घटनाओं से मेरा हृदय भी कांप रहा है। अतः जब मैं आपको यह लिख रहा हूं कि दलित-जातियों के सम्बन्ध में मेरा अनशन करना सम्भव है तब यदि साथ ही यह भी न बता दूं कि इसके सिवा भी अनशन की एक और सम्भावना है, तो मैं आपसे सच्चा व्यवहार न करूंगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आपके साथ जो पत्र-व्यवहार हो रहा है उसे मैंने अपनी ओर से बहुत ही गुप्त रक्खा है। अवश्य ही सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री महादेव देसाई, जो अभी हमारे साथ रहने को भेजे गये हैं, इस सम्बन्ध में सब-कुछ जानते हैं। पर आप इस पत्र का चाहे-जैसा उपयोग अवश्य ही करेंगे।

हृदय से आपका—

मो० क० गांधी

२. सर सेम्युअल होर ने १३ अप्रैल १९३२ को गांधीजी को निम्न उत्तर भेजा :—

इंडिया ऑफिस, व्हाइट हॉल,
१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय गांधीजी,

आपकी ११ मार्च की चिट्ठी के उत्तर में मैं यह लिख रहा हूं, और मैं पहले ही कह देता हूं कि दलित-श्रेणियों के लिए पृथक-निर्वाचन के प्रश्न पर आपके भावावेग को मैं पूरी तरह समझता हूं। मैं यही कह सकता हूं कि इस प्रश्न के केवल गुणावगुणों पर जो भी निर्णय आवश्यक हो उसे हम करना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि लॉर्ड

लोथियन की कमिटी ने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है और वह जिस किसी निश्चय पर पहुँचेगी उसे प्राप्त होने में कुछ हफ्ते अवश्य लग जायँगे। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब उसकी सिफारिशों पर बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना होगा, और हम तबतक कोई निर्णय न करेंगे जबतक हम कमिटी के विचारों के सिवा उन विचारों पर भी गौर न कर लेंगे जिन्हें आपने और आपके समान विचार रखनेवालों ने इतने जोर के साथ प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि यदि आप हमारे स्थान में होते तो आप भी ठीक वैसा ही कार्य करते जैसा हम करना चाहते हैं। कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक राह देखिए, फिर उसपर पूरी तरह विचार कीजिए और किसी अन्तिम निश्चय पर पहुँचने के पहले उन मतों पर ध्यान दीजिए जिन्हें दोनों पक्षों ने इस विवादग्रस्त प्रश्न पर प्रकट किये हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता। मैं नहीं समझता कि आप मुझसे अधिक कुछ कहने की आशा रखते होंगे।

आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में मैं वही बातें दुहरा सकता हूँ जो मैं सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप से कह चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि व्यवस्थित सरकार की नींव पर ही जान-बूझकर आक्रमण होते देख उन्हें जारी करना आवश्यक था। मुझे यह भी विश्वास है कि भारत-सरकार और प्रान्तीय-सरकार दोनों अपने व्यापक अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर रही हैं और इस बात की भरसक कोशिश कर रही हैं कि उनका बेजा और बदले की भावना से उपयोग न किया जाय। आतंककारी कार्यों से अपने अफसरों और जाति के अन्य वर्गों की रक्षा करने तथा कानून और व्यवस्था के तत्त्वों को बनाये रखने के लिए जितने समय तक असाधारण उपायों से काम लेने को हम बाध्य हैं उससे अधिक समय तक हम उन्हें जारी न रक्खेंगे।

आपका—

सेम्युअल होर

३. **गांधीजी ने यरवडा जेल से १८ अगस्त १९३२ को प्रधान-मन्त्री को निम्न पत्र भेजा :—**

प्रिय मित्र,

दलित-वर्गों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ११ मार्च को मैंने सर सेम्युअल होर को जो चिट्ठी लिखी वह उन्होंने आपको तथा मन्त्रि-मण्डल को दिखा दी होगी। वह चिट्ठी इस चिट्ठी का अंश समझी जाय और इसीके साथ पढ़ी जाय।

मैंने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर ब्रिटिश-सरकार का निश्चय पढ़ा है और

पढ़कर उदासीन-भाव से अलग रख दिया है। मैंने सर सेम्युअल होर को जो चिट्ठी लिखी और सेंट जेम्स पैलेस में १३ नवम्बर १९३१ को गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति में जो घोषणा की थी उसके अनुसार आपके निर्णय का विरोध में अपने प्राणों की बाजी लगाकर करूँगा। ऐसा करने का उपाय यही है कि मैं प्राण त्यागने तक लगातार अनशन करने की घोषणा कर दूं और नमक और सोडा के साथ या उसके बिना पानी के सिवा और किसी प्रकार का अन्न ग्रहण न करूँ। यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रत के रहते ब्रिटिश-सरकार अपनी इच्छा से या सार्वजनिक मत के दबाव से अपने निश्चय पर फिर विचार करे और साम्प्रदायिक-निर्वाचन की अपनी योजना, दलित-वर्गों के सम्बन्ध में, वापस ले ले, जिनके प्रतिनिधियों का चुनाव साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों से हो और सबका समान-मताधिकार रहे, फिर यह कितना ही व्यापक क्यों न हो जाय।

यदि बीच में इस रीति से उक्त निर्णय पर फिर से विचार न हुआ तो यह अनशन साधारण अवस्था में अगले २० सितम्बर के दोपहर से आरम्भ होगा।

मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी यह चिट्ठी और सर सेम्युअल होर की लिखी हुई चिट्ठी शीघ्र-से-शीघ्र प्रकाशित की जाय। मैंने अपनी ओर से पूरी ईमानदारी के साथ जेल के नियमों का पालन किया है और अपनी इच्छा या इन दो चिट्ठियों का मजमून सरदार वल्लभभाई पटेल और महादेव देसाई इन दो साथियों को छोड़ और किसीको नहीं बताया है। पर यदि आप इसे सम्भव बना दें तो मैं चाहता हूँ कि मेरी चिट्ठियों का प्रभाव जनता पर पड़े। इसलिए उन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का मैं अनुरोध करता हूँ।

खेद है कि मुझे यह निश्चय करना पड़ा। पर मैं अपनेको धार्मिक पुरुष समझता हूँ और इस नाते मेरे सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। सर सेम्युअल होर को मैंने जो चिट्ठी लिखी उसमें मैं कह चुका हूँ कि परेशानी से बचने के लिए ब्रिटिश-सरकार मुझे छोड़ देने का निश्चय भले ही करे, पर मेरा अनशन बराबर जारी ही रहेगा क्योंकि अब मैं अन्य किसी उपाय से इस निर्णय का विरोध करने की आशा नहीं कर सकता। और सम्मानयुक्त उपाय को छोड़ किसी दूसरे उपाय से अपनी रिहाई करा लेने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है।

सम्भव है, मेरा निर्णय दूषित हो और मेरा यह विचार बिलकुल गलत हो कि दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन रहना उनके या हिन्दुत्व के लिए हानिकर है। यदि ऐसा हो तो अपने जीवन-सिद्धान्त के अन्य अंगों के सम्बन्ध में मेरे सही रहने की

सम्भावना नहीं। उस दशा में अनशन करके मर जाना मेरी भूल के लिए प्रायश्चित्त होगा और उन असंख्य स्त्री-पुरुषों के सिर से एक वोझ दूर हो जायगा जो मेरी समझदारी पर वालकों-जैसा विश्वास रखते हैं। पर यदि मेरा निर्णय ठीक हो, और मुझे सन्देह नहीं कि यह ठीक है, तो इस निश्चय से मेरे जीवन का कार्यक्रम उचित रूप से पूर्ण होगा, जिसके लिए मैंने २५ साल से भी अधिक समय से यत्न किया है और जिसमें काफी सफलता मिली है।

आपका विश्वसनीय मित्र—
मो० क० गांधी

४. प्रधान-मन्त्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने ८ सितम्वर को निम्न पत्र गांधीजी के पास भेजा :—

प्रिय गांधीजी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर आश्चर्य, और कहना चाहता हूँ कि, वहुत ही हार्दिक दुःख भी हुआ। इसके सिवा मैं यह कहने के लिए भी वाध्य हूँ कि दलित-वर्ग के सम्वन्ध में सम्राट्-सरकार के निर्णय का वास्तविक अर्थ क्या है, इसे समझने में आपको भ्रम हो रहा है। हम इस वात को सदा समझते रहे हैं कि आप दलित-वर्ग के सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दिये जाने के अटल विरोधी हैं। गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति में आपने अपनी स्थिति विलकुल साफ तौर से वताई थी और अपने ११ मार्चवाले पत्र में सर सेम्युअल होर को फिर से भी आपने अपना मत वता दिया था। हम यह भी जानते हैं कि हिन्दू जनता के एक वहुत वड़े भाग का भी इस विषय में वही मत है जो आपका है। अतः दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करते समय हमने उसपर वहुत ही सावधानी से विचार किया।

अछूतों की समस्याओं से मिली हुई वहु-संख्यक अपीलों तथा उनकी सामाजिक वाधाओं के विचार से, जिन्हें आम तौर से सभी स्वीकार करते हैं और खुद आप भी अनेक वार स्वीकार कर चुके हैं, कौंसिलों के प्रतिनिधित्व के सम्वन्ध में उनके न्याययुक्त अधिकार की रक्षा करना हमने अपना कर्तव्य समझा। साथ ही हमें इस वात का भी उतना ही ध्यान रहा है कि हमारे हाथ से कोई ऐसी वात न होनी चाहिए जो अछूतों को सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दे। अपने ११ मार्चवाले पत्र में आपने खुद ही कहा है कि आप अछूतों को कौंसिलों में प्रतिनिधित्व दिये जाने के खिलाफ नहीं हैं।

सरकारी योजना के अनुसार अछूत हिन्दू-जाति के अंग बने रहेंगे और उनके साथ बराबरी की हैसियत में शामिल होकर वोट दे सकेंगे। पर २० साल तक निर्वाचन में, हिन्दुओं के साथ शामिल रहते हुए भी, थोड़े-से खास हलकों के जरिये अपने स्वार्थों की रक्षा का उपाय करते रहेंगे, जो हमारा निश्चय है कि वर्तमान स्थिति में आवश्यक है।

जहां-जहां ऐसे हलके बनाये जायँगे, अछूत-वर्ग साधारण हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्र के वोट से वंचित न होंगे, बल्कि उन्हें दो-दो वोट देने का अधिकार दे दिया जायगा, जिसमें हिन्दू-जाति के साथ उनका सम्बन्ध अविकल बना रहे।

आप जिसे साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र कहते हैं, अछूतों के लिए वैसे हलके हमने जान-बूझकर नहीं बनाये हैं और सम्पूर्ण अछूत-वोटरों को साधारण अर्थात् हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रों में शामिल कर दिया है, जिसमें उच्च-जाति के हिन्दू उम्मीदवारों को अछूत-वोटरों के पास जाकर वोट मांगना पड़े अथवा अछूत उम्मीदवारों को ऊँची जाति-वाले हिन्दू वोटरों के पास वोट मांगने जाना पड़े। इस प्रकार हिन्दू-जाति की एकता की सब प्रकार से रक्षा की गई है।

तथापि हमने सोचा कि उत्तरदायी शासन के आरम्भिक काल में जब प्रान्तों में शासनाधिकार उसी वर्ग के हाथ में रहेगा जिसका कौंसिल में बहुमत होगा अलबत्ता यह आवश्यक होगा कि दलित वर्ग, जिसके विषय में आप खुद भी स्वीकार करते हैं कि उच्च जाति के हिन्दुओं ने शताब्दियों से उन्हें नीची अवस्था में डाल रक्खा है, ९ में से ७ प्रान्तों की कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी भेज सकें जो उनके दुःख-दर्दों और आदर्शों को प्रकट कर सकें और उनके विरुद्ध निर्णय होने से रोक सकें, अर्थात् जिनके द्वारा इस वर्ग का मत प्रकट हो सके। प्रत्येक न्यायशील व्यक्ति को इस व्यवस्था की आवश्यकता स्वीकार करनी होगी। हमारे विचार से वर्तमान परिस्थिति में संरक्षित-स्थान-सहित संयुक्त-निर्वाचन की व्यवस्था में दलित-वर्ग के लिए अपने ऐसे सदस्य कौंसिलों में भेजना संभव होगा जो उनके वास्तविक प्रतिनिधि और उनके सामने जिम्मेदार हों, चाहे मताधिकार की जितनी भी व्यवस्थायें इस समय संभव हैं उनमें से कोई भी क्यों न की जाय। कारण यह कि इस व्यवस्था में उनके प्रायः सभी सदस्य उच्च जातियों के हिन्दुओं द्वारा ही चुने जायँगे।

हमारी योजना में अछूतों को साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों में मताधिकार देते हुए उनके लिए थोड़े से अलग हलके बना दिये गये हैं। मुसलमान आदि अल्प-संख्यकों के लिए की गई साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था से यह रूप और प्रभाव में सर्वथा भिन्न

है। एक मुसलमान साधारण हलके में वोट न दे सकता है और न उम्मीदवार हो सकता है। मुसलमानों को जिस स्थान में जितनी जगहें दी गई हैं उससे वे एक भी अधिक नहीं प्राप्त कर सकते। अधिकतर प्रान्तों में उन्हें अपनी जन-संख्या के अनुपात से अधिक जगहें दी गई हैं। पर दलित-वर्ग को खास हलकों के द्वारा जो जगहें दी गई हैं वे बहुत अल्प हैं और उनकी जन-संख्या के अनुपात के विचार से नहीं नियत की गई हैं। इस व्यवस्था का एकमात्र उद्देश यही है कि वे कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि अवश्य भेज सकें जो केवल उन्हींके चुने हों। हर जगह उनके इन विशेष स्थानों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से बहुत कम है।

मैं समझता हूँ कि आप जो अनशन के द्वारा प्राण-त्याग का विचार कर रहे हैं, उसका उद्देश न तो यह है कि दलित-वर्ग दूसरे हिन्दुओं के साथ संयुक्त-निर्वाचन-क्षेत्र में शामिल हो, क्योंकि यह अधिकार तो उन्हें मिल ही चुका है, और न यही है कि हिन्दुओं की एकता बनी रहे, क्योंकि इसका भी उपाय किया जा चुका है, किन्तु केवल यह है कि अछूत लोग, जिनके लिए आज भीषण बाधायें उपस्थित होने की बात सभी स्वीकार करते हैं, अपने थोड़े-से भी प्रतिनिधि ऐसे न भेज सकें, जो उनके अपने चुने हुए हों और जो उनके भाग्य की निर्णायक कौंसिलों में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें।

सरकारी योजना के इन अति न्याय-युक्त तथा बहुत सोच-विचार कर किये हुए प्रस्तावों को देखते हुए मेरे लिये आपके निश्चय का कोई समुचित कारण देख सकना सर्वथा असम्भव हो गया है और मैं केवल यही सोच सकता हूँ कि वस्तुस्थिति को समझने में भ्रम हो जाने के कारण आपने ऐसा निश्चय किया है।

जब आपस में समझौता न कर सकने पर भारतीयों ने आमतौर से अपील की तब कहीं उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर अपना फैसला सुनाना स्वीकार किया। अब वह उसे सुना चुकी है और अब जो शर्तें उसमें रक्खी गई हैं उनके सिवा और किसी तरह वह बदला नहीं जा सकता। अतः मुझे खेद के साथ आपसे यही कहना पड़ रहा है कि सरकार का निश्चय कायम है और केवल विभिन्न सम्प्रदायों का आपस का समझौता ही उस निर्वाचन-व्यवस्था के बदले स्वीकार किया जा सकता है कि जिसे सरकार ने परस्पर-विरोधी दावों का सामञ्जस्य करने की सच्ची नीयत से तजवीज किया है।

आपका—

जे० रैमजे मैकडानल्ड

५. गांधीजी ने यरवडा सेन्ट्रल जेल से ६ सितम्बर १९३२ को प्रधानमंत्री को निम्न पत्र भेजा:—

प्रिय मित्र,

आज तार द्वारा भेजे गये और प्राप्त हुए आपके स्पष्ट और पूर्ण उत्तर के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। तथापि मुझे खेद है कि आपने मेरे निश्चय का ऐसा अर्थ किया जिसका मुझे कभी ध्यान ही न हुआ था। मैं उसी वर्ग की ओर से बोलने का दावा करता हूँ जिसके स्वार्थों की हत्या करने के लिए, आप कहते हैं, मैं अनशन करके मर जाना चाहता हूँ। मुझे आशा थी कि इस आख़िरी उपाय के कारण का कोई ऐसा स्वार्थपूर्ण अर्थ न करेगा। दलीलें दिये बिना मैं फिर कहता हूँ कि मेरे लिए यह विषय शुद्ध धार्मिक विषय है। केवल यही बात कि 'दलित' वर्गों को द्विविध मत मिले हैं, उन्हें या सामान्यतः हिन्दू समाज को विच्छिन्न होने से नहीं रोकती। 'दलित' वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की स्थापना मात्र में मुझे उस विष के इंजेक्शन की गंध मिलती है जिससे हिन्दुत्व नष्ट हो सकता है और 'दलित' वर्गों को कुछ लाभ नहीं मिल सकता। कृपाकर मुझे यह कहने दीजिए कि आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषय में ठीक-ठीक निश्चय पर नहीं पहुँच सकते जो हिन्दू और अछूत दोनों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखता है।

मैं 'दलित' वर्गों के आवश्यकता से भी अधिक प्रतिनिधित्व का विरोध न करूँगा। मैं इसी बात के विरुद्ध हूँ कि वे कानून बनाकर हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये जायँ (फिर यह पार्थक्य कितना ही सीमित क्यों न हो) जबतक वे इस समाज के अन्दर रहना चाहते हैं। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निश्चय बना रहा और शासन-विधान काम में आ जाय तो आप हिन्दू सुधारकों के, जिन्होंने अपने-आपको जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों का उद्धार करने के लिए समर्पण कर दिया है, कार्य को आश्चर्यजनक उन्नति को रोक देंगे?

इसलिए मुझे खेदपूर्वक अपने पूर्व-निश्चय पर कायम रहने को लाचार होना पड़ता है।

आपकी चिट्ठी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिए मैं कह देना चाहता हूँ कि आपके निर्णय के अन्य अंशों से मैंने 'दलित' वर्गों के प्रश्न को अलग कर उसपर ख़ास तौर से जो विचार किया है उसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं आपके निर्णय के अन्य अंशों से सहमत हूँ। मेरी राय में अन्य कई अंश बहुत ही आपत्तिजनक हैं। पर मैं उन्हें ऐसा

नहीं समझता जो मुझे इतना आत्म-बलिदान करने की प्रेरणा करें जितना मेरी अन्तरात्मा ने 'दलित' वर्गों के सम्बन्ध में करने की मुझे प्रेरणा की है।

आपका विश्वसनीय मित्र—
मो० क० गांधी

६. गांधीजी ने १५ सितम्बर को अनशन के निश्चय के सम्बन्ध में बम्बई-सरकार को अपना जो वक्तव्य भेजा था और जो २१ सितम्बर को प्रकाशित किया गया था, वह इस प्रकार है :—

"मेरे अनशन का निश्चय ईश्वर के नाम पर, और जैसा कि मैं नम्रता के साथ विश्वास करता हूँ, उसके आदेश पर किया गया है। मित्रों का आग्रह है कि मैं उसे कुछ दिनों के लिए टाल दूं, जिससे जनता को अपना संगठन कर लेने का समय मिल जाय। मुझे खेद से कहना पड़ता है कि अब उसके दिन को कौन कहे, घण्टे को बदलना भी मेरे बस की बात नहीं है। प्रधान-मंत्री के पत्र में जो बातें लिख चुका हूँ उनके अतिरिक्त और किसी भी कारण से मेरा उपवास टल नहीं सकता।

"मेरा भावी अनशन उन लोगों के विरुद्ध है जो मुझमें विश्वास रखते हैं, चाहे वे भारतीय हों या यूरोपियन, और उनके वास्ते नहीं है जो मुझमें विश्वास नहीं रखते। इसलिए वह अंग्रेज अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध नहीं है, पर उन अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के विरुद्ध है जो अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध उपदेशों को अनसुना करके भी मुझमें विश्वास करते हैं और मेरे पक्ष को न्याय-संगत मानते हैं। वह मेरे उन देशवासियों के विरुद्ध भी नहीं है जो मुझमें विश्वास नहीं रखते, चाहे वे हिन्दू हों या और कोई, किन्तु वह उन अगणित देशवासियों के विरुद्ध है—चाहे वे किसी भी दल और विचार के क्यों न हों—जिनका विश्वास है कि मेरा पक्ष न्याय का पक्ष है। सर्वोपरि, हिन्दू-समाज की अन्तरात्मा को सच्चा धर्म पालने के लिए प्रेरित करना उसका उद्देश है।

"केवल भावोद्दीपन मेरे संकल्पित उपवास का उद्देश न होगा। मैं अपना सारा वजन—जो-कुछ भी वह है—न्याय, शुद्ध न्याय के पलड़े पर धर देना चाहता हूँ। अतः मेरी प्राण-रक्षा के लिए अनुचित उतावली और परेशानी न होनी चाहिए। इस वचन में मेरा अटल विश्वास है कि उसकी (भगवान् की) मरजी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसे इस देह से कुछ काम लेना होगा तो वह इसे बचावेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी इसे बचा नहीं सकता। मनुष्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि मेरा विश्वास है, कुछ दिन तक वह बिना अन्न के जी सकता है।"

दलितों के पृथक्-निर्वाचन के साथ-साथ अस्पृश्यता की संरक्षा की तीव्र आलोचना करने के उपरान्त इस पत्र में कहा गया था :—

"यदि यह भ्रान्ति है, तो मुझे अवश्य चुपचाप उसका प्रायश्चित्त करने देना चाहिए; और ईश्वरीय प्रेरणा है, तो यह हिन्दू-धर्म की छाती पर से एक भारी चट्टान को हटा देगा। ईश्वर करे, मेरी यंत्रणा हिन्दू-धर्म के अन्तःकरण को शुद्ध कर दे और उनके हृदयों को द्रवित भी कर सके जिनकी प्रवृत्ति तत्काल मुझे कष्ट पहुँचाने की हो रही है।

"मेरे उपवास के मुख्य हेतु के विषय में कुछ भ्रम मालूम होता हो, इसलिए मैं फिर यह बता देना चाहता हूँ कि उसका उद्देश दलितवर्ग के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था का—चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो—विरोध करना है। ज्योंही वह वापस ले लिया गया कि मेरा अनशन समाप्त हो जायगा। स्थान-संरक्षण के सम्बन्ध में इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम प्रकार क्या होगा, इस विषय में भी मेरे निश्चित विचार हैं। पर एक कैदी की हैसियत से मैं अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए अपने-आपको अधिकारी नहीं समझता। तथापि संयुक्त-निर्वाचन के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं और दलित-वर्ग के जिम्मेदार नेताओं के बीच कोई समझौता हो, और वह सब प्रकार के हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओं में स्वीकृत हो जाय, तो मैं उसे मान लूंगा।

"एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। यदि दलितवर्ग के प्रश्न का सन्तोष-जनक निपटारा हो जाय, तो इसका यह मतलब नहीं लगाना चाहिए कि साम्प्रदायिक प्रश्न के अन्य भागों के सम्बन्ध में सरकार ने जो निश्चय किया है उसे मानने के लिए मैं बाध्य हूँ। मैं स्वयं उसके और भी अनेक अंशों का विरोधी हूँ, जिनके कारण मेरी समझ में कोई भी स्वतंत्र एवं लोकतन्त्र शासन-प्रणाली के अनुसार कार्य करना प्रायः असम्भव है। इस प्रश्न का निर्णय सन्तोष-जनक रूप से हो जाने का यह मतलब भी न निकालना चाहिए कि जो शासन-विधान तैयार होगा, उसे मान लेना ही मेरे लिए लाजिमी होगा। ये ऐसे राजनैतिक सवाल हैं जिनपर विचार करना और जिनके सम्बन्ध में अपना निर्णय देना भारतीय कांग्रेस का ही काम है। ये व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार-क्षेत्र से बिलकुल बाहर हैं। फिर इन प्रश्नों के सम्बन्ध में तो मैं अपनी निजी राय भी प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि मैं तो इस समय सरकार का कैदी हूँ।

"मेरे अनशन का सम्बन्ध एक निर्दिष्ट, एक संकुचित क्षेत्र से ही है। दलितवर्गों का प्रश्न प्रधानतया एक धार्मिक प्रश्न है, और उसके साथ मैं अपने को विशेष रूप से सम्बद्ध समझता हूँ, क्योंकि मैं अपने जीवन में हमेशा ही उसपर विचार करता

रहा हूँ। मैं उसे अपने लिए एक ऐसी पवित्र धरोहर समझता हूँ, जिसकी जिम्मेवारी को मैं छोड़ नहीं सकता।

"प्रकाश और तपस्या के लिए उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है। मैंने ईसाई-धर्म तथा इसलाम में भी इसका उल्लेख देखा है। हिन्दू-धर्म में तो आत्म-शुद्धि एवं तपस्या के उद्देश से किये गये उपवास के उदाहरण भरे पड़े हैं। किन्तु यह एक विशेष एवं उच्च उद्देश के साथ-साथ धर्म समझकर ही किया जाना चाहिए। फिर मैंने तो अपने लिए यथाशक्ति इसे वैज्ञानिक रूप दे डाला है। अतः इस विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मैं अपने मित्रों और सहानूभूति प्रदर्शित करनेवालों को सचेत कर देना चाहता हूँ कि आप लोग बिना सोचे-समझे अथवा सहानुभूति की क्षणिक व्याकुलता में पड़कर मेरा अनुकरण न करें। जो लोग ऐसा करने के लिए इच्छुक हों, उन्हें कठिन परिश्रम और अछूतों की निःस्वार्थ सेवा-द्वारा अपने को उसके योग्य बना लेना चाहिए, तब यदि उनके उपवास का समय आ गया होगा तो उनके हृदय में भी स्वतंत्र रूप से उसका प्रकाश पड़ जायगा।

अन्त में मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि यह उपवास मैं पवित्र-से-पवित्र उद्देशों से प्रेरित होकर ही कर रहा हूँ, किसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध या द्वेष की भावना से प्रेरित होकर नहीं। मेरे लिए तो यह अहिंसा का ही एक रूप और उसकी अन्तिम मुहर है। अतः यह स्पष्ट है कि जो लोग उन लोगों के प्रति वाद-विवाद में किसी तरह का द्वेप-भाव या हिंसा प्रदर्शित करेंगे, जिन्हें वे मेरे प्रतिकूल या मैं जिस उद्देश की सिद्धि के लिए यत्न करता हूँ उसके विरुद्ध समझते हों, तो इस कार्य-द्वारा वे मेरी मृत्यु का आवाहन और भी शीघ्रतापूर्वक करेंगे। उद्देशों की नहीं तो कम-से-कम इस उद्देश की सिद्धि के लिए तो यह परमावश्यक है कि अपने विरोधियों के साथ पूर्ण सौजन्य का व्यवहार किया जाय और उनके भावों के प्रति आदर दिखाया जाय।"

मो० क० गांधी

३

पूना का समझौता

कौंसिलों में दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व तथा उनके हित से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ दूसरे मामलों में दलित-वर्ग और शेष हिन्दू सम्प्रदाय के नेताओं के बीच नीचे लिखी शर्तों पर पूना का समझौता हुआ :—

१. प्रान्तीय कौंसिलों में साधारण जगह में से नीचे लिखे अनुसार जगहें दलित-वर्गों के लिए सुरक्षित रहेंगी:—

मदरास	३०	बम्बई और सिन्ध .	१५
पंजाब	८	बिहार-उड़ीसा . .	१८
मध्यप्रान्त	२०	आसाम	७
बंगाल	३०	युक्तप्रान्त	२०
		कुल . .	१४८

प्रधान-मंत्री के निश्चय में प्रान्तीय कौंसिलों के लिए निर्धारित सदस्य-संख्याओं के आधार पर ये संख्यायें रक्खी गई हैं।

२. इन स्थानों के लिए निर्वाचन संयुक्त होगा, पर निर्वाचन-प्रणाली नीचे लिखे अनुसार होगी—

निर्वाचन-क्षेत्र की साधारण निर्वाचन-सूची में दलित-वर्ग के जितने निर्वाचक रहेंगे उनका एक निर्वाचक-संघ होगा, जो दलित-वर्ग के सुरक्षित प्रत्येक स्थान के लिए दलित-वर्ग में से ४ प्रतिनिधि चुनेगा। संघ के प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार होगा और जिन चार उम्मीदवारों को सबसे अधिक मत मिलेंगे वे ही दलित-वर्ग के प्रतिनिधि होंगे। और इस प्रारम्भिक चुनाव के चार प्रतिनिधि साधारण चुनाव के चार उम्मीदवार होंगे, जिनमें से एक संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा दलित-वर्ग का प्रतिनिधि चुना जायगा।

३. केन्द्रीय धारा-सभा में भी दलित-वर्ग का प्रतिनिधित्व संयुक्त-निर्वाचन के सिद्धान्त पर स्थित होगा। यहाँ भी इस वर्ग को सुरक्षित स्थान मिलेंगे और निर्वाचन-प्रणाली वैसी ही होगी जैसी प्रान्तीय कौंसिलों के लिए।

४. केन्द्रीय धारा-सभा में ब्रिटिश-भारत के लिए निर्धारित साधारण स्थानों में से १८ प्रतिशत स्थान दलित-वर्ग के लिए सुरक्षित रहेंगे।

५. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के लिए ४ उम्मीदवार चुनने की पूर्व-कथित निर्वाचन-प्रणाली दस वर्ष बाद उठ जायगी, यदि वह नीचे लिखी शर्त (६) के अनुसार आपस के समझौते से इसके पहले ही न उठ गई हो।

६. प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलों में सुरक्षित स्थानों-द्वारा दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व की प्रथा तबतक जारी रहेगी जबतक इस समझौते से सम्बन्ध रखनेवाले सम्प्रदायों के आपस के समझौते से और कोई दूसरा निश्चय न हो।

७. दलित-वर्ग के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के मताधिकार की योग्यता लोथियन-कमिटी की सिफारिश के अनुसार होगी।

८. किसी स्थानीय संस्था के निर्वाचन या सरकारी नौकरी पर नियुक्त होने

के लिए कोई केवल इसी कारण अयोग्य न समझा जायगा कि वह दलित-वर्ग का सदस्य है। इसकी पूरी कोशिश की जायगी कि इस सम्बन्ध में दलित-वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले, बशर्ते कि सरकारी नौकरी के लिए निर्धारित योग्यता दलित-वर्ग के सदस्य में हो।

९. प्रत्येक प्रान्त को शिक्षा के लिए दी जानेवाली आर्थिक सहायता में से यथेष्ट धन दलित-वर्ग के सदस्यों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधायें देने के लिए अलग कर दिया जायगा।

(हस्ताक्षर)

मदनमोहन मालवीय	डाक्टर अम्बेडकर	च० राजगोपालाचार्य
श्रीनिवासन्	तेजबहादुर सप्रू	एम० आर०जयकर
घनश्यामदास बिड़ला	एम० सी० राजा	एम० पिल्ले
सी० वी० मेहता	गवई	देवधर
स० बालू	वी० एस० कामत	राजभोज
ए० वी० ठक्कर	राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य नेतागण	

परिशिष्ट ९

१९३५ की भारत और ब्रिटेन का व्यापारिक सन्धि

ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लन्दन में जिस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं उसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी लिखा है कि जिस समय भारतीय उद्योग को काफी संरक्षण दिया जाने का प्रश्न जांच के लिए टैरिफ-बोर्ड के सम्मुख पेश होगा उस समय भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योग को भी अपनी बात कहने और अन्य सम्बन्धित दलों की कही हुई बातों का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी।

भारत-सरकार यह भी अंगीकार करती है कि यदि संरक्षण-काल के बीच में ही रक्षित उद्योगों सम्बन्धी शर्तों में आमूल परिवर्तन किये जायंगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ही ओर से भारत-सरकार यह जांच करावेगी कि तीसरी कलम में दिये हुए सिद्धान्तों की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नहीं, और इस जांच में ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योगों के आवेदन-पत्रों पर पूरा विचार किया जायगा।

मूल सन्धि-पत्र

नई दिल्ली, १० जनवरी

ओटावा के व्यापारिक संधि-पत्र की पुष्टि के रूप में ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने जिस संधि-पत्र पर कल लंदन में हस्ताक्षर किये हैं वह इस प्रकार है :—

ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार इस पत्र-द्वारा स्वीकार करती है कि ओटावा की व्यापारिक-संधि के दौरान में ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार की ओर से नीचे लिखी शर्तें उक्त सन्धि की पुष्टि के रूप में समझी जायँगी—

१—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार मानती हैं कि जहां भारत की आर्थिक बहबूदी के लिए किसी भी विदेश से आनेवाले माल के प्रति भारतीय उद्योग को संरक्षण मिलना आवश्क हो सकता है, वहां भारतीय, ब्रिटिश या अन्य देशों के उद्योगों की ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि भारतीय उद्योग को ब्रिटिश-आयात की अपेक्षा अन्य देशों के आयात से अधिक संरक्षण की जरूरत हो।

२—ब्रिटिश-सरकार यह स्वीकार करती है कि वर्तमान स्थिति में भारत-सरकार की आय के लिहाज से आयात-करों की अनिवार्य आवश्यकता है और आयात-करों की मात्रा स्थिर करते समय आय का समुचित खयाल रखना ही चाहिए।

३—(१) भारत-सरकार वचन देती है कि संरक्षण ऐसे ही उद्योगों को दिया जायगा जो टैरिफ-बोर्ड की समुचित जांच के बाद भारत-सरकार की राय में संरक्षण के पात्र सिद्ध हों। परन्तु यह संरक्षण असेम्बली के १६ फरवरी १९२३ के प्रस्ताव में वर्णित विवेकपूर्ण संरक्षण की नीति के अनुसार दिया जायगा। यह वचन १९३३ के संरक्षण-कानून-द्वारा संरक्षित उद्योगों पर लागू न होगा।

(२) भारत-सरकार यह भी वचन देती है कि संरक्षण की मात्रा इतनी ही होगी, अधिक न होगी, कि आयात माल के मुकाबले में भारतीय माल ठीक-ठीक भावों पर बिक सके। और यह भी कि यथा-संभव इस कलम की शर्तों का खयाल रखकर ब्रिटिश माल पर अन्य विदेशों के माल की अपेक्षा कम कर लगाया जायगा।

(३) इस धारा की पिछली उपधाराओं के अनुसार ब्रिटिश माल पर और अन्य विदेशी माल पर लगनेवाले कर की मात्रा में जो अन्तर

रक्खा जायगा वह इस प्रकार नहीं वदला जायगा कि ब्रिटिश माल को हानि पहुँचे।

(४) इस धारा में दिये गये वचनों से भारत-सरकार के इस अधिकार में वाधा नहीं आयगी कि यदि आमदनी के खयाल से जरूरत महसूस हुई तो वह आवश्यक संरक्षण-कर से भी अधिक आयात-कर और लगा दे।

४—जव भारतीय उद्योग को काफी संरक्षण देने के प्रश्न की टैरिफ-वोर्ड जांच करेगा, तो भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्वन्धित उद्योग को भी अपनी वात कहने और अन्य सम्वन्धित दलों की कही हुई वातों का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी। भारत-सरकार यह भी वचन देती है कि यदि संरक्षण-काल के वीच में ही रक्षित उद्योगों-सम्वन्धी शर्तों में आमूल परिवर्तन किये जायँगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ओर ही से भारत-सरकार यह जांच करावेगी कि तीसरी धारा में दिये हुए सिद्धान्तों की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नहीं, और यह कि इस जांच में ब्रिटेन के संवंधित उद्योगों के आवेदन-पत्रों पर पूरा विचार किया जायगा।

५—जिस माल की आयात पर विवेकपूर्ण संरक्षण-कर लगाया जायगा उसकी तैयारी के लिए उपयोगी कच्ची या अध-पक्की सामग्री का भारतीय निर्यात वढ़ाने की दृष्टि से समस्त व्यावसायिक हितों के सहयोग से जो उपाय किये जायंगे उनका लिहाज ब्रिटिश-सरकार रक्खेगी, विशेषत: वह भारत-सरकार का ध्यान उन उपायों की ओर दिलाती है जो ब्रिटेन ने ओटावा की संधि की ८वीं धारा के अनुसार भारतीय रुई की खपत वढ़ाने के लिए किये हैं। ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान, व्यावसायिक जांच, वाजार के सहयोग और औद्योगिक प्रचार आदि सभी प्रकार से और व्यवसायियों के सहयोग से भारतीय रुई की खपत वढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा।

६—ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि पिछली धारा के सिद्धान्तों के अनुसार भारत के गले हुए लोहे के साथ कर-मुक्त प्रवेश की रिआयत तवतक जारी रहेगी जवतक १९३४ के लौह-संरक्षण-कानून के अनुसार भारत में आनेवाले लोहे और इस्पात पर लगनेवाला कर ब्रिटेन के हक में कम लाभदायक नहीं कर दिया जाय। परन्तु इसका १९३४ के लोहे और इस्पात-कर-सम्वन्धी कानून की दूसरी धारा-द्वारा संशोधित १८९४ के भारतीय टैरिफ कानून की उपधारा ३ (४) और ३ (५) पर कोई प्रतिकूल असर नहीं होगा।

७—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार वचन देती हैं कि इस संधि के विषय में ब्रिटिश और भारतीय उद्योगों के अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि मिल-जुलकर जब कभी और जो भी निर्णय, समझौते या विवरण पेश करेंगे उनपर ध्यान दिया जायगा।

मोदी-लीस-सन्धि

ओटावा की व्यापारिक संधि की पुष्टि के बाद इंग्लैण्ड के व्यापार-संघ के अध्यक्ष सर वाल्टर रन्सिमैन और लन्दन-स्थित भारतीय हाई-कमिश्नर सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह प्रकाशित किया जाता है।

सर वाल्टर रन्सिमैन का पहला पत्र यह था :—

"मुझे ब्रिटिश-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि यदि किसी समय उपनिवेशों और रक्षित देशों को विदेशों के मुकाबले में ब्रिटेन के सूत और सूती कपड़े की खपत अपने यहां बढ़ाने के अधिक या विशेष उपाय करने पड़ें तो उस समय ब्रिटिश-सरकार उपनिवेशों और रक्षित देशों की सरकारों से यह अनुरोध करेगी कि जो रिआयत वे ब्रिटेन के रुई के माल के लिए करें वही रिआयत वैसे ही भारतीय माल के लिए भी की जाय। यह वचन उस समय तक लागू रहेगा जबतक लंकाशायर और बम्बई के मिल-मालिकों की २८ अक्तूबर १९३३ की संधि कायम रहेगी, अथवा जबतक दोनों देशों के सूती कपड़े के उद्योगों के बीच में कोई और संधि बनकर कायम रहेगी।"

सर वाल्टर रन्सिमैन के पत्र का उत्तर देते हुए सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लिखा:—

"आपका आजकी तारीख का प्रथम पत्र मिला। मुझे भारत-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि ज्योंही दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) व्यापक हो जाय त्योंही ब्रिटिश कपड़े पर आयात-कर घटाकर २० फीसदी या सफेद कपड़े पर =)॥ पौण्ड कर दिया जायगा। अलबत्ता, २८ अक्तूबर १९३३ की लंकाशायर और बम्बई के मिल-मालिकों की संधि की अवधि पूरी हो जाने पर अवशिष्ट संरक्षण-काल के लिए ब्रिटिश माल पर कर लगाने में तत्कालीन स्थिति और पिछले अनुभव का लिहाज रक्खा जायगा और सबपर न सही, परन्तु जिन चीजों पर दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) लागू होता है उनमें से अधिकांश पर विचार किया जायगा।"

सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के पत्र की पहुँच स्वीकारते हुए सर वाल्टर रन्सिमैन ने लिखा :—

"आपके आज की तारीख के कृपापत्र नं० २ की पहुँच स्वीकार करता हूँ।"

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
१	२८–१२–८५	बम्बई	७२	श्री उमेशचन्द्र बनर्जी
२	२८–१२–८६	कलकत्ता	४३२	,, दादाभाई नौरोजी
३	२८–१२–८७	मदरास	६०७	,, बदरुद्दीन तैयबजी
४	२६–१२–८८	इलाहाबाद	१,२४८	,, जार्ज यूल
५	२६–१२–८९	बम्बई	१,८८९	सर विलियम वेडरबर्न
६	२६–१२–९०	कलकत्ता	६७७	,, फीरोजशाह मेहता
७	२८–१२–९१	नागपुर	८१२	श्री पी० आनन्द चार्लू
८	२८–१२–९२	इलाहाबाद	६२५	,, उमेशचन्द्र बनर्जी
९	२७–१२–९३	लाहौर	८६७	,, दादाभाई नौरोजी,एम०पी०
१०	२६–१२–९४	मदरास	१,१६३	,, अलफ्रेड वेब, एम० पी०
११	२७–१२–९५	पूना	१,५८४	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१२	२८–१२–९६	कलकत्ता	७८४	माननीय मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
१३	२७–१२–९७	अमरावती	६९२	,, सी० शंकरन् नायर
१४	२९–१२–९८	मदरास	६१४	,, आनन्दमोहन बसु
१५	२७–१२–९९	लखनऊ	७४०	,, रमेशचन्द्र दत्त
१६	२७-१२-१९००	लाहौर	५६७	,, नारायण गणेश चन्दावरकर
१७	२३–१२–०१	कलकत्ता	८९६	,, दीनशा ईदलजी वाचा
१८	२३–१२–०२	अहमदाबाद	४७१	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१९	२६–१२–०३	मदरास	५३८	,, लालमोहन घोष
२०	२६–१२–०४	बम्बई	१,०००	सर हेनरी काटन
२१	२७–१२–०५	काशी	७५८	माननीय गोपालकृष्ण गोखले
२२	२६–१२–०६	कलकत्ता	१,६६३	श्री दादाभाई नौरोजी
२३	२६–१२–०७	सूरत	१,६००	डॉ० रासबिहारी घोष

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० १

स्वागताध्यक्ष	प्रधान-मन्त्री
—	—
डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र	मि० ए० ओ० ह्यूम
राजा सर टी० माधवराव	,,
पं० अयोध्यानाथ	,,
सर फीरोजशाह मेहता	,,
श्री मनमोहन घोष	,,
,, सी० नारायणस्वामी नायडू	,, पं० अयोध्यानाथ
पं० विश्वम्भरनाथ	,, ,,
सरदार दयालसिंह मजीठिया	,, श्री आनन्द चार्लू
पी० रंगय्या नायडू	,,
रावबहादुर एस० एम० भिड़े	,,
सर रमेशचन्द्र मित्र	,, श्री दीनशा ईदलजी वाचा
श्री जी० एस० खापर्डे	,,
,, एन० सुब्बाराव पन्तुलु	,,
,, बंशीलालसिंह	,,
रायबहादुर कालीप्रसन्न राय	,,
महाराजाबहादुर जगदीन्द्रनाथ	,, श्री दीनशा वाचा (उसी साल सभापति हुए)
दीवानबहादुर अम्बालाल देसाई	,,
नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर	,,
सर फीरोजशाह मेहता	,, श्री दीनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले
मुंशी माधवलाल	,,
डॉ० रासबिहारी घोष	,,
श्री त्रिभुवनदास मलावी	— —

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
२३	२८–१२–०८	मदरास	६२६	डॉ० रासविहारी घोष
२४	२७–१२–०९	लाहौर	२४३	पं० मदनमोहन मालवीय
२५	२६–१२–१०	इलाहावाद	६३६	सर विलियम वेडरवर्न
२६	२६–१२–११	कलकत्ता	४४६	पं० विशननारायण दर
२७	२६–१२–१२	वांकीपुर	——	राववहादुर रंगनाथ नृसिंह मुधोलकर
२८	२८–१२–१३	करांची	५५०	नवाव सय्यद मुहम्मद वहादुर
२९	२८–१२–१४	मदरास	८६६	श्री भूपेन्द्रनाथ वसु
३०	२७–१२–१५	वम्बई	२,२५९	,, सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह
३१	२६–१२–१६	लखनऊ	२,३०१	माननीय अम्विकाचरण मुजुमदार
३२	२६–१२–१७	कलकत्ता	४,९६७	श्रीमती एनी वेसेण्ट
विशेष	सितंवर–१८	वम्वई	३,५००	सय्यद हसन इमाम
३३	२६–१२–१८	दिल्ली	४,८६९	पं० मदनमोहन मालवीय
३४	२६–१२–१९	अमृतसर	७,०३१	पं० मोतीलाल नेहरू
विशेष	सितंवर–२०	कलकत्ता	——	लाला लाजपतराय
३५	२६–१२–२०	नागपुर	१४,५०३	चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य
३६	२७–१२–२१	अहमदावाद	४,७२६	हकीम अजमलखां
३७	२६–१२–२२	गया	३,२४८	देशवन्धु चित्तरंजन दास
विशेष	........—२३	दिल्ली	——	मौलाना अवुलकलाम आजाद

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० २

स्वागताध्यक्ष	प्रधानमंत्री
दीवानबहादुर के० कृष्णस्वामी राव	— —
लाला हरकिशनलाल	श्री दीनशा वाचा श्री दाजी आबाजी खरे
माननीय पं० सुन्दरलाल	,,
श्री भूपेन्द्रनाथ वसु	,,
,, मजहरुल हक	,,
,, हरचन्दराय विशनदास	,,
सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
श्री दीनशा ईदलजी वाचा	,, ,,
पं० जगतनारायण	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
रायबहादुर वैकुण्ठनाथ सेन	श्री सी० पी० रामस्वामी अय्यर, भुरगरी, पी० केशव पिल्ले
श्री विट्ठलभाई पटेल	,, ,,
हकीम अजमलखां	श्री० विट्ठलभाई पटेल, फजुलहक, पं० गोकर्णनाथ मिश्र
स्वामी श्रद्धानन्द	,, डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी ,,
श्री व्योमकेश चक्रवर्ती	,, ,, ,,
सेठ जमनालाल बजाज	पं० मोतीलाल नेहरू, डॉ० एम० ए० अन्सारी, सी० राजगोपालाचार्य
श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल	,, सी० राजगोपालाचार्य, विट्ठलभाई पटेल, रंगास्वामी आयंगर
श्री व्रजकिशोर प्रसाद	मौ० मुअज्जमअली, वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद
डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी	,, ,, ,,

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
३८	२८–१२–२३	कोकनाडा	६,१८८	मौलाना मुहम्मदअली
३९	२६–१२–२४	वेलगांव	१,८४४	महात्मा गांधी
४०	२६–१२–२५	कानपुर	२,६८८	श्रीमती सरोजिनी नायडू
४१	२६–१२–२६	गोहाटी	३,०००	श्री श्रीनिवास आयंगर
४२	२६–१२–२७	मदरास	२,६९४	डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी
४३	२९–१२–२८	कलकत्ता	५,२२१	पं० मोतीलाल नेहरू
४४	२५–१२–२९	लाहौर	——	पं० जवाहरलाल नेहरू
४५	मार्च–३१	करांची	——	सरदार वल्लभभाई पटेल
४६	अप्रैल–३२	दिल्ली	——	सेठ रणछोड़लाल अमृतलाल
४७	मार्च–३३	कलकत्ता	——	श्रीमती जे० एम० सेनगुप्त
४८	अक्तूवर–३४	वम्वई	——	वावू राजेन्द्रप्रसाद
४९	अप्रैल–३६	लखनऊ	——	पं० जवाहरलाल नेहरू
५०	दिसंवर–३७	फैजपुर (महाराष्ट्र)	——	पं० जवाहरलाल नेहरू
५१	दिसंवर–३८	हरिपुरा (गुजरात)	——	श्री सुभापचन्द्र वसु

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० ३

स्वागताध्यक्ष	प्रधान मंत्री
देशभक्त कोण्डा वेंकटपय्या	पं० जवाहरलाल नेहरू, डॉ० सैफुद्दीन किचलू, गंगाधरराव देशपांडे तथा डी० गोपाल कृष्णैया
श्री गंगाधरराव देशपाण्डे	श्री श्वेब कुरेशी, वी० एफ० भरूचा तथा पं० जवाहरलाल नेहरू
डॉ० मुरारीलाल	डॉ० अन्सारी, रंगास्वामी आयंगर तथा पं० सन्तानम्
श्री तरुणराम फूकन	,, ,, तथा विट्ठलभाई पटेल
श्री सी० एन० मुथुरंग मुदालियर	श्री श्वेब कुरेशी, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र वसु
श्री जतीन्द्रमोहन सेनगुप्त	डॉ० एम० ए० अन्सारी, पं० जवाहरलाल नेहरू
डॉ० सैफुद्दीन किचलू	श्री श्रीप्रकाश, डॉ० सय्यदमहमूद, श्री जयरामदास दौलतराम
डॉ० चोइथराम गिडवानी	पं० जवाहरलाल नेहरू ,, ,,
——	—— —— ——
डॉ० प्रफुल्ल घोष	—— —— ——
श्री के० एफ० नरीमान	श्री जयरामदास दौलतराम, आचार्य कृपलानी, डॉ० सय्यदमहमूद
बाबू श्रीप्रकाश	आचार्य कृपलानी
श्री शंकरराव देव	,,
दरबार गोपालदास	,,